शब्दार्थ-दर्शन

शब्दार्थ-दर्शन

२६९ शब्द-वर्गों में शब्दों का तात्त्विक और वैज्ञानिक विवेचन तथा पर्यायिकी की दृष्टि से ९०० शब्दों के सूक्ष्म अर्थ-भेदों का स्पष्टीकरण

रामचन्द्र वर्म्मा

रचना प्रकाशन

इलाहाबाद-१

शब्दलोक प्रकाशन
की ओर से
जीत मल्होत्रा
रचना प्रकाशन इलाहाबाद
द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण
२० दिसम्बर १९६८

मुद्रक
चन्द्र प्रकाश प्रेस
वाराणसी–२

मूल्य
पतीस रुपये

'सबद' की चोट लगी मोरे मन में,
बेधि गयो तन सारा।

भेंट

हिन्दी भाषा के

उन अध्ययनशील और अन्वेषक जिज्ञासुओं को

जो

शब्दों के गम्भीर और गूढ़ आर्थी विवेचन

के लिए

अधिक उत्सुक भी हों

और

अधिक समर्थ भी

विषय-सूची

पहला खंड

दूसरा खंड

तुलनात्मक और व्याख्यात्मक विवेचन

• •

प्रस्तावना

हिन्दी भाषा का आवश्यक सस्कार करने की ओर तो मेरा ध्यान आरम्भ से ही रहा है; और उसका मानक रूप स्थिर करने-कराने के प्रयत्न में भी मैं २५-३० वर्षों से लगा हूँ। इस बीच मे मैंने जो साहित्यिक कार्य किए हैं, उनसे सुविज्ञ पाठक बहुत कुछ परिचित होंगे ही। पर एक तो मैं क्षीण स्वरवाला दुर्बल व्यक्ति ठहरा और दूसरे मैं चुपचाप एकांत मे बैठकर अपनी अल्प शक्ति के अनुसार केवल सेवा-भाव से काम करनेवाला आदमी ठहरा। आन्दोलन खडा करना और हो-हल्ला मचाना मेरी प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध है। कदाचित् इन्हीं कारणों से मेरे प्रयत्नो की ओर उतने लोगों का ध्यान आकृष्ट नही हुआ, जितने लोगो का होना चाहिए था। मुझे इस बात की कोई शिकायत नही है; पर हाँ, हिन्दी के दिन पर दिन बिगड़ते हुए रूप के सम्बन्ध में अवश्य शिकायत है—और बहुत बड़ी शिकायत है। तिस पर मुझे ऐसा जान पड़ता है कि जिस प्रकार इधर बीस वर्षों में हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता ने सभी तरह के भारतवासियो को अच्छे और बुरे सभी प्रकार के काम करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी है, उसी प्रकार सब लोगों को मन-माने ढग से उल्टी-सीधी और बेढंगी भाषा लिखने की भी पूरी स्वतंत्रता दे रखी है। मैं तो निस्संकोच भाव से यहाँ तक कह सकता हूँ कि इस स्वतंत्रता में कितनी उच्छृंखलता मिल गई है कि हमारी यह स्वतन्त्रता पूर्ण रूप से निरंकुश स्वच्छन्दता में परिणत हो गई है। यदि इसमें मेरे संतोष की कोई बात है, तो वह यही कि अब अनेक मान्य तथा सुयोग विद्वानों का ध्यान भी हमारी इस त्रुटि और दोष की ओर आकृष्ट होने लगा है; और वे यह कहने तथा मानने लगे हैं कि हिन्दी का रूप दिन पर दिन बहुत बुरी तरह से बिगड़ रहा है; और बडे-बडे हिन्दी विद्वानों तथा साहित्यिक सस्थानों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए जिससे लोग हिन्दी भाषा की ऐसी दुर्दशा करना छोड़कर उसका मानक और विशुद्ध रूप स्थिर करने का प्रयत्न करें। यदि हमने इस ओर ध्यान न दिया तो हिन्दी का राज-भाषा बनना व्यर्थ सिद्ध हो जाएगा। इसके फलस्वरूप हमारी पहली और सबसे बड़ी हानि तो यह होगी कि हम हिन्दी की गणना उच्चकोटि की भाषाओ में न करा सकेंगे; और दूसरी हानि यह भी हो सकती है कि कुछ नए उभड़नेवाले हिन्दी-विरोधी तत्व तथा पक्ष हिन्दी को राज-भाषा के पद से अनासीन करने के प्रयत्न में सफल हो जायँ।

परन्तु सन्तोष का विषय है कि अब अनेक विचारशीलों और विद्वानों का ध्यान भाषा की इस दिन पर दिन बढ़नेवाली दुर्दशा की ओर जाने लगा है। डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने अंगरेजी पुस्तकों और लेखों के त्रुटि-पूर्ण अनुवादों के सम्बन्ध में जो असंतोष प्रकट किया है, उसका उल्लेख मैंने इस पुस्तक के 'विषय प्रवेश' (पृष्ठ ११) में किया है। द्विवेदी जी ने तो अपना मत अनुवादों और उनमें प्रयुक्त होनेवाले अप्रचलित तथा दुरूह शब्दों तक ही परिमित रखा है, परन्तु पटना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० देवेन्द्रनाथ जी शर्मा इससे और भी बहुत कुछ आगे बढ़ गए हैं। दो-तीन महीने पहले पटना रेडियो से उनकी एक वार्त्ता प्रसारित हुई थी। उसमें आपने विश्वविद्यालयों के विद्यार्थियों की भाषा की जो चर्चा की थी वह विशेष विचारणीय भी है और शिक्षाप्रद भी। उन्होंने कहा था कि मुझे प्रति वर्ष अनेक विश्वविद्यालयों की हिन्दी परीक्षाओं से सम्बद्ध विद्यार्थियों की लगभग ४००० उत्तर पुस्तिकाएँ देखनी पड़ती हैं। उनकी परम अशुद्ध और सदोष भाषा से डा० शर्मा को जो मानसिक कष्ट होता है, उसकी चर्चा करते हुए वे यह कहने के लिए विवश हुए थे कि अब मुझे मृत्यु के उपरान्त नरक के कष्ट भोग का कोई भय नहीं रह गया, क्योंकि मैं समझता हूँ कि वहाँ की सारी यातनाएँ इसी जन्म में भोग रहा हूँ। उन्होंने यह भी कहा था कि चाहे विद्यार्थियों से किसी अंश का अर्थ करने के लिए कहा जाय चाहे व्याख्या करने के लिए, चाहे सारांश लिखने के लिए, चाहे स्पष्टीकरण करने के लिए और चाहे इसी प्रकार के कुछ और कामों के लिए, परन्तु उन सबका उत्तर बिलकुल एक-सा होता है। वे अर्थ, आशय, व्याख्या, सारांश स्पष्टीकरण सरीखे शब्दों में कोई अन्तर ही नहीं समझते --सबको एक ही लाठी से हाँकते चलते हैं। मैं क्षमा-याचना पूर्वक और बहुत ही नम्र भाव से इतना और निवेदन कर देना चाहता हूँ कि भाषा की इस दुर्दशा के लिए बेचारे विद्यार्थी ही उत्तरदायी नहीं हैं। मैं अच्छे अच्छे लेखकों और वक्ताओं की भाषा में ही नहीं, हिन्दी की उच्च कक्षाओं के अध्यापकों तथा प्राध्यापकों* की भाषा में भी प्रायः नित्य ऐसी त्रुटियाँ और दोष देखता हूँ जो यह सिद्ध करते हैं कि हिन्दी की प्रकृति से परिचित होना तो दूर रहा, वे हिन्दी व्याकरण के साधारण नियमों तक से या तो परिचित ही नहीं होते या अपने अज्ञान,

* फारसी का एक शेर है--

गर हमीं मक्तबों हमीं मुल्लास्त।
कारे तिफ्लाँ तमाम ख्वाहद शुद।

अर्थात् -- यदि यही विद्यालय और यही शिक्षक हैं तो लड़कों (की पढ़ाई) का काम हो चुका।

अभ्यास आदि के कारण बहुत बुरी तरह से उनकी उपेक्षा करते हैं। और तो और, अनेक अवसरों पर उच्चारण भी प्रायः बहुत अशुद्ध होते हैं। हमारे विश्वविद्यालयों में 'डाक्टर' गढने की होड़-सी लगी है; और हिन्दी की ऐसी शिक्षा से पारंगत होनेवाले 'डाक्टरों' में से ही विश्वविद्यालयों के लिए अध्यापक तथा प्राध्यापक चुने जाते हैं।

इस सम्बन्ध मे एक मजेदार बात याद आ गई। अंग्रेजी के Hydrophobia के लिए हमारे यहाँ का बहुत पुराना शब्द जलातंक (जल+आतंक) है परन्तु इधर साल भर के अन्दर आकाशवाणी दिल्ली के प्रसारणों में मुझे उसके स्थान पर 'जलांतक' (जल+अंतक) सुनाई पड़ा। पहले एक दो बार मैंने समझा कि यह टाइप की या ऐसी ही और कोई भूल होगी, परन्तु फिर जब दो बार 'जलांतक' ही सुनाई पड़ा तब मुझे आश्चर्य भी हुआ और दुःख भी। रोज लाखों हिन्दी-प्रेमी रेडियो सुनते हैं, पर उनका ध्यान ऐसी बातों की ओर क्यो जाने लगा। आश्चर्य तो यह है कि भारत सरकार के इतने बड़े हिन्दी विभाग का ध्यान भी कभी इस भद्दी भूल की ओर नहीं गया और अब तो मुझे ऐसा जान पड़ने लगा है कि आकाशवाणी 'जलातंक' के स्थान पर 'जलांतक' का ही प्रचार करना चाहती है। सुना है स्थानीय संस्कृत विश्वविद्यालय के उद्यान में स्थान-स्थान पर पटरियो पर लिखा है--फूल तोड़ना निषेध है, घास पर चलना निषेध है। ऐसे अवसरों पर संज्ञा का नहीं बल्कि भूत कृदन्त रूप निषिद्ध भी उक्त वाक्यों मे ठीक नही बैठता। ऐसे अवसरो पर 'वर्जित' का प्रयोग होना चाहिए। अभी कल ही एक स्थानीय दैनिक में निकला था--'जब पुलिस के बडे अधिकारी वहाँ पहुँचे, तब पुलिसवालो और डाकुओं मे गोलियो का आदान-प्रदान हो रहा था।' गोलियाँ न हुई मानों मिठाइयाँ हो गईं। अनुवादक को अं० में Exchange मिला; और उसने बिना समझे-बूझे उसके स्थान पर आदान-प्रदान रखकर काम चलता किया। ऐसे लोगो को जानना चाहिए कि आदान-प्रदान मित्रतापूर्ण परिस्थितियों में और सद्भावनापूर्वक होता है। विरोधियोंऔर शत्रुओ में तो गोलियाँ चला करती हैं। रेडियो पर भी और समाचार-पत्रों में भी प्रायः इस प्रकार के प्रयोग आते रहते हैं--विरोधी पक्षों ने भी सरकार के उठाए हुए इन कदमो का स्वागत किया है। उठाए हुए कदमो का और स्वागत! भाषा और शब्दों के प्रति हमारी उदासीनता और उपेक्षा इस सीमा तक पहुँच गई है कि हम न तो शब्दो के ठीक अर्थ जानते हैं और न व्याकरण के नियमो की ही परवाह करते हैं। समझ मे नही आता कि ऐसी भाषा से कभी

हमारा पीछा छूटेगा भी या नही, परन्तु जिस द्रुत गति से हिन्दी इस नाटक प्रवाह म बहती चली जा रही है, उसे देखते हुए तो यही जान पडता है कि हम अनजान मे ही हिन्दी को ऐसे नए साँचे म ढाल रहे हैं जो जन साधारण के लिए परम परकीय है। हिन्दी का राष्ट्र भाषावाला पुराना कलेवर और रूप तो दिन पर दिन विगलित होता जा रहा है, और उसके बदले राज भाषा के नाम पर ऐसी नई हिन्दी गढी जा रही है जो हिन्दी तो कदाचित् ही रह जाय, हाँ और जो चाहे वह भले ही हो जाय। मैंने अपने सारे जीवन मे और किसी भाषा को ऐसी बे ढगी तरह से रूप बदलते नही देखा, जसी बे ढगी तरह से आज-कल हिन्दी का रूप बदल रहा है। रूप ही क्यो उसकी सारी प्रकृति विकास के नाम पर विकृत होती जा रही है। क्या हिन्दी के कणधार इस ओर ध्यान देने की कृपा करेंगे ?

सरकार और कामो की तरह शिक्षा और हिन्दी प्रचार के लिए भी अधा धु ध अनुदान देती और खच करती है। पर कोई यह देखनेवाला नहीं है कि सरकार का धन कहाँ जाता और कसे खच होता है। अनुदान सस्थाओ को ही मिलते हैं। इसी अनुदान के धन के लिए सस्थाओ मे मुट्ठी भर अधिकारी उन पर पूरा अधिकार कर लेते हैं या अधिकार प्राप्ति के लिए दलबन्दियाँ और लडाई झगडे करते हैं, काम की ओर ध्यान देने का किसी को अवकाश ही नही मिलता।

श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन के इस मत से पूर्णत सहमत हू कि ऐसे अनुदान हिन्दी के लिए वरदान के बदले अभिशाप ही सिद्ध हो रहे हैं। यदि हम लोगों में हिन्दी की सेवा का सच्चा भाव होता और हम उसके लिए थोडे त्याग और शुद्ध हृदयतापूवक प्रयत्न करते तो हिन्दी अब तक कहाँ की कहाँ पहुँच गई होती। परन्तु हिन्दी भी उसी ओर जाती हुई दिखाई देती है जिस ओर सारा देश आँखें बन्द करके चला जा रहा है। हिन्दी देश की भाषा ही ठहरी, फिर वह देश का साथ कसे छोड सकती है--उससे अलग रास्ते पर कसे चल सकती है ?

हम अपने सारे देश मे भी और देश के बाहर भी दूर-दूर तक हिन्दी का प्रचार करना चाहते हैं यह हमारी सद्भावना के बहुत ही शुभ लक्षण हैं। परन्तु हमारा यह प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक हम हिन्दी को अपेक्षित भाषिक गुणों और विशेषताओं से अलकृत करके उसका मानक रूप स्थिर न कर लें।

इसी अक्तूबर (१९६८) मे स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा ने केन्द्रीय सिंचाई और बिजली विभाग के उप-मंत्री श्री सिद्धेश्वर प्रसाद के स्वागत का आयोजन किया था। उस समय उप-मंत्री जी ने हिंदी के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट किए थे, वे कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण हैं। आपने कहा था कि हिन्दी की वर्तमान दुर्दशा के लिए स्वयं हिन्दी वाले ही उत्तरदायी है। आपके सारे भाषण का साराश कुछ इस प्रकार है :--

'हिन्दी के बडे-बड़े मठाधीशो ने उसे गला घोटकर मार डाला है। ये मठाधीश हिन्दी के बारे मे सरकार से कुछ कहते हैं, विश्वविद्यालयो मे कुछ और जनता के बीच उन दोनो से भिन्न कुछ दूसरी बात कहते हैं। जब तक सभी हिन्दी भाषी राज्य अपने यहाँ शिक्षा, प्रशासन का और अन्य काम पूरी तरह हिन्दी के माध्यम से नहीं करते तब तक वे गैर-हिन्दी भाषी राज्यो से कैसे आशा करते हैं कि वे अपने यहाँ हिन्दी अपनाएँगे। यदि हिन्दी वाले हिन्दी मे सभी विषयो के उच्चकोटि के ग्रन्थ प्रकाशित करें तो अहिन्दी भाषी भी स्वेच्छापूर्वक हिन्दी को अपनाने लगेंगे। जब तक लोग ईमानदारी से काम नही करते, उनमे सचमुच अपनी भाषा के प्रति प्रेम नही होता तब तक हिन्दी आगे नही बढ सकती।'

इसी अवसर पर सीतामऊ के महाराज-कुमार डॉ० रघुबीर सिंह जी का भी स्वागत हुआ था। श्री महाराज-कुमार जी ने भी हिन्दी की उच्च कक्षाओ के लिए उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों के अभाव पर चिन्ता प्रकट की थी; और कहा था कि हिन्दी मे उच्च-स्तरीय पाठ्य पुस्तको की रचना तो होनी ही चाहिए साथ ही अन्यान्य विषयों की अच्छी-अच्छी पुस्तके भी प्रचलित होनी चाहिए। यह ठीक है कि ऐसे प्रशसनीय उद्योगो के सम्बन्ध मे कोई मतभेद नही हो सकता; परन्तु सोचने की बात यह है कि यदि ऐसी उच्च-स्तरीय पुस्तकों की भाषा बिलकुल निम्न-स्तरीय होगी तो क्या होगा ! हमारी समझ मे उच्च-स्तरीय पुस्तकें तैयार करानेवाले सरकारी विभागों और विश्वविद्यालयों को इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए कि उच्च-स्तरीय पुस्तको की भाषा भी उनके अनुरूप और उच्च-स्तरीय होनी चाहिए। अन्यथा इस प्रयत्न में किया हुआ अधिकतर परिश्रम और व्यय बहुत कुछ निरर्थक होकर रह जाएगा। हम पुस्तक रचना के कार्य को जितना महत्त्व दे रहे हैं, उतना ही महत्त्व भाषा के संस्कार और सुधार को भी दिया जाना चाहिए और यह काम तब तक नही हो सकता, जब तक इसके लिए संघठित प्रयत्न न हो; और आधिकारिक रूपवाली सुयोजित संस्था न बने। ऐसी संस्था

तभी बन सकती है, जब सरकार भी और हिन्दी सेवी भी शुद्ध हृदय से इसके लिए प्रयत्नशील तथा सन्नद्ध हो।

अब मैं अपने सम्बन्ध मे भी और इस पुस्तक के सम्बन्ध मे भी कुछ कह देना आवश्यक समझता हू। मेरी अपनी स्थिति तो यह है कि शारीरिक दृष्टि से अब मैं बहुत कुछ अकर्मण्य और अशक्त हो चुका हू। आँखो की ज्योति तो मैं मानक हिन्दी कोश और शब्दार्थ मीमासा का काम करते-करते कई वर्ष पहले ही गँवा चुका था और लिखने पढने मे असमर्थ हो गया था। जो थोडी बहुत ज्योति बच रही थी, वह अब दिन पर दिन आप ही क्षीण होती जा रही है। रह गया स्वास्थ्य, उसमे भी बहुत बडा आघात जून १९६८ के उस अन्तिम सप्ताह मे लगा जब आचार्य किशोरी दास जी वाजपेयी के आग्रह पर और उनके पूर्व निश्चय के अनुसार मुझे हरद्वार जाना और आना पडा। मेरा रक्त-चाप तो हरद्वार मे ही बढ गया था, रास्ते की कडी गरमी के कारण भी और कुछ अवस्था के धर्म के कारण भी मुझ पर कई रोगो के आक्रमण होने लगे। और अब तो मेरा शरीर बहुत कुछ व्याधि मन्दिर ही बन गया है। आँखो की ज्योति की तरह पाचन शक्ति भी बहुत ही मन्द हो गई है। अधिकतर दूध और फलो पर ही निर्वाह करना पडता है, फिर भी जुलाई १९६७ से ही मैं इस पुस्तक की तयारी में लग गया था जो प्रकाशित हो रही है। मैं स्वय तो कुछ लिख पढ सकता ही नही फिर भी प्राय नित्य एक लिपिक का बठाकर आवश्यक सामग्री पढवाता और सुनता हू और जो कुछ समझ म आता है वह बोलकर लिखवाता हू। ऐसा करने का मुख्य कारण यही है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की शवयात्रा के समय ही मैंने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक मेरे शरीर मे कुछ भी शक्ति रहेगी तब तक मैं भाषा और शब्दो के सम्बन्ध मे अपना अल्प ज्ञान और विचार विवेचन लिपि बद्ध कराता रहूँगा—अपने साथ वही अश ले जाऊँगा जो किसी प्रकार कागज पर उतर ही न सकूँगा।

शारीरिक दुर्बलताओं और विवशताओ की वृद्धि के साथ ही साथ विचार-शक्ति और स्मरण-शक्ति का भी ह्रास होता जा रहा है। हो सकता है कि इन सब बातों के परिणामस्वरूप इस पुस्तक में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ, दोष और भूलें रह गयी हो। लिपिक से लिखवाने मे भी बहुत कुछ भूलें हो सकती हैं और कुछ स्थानों में हुई भी हैं। तिस पर छापे की भूलें भी इनमे आ मिली हैं, ऐसी सब भूलें ढूँढ निकालना तो मेरे लिए बहुत कठिन था, फिर भी जो थोडी सी भूलें मेरे देखने में आई हैं वे और उनके शुद्ध रूप परिशिष्ट (ख) में दे दिए गए हैं। इन सब बातो के लिए मैं अपने पाठको

ही और अपनी विवशताओ को ही उत्तरदायी समझता हूँ और यही सोचकर सुविज्ञ आलोचको और पाठकों से क्षमा माँगता हूँ। फिर भी यह निवेदन करता हूँ कि यदि और भी कुछ काम करने के योग्य रहा तो इन त्रुटियों और दोषो को दूर करने का भी प्रयत्न करूँगा और शब्दार्थ-विवेचन का काम भी करता और बढ़ाता चलूँगा। मेरा मुख्य उद्देश्य है कि इस क्षेत्र मे कुछ दाग-बेल पड़ जाय और एक ऐसी छोटी-मोटी पगडडी बन जाय कि जिससे आनेवाली पीढ़ियो के लिए एक प्रशस्त राजमार्ग बनाने का काम सुगम हो जाय---लोगो को शब्दो के अर्थो पर नई तरह से ध्यान देने और विचार करने की प्रेरणा मिले। यदि ऐसा हुआ तो मैं अपना सारा जीवन भी और अपना परिश्रम भी सफल समझूँगा।

अब एक दो बाते प्रस्तुत पुस्तक के सम्बन्ध मे भी सुन लीजिए। मानक हिन्दी कोश तैयार करने के समय ही मेरा ध्यान इस बात की ओर गया था कि शब्दो की ऐसी ठीक और वैज्ञानिक व्याख्या होनी चाहिए जिसमे अव्याप्ति और अतिव्याप्ति वाले दोष यथा-साध्य कम हो अथवा हो ही न। मानक हिन्दी कोश की तैयारी के अन्तिम दिनो मे मेरा ध्यान शब्दो के सूक्ष्म आर्थी अन्तरो और भेदों की ओर भी जाने लगा था और इस प्रकार मैं कोश-रचना के क्षेत्र से कुछ और आगे बढकर पर्यायकी के क्षेत्र मे पहुँच गया था। घटनाओ के क्रम और चक्र ने ही मुझे इस नए मार्ग पर ला खड़ा किया था। इसके फलस्वरूप मैंने कोश-कला, शब्द-साधना, शब्दार्थ-मीमासा, शब्द और अर्थ तथा शब्दार्थक ज्ञानकोश नामक छोटी-मोटी पुस्तकें लिखी थी। शब्दार्थ-मीमांसा को ही मैं एक आदर्श रूप देना चाहता था; पर मैं इसे अपना दुर्भाग्य ही समझता हूँ कि मुझे उसमे अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी कार्य करने का अवसर ही नही दिया गया। फिर भी मेरी वह आकाक्षा कभी मन्द नही पडी, उलटे बराबर बढती ही गई। प्रस्तुत पुस्तक शब्दार्थ-दर्शन इन्ही सब बातों की परिणति है। इसके सम्बन्ध मे मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि इसमे मेरी उक्त आकाक्षा बहुत कुछ पूरी हुई है; और इसे वर्तमान रूप देकर मैं बहुत कुछ निश्चित और सन्तुष्ट हुआ हूँ।

यह पुस्तक शब्दार्थक ज्ञानकोश का बहुत कुछ नया, परिवर्द्धित और संशोधित रूप तो है ही; साथ ही इसमे शब्द-साधना और शब्दार्थ-मीमासा की कुछ अच्छी और काम की बातें ले ली गयी है; फिर भी ऐसी सभी बातो को बिलकुल नया, वैज्ञानिक और व्यवस्थित रूप दिया गया है। पहले की त्रुटियाँ और दोष दूर करके बहुत सी नई और काम की बातें बढ़ाई गयी हैं---सबको बहुत कुछ नया कलेवर दिया गया है। इसके सिवा इसमे १५०

से कुछ ऊपर नई शब्द मालाएँ भी बढाई गयी हैं, जिनमें ४ ५ सौ नए शब्दों का विवेचन है। इसे मैंने उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों और सुशिक्षित पाठकों की आवश्यकताओं का तो ध्यान रखा ही है अच्छे अध्यापकों, प्राध्यापकों, लेखकों और वक्ताओं के काम की बहुत सी बातों का भी समावेश किया है। अपने इस प्रयत्न मे मैं कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय करने का अधिकारी हिन्दी जगत् ही है। मैं तो अधिक से अधिक यही कह सकता हूँ कि जो कुछ थोडा बहुत काम मुझसे हो सका है, वह मैं परम नम्रतापूर्वक हिन्दी जगत् और भगवती भारती की सेवा में अर्पित कर रहा हू।

एक और ऐसी आवश्यक बात है जिसका उल्लेख कर देना आवश्यक और उपयोगी समझता हू। साधारणतः यही कहा, माना और समझा जाता है कि कोशकार का काम प्रचलित शब्दों के आर्थी विवेचन तक ही परिमित रहता है--उसे नए शब्द गढ़ने और बनाने का अधिकार नहीं होता। परन्तु मैं यह समझता हूँ कि कोशकार जब कोश रचना के क्षेत्र से आगे बढकर पर्यायिकी के क्षेत्र मे पहुँचता है तब उसे नए शब्द सुझाने का भी कुछ अधिकार हो जाता है। उन्नत, पक्व और पुष्ट भाषाओं के कोशकारों को भले ही नए शब्द गढने का अधिकार न हो, पर जो हिन्दी अभी तक अपनी आरंभिक अवस्था पार करके प्रगति और विकास के मार्ग पर चलने लगी है उसके लिए इस प्रकार का बन्धन कुछ ठीक नहीं है। तिस पर जब बराबर नए शब्द बढते जा रहे हो तब उनमे कहीं कुछ त्रुटियाँ और दोष रह ही जाते हैं। सूक्ष्म आर्थी विवेचन करनेवाले लोगों की दृष्टि में जब ऐसी त्रुटियाँ और दोष आते हैं तब उन्हें उनका उल्लेख भी करना ही पडता है और उनके स्थान पर कुछ नए शब्द सुझाने भी पडते हैं। इन्हीं सब बातों का विचार करके मैंने जो कुछ नया प्रयत्न किया है उसकी चर्चा कर देना भी आवश्यक समझता हूँ।

'नायक ज्ञानकोश' और 'न्याय दर्शन' की तैयारी के समय मुझे अ० के कुछ ऐसे शब्द भी मिले हैं जिनके लिए सरकारी कोशों में मुझे हिन्दी समानक नहीं मिले, और कुछ ऐसे शब्द भी मिले हैं जो सूक्ष्म आर्थी अन्तरों और भेदों की दृष्टि से उपयुक्त नहीं हैं। ऐसे बहुत से शब्दों के लिए मुझे नए हिन्दी समानक या तो बनाने पडे हैं या सुझाने पडे हैं। उदाहरण के लिए उनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं Achievement—परिलब्धि [उपलब्धि से भिन्न], Admiration—अभिशंसा [प्रशंसा से भिन्न] Declaration—परिज्ञापन [प्रख्यापन से भिन्न], Enclave—अन्तरावृत, Exclave—बहिरावृत, Final—पातिक [अन्तिम से भिन्न], Hostility—रिपुता [शत्रुता से भिन्न],

Kidnapping—आहरण [अपहरण से भिन्न] Know-how---परिज्ञान [क्रिया-ज्ञान, क्रिया-पद्धति]; Manifesto---ध्येय-पत्र [प्रख्यापन से भिन्न]; Persistence---प्राग्रह [आग्रह से भिन्न]; Record--उच्चमान [कीर्तिमान से भिन्न]; Rostrum -- मंच-शीर्ष; Schedule -- अनुयोजन [अनुसूची से भिन्न]*; Tranquillity -- शम [शान्ति से भिन्न] ।

इसी प्रकार के और भी अनेक शब्द हैं जिनकी पूरी सूची मैं नही बना सका हूं और जो प्रसंग-वश इस पुस्तक की शब्द-मालाओं में पाठकों को मिल जायेंगे। ऐसे नए शब्द रखने के समय मैंने कारणों का भी निरूपण कर दिया है और यह बतला दिया है कि पहले के या पुराने शब्दों मे आर्थी दृष्टि से क्या त्रुटि है और नए शब्द रखने का क्या औचित्य है। इससे सुविज्ञ आलोचक और पाठक सहज मे मेरा उद्देश्य और आशय समझ लेंगे; और तब यदि उन्हे ठीक जान पड़ेगा तो वे मेरे सुझाए हुए शब्दो का उपयोग और प्रचलन करने लगेंगे ।

एक अन्तिम निवेदन और है अब मैं कुछ विशेष करने-धरने के योग्य नही रह गया हूं, फिर भी जब और जितना हो सकेगा, करता ही रहूंगा। मैं चाहता यही हूं कि शब्दों के ऐसे सूक्ष्म आर्थी विवेचन और भेद निरूपण का क्रम बराबर चलता रहे। यह तभी हो सकता है जब कुछ नए उत्साही और विचारशील नव-युवक इस क्षेत्र में आवें और पूरी लगन तथा सेवा-भाव से इस कार्य मे प्रवृत्त हों ।

रामचन्द्र वर्म्मा

१६-११-६८
४७, लाजपत नगर, वाराणसी

* जैसे -- (क) अंतरिक्षयान अपने सब काम अनुयोजन के अनुसार ठीक तरह से कर रहा है; और (ख) इस परियोजना के सब काम अनुयोजन के अनुसार नियत समय पर पूरे हो जाएंगे ।

पहला खण्ड

शब्द-ब्रह्म

हमारा सारा ज्ञान विज्ञान, सारी विद्याएँ, सारी कलाएँ, सारी संस्कृति और सारी सभ्यता शब्दों पर ही आश्रित है। यदि शब्द न होते तो हमारा सारा जीवन पशुओं का सा होता—सारा संसार अंधकार में ही पड़ा रहता। शब्द की इसी अनन्त महिमा और अपार शक्ति का ध्यान रखकर हमारे महर्षियों ने इसे ब्रह्म का समकक्ष माना था। इसी शब्द-ब्रह्म की उपासना से मानवता धन्य भी हुई है और महान भी। आप भी इसकी सच्ची उपासना में रत होकर धन्य बनें। यही सरस्वती की सच्ची उपासना, सच्ची पूजा और सच्ची सेवा है।

१

विषय-प्रवेश

प्राय: लोक-व्यवहार मे किसी भापा की महत्ता और श्रेष्ठता का मूल्याकन मुख्यत: तीन वातो के आधार पर होता है। ये तीन वाते हैं :—प्रचार, साहित्य और शब्द-भण्डार। पहले इन्ही तीनो बातो के सम्वन्ध मे कुछ कह लेना उचित होगा।

इधर कई सौ वर्षों मे सारे भारत मे हिन्दी का वहुत अधिक प्रचार होता चला आ रहा है, और इसी आधार पर स्वतन्त्र भारत के सविधान मे उसे राज-भापा का पद मिला है। इससे वहुत पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती की कृपा से गुजरात, पजाव, राजस्थान आदि मे और तदुपरान्त महात्मा गाधी की कृपा से दक्षिण भारत तथा असम मे भी इसका वहुत अधिक प्रचार हो चुका था और ये तत्त्व हिन्दी को राज-भापा का पद दिलाने मे और अधिक सहायक हुए है, और अव भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर तो इसका वहुत अधिक प्रचार हो रहा है।

साहित्यिक दृष्टि से भी हिन्दी का पद्य-भण्डार मध्य युग से ही निरन्तर वढता चला आ रहा था। भारतेन्दु वावू हरिश्चन्द्र के प्रयत्न से वहुत से लोग हिन्दी की ओर आकृष्ट होने लगे और उसका गद्य-साहित्य दिन पर दिन वढने लगा। जव सविधान मे भी हिन्दी को राज-भापा मान लिया गया तव हिन्दी मे साहित्य-रचना का कार्य इतने प्रवल वेग से चल पडा कि अन्य भारतीय भापाओ मे कही उसकी समता दिखाई नही देती। इधर पन्द्रह-वीस वर्षों मे हिन्दी मे सभी विपयो के और सभी प्रकार के जितने अधिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उन्हे देखते हुए कहा जा सकता है कि हिन्दी ने वहुत थोडे समय मे आश्चर्यजनक उन्नति कर ली है।

जव हिन्दी राज-भापा मान ली गई तव उसके लिए विविध विपयो के वैज्ञानिक और पारिभापिक शब्दो की आवश्यकता भी प्रतीत होने लगी और भारत सरकार ने लाखो-करोड़ो रुपए व्यय करके वीसियो हजार नये शब्द वनाये। इस शब्द-रचना के कार्य मे जो त्रुटियाँ और दोप रह गये थे उन्हे

से जाँच पड़ताल करा रही है और
दूर करने के लिए भारत सरकार फिर
उनमें आवश्यक संशोधन और सुधार करा रही है। सारांश यह कि प्रचार,
साहित्य और शब्द भण्डार तीनों की दृष्टियों से हिन्दी निरन्तर उन्नति करती
जा रही है और आशा की जाती है कि यह आगे भी इसी तरह उन्नति
करती रहेगी।

भारत सरकार बहुत अधिक धन व्यय करके अंग्रेजी हिन्दी की पारिभाषिक
शब्दावलियाँ तो अवश्य तयार करा रही है, परन्तु हमारी समझ में दो दृष्टियों
से यह काम एकांगी और फलत अधूरा ही है। पहली बात तो यह है कि
इनका रूप अंग्रेजी हिन्दी ही होता है जिससे यह अंग्रेजी जानने वालों के ही
काम आ सकती हैं। इनका हिन्दी अंग्रेजी रूप प्रस्तुत होना इसलिए बहुत
आवश्यक है कि हिन्दी जाननेवालों को भी ऐसा साधन प्राप्त हो जिससे वे
समझ सकें कि हिन्दी का अमुक शब्द अंग्रेजी के अमुक शब्द के लिए निश्चित
हुआ है। दूसरी बात यह है कि हिन्दी पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या भी
हिन्दी में होना परम आवश्यक है। यदि ऐसा नही होगा तो हिन्दीवालों को
ऐसे शब्दों के अभिप्राय और आशय समझने के लिए फिर अंग्रेजी का ही
मुखापेक्षी होना पड़ेगा जो कभी अभीष्ट और वाञ्छनीय नहीं हो सकता ? जब
हिन्दी शब्द बन रहे हैं तब उनके साथ साथ उनका आशय और भाव
समझने का साधन भी हिन्दी में अवश्य होना चाहिए। इस पुस्तक में मैंने
हिन्दी के ऐसे बहुत से नए शब्दों के आशय और भाव स्पष्ट करने का प्रयत्न
किया है। परन्तु यह काम अभी दाल में नमक के बराबर ही है। आशा है
भारत सरकार मेरे इन सुझावों की ओर भी ध्यान देगी और ऐसी व्यवस्था
करेगी जिससे उक्त दोनों त्रुटियों की पूर्त्ति हो सके और हिन्दीवालों के लिए
ज्ञान के इस नए भंडार तक पहुँचने का अच्छा सुभीता हो सके।

यह तो हुई हिन्दी रूपी वृक्ष के ऊपरी और दृश्य भाग की बात, जिसका
तना हमें दिन पर दिन मोटा ताजा होता हुआ दिखलाई देता है और जिसकी
हजारों शाखाएँ प्रशाखाएँ हरे भरे पत्तों सुगंधित फूलों और स्वादिष्ट फलों से
लदी हुई चारों ओर खूब तेजी से फलती हुई दिखाई देती हैं और जिसके
द्वारा बहु-संख्यक भारतवासी अनेक प्रकार के लाभ उठाते हैं। परन्तु वृक्ष का
एक अदृश्य मूल भाग भी होता है जो सदा मिट्टी के नीचे दबा रहता है और
जिस पर सहसा कभी किसी का ध्यान भी नहीं जाता। लोग आम का फल
भी खा लेते हैं, उसकी पत्तियों से वंदनवार भी बना लेते हैं और उसकी
लकड़ी का भी अनेक प्रकार से उपयोग करते हैं। ये सब उसके उपभोक्ता
ही कहे जायँगे। परन्तु वृक्षों की वास्तविक देखभाल करने के लिए ऐसे कुशल

तथा चतुर, मालियों की भी आवश्यकता होती है जो उनके मूल मे खाद और पानी देते रहे, समय-समय पर उचित मात्रा मे उन्हे धूप और हवा भी पहुँचाते रहे; और उन्हे कीडो-मकोडो के आक्रमण से बचाते रहे। ऐसे ही लोग वृक्ष के सेवी कहे जाने के अधिकारी होते है। हमारा आशय उस शब्द-समूह से है जिससे भाषा बनती है। हमारे लिए यह बात अवश्य प्रसन्नता और सतोष की है कि इधर दस-पन्द्रह वर्षो मे कुछ प्रमुख विद्वानों ने भाषा-विज्ञान की आरभिक बातो का कुछ परिचय हिन्दीवालो को कराया; और अब कुछ विद्वान हिन्दी की धातुओ, शब्दो की रचना और रूप तथा भाषा की प्रकृति पर भी बहुत कुछ विचार करके अपने निष्कर्ष तथा सिद्धात पुस्तको के रूप मे हिन्दी-भाषियो के समक्ष उपस्थित करने लगे हैं। फिर भी खेद का विषय है कि हिन्दी मे ऐसे लोगो का बहुत बडा अभाव दिखाई देता है जो हिन्दी रूपी वृक्ष के मूल अश की देख-रेख करते हो और उसे पुष्ट करने तथा सजीव रखने का प्रयत्न करते हो। बल्कि हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि हिन्दी का यह मौलिक क्षेत्र आरम्भ से अब तक बहुत कुछ उपेक्षित ही रहा है अथवा कम-से-कम हम हिन्दीवाले इस ओर से उदासीन ही रहते हैं।

साठ वर्षों के अपने साहित्यिक जीवन का बहुत अधिक अश मैंने भाषा और शब्दो के अध्ययन मे ही बिताया है। उसके फलस्वरूप मेरी यह धारणा निरन्तर पुष्ट होती है कि जिस रूप मे शब्दो का आर्थी विवेचन और उनके सूक्ष्म भेदो तथा उपभेदो का तुलनात्मक निरूपण होना चाहिए वह अभी तक नही हुआ है। साथ ही मैं यह भी समझता हूँ कि अब वह समय आ गया है जब कि हिन्दी मे ये दोनो काम वैज्ञानिक ढग से, व्यवस्थित रूप मे और शास्त्रीय स्तर पर होने चाहिएँ। इधर बहुत दिनो से अनेक अवसरो पर मैंने हिन्दीवालों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है परन्तु मैं इस प्रयत्न मे सफल नही हुआ हूँ। यह काम कुछ विशिष्ट प्रकार के शब्द-कोशो के द्वारा होना चाहिए। यह पुस्तक इसी उद्देश्य से प्रकाशित की जा रही है कि हिन्दी के विद्वान् और साहित्यिक सस्थाएँ शब्दो के इस प्रकार के विवेचनो की ओर या तो स्वयं ध्यान दे अथवा शासन से यह अनुरोध करे कि वह इसकी समुचित व्यवस्था करे।

मैंने कुछ अवसरो पर अपने कई सुयोग्य मित्रो को यह कहते हुए सुना है कि हिन्दीवाले शब्द-कोशो का बहुत कम उपयोग करते है, और हिन्दी के कोशो का अधिकतर व्यवहार साधारण नवयुवक और विद्यार्थी ही करते हैं; वयस्क हिन्दी-भाषी और विद्वान् उनका बहुत ही कम उपयोग करते हैं।

उनकी यह बात मुझे बहुत कुछ ठीक जँची और मैं इसके कारणों पर विचार करने लगा। मुझे इसके कई कारण जान पड़े, जिनका संक्षेप में यहाँ उल्लेख करना अनुचित न होगा। परन्तु उन कारणों का उल्लेख करने से पहले यह बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि यह बात हिन्दीवालों के लिए ही नहीं प्रायः सभी भारतीय भाषाओं के भाषी वयस्क और विद्वान सज्जनों के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। अब संक्षेप में वे कारण भी सुन लीजिए जो मेरे ध्यान में आये हैं।

मेरी समझ में पहला कारण भारतीय भाषाओं की लिपि प्रणाली है। रोमन लिपि के सब अक्षर अलग अलग होते हैं और उसमें न तो मात्राएं होती हैं न द्वित्व अक्षर और न संयुक्त वर्ण। इन्हीं विशेषताओं के कारण रोमन लिपि में शब्दों का अक्षर क्रम बहुत ही सहज में और सुगमतापूर्वक समझ में आ जाता है, और रोमन लिपि के शब्द-कोशों में उद्दिष्ट शब्द ढूँढने में किसी को कुछ भी कठिनता नहीं होती। परन्तु भारतीय लिपियों में मात्राओं, संयुक्त वर्णों आदि की जटिलताओं के कारण शब्द-कोशों में उद्दिष्ट शब्द ढूँढ निकालना बहुत कुछ कठिन होता है। मैंने अच्छे अच्छे विद्वानों और सुयोग्य व्यक्तियों तक को शब्द-कोशों में शब्द ढूँढने के लिए इधर उधर भटकते हुए देखा है। उन्हें आस पास बैठे हुए लोगों से पूछना पड़ता है कि अमुक शब्द कहाँ मिलेगा, और जब तक शब्द-क्रम का कोई जानकार उनकी सहायता न करे तब तक वे प्रायः असहाय से बने रहते हैं। मेरी इन बातों से किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि मैं भारतीय लिपियों पर किसी प्रकार का आक्षेप कर रहा हूँ। मैंने तो वही वास्तविक स्थिति बतलाई है जो अनेक अवसरों पर स्वयं मेरे देखने में आयी है।

आरम्भ से ही हिन्दी साहित्य की सेवा के क्षेत्र में, मेरा एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि भाषिक दृष्टि से हिन्दी को उसी उच्च स्तर पर पहुँचाया जाय जिस पर संसार की अनेक अन्यान्य उन्नत भाषाएँ अवस्थित हैं। और यह काम तभी हो सकता है जब हम अपने शब्दों के अर्थों विश्लेषण को वैसा ही विशद रूप दें जैसा अन्य उन्नत भाषाओं में उनके शब्दों को प्राप्त है। यदि आप आक्सफोर्ड और वब्स्टर सरीखे प्रामाणिक कोश उठाकर देखें तो उनमें आपको at on और the सरीखे छोटे छोटे शब्दों के आशयों और प्रयोगों के ऐसे सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण मिलेंगे कि आप चकित हो जायेंगे। उन्हीं के आदर्शों पर चलकर मैंने अभी ऊपर, और सरीखे छोटे छोटे हिन्दी शब्दों के आशयों और प्रयोगों के विश्लेषण का यत्किंचित् प्रयत्न किया है। इस प्रकार के विवेचनों से मैं इस परिणाम पर

पहुँचा हूँ कि हमारे यहाँ के वहुत ही छोटे और साधारण शब्द भी अभिप्रायो और आशयो के ऐसे भडार है जिनका अन्वेषण हमारे लिए वहुत ही आवश्यक है। भले ही हिन्दी-भाषी अपनी भाषा के अभ्यस्त होने के कारण ऐसे विवेचनो की आवश्यकता या महत्त्व न समझते हों, परन्तु अन्य भाषा-भाषियो और विदेशियो को अपनी भाषा के शब्दो के प्रयोगो से भी और उसकी आर्थी क्षमता से भी परिचय कराने के लिए ऐसे विवेचन वहुत ही उपयोगी सिद्ध होगे। मैं समझता हूँ कि जब हिन्दी मे छोटे और वडे सभी प्रकार के शब्दो तथा प्रयोगो का सूक्ष्म विवेचन और विश्लेषण करने वाले उच्च कोटि के शब्द-कोश तथा ऐसे ही और साधन प्रस्तुत हो जाएँगे तब विचारशील विद्वान् और उत्साही विद्यार्थी हिन्दी की ओर अधिकाधिक सख्या मे प्रवृत्त होने लगेगे, तथा हिन्दी का और भी जल्दी तथा यथेष्ट प्रचार होने लगेगा। मुझे आशा है कि हिन्दी के अधिकारी और प्रतिष्ठित विद्वान् मेरे इस निवेदन पर उक्त दृष्टि से विचार करने की कृपा करेगे।

दूसरा कारण यह है कि भाषा सब जगह साधारणत. दो ही प्रकार से सीखी-सिखाई जाती है। बच्चे आरम्भ मे केवल दूसरो के अनुकरण पर शब्दो का उच्चारण करना सीखते है और उसी अनुकरण के आधार पर वे उनके अर्थ समझते और प्रयोगो के अभ्यस्त होने लगते हैं। न तो उनमें शब्दों के अर्थ और आशय ठीक तरह समझने की योग्यता या शक्ति ही होती है और न उनके अभिभावक या आरम्भिक शिक्षक ही इस योग्य होते हैं कि उन्हे शब्दो के ठीक-ठीक अर्थ और आशय पूरी तरह से वतला सकें। कुछ और वडे होने पर जब उन्हे अपनी भाषा के कठिन शब्दो का ज्ञान कराया जाता है, अथवा अन्य भाषाएँ सिखाई जाती हैं तब भी पर्यायो और समार्थक शब्दों का ही सहारा लिया जाता है। Cat माने विल्ली, dog माने कुत्ता और horse माने घोडा रटकर अँग्रेजी आदि परकीय तथा स्वदेशी भाषाएँ सीखी जाती हैं। उन्हे 'उत्तम' का अर्थ अच्छा या वढिया और 'निकृष्ट' का अर्थ खराब या बुरा वताकर चलता किया जाता है। परन्तु उत्तम, अच्छा और वढिया के अर्थो में जो सूक्ष्म भेद हैं, उनसे वे आजीवन अपरिचित और कोरे ही रह जाते है। ऐसी वातो का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि शिक्षित समाज के वहुत अधिक लोग जीवन भर अनुकरण, अभ्यास और पर्यायो की छाया मे ही पलते है। शब्दो के अर्थो और आशयों के सूक्ष्म विवेचन और पर्यायो के पारस्परिक आर्थी भेद, प्रभेद आदि समझने की कोई आवश्यकता ही नही समझी जाती। शिक्षितों मे से जो लोग साहित्य-प्रेमी या साहित्य-सेवी होते है वे भी प्रायः इस तरह की वातों से

अलग और दूर ही रहते हैं। परिणाम यह होता है कि भाषिक और शाब्दार्थिक क्षेत्रो में बहुत से लोग इन्ही आरम्भिक परिस्थितियो में अपना सब काम जसे तसे चलाते रहते हैं। और उन्ह भाव-व्यजन की श्रेष्ठ और सूक्ष्म प्रणालियो के ज्ञान से वंचित रहना पडता है, जो भाषा म ओज, प्रसाद, और सौंदय की स्थापना करती हैं तथा उसे यथेष्ट प्रभावशाली और रोचक बनाती ह। इन्ही सब बातो का परिणाम यह होता है कि बहुत से लोग बोलने और लिखने के समय अनेक प्रकार की भूलें करते हुए दिखायी देते हैं, और अनेक प्रकार के ऐसे बे ढगे और भद्दे प्रयोग करने लगते हैं जो भाषा की प्रकृति के विरुद्ध तो होते ही हैं, अनेक अवसरो पर या तो निरथक होते ह या भ्रामक या हास्यास्पद। इस प्रकार की लिखी हुई भाषा मे ओज, प्रवाह प्रसार आदि का अभाव तो होता ही ह इससे पाठक ऊब जाते है और उनमे अध्ययन वाचन आदि की प्रवृत्ति तथा रुचि कम होने लगती ह।

तीसरा कारण यह है कि हिंदी म भी और अन्यान्य भारतीय भाषाओं मे भी भाषिक दृष्टि से उच्च कोटि की ऐसी साहित्यिक चेतना अपेक्षित ही है जिसम शब्दो और प्रयोगो का सूक्ष्म विवेचन करनेवाले साहित्य की ओर जिज्ञासु लोग प्रवृत्त होते हैं। जसा कि मैं आगे चलकर बतलाऊगा कदाचित् हमारी साहित्यिक चेतना के विकास मे अभी ऐसे उत्कृष्ट शब्द कोशो की रचना का समय आने को ही है। बल्कि यो कहना चाहिए कि वह समय हमारे सिर पर आ गया है। हम चाहिए कि हम उसे पहचानें और उसका स्वरूप समझकर अपनी भाषा की महत्वपूर्ण आवश्यकता की ओर ध्यान दें और उसकी पूर्ति का प्रयत्न करें। इसी के साथ एक बात और है। मनुष्यो की तरह भाषा का भी ज म होता है, शशव और बाल्यावस्था होती है यौवन होता है प्रौढता और वयस्कता होती है और वृद्धावस्था तथा उसके उपरात मृत्यु भी होती है। अपन ज म के समय भाषा उसी प्रकार साहित्य से कोरी और रहित होती है जिस प्रकार मनुष्य ज म के समय भाषा से कोरा और रहित होता है। मनुष्यो के शशव और बाल्यकाल की तरह भाषा के ये आरम्भिक काल भी प्राय किस्से कहानियो म ही बीतते हैं। अपनी किशारावस्था और युवावस्था म भाषा अन्याय उन्नत भाषाओ के अनुकरण पर चलती हुई साहित्यिक दृष्टि से थोडी बहुत पुष्ट और सम्पन्न होती है। इन अवस्थाओ मे काव्या, नाटको उपयासो आदि की प्रचुरता तो होती ही है आलोचनात्मक दृष्टि से नये नये तथ्यो का अनुसधान और नये नये मानो तथा मुल्यो का अन्वेषण भी होता है। परन्तु ये सब काम या तो कुतूहल की शान्ति के लिए होते है या मनोरजन मात्र के लिए। हमारी हिंदी भाषा ही नही भारत की अन्यान्य आधुनिक उन्नत तथा प्रगतिशील भाषाएँ भी अभी बहुत कुछ इसी अवस्था मे चल रही हैं।

अपनी यह अवस्था पार कर चुकने पर जब भाषाएँ प्रौढ और वयस्क होती है तब उनमे उच्च कोटि के तात्त्विक, दार्शनिक और सैद्धातिक विषयों के साहित्य का सृजन होता है। इसी प्रौढावस्था मे अथवा पूर्ण वयस्कता प्राप्त होने पर लोगो का ध्यान भाषिक और शाब्दिक अनुसधानो की ओर जाता है। अपनी किशोरावस्था और युवावस्था मे हिन्दी ने पाश्चात्य देशों की अनेक उन्नत भाषाओ के अनुकरण पर भाषा-विज्ञान (Philology) की ओर थोडा-बहुत ध्यान दिया था और जिन लोगो ने इस विषय का कुछ सामान्य सा भी अध्ययन कर लिया था उनका हिन्दी मे यथेष्ट आदर और सम्मान हुआ था और अब भी होता है। परन्तु जिस प्रकार सैकडो-हजारो वैज्ञानिक क्षेत्रो मे पाश्चात्य देशो ने कल्पनातीति उन्नति की है, उसी प्रकार भाषिक क्षेत्र मे भी वे इतने अधिक आगे बढ गये है जिसका हमे कदाचित् ही कुछ परिचय प्राप्त हुआ हो। इस अवसर पर हम अपने एक नवयुवक और सुयोग्य विद्वान् मित्र श्री द्वारिकेश जी के एक पत्र की कुछ बातें उद्धृत करना चाहते है। श्री द्वारिकेश जी इन दिनो शिकागो विश्वविद्यालय मे हिन्दी भाषा के प्राध्यापक है और हिन्दी कृदन्तो के सम्बन्ध मे अनुसधान का बहुत बडा कार्य कर रहे है। अपने ५ अप्रैल ६५, के पत्र मे उन्होने लिखा था—

"हिन्दी की समस्या राजनीतिक ही नही—practical (व्यावहारिक) भी है। राजनीतिक उतनी ही, जितना कि लोग चिल्लाते है। उतनी कठिनाई नही है हिन्दी सीखने मे; अग्रेजी की अपेक्षा तो बहुत ही कम। practical (व्यावहारिक) इसलिए कि हिन्दी वाले हिन्दी को जितना सरल समझते है वह न तो उतनी सरल ही है और न "हिन्दी-हिन्दी" चिल्लाने से प्रचार मे ही आ सकती है। मेरा दृढ विश्वास है कि हिन्दी का प्रचार केवल trained (प्रशिक्षित) और Scientific linguists (वैज्ञानिक भाषा-तत्त्वज्ञ या भाषा-शास्त्री) ही कर सकते हैं जिनकी भारत मे कोई सलाह नही ली जाती। दूसरा भ्रम यह है कि भारत मे Philologist (भाषा-विज्ञानी) को ही linguist (भाषा-तत्त्वज्ञ या भाषा-शास्त्री) समझा जाता है।.... इन philologists (भाषा-विज्ञानियो) का एक समय था twenties (वर्तमान शताब्दी का तीसरा दशक)। किन्तु इनमे से किसी ने अपने को आधुनिक नही बनाया। अतः हिन्दी प्रचार समस्या का हल इन लोगो के बूते से बाहर है। Linguistics (भाषा-तत्त्व या भाषा-शास्त्र) एक विज्ञान है। यहाँ भौतिकी, रसायन शास्त्र आदि विज्ञानो मे इसे भी स्थान मिला है। जब ये विज्ञान चन्द्र-लोक की सैर कर रहे है तो फिर कल्पना करें कि Linguistics तत्त्व (भाषा या भाषा-शास्त्र) ने आज कितनी उन्नति कर ली होगी। उतनी ही—जितनी चन्द्र-लोक पहुँचने

तक की। भारत म Contrastive study (वपम्यात्मक ग्रध्ययन) की परम्परा को मजबूती से स्थापित किया जाना ग्रत्यावश्यक है। भारत के सभी हि दी क्षेत्रो से ग्राये हुए linguists (भाषा तत्त्वज्ञ या भाषा शास्त्री) यहाँ ग्राकर विश्वविद्यालयो मे सम्मान पा रहे हैं किन्तु भारत के किसी विश्व विद्यालय न उ ह खोजने तथा बुलाने का प्रयत्न नही किया है। हिन्दीवालो को चाहिए कि वे इन भाषा शास्त्रियो को खोज खोजकर बुलावें ग्रौर उचित सम्मान दे। ग्रभी तो भारत की परम्परा इस क्षेत्र में पाणिनी युग से ग्रागे नही बढ़ी है। यह स्वीकार करने में सकोच नही कि इस क्षेत्र में भी भारत ग्रभी ग्रादि ग्रवस्था में है।

मेरी 'शब्द ग्रौर ग्रथ नामक पुस्तक प्रकाशित हो चुकने के उपरान्त उसके सबध में सस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान ग्रौर भाषा तत्त्वज्ञ डा० सिद्धेश्वर वर्मा ने ग्रपने बहुमूल्य विचारो ग्रौर सुझावो से परिपूर्ण जो विस्तृत पत्र मुझे भेजा था उसम डा० द्वारिकेन वाले उक्त उद्धरण के सदभ में एक जगह लिखा था— पाश्चात्य देशो में भाषा विज्ञान का हमशक्ल एक ग्रौर विज्ञान 'परा भाषा विज्ञान' (परा लिंग्विस्टिक्स) बन रहा है। हमारी शब्द ब्रह्म परिषद् ने भी इस नय विज्ञान की कुछ सामग्री एकत्रित कर दी है। इस नय विज्ञान में ग्रथ ग्रौर भावो का पूरा ग्रौर यथोचित समावेश होता है।'

जब हम एक ग्रोर यह देखते हैं कि पाश्चात्य देशो म भाषा ग्रौर शब्दो के सबध म गभीर गवेषणा किस ऊचाई तक पहुँच रही है ग्रौर दूसरी ग्रार यह देखते हैं कि भाषा ग्रौर शब्द तथा उनके ग्रर्थो ग्रौर प्रयोगो की ग्रोर स हम लोग कितने उदासीन हैं तब हमें लज्जित होकर ग्रौर सिर झुकाकर किसी उर्दू कवि के कथनानुसार यही कहना पडता है—

इधर फक्त कट रही हैं घडियाँ
उधर जमाने बदल रहे हैं।

मैं न तो भाषा विज्ञानी हू ग्रौर न भाषा तत्त्वज्ञ या भाषा शास्त्री। हा, इतना ग्रवश्य है कि बाल्यावस्था से ही भाषा ग्रौर शब्द के ग्रध्ययन के प्रति मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति ग्रौर रुचि रही है। ग्रौर ग्रब तक मैं मुख्यत तत्स बधी कामो म ही लगा रहा हू। भाषिक दृष्टि स हिन्दी की जो दुरवस्था मेरे देखने में ग्राई उसका यत्किचित प्रतिकार करन के लिए मैंने बीसो वष पूव 'ग्रच्छी हिन्दी ग्रौर 'हिन्दी प्रयोग नामक पुस्तक लिखी थी उनमें मैंने यह बतलाने का प्रयत्न किया था कि हिन्दी की वास्तविक प्रकृति क्या है ग्रौर उसका मानक तथा शुद्ध रूप कसा होना चाहिए। प्रसगवश ग्रच्छी हिन्दी

मैं मैंने यह भी बतलाया था कि कुछ अन्यान्य भारतीय भाषाओं और विशेषतः अंग्रेजी की छाया से हिन्दी किस प्रकार धीरे-धीरे कुछ बिगड़ती सी जा रही है और अब तो मै देखता हूँ कि हिन्दी पर अंग्रेजी की घनी घटा ही घुमड़ने लगी है।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जयपुर मे अपने भाषण मे (फरवरी १६६८) कहा था कि आज-कल हिन्दी में अँग्रेजी के जो अनुवाद होते हैं वे बहुत ही त्रुटिपूर्ण होते है—इतने त्रुटिपूर्ण कि सहसा जन-साधारण की समझ मे नही आते। इसका कारण उन्होने यह बतलाया था कि हम प्राय ऐसे अप्रचलित शब्दो का प्रयोग करते है जिनका अर्थ और आशय स्पष्ट नही होता। हिन्दी की त्रुटियो की ओर मैं बीसियो वर्षो से हिन्दीवालो का ध्यान आकृष्ट करता आ रहा हूँ। बल्कि मेरा अपना मत तो यहाँ तक है कि हमारे यहाँ मौलिक के नाम से जो कुछ लिखा जाता है उसका भी बहुत सा अंश वैसा ही त्रुटिपूर्ण होता है जैसा आचार्य द्विवेदी के मतानुसार अँग्रेजी के अनुवादो का होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि हमारी अब तक की सारी शिक्षा-दीक्षा अँग्रेजी के माध्यम से होती आई है, और अँग्रेजी ने हमारे मस्तिष्क मे ऐसी बुरी तरह से घर कर लिया है कि हम सोचने-समझने और लिखने-बोलने के समय उससे किसी प्रकार अपना पीछा नही छुड़ा सकते। अनुवादो और मौलिक लेखो के त्रुटिपूर्ण होने का एक और कारण यह भी है कि हम अपनी मातृभाषा की प्रकृति से बहुत कुछ अनभिज्ञ तथा अपरिचित होते है। एक तीसरा और सबमे बड़ा कारण यह है कि हमारी दृष्टि तो सदा अंग्रेजी के शब्दो और वाक्य-रचना पर रहती है परन्तु न तो उनके ठीक-ठीक समार्थक जानने के ही साधन हमारे पास हैं और न उनके विशुद्ध अर्थ तथा आशय जानने के ही। फल यह होता है कि हमारी भाषा पर अनेक दिशाओ से अनेक प्रकार के आक्षेप होते रहते हैं। कुछ लोग कहते है कि हिन्दी मे बहुत से ऐसे नये और बीहड शब्द बढते जा रहे है कि उनका अर्थ हमारी समझ मे ही नही आता। और कुछ लोग कहते है कि हिन्दी वाक्य-रचना के रूप दिन पर दिन इतने विकट होते जा रहे हैं कि वे जन-साधारण के दैनिक जीवन और बोल-चाल से बहुत दूर होते जा रहे है। परन्तु मेरी समझ मे नये शब्दो का हिन्दी मे आना तो अनिवार्य है ही और उनके अर्थो तथा आशयो से धीरे-धीरे परिचित होने पर आज नही तो कल वे सबके लिए सुबोध हो जाएँगे। परन्तु हमारी वाक्य-रचना पर अँग्रेजी के चक्करदार और परम परकीय प्रयोगो की जो रंगत दिन पर **दिन**

चढ़ती और बढ़ती जा रही है वह चिंतनीय भी है और शोचनीय भी। हमारे एक सुयोग्य मित्र का तो यहाँ तक कहना है कि आज कल की हिंदी को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कोई गोरी मेम भारतीय साड़ी पहनकर और माथे पर बिंदी लगाकर हमारे सामने आ खड़ी हुई है। ऐसे वीभत्स दृश्य के उपस्थित होने का मुख्य कारण यही है कि हम अपनी भाषा की प्रकृति का कुछ भी ध्यान नहीं रखते और आधुनिकता नवीनता तथा प्रगतिशीलता के नाम पर दुनिया भर का कूड़ा करकट बिना समझे बूझे अपने भाषिक क्षेत्र में भरते चलते हैं। हमें अपनी भाषा के इस पक्ष पर बहुत ही गम्भीरता पूर्वक और सजग भाव से विचार करना चाहिए। अपनी भाषा के दिन पर दिन बिगड़ते हुए रूप के सम्बन्ध में जो बातें कुछ विस्तार से ऊपर कही गई हैं वे हमारे लिए दुःख कारक और लज्जाजनक तो हैं ही, साथ ही हिन्दी के समुचित प्रचार में भी बहुत कुछ बाधक हैं। पर्यायकी विषयक जो थोड़ा बहुत काम इधर बारह-पन्द्रह वर्षों में मैंने किया है उसका मुख्य उद्देश्य हिंदी पर से यह कलंक दूर करना ही रहा है। मेरे अब तक के ऐसे कार्यों में जो दोष और भूल रह गई थी उन सबका परिमार्जन और संशोधन करके मैंने यह शब्दार्थ दर्शन प्रस्तुत किया है। इसमें अंग्रेजी शब्दों के लिए उपयुक्त समानक भी बतलाए गए हैं और प्रसंगों के अनुसार ठीक ठीक अर्थ और आशय भी। मैं आशा करता हूँ कि हिंदीवाले अपनी मातृ भाषा के सम्मान की रक्षा के विचार से इस महत्वपूर्ण विषय की ओर प्रवृत्त होंगे और मेरे इस तुच्छ प्रयत्न से थोड़ा बहुत लाभ उठाकर इस कार्य-क्षेत्र का यथेष्ट विस्तार भी करेंगे।

आगे बढ़ने से पहले हिन्दी भाषा के इस विकृत रूप विकास के सम्बन्ध में मैं एक दो बातें बतला देना चाहता हूँ। प्रचार और साहित्य प्रकाशन दोनों की दृष्टि से हिन्दी इधर तीस चालीस वर्षों से बराबर उन्नति करती चली आ रही है। परन्तु यदि भाषिक गति से वर्तमान रूप का विचार किया जाय तो हमें मानना पड़ेगा कि हम बहुत कुछ पिछड़े ही रह हैं आगे नहीं बढ़े हैं। मैं देखता हूँ कि चालीस-पचास वर्ष पहले हिन्दी के सेवकों में जितनी लगन हिन्दी को आगे बढ़ाकर ऊँचा स्थान देने की थी अब उसमें दिन-पर दिन कुछ न कुछ कमी ही होती जा रही है। पुराने हिन्दी लेखकों का एक मात्र उद्देश्य था हिन्दी को उन्नत भाषाओं के समकक्ष बनाना। उन दिनों शिक्षा का प्रचार कम था और इसी कारण लोगों में अंग्रेजियत भी कम ही पाई थी और अनुकरण प्रियता भी। ज्यों ज्यों शिक्षा का प्रचार बढ़ता गया त्यों त्यों हम पर अंग्रेजों का प्रभाव भी बढ़ता गया और ज्यों ज्यों हिन्दी का प्रचार होता

गया त्यो त्यों चारो ओर से लोग आ आकर हिन्दी मे कुछ लिखने की ओर भी प्रवृत्त हुए। इन्ही दोनो बातो के परिणामस्वरूप हमारी भाषा मे भाषिक दृष्टि से कुछ विकृतियाँ उत्पन्न होने लगी। नए लेखको को हिन्दी की प्रकृति और स्वरूप का न तो उतना ज्ञान ही था और न ध्यान ही, जितना हिन्दी के आरम्भिक लेखको को था। इसी के साथ लगी हुई एक और बात भी थी। पुराने हिंदी लेखको मे सेवा का भाव ही प्रधान था, धन या नाम कमाने का नही। परन्तु ज्यो ज्यो दिन बीतते गए, युग अर्थ प्रधान होता गया त्यो त्यों कुछ ऐसे लेखको की बाढ भी आने लगी जिन मे हिन्दी-सेवा का भाव गौण और धन तथा नाम कमाने की प्रवृत्ति प्रबल थी। तिस पर स्वतंत्रता के उपरान्त हिंदी के राजभाषा बन जाने पर तो लोगो का दाम और नाम कमाने का हौसला और भी बढ गया—हिंदी सेवा का भाव कम होने लगा। इसका कारण यह है कि जीवन-संघर्ष दिन पर दिन और भी विकट होता जा रहा है। हो सकता है कि आर्थिक और राज-नीति सघर्षो का प्रभाव हमारी साहित्यिक मनोवृत्ति पर भी पड़ा हो। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र ज्यो ज्यो कलुषित होते जाते हैं त्यों त्यो जन-साधारण के मनोभाव भी बहुत कुछ वैसे ही होते जा रहे हैं। जिस प्रकार भारत के स्वतत्र हो जाने पर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रो मे अधिकाधिक लोग स्वार्थ-साधन के फेर मे पड गए, उसी प्रकार हिंदी के प्रकाशक और लेखक भी अपनी चर्या बदलते गए। बहुत से लोग यह सोचने-समझने लगे कि क्यो न इस अवसर से हम भी थोडा बहुत लाभ उठा ले, और बहती गगा मे हाथ धो ले। फलत: हिन्दी क्षेत्र मे जितने ही नए प्रकाशक आए उनसे कही अधिक लेखक भी। इस प्रकार 'बहुतेरे जोगी, मठ उजाड़' वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। भाषिक और साहित्यिक उन्नति की दृष्टि से ऐसी स्थिति कभी वाछनीय नही हो सकती। उसके सुधार के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी लिखने से पहले लोग हिन्दी भाषा की प्रकृति और स्वरूप का भी कुछ ज्ञान प्राप्त करे और भाषा का स्वरूप स्थिर करने वाले शब्दो का भी। आज भी ऐसे त्यागी और निस्वार्थ महानुभावो की आवश्यकता है जो हिन्दी के आरम्भिक लेखको की तरह हिन्दी-सेवा का कार्य मुख्य समझते हो और उसकी तुलना मे दूसरी बातो की ओर जिनका ध्यान अपेक्षया कम हो।

हमे यह तो मानना पड़ेगा कि वर्तमान काल मे हिन्दी की यथेष्ट उन्नति करने के लिए हमें पाश्चात्य देशो के ज्ञान-विज्ञान का बहुत अधिक अश लेना पडेगा; और उसका अधिकतर भाग अंग्रेजी के माध्यम से ही हमारे यहाँ

आवेगा। एक ओर तो हम ऐसे ज्ञान विज्ञानों का अच्छी तरह अध्ययन करना पडेगा और दूसरी ओर अंग्रेजी के भाषिक गुणों और विशेषताओं का उचित ज्ञान प्राप्त करना पडेगा और ये दोनों काम हो जाने पर हम यह देखना पडेगा कि हम ऐसे नए कामों को किस प्रकार हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप बना सकते हैं। यह सारा ज्ञान विज्ञान तभी हमारे यहाँ के साधारण विद्यार्थियों और जनता के गले के नीचे उतर सकेगा जब वह हिंदी और भारतीय भाषाओं की प्रकृति के अनुरूप होगा और यह अनुरूपता तभी स्थापित हो सकेगी जब हम और सब बातों की ओर से ध्यान हटाकर विशुद्ध सेवा भाव से साहित्य रचना के काम में लगेंगे।

यहाँ हम यह याद रखना चाहिए कि भाषा के शब्द और उनके समास तक तो घिस घिस कर दूसरी भाषा में सहज ही मिल जाते हैं परन्तु अन्यान्य भाषाओं की पद योजना और भाव व्यंजन की प्रणालियाँ दूसरी भाषा में कभी सहज में नहीं खप सकतीं। शब्दों में परकीयता वाला तत्व उतना अधिक नहीं होता जितना पद योजना और भाव व्यंजन की प्रणालियों में होता है। उसका थोड़ा बहुत अंश भले ही दूसरी भाषा में आकर पच जाए, परन्तु सब कुछ ज्यों का त्यों ले लिए जाने पर भाषा इतनी परकीय और दुर्बोध हो जाती है कि जन साधारण उसे समझ ही नहीं पाते। दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ अंग्रेजी पद योजनाएँ और भाव व्यंजन प्रणालियाँ बिना सोचे समझे ग्रहण करते चलने की प्रवृत्ति दिन पर दिन बढती जाती है जो हमारी भाषा का स्वरूप ही बदल डालना चाहती है। यदि हम अभी से यह प्रवृत्ति नहीं रोकेंगे तो हिंदी विरोधियों को अपना दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करने के लिए बहुत बड़ा शस्त्र मिल जाएगा।

यहाँ हिंदी विरोधियों की चर्चा आ गई है, इसलिए इस सम्बन्ध में भी एक दो बातें बतला देना आवश्यक जान पडता है। इधर जब से भारतीय संसद में राजभाषा सम्बन्धी विधेयक उपस्थित करने की बात चली तभी से देश के कुछ भागों में इसके पक्ष और विपक्ष में कई प्रकार के आन्दोलन और उपद्रव होने लगे जिन्होंने बहुत कुछ अराजकता का रूप धारण कर लिया। हिन्दी भाषी यह कहने लगे कि चाहे जैसे हो हिन्दी को सारे भारत में और सभी कामों में मुख्य स्थान प्राप्त हो। उधर कुछ ऐसे दक्षिण भारतीय राज्यों में भी इसकी विकट प्रतिक्रिया और विरोध होने लगा जिनमें इधर पचासों वर्षों से हिन्दी का यथेष्ट प्रचार होता आ रहा था। परिणाम यह हुआ कि हिंदी के विरोधियों की संख्या बढ़ने लगी और हिन्दी प्रचार के काम में

बहुत बड़ी रुकावट पड गई। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो दोनो ही पक्ष किसी न किसी रूप मे भूल कर रहे थे। हिन्दी भाषी जनता और राज्यो का सबसे बड़ा दोष यह था कि हिन्दी के राजभाषा घोषित होने पर आरम्भ मे ही उन्होने उसके प्रचलन और प्रचार के लिए कोई विशेष प्रयत्न नही किया और अठारह-बीस वर्ष यो ही गँवा दिये। यदि उसी समय भारत सरकार और हिन्दी भाषी राज्य हिंदी के प्रचार के लिए ठीक तरह से प्रयत्न आरम्भ कर देते तो अब तक हिदी कहाँ से कहाँ पहुँच गई होती। उधर उतना समय बीत जाने पर अनेक राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल गई और हिंदी विरोधियो को सिर उठाने का अच्छा अवसर मिल गया। हिंदी भाषियो को अब भी यह सोचना चाहिए था कि जहाँ इतने दिन बीत गये वहाँ अब और दस-पाँच वर्ष भी इसी तरह शातिपूर्वक बीतने दिये जाएँ और इस बीच मे हिंदी को सब प्रकार से योग्य तथा समर्थ बनाया जाए। इन दस-पाँच वर्षो मे दक्षिण भारत मे हिंदी का प्रचार और भी जोरो से चल पडता और नई पीढी मे उसके विरोधियो की संख्या बहुत कम हो जाती और समर्थको की सख्या बहुत कुछ बढ़ जाती। परन्तु जब हिंदी वाले अपनी भाषा को सारे राज्य मे सर्वोच्च स्थान दिलाने के लिए अड गए, तब हिंदी विरोधियो को भी सिर उठाने का अच्छा अवसर मिला। इस प्रतिक्रिया का जो दुष्परिणाम हुआ वह हम सबके सामने है।

फिर भी हमे ऐसी अडगेबाजी और बाधाओ से घबराना नही चाहिए। कारण यह है कि हिंदी मे कुछ ऐसी ईश्वर-दत्त संजीवनी शक्ति अतर्हित है जो उसे बराबर आगे बढाती चली आई है और अब भी बढाती चलेगी। मुसलमानी और अग्रेजी शासनो मे उसे दबाने और रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए; फिर भी वह दबी या मरी नही बल्कि जन-साधारण मे बराबर चली और बढती ही रही। उक्त स्थितियो की तुलना मे आज का हिन्दी विरोधी आदोलन बहुत कुछ अल्पकालिक और क्षणिक ही समझा जाना चाहिए। हिंदी का वर्तमान विरोध विशुद्ध राजनीतिक है और अधिकार तथा नौकरियाँ पाने की आकाक्षाओ पर ही आश्रित है। इस विरोध का बहुत सा अश विशुद्ध स्वार्थ-परक है, इसीलिए वह अधिक दिनो तक नही चल सकता। अब तो हिंदी वालो का पहला कर्तव्य यही है कि वे विरोधियो का भ्रम दूर करके उन्हे आश्वस्त करने और हिंदी का समर्थक बनाने का प्रयत्न करे। हिन्दी विरोधियो को भी ठडे दिल से यह सोचना और समझना चाहिए कि कोई परकीय या विदेशी भाषा कभी किसी दूसरे देश या राज्य की राजभाषा

आवेगा। एक ओर तो हम ऐसे नान विज्ञानो का अच्छी तरह अध्ययन करना पडेगा और दूसरी ओर अंग्रेजी के भाषिक गुणो और विशषताओ का उचित ज्ञान प्राप्त करना पडेगा और ये दोनो काम हो जान पर हम यह देखना पडेगा कि हम ऐसे नए कामो को किस प्रकार हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप बना सकते हैं। यह सारा ज्ञान विज्ञान तभी हमारे यहाँ के साधारण विद्यार्थिया और जनता के गले के नीचे उतर सकेगा जब वह हिन्दी और भारतीय भाषाओ की प्रकृति के अनुरूप होगा और यह अनुरूपता तभी स्थापित हो सकेगी जब हम और सब बातो की ओर से ध्यान हटाकर विशुद्ध सेवा भाव से साहित्य रचना के काय म लगग।

यहाँ हम यह याद रखना चाहिए कि भाषा के शब्द और उनके समा थक तो घिस पिस कर दूसरी भाषा मे सहज ही मिल जाते हैं परन्तु अन्या य भाषाओ की पद याजना और भाव व्यजन की प्रणालियाँ दूसरी भाषा म कभी सहज मे नहीं खप सकती। शब्दो मे परकीयता वाला तत्व इतना अधिक नही होता जितना पद याजना और भाव व्यजन की प्रणालिया म होता है। उसका थोडा बहुत अश भले ही दूसरी भाषा म आकर पच जाए परन्तु सब कुछ ज्यो का त्यो ले लिए जाने पर भाषा इतनी परकीय और दुर्बोध हो जाती है कि जन साधारण उसे समझ ही नही पाते। दुर्भाग्यवश हमारे यहाँ अंग्रेजी पद याजनाए और भाव व्यजन प्रणालियाँ बिना सोचे समझे ग्रहण करते चलने की प्रवृत्ति दिन पर दिन बढती जाती है जो हमारी भाषा का स्वरूप ही बदल डालना चाहती है। यदि हम अभी से यह प्रवृत्ति नही रोकेंगे तो हिंदी विरोधियो को अपना दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करने के लिए बहुत बडा शस्त्र मिल जाएगा।

यहाँ हिंदी विरोधिया की चर्चा आ गइ है इसलिए इस सम्ब ध म भी एक दो बातें बतला देना आवश्यक जान पडता है। इधर जब स भारतीय ससद म राजभाषा सम्बन्धी विधेयक उपस्थित करने की बात चली तभी स देश के कुछ भागा म इसके पक्ष और विपक्ष म कइ प्रकार के आन्दोलन और उपद्रव होन लगे जिन्होने बहुत कुछ अराजकता का रूप धारण कर लिया। हिन्दी भाषी यह कहन लगे कि चाहे जसे हो हिन्दी को सारे भारत म और सभी कामो म मुख्य स्थान प्राप्त हो। उधर कुछ एसे दक्षिण भारतीय राज्या म भी इसकी विकट प्रतिक्रिया और विरोध होने लगा जिनम इधर पचीसा वर्षो से हिन्दी का यथष्ट प्रचार होता आ रहा था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी के विरोधिया की सख्या बढने लगी और हिन्दी प्रचार के काम म

वहुत वडी रुकावट पड़ गई। यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो दोनों ही पक्ष किसी न किसी रूप मे भूल कर रहे थे। हिन्दी भापी जनता और राज्यों का सबसे वडा दोप यह था कि हिन्दी के राजभापा घोपित होने पर आरम्भ मे ही उन्होने उसके प्रचलन और प्रचार के लिए कोई विशेप प्रयत्न नही किया और अठारह-वीस वर्प यो ही गँवा दिये। यदि उसी समय भारत सरकार और हिन्दी भापी राज्य हिंदी के प्रचार के लिए ठीक तरह से प्रयत्न आरम्भ कर देते तो अव तक हिंदी कहाँ से कहाँ पहुँच गई होती। उधर उतना समय वीत जाने पर अनेक राजनीतिक परिस्थितियाँ वहुत कुछ वदल गईं और हिंदी विरोधियो को सिर उठाने का अच्छा अवसर मिल गया। हिंदी भापियो को अव भी यह सोचना चाहिए था कि जहाँ इतने दिन वीत गये वहाँ अव और दस-पाँच वर्ष भी इसी तरह शातिपूर्वक वीतने दिये जाएँ और इस वीच मे हिंदी को सव प्रकार से योग्य तथा समर्थ वनाया जाए। इन दस-पाँच वर्पो मे दक्षिण भारत मे हिंदी का प्रचार और भी जोरो से चल पडता और नई पीढी मे उसके विरोधियो की सख्या वहुत कम हो जाती और समर्थको की सख्या वहुत कुछ वढ जाती। परन्तु जव हिंदी वाले अपनी भापा को सारे राज्य मे सर्वोच्च स्थान दिलाने के लिए अड गए, तव हिंदी विरोधियों को भी सिर उठाने का अच्छा अवसर मिला। इस प्रतिक्रिया का जो दुष्परिणाम हुआ वह हम सवके सामने है।

फिर भी हमे ऐसी अडगेवाजी और वाधाओ से घवराना नही चाहिए। कारण यह है कि हिंदी मे कुछ ऐसी ईश्वर-दत्त सजीवनी शक्ति अतर्हित है जो उसे वरावर आगे वढाती चली आई है और अव भी वढाती चलेगी। मुसलमानी और अग्रेजी शासनो मे उसे दवाने और रोकने के अनेक प्रयत्न किए गए; फिर भी वह दवी या मरी नही वल्कि जन-साधारण मे वरावर चली और वढती ही रही। उक्त स्थितियो की तुलना मे आज का हिन्दी विरोधी आदोलन वहुत कुछ अल्पकालिक और क्षणिक ही समझा जाना चाहिए। हिंदी का वर्तमान विरोध विशुद्ध राजनीतिक है और अधिकार तथा नौकरियाँ पाने की आकाक्षाओ पर ही आश्रित है। इस विरोध का वहुत सा अश विशुद्ध स्वार्थ-परक है, इसीलिए वह अधिक दिनो तक नही चल सकता। अव तो हिंदी वालो का पहला कर्तव्य यही है कि वे विरोधियो का भ्रम दूर करके उन्हे आश्वस्त करने और हिंदी का समर्थक वनाने का प्रयत्न करें। हिन्दी विरोधियो को भी ठडे दिल से यह सोचना और समझना चाहिए कि कोई परकीय या विदेशी भापा कभी किसी दूसरे देश या राज्य की राजभापा

नहीं हो सकती। किसी देश या राज्य की जनता पर परकीय या विदेशी भाषा लादने के दिन अब दूर चले गये। यह साधारण सी सैद्धांतिक बात हिंदी विरोधी भी अवश्य अपने मन मे समझते हैं पर इस समय वे केवल स्वार्थवश उसका विरोध करने पर उतारू हुए हैं। इसी लिए मैं इस आंदोलन को अल्पकालिक और क्षणिक समझता हूं।

एक बात और है। मैं देखता हूं कि हिंदी को अपनाने की प्रवृत्ति बिलकुल अनजान मे आप से आप निरंतर बढ़ती चल रही है। युरोप और अमेरिका के बहुत से विश्वविद्यालयो म हिंदी का नियमित और व्यवस्थित अध्ययन जोरो से होने लगा है अर्थात् विदेशी भी इसका महत्व समझने लगे हैं। यदि हम अपने देश म ही देखें तो यहाँ के अनेक भिन्न भाषा भाषी प्रांतो के लोग भी किसी न किसी रूप म हिंदी को अपनाते चल रहे हैं। आज से दस बीस वर्ष पहले अनेक ऐसी आंचलिक और स्थानिक बोलियाँ और भाषाए थी जिन पर हिंदी का कदाचित् कुछ भी प्रभाव नहीं था। परंतु आज इन बोलियो और भाषाओ पर भी हिंदी का थोडा बहुत प्रभाव पडने लगा है, और ऐसा जान पडता है कि यह प्रवाह दिन पर दिन बढता ही जाएगा। पंजाबी बुंदेली, मैथिली आदि भाषाओ म हिंदीपन पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ता हुआ दिखाई देता है। और तो और पंजाबी के अनुकरण पर पश्चिमी पाकिस्तान की उर्दू पर भी उसका प्रभाव पडने लगा है। यों तो उर्दू का सारा ढांचा हिंदी की नींव पर ही खड़ा है और उसके असली नब्बे प्रतिशत शब्द मूलत हिंदी के ही हैं, फिर भी अब उसमें हिंदी के ऐसे नये शब्दों का भी समावेश होने लगा है जिनके समार्थक उनके यहाँ नहीं हैं अथवा होने पर भी सुबोध नहीं हैं। पश्चिमी पाकिस्तान के रेडियो म अब जनता निजी लोकगीत, समाजी सरीखे अनेक ऐसे शब्दों का दिन पर दिन बढ़ता हुआ प्रचलन मेरे इस कथन का अच्छा प्रमाण है। अब तो उर्दू वाले सामाजिकता की जगह सामाजियत' और 'साम्राज्यवाद की जगह 'सामराजियत' सरीखे शब्द भी गढ़ने और चलाने लगे हैं। अत हिंदी वालों को निराश या हतोत्साह नहीं होना चाहिए बल्कि हिंदी की उन्नति और पुष्टि के प्रयत्नों म अधिक मनोयोगपूर्वक लगे रहना चाहिए। हिंदी अभी बहुत दिनों तक जीवित रहेगी और संसार की परम उन्नत भाषाओं म स्थान प्राप्त करके सार्व कल्याण के बहुत काम करेगी।

यों कहने के लिए हिंदी हमारी राज भाषा हो गई है, परन्तु इस क्षेत्र मे अभी तक उसकी प्रगति बहुत ही असंतोषजनक और प्राय नहीं के समान

हुई है। पहला कारण तो यह है कि इधर कई पीढियो से अंग्रेजी ने हमारे मस्तिष्क मे वहुत अधिक घर कर लिया है। दूसरे हिन्दी भाषी राज्यो ने अभी हाल तक हिन्दी को राज्य के कार-वार मे स्थान देने का कोई उल्लेख, योग्य और प्रत्यक्ष कार्य नही किया था। भारत सरकार का शिक्षा विभाग इधर पारिभाषिक शब्द गढने मे ही व्यस्त रहा है, हिंदी के प्रचलन और प्रचार मे विशेष सहायक नही हुआ है।

इधर जव केन्द्रीय ससद मे नया भाषा विधेयक पारित हुआ है और दक्षिण भारत मे उसका वहुत वडा विरोध हुआ है; तव से अनेक हिन्दी भाषी राज्यो की भी आँखे खुल गयी है। और वे अपने राज-कार्यो मे हिन्दी को समुचित स्थान देने की व्यवस्था करने लगे हैं। हमे आशा करनी चाहिए कि यह क्रम वरावर तो चलता रहेगा ही, वहुत कुछ आगे भी वढता चलेगा। विश्वविद्यालयो आदि मे उच्च कक्षाओ की शिक्षा मातृ-भाषा मे देने का जो आयोजन आरम्भ हुआ है, वह भी प्रकारान्तर से हिन्दी के प्रचार मे वहुत कुछ सहायक होगा। इन परिस्थितियो को देखते हुए मैं समझता हूँ कि हिन्दी शव्दो के अर्थापन और आर्थी सीमा-निर्धारण की आवश्यकता और भी वढ गई है।

यहाँ मैं एक वात और कह देना चाहता हूँ। हमारे यहाँ आरम्भ से ही सगीत और साहित्य दोनो का वहुत कुछ समान आदर होता आया है और दोनो को समान महत्व का समझा जाता है। भगवती सरस्वती का वीणा-पुस्तक-धारिणी वाला रूप इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हमारे यहाँ सगीत का जितना गहन और सूक्ष्म विवेचन हुआ है, उतना ही साहित्य का भी हुआ है। फिर भी आज-कल की नवीन परिस्थितियो मे पाश्चात्य देशो ने शाब्दिक क्षेत्र मे जितनी उन्नति की है उतनी ही उन्नति करना हमारे लिए भी अनिवार्य होता जा रहा है। सगीत मे स्वरो और उनके अशो के रूप मे श्रुतियो की तो प्रधानता है ही,* एक एक

* सगीत मे सातो स्वरो मे से हर एक के कई-कई खण्ड या भाग निरूपित है—किसी के दो, किसी के तीन और किसी के चार। सव मिलाकर सातो स्वरो की २२ श्रुतियाँ है। परन्तु उच्चारण के विचार से इनमे इतने कम और सूक्ष्म पार्थक्य या अन्तर है कि सव लोग न तो उन्हे सहज मे पकड ही पाते हैं और न समझ ही सकते हैं। हाँ सगीत के परम रसिक और प्रशिक्षित कान ही उन्हे सुन और समझ सकते हैं। इसी लिए उन्हे "श्रुति" कहते हैं।

मात्रा और उसके छोटे छोटे खडो या विभागो का भी पूरा पूरा ध्यान रखा जाता है। ठीक यही बात भाषा के शब्दो के सम्बन्ध म भी है। उनम भी एक एक मात्रा और बिन्दु विसग तक का स्वतन्त्र महत्व और स्थान होता है। हम अपनी भाषा के सभी शब्दो का इसी दृष्टि स विशेष विचार और विवेचन करना चाहिए। ऐसे विवेचन के क्षेत्र म हम जितने ही अग्रसर होंगे उतनी ही श्रष्ठता हमारी भाषा म भी और साहित्य म भी आवेगी।

भाषिक दृष्टि से हिन्दी की उक्त आवश्यकताए पूरी हो जान पर अनेक प्रकार के और बहुत बडे लाभ होंगे। अभी कुछ दिन पहले (फरवरी ६५ म और उसके बाद) दक्षिण भारत म विशुद्ध राजनीतिक और स्वार्थिक उद्देश्यो की सिद्धि क लिए अंगरजी के समथको न हिन्दी के विरोध का जो आन्दोलन चलाया था उसके प्रसग म प्राय कुछ बडे बडे लोग यह भी कहत थे कि हिन्दी जसी अ_नत और अविकसित भाषा को अगरेजी का स्थान न तो मिल ही सकता है और न मिलना ही चाहिए। १६ दिसम्बर १९६७ को जब भाषा विधेयक पर अंतिम विचार हो रहा था तब द्रविड मुनेत्र कडगम क एक सदस्य न लोकसभा म हिन्दी को घटिया भाषा कहा था। हो सकता है कि उन्होने अपनी मातृभाषा की तुलना म हिन्दी को घटिया समझा हो। इसी प्रकार की कुछ और बातें भी कुछ लोग समय समय पर कहते आए हैं। हम अब उनका मुँह बन्द करन का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। मरा यह दृढ़ विश्वास है कि जब हम भाषिक दृष्टि स हिन्दी की उक्त दोनो मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर लग तो किसी को यह कहन का साहस नही होगा कि हिन्दी अनुन्नत और अविकसित भाषा है। आज कल के सभ्य और सुशिक्षित देशो और समाजो म वस्तुत वही भाषा उन्नत और विकसित मानी जाती है जिसक प्राय सभी प्रमुख शब्दो का पूरा पूरा अर्थी विवेचन भी हो और पर्यायो क पारस्परिक अन्तरो का ठीक ठीक निरूपण और सीमाकन भी हो। इन विवचनों स दूसरा बडा लाभ यह होगा कि [illegible] पीढ़ियो को एक ओर तो पुष्ट और प्रौढ़ भाषा लिखन की [illegible] मिलगी और दूसरी ओर उन्हें बहुत नया दृष्टिकोण भी प्राप्त होगा जिसस व [illegible] के अर्थों पर [illegible] और [illegible] पर नये ढंग स विचार करना सीखेंगे। तीसरा लाभ यह होगा कि हम [illegible] म हम यह भी निश्चित कर सकेंगे कि हमारे शब्दो का अर्थी विकास कब हुआ है और उनका ऐतिहासिक स्वरूप क्या है। चौथा और सबस बडा लाभ यह होगा कि अन्य अन्य भाषियों तथा विदेशियों म हम हिन्दी का प्रचार [illegible] म और

अधिक सुगमतापूर्वक कर सकेंगे। इस प्रकार के हमारे सब विवेचन भाषा-तत्त्वज्ञों या भाषा-शास्त्रियों के लिए बहुत सी आवश्यक और उपयोगी सामग्री भी प्रस्तुत कर सकेंगे और भारतीय भाषाओं के लिए एक नया आदर्श भी स्थापित कर सकेंगे। इन्हीं सब कारणों से मेरा यह विनम्र आग्रह और निवेदन है कि हिन्दीवालों को तत्काल इन कामों की ओर ध्यान देना चाहिए।

वर्तमान युग अनुसंधानों का है। सभी क्षेत्रों, सभी दिशाओं और सभी विषयों में बहुत बड़े-बड़े अनुसंधान हो रहे हैं, और हर साल उनमें से प्रत्येक के लिए लाखों-करोड़ों रुपए व्यय किये जाते हैं और नये विद्यार्थियों को उनका विशेषज्ञ बनाने का प्रयत्न किया जाता है। यहाँ तक कि कीड़े-मकोड़ों और पेड़-पौधों तक के अङ्गों और उपांगों के अध्ययन में भी अच्छे-अच्छे विद्वान् अपना सारा जीवन व्यतीत कर देते हैं और अपने निकाले हुए निष्कर्ष से दिन पर दिन ज्ञान का भंडार बढ़ाते चलते हैं। और एक हम हिन्दीवाले हैं जो अपनी भाषा और उसका स्वरूप प्रस्तुत करनेवाले शब्दों के अर्थों, भावों और व्यंजना-शक्तियों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता नहीं समझते। मेरी हार्दिक इच्छा है कि हिन्दी में शब्दार्थ-विवेचन का यह काम वैज्ञानिक ढंग से, व्यवस्थित रूप में और शास्त्रीय स्तर पर चलाया जाय—इसे 'शब्दार्थ-दर्शन' या 'शब्दार्थ-विज्ञान' का पद प्राप्त हो।

मैं अपने जीवन व्यापी अनुभव से यह बात अच्छी तरह समझता हूँ कि अभी इस तरह के कामों का आदर करने और महत्त्व समझनेवाले लोग बहुत थोड़े—प्रायः उँगलियों पर ही गिने जाने भर को हैं। ऐसे विद्वान् हिन्दी की वर्तमान भाषिक दुरवस्था से चिन्तित भी हैं और दुःखी भी। श्री डा० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने एक अवसर पर अपने एक पत्र में मुझे लिखा था—"आज कल अधिकतर लोग यहाँ तक कि कुछ लेखक भी संस्कृत शब्दों का बहुत ही असावधानी से प्रयोग करते हुए उनमें नये-नये अर्थों का आरोप करते हैं। बहुत से लोग 'हेतु' और 'जन्य'* तक में अन्तर नहीं

*'हेतु' का तो हमारे यहाँ भी एक अर्थ लिए या वास्ते है ही। परन्तु बँगला में 'जन्य' का भी एक अर्थ लिए या वास्ते है। जैसे—इहार जन्य=इसके लिए। छेलेर जन्य=लड़के के लिए। फिर भी प्रयोग और विवक्षा के विचार से 'हेतु' और 'जन्य' में कुछ सूक्ष्म अन्तर है। डा० चाटुर्ज्या इन्हीं अन्तरों का ध्यान रखते हुए इस बात की ओर संकेत करते हैं कि लोग यह अन्तर न समझकर हेतु की जगह जन्य और जन्य की जगह हेतु बोल और लिख जाते हैं। उनकी यह शिकायत बँगला वालों के सम्बन्ध में ही है, हिन्दी वालों के सम्बन्ध में नहीं। क्योंकि हिन्दी में 'जन्य' का अर्थ लिए या वास्ते है ही नहीं।

करते और एक की जगह दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं। भाषा और उसकी शैली का सौन्दर्य वस्तुतः ऐसे ही शब्दों के सूक्ष्म अन्तरों पर आश्रित होता है। संस्कृत शब्दों का हिन्दी में मनमाने ढंग से जो प्रयोग होता है उसे देखकर मैं बहुत दुःखी होता हूं। सन् १९६८ के आरम्भ में संसद के दोनों सदनों की सम्मिलित बैठक में राष्ट्रपति महोदय के भाषण का जो हिन्दी अनुवाद हुआ था उसमें यह देखकर मुझे बहुत आघात लगा कि deficit financing का अनुवाद 'हीन वित्त प्रबन्धन' और critical का अनुवाद 'महत्त्वपूर्ण' किया गया था। जहाँ हमें 'उपकरण' या 'उपादान' का प्रयोग करना चाहिए वहाँ हम 'तत्त्व' का प्रयोग कर जाते हैं और कह चलते हैं—हलुए में तीन तत्त्व (घी, सूजी और चीनी) हैं।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि भाषिक दृष्टि से हिन्दी का स्वरूप स्थिर करने के लिए छोटे और बड़े सभी प्रकार के शब्दों का समुचित आर्थी विवेचन होना चाहिए। जो लोग सब प्रकार के स्वार्थों का परित्याग करके ऐसे कामों में लगेंगे, भले ही वे अपने जीवन काल में विशेष आदर, धन और सम्मान न प्राप्त कर सकें, फिर भी यह निश्चित है कि आनेवाली पीढ़ियाँ अपने आपको सबसे अधिक उन्हीं का ऋणी मानेंगी, उनकी कृतियाँ स्थायी होंगी और साहित्य में उनका नाम अमर होगा।

इन्हीं सब बातों का ध्यान रखते हुए मैं अब हिन्दी शब्दों की आर्थी व्याख्या पर और भी अधिक जोर देना चाहता हूं। इस पुस्तक के दूसरे खण्ड में मैंने हिन्दी के कुछ साधारण शब्दों का भी इसलिए विस्तृत विवेचन किया है कि अन्यान्य भाषा-भाषियों और विशेषतः विदेशी विद्यार्थियों को हिन्दी शब्दों के सब अङ्गों का अच्छी तरह परिचय हो सके। परन्तु एक तो वस्तुतः कुछ अकेला होने पर भी और दूसरे यह बिलकुल नए ढंग का काम होने के कारण मैं उतना आगे नहीं बढ़ सका हूँ, जितना बढ़ना चाहता था। तिसपर इधर वर्षों से मेरा शरीर भी और स्वास्थ्य भी अस्वस्थ रहता और दिन पर दिन जवाब देता चलता है। तो भी जो कुछ अक्षत पुष्प मुझसे हो सके हैं वे मैं माता भारती के चरणों में अर्पित करता हुआ आशा करता हूं कि हिन्दी के कुछ कमठ विद्वान इस काम की ओर भी प्रवृत्त होंगे और इसे यथासाध्य आगे बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सरस्वती की सच्ची और सात्विक सेवा तभी सम्पन्न होती है जब हम उसकी पूजन-सामग्री में तपस्या और त्याग के सौरभ से युक्त कुछ सुमन भी सम्मिलित करें। मातृ-भाषा ऐसे ही सच्चे सेवकों की प्रतीक्षा कर रही है।

२

शब्द और अर्थ

इन्द्रादयोपि यस्यात न ययुः शब्द वारिधे

शब्द का महत्त्व और महिमा

ससार के सभी लोग सदा आपस मे बातचीत करते और सैकडो-हजारों शब्दो का नित्य व्यवहार करते है। पर उनमे से कितने ऐसे है जो अपने नित्य व्यवहार के शब्दो का ठीक-ठीक अर्थ और महत्त्व समझते हो। बोलना-चालना भी हम लोगो के लिए उठने-बैठने, खाने-पीने आदि की तरह इतना सामान्य हो गया है कि शब्दो के महत्त्व पर हम जल्दी ध्यान देने की आवश्यकता ही नही समझते। अशिक्षितो की बात तो जाने दीजिए अच्छे शिक्षितो से भी यदि आप यह जानना चाहे कि किसी शब्द का ठीक अर्थ, आशय या महत्त्व क्या है तो कदाचित् ही वे पूरी तरह से आपका समाधान कर सके। हाँ, यदि आप किसी अच्छे कोशकार, दार्शनिक, भाषाविद् या वैयाकरण से शब्द का महत्व जानना चाहे तो वह अवश्य आपको इस सम्बन्ध मे बहुत सी बाते बतला सकेगा। परन्तु हमारी समझ मे प्रत्येक शिक्षित का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह शब्द का महत्त्व जाने और समझे, क्योकि शब्द ही हमारे जीवन के समस्त कार्यों और व्यवहारो के सिवा हमारे ज्ञान-विज्ञान का भी और हमारी सस्कृति का भी मुख्य और मूल आधार है। यदि मानव समाज मे वाक् शक्ति या वाचा न होती तो मनुष्यो का जीवन जड़ पदार्थो के जीवन से कुछ भी भिन्न न होता और यदि पशु पक्षियो मे भी अपनी-अपनी बोलियाँ न होती तो उनके जीवन मे क्या रस रह जाता? शब्दहीन सृष्टि की कल्पना मात्र से ही हम घबरा और डर जाते है।

यह तो हुई शब्द के महत्व की बात। अब शब्द की महिमा देखिए जो उस महत्व से बहुत अधिक बढी-चढी है। हमारे शास्त्रकारो ने माना है कि सृष्टि की उत्पत्ति शब्द से ही हुई है। ईसाई, इस्लाम आदि धर्मो मे भी प्राय. ऐसा ही कहा गया है। हमारे यहाँ के उपनिषदो, ब्राह्मण-ग्रन्थो और श्रुति-स्मृतियो मे अनेक स्थलो पर शब्द की महिमा का उल्लेख हुआ है और प्राचीनकवियो, दार्शनिकों तथा विद्वानों ने भी शब्द की बहुत कुछ महिमा गाई

है। शब्द नित्य तो माना ही गया है वह पृथ्वी को धारण करनेवाला भी कहा गया है। हमारे प्राचीन ऋषियो का मत है कि शब्द ही ब्रह्म है और यदि हम ब्रह्म रूप म उसकी उपासना करे तो हम अलौकिक शक्ति प्राप्त हो सकती है। इस शब्द ब्रह्म की कृपा से आज तक ससार ने जो उन्नति की है वह तो हमारे सामने है ही, पर हम यह भी देखते हैं कि हमारा सारा जीवन और सारा ज्ञान विज्ञान दिन पर दिन इस शब्द ब्रह्म के प्रसाद से और भी अधिक उन्नत तथा समृद्ध होता जा रहा है। आज-कल कई अतरिक्ष यान दिन रात पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे हैं और वहाँ से अतरिक्ष तथा वातावरण से सम्बध रखनेवाली बहुत सी सूचनाए पृथ्वी पर भेज रहे हैं। यहाँ तक कि कुछ अतरिक्ष यान चद्रमा तक भी जा पहुँचे हैं और वहाँ की बहुत सी बातो से हमे परिचित कराने लगे हैं। यह ठीक है कि इस प्रकार की सूचनाएँ हमारे पास सकेत रूप म ही आती हैं परन्तु हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि तात्त्विक दृष्टि से सकेत का अन्तर्भाव भी शब्द म ही होता है--दोनो का मुख्य काम एक स्थान से कोई भाव विचार या सूचना दूसरे स्थान तक पहुँचाना ही होता है। यह है उस शब्द की महिमा जिसके सम्बध म अभी तक हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित रहा है परन्तु जो वस्तुत बहुत अधिक विस्तृत होना चाहिए।

शब्दो और अर्थो का सम्बन्ध

शब्दो और अर्थो के सम्बन्ध म विशेष बातें जानने से पहले सक्षेप मे यह समझ लेना अच्छा होगा कि शब्द किसे कहते हैं और अर्थ किसे। इसी से यह पता चल जाएगा कि शब्द कितने प्रकार के होते हैं और अर्थ कितने प्रकार के। इससे पाठक सहज म यह समझ सकेंगे कि शब्द कैसे बनते हैं और उनम से अर्थ कैसे निकलते हैं अथवा उनम अर्थो का आरोप और विकास कैसे होता है। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जायगा कि शब्दो और अर्थो म पारस्परिक सम्बन्ध क्या है अथवा उस सम्बन्ध का स्वरूप क्या है।

शब्द की व्यापक और सरल परिभाषा है—वह जो कुछ हम सुनाई दे। हम कानो म जो कुछ सुनाई पडता है वह भी शब्द है और पशु पक्षियो आदि का जो कुछ सुनाई पडता है वह भी। किसी वृक्ष के टूट कर गिरने पहाडो से पत्थर के लुढकने, नदियो के जोरो से बहने हवा के तेजी से चलने या बादलों के गरजने से जो शब्द उत्पन्न होते हैं वे पशु-पक्षियो को भी बहुत कुछ उसी प्रकार सुनाई पडते हैं जिस प्रकार हमें। इसी आधार पर हमारे शास्त्रकारों ने इसे श्रवणेन्द्रिय या कानो का विषय माना है।

शब्द उत्पन्न होते है उक्त प्रकार की उन घटनाओ से जो हमसे थोड़ी या बहुत दूरी पर घटित होती है। परन्तु उनके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले शब्द हमारे कानो तक पहुँचते है, बीच की दूरी पार करके। यह बीचवाली दूरी या अवकाश दार्शनिक परिभाषा मे आकाश कहलाता है। होता यह है कि उक्त प्रकार की घटनाओ के फलस्वरूप वायु मे अनेक प्रकार के और बहुत से कप होते है और वही कप जब वायु की तरंगो के सहारे कानों तक पहुँचते है तब हमे एक विशिष्ट प्रकार का बोध कराते है। यह बोध उसी शब्द का परिणाम होता है जो हमसे कुछ दूरी पर उक्त प्रकार की घटनाओ के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। उस दूरी से यह शब्द चलकर बीच वाले अवकाश या आकाश को पार करके हमारे कानो तक पहुँचता है। इसी लिए शास्त्रकारो ने इसे आकाश नामक तत्व का गुण माना है।

शब्द मूलत. दो प्रकार के होते है—अनुच्चरित और उच्चरित। नदियो, पर्वतो, वृक्षो आदि की विभिन्न क्रियाओ से उत्पन्न होनेवाले शब्द अनुच्चरित कहलाते है। कारण यह है कि ऐसे शब्द प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होते है, किसी प्रकार के कठ्य उच्चारण या प्राणी के प्रयत्न के फलस्वरूप नही। यदि किसी प्राणी के कही गिरने से कोई शब्द उत्पन्न हो तो वह भी अनुच्चरित ही कहलावेगा, 'उच्चरित' नही क्योकि ऐसे शब्द का कठ-स्वर से कोई सम्बन्ध नही होता। पशु-पक्षियो, मनुष्यो आदि के कठ से और उनके चेतन प्रयत्न के फलस्वरूप जो शब्द होते है वे उच्चरित कहलाते हैं, अर्थात् ऐसे शब्द जिनका किसी प्राणी ने अपने कठ से उच्चारण किया हो।

जिन वाक्-ध्वनियो के द्वारा हम अपने विचारो का सफलतापूर्वक, सम्प्रेषण करते है, उन्हे उच्चरित ध्वनियाँ कहते है। केवल कण्ठ से निकली होने के कारण कोई ध्वनि समूह तब तक उच्चरित नही कहलाता जब तक उसके मूल मे कोई इच्छा-जन्य प्रयत्न न हो और जो उद्दिष्ट अभिप्राय से युक्त न हो। यदि कोई सोया हुआ मनुष्य खर्राटे भर रहा हो तो उसके खर्राटो की ध्वनि कण्ठ से निकली हुई होने पर भी इसलिए उच्चरित नही कही जायगी कि उसके मूल मे न तो कोई इच्छा जन्य प्रयत्न होना है और न इसका उद्देश्य किसी अभिप्राय का सम्प्रेषण होता है।

उच्चरित शब्दो के भी दो भेद होते है—अव्यक्त और व्यक्त। यदि कोई मनुष्य परिहास मे किसी कुत्ते के भूँकने या घोडे के हिनहिनाने का-सा शब्द करे तो वह भी उक्त कारणो से अव्यक्त ही कहा जायगा। व्यक्त शब्दो मे मुख्यत: वही शब्द आते हैं जिनका उच्चारण मनुष्य अपने कठ के कुछ विशिष्ट

प्रकार के प्रयत्नों से और अपने मन का कोई आशय या भाव दूसरों पर व्यक्त करने के लिए करता है। अतः जो आशय या भाव प्रकट करानेवाले और दूसरों को समझ में आ सकनेवाले शब्द ही व्यक्त कहलाते हैं। इनसे भिन्न और सब प्रकार के शब्द अव्यक्त माने जाते हैं। कुछ लोगों ने अव्यक्त शब्दों को 'निरर्थक' शब्द, और व्यक्त शब्दों को सार्थक शब्द भी कहा है। परन्तु ऐसा कहना या मानना हमारी समझ में ठीक नहीं है। कुत्तों, चिड़ियों, बंदरों आदि के शब्द भले ही हमारे लिए निरर्थक हों परन्तु स्वजातीय कुत्तों, चिड़ियों, बंदरों आदि के लिए वे अवश्य सार्थक होते हैं क्योंकि उनके द्वारा वे अपने मन का कोई आशय या भाव अपने वर्ग के दूसरे प्राणियों तक पहुँचाते हैं, और वे दूसरे प्राणी वह आशय या भाव ठीक तरह से समझ भी लेते हैं। इसी लिए हम कहते हैं—चिड़ियों की बोली, बन्दरों की बोली आदि। अनेक वैज्ञानिक विद्वान् अपने अनुसंधान सम्बन्धी कार्यों के लिए किसी विशिष्ट प्रकार के प्राणियों की बोलियों का अध्ययन करने में ही अपना सारा जीवन बिता देते हैं।

यहाँ हमारा सम्बन्ध मुख्यतः ऐसे शब्दों से ही है जो मनुष्यों के कंठ से दूसरों पर अपना भाव प्रकट करने के लिए उच्चरित होते हैं और जिनका लोक या समाज में कुछ अर्थ माना जाता है। अब हम यह देखना चाहिए कि शब्दों और अर्थों में पारस्परिक सम्बन्ध कैसे और किन प्रकार के होते हैं। यहीं यह भी प्रश्न होता है कि शब्द और अर्थ का पारस्परिक सम्बन्ध नित्य होता है अथवा अनित्य। परन्तु यदि इस सम्बन्ध का निराकरण अलग अलग दृष्टियों से किया जाय तो हमें कहना पड़ेगा कि वह सम्बन्ध नित्य भी होता है और अनित्य भी। देश भेद से भी और काल भेद से भी शब्दों के अर्थ अलग अलग भी होते हैं और बदलते भी रहते हैं। हमारे यहाँ के वैदिक काल के अनेक शब्दों के अर्थ कुछ और होते थे, परवर्ती काल की संस्कृत भाषा में उनके कुछ और अर्थ हुए, और आज कल उन दोनों से भिन्न कुछ और ही अर्थों में उनका प्रयोग देखने में आता है। हिन्दी में ही अनेक ऐसे शब्द हैं जिनके पुराने अर्थ कुछ और थे और आज कल कुछ और हैं। हो सकता है कि आगे चलकर वर्तमान अर्थ भी बदल जाएँ और उनका प्रयोग कुछ नये अर्थों में होने लगे।

यह तो हुई शब्दों के अर्थों में काल भेद से होनेवाले परिवर्तनों की बात। अब उनमें देश भेद से होनेवाले अन्तरों की बात लीजिए। खड़ी हिन्दी का प्रसिद्ध शब्द 'मोर (सं० मयूर) एक प्रसिद्ध पक्षी का वाचक है, पर

अवधी तथा पूर्वी हिंदी मे यह विशेषण 'मेरा' का पुराना रूप है। फारसी मे 'मोर' का अर्थ होता है—च्यूँटी; और अग्रेजी मे 'मोर' विशेषण के रूप मे अधिक का वाचक है। इस प्रकार के सैकडो उदाहरण हमे मिल सकते हैं। इन सब बातो से यही सूचित होता है कि शब्दो का उनके अर्थों के साथ कोई नित्य सम्बन्ध नही होता। भाषा-विज्ञान का एक सामान्य सिद्धात ही यह है कि भिन्न-भिन्न देशों और समाजों मे शब्दों के साथ कुछ विशिष्ट अर्थ सम्बद्ध हो जाते हैं; और जिन देशों या समाजो मे जो शब्द जिन विशिष्ट अर्थों मे प्रयुक्त होते हैं वे उन्हीं देशो और उन्ही समाजों मे लोगो के लिए बोधगम्य और मान्य होते हैं, दूसरे देशो और दूसरे समाजो मे नही। परन्तु जब हम देखते हैं कि मनुष्य के कठ से उच्चरित होनेवाले व्यक्त शब्दो का कुछ न कुछ अर्थ होता ही है तब तात्विक तथा दार्शनिक दृष्टियो से यह कहने मे भी कोई हर्ज नही है कि अर्थ के साथ शब्द का सम्बन्ध नित्य होता है।

आत्मा और प्रकृति

अभी ऊपर हमने भाषा-विज्ञान के उस मत या सिद्धात की चर्चा की है जिसमे कहा गया है कि प्रत्येक जाति या देश के साथ उसकी भाषा और शब्दो का बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध होता है। यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाय तो यह मत सभी चीजो और बातो पर समान रूप से घटित होता है। विश्वात्मा या सर्वात्मा तो एक ही है, जो सभी चेतन और जड़ पदार्थों मे सदा किसी न किसी मात्रा और रूप मे वर्तमान रहता है। यह बात दूसरी है कि कहीं वह अधिक प्रत्यक्ष तथा विकसित होता है और कही कम। साथ ही यह बात भी ध्यान रखने की है कि विश्वात्मा या सर्वात्मा के अश से युक्त होने पर भी जो कुछ उससे अलग होता है, उसकी एक पृथक् तथा स्वतत्र सत्ता होती है; और वही उसे विशिष्ट व्यक्तित्व का रूप प्रदान करती है। ऐसी अवस्था मे पहुँचकर आत्मा अपना एक निजी व्यक्तित्व भी प्राप्त करती है और स्वतत्र प्रकृति भी। सभी प्रकार के जीव-जन्तुओ धातुओ, वनस्पतियो आदि मे हमे उनकी स्वतत्र आत्मा, इच्छा-शक्ति, प्रकृति और प्रवृत्ति दिखाई देती है, चाहे जातियाँ हो या देश और राष्ट्र, चाहे बोलियाँ हों या भाषाएँ, चाहे धर्म हो या समाज; चाहे छोटी से छोटी चीजे हो या बड़ी से बडी; सबकी एक पृथक् आत्मा और निजी तथा स्वतत्र प्रकृति होती है। इसी के अनुसार सब चीजे जन्म लेती, फैलती, बढती और विकसित होती हैं; और अन्त मे वार्धक्य की रेखा पार करती हुई फिर उसी विश्वात्मा या

सर्वात्मा म लीन भी हा जाती हैं। आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि अणुओं और परमाणुओं तक मे यह नियम काम करता है।

जातीयता धम, भाषा साहित्य आदि सब मे यही बात देखने म आती है। जातियो और धर्मों के लोग तो उनकी रक्षा के लिए अपने प्राण तक गँवा देते हैं क्यो कि वे उनकी आत्मा और प्रकृति से कुछ न कुछ परिचित होते और उनके प्रति ममत्व की तीव्र भावना रखते हैं। परन्तु भाषाओं और साहित्यो की अवस्था कदाचित् इसलिए कुछ भिन्न होती है कि जन साधारण अपने आपको उनका कर्ता या रचयिता मान बठते हैं, और इसी लिए वे उनके प्रति बहुत कुछ मनमाना आचरण और व्यवहार करने लगते हैं। बुद्धिमान और विचारशील लोग तो बहुत अधिक गूढ चिन्तन और मनन करके काव्यो भाषाओ और साहित्यो की आत्मा तक पहुँचने और उनकी प्रकृति पहचानने का प्रयत्न करते हैं पर तु कम योग्यता और समझवाले लोग यह मान बठते है कि उह इन सब बातो मे क्या रखा है अपने काव्य, भाषा और साहित्य को हम जब जसा रूप देना चाह तब वसा रूप दे सकते हैं अथवा पुरानी चीजो या बातो को अनावश्यक तुच्छ और निरथक समझ कर तोड फोड और मिटा सकते हैं और नया रास्ता निकालकर नई सृष्टि रच सकत है।

पर तु वास्तव म देखने और सोचने की बात यह है कि जो चीजें सकडा हजारो वर्षों म लाखो करोडो आदमियो न चलाई और बनाई हैं क्या वे सभी सचमुच अनावश्यक तुच्छ और निरथक हैं! यह ठीक है कि मनुष्य का मन पुरानी चीजो और बातो से प्रा॰ ऊब जाता है और इसी लिए वह नवीनता ढूँढता भी है और निकालता, बनाता भी है पर तु इस नवीनता के मोह म पडकर पुरानी बातो के गुणो और विशेषताओ की ओर से आँखें मूँद नही लेनी चाहिए अच्छी चीजो या बातो म जो त्रुटियाँ या दोष आ गए हो उन्ह दूर तो अवश्य करना चाहिए पर तु उनकी अच्छाई और सौंदय म वृद्धि करन का भी प्रयत्न करते रहना चाहिए। उन्नति और विकास का यही माग श्रेयस्कर है।

हो सकता है कि कुछ पाठको को ऐसा जान पडता हो कि यहाँ इस विषय की चचा आवश्यकता से अधिक विस्तृत हो गई है। पर तु नही, यह चर्चा जान बूझकर और विशिष्ट हतु से विस्तृत की गई है। यहा हम मुख्य रूप से बतलाना यह चाहत हैं कि प्रत्येक भाषा म भी और भाषा के प्रत्येक शब्द

मे भी एक विशिष्ट आत्मा और स्वतत्र प्रकृति होती है। भाषा-विदो का यह कर्त्तव्य होता है कि वे भाषा और इसके विशिष्ट शब्दों की आत्मा तक पहुँच कर इसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें और इसकी प्रकृति का अध्ययन तथा निरीक्षण करके तत्सम्बन्धी निश्चित मत और सिद्धात निरूपित करें। प्राय: बीस वर्ष पहले अपनी 'अच्छी हिंदी' नामक पुस्तक के आरम्भ में मैंने 'भाषा की प्रकृति' शीर्षक जो प्रकरण रखा था उसमे यही बतलाने का प्रयत्न किया गया था कि हम लोगो को अपनी भाषा की प्रकृति का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। आज भी मेरा यही मत है; बल्कि पहले से और भी अधिक दृढ मत है। इस बात पर मैं इसी लिए इतना ज्यादा जोर दे रहा हूँ कि मुझे भाषा की आत्मा और प्रकृति पर कई प्रकार के कुठाराघात होते हुए तो अवश्य दिखाई देते हैं परन्तु इस आत्मा और प्रकृति के अन्वेषण तथा रक्षा की ओर मैं किसी को प्रवृत्त नही देखता। अनेक पाश्चात्य देशो के बहुत बडे-बडे भाषा-विद् तो इस क्षेत्र से बहुत आगे बढते जा रहे है और हम या तो जहाँ के तहाँ पडे है या थोड़ा-बहुत पीछे ही हटते जा रहे है। जो लोग हिंदी को सचमुच उन्नत करना चाहते हो, उन्हे इस क्षेत्र में आकर भी कुछ काम अवश्य करना चाहिए। ऐसे सुयोग्य विद्वान् है भी तो उनकी गिनती उँगलियो के पोरो तक ही दिखाई देती है। इसके लिए हमे अपने आपको ऐसा सत्पात्र बनाना होगा कि हम वाणी रूपी पवित्र नारी के सब अगो का ज्ञान प्राप्त करने के अधिकारी बन सके।

शब्दों की रचना और आर्थी विकास

अब पहले हमे यह देख लेना चाहिए कि शब्दो की रचना या सृष्टि कैसे होती है और उनके अर्थो का आरभ तथा विकास कैसे होता है। सस्कृत का प्रसिद्ध शब्द 'पत्र' लीजिए जो सस्कृत मे भी और हिन्दी मे भी अनेक अर्थो मे प्रचलित है। संस्कृत मे इसकी व्युत्पत्ति 'पत्' धातु से मानी गई है जिसका पहला अर्थ है—गिरना। दूसरा अर्थ है—ऊपर से उतर कर नीचे आना। तीसरा अर्थ है—हवा मे इधर-उधर उडना, और इसी प्रकार के कई अन्य अर्थ भी हैं। अब प्रश्न हो सकता है कि 'पत्' धातु मे ये अर्थ कहाँ से और कैसे आये। अनुमानत: यही कहा और समझा जा सकता है कि मानव-जीवन के बिलकुल आरम्भिक काल मे मनुष्यो ने पेड़ो के पत्ते नीचे गिरते हुए देखे होगे और उनके उस गिरने से होनेवाला पत् पत् शब्द भी सुना होगा। इसी लिए 'पत्' का अर्थ गिरना मान लिया गया और इसी

आगे चलकर उसमे ऊपर से धीरे धीरे उतरते हुए नीचे आने का भाव भी लग गया होगा। फिर हवा के झोंके से पत्ता का इधर उधर उडते हुए देखकर उसमें उडनेवाला अर्थ भी लग गया होगा। और आगे चलकर 'पत्' धातु से पतन, पत्र पात सरीखे शब्द भी बने होंगे। जिस प्रकार 'पत्' का आरम्भिक अर्थ पत्तों का पेडो से नीचे गिरना माना गया उसी प्रकार 'पत्र' का पहला अर्थ वृक्ष का पत्ता हो गया। प्राचीन काल मे कागज जैसी कोई चीज तो थी ही नहीं इसलिए पहले पहल लोगो ने पत्ता पर ही लिखना प्रारंभ किया था। ताड के पत्तो और भोज नामक वृक्ष की छाल पर लिखे हुए बहुत से ग्रंथ अब भी मिलते ही हैं और आगे चलकर जब धातुओं का पता चला तब ताँबे आदि के चिपटे और लम्बे चौडे टुकडो पर भी लेख लिखे जाने लगे, और मूल के अनुकरण पर ताँबे के उन टुकडो को भी ताम्र पत्र कहने लगे—भले ही वे टुकडे किसी वृक्ष के पत्ते न हो। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि धातुओं के ऐसे टुकडो को हिन्दी मे जो पत्तर कहते हैं वह भी इसी पत्र का बिगडा हुआ रूप है। जिस पत्तल पर भोजन परोसा जाता है उसे भी इसी लिए 'पत्तल' कहते हैं कि वह पत्ता से बनी होती है। फिर संदेश के रूप मे भेजी जानेवाली चिट्ठियो की सज्ञा भी पत्र ही हो गई क्योंकि ऐसी चिट्ठियाँ पहले पत्ता पर ही लिखी जाती थी। यही नहीं पत्ता के इधर उधर उडने के भाव के आधार पर चिडिया के डैनो और परो को भी पत्र कहने लगे। इससे भी आगे बढकर संस्कृत मे रथ सरीखे यानो और ऊँट, घोडे आदि वाहनो वाला अर्थ भी पत्र मे लग गया। छुरी तलवार आदि के फल भी प्राय पत्ता की तरह पतले होते थे इसलिए पहले तो उन फलो को ही और तब कटार छुरी तलवार आदि को भी पत्र कहने लगे। इसी के योग से करपत्र शब्द बना जिसका हिन्दी मे बिगडा रूप 'करवत' है और जिसका अर्थ है—आरा। इस प्रकार एक पत् धातु मे अथवा यो कहना चाहिए कि वृक्षो से गिरनेवाले पत्ता की क्रिया के आधार पर ही एक पत्र मे बसे बसे नये-नये अर्थ बनते और लगते चले गये। पूर्वी भारत मे गुहार एक प्रसिद्ध शब्द है जिसका अर्थ है—कष्ट या विपत्ति के समय रक्षा और सहायता के लिए मचाई जानेवाली पुकार। प्राचीन भारत मे गौए ही गृहस्थो की सबसे मूल्यवान सम्पत्ति होती थी। जब चोर या डाकू आकर गौएँ चुरा या छीन ले जाते थे तब 'गोहार' शब्द का प्रयोग होता था। आशय यह होता था कि हमारी गौएँ चुरा या छीन ली गई हैं। सब लोग आकर हमारी सहायता करें और गौएँ छुडाकर लावें। अब वही गोहार रूप बदलते हुए अर्थ मे 'गुहार' बन गया है।

इसी तरह का सस्कृत और हिन्दी का एक प्रसिद्ध शब्द है—दुहिता, जो आज-कल पुत्री या बेटी के अर्थ मे प्रचलित है। इसका स० मूल रूप है—दुहितृ जिसका शब्दार्थ है—दूध दूहनेवाली। प्राचीन आर्यों मे गौएँ, भैंसें आदि दूहने का काम घर की लडकियों के जिम्मे ही रहता था, पर आगे चलकर यह पुत्री या बेटी का ही वाचक हो गया। यही नही, इससे दौहित्र शब्द भी बना जिसका अर्थ है—पुत्री का पुत्र अर्थात् नाती, और साथ ही उसका स्त्रीलिंग रूप दौहित्री शब्द भी बना, जिसका अर्थ होता है—पुत्री की पुत्री अर्थात् नतिनी या नातिन। और फिर दुहिता-पति का अर्थ जामाता या दामाद हो जाना तो स्वाभाविक ही था। ध्यान रहे कि इसी स० 'दुहितृ' से फा० मे 'दुख्तर' और अग्रेजी मे 'डाटर' शब्द बना है जो पुत्री या बेटी का ही वाचक है।

इसी प्रकार का एक और शब्द है—'दुर्भिक्ष' जो अकाल अर्थात् ऐसे समय का वाचक है जिसमे अन्न की उपज बहुत कम हुई हो और इसी लिए लोगो को अन्न बहुत कम और बहुत महँगा मिलता हो। जब लोगों को अपना पेट भरने के लिए ही पूरा अन्न न मिलता हो तब वे भिक्षुकों को यथेष्ट भिक्षा ही कहाँ से और कैसे दे सकते है। जान पडता है कि ऐसे अवसरों पर भिक्षुकों ने ही यह शब्द बनाकर यह सूचित करने के लिए आपस मे चलाया होगा कि आज-कल हम लोगों को भिक्षा बहुत ही कठिनता से और बहुत कम मिलती है, क्योंकि 'दुर्भिक्ष' का ठीक और वास्तविक अर्थ इसके सिवा और कुछ हो ही नही सकता। परन्तु कालान्तर मे उसका यह मूल और व्युत्पत्तिक अर्थ बिलकुल लुप्त हो गया और अब वह कोरे 'अकाल' का ही पर्याय तथा वाचक रह गया है।

आज-कल 'समाचार' का अर्थ खबर तो है ही, परन्तु प्राचीन काल मे इसका अर्थ था कुशलक्षेम आदि। यह शब्द बना ही सम+आचार से है, जिसका अर्थ होता है—जीवन के निर्वाह और व्यवहार का ऐसा क्रम जो सम अर्थात् साधारण हो। और जिसमे कोई कष्ट बाधा या विघ्न न हो। प्राचीन काल मे जब कही से यह खबर आती थी कि वहाँ सब लोग अच्छी तरह या राजी-खुशी है तो यही अच्छी तरह रहना उनका समाचार कहा जाता था, परन्तु अब तो आग लगने, बिजली गिरने, मरने और युद्ध आदि मे मारे-काटे जाने के भी समाचार होते है जो वस्तुत सम नही बल्कि विषम आचार है। इसी प्रकार बगाल मे जब सम्बन्धियो आदि के यहाँ किसी के द्वारा कोई सदेश भेजा जाता था तब उसके साथ छेना और खजूर का गुड़

भी भेजते थे परन्तु अब उक्त आधार पर सन्देश एक प्रकार की बंगला मिठाई का ही नाम पड़ गया है।

अर्थों के इसी विकास या वृद्धिवाली क्रिया के आधार पर एक और शब्द का विचार कर लीजिए। यह संस्कृत और हिंदी का प्रसिद्ध 'योग' शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति सं० युज् धातु से कही गई है जिसके कई अर्थ हैं, यथा--(क) आपस में जुड़ना या मिलना, (ख) जोड़ना या मिलाना (ग) काम में लाने के लिए बाँधना या लगाना (घ) प्रयोग या व्यवहार में लाना, (ङ) नियत या नियुक्त करना आदि आदि। इसी आधार पर योग का पहला अर्थ हुआ—जोड़ना या मिलाना, दूसरा अर्थ हुआ—जोड़ या मिलान, और फिर इसी तरह उसमें प्रयोग व्यवहार सम्बन्ध शरीर और भी बहुत से अर्थ लगते या निकलते होते गये। इस अर्थ विकास का यहीं अन्त नहीं हुआ, बल्कि भिन्न भिन्न क्षेत्रों विचारों विद्याओं आदि में लोगों ने अपनी अपनी आवश्यकता की पूर्ति के विचार से अनेक अलग अर्थों में उसका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। दार्शनिक क्षेत्र में पतञ्जलि ने उसका प्रयोग चित्त की वृत्तियों को इधर उधर भटकने से रोकने या मन को एकाग्र करने के अर्थ में किया। ज्योतिषियों ने एक ही राशि में कई ग्रहों के एक साथ होने के अर्थ में उसका व्यवहार किया, और वैद्यों ने अनेक प्रकार की ओषधियों, जड़ियों, रसों आदि के सम्मिलित रूप को योग कहना आरम्भ किया। इससे भी और आगे बढ़कर गीताकार ने "योगः कर्मसु कौशलम्" तक कह डाला, अर्थात् अच्छी और ठीक तरह से [illegible] काम करने का नाम ही योग रख दिया। यह तो हुई सं० युज धातु और उससे बने योग शब्द के अर्थ विकास की बात। दूसरी ओर वैयाकरणों ने उसमें कई प्रकार के उपसर्ग आदि लगाकर—अनुयोग, आयोग, उद्योग, प्रयोग, वियोग, संयोग, सुयोग आदि शब्द बना डाले और फिर इन्हीं के आधार पर—आयोजन, [illegible] आदि शब्द भी बना डाले और उन्हीं [illegible] के अनुसार इन शब्दों में [illegible] प्रकार के [illegible]। फिर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible]

हम देखते हैं कि बहुत बडे-बडे त्यागियों, विद्वानो और साधु-सन्यासियों के नामों के अन्त में इन शब्दो का प्रयोग अल्ल के रूप मे भी होता है। यथा—श्री शिवानन्द भारती, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि। ऐसे अवसरों पर ये शब्द प्राय: वाग्देवी के वरद पुत्र अथवा बहुत बडे विद्वान् के अर्थ मे प्रयुक्त होते है।

अब अर्थ-विकास का एक और प्रकार देखिए। प्राय: विशेषणों और सज्ञाओ से उनके भाववाचक सज्ञा रूप तो बनते ही है, परन्तु सस्कृत व्याकरण के नियमो के अनुसार उन भाववाचक सज्ञाओ के भी कई कई रूप होते है और उन रूपो मे भी प्रयोग के आधार पर कई प्रकार के सूक्ष्म अन्तर देखने मे आते है। उदाहरणार्थ कुशल से कुशलता और कौशल; गुरु से गुरुता, गुरुत्व, गौरव और गरिमा; पुरुष से पुरुषत्व और पौरुष आदि आदि। सुविज्ञ भाषाविद् सहज मे समझ सकते है कि कुशलता और कौशल, गुरुता, गुरुत्व, गौरव और गरिमा तथा पुरुषत्व और पौरुष मे मौलिक दृष्टि से कोई विशेष अन्तर न होने पर भी प्रयोग की दृष्टि से कुछ सूक्ष्म तथा महत्वपूर्ण अन्तर अवश्य हैं।

ऊपर हमने शब्दो के विकारी रूपों की चर्चा की है। हिन्दी मे भी शब्दों के विकारी रूप तो बनते ही हैं, परन्तु कभी कभी कुछ शब्दो के ऐसे नये और व्याकरण विरुद्ध विकारी रूप भी बना लिये जाते है जिनका स्वत: तो कोई अर्थ नही होता, फिर भी जो कुछ दूसरे सार्थक शब्दों अथवा उसी प्रकार के निरर्थक विकारी रूपो के साथ मिलकर यौगिक पदों का रूप धारण कर लेते और बिलकुल नया अर्थ देने लगते हैं। जैसे—'चढा-ऊपरी' मे के 'चढा' का कोई स्वतन्त्र अर्थ नही है और वह चढना क्रिया का विकारी रूप मात्र है। उसमे का 'ऊपरी' है तो सार्थक विकारी रूप; परन्तु है वह विशेषण ही, सज्ञा नही है। फिर भी इन दोनो शब्दो के योग से एक नई सार्थक स्त्रीलिंग सज्ञा बन गई है। आवा-जाही, चला-चली, देखा-देखी, भागा-भाग, हमा-हमी सरीखे अनेक यौगिक पद भी ऐसे ही हैं जिनमे के न तो पूर्व पद ही स्वतन्त्र रूप से सार्थक हैं और न उत्तर पद ही। फिर भी शब्दो के ऐसे विकारी और निरर्थक रूपो के योग से जो पद बने है वे सार्थक भी हैं और स्वतन्त्र भी। ऐसे रूप हमे यह भी बतलाते हैं कि हमारे यहाँ किस प्रकार नये शब्दो की रचना होती है और किस प्रकार उनमें नये अर्थों का आविर्भाव या संयोग होता है।

पाना भी है। परन्तु उसी उद्धार से हिन्दी में जो 'उधार' शब्द बना है उसका अर्थ इससे बिलकुल उलटा हो गया, और यह शब्द अपने ऊपर ऋण चढाने के भाव का द्योतक हो गया। सं० के 'वलिवर्द' में 'बलि' के आधार पर पश्चिम मे बल और बद के आधार पर पूरब मे बरधा' बना है। सं० 'गल्प' पंजाबी मे 'गल्ल' हो गया है जिसका अर्थ है साधारण बातचीत। परन्तु उत्तर प्रदेश और बिहार मे इसका रूप 'गप्प' हो गया है और इसका अर्थ हुआ ऐसी बे सिर पैर की और लम्बी चौडी बातें जिनका न तो विशेष अर्थ हो और न जिस पर सहसा समझदार लोग विश्वास ही कर सकते हों। पर बंगाल मे गप्प का अर्थ होता है—केवल मन बहलाने के लिए की जाने वाली इधर उधर की और व्यर्थ की बातें। गैंडा नामक जंगली पशु का असली रूप गुण्डा है। हिंदी में जन्तु का नाम तो गुण्डा से गैंडा हो गया, और गुण्डा का अर्थ हो गया—बहुत ही उद्दण्ड और बडा बदमाश। हिन्दी का लुच्चा शब्द सं० लुंचा से व्युत्पन्न होने पर भी अर्थ की दृष्टि से अपने मूल से बहुत दूर जा पडा है। फारसी के 'बहादुर' शब्द का अभिधा शक्ति से निकलनेवाला अर्थ है—बहुमूल्य मोती। पर वह फारसी में भी और उर्दू हिन्दी मे भी वीर या शूर का वाचक हो गया है। अरबी मे 'गबन' के कई अर्थ हैं जैसे—बुद्धि की कमी, भूलना या विस्मृत होना अचेत या संज्ञा शून्य होना आदि। पर उर्दू और हिन्दी दोनो में यह शब्द दूसरों की धरोहर अनुचित रूप से अपने उपयोग में लाने का वाचक हो गया है। शब्दों के अर्थों में होनेवाले इस प्रकार के परिवर्तन और विकास संसार की सभी बोलियों और भाषाओं मे दिखाई देते हैं। संस्कृत में भी और अरबी फारसी में भी अनेक शब्द ऐसे हैं जो भिन्न भिन्न भारतीय भाषाओं में अलग अलग अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में 'शिक्षा' का अर्थ होता है—पढ़ना लिखना या ऐसा ही और कोई काम सीखना सिखाना। परन्तु मराठी में 'शिक्षा' का अर्थ होता है—दंड या सजा। सं० मत्त से व्युत्पन्न फा० का मस्त (विशेषण) हिन्दी में तो अपने ठीक अर्थ में प्रयुक्त होता है (जैसे—मस्त हाथी) परन्तु बंगला में मस्त का अर्थ होता है—बहुत बड़ा या उत्कृष्ट। बंगलावाले बहुत बड़े या विशिष्ट विद्वान को कहते हैं- मस्त पण्डित। सं० वादन से बना हुआ हिन्दी का बजना शब्द मुख्यतः बाजा के शब्द के सम्बन्ध में और ध्वनियों या स्वर उत्पन्न करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। परन्तु इसका एक स्थानिक रूप बाजना भी होता है जिसका मानपुरी में अर्थ होता है—कहा सुनी या लड़ाई झगड़ा करना, और मिदिसा में अर्थ होता है—बातें करना या बोलना। फा० का

शुरू था। और उनके शब्दों विकास के सम्बन्ध में ऊपर जो बात कही गई है उससे सूचित होता है कि आरम्भ में शब्द किसी तरह किस प्रकार भाव, विचार आदि का सूचक होता है। परन्तु आज कल हम लोग अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उनके अर्थों तथा आदि में विचार परिवर्तन और वृद्धि करते चलते हैं। बात यह है कि ज्यों ज्यों हमारी आवश्यकताएँ बढ़ती जाती हैं त्यों-त्यों हम उनकी पूर्ति भी करते चलते हैं। प्रारम्भिक युगों में मनुष्यों की आवश्यकताएँ भी कम थीं और संख्या भी थोड़ी थी। ज्यों ज्यों मानव समाज का विकास और विस्तार होता गया त्यों-त्यों उसके कार्यों और विचारों के क्षेत्र भी बढ़ते गये। नये-नये उद्योग धन्धे, नये-नये ज्ञान विज्ञान तथा साथ नये-नये पदार्थ और नये नये विचार सामने आये, और इस प्रकार के सभी क्षेत्रों में नये नये शब्द भी बनते गये, और उनमें नये अर्थ भी लगते गये।

सृष्टि के आरम्भ से ही सभी चीजों और बातों के विकास का जो क्रम आज तक चला आया है उसी के अनुरूप तथा उसी के अनुसार हमारी भाषाओं का भी विकास हुआ है शब्द भण्डार की भी वृद्धि हुई है और भाव व्यञ्जन के लिए शब्दों की आर्थी क्षमता भी बढ़ती गई है।

शब्दों के विकारी रूप

शब्दों के अर्थ विकास के सम्बन्ध में तो अनेक बातें ऊपर बतलाई ही जा चुकी हैं अब उनके रूप विकास के सम्बन्ध में भी कुछ बातें देखिए। एक ही शब्द से विकसित होने पर उसके जो अनेक रूप बनते हैं उन्हें विकारी रूप कहते हैं। ऐसे रूप मुख्यतः दो प्रकार से बनते हैं। कुछ शब्द तो उपसर्गों के योग से बनते हैं और कुछ परसर्गों या प्रत्ययों के योग से बनते हैं। संस्कृत का 'योग' शब्द लीजिए। इसमें भिन्न भिन्न उपसर्ग लगाकर अनुयोग अभियोग, उपयोग, नियोग प्रयोग विनियोग, वियोग संयोग, सुयोग आदि अनेक शब्द बना लिए गए हैं। इनके सिवाय कुछ तो संस्कृत व्याकरण के विशिष्ट नियमों के अनुसार और कुछ प्रत्ययों के योग से भी नये शब्द बनते हैं। जैसे—'गुरु' से गुरुता, गुरुत्व गौरव और गरिमा, और लघु से लघुता लघुत्व लाघव और लघिमा* आदि आदि। हिन्दी में प्राय संस्कृत उपसर्गों के सिवाय अरबी, फारसी के कुछ उपसर्गों का भी प्रयोग होता है। परन्तु उसके अधिकतर प्रत्यय अपने और निजी हैं।

* 'गुरु' और 'लघु' के उक्त विकारी रूपों के सूक्ष्म आर्थी अन्तरों के लिए दे० इस पुस्तक का दूसरा खण्ड।

ऐसे प्रत्ययो के योग से शब्दो के जो विकारी रूप बनते है उनमें कभी तो बहुत अधिक आर्थी अन्तर होते हैं और कभी बहुत ही सूक्ष्म। उदाहरण के लिए—'चढना' से बनने वाले चढाई, चढान, चढावा आदि के अर्थो मे बहुत अन्तर हैं। बनाव और बनावट अथवा लगाव और लगावट के अर्थों मे बहुत अन्तर है। 'उड़ाका' और 'लडाका' का प्रयोग तो ऐसे व्यक्तियो के सम्बन्ध मे होता है जो आकाश मे हवाई जहाज उडाते हैं। अथवा आपस मे प्राय. लडते-भिडते रहते है परन्तु उडाकू और लड़ाकू का प्रयोग ऐसे समुद्री अथवा हवाई जहाजो के सम्बन्ध मे होता है जिनका व्यवहार युद्ध-क्षेत्र मे होता है। 'बनाव' और 'बनावट' अथवा 'महँगी' और 'महँगाई' के अर्थो मे भी बहुत अन्तर है। इस प्रकार के आर्थी भेद सस्कृत शब्दो मे भी होते है। जैसे मुद्रण और मुद्रा, शिक्षण और शिक्षा आदि। फिर पुराने शब्दो के अनुकरण पर नये शब्द भी बनने लगते है जैसे—बनाव और लगाव के अनुकरण पर अब टकराव, पथराव, घेराव आदि शब्द भी बनने लगे है।

साधारणत: उन्नत, विकसित और सजीव भापाओं मे व्याकरण के नियमो के अनुसार तो नये शब्द और उनके विकारी रूप बनते ही है, पर कुछ अवस्थाओ मे व्याकरण के नियमो का ठीक और पूरा ज्ञान न होने के कारण अथवा सुभीते के विचार से लोग उनके नये रूप भी बना और चला लेते है। आज-कल हिन्दी मे कट्टरता, महानता सरीखे जो अनेक शब्द चल पडे है, वे इसी वर्ग मे आते है। हिन्दी के 'मिलनसार' (वि०) से भाववाचक सज्ञा 'मिलनसारी' बनती है। परन्तु कुछ लोग बिना समझे-बूझे इसके बदले मे 'मिलनसारिता' रूप बना लेते है जो किसी प्रकार ठीक नही है। परन्तु प्रगतिशील भापाओ मे नई-नई आवश्यकताओ की पूर्ति और नये-नये भावो की अभिव्यक्ति के लिए भी कुछ ऐसे नये शब्द बनने लगते है जिन्हें व्याकरण के पुराने नियमो का कोई आधार प्राप्त नही होता। आज-कल हमारे यहाँ दैनिकी, पर्यायकी, भौगोलिकी, भौतिकी, वैमानिकी, सामयिकी, साहित्यिकी सरीखे जो बहुत से नये शब्द बने और चले है वे हमारी नई और विशिष्ट आवश्यकताओ की पूर्ति करते है। और अब तो शस्त्रीकरण, साधारणीकरण आदि के अनुकरण पर बिजलीकरण और मशीनीकरण सरीखे शब्द भी बनने लगे हैं। ऐसे रूप व्याकरण के नियमो से भिन्न या विपरीत होने पर भी इसलिए क्षम्य होते है कि उनके बिना हमारा काम नही चल सकता और हमारी भापा आगे नही बढ सकती। अन्यान्य भापाओ मे भी बराबर ऐसा ही होता आया है। स्वय सस्कृत मे भी परकीय

भाषाओं के शब्द तो हैं ही उनके आधार पर बने हुए अनेक नये रूप भी देखने में आते हैं। फारसीवालों ने भी अरबी के योग से अपनी भाषा में बहुत से नये शब्द बना लिये थे जिनका उर्दू में बहुलता से प्रचार देखने में आता है। अंग्रेजी में संसार की बहुतेरी प्रमुख भाषाओं के शब्द तो मिल ही गये हैं, और अंग्रेजी व्याकरण के अनुसार उनके अनेक विकारी रूप भी बन गये हैं, साथ ही उनके अर्थों में भी कई प्रकार के मिश्रण और वृद्धियाँ भी हो गई हैं।

यह तो हुई संज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं के अर्थ विकास की बात। परन्तु आगे बढ़ने से पहले हम क्रियाओं के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातें बतला देना आवश्यक समझते हैं। यह तो सभी लोग जानते हैं कि क्रियाओं का प्रयोग संज्ञाओं, विशेषणों आदि के साथ उनका कोई विशिष्ट कर्म या कृत्य सूचित करने के लिए होता है। इनमें से करना और होना क्रियाएँ बहुत अधिक व्यापक रूप में प्रयुक्त होती हैं—प्रायः सभी जगह चलती और लगती हैं जैसे—काम करना और काम होना, चिंता करना और चिंता होना, भोजन करना और भोजन होना, पीला या लाल करना और पीला या लाल होना आदि। परन्तु बहुत सी क्रियाएँ कुछ अवस्थाओं या प्रसंगों में और कुछ विशिष्ट संज्ञाओं आदि के साथ कोई विशिष्ट अर्थ या भाव सूचित करने के लिए भी प्रयुक्त होती हैं। साधारणतः 'चलाना' का अर्थ होता है--किसी को गति में लाना या चलने में प्रवृत्त करना, जैसे—गाड़ी, जहाज या मोटर चलाना। ऐसी अवस्थाओं में चलाना साधारण क्रिया प्रयोग के रूप में व्यवहृत होता है। परन्तु तलवार, मुक्का, लाठी या हाथ चलाना भी लोक में प्रयुक्त होता ही है। ऐसी अवस्थाओं में भी इस प्रकार की क्रियाओं की गणना क्रिया प्रयोग के अन्तर्गत ही होती है क्योंकि इनमें न तो संज्ञाओं के अर्थ में ही कोई परिवर्तन होता है और न क्रियाओं के अर्थों में ही। पर कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी होती हैं जिनमें किसी संज्ञा के साथ कोई क्रिया लग कर एक ऐसा नया अर्थ या भाव सूचित करती है जिसका वार्थी दृष्टि से न तो संज्ञा के अर्थों के साथ ही और न क्रिया के अर्थों के साथ ही कोई विशेष सम्बन्ध होता है। भाषा में यही तत्व मुहावरों का मूल होता है।

यहाँ मुहावरों में प्रयुक्त होने वाली क्रियाओं के सम्बन्ध में एक और बात बतला देना भी आवश्यक जान पड़ता है कि यह कि कुछ अवस्थाओं में मुहावरों की क्रियाएँ भी उन सम्बन्धों का स्पष्ट निर्देश करती हैं जिनके

साथ वे लगी हुई होती हैं। हिन्दी का एक प्रसिद्ध मुहावरा है 'पौरुष थकना'; जिसका अर्थ है—शारीरिक शक्ति का बहुत ही शिथिल हो जाना। इसमें की थकना क्रिया ही पौरुष [सं०] का अर्थ निरूपित करती है। इसके स्थान पर हम 'पुरुषार्थी थकना', का प्रयोग नही कर सकते और यही हमे वह तत्व अपना कार्य करता हुआ दिखाई देता है जो पौरुष और पुरुषार्थ के अर्थों के सूक्ष्म अतर का वाचक है।

संज्ञाओ और विशेषणो के साथ तो लगकर क्रियाएँ अनेक प्रकार के नये अर्थ देती ही है; कुछ अवस्थाओ मे क्रियाओ के साथ दूसरी क्रियाएँ लगकर भी अनेक प्रकार के अर्थ और भाव सूचित करती है। समझ चुकना, समझ जाना, समझ पाना, समझ बैठना, समझ रखना, समझ लेना और समझ सकना के अर्थों मे जो विशेष अन्तर हैं वे सयुक्त क्रियाओ के योग से ही उत्पन्न हुए हैं। 'चलना' और 'पडना' क्रियाएँ अर्थ या भाव की दृष्टि से एक दूसरी से बहुत दूर होती है। 'चलना' तो मुख्यत: गति मे आना या होना सूचित करता है परन्तु 'पड़ना' खडे न रहकर जमीन पर लोटने का सूचक है। फिर जब इन दोनो क्रियाओ के योग से 'चल पड़ना' का प्रयोग होता है तब उसका अर्थ हो जाता है—चलने का कार्य आरभ कर देना। इसी प्रकार 'बैठना' और 'जाना' दोनो परस्पर विरोधी भावों की सूचक क्रियाएँ हैं, परन्तु जब इन दोनो क्रियाओ के योग से 'बैठ जाना' सरीखे प्रयोग बनते हैं तब उनका आशय कुछ और ही हो जाता है। हम कहते हैं—इस आघात से उनकी दोनो आँखे बैठ गईं। आँखे न तो पहले खडी ही थी और न चलकर कही गई ही। पर यहाँ 'बैठ जाना' यह सूचित करता है कि आँखों की ज्योति पूरी तरह से नष्ट हो गई। 'मकान बैठ जाना' का अर्थ होता है—मकान का ढहकर खडहर के रूप मे परिणत हो जाना; और 'गला बैठ जाना' का अर्थ होता है—सर्दी आदि के कारण गले का ठीक तरह से स्वर निकालने के योग्य न रह जाना। आशय यही होता है कि कोई चीज जैसी पहले थी और जैसा काम देती थी, वह अब या तो वैसी नही रह गई है, या अपना ठीक और पूरा काम देने के योग्य नही बच रही है। जब 'मारना' के साथ 'डालना' का सयोग करके 'मार डालना' पद बनाया जाता है तब उसका अर्थ हो जाता है—हत्या करना; और जब इसी 'मारना' के साथ 'बैठना' का संयोग होने पर 'मार बैठना' पद बनता है तब उसका अर्थ होता है—बिना सोचे-समझे या समुचित विचार किये सहसा प्रहार करना और फिर इसी 'मार बैठना' का प्रयोग जब किसी की धन-संपत्ति के सम्बन्ध मे होता है तब इसका अर्थ होता है—अनुचित रूप से अपने अधिकार मे करके हड़प

लेना जैसे—हमारे भी सौ रुपए वे इसी तरह मार बैठे हैं। आँख, पेट, पैर, हाथ सरीखी सबडों हजारों संज्ञाओं के साथ लगकर भी और उठना, गिरना, *दौड़ना, बोलना, सरीखी क्रियाओं के साथ लगकर भी अनेक प्रकार की* संयोज्य क्रियाएं बहुत से नये नये अर्थ और भाव प्रकट करने लगती हैं। क्रियाओं के योग से तो अर्थों और भावों में अन्तर पड़ता ही है, कभी-कभी किसी विभक्ति के योग से भी अर्थ या आशय बहुत कुछ बदल जाता है। 'मैंने एक साँप मारा था' का अर्थ होगा—मैंने उस पर आघात या प्रहार किया था, पर यह नहीं कहा जा सकता कि उसके फलस्वरूप वह मरा भी था या नहीं। अर्थ-परिवर्तन और अर्थ विकास की इस क्रिया को पारिभाषिक दृष्टि से हम अर्थ पल्लवन या अर्थ पल्लवी कह सकते हैं।

आगे बढ़ने से पहले हम क्रिया प्रयोगों और संयोज्य क्रियाओं के सम्बन्ध में एक दो बातें और कह देना चाहते हैं। आज कल कुछ लोग अपनी भाषा की प्रकृति से परिचित न होने के कारण कुछ नये क्रिया प्रयोग भी चलाने लग गये हैं जैसे—(क) किसी विषय में निर्णय लेना (ख) किसी बात की प्रतिज्ञा लेना, (ग) किसी कला में रुचि लेना, (घ) किसी बात को कोई नई दिशा देना आदि आदि। ऐसे प्रयोग अंग्रेजी के अर्थ अनुकरण मात्र होते हैं। इन पंक्तियों के लेखक की दृष्टि में ऐसे प्रयोग ठीक नहीं जँचते। *अब यदि समय के प्रवाह में ऐसे प्रयोग चल ही पड़ें तो इन्हें कौन* रोकेगा! फिर भी यह विषय भाषा विज्ञों के लिए चिंतनीय तो है ही।

संयोज्य क्रियाओं के सम्बन्ध में ध्यान रखने की बात यह भी है कि अकर्मक क्रियाओं के साथ सकर्मक क्रियाएँ भी और सकर्मक क्रियाओं के साथ अकर्मक क्रियाएं भी संयुक्त होती हैं। ऐसी दशा में व्याकरण की दृष्टि से किसी क्रिया के साथ लगी हुई दूसरी क्रिया भी उसी पहली क्रिया के समान मानी जाती है जिसके साथ वह संयुक्त होती है। अर्थात् अकर्मक के साथ लगने पर सकर्मक क्रिया भी अकर्मक ही बन जाती है और सकर्मक के साथ लगी हुई अकर्मक क्रिया भी सकर्मक का सा काम दे सकती है।

इसी लिए तो डा० दीमशित्स ने अपनी "हिन्दी व्याकरण की ... " नामक पुस्तक में लिखा है कि ... क्रिया केवल सकर्मक क्रियाओं के साथ ही संयुक्त होती है, जैसे—... ... ... आदि। पर यह बात

ठीक नही है। 'लेना' का प्रयोग अकर्मक क्रियाओं के साथ भी होता है; जैसे—चल देना, सो लेना आदि।

इन्ही सब बातों के कारण हमारे यहाँ के प्राचीन भाषा-विद् यह मानते थे कि अर्थो के साथ शब्दों का मूल सम्बन्ध बहुत ही परिमित और सूक्ष्म होता है। निरुक्त या व्युत्पत्ति की दृष्टि से शब्द का मूल अर्थ तो प्रायः जहाँ का तहाँ रह जाता है और उसमे आर्थी दृष्टि से ऐसी नयी-नयी शाखाएँ और प्रशाखाएँ निकलने लगती है जो मूल से बहुत कुछ अलग हो जाती या दूर जा पडती है। यो कहने के लिए हम भले ही कह ले कि अमुक कोश मे अमुक शब्द के २४ अर्थ मिलते है और अमुक कोश मे अमुक शब्द के ६० अर्थ दिये है। परन्तु वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो मानना पडेगा कि ये सब अर्थ उस शब्द के नही है बल्कि उस शब्द का इतने अर्थो या प्रसगों मे प्रयोग होता है।

अपना आशय स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ कुछ उदाहरण दे देना आवश्यक समझते है। यदि हमारी आँखो मे कोई कष्ट या रोग हो तो उसकी चिकित्सा के लिए हम किसी चिकित्सक के पास जाकर उसे आँखे दिखाते हैं। यहाँ 'आँखे दिखाना' अपने बिलकुल साधारण अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। परन्तु जब हम क्रोध मे आकर और लाल-लाल आँखे करके किसी को कुछ डाँटते-फटकारते हैं, तब वह बिगड़कर कह सकता है—हमे इस तरह आँखे मत दिखाइए; हम आपके दबैल नही है। यहाँ 'आँखे दिखाना' क्रोध या रोष का सूचक हो गया है और इसी लिए ऐसे प्रयोगो की गिनती मुहावरो मे होती है। एक और उदाहरण लीजिए। यदि कोई पागल या बदमाश किसी के घर पर मिट्टी का तेल आदि छिड़ककर और दियासलाई लगाकर उसे जला दे तो कहा जायगा कि पागल या बदमाश ने उसके घर मे आग लगा दी। यहाँ 'आग' और 'लगाना' दोनो का प्रयोग साधारण अर्थो मे हुआ है और ऐसी अवस्थाओ मे 'आग' के साथ 'लगाना' की गिनती साधारण क्रिया प्रयोग मे होगी। परन्तु जब कोई आदमी किसी परिवार के कुछ लोगो को कई तरह की उल्टी-सीधी बातें समझाकर उन्हे आपस मे लडा दे और उस परिवार मे कलह खडी करा दे तो भी हम कहेगे—तुमने तो उनके घर में अच्छी आग लगाई। यहाँ 'आग लगाना' का प्रयोग मुहावरे के अन्तर्गत होगा, साधारण क्रिया-प्रयोग के अन्तर्गत नही। खिडकियो, दरवाजो, दीवारों आदि पर लगाया हुआ रग धूप, वर्षा, हवा आदि के कारण तो उडता ही है, परन्तु किसी विकट या विपरीत स्थिति मे पडने पर लोगो के चेहरे का रंग भी उड़ जाता है। सज्ञाओ के सिवा कुछ विशेषणों

स भी इसी प्रकार के मुहावरे बनते हैं, जैसे—चेहरे का रग काला पडना, शरीर का रग पीला पडना आदि आदि। साधारण क्रिया प्रयोगो और *मुहावरो का यह अतर ध्यान म रखने योग्य है।*

सयुक्त क्रियाओ की ही तरह कुछ अवस्थाओ म विभक्तियो के कारण भी वाक्यो के अर्थो मे बहुत अतर हो जाता है। बहुत दिन पहले मैंने 'अच्छी हिंदी' म बतलाया था कि (क) 'मैंने एक साप मारा था', और (ख) मैंने एक साँप का मारा था' म केवल एक 'को' के कारण कितना अधिक अतर है। पहले वाक्य का अथ है—मैंने साप को जान से मार डाला था और दूसरे वाक्य का अथ है—मैंने साप पर आघात किया था या उसे चाट पहुँचाई थी। बहुत कुछ यही बात— मैंने शेर देखा है, 'और' मैंने शेर का दखा है' के सम्बध मे भी है। दूसरे वाक्य म केवल 'को' बढ जाने के कारण किसी विशिष्ट शेर का बोध होता है। हम कहते हैं—(क) हम इस बात पर विश्वास नही है, और (ख) हम इस बात का विश्वास नही है। पहले वाक्य का अथ है—भले ही लोग यह बात ठीक मानते हो, पर हम इसे कभी ठीक नही मान सकते अर्थात् हमारी दृष्टि म यह बात कभी ठीक हो ही नहा सकती। दूसरे वाक्य का आशय है—हम इसकी सत्यता मे कुछ सदेह है यह बात ठीक भी हो सकती है, और सम्भव है कि न भी हो। हम कहते हैं—(क) इस बात से आपका क्या मतलब है ? और (ख) इस बात से आपको क्या मतलब ह ! म जो अतर है वह बिलकुल स्पष्ट है। इन सब उदाहरणा से यह सिद्ध होता है कि साधारण विभक्तियाँ भी वाक्या के अर्थों म कितना अन्तर उत्पन्न कर देती है। यह विषय भी हमारे भाषा विज्ञानियो और वैयाकरणो के लिए विशेष रूप से विचारणीय है।

शब्दा के रूप विकार

घर म जब कोई बच्चा पैदा होता है तब उसका नाम रखा जाता है। ऐसा इसी लिए होता है कि अनान्य बच्चा तथा व्यक्तियों से उसकी अलग पहचान हो सके। व्यक्ति के साथ उसके नाम का जैसा सम्बन्ध होना है बहुत कुछ वैसा ही सम्बन्ध अर्थों का उनके वाचक शब्दो स होता है। मानव समाज के आविर्भाव के समय म मनुष्य का मस्तिष्क भी अपने विकास की बिलकुल आरम्भिक अवस्था म था। उस समय व जो क्रियाएँ घटनाएँ, पदार्थ और ।(देखते थे उनके अलग अलग नाम रखते चलते थ। कुछ अवस्थाओं म यह नामकरण किसी आधार पर या कारणवश भी होता था पर ज्ञान पड़ता

ई कि अधिकतर अवस्थाओ मे उसका कोई पुष्ट आधार या कारण नही होता था; वल्कि वह वहुत कुछ मनमाना ही होता था। परन्तु आगे चलकर मानव समाज की भी वृद्धि होती गई, मानव मस्तिष्क का भी विकास होता गया और अनेक प्रकार के उद्योग धधो और अनुभवो तथा कार्यो के क्षेत्र भी वढते गये। उस समय कुछ तो पुराने शब्दो के आधार पर नये शब्द भी वनते गये और वहुत से नये-नये शब्द भी। प्राचीन काल में मनुष्यो की थोड़ी सी अलग-अलग जातियाँ और छोटे-छोटे समाज या समुदाय होते थे। जनसंख्या की वृद्धि के कारण लोगो को इधर-उधर हटना-वढना भी पड़ता था और अपने निर्वाह तथा निवास के लिए नये-नये स्थान ढूँढ़ने या वनाने पडते थे। इस प्रकार चारो ओर फैलनेवाले लोग कुछ तो अपने साथ अपने पुराने शब्द ले जाते थे और फिर अपनी आवश्यकताओ के अनुसार कुछ नये शब्द भी वना लेते थे। यही कारण है कि आज मंगोल, सामी आदि प्राचीन जातियो की भिन्न-भिन्न शाखाओ मे प्राचीन शब्दों के मूल रूप वहुत कुछ एक से दिखाई देते हैं। सस्कृत, फारसी तथा यूरोप की आर्य भाषाओ के वहुत से शब्दो का मिलान करने पर यह वात सहज मे समझ मे आ सकती है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

संस्कृत	फारसी	अग्रेजी
अन्त	इन्तहा	एन्ड (end)
अन्तर	अन्दर	इनर (inner)
अभ्र	अव्र	...
अश्व	अस्प	हार्स
आपत्ति	आफत	..
इरिण	वीरान	वैरन
उष्ट्र	शुतुर	...
क्रमेल	..	कैमल (camel)
क्षीर	शीर	...
गोधूम	गदुम	..
तृष्णा	तश्नः	थर्स्ट
दुहिता	दुख्तर	डाटर (daughter)
द्वार	दर	डोर (door)
नम्र	नर्म	...
नव	नौ	न्यू (new)

नवल		नावल (novel)
पाद	पा	
पितृ	पिदर	फादर (father)
बृहत्तर	बेहतर	बटर
भ्रातृ	ब्रिरादर	ब्रदर (brother)
मत्त	मस्त	
मातृ	मादर	मदर (mother)
मिहिर	मिह्र	
यकृत्	जिगर	
लिंग		लिम्ब (limb)
विधवा	बेवा	विडो (widow)
शका	शक	
शत	सद	सेन्ट (cent)
शर्करा	शकर	शुगर (sugar)
सप्ताह	हफ्त	
सर्प		सर्पेंट (serpent)
हस्त	दस्त	
हृदय		हार्ट (heart)

यह तो ऐसे शब्दों की बात हुई जिनके आधुनिक या वर्तमान रूप आपस मे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। परन्तु शब्दों के रूपों की विकृति का यह क्रम भी हजारों वर्षों से चला आ रहा है और एक ही जाति की अनेक शाखाएँ भी एक दूसरी से बहुत दूर जा बसी हैं। इसके सिवा उनकी संस्कृतियों तथा सभ्यताओं ने भी अनेक नये विकसित रूप धारण कर लिए हैं। जातियों की की ऐसी शाखा प्रशाखाओं ने नये नये धर्म भी ग्रहण कर लिए अथवा चला दिये हैं, और नये नये देशों में पहुँचने पर वहाँ की अन्यान्य जातियों, धर्मों और संस्कृतियों से भी उनका बहुत कुछ घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है। इन सब बातों का उनकी भाषाओं और शब्दों पर भी इतना अधिक और गहरा प्रभाव पड़ा है कि कुछ शब्दों के मूल रूपों तक पहुँचना और क्रमिक विकास

का रूप जानना बहुत ही कठिन हो गया है*। तो भी अनेक देशो के बहुत बडे-बडे विद्वान् इस क्षेत्र मे छानबीन करने मे लगे हैं। उन्होने बहुत से निष्कर्ष भी निकाले हैं और बहुत से सिद्धात भी स्थिर किये हैं। अनुसंधान और छानबीन का यह क्षेत्र भी दिन पर दिन बढता जा रहा है, और नये-नये निष्कर्ष निकलते चलते तथा सिद्धात बनते चलते हैं। ज्ञान-विज्ञान और विद्याओं के अध्ययन का कही कोई वारापार तो है नही। हम भारतीय अभी इस क्षेत्र के आरम्भिक अध्यायी ही हैं, और तिस पर हिन्दीवालो ने तो अभी इसके क ख ग का ही श्रीगणेश किया है। निरुक्त या भाषा-विज्ञान सरीखे विषय अब पुराने माने जाने लगे हैं; और अर्थ-विज्ञान, पर्यायकी सरीखी नई-नई शाखाएँ निकलने लगी है। अतः इस छोटी सी पुस्तिका मे हम इन्ही मुख्य बातो की स्थूल चर्चा मात्र करके यह विषय यही छोड़ते हैं, और अपने पाठको को इस विषय से सम्बद्ध कुछ दूसरे क्षेत्रों का भी सक्षिप्त परिचय कराना चाहते हैं।

शब्दों के प्रकार

यहाँ हमे सब बातो का विचार हिन्दी की ही दृष्टि से करना है, इसलिए सक्षेप मे पहले यह देख लेना चाहिए कि इसके शब्द कितने प्रकार के होते और कैसे बनते हैं। भारत की प्रायः सभी आर्य भाषाओ का मूल उद्गम हमारे यहाँ की प्राचीन देववाणी या संस्कृत ही है। परन्तु सस्कृत से अपने

---

* एक-दो छोटे-मोटे उदाहरण लीजिए। आजकल हमारे यहाँ मूँग-फली बहुत चलती और बिकती है। अंग्रेजी मे इसे Ground Nut कहते हैं, जिसके अनुकरण पर दक्षिण भारत मे भूमिफली शब्द चला था। इससे बिगड कर भूमफली रूप बना और तब उस भूमफली से मूँग-फली रूप बन गया। छोटी खुली पालकी की तरह की एक पुरानी सवारी अब भी कही-कही देखने मे आती है। जिसे तामजाम कहते हैं और जिसकी व्युत्पत्ति अभी तक अज्ञात थी। परन्तु मेरे प्रिय मित्र श्रीयुत रामकृष्ण दास जी ने मुझे सूचित किया है कि एक पुरानी अंग्रेजी पुस्तक मे उन्हे इस सवारी का चित्र मिला है जिसके नीचे लिखा है—Tomjohn, Palanguin जान पड़ता है कि इस सवारी का आरम्भ ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय मे हुआ था, और इसका नाम Tomjohn रखा गया था। इसी का बिगडा हुआ रूप तामजाम है। इस प्रकार की और बहुत सी बातों के लिए दे० मेरी "कोशकला" नामक पुस्तक का "निरुक्ति या व्युत्पत्ति" शीर्षक प्रकरण।

वर्तमान रूपो तक पहुँचने मे उन्हे बहुत अधिक समय लगा है और इस बीच मे उन पर मध्ययुगीन स्थानिक प्राकृतो और अपभ्रशो का भी बहुत कुछ प्रभाव पडा है जिनके कारण सस्कृत के बहुत से शब्दो के रूप बहुत कुछ विकृत हो गये हैं। इस दृष्टि से हमारी भाषाओ मे मिलनेवाले अधिकतर शब्द मुख्यत दो भागो मे बटे हुए हैं। पहला भाग उन सब सस्कृत शब्दो का है जो अभी तक ज्यो के त्यो अपने मूल रूपो मे प्रचलित हैं। ऐसे सब शब्द तत्सम कहलाते हैं, जसे—अवस्था ग्रहण, परिणाम, मध्य, रचना, तप, विद्युत्, साधना आदि। परन्तु जिन सस्कृत शब्दो के रूप बदल गये हैं वे तद्भव कहलाते है। ये ऐसी साधारण बात है जिनका ज्ञान हिंदी के आरम्भिक विद्यार्थियो को पहले ही व्याकरण के द्वारा हो जाता है। परन्तु हिन्दी मे इनके अतिरिक्त कुछ और प्रकार के शब्द भी प्रचलित है जसे—कर्म से काम, पत्र से पत्ता, हस्त से हाथ आदि। तत्सम और तद्भव शब्दो के बीच मे एक और प्रकार के शब्द होते हैं जो अर्द्ध तत्सम कहलाते है। इस वर्ग मे ऐसे शब्द आते हैं जिन्होने सस्कृत से बिगडकर प्राकृत या अपभ्रश मे तो विकृत रूप धारण कर लिया था, परन्तु हिन्दी के प्राचीन साहित्य मे भी और स्थानिक बोलियो मे भी वे अभी तक उन्ही पहलेवाले बिगडे हुए रूपो मे पाये जाते हैं जिनमे वे प्राकृत आदि मे प्रचलित थे। उदाहरणार्थ हिंदी मे प्रचलित 'अग्नि' शब्द तो ज्यो का त्यो तत्सम रूप मे प्रचलित है और आधुनिक हिन्दी मे प्रचलित 'आग' शब्द तद्भव है। परन्तु पुरानी हिन्दी और स्थानिक बोलियो मे कही कही उसका जो 'अगिन' रूप मिलता है वह अर्द्ध तत्सम कहलाता है। सस्कृत 'दव' से प्राकृत मे बना हुआ 'दई' शब्द और सस्कृत 'रात्रि' से बना हुआ उसका प्राकृत रूप 'रात' भी अर्द्ध तत्सम ही है। 'दई' का प्रयोग पुरानी कविताओ, गीतो आदि मे ही मिलता है परन्तु आधुनिक हिंदी मे उसका प्रयोग नही होता और उसके स्थान पर सस्कृत के तत्सम 'दव' का ही प्रयोग होता। 'रात' शब्द हमने प्राकृत से ज्यो का त्यो ले लिया है और आधुनिक हिंदी मे उसका रूप कुछ भी बदला नही, इसलिए सिद्धान्तत 'रात' भी अर्द्धतत्सम ही है तद्भव नही।

हिन्दी मे कुछ ऐसी क्रियाएँ और सज्ञाएँ भी प्रचलित है जो अनुकरण-वाची कहलाती है। प्राय किसी प्रकार की ध्वनि सुनकर उसके अनुकरण पर जो नये शब्द बनाये जाते हैं वे अनुकरणवाची कहलाते हैं, जसे—खटखटाना थपथपाना धडधडाना भडभडाना बिलबिलाना, लपलपाना सरीखी क्रियाएँ और पटाका, पपीहा सिटकिनी सरीखी सज्ञाएँ अनुकरणवाची ही हैं।

गड़गड़ाहट, थरथराहट, हकलाहट सरीखी भाववाचक संज्ञाएँ भी अनुकरण-वाची ही हैं। चीनी, मिस्री आदि कुछ संज्ञाएँ भी इसी लिए अनुकरणवाची मानी जाती हैं कि वे चीन और मिस्र देश के नामो के अनुकरण पर बनी हैं। करौली (एक प्रकार की छोटी कटार) और हलब्बी (एक प्रकार की तलवार) भी इसी लिए अनुकरणवाची हैं कि इनका नामकरण उन स्थानो के नाम पर हुआ है जहाँ पहले ये बनती थी। अन्यान्य अनेक भाषाओ मे भी इसी प्रकार का अनुकरणवाची संज्ञाएँ आदि देखने मे आती हैं। अरबी के कह-कह: (= अट्टहास) और ज़ल-ज़ल: (=भूकंप) सरीखे शब्द भी अनुकरणवाची ही हैं। पैसा-वैसा मे का उत्तर-पद वैसा और भीड़-भाड़ मे का उत्तर-पद भाड़ प्राय: निरर्थक होने पर भी पैसा और भीड़, के अनुकरणवाची ही हैं ऐसे निरर्थक अनुकरणवाची शब्द साधारणत: मूल शब्द के बाद ही लगते हैं; पर कुछ अवस्थाओ में पहले भी लगते है। उदाहरणार्थ ऐरा-गैरा और औने-पौने मे के ऐरा और औने ऐसे निरर्थक अनुकरणवाची शब्द है। जो मूल शब्द गैरा और पौने से पहले लगे हैं। कुछ अवस्थाओं मे अनुकरणवाची शब्द कुछ भिन्न अर्थ प्रकट करने के लिए भी बना लिए जाते हैं—जैसे—मँझला के अनुकरण पर बना हुआ सँझला साधारणत: मझले से कुछ छोटे का वाचक होता है। कभी-कभी कुछ कवि लोग भी अपने विशेषाधिकार से कुछ नये अनुकरणवाची शब्द बना लेते हैं। हिन्दी मे माता के अर्थ मे अनेक स्थानो पर 'महतारी' तो प्रचलित हैं ही, कविवर व्यासदास ने इसके अनुकरण पर पिता के अर्थ मे इसका पुलिंग रूप 'महतारो' भी बना डाला है। यथा—अवतारी सब अवतारन को, महतारी महतारो।

हिन्दी मे एक और प्रकार के शब्द भी प्रचलित है जिन्हे हम मिश्र-यौगिक कह सकते हैं। जब हम अपने यहाँ के किसी शब्द के साथ किसी दूसरी भाषा का शब्द (संज्ञा, विशेषण अथवा प्रत्यय) मिलाकर कोई नया शब्द बनाते हैं तो वह मिश्र-यौगिक कहा जाता है; जैसे—जेब-घड़ी, राज-महल, ला-पता, चमकदार, फलदार आदि।

शब्दो के तत्सम, तद्भव आदि भेद स्थिर करने के समय हमे एक विशेष बात का ध्यान रखना पड़ता है। वह यह कि ऐसे भेद शब्दो के रूपो पर नहीं वरन् उनके अर्थों के आधार पर निरूपित होते है। ध्वनि या शब्द के अर्थ मे 'कल' शब्द तत्सम रहता है; जैसे—कल-नाद, कल-रव आदि। परन्तु आज के तुरन्त बाद आनेवाला दूसरा दिन अथवा आज से ठीक पहले

बीता हुआ दिन भी 'कल' ही कहलाता है। किन्तु यह संस्कृत के 'कल्प' से उत्पन्न होने के कारण तद्भव होता है। इसके सिवा हमारे यहाँ कल-जिब्भा, कल मुँहाँ आदि पद भी प्रचलित हैं और इनमें का 'कल' शब्द हिन्दी के 'काला' शब्द का संक्षिप्त रूप है। इसी प्रकार कृष्ण की रास-लीला में का रास विशुद्ध संस्कृत होने के कारण तत्सम है। पर जब हम रास का प्रयोग ढेर के अर्थ में करते हैं तब वह संस्कृत राशि से व्युत्पन्न होने के कारण तद्भव होता है। फिर हम यह भी कहते हैं—यह मकान (या रोजगार) हमें रास नहीं आया। आशय यह होता है कि यह हमारे लिए अनुकूल या शुभ सिद्ध नहीं हुआ। ऐसी अवस्था में यह 'रास' फारसी के रास्त (= दक्षिण या अनुकूल) से व्युत्पन्न होने के कारण फारसी से आया हुआ तद्भव रूप है।

हिन्दी कोशों में कभी कभी कुछ शब्द देशज भी कहे या माने जाते हैं। देशज का अर्थ होता है—देश में ही उत्पन्न। आशय यह होता है कि ऐसे शब्द किसी दूसरी भाषा के शब्दों से नहीं आये या नहीं बने हैं और इन्हें इस देश के निवासियों ने ही गढ़ या बना लिया है। उदाहरणार्थ खिड़की, गड़बड़, रद्दा, लगभग लच्छा सरीखे कुछ शब्द कोशों में देशज कहे गये हैं। परन्तु ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि ये किसी दूसरे शब्द से नहीं बने हैं और इन्हें लोगों ने बिना किसी आधार के ही मनमाने रूप से गढ़ लिया है। हो सकता है कि आगे चलकर अधिक छानबीन होने पर ऐसे शब्दों के मूल का भी पता चल जाय।

परकीय या विदेशी भाषाओं से सम्बन्ध स्थापित होने पर बहुत से ऐसे नये शब्द मिलते हैं जिनका आशय या भाव सूचित करनेवाले शब्द हमारे यहाँ पहले से वर्तमान नहीं होते और इसी लिए आवश्यकतानुसार हमें उनके स्थान पर अपने लिए नये शब्द गढ़ने पड़ते हैं। ऐसे ऐसे नये गढ़े हुए शब्द तदर्थी वर्ग में आते हैं। यदि तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो शब्द भी एक प्रकार से अनुकरणवाची ही ठहरते हैं क्योंकि वे अन्यान्य भाषाओं के शब्दों के अनुकरण पर बने हुए होते हैं। तदर्थी का पहला अर्थ होता है—किसी एक शब्द का अर्थ या भाव सूचित करनेवाला (दूसरा शब्द)। इस दृष्टि से हम इसे समार्थक या समानार्थी ही कह सकते हैं। परन्तु आज कल अपने विस्तृत अर्थ में इसका प्रयोग ऐसे नये गढ़े हुए शब्दों के लिए होता है जो दूसरी भाषाओं के शब्दों के अनुकरण पर और उनका आशय या भाव सूचित करने के लिए बनाए जाते हैं जैसे—एडमिनिस्ट्रेशन (administra

tion) के लिए प्रशासन, वान्ड (Bond) के लिए बन्ध, डीवैल्युएशन (devaluation) के लिए अवमूल्यन, थर्मामीटर (thermometer) के लिए तापमापी सरीखे शब्द इसी वर्ग मे आते है। हमारे यहाँ का "द्विज" शब्द इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का वाचक है कि इन जातियो का दो बार जन्म लेना माना जाता है, एक तो प्रसव के समय और दूसरा यज्ञोपवीत सस्कार के समय। इसी आधार पर 'द्विज' का वाचक अग्रेजी मे (Twiceborn) शब्द बना हैं। वह तदर्थी है। आज-कल हिन्दी मे इस प्रकार के बहुत से पारिभाषिक तथा अन्य प्रकार के शब्द बनने लगे है। पर कभी-कभी कुछ लोग बिना समझे-बूझे कुछ ऐसे तदर्थीय शब्द भी बना लेते हैं जो कई दृष्टियों से या तो अर्थहीन होते हैं या स-दोष। अग्रेजी के हगर-स्ट्राइक (hunger strike) के लिए हिन्दी मे बहुत दिनों से 'भूख-हडताल' का प्रयोग होता आ रहा है जिसका वस्तुतः कुछ भी अर्थ नही होता। हमारे यहाँ पहले से इसके लिए जो 'अनशन' शब्द वर्तमान है वही इसके लिए अधिक उपयुक्त हो सकता है। अंग्रेजी के हनीमून (Honey Moon) के लिए बंगलावालों की देखादेखी कुछ हिन्दीवाले भी 'मधु-चन्द्र' का प्रयोग कर जाते हैं जिसका जन-साधारण कुछ भी अर्थ नहीं समझते। फिर भी पाश्चात्य समाजों के अनुकरण पर हमारे यहाँ के कुछ नई रोशनीवाले दपति विवाह के तुरन्त उपरात कुछ समय के लिए विहार के उद्देश्य से किसी रमणीक स्थान पर जाने लगे है। ऐसे लोगों के लिए यदि शब्द बनाना ही हो तो हमारी समझ में 'मधु-चन्द्र' की जगह 'मधु-काल' का प्रयोग कही अच्छा होगा।

अर्थों के प्रकार

हम ऊपर यह तो बतला ही चुके हैं कि शब्दो का मूल रूप जो अर्थ या आशय प्रकट करने के लिए होता है उससे उनके परवर्ती अर्थ प्राय: बहुत कुछ दूर जा पड़ते अथवा उनसे भिन्न हो जाते हैं। इस प्रकार के सभी अर्थों पर विचार करके भाषाविदो ने यह निश्चय किया कि शब्दों की ही तरह उनके अर्थ भी कई प्रकार के होते हैं। हमारे यहाँ साधारणत: शब्दो के दो प्रकार के अर्थ विशेष रूप से प्रसिद्ध है। ये है—धात्वर्थ और चलितार्थ। जिन भाषाओ मे शब्द धातुओ से बनते हैं, उनमे धातुओ के आधार पर निकलनेवाले अर्थ धात्वर्थ कहलाते है। हमारे यहाँ की सस्कृत भाषा भी धातुमूलक ही है, परन्तु ससार मे अनेक ऐसी भाषाएँ भी हैं जो वस्तुत: धातुमूलक नही कही जा सकती। पर ऐसी भाषाओ मे भी उनके शब्दो के

अर्थ या आशय अपने मूल या व्युत्पत्ति से प्राय बहुत दूर जा पड़ते हैं। इसलिए धात्वर्थ को हम व्यापक दृष्टि से मूल या व्युत्पत्तिक अर्थ भी कह सकते हैं। दूसरे प्रकार के अर्थ चलितार्थ कहलाते हैं—जिनमे शब्द वतमान काल मे प्रचलित होते हैं अथवा जिनके बोधक या सूचक वे माने जाते हैं।

यहाँ हम कुछ उदाहरण देकर अपना आशय और स्पष्ट करना चाहते हैं। 'चिरजीव' का मूल अर्थ तो है—अधिक दिनो तक जीनेवाला, परन्तु अब वह पुत्र या बेटे का आशीर्वादात्मक और मगलसूचक विशेषण-सा हो गया है। सस्कृत के 'जगत्' शब्द का धात्वर्थ तो है—चलता फिरता और जीता जागता, पर उसका चलितार्थ है—यह लोक या ससार। इसी प्रकार 'नयन' का धात्वर्थ तो है—मार्ग दिखलाकर आगे की ओर ले चलने या ले जानेवाला, परन्तु उसका चलितार्थ है—आँख या नेत्र। मृग का धात्वर्थ तो है—पीछा करके दौडाने या भगानेवाला। परन्तु उसके चलितार्थ हैं—(क) जगली जानवर या अन्य पशु, और (ख) चीतल, बारहसिंगे, हिरण आदि वर्ग के पशु। इससे और आगे बढने पर हम ऐसे अनेक यौगिक शब्द भी मिलते हैं जिनके मूल अर्थ तो कुछ और ही होते हैं पर चलित अर्थ कुछ और। उदाहरणार्थ 'दिनकर' का मूल अर्थ तो है—दिन करनेवाला और उसका चलित अर्थ है—सूर्य। 'रत्नाकर' का मूल अर्थ तो है—रत्नो की खान, परन्तु उसका चलित अर्थ है—समुद्र या सागर। 'शाखा मृग' का मूल अर्थ तो है—वृक्ष की शाखाओ पर रहनेवाला पशु परन्तु उसका चलित अर्थ है—बदर। फारसी का 'बरखुर्दार' विशेषण वस्तुत एक आशीर्वादात्मक वाक्य है जिसका अर्थ है—जीविका से लगे रहो, अर्थात् खाने पीने स सदा सुखी रहो। परन्तु अब उसका प्रयोग भी हमारे यहा के 'चिरजीव' की तरह मगलसूचक आशीर्वाद की तरह छोटो या बच्चो के सम्बन्ध म होता है। इसी प्रकार उर्दू और हिन्दी मे प्रचलित 'शाबाश' अव्यय वस्तुत फारसी के वाक्य 'शाद बाश' का सक्षिप्त रूप है, जिसका अर्थ है—प्रसन्न और सुखी रहो। परन्तु अब वह प्रशसात्मक अव्यय की तरह प्रयुक्त होता है जिसका आशय होता है—वाह! बहुत अच्छा काम किया।

शब्द शक्ति

ये तो हुए लोक व्यवहार की दृष्टि से अर्थों के प्रकार। परन्तु हमारे यहाँ के प्राचीन साहित्यकारो ने शब्दो और अर्थों के सभी अगो की अच्छी तरह छान बीन और देख भाल करके कुछ और ही दृष्टि से अर्थों के प्रकार निरूपित किये हैं। अर्थ व्यक्त करने की दृष्टि से उन्होने शब्दो की तीन

विशिष्ट प्रकार की शक्तियाँ मानी है, जिन्हे अभिधा, लक्षणा और व्यजना कहते है। शब्द की अभिधा शक्ति से निकलनेवाला अर्थ अभिधार्थ कहलाता है। इसी अभिधार्थ को मुख्यार्थ या वाच्यार्थ भी कहते है। शब्द की लक्षणा शक्ति से निकलनेवाला अर्थ लक्ष्यार्थ और व्यजना शक्ति से निकलनेवाला अर्थ व्यग्यार्थ कहलाता है। 'अभिधा' का मुख्य अर्थ है—नाम या सज्ञा। साधारणत: शब्द किसी प्रकार के गुण, पदार्थ, रूप, शक्ति आदि के वाचक होते हैं। उस गुण, पदार्थ, रूप, या शक्ति का जो नाम हम स्थिर करते हैं वही उसकी अभिधा है। यही बात दूसरे रूप मे इस प्रकार कही जा सकती है कि शब्द किसी गुण, पदार्थ आदि का वाचक होता है और वे गुण, पदार्थ आदि उसके वाच्य होते हैं। इसी आधार पर अर्थ का यह पहला प्रकार अभिधार्थ या वाच्यार्थ कहलाता है। शास्त्रकारों ने इसके तीन मुख्य भेद किये है जिन्हे रूढ, यौगिक और योगरूढ़ कहते हैं। सस्कृत अश्व या घोटक का अर्थ हिन्दी घोडा रूढ अर्थात् लोक-प्रचलित है ही; इसमे व्युत्पत्ति आदि का कोई विशेष विचार नही होता। ऊपर हमने दिनकर, रत्नाकर और शाखा-मृग के जो उदाहरण दिये हैं, वे हैं तो यौगिक शब्द, फिर भी लोक मे उनके वही विशिष्ट अर्थ प्रचलित हैं जो हम ऊपर वतला आये हैं। ऐसे अर्थ यौगिक कहलाते हैं। 'जलज' शब्द जल मे ज प्रत्यय लगने से वना है और इस दृष्टि से इसका अर्थ होता है—जो जल मे या जल से उत्पन्न हुआ हो। परन्तु लोक मे वह कमल का वाचक माना जाता है। यह उसका योगरूढ अर्थ है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि वाक्य के शब्दो से जो अभिधार्थ निकलता है वह प्रसग के अनुसार ठीक नही वैठता या पूरा नही उतरता। फिर भी उसका कुछ संगत और सवद्ध अर्थ होता ही है। अर्थात् उस वाक्य का कुछ और ही लक्ष्य होता है जो प्रसंग के अनुसार आपसे आप निकल आता और समझ मे आ जाता है; जैसे—तालाव पर एक वडा मन्दिर भी है। परन्तु तालाव के जल पर तो मन्दिर हो ही नही सकता, इसलिए यही माना और समझा जाता है कि तालाव के किनारे पर मन्दिर है। यदि कहा जाय—"दोनो तरफ से तलवारें चलने लगी", तो इसका आशय यही होगा कि दोनो पक्षो के सैनिक तलवारें चलाने लगे, क्योकि तलवारें आपसे आप तो चलती ही नही; उन्हे चलानेवाले आदमी होते है। वाक्यो से इस प्रकार निकलनेवाले अर्थ लक्ष्यार्थ कहलाते हैं, और ऐसा अर्थ प्रकट करनेवाली शब्द-शक्ति लक्षणा होती है। शास्त्रकारो ने इसके निरूढ़ा और प्रयोजनवती ये दो भेद कहे हैं।

कभी कभी कुछ ऐसे वाक्य भी होते हैं जिनका अभिधार्थ या साधारण अर्थ भी ठीक और पूरा आशय नहीं प्रकट करता और लक्ष्यार्थ से भी काम नहीं चलता। फिर भी उस वाक्य का कुछ ऐसा विशिष्ट अभिप्राय या आशय होता ही है जो प्रसग के अनुसार अतिरिक्त रूप से ध्वनित होता है। वाक्य मे कथित न होने अथवा अर्थ से लक्षित न होने पर भी जो नया अर्थ या आशय किसी प्रकार व्यग्य के रूप मे व्यक्त होता है वही व्यग्यार्थ कहलाता है। पदो और वाक्यो की व्यञ्जना शक्ति से जो गूढ, चमत्कारपूर्ण और विशेष आशय प्रति ध्वनित होता है वही उसका व्यग्यार्थ कहलाता है। हमारे यहाँ के साहित्यकारो ने इस प्रकार के व्यग्यार्थ को पारिभाषिक दृष्टि से 'ध्वनि' कहा है। (देखें आगे तीसरे खण्ड मे—अर्थ, आशय, ध्वनि और विवक्षा) हम कहते हैं—दो मित्रो को आपस म लडा देना तो आपके बायें हाथ का खेल है। आशय यह होता है कि लोगो को आपस मे लडा देना तो आपके लिए बहुत ही छोटी या साधारण बात है। आप तो इससे भी कहीं बढ़कर भीषण या विकट काम कर या करा सकते हैं। यह आशय न तो अभिधार्थ या वाच्यार्थ से ही निकलता है और न लक्ष्यार्थ से ही। यहाँ शब्दो की जो व्यग्यात्मक शक्ति काम करती है वही व्यञ्जना कहलाती है और वाक्य का इस प्रकार निकलनेवाला अर्थ व्यग्यार्थ कहलाता है, जिसे साहित्य की परिभाषा मे ध्वनि कहते हैं। चालाकी में किसी के कान काटना, बक बक करके किसी का सिर खाना, सिर पर पाँव रखकर भागना बडो के मुँह पर कालिख पोतना की जगह बडों के मुँह पर चन्दन पोतना सरीखे मुहावरो का वास्तविक अभिप्राय या आशय न तो अभिधार्थ से ही निकलता है और न लक्ष्यार्थ से ही। शब्द की व्यञ्जना-शक्ति ही इनके आशय या भाव प्रकट करती है और इसी लिए ऐसे अर्थ व्यग्यार्थ कहलाते हैं। ऐसा अर्थ कभी तो वाक्य के अर्थ पर आश्रित होता है और कभी उसके शब्दो पर। इसी लिए शास्त्रकारों ने इसके आर्थी और शाब्दी दो भेद कहे हैं और उनका भी सूक्ष्म विचार करते हुए अनेक उपभेद तथा प्रभेद बतलाये हैं। लक्षणा और व्यञ्जना के भेदा प्रभेदो आदि का विवेचन साहित्य ग्रथो मे देखा जा सकता है। यहाँ हम इतना और बतला देना आवश्यक समझते हैं कि अभिधा शक्ति तो शब्द म होती है परन्तु लक्षणा और व्यञ्जना शक्तियाँ पदो और वाक्यो म होती हैं भले ही ये शक्तियाँ पद या वाक्य म आये हुए किसी विशिष्ट शब्द या पद पर आश्रित हों परन्तु ये अकेले या छुट्टे शब्द म नहीं होती।

अलंकार

यहाँ इस विषय के एक दूसरे मनोरंजक पक्ष का संक्षिप्त परिचय करा देना भी आवश्यक जान पड़ता है। शिक्षित और संस्कृत विचारोंवाले लोग कोई एक अर्थ, आशय या भाव भी अपनी-अपनी उद्‌भावना के अनुसार अलग-अलग प्रकार से प्रकट करते हैं। वस्तुतः बात तो बहुत-कुछ एक ही होती है, परन्तु वह बात कहने के ढंग भी कई होते हैं और वे सब ढंग एक दूसरे से अलग प्रकार के, अनोखे और निराले होते हैं। कोई कहता है—यह मुख तो चन्द्रमा के समान है; कोई कहता है—इसे देखकर चन्द्रमा का ध्यान आ जाता है; कोई कहता है—इसे देखकर चन्द्रमा का भ्रम होता है; कोई कहता है—इसे देखकर तो चन्द्रमा भी लज्जित होता है; और कोई कहता है—कलंकी चन्द्रमा इस निष्कलंक मुख के सामने क्या चीज है आदि आदि। इस प्रकार के वाक्यों में व्यंग्यार्थ की प्रतीति न होने पर भी इनके शब्द-विन्यास में ही कुछ ऐसी चमत्कारपूर्ण विशेषता है जो ऐसे कथनों को बहुत ही रोचक और सुन्दर बनाकर उनमें एक स्वतन्त्र प्रकार की व्यञ्जना उत्पन्न कर देती है। हमारे यहाँ के अलंकार-शास्त्र के मूल में ऐसे ही विलक्षण कथन-प्रकार काम करते हुए दिखाई देते हैं। अलंकार का अर्थ ही है—कोई ऐसी चीज जो किसी दूसरी चीज की शोभा या सौन्दर्य बढ़ाती हो। कथन का जो अनोखा प्रकार उसका माधुर्य, लालित्य और व्यञ्जकता बढ़ाता है वही वास्तविक अलङ्कार है; और अलङ्कार-शास्त्र ऐसे ही विलक्षण कथन-प्रकारों पर आश्रित है। वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो साहित्यिक क्षेत्र के सभी अलङ्कार भाव-व्यञ्जन के कौशलपूर्ण और विशिष्ट लक्षणों से युक्त कथन के भिन्न-भिन्न प्रकार ही हैं।*

---

* ऊपर हमने जिस प्रकार के अलंकारों की चर्चा की है वे मुख्यतः अर्थों पर आश्रित होते हैं। इसी लिए ऐसे अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं जिनकी संख्या एक सौ से कुछ ऊपर ही है। इसके सिवा कुछ अवसरों पर अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि की सहायता से भी भाषा अलंकृत की जाती है और उसमें चमत्कार, माधुर्य या सौंदर्य लाया जाता है। ये अलंकार मुख्यतः अक्षरों, वर्णों और शब्दों पर ही आश्रित होते हैं। इसलिए इन्हें शब्दालंकार कहते हैं। अनेक रचनाओं में ऐसा भी होता है कि अर्थालंकार और शब्दालंकार दोनों साथ-साथ लाये जाते हैं। ऐसे अवसरों पर दोनों प्रकार के अलंकारों के योग को उभयालंकार कहते हैं।

यहाँ हम उदाहरण के रूप मे कथन के भिन्न भिन्न प्रकार और उनके सूचक अलङ्कारो के नाम दे रहे हैं —

१	यह मुख चन्द्रमा के समान सुन्दर है।	(उपमा)
२	मुख ही चन्द्रमा है।	(रूपक)
३	यह मुख मानो चन्द्रमा है।	(उत्प्रेक्षा)
४	यह (मुख) चन्द्रमा है।	(अतिशयोक्ति)
५	यह मुख है या चन्द्रमा ?	(सन्देह)
६	चकोर तुम्हारे मुख को चन्द्रमा समझकर तुम्हारी ओर दौड़ते हैं।	(भ्रातिमान)
७	यह निष्कलङ्क मुख चन्द्रमा से भी बढकर है।	(व्यतिरेक)
८	यह तो चन्द्रमा है, मुख नही।	(अपह्नुति)
९	मुख चन्द्रमा की भाँति है और चन्द्रमा मुख की भाँति।	(उपमेयोपमा)
१०	इस मुख के समान यही मुख है।	(अनन्वय)
११	चन्द्रमा मुख की भाँति है।	(प्रतीप)
१२	चन्द्रमा को देखते ही मुख का स्मरण हो आता है।	(स्मरण)

शब्दो का जगत्

इस प्रसग म हमने 'जगत् शब्द' का प्रयोग जान बूझकर और विशिष्ट हेतु से किया है। जगत् का मुख्य अर्थ है—जो चलता फिरता और जीता-जागता हो। इस पृथ्वी या ससार को इसी लिए जगत् कहते हैं कि इसमे चलते फिरते और जीते जागते प्राणी रहते हैं। पशु जगत, राजनीतिक जगत् साहित्यिक जगत् आदि पदो मे जगत् शब्द का इसी अर्थ की दृष्टि से प्रयोग होता है। विद्वानो का मत है कि शब्दो का भी वैसा ही जीवन होता है, जैसा हमारा। वे भी हमारी ही तरह जन्म लेते बडे होते और अन्त म मरते भी हैं, वैज्ञानिको ने जीवन के जो कई मुख्य लक्षण माने हैं प्राय वे सभी किसी न किसी रूप म शब्दो मे भी पाये जाते हैं। उनकी जातियाँ होती हैं परिवार होते हैं वर्ग होते हैं और सतानें होती हैं। हमारे जीवन सहचार से उनमे भी बहुत कुछ हमारी ही तरह के जीवन का सचार

होता है। इसलिए शब्दो के साथ भी हमारा वैसा ही कोमल, मृदुल और सहृदयतापूर्ण व्यवहार होना चाहिए जैसा अन्यान्य मनुष्यों, पशु-पक्षियों, वनस्पतियो आदि के साथ होता है। भले ही हम अपने विभिन्न धार्मिक विश्वासो के कारण उन्हे ब्रह्म का अ श या सरस्वती का स्वरूप न माने तो भी उनके प्रयोग या व्यवहार के समय कभी उपेक्षा, कठोरता-या निर्दयता का व्यवहार नही करना चाहिए। शब्दो का अच्छा और ठीक प्रयोग या व्यवहार हमारी संस्कृति और सभ्यता का सूचक होता है; और इसके विपरीत होनेवाला आचरण, हमारा अज्ञान या गँवारपन सूचित करता है।

व्याकरणो मे शब्दों के जो सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि भेद कहे गये है वही वस्तुत: शब्दो की जातियाँ है। सभी भाषाओं के शब्द प्राय: इन्ही जातियो मे विभक्त होते हैं। ऊपर हमने शब्दो के आर्थी विकास की चर्चा करते हुए यह बतलाया है कि एक ही शब्द से उनके भिन्न-भिन्न अर्थ सूचित करनेवाले कैसे-कैसे विकारी रूप बनते हैं। ऐसे शब्द मानो अपने परिवार के प्रधान होते है, और उनके विकारी रूपो को हम उनके परिवार के सदस्य कह सकते हैं। किसी भाषा में बहुत कुछ एक ही तरह के आशय या भाव प्रकट करनेवाले जो अनेक शब्द होते है उन सब को हम एक वर्ग मे रख सकते है; जैसे—आनन्द, प्रसन्नता; हर्ष आदि; खेद, दु:ख, शोक आदि; शका, सदेह, सशय आदि। ऐसे शब्दों के अर्थो और आशयो मे परस्पर बहुत-कुछ सूक्ष्म अंतर या भेद होते हैं जिनके सम्बन्ध की कुछ मुख्य बाते आगे चलकर अर्थ-विज्ञान की चर्चा के समय बतलाई जाएँगी। यहाँ यही समझ लेना यथेष्ट होगा कि इस प्रकार के शब्दो के अलग-अलग वर्ग ही होते हैं। ऐसे ही वर्गों मे अन्यान्य भाषाओ के वे शब्द भी आते हैं जो इनके पर्याय या समानार्थी होते हैं। इसके सिवा सधियो, समासो आदि के द्वारा शब्दो मे पारस्परिक सम्बन्ध भी स्थापित होते हैं जिनसे उनके परिवार की वृद्धि होती है। प्रत्ययो आदि के योग से जो नये शब्द बनते हैं वे भी इन्ही के अन्तर्गत आते है। इस प्रकार शब्दो का जीवन भी उनका व्यवहार करनेवाले मनुष्यों के जीवन से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है।

अब शब्दों की आयु या जीवन का एक और पक्ष देखिए। जो शब्द जितने ही छोटे, हलके और उच्चारण की दृष्टि से सरल और सुगम होते हैं उनका प्रचार भी उतना ही अधिक होता है, और वे उतने ही दीर्घजीवी भी होते है। उदाहरण के लिए तन, धन, मन, रस, फल सरीखे शब्द लीजिए

जो हजारों वर्षों से अपने इन्ही रूपों और मुख्य अर्थों मे उत्तर भारत का प्राय सभी भाषाओं और बोलियो म समान रूप से प्रचलित हैं। कमल, गीत, दान, मास समय सरीखे शब्दो के सम्बन्ध मे भी यही बात है। कारण यही है कि अशिक्षित अथवा साधारण जन-समाज को भी इनके उच्चारण और प्रयोग करने मे कभी कोई कठिनता नही होती। इसके विपरीत जिन शब्दो के उच्चारण में कुछ कठिनता या जटिलता होती है उनका प्रयोग केवल *शिक्षित और सस्कृत लोग ही कर सकते ह जन साधारण नही कर पाते।* इसी आधार पर साधारण लोगो को शब्दो के तत्सम रूप छोडकर उनके तद्भव रूप बनाने पडते हैं। शब्दो के रूपो मे निरन्तर होते रहनेवाले ऐसे ही परिवर्तनो के कारण धीरे धीरे बोलियो और भाषाओं के रूप बदलते रहते हैं। प्राय दो-तीन सौ वर्षों के अन्दर ही बोलियो और भाषाओं के रूप *बहुत कुछ बदल जाते हैं।**

बोलियो और भाषाओं के रूप परिवर्तन के कई कारण होते हैं, जसे—अन्यान्य जातियो सस्कृतियो, सभ्यताओं, आदि से सम्पर्क नये नये उद्योग धन्धो और ज्ञान विज्ञानो का विकास, राजकीय क्रातियाँ और विप्लव, परकीय जातियो के सामने युद्ध मे होनेवाली हार और उसके फलस्वरूप होनेवाली *प्रतियोगिता या होड आदि आदि। जब कोई भाषा बोलनेवाली* जाति मर जाती है तब उसके साथ ही उसकी भाषा सस्कृति सभ्यता आदि भी नष्ट हो जाती है और जब कोई जाति बहुत दिनो तक पराजित रहने के उपरात स्वाधीन होकर उन्नति तथा विकास के मार्ग पर अग्रसर होने लगती है तब अनजान मे ही धीरे धीरे उसकी भाषा पर भी नये प्रभाव पडने लगते हैं। भारतीय बोलियाँ और भाषाएँ युग के इसी नये चरण म प्रवेश कर रही हैं। दूर क्यो जाएँ, हमारी हिन्दी म ही ये बातें दिखाई देने लगी ह। पजाबी, बुन्देली भोजपुरी आदि पर भी इस प्रकार के प्रभाव पडते हुए स्पष्ट दिखाई देते हैं। जब से भारत स्वाधीन हुआ है तब से प्राय सभी क्षेत्रो मे बहुत अधिकता से नये-नये शब्द भी बनने लगे हैं और नये नये

* भारतीय भाषाओं म दक्षिण भारत की तमिल भाषा इस नियम का अपवाद है। तमिल भाषियो का कहना है कि हमारी भाषा पिछले दो हजार वर्षों से बराबर एक ही रूप मे चली आ रही है और अब भी उसी रूप मे चल रही है। फिर भी एक तो ससार ही परिवर्तनशील है और दूसरे वर्तमान युग मे अनेक प्रकार की क्रातियाँ हो रही हैं, इसलिए यह नही कहा जा सकता कि तमिल इसी रूप मे और कितने दिन चल सकेगी।

योग भी चलने लगे हैं। ऐसी अवस्था में हमारे यहाँ के शब्द वनानेवाले विद्वानों को इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि उनके वनाये हुए नये शब्द उच्चारण के विचार से सुगम और फलतः दीर्घजीवी हों। यदि इस वात का ध्यान रखे विना हम क्लिष्ट उच्चारण वाले शब्द वनाते चलेंगे तो वे अल्पजीवी ही होंगे।

प्राचीन भारतीय शब्द-शास्त्र

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि तो दी ही है। इसी बुद्धि के वल से वह नये-नये काम भी करता रहता है और उनमे वरावर आगे भी वढता रहता है। इसी प्रगति के कारण उसके सभी काम और सभी वातें आगे वढ़ती-वढती कला, विज्ञान, शास्त्र आदि के रूप धारण कर लेती हैं। भापा और शब्द भी इस प्रक्रिया से अछूते नही रह सकते थे। मानवबुद्धि ने जहाँ अनेक प्रकार के विज्ञानो और शास्त्रो को जन्म दिया, वहाँ उसने भापा और शब्दों के सम्वन्ध मे भी अनेक शास्त्र वना डाले। ऐसे शास्त्रो मे पहला और प्रमुख स्थान व्याकरण को ही प्राप्त है। जव तक लोग अशिक्षित और असस्कृत थे तव तक वे मनमाने ढग से जव जैसा और जो कुछ चाहते थे वोलकर अपना काम चला लेते थे। परन्तु जव लोग शिक्षित और सभ्य हुए तव उन्हो ने वोलने-चालने के कुछ नियम भी वनाये और कुछ परिपाटियाँ भी स्थिर की। जव इस क्षेत्र मे वे और भी आगे वढे तव उन्हे उन नियमो और परिपाटियों को व्यवस्थित रूप देने की आवश्यकता प्रतीत हुई। शिष्टो और समझदारों को कानों मे अशुद्ध और भ्रामक प्रयोग खटकने लगे। कानो की यही खटक दूर करने और लोगों को वोलने तथा लिखने का ठीक ढग वतलाने के लिए व्याकरण की सृष्टि हुई। व्याकरण का मुख्य काम है—सवको शब्दो के प्रयोगों का शुद्ध रूप वतलाना और भाषा का स्वरूप परिष्कृत, सुन्दर और स्थिर रखना। ससार मे अब भी अनेक असभ्य और आदिम जातियाँ वसती है और अपनी-अपनी वोलियाँ वोलती हैं, परन्तु अशिक्षित होने के कारण वे अपना व्याकरण नही वना पाती। कभी-कभी कुछ शिक्षित और सभ्य लोग उनके समाज मे जाकर वहुत दिनो तक रहते और उनकी वोली सीखकर उसका व्याकरण वनाते हैं। परन्तु ऐसा व्याकरण वह वोली वोलने-वाले आदिम और असभ्य लोगों के लिए तव तक उपयोगी नही होता जव तक वे शिक्षित और सभ्य नहीं हो जाते। इधर वहुत दिनों मे व्याकरण का दो ही क्षेत्रो मे विशेष रूप से उपयोग होता था। एक सो अपनी भापा का शुद्ध प्रयोग करने मे; और दूसरा, परकीय भापा अच्छी तरह सीखने

और उसका शुद्ध रूप जानने मे। परन्तु इधर कुछ दिनो से व्याकरण का एक नया और तीसरा उपयोग भी होने लगा है, और वह है—अशिक्षितो को शिक्षित बनाना और असभ्यो को सभ्यता की ओर प्रवृत्त करना।

व्याकरण भी और भाषा-सम्बन्धी दूसरे शास्त्र भी तभी बनते हैं जब भाषा बहुत कुछ उन्नत तथा प्रौढ हो चुकती है और उसमे उत्कृष्ट साहित्य की रचना यथेष्ट मात्रा म होने लगती है। भारत मे इस क्रम का आरम्भ वैदिक युग मे ही हो गया था। हमारे यहाँ चारो वेद और उनके उपवेद तो बने ही, छः वेदाग भी बने, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त ज्योतिष और छन्द। इनम से कल्प और ज्योतिष को छोडकर शेष चार वेदांग भाषा, शब्दों और साहित्य से ही सम्बद्ध हैं। व्याकरण की चर्चा हम ऊपर कर ही चुके हैं छन्द शास्त्र म छन्दो के प्रकार और उनकी रचना के नियमो का विवेचन होता है। निरुक्त वह शास्त्र है जिसम शब्दो के मूल रूप अर्थात् व्युत्पत्ति के विचार के साथ साथ इस बात का भी विवेचन होता है कि शब्दो के विकारी रूप किन किन आधारो पर और किस प्रकार बनते हैं। इसी लिए प्राचीन काल मे हमारे यहाँ निरुक्त को भी और व्याकरण को भी शब्द शास्त्र कहते थे।

वैदिक युग के उपरान्त जब संस्कृत भाषा का प्रचार बहुत बढ गया और उसमें अनेक प्रकार के विषयो के बहुत से और अच्छे अच्छे ग्रन्थ बनने लगे तब तत्कालीन सभी प्रकार की साहित्यिक रचनाओ के विचार से बहुत कुछ नये तात्त्विक विवेचन होने लगे। उस समय तक निरुक्त का अध्ययन और विवेचन तो समाप्त सा हो चला था पर छन्द शास्त्र का इसलिए विशेष रूप से विकास हुआ कि हमारे यहाँ अधिकतर साहित्यिक रचनाएँ पद्यात्मक ही होती थी। तो भी कथानको, नाटको आदि म गद्य का प्रयोग तो होता ही था। अत इन दोनो प्रकार की साहित्यिक रचनाओ के आधार पर हमारे यहाँ काव्य शास्त्र बना जिसम भाषा और विषय दोनो की दृष्टि स गद्य और पद्य, सभी प्रकार की रचनाओ के गुण-दोषों का भी विवेचन हुआ और उनके प्रकार भेद स्वरूप आदि भी निरूपित हुए। व्याकरण उन दिनो एक अलग शास्त्र ही माना जाने लगा था, अत उसे छोडकर काव्य शास्त्र का जो नया विकसित रूप प्रस्तुत हुआ था वह साहित्य शास्त्र कहलाने लगा था।

इससे भी और आगे बढने पर काव्य की रीतियो का भी विवेचन होने लगा। काव्य-रचना के सभी प्रकार के गुणो और दोपो का विवेचन करते हुए कुछ विशिष्ट प्रकार की रीतियो का भी निरूपण हुआ और रीतियाँ ही काव्य की आत्मा के रूप मे मानी जाने लगी। ये रीतियाँ मुख्यत: पदों और वाक्यांशो के रचना-प्रकार पर आश्रित थी। हमारे यहाँ गौडी, पाचाली, लाटी, वैदर्भी आदि जो रीतियाँ कही गई है वे वाक्य-रचना के स्थानिक प्रकारो और रूपो पर ही आश्रित है। साहित्यिक दृष्टि से हम इन्हे भाषा की प्रादेशिक या स्थानिक शैलियाँ ही कह सकते हैं। काव्यो के जो गुण, भेद, लक्षण आदि निरूपित हुए थे उनकी गणना भी रीतियो मे ही होने लगी थी।

सस्कृत, प्राकृतो और अपभ्रंशो के उपरान्त जब देश-भाषा हिन्दी का आरम्भ हुआ तब रीतियो मे भी कुछ और परिवर्तन तथा विकास हुआ। प्राचीन साहित्य-शास्त्र मे अलकारो, रसो आदि का भी बहुत अच्छा और प्राय: सर्वाङ्गपूर्ण विवेचन हो ही चुका था। अत: हिन्दी मे उन्ही सब लक्षणो और विवेचनो को आधार मान कर काव्यो की रचना होने लगी, और कुछ अवस्थाओ में लोग अलकारो, रसों आदि के विवेचन मे और आगे भी बढे। हिन्दी के जिस युग मे इस प्रकार के विवेचन हुए और उन विवेचनों के आधार पर काव्यो की रचना हुई वह हमारे यहाँ रीतिकाल के नाम से प्रसिद्ध है। यह काल १६ वीं शताब्दी के मध्य से १९ वीं शताब्दी के मध्य तक माना जाता है। इस काल मे कवियो को प्राय: राजा-महाराजाओ और धनी-मानी व्यक्तियो के आश्रय मे ही और उनके मुखापेक्षी बनकर रहना पडता था; और उनके परितोप तथा मनोरजन के लिए शृङ्गारिक विपयो की ही रचनाएँ प्रस्तुत करनी पड़ती थी। परन्तु अब इस युग का भी अन्त हो चुका है, और हम लोग भाषा तथा साहित्य पर कुछ नई दृष्टियो से विचार करने लगे हैं और ये नई दृष्टियाँ बहुत कुछ पाश्चात्य साहित्य की देन हैं।

पाश्चात्य शिक्षा और साहित्य के सम्पर्क से भाषिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों मे अध्ययन और मनन के हमे अनेक नये प्रकार और नई विचार-शैलियाँ प्राप्त हुई है। साहित्यिक शैलियो का विवेचन तो हमारे प्रस्तुत क्षेत्र से बाहर का है; परन्तु भाषिक दृष्टि से हमे जो नई उपलब्धियाँ हुई हैं या होने लगी हैं उनकी चर्चा तो हम आगे चलकर करेंगे; परन्तु इससे पहले अपने यहाँ की

भाषिक और शास्त्री उपलब्धियों की कुछ बातें बतला देना इसलिए आवश्यक है कि आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने उनसे बहुत कुछ लाभ भी उठाया है, और कुछ अवस्थाओं में वे उनसे और आगे बढ़ने के लिए भी प्रयत्नशील हैं।

हमारे यहाँ के प्राचीन वैयाकरणों और शिक्षा शास्त्रियों ने भाषा और शब्दों के सिवा अक्षरों या वर्णों और उन्हें उत्पन्न करनेवाली ध्वनियों और उनके उच्चारणों के सम्बन्ध मे बहुत ही गम्भीर अन्वेषण और मार्मिक विवेचन किये थे। ध्वनियों और उनके उच्चारणों के अन्तरों अथवा भेदों की ओर हमारे यहाँ के विचारवानों का ध्यान वैदिक काल में ही गया था। उन्होंने देखा था कि वेदों की भिन्न भिन्न शाखाओं के अध्यायी और अनुयायी भी मन्त्रों के भिन्न भिन्न प्रकार के उच्चारण करते हैं और स्थान भेद से भी उनके उच्चारणों में अन्तर होता है। इस प्रकार के अन्तरों और भेदों का निरूपण प्रातिशाख्यों में किया गया था। कुछ अवस्थाओं में किसी शब्द के उच्चारण के समय उसके किसी विशिष्ट अक्षर पर कुछ जोर देना पड़ता है। इसके सिवा हम यह भी देखते हैं कि किसी वाक्य के एक शब्द पर जोर देने से उसका कुछ और अर्थ होता है और दूसरे या तीसरे शब्द पर जोर देने से कोई और अर्थ निकलता है। शब्दों के अक्षरों और वाक्यों के शब्दों पर दिया जानेवाला इस प्रकार का जोर बलाघात या स्वराघात कहलाता है। पाणिनी के व्याकरण मे इस प्रकार के बलाघातों या स्वराघातों का भी पूरा-पूरा विचार किया गया है। आधुनिक भाषाविज्ञान में जिस ध्वनि शास्त्र का इतने विस्तार से विवेचन देखने में आता है उसकी बहुत सी बातों पर बहुत अधिक विचार हजारों वर्ष पहले हमारे यहाँ शिक्षा और व्याकरण में हो चुका था, और भाषा शास्त्र के आधुनिक विद्वान उन्हीं के आधार पर और आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। ये सारे विवेचन हमारे यहाँ के व्याकरणों और शिक्षा शास्त्र में देखे जा सकते हैं। व्याकरण सम्बन्धी थोड़ी बहुत बातें तो प्रायः सभी लोग जानते हैं, परन्तु शिक्षा शास्त्र बहुत कुछ लुप्त सा होता जा रहा है। उसमें अन्यान्य अनेक बातों के सिवा विस्तारपूर्वक यह बतलाया गया था कि ध्वनियों और वर्णों के उच्चारण के समय उनके आरम्भ या उद्भव से लेकर श्रवण के योग्य बनने तक शरीर के अन्दर और बाहर कितने प्रकार की आंगिक क्रियाएँ और चेष्टाएं होती हैं। इन सभी क्रियाओं और चेष्टाओं को सामूहिक रूप से 'प्रयत्न' कहा गया है और इसके आभ्यन्तर तथा बाह्य ये दो भेद किये गये हैं। आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच

प्रकार के कहे गये हैं—स्पृष्ट, ईषत् स्पृष्ट, विवृत, ईषत् विवृत और सवृत। वाह्य प्रयत्न ग्यारह कहे गये है जिनके नाम है—विवार, सवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्प-प्राण, महा-प्राण, उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित। ये सब प्रयत्न इस बात के सूचक है कि ध्वनियो या वर्णो के उच्चारण का कार्य हमारी स्वर-नलिका मे कहाँ और कैसे आरम्भ होता है और आगे चलकर कव और कहाँ हमारे गले, जीभ, तालू, दाँतो और होठो के सहयोग से उनका उच्चारण कार्य सम्पन्न होता है। इसी आधार पर हमारे यहाँ वर्णो के ओष्ठ्य, कण्ठ्य, मूर्धन्य, तालव्य, दन्त्य कण्ठ-तालव्य, कण्ठ्यौष्ठ्य, दन्त्य-ओष्ठ्य आदि भेद निरूपित हुए है। हमारे यहाँ इस बात का भी वहुत गम्भीर अन्वेषण हुआ था कि जब कुछ विशिष्ट स्वर और व्यञ्जन साथ-साथ आते है तब उनके सान्निध्य के फलस्वरूप उनके उच्चारणो मे सुगमता लाने के लिए किस प्रकार की प्रवृत्तियाँ और वलन होते है, और तब सयुक्त शब्दो के उच्चारण आदि मे कैसे परिवर्तन या विकार होते है। हमारे प्राचीन वैयाकरणो ने इस सम्वन्ध मे जो नियम और सिद्धात इस प्रकार स्थिर किये थे उनका विस्तृत विवेचन हमारे व्याकरणो के सन्धि-प्रकरण मे मिलता है। इस प्रकार उच्चारण से सम्वन्ध रखनेवाली सभी बातो का विवेचन पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया गया था। उस प्राचीन युग में जब कि भारतीय समाज ने किसी प्रकार की यात्रिक उन्नति नही की थी, केवल चिन्तन और मनन के आधार पर इस प्रकार की खोज और जांच-पड़ताल कोई साधारण बात नही थी।

आधुनिक पाश्चात्य शब्द-शास्त्र

आज से हजारो वर्ष पहले भाषा, व्याकरण और साहित्य, तीनो के विचार से सस्कृत ने जितनी अधिक उन्नति की थी उतनी उस समय तक कदाचित् ही किसी अन्य भाषा ने की हो। अन्यान्य अनेक विषयो की तरह इस विषय मे भी भारत आदि-गुरु माना जाता था। यही करण था कि आज से डेढ़-दो सौ वर्ण पहले युरोप के अनेक अच्छे-अच्छे विद्वान् सस्कृत भाषा, व्याकरण और साहित्य के अध्ययन और मनन मे प्रवृत्त हुए, और वहुतो ने अपना सारा जीवन लगाकर उसकी वहुत सी अच्छी-अच्छी बाते ढूँढ निकाली। हमारे देश मे तो सस्कृत का पठन-पाठन वहुत कुछ परिमित हो चला था परन्तु पाश्चात्य विद्वानो ने उसका गम्भीर और विचारपूर्ण अध्ययन करके देववाणी सस्कृत की भी और माता सरस्वती की भी वहुत बड़ी-बड़ी

सेवाएँ की, और बहुत से लोगों को इस प्रकार के अध्ययन के लिए अनुरक्त किया। आज-कल हम जिसे भाषा विज्ञान या भाषा शास्त्र कहते हैं उसकी नींव पाश्चात्य विद्वानों के संस्कृत अध्ययन से ही पड़ी थी। इस अध्ययन के फलस्वरूप वे विद्वान् भाषा मात्र के अङ्गों और उपांगों का विवेचन करने लगे। वे लोग युरोप की यूनानी, रोमन तथा मध्य युरोप की कई पुरानी भाषाओं से तो परिचित होते ही थे, उनमें से कुछ लोग पश्चिमी एशिया की सामी भाषाओं के भी अच्छे ज्ञाता होते थे। इसलिए भाषा विज्ञान के काम के लिए वे अनेक प्राचीन भाषाओं का तुलनात्मक दृष्टि से भी अध्ययन करने लगे। उन्होंने अनेक भाषाओं के पारस्परिक साम्य और वैषम्य के आधार पर भाषाओं के कुल, जातियाँ, परिवार और वर्ग भी निरूपित किए और उनके प्रकार तथा भेद विभेद भी निश्चित किए। प्राचीन भाषाओं की खोज करते-करते तथा आगे बढ़ते बढ़ते वे उस सीमा तक जा पहुँचे जहाँ मानव जाति ने बोलना आरम्भ किया था। इसके विपरीत मध्य युग तथा आधुनिक युग की ओर बढ़ते हुए उन्होंने इस बात का भी अध्ययन और विचार किया कि शब्द रचना आदि की दृष्टि से भाषाएँ कितने प्रकार की हैं और किन किन दिशाओं तथा किन किन रूपों में वे विकसित तथा विस्तृत हुई हैं। उन्होंने उच्चारणों के तत्व तथा सिद्धान्त जानने के लिए मानव कण्ठ के स्वर यन्त्र का भी अध्ययन किया और यह भी पता लगाया कि कोई अर्थ, आशय या भाव प्रकट करनेवाले सम्बन्धी शब्द किन किन भाषाओं में किस प्रकार या किस रूप में उच्चरित होते हैं। शब्दों के अर्थों, उच्चारणों, प्रयोगों तथा ऐसी ही और भी अनेक प्रकार की बातों का सांगोपांग विवेचन ही भाषा विज्ञान का मुख्य क्षेत्र है। इन सब बातों के निरूपण में भाषा विज्ञानियों को भाषा मात्र के विचार से भी सभी प्रकार के ऐतिहासिक विकासात्मक, सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक आदि तथ्यों और पक्षों का मन्थन करना पड़ा था। यह मन्थन अब भी बराबर चल रहा है और नये नये तथ्यों का पता चल रहा है।

संस्कृत भाषा के गम्भीर अध्ययन के फलस्वरूप पहले तो पाश्चात्य विद्वानों ने साधारण भाषा शास्त्र का सूत्रपात किया जो हमारे यहाँ भाषा-विज्ञान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके उपरान्त उन्होंने अनेक प्राचीन तथा आधुनिक भाषाओं के मूल तत्त्वों का अध्ययन करके तुलनात्मक भाषाशास्त्र का विकास किया और बहुत सी नई बातें ढूँढ निकालीं। परन्तु उन्नति और प्रगति का क्रम यहीं तक पहुँचकर रुक नहीं गया बल्कि अब भी बराबर और

आगे बढता जा रहा है। इस शताब्दी मे अनेक पाश्चात्य विद्वानों और विशेषतः अमेरिकन मनीषियों ने और भी बहुत से नये तत्त्व ढूँढ निकाले हैं और भाषा-शास्त्र का बिलकुल नये ढग से अध्ययन करके उन्होंने अनेक नये मत और सिद्धात स्थिर किये है। भाषा-शास्त्र के इस आधुनिकतम रूप का नाम वर्णनात्मक भाषा-विज्ञान पडा है। भाषा-शास्त्र और तुलनात्मक भाषा-शास्त्र से थोड़ी बहुत सम्बद्ध बाते तो अनेक भारतीय विश्वविद्यालयो की कृपा से हमारे यहाँ के कुछ उच्च विद्यार्थियो तक पहुँच पाई है; परन्तु नवीन वर्णनात्मक भाषा-शास्त्र की चर्चा कुछ विशिष्ट प्रदेशों के बडे-बडे विद्वानो तक ही सीमित है। कारण यही है कि यह विषय व्याकरण से भी कही अधिक रूखा-सूखा है; और इसके जटिल विवेचन समझने के लिए लोगो को बहुत सिर-पच्ची करनी पडती है। परन्तु सभी शास्त्रीय क्षेत्रो मे गम्भीर और सूक्ष्म अध्ययन करना सब लोगो के बूते के बाहर है। तिस पर हिंदी मे तो अभी तक भाषा का ठीक और शुद्ध रूप भी पूरी तरह से स्थिर नही होने पाया है। हम जिस हिंदी का सारे भारत मे और अपने सभी कामो मे पूरा-पूरा प्रचार करना चाहते है उसके सेवियो के लिए इस शास्त्र के नवीनतम रूप से अच्छी तरह परिचित होना परम आवश्यक हो जाता है। हिंदी ही क्यो अन्यान्य सभी उन्नत और प्रगतिशील भाषाओ के सेवियो को इस क्षेत्र मे मिलजुलकर अग्रसर होना चाहिए।

उन्नत और संस्कृत मस्तिष्कवाला मानव सदा विचारशील होता और प्रायः विचार-मग्न रहता है। उसकी इसी विचार-प्रवणता के फलस्वरूप उसके कार्य आगे बढते-बढते कला का रूप धारण करते हैं और उसके विचारणीय विषय विज्ञान या शास्त्र की सीमा मे पहुँचने लगते हैं। आधुनिक वर्णनात्मक भाषा-शास्त्र भी अब वैज्ञानिक और व्यवस्थित पद्धति से आगे बढ़ता हुआ बहुत अधिक उन्नत हो गया है, और बराबर उन्नत होता जा रहा है। इस नवीन शास्त्र की जो हाल की अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ है उनमे से कुछ का यहाँ सक्षिप्त परिचय करा देना आवश्यक जान पडता है।

पुराना भाषा-शास्त्र भी और परवर्ती तुलनात्मक भाषा-शास्त्र भी मुख्यतः लिखित और साहित्यिक भाषाओ पर ही आश्रित था। परन्तु आज-कल वर्णनात्मक भाषा-शास्त्र का अनुशीलन करनेवाले विद्वान् ऐसी बोलियो का भी विस्तृत अध्ययन करते हैं जिनका कोई लिखित और साहित्यिक रूप नही होता। यह तो प्रायः सभी लोग जानते हैं कि स्थानिक बोलियाँ ही कुछ विशिष्ट परिस्थितियो मे विकसित होकर लिखित और साहित्यिक रूप धारण

कर लेती हैं। इसी लिए वतमान बहु प्रचलित और साहित्यिक भाषाओं का पुराना इतिहास जानने के लिए आधुनिक भाषाविद् पुरानी और स्थानिक बोलियों का भी गम्भीर अध्ययन करने लगे हैं, और संसार की साहित्यिक भाषाओं का जो काल क्रमिक और सुसम्बद्ध इतिहास प्रस्तुत हो चुका है उससे और पहले की स्थितियों का पता लगा रहे हैं। संसार के अनेक भागों में अब भी ऐसी बहुत सी असभ्य और जङ्गली जातियाँ बसती हैं जो लिखना पढना बिलकुल नहीं जानती। ऐसी जातियों की बोलियाँ लिपिबद्ध करके उनके सभी अङ्गों का अध्ययन और विवेचन करना भी वर्णनात्मक भाषा शास्त्र का अंग बन गया है। इससे भी बढकर एक बात और है। बहुत सी ऐसी पुरानी जङ्गली जातियाँ भी किसी समय इस संसार में थी जिनका अब बिलकुल अन्त हो चुका है, उनकी बोलियाँ लिखी हुई तो क्या मिलती, कहीं सुनने में भी नहीं आती। ऐसी अनेक बोलियों के सम्बन्ध में जो थोड़े बहुत साधन कहीं इधर उधर मिलते हैं उन्हीं का उपयोग करके उन बोलियों का क्षेत्रीय और भौगोलिक स्वरूप ही नहीं बल्कि उद्गम तक ढूँढ निकालने का प्रयत्न हो रहा है। जिस प्रकार पुरातत्त्व प्राणि शास्त्र भौमिकी आदि के अन्वेषक विद्वान हजारों लाखों वर्ष पहले की बातों का पता लगाने में व्यस्त हैं, उसी प्रकार आधुनिक भाषाविद् भी आज से बीसियों हजार वर्ष पहले की बोलियों तक पहुँचने के प्रयत्न में लगे हैं। इस ˛ के लिए उन्होंने कुछ निश्चित क्रम, नियम और सीढियाँ भी तयार कर ली हैं, और वे उनका परीक्षण तथा संशोधन भी करते चलते हैं।

ध्वनि विज्ञान

भाषा और शब्द दोनों का मूल मनुष्य के कंठ से निकलनेवाली ध्वनियाँ ही हैं। ध्वनियाँ तो पशु पक्षियों के कंठों से भी निकलती हैं और उनके अनेक प्रकार के मनोभाव प्रकट करती हैं, परन्तु वे हमारे विवेच्य विषय के बाहर हैं। मनुष्य के कंठ से भी कुछ ध्वनियाँ इसी प्रकार की निकलती हैं परन्तु वे भी भाषा और शब्द के क्षेत्र के बाहर की ही होती हैं। मनुष्य के कंठ से निकलनेवाली जिन ध्वनियों से शब्द, बोलियाँ और भाषाएँ बनती उनका अध्ययन और विवेचन आरम्भ से ही भाषा शास्त्र का मुख्य अङ्ग रहा है। शब्दों का ठीक और शुद्ध उच्चारण तभी हो सकता है जब हम प्रत्ये की ध्वनियों का पूरा पूरा ज्ञान हो। विशेषत परकीय और विदेशी बोलियों तथा भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी ध्वनियों की जानकारी होना

और भी अधिक आवश्यक होता है। इसी लिए अब ध्वनियों से सम्बन्ध रखने-वाला एक नया विज्ञान या शास्त्र ही बन गया है, जिसमें व्यावहारिक दृष्टि से और वैज्ञानिक आधार पर अनेक नये सिद्धान्त स्थिर होने लगे हैं।

यदि संसार भर की सभी बोलियो और भाषाओं का ध्यान रखा जाय तो कहा जा सकता है कि मनुष्य के कठ से निकलनेवाली सार्थक ध्वनियाँ सैकड़ो क्या, बल्कि हजारो की संख्या तक पहुँच जायँगी। क्षेत्रीय और भौगोलिक दृष्टि से भी ध्वनियो के बहुतेरे भेद और प्रभेद होते हैं और जातीय, वर्गीय, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि दृष्टियो से भी। यहाँ तक कि कुछ अवस्थाओं मे ध्वनि मे परिवर्तन होने से ही किसी भाषा के शब्द, पद या वाक्य का अर्थ भी बहुत कुछ बदल जाता है। इसके सिवा ऐतिहासिक दृष्टि से भी इनके बहुत से भेद हो सकते है। कुछ पुरानी ध्वनियाँ धीरे-धीरे समय पाकर नष्ट भी हो जाती हैं; जैसे—वैदिककालीन ल्, और कभी-कभी बाहरी जातियो और बोलियो के सम्पर्क से नई ध्वनियों का प्रचलन और प्रसार भी होने लगता है। दूर क्यो जायँ, पंजाबी बोली मे महाप्राण वर्णों का कुछ ऐसा विलक्षण उच्चारण होता है जिसका ठीक-ठीक अनुकरण भारत के अन्यान्य प्रान्तो के लोग नही कर पाते। असम प्रदेश की अनेक बोलियो मे भी कुछ ऐसी ध्वनियाँ मिलती हैं। दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगू, कन्नड़ आदि भाषाओ मे भी अनेक ऐसी ध्वनियाँ प्रचलित हैं जिनमें से कुछ तो उत्तर भारतवालो ने ग्रहण कर ली हैं, पर कुछ ऐसी भी हैं जिन्हे और लोग ग्रहण नही कर पाते। मराठी मे 'ल' के साधारण उच्चारण के सिवा एक और प्रकार का भी उच्चारण होता है जो इस प्रकार लिखा जाता है—ळ, और जिसे हम ल तथा ड का कुछ मिश्रित-सा रूप कह सकते हैं। इसका इसी से बहुत कुछ मिलता-जुलता ध्वनि-रूप उडिया में भी प्रचलित है। अरब और फारस से आनेवाले मुसलमान ट, ड और ड़ का उच्चारण करना नही जानते थे। इसी लिए उन्हे उर्दू लिपि मे टे, डाल, और डे की योजना करनी पड़ी थी और महाप्राण वर्णों का उच्चारण बतलानेके लिए दो-चश्मी हे बनानी पड़ी थी। देवनागरी वर्णमाला के 'ज्ञ' वर्ण का भारत के भिन्न-भिन्न भागो मे चार-पांच प्रकार से उच्चारण होता है। हमारे यहाँ के तालव्य 'श' मूर्द्धन्य, 'ष' के उच्चारणो का अन्तर बहुत कम लोग समझ पाते हैं। उर्दू लिपि के 'से', सीन, साद अथवा ज़ाल, ज़े, ज़ाद, ज़ोऽ के उच्चारणों मे भले ही मूलतः कुछ अन्तर रहे हों, परन्तु आज-कल वे अन्तर जानने और समझनेवाले लोग कठिनता से ही कही मिलेंगे। आधुनिक वर्ण-

कर लेती हैं। इसी लिए वर्तमान बहु प्रचलित और साहित्यिक भाषाओं का पुराना इतिहास जानने के लिए आधुनिक भाषाविद् पुरानी और स्थानिक बोलियों का भी गम्भीर अध्ययन करने लगे हैं, और संसार की साहित्यिक भाषाओं का जो काल क्रमिक और सुसम्बद्ध इतिहास प्रस्तुत हो चुका है उससे और पहले की स्थितियों का पता लगा रहे हैं। संसार के अनेक भागों में अब भी ऐसी बहुत सी असभ्य और जङ्गली जातियाँ बसती हैं जो लिखना पढ़ना बिलकुल नहीं जानतीं। ऐसी जातियों की बोलियाँ लिपिबद्ध करके उनके सभी अङ्गों का अध्ययन और विवेचन करना भी वर्णनात्मक भाषा शास्त्र का अंग बन गया है। इससे भी बढ़कर एक बात और है। बहुत सी ऐसी पुरानी जङ्गली जातियाँ भी किसी समय इस संसार में थीं जिनका अब बिलकुल अन्त हो चुका है, उनकी बोलियाँ लिखी हुई तो क्या मिलतीं, कहीं सुनने में भी नहीं आतीं। ऐसी अनेक बोलियों के सम्बन्ध में जो थोड़े बहुत साधन कहीं इधर उधर मिलते हैं उन्हीं का उपयोग करके उन बोलियों का क्षेत्रीय और भौगोलिक स्वरूप ही नहीं बल्कि उद्गम तक ढूंढ़ निकालने का प्रयत्न हो रहा है। जिस प्रकार पुरातत्त्व, प्राणि शास्त्र भौमिकी आदि के अन्वेषक विद्वान हजारों लाखों वर्ष पहले की बातों का पता लगाने में व्यस्त हैं, उसी प्रकार आधुनिक भाषाविद् भी आज से बीसियों हजार वर्ष पहले की बोलियों तक पहुँचने के प्रयत्न में लगे हैं। इस के लिए उन्होंने कुछ निश्चित क्रम, नियम और सीढ़ियाँ भी तैयार कर ली हैं, और वे उनका परीक्षण तथा संशोधन भी करते चलते हैं।

ध्वनि विज्ञान

भाषा और शब्द दोनों का मूल मनुष्य के कंठ से निकलनेवाली ध्वनियाँ ही हैं। ध्वनियाँ तो पशु-पक्षियों के कंठों से भी निकलती हैं और उनके अनेक प्रकार के मनोभाव प्रकट करती हैं, परन्तु वे हमारे विवेच्य विषय के बाहर हैं। मनुष्य के कंठ से भी कुछ ध्वनियाँ इसी प्रकार की निकलती हैं परन्तु वे भी भाषा और शब्द के क्षेत्र के बाहर की ही होती हैं। मनुष्य के कण्ठ से निकलनेवाली जिन ध्वनियों से शब्द, बोलियाँ और भाषाएँ बनती हैं उनका अध्ययन और विवेचन आरम्भ से ही भाषा शास्त्र का मुख्य अङ्ग रहा है। शब्दों का ठीक और शुद्ध उच्चारण तभी हो सकता है जब इस प्रकार की ध्वनियों का पूरा पूरा ज्ञान हो। विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न जातियों तथा भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी ध्वनियों की जानकारी होना

और भी अधिक आवश्यक होता है। इसी लिए अव ध्वनियो से सम्बन्ध रखने-वाला एक नया विज्ञान या शास्त्र ही वन गया है, जिसमे व्यावहारिक दृष्टि से और वैज्ञानिक आधार पर अनेक नये सिद्धान्त स्थिर होने लगे हैं।

यदि संसार भर की सभी वोलियो और भाषाओं का ध्यान रखा जाय तो कहा जा सकता है कि मनुष्य के कंठ से निकलनेवाली सार्थक ध्वनियाँ सैकड़ो क्या, बल्कि हजारो की संख्या तक पहुँच जायँगी। क्षेत्रीय और भौगोलिक दृष्टि से भी ध्वनियो के वहुतेरे भेद और प्रभेद होते हैं और जातीय, वर्गीय, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि दृष्टियो से भी। यहाँ तक कि कुछ अवस्थाओं मे ध्वनि मे परिवर्तन होने से ही किसी भाषा के शब्द, पद या वाक्य का अर्थ भी वहुत कुछ वदल जाता है। इसके सिवा ऐतिहासिक दृष्टि से भी इनके वहुत से भेद हो सकते हैं। कुछ पुरानी ध्वनियाँ धीरे-धीरे समय पाकर नष्ट भी हो जाती हैं; जैसे—वैदिककालीन ल़, और कभी-कभी वाहरी जातियो और वोलियो के सम्पर्क से नई ध्वनियों का प्रचलन और प्रसार भी होने लगता है। दूर क्यो जायें, पंजावी वोली में महाप्राण वर्णों का कुछ ऐसा विलक्षण उच्चारण होता है जिसका ठीक-ठीक अनुकरण भारत के अन्यान्य प्रान्तो के लोग नही कर पाते। असम प्रदेश की अनेक वोलियो मे भी कुछ ऐसी ध्वनियाँ मिलती हैं। दक्षिण भारत की तमिल, तेलुगू, कन्नड़ आदि भाषाओ मे भी अनेक ऐसी ध्वनियाँ प्रचलित हैं जिनमे से कुछ तो उत्तर भारतवालो ने ग्रहण कर ली हैं, पर कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें और लोग ग्रहण नही कर पाते। मराठी मे 'ल' के साधारण उच्चारण के सिवा एक और प्रकार का भी उच्चारण होता है जो इस प्रकार लिखा जाता है—ळ, और जिसे हम ल तथा ड का कुछ मिश्रित-सा रूप कह सकते हैं। इसका इसी से वहुत कुछ मिलता-जुलता ध्वनि-रूप उड़िया मे भी प्रचलित है। अरव और फारस से आनेवाले मुसलमान ट, ड और ड़ का उच्चारण करना नही जानते थे। इसी लिए उन्हे उर्दू लिपि मे टे, डाल, और ड़े की योजना करनी पड़ी थी और महाप्राण वर्णों का उच्चारण वतलानेके लिए दो-चश्मी हे वनानी पड़ी थी। देवनागरी वर्णमाला के 'ज्ञ' वर्ण का भारत के भिन्न-भिन्न भागो मे चार-पाँच प्रकार से उच्चारण होता है। हमारे यहाँ के तालव्य 'श' मूर्द्धन्य, 'ष' के उच्चारणो का अन्तर वहुत कम लोग समझ पाते हैं। उर्दू लिपि के 'से', सीन, साद अथवा ज़ाल, ज़े, ज़ाद, जोऽ के उच्चारणो में भले ही मूलतः कुछ अन्तर रहे हो, परन्तु आज-कल वे अन्तर जानने और समझनेवाले लोग कठिनता से ही कहीं मिलेंगे। आधुनिक वर्ण

नात्मक भाषा-शास्त्र मे ध्वनियो के ऐसे ही ससार-व्यापी भेद प्रभेदो का सकलन करके उनका अच्छी तरह अध्ययन किया जाता है और वैज्ञानिक ढग से उनका वर्गीकरण तथा विश्लेषण होता है।

पाश्चात्य भाषा शास्त्र मे ध्वनियो का अध्ययन हमारे यहाँ के शिक्षा शास्त्र और व्याकरण में आये हुए आभ्यतर और बाह्य प्रयत्नो के विवेचन से ही आरम्भ हुआ था। उन विवेचनो की शुद्धता का परीक्षण करने के लिए पहले तो ग्रामोफोन के रेकार्डों आदि से ही सहायता ली जाती थी, परन्तु आज कल के भाषा शास्त्रियो को वे पुराने विवेचन कई दृष्टियो से कुछ अधूरे जान पडने लगे और बहुत सी नई बातें सामने आने पर अब वे उनमे बहुत कुछ विस्तार और सशोधन करने के प्रयत्न म लगे हुए हैं। हमारे यहाँ के पुराने विवेचन तो भारतीय आर्यों की वदिक और संस्कृत भाषाओ के वर्णों पर ही आश्रित थे, परन्तु आज जब ससार भर की बोलियो और भाषाओ की ध्वनियो का अध्ययन तथा विश्लेषण होने लगा है तब नये उपाय और नये साधन भी काम म लाये जाने लगे हैं। आज कल पाश्चात्य देशो मे कई तरह के ऐसे छोटे बडे नये यन्त्र भी बन गये हैं जो केवल ध्वनियो के अध्ययन और अनुशीलन मे ही प्रयुक्त होते हैं। ऐसे यन्त्रो की सहायता से वे लोग यह पता लगा रहे हैं कि नई नई ध्वनियो के उच्चारण के समय और कितने नये प्रकार के आभ्यतर तथा बाह्य प्रयत्न होते हैं। जहाँ जल्दी म उच्चारित की हुई ध्वनियाँ स्पष्ट रूप से समझ म नही आती वहाँ यान्त्रिक क्रियाओ से उनका विस्तरण करके वर्गीकरण और विश्लेषण किया जाता है। हमारे यहाँ के सगीत शास्त्र के सातो स्वरो और २२ श्रुतियो के कम्पन और लम्बाई या विस्तार की नाप जोख तो बहुत पहले से भी भौतिक विज्ञान मे हो ही चुकी है, परन्तु अब कठ से निकलनेवाली छोटी से छोटी ध्वनियो का भी कम्पमान तथा विस्तार निश्चित होने लगा है। इस प्रकार के अन्वेषणों के आधार पर जो बहुत बडी सामग्री अब तक प्रस्तुत हो चुकी है, उसी ने इसे विशिष्ट विज्ञान का रूप दे दिया है।

ध्वनि ग्राम

आधुनिक ध्वनि विज्ञान की एक बहुत बडी और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—ध्वनि ग्राम। यों तो प्राय सभी भाषाएँ बोलनेवाले अपनी लिपियो के लिए अपनी ध्वनियों के सूचक अक्षर या वर्ण बना लेते हैं और उनसे अपना काम चलाते हैं परन्तु आधुनिक ध्वनि विज्ञान वेत्ता ध्वनियों के ऐसे निरूपण

से सन्तुष्ट नही हुए; और उन्होने ध्वनियो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अगो तत्वों और भेदो का बहुत ही गम्भीर विवेचन आरम्भ कर दिया। जिस प्रकार हमारे यहाँ के प्राचीन शास्त्रीय सगीतज्ञ स्वरो के सात प्रकार या भेद निश्चित करके ही सन्तुष्ट नही हो गये थे; बल्कि और आगे बढकर उन्होने पाँच स्वरो के कोमल और तीव्र रूप भी ढूँढ निकाले थे, और प्रत्येक स्वर का बहुत ही सूक्ष्म विश्लेषण करके प्रत्येक स्वर को कई-कई श्रुतियो मे विभक्त किया था, उसी तरह आधुनिक ध्वनि-विज्ञानी ध्वनियो के विश्लेषण, विभाजन और वर्गीकरण मे लगे हैं। अब तक ध्वनियो का जो निरूपण हुआ था वह कानो या श्रवणेन्द्रियो पर ही आश्रित था। परन्तु और अधिक गहराई तक पहुँचने के लिए उन्हे अनेक आधुनिक विज्ञानो से सहायता लेकर अनेक ऐसे नये यन्त्र बनाने पडे जो ध्वनियो के सूक्ष्मतम प्रकार और भेद स्पष्ट करने लगे है। उन्होने बहुत कुछ जाँच-पडताल करके यह स्थिर किया है कि प्रत्येक ध्वनि कई छोटी-छोटी ध्वनियो के योग से बनती है, और भिन्न-भिन्न शब्दों के उच्चारण करते समय एक ही ध्वनि मे अनेक सूक्ष्म अन्तर और भेद होते रहते हैं, और भिन्न-भिन्न शब्दो के उच्चारण मे एक ही ध्वनि कई प्रकार के विकृत रूप धारण करती है। उन्होने यह भी पता लगाया है कि एक ही ध्वनि के भिन्न-भिन्न अग किन परिस्थितियो मे और किन रूपो मे किस प्रकार वलित तथा निरूपित होते रहते है।* इसी लिए अब वे किसी ध्वनि को एक स्वतत्र इकाई न मानकर कई-कई छोटी ध्वनियो का सामूहिक रूप मानते हैं और ध्वनि के इसी समूहिक रूप को ध्वनि-ग्राम कहते हैं।

---

*हमारे यहाँ के प्राचीन वैयाकरणो ने भी इस तरह की बातो का बहुत कुछ अनुसन्धान करके शब्दो की सन्धियों के प्रकार और रूप निर्धारित किये थे, यथा—उत्+ज्वल=उज्ज्वल; उत्+शृङ्खल=उच्छृङ्खल; जगत्+नाथ=जगन्नाथ आदि आदि। हमारे प्राचीन वैयाकरणों ने अक्षरी के विचार से शब्दो के जो आर्त्त, कर्म्म, गर्ज्जन, मूर्द्धा, सूर्य्य आदि रूप स्थिर किये थे वे सर्वथा सहेतुक थे, और ध्वनियो के उच्चारण-भेद पर ही आश्रित थे। वस्तुतः कर्म्म, धर्म्म आदि और कर्म, धर्म आदि के उच्चारण मे 'म' बिलकुल एक-सा नही होता बल्कि एक दूसरे से कुछ भिन्न प्रकार के होते हैं। फिर भी जन-साधारण के सुभीते के विचार से उन्होने विकल्प की भी व्यवस्था कर दी थी, और कह दिया था कि आर्त, कर्म, गर्जन, मूर्धा, **सूर्य आदि** रूप भी लिखे जा सकते हैं।

अब हम एक दो उदाहरण देकर ध्वनि-ग्राम का स्वरूप स्पष्ट करना चाहते हैं। 'कँहार' शब्द ब्रज मे भी बोला जाता है, और बुन्देलखण्ड में भी, पूर्वी उत्तर प्रदेश मे भी बोला जाता है, और बिहार मे भी। परन्तु यदि आप इन चारों क्षेत्रो के लोगो के उच्चारण अच्छी तरह और ध्यानपूर्वक सुनें तो उन उच्चारणो म कुछ न कुछ अन्तर मिल ही जाएगा। ये अन्तर 'कहार शब्द के अलग अलग अक्षरो या वर्णों पर होनेवाले स्वराघातो के कारण तो होते ही हैं, उन अक्षरो या वर्णों के ध्वनि ग्रामो मे होनेवाली थोडी बहुत विभिन्नताओ के कारण भी होते हैं। ध्वनि ग्राम के विद्वानो का मत है कि 'कनक' के उच्चारण के समय पहले 'क' के ध्वनि ग्राम से अन्तिम 'क' का ध्वनिग्राम कुछ भिन्न प्रकार का होता है। इसी प्रकार 'मनन' के उच्चारण म दोनो 'न' और ममता' के उच्चारण मे दोनो 'म कुछ अलग अलग प्रकार से उच्चरित होते हैं। यही नही, उनका तो यहाँ तक मत है कि यदि एक ही व्यक्ति एक ही शब्द का कई बार या कई प्रसगो म अलग-अलग उच्चारण करे तो उस शब्द प्रकार के अक्षर या वर्ण अलग-अलग प्रकार के ध्वनि ग्रामो से युक्त होंगे।

एक बात और है। ध्वनि विज्ञान मे तो ससार भर की सभी बोलियो और भाषाओ की ध्वनियो का साधारणीकरण के आधार पर सामूहिक रूप से विचार होता है। परन्तु ध्वनि ग्राम हर बोली और हर भाषा म कुछ अलग प्रकार के और स्वतन्त्र हुआ करते हैं। अत हर बोली या भाषा के ध्वनि-ग्रामो का अध्ययन तथा विवेचन अलग अलग होता है। इसमे यह देखा जाता है कि किसी भाषा के शब्दो के उच्चारण में ध्वनियो का वितरण किस प्रकार होता है और उनके विभेदो के कारण अर्थों मे किस प्रकार के अन्तर उत्पन्न होते हैं। ध्वनि-ग्रामों का अन्तर उसी दशा मे माना जाता है जब ध्वनियों के उच्चारण भेद से शब्दों के अर्थों का अन्तर स्पष्ट रूप से सूचित होता हो। तात्पर्य यह कि अर्थ-सम्बन्धी अन्तर ही ध्वनि-ग्रामो का निरूपण करता है। यदि सुनाई पडनेवाली ध्वनियो से अर्थ मे कोई अन्तर न आता हो तो वे ध्वनियाँ एक ही ध्वनि ग्राम का अङ्ग मानी जाएँगी। उदाहरणार्थ कोई 'यमुना कहता है और कोई 'जमुना कोई 'सरयू कहता है, और कोई सरजू। यद्यपि 'य' और 'ज' स्पष्ट रूप स दो अलग अलग ध्वनियाँ हैं फिर भी उक्त उदाहरणो में अर्थ का कोई अन्तर नहीं है। इसलिए ऐसे परिवेश म 'य और 'ज दोनो एक ही ध्वनि के दो रूप माने जाएँगे। इस प्रकार की ध्वनियो को पारिभाषिक दृष्टि से सह ध्वनि कहते हैं।

अर्थ और कंठ-स्वर

यहाँ हम पदों और वाक्यों के आर्थी अन्तरों के भेदो के सम्बन्ध मे भी एक बात बतला देना चाहते हैं। गद्य और पद्य दोनों में श्लेष का प्रयोग तो होता ही है; और साहित्य में काकु अलंकार से जो विपरीत अर्थ निकलता है, उसका आधार भी कंठ-स्वर ही होता है। परन्तु यदि इन दोनों स्थितियाँ को अलग छोड़ दे तो हम देखते हैं कि कुछ अवसरों पर एक ही पद या वाक्य के एक से अधिक अर्थ अथवा आशय निकलते हैं। उनके ये अन्तर भी कभी तो हमारे कंठ-स्वर से सूचित होते; और कभी परिस्थितियो से। उदाहरण के लिए लीजिए :—राम राम। भक्त लोग जप और भजन के समय 'राम-राम' कहते हैं। दो परिचित या मित्र भेंट होने पर अभिवादन के रूप मे भी 'राम राम' कहते हैं। फिर बहुत अधिक भय या सकट सामने देखकर डर के मारे भी लोग 'राम राम' कहते हैं। और जब हमारे सामने कोई बहुत ही अनुचित या घृणित बात होती है तब उसके प्रति अपनी उपेक्षा या विरक्ति प्रकट करने के लिए भी हम 'राम राम' कहते हैं। अपने मन का आशय या भाव प्रकट करने की दृष्टि से उक्त पद के प्रयोग मे दिखाई देनेवाले ये अन्तर भले ही हमे विशेष महत्त्व के न जान पड़ें फिर भी ध्यान में रखने योग्य अवश्य हैं।

जब हमसे पूछा जाता है कि आप भी वहाँ चलेगे न ? तो हम कहते हैं—जी हाँ, क्यो नही ! ऐसे अवसरो पर यह वाक्य हमारा दृढ निश्चय सूचित करता है। परन्तु यदि किसी अच्छे काम के विरोधियो की चर्चा होती हो और कोई हम पर आक्षेप या व्यग्य करने के लिए कहे—'आप भी तो उन्ही लोगो के समर्थको मे हैं' तो भी हम अपना प्रतिरोध और रोष प्रकट करने के लिए कह बैठते हैं—जी हाँ, क्यो नही। ऐसे अवसरो पर यही वाक्य पूर्णतः प्रतिवादात्मक हो जाता है। उक्त दोनो अवसरो पर हमारा कण्ठ-स्वर ही यह सूचित करता है कि हमारा वास्तविक आशय या उद्देश्य क्या है। फिर अलङ्कार शास्त्र मे एक काकु अलङ्कार भी होता है। यह अलङ्कार वहाँ माना जाता है जहाँ हमारे कण्ठ-स्वर के आधार पर ही हमारी कही हुई बात का बिलकुल विपरीत अर्थ निकलता है, जैसे—यदि हम कहे कि क्या वह इतने पर भी नही मानेगा ? तो इसका यही आशय लिया जायगा कि वह अवश्य मानेगा। यदि हम किसी पर व्यग्य करते हुए कहे—'अजी उनका क्या कहना है। वह बहुत बड़े पण्डित ठहरे।' तो इसका आशय भी यही माना जायगा कि उसमें या तो पाडित्य है ही नही और यदि

है भी तो बहुत थोडा या नाम मात्र का। यदि हम कहें—उसने अपने पडोसी के घर में आग लगा दी तो यहाँ 'आग लगाने का' साधारण शब्दार्थ ही लिया जाएगा। परन्तु यदि हम कहें—यह सारी आग तुम्हारी ही लगाई हुई है' तो यहाँ 'आग लगाना' का मुहावरे वाला तत्व काम करेगा और आशय होगा—यह सारा झगडा या लडाई तुम्हारी ही खडी की हुई है।

साधारण बोल चाल के अवसरों पर भी कण्ठ-स्वर ही किसी शब्द पर अधिक, किसी पर साधारण और किसी पर कम जोर देता है। यह बात अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए नीचे के वाक्य देखिए —

(क) यह मेरी पुस्तक है।
(ख) यह पुस्तक मेरी है।
(ग) मेरी पुस्तक यह है।

उक्त तीनों प्रसंगों मे अलग अलग शब्दों के अर्थों का अंतर हमारे कण्ठ-स्वर अथवा साधारण स्वराघात से तो स्पष्ट हो ही जाता है परन्तु ध्वनि विज्ञानियों का मत है कि ऐसे अवसरों पर इनके ध्वनि ग्रामों में भी कई प्रकार के सूक्ष्म अंतर होते हैं।

शब्दीय व्याकरण

'हिन्दी शब्द सागर' का सपादन करते समय पहले तो कुछ दिनों तक हम लोग यही समझा करते थे कि जो कुछ काम हम लोग कर चुके हैं या कर रहे हैं वही बिलकुल ठीक और हर तरह से पूरा है परन्तु कुछ और आगे बढ़ने पर हम लोगों को अपने अधूरेपन और त्रुटियों का भान होने लग गया था। इस सम्बन्ध मे स्वर्गीय पडित रामचन्द्र शुक्ल से प्राय मेरी बातें हुआ करती थी जिनमें स्वर्गीय पडित केशवप्रसाद मिश्र का बहुमूल्य सहयोग भी हुआ करता था। उक्त दोनों विद्वान् मित्रों के निधन के उपरान्त इस प्रकार की चर्चा तो बन्द हो गई थी परन्तु अपनी कृति की त्रुटियों और दोषों की खटक मेरे मन में घर कर बैठी थी। मेरे लिए परिस्थितियाँ भी बराबर विकट बनी रहती थीं, और सहायकों तथा साधनों का भी अभाव रहता था। तो भी 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' और 'मानक हिन्दी कोश' के सम्पादन के समय भी तथा 'शब्द-साधना' और 'शब्दार्थ मीमांसा' के लेखन के समय भी मैं यह निरन्तर अनुभव करता रहता था कि हमारे यहाँ शब्दों के विवेचन और अध्ययन में अभी बहुत कमी है और यह कमी ऐसी है जिसे पूरा करने का निरन्तर प्रयत्न होता रहना चाहिए। हमारी भाषा ज्यों ज्यों

आगे बढती चलती है त्यो त्यो शब्दो के विवेचन का क्षेत्र भी बराबर विस्तृत होता चलता है। यदि हमें अपनी भाषा को सचमुच आगे बढ़ाना और उन्नत तथा सशक्त करना अभीष्ट हो, तो हमे शब्दो के सर्वांगपूर्ण विवेचन की ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिए।

यहाँ ये सब बाते लिखने की आवश्यकता एक विशेष कारण से उत्पन्न हुई है। इधर हाल मे श्री हैर्लड ई० पामर नामक विद्वान् की 'ए ग्रामार आफ इंगलिश वर्ड्स' (A Grammar of English Words) नामक पुस्तक देखने मे आई। इस पुस्तक मे यह बतलाया गया है कि शब्दों के साथ अर्थ-तत्त्व तो होता ही है; इसके सिवा व्याकरण का भी बहुत कुछ तत्त्व होता है। भाषा मे जो क्रियाएँ, विशेषण और संज्ञाएँ जितनी ही अधिक प्रचलित होती हैं उनके साथ उतना ही अधिक व्याकरणिक तत्व भी लगा रहता है। अव्ययो और विभक्तियो के संयोग से यह तत्त्व और भी बढ जाता है। यही कारण है कि न तो किसी भाषा के व्याकरण ही और न शब्द-कोश ही अन्य भाषा-भाषियो को उस भाषा के ठीक-ठीक प्रयोग बतलाने और सिखाने मे समर्थ होते है। शब्द-कोश तो शब्दो के अर्थ बतलाकर ही रह जाते हैं, और व्याकरण शब्द-भेदों, वाक्य-रचनाओ आदि के ऐसे पारिभाषिक विवेचनो के जंजाल मे जा पहुँचता है जिसकी सब बाते न तो साधारण विद्यार्थियों के लिए सुबोध ही होती हैं और न रुचिकर ही। दूसरी मुख्य बात यह है कि किसी भाषा का व्याकरण उसके भाषियो के लिए ही अधिक उपयुक्त होता है, अन्य भाषा-भाषियो के लिए वह अच्छा मार्ग-दर्शक और सहायक सिद्ध नही होता। श्री पामर का मत है कि शब्द-कोश तो एक सिरे पर रहते हैं और व्याकरण दूसरे सिरे पर, और इन दोनों सिरों के बीच मे जो विस्तृत क्षेत्र होता है वही वस्तुतः प्रयोग और व्यवहार का क्षेत्र होता है। अन्य भाषा-भाषियो को जब तक इस बीच वाले प्रायोगिक और व्यावहारिक क्षेत्र का पूर्ण ज्ञान न हो तब तक वे किसी भाषा का समुचित ज्ञान नही प्राप्त कर सकते। इसलिए किसी भाषा के नित्य काम मे आनेवाले और बहु-प्रचलित शब्दो के अर्थों के साथ व्याकरणिक तत्त्वो का विवेचन होना आवश्यक है। यदि हम अपनी भाषा के मुख्य-मुख्य शब्दो के अर्थ-विवेचन के समय बिना पारिभाषिक शब्दो की सहायता के उनके ठीक ठीक प्रयोग और व्यवहार उदाहरणो के सहित बतला सकें तो हम बहुत सहज में अन्य भाषा-भाषियों को अपनी भाषा सिखा सकते हैं।

यहाँ हम एक-दो छोटे मोटे उदाहरण देकर यह विषय और अधिक स्पष्ट कर देना चाहते हैं। शब्द-कोशो मे 'कभी' का अर्थ बतला दिया जाता है—किसी समय, और 'कहीं' का अर्थ बतला दिया जाता है—किसी स्थान पर। व्याकरण हमे बतला देता है कि ये दोनो शब्द अव्यय हैं। कोश और व्याकरण दोनो हमे बतला देते हैं कि 'का' षष्ठी विभक्ति का चिह्न और दो शब्दो के सम्बन्ध की सूचक विभक्ति है। अब जरा और आगे बढकर भाषा के व्यावहारिक क्षेत्र मे आइए। हम कहते हैं—(क) हमारा उनका कभी का परिचय नही है, और (ख) वह तो कभी का आकर तुम्हारे आसरे बैठा है। उक्त दोनो वाक्यो मे एक पद समान रूप से आया है, और वह है—कभी का। उक्त उदाहरणो मे से पहले वाक्य मे तो 'कभी का' का जो अर्थ है वह कोश और व्याकरण की सहायता से समझ मे आ जाता है। अन्य भाषा भाषी समझ लेता है कि इसका आशय है—किसी समय का परिचय नही है या पहले कभी परिचय नही हुआ था। परन्तु दूसरे वाक्य मे जो 'कभी का' है उसका अर्थ छोटे मोटे तथा साधारण शब्द कोशो मे नही मिलता। और इस अर्थ का विवेचन व्याकरण के क्षेत्र से भी बाहर है। 'शब्द सागर' और 'मानक कोश' मे इस 'कभी का' का अर्थ अवश्य मिलता है—बहुत देर से या बहुत पहले से। फिर भी इसका प्रयोग स्पष्ट कर दिखलानेवाला कोई उदाहरण उनमे से किसी कोश में नही है, और जब तक उदाहरण देकर इसका अर्थ स्पष्ट न किया जाय तब तक अन्य भाषा भाषियो के लिए उसका विशेष उपयोग नही है।

इसी प्रकार का एक और पद है—कहीं का। इसके भी दो प्रकार के प्रयोग होते हैं, यथा—(क) तुमने हमे कहीं का न छोडा, और (ख) पाजी या बदमाश कहीं का। दूसरे उदाहरण मे 'कहीं का' पद का जो अर्थ या आशय है, एक तो उस तक पहुँचना ही बहुत कठिन है और यदि किसी प्रकार पहुँच हो भी जाय तो शब्दो मे उसे स्पष्ट करके समझाना और भी अधिक कठिन है। हमारी समझ मे ऐसे अवसरो पर 'कहीं का' अर्थ होगा—किसी ऐसे अज्ञात स्थान का जो परम उपेक्ष्य नगण्य अथवा हीन हो। यह ठीक है कि 'शब्द सागर' और 'मानक कोश' मे इस प्रकार के बहुत से शब्दो और उनके प्रयोगों का विवेचन हुआ है, पर वह विवेचन कभी पूरा और व्यापक नही माना जा सकता। शब्दों के विवेचन की इसी प्रकार की त्रुटियाँ दूर करने का जो थोडा बहुत प्रयत्न 'मानक कोश' मे मैंने किया है उससे मैं अभी सन्तुष्ट नही हूँ और इसी लिए मैं चाहता हूँ कि हिन्दी के यथेष्ट प्रचार

के लिए हमें शब्दों के ऐसे सूक्ष्म अर्थ-भेदों और अर्थ-विवेचनो के काम की ओर भी पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय। इसके बिना हमारा भाषा-प्रचार और साहित्यिक उन्नति दोनों अधूरे ही रहेंगे।

सबसे पहले पंडित कामताप्रसाद गुरु ने अपने 'हिन्दी व्याकरण' मे कुछ अव्ययों आदि के सम्बन्ध में यह बतलाने का प्रयत्न किया था कि वे किन-किन प्रसंगों मे और किन-किन अर्थों मे प्रयुक्त होते हैं। वह मानों इस कार्य का श्रीगणेश मात्र था। इसके बाद 'हिंदी शब्द सागर' मे प्रायः सभी प्रकार के शब्दों का इस दृष्टि से विस्तृत विवेचन किया गया जिससे विद्यार्थी उनके प्रयोगों के प्रकार और स्वरूप अच्छी तरह समझ सके। परन्तु वह भी प्रारम्भिक कार्य था। इसके उपरान्त 'मानक हिन्दी कोश' मे बहुत सी पुरानी त्रुटियाँ दूर करने और प्रायोगिक विवेचन को विस्तृत करने और उदाहरणों आदि की सहायता से सुबोध बनाने का प्रयत्न किया था। परन्तु समय और साधन दोनों की कमी के कारण बहुत से ऐसे काम छूट गये थे जिन्हे मैं आवश्यक समझकर पूरा करना चाहता था। यद्यपि उक्त कोशों मे सभी प्रकार के शब्दों के विवेचन का बहुत कुछ काम हो चुका है, लेकिन जो कुछ हुआ है उसकी तुलना मे अभी बहुत अधिक काम होने की आवश्यकता है।

हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि हिन्दी के सभी आरम्भिक और नये विद्यार्थियों की पहुँच उक्त कोशों तक नही हो सकती। अतः हिन्दी के समुचित प्रचार के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी के सभी प्रकार के बहु-प्रचलित चार-पाँच हजार शब्द चुन लिये जायँ और इस रूप मे उनका विवेचन हो कि नये विद्यार्थी उनके शुद्ध प्रयोग समझ और सीख सकें। आधुनिक गद्य हिन्दी मे अँगरेजी की तुलना मे क्रियाएँ बहुत ही थोड़ी है। पुरानी हिन्दी मे संज्ञाओं से बननेवाली जो बहुत सी क्रियाएँ प्रचलित थी वे या तो प्रायः मर चुकी हैं या मरती जा रही हैं। इसलिए आज-कल की हिन्दी में प्रायः संज्ञाओं के साथ कुछ बची-खुची क्रियाएँ लगाकर ही अनेक प्रकार के भाव या विचार प्रगट किये जाते है। अतः प्रयोग की दृष्टि से क्रियाओ का महत्व बहुत बढता जा रहा है, और इसी अनुपात से क्रियाओं के प्रयोगो मे भूलें भी बढती जा रही है। क्रियाओं की विस्तृत व्याख्याएँ होनी चाहिएँ और यथेष्ट उदाहरण देकर उनके प्रयोगों के प्रकार स्पष्ट किये जाने चाहिएँ।

हमें यह भी जानना चाहिए कि छोटे से छोटे शब्द भी अनेक प्रकार के अर्थों के भण्डार होते हैं। उन भण्डारों के द्वार खोलकर हम अच्छी तरह देखना चाहिए कि उनमें कैसे-कैसे अर्थ रत्न भरे पड़े हैं और उन अर्थ रत्नों से नये विद्यार्थियों को परिचित कराना चाहिए। यह काम हिन्दी पाठकों के लिए भी और भावी लेखकों के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। हमारे महाविद्यालयों और हिन्दी विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभाग के अध्यापकों और प्राध्यापकों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्हें अपनी भाषा और उसके शब्दों पर नई दृष्टि से विचार करना चाहिए और विद्यार्थियों को भी इस ओर प्रवृत्त करना चाहिए। भाषा और शब्दों के क्षेत्र अनेक ऐसे अंग और विभाग हैं जिनके सम्बन्ध में बहुत अधिक खोज-काम करने की बहुत बड़ी आवश्यकता है। यदि स्नातकोत्तर विद्यार्थी ऐसे शोध-कार्य में लगाये जायँ तो हिन्दी का बहुत बड़ा उपकार होगा। इस समय भाषिक दृष्टि से हिन्दी की उन्नति और सम्पुष्टि का यही सबसे बड़ा काम हमारे सामने है।

अर्थ विज्ञान

भाषा और साहित्य का सारा ढाँचा शब्दों के आधार पर खड़ा होता है, और शब्दों का आधार उनके अर्थ होते हैं। शब्द और अर्थ के इस स्वरूप का अध्ययन और विवेचन बहुत दिनों से कई रूपों में होता आया है। परन्तु आज कल का वैज्ञानिक मानव उन रूपों से सन्तुष्ट नहीं है, और अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन्हें विज्ञान या शास्त्र का रूप देने में लगा है। आधुनिक भाषा शास्त्र में इसी लिए अर्थ विज्ञान की एक नई शाखा निकलने और पनपने लगी है। यों तो मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि अर्थ विज्ञान का बीजारोपण उसी समय हो चुका था जब मानव समाज में शब्द कोशों की रचना आरम्भ हुई थी। भाषा जब तक बोलचाल में प्रचलित रहती थी तब तक तो लोग अभ्यास और प्रयोग के आधार पर ही शब्दों के अर्थ समझ लेते थे, पर जब कोई भाषा बहुत पुरानी हो जाती थी और बोल चाल से बहुत दूर जा पड़ती थी तब उसके शब्दों के अर्थ जानने के लिए लोगों को शब्द-कोशों की आवश्यकता प्रतीत होती थी और साहित्यिक क्षेत्र में मानो यहीं से अर्थ विज्ञान का आरम्भ हुआ था। परन्तु आधुनिक युग में इसने बहुत कुछ विशुद्ध वैज्ञानिक रूप धारण कर लिया है और इस क्षेत्र में बहुत सी ऐसी नई बातें ढूँढ निकाली हैं जिनकी ओर प्राचीन विद्वानों का ध्यान नहीं गया था।

इस पुस्तक मे साधारण पाठको के लिए अर्थ-विज्ञान सम्बन्धी बहुत सी मुख्य और स्थूल बातो का विवेचन किया गया है। यह सारा विवेचन अर्थ-विज्ञान का बाह्य स्वरूप स्पष्ट करने के लिए ही हुआ है। परन्तु आधुनिक उन्नत अर्थ-विज्ञान तथा भाषा-शास्त्र के विद्वानो ने जिन बहुत सी नई बातो का पता लगाया है उनका भी यहाँ संक्षेप मे उल्लेख कर देना आवश्यक जान पडता है। आधुनिक अर्थ-विज्ञानियो और भाषाशास्त्रियो ने शब्दो और उनके अर्थों के सम्बन्ध मे दो अलग-अलग पक्ष स्थिर किये हैं। पहला पक्ष तो वह है जो मानव मात्र की प्रकृति के कारण संसार भर की भाषाओ मे समान रूप से देखने मे आता है। सभी भाषाओ मे आवश्यकतानुसार नये शब्द गढे और बनाये जाते हैं तथा दूसरो से लिए जाते हैं। उनमे समान रूप से आर्थी परिवर्तन और विकास होता है, नये अर्थ लगते और पुराने अर्थ छूटते हैं, नये शब्द बनते और पुराने शब्द छूटते हैं; शब्द-भंडार भी बराबर बढता रहता है, और भावो तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए आर्थी क्षेत्र का विकास भी होता रहता है। ये सब और इसी प्रकार की कुछ और ऐसी ही बाते प्राय: सभी भाषाओ में समान रूप से पाई जाती हैं। यही है अर्थ-विज्ञान और भाषा-शास्त्र का सार्वभौम रूप अथवा सार्विक पक्ष।

दूसरा पक्ष वह है जिसमे भिन्न-भिन्न जातियो और देशों की भाषा मे अनेक ऐसे निजी गुण और विशेषताएँ मिलती हैं जो अन्य भाषाओ से बहुत कुछ भिन्न तथा स्वतन्त्र होती हैं। अलग-अलग जातियाँ और देशो के लोग अपने शब्दो की रचना अलग-अलग प्रकार से करते हैं; अपने नये और मौलिक ढग से उनमे उपसर्ग, प्रत्यय आदि लगाते हैं; अपने भाव या विचार अलग-अलग ढग से व्यक्त करते हैं; और अलग-अलग ढग से लाक्षणिक तथा व्यग्यात्मक उद्भावनाएँ अभिव्यक्त करते हैं। प्रत्येक भाषा का इस प्रकार का रूढिगत रूप अन्यान्य भाषाओ से बहुत कुछ भिन्न होता है। यही है शब्द और अर्थ का दूसरा पक्ष।

अर्थ-विज्ञानी और भाषा-शास्त्री उक्त सभी प्रकार की बातो का अलग-अलग भी और सामूहिक रूप से भी तात्त्विक तथा सैद्धान्तिक दृष्टि से अध्ययन और विवेचन करते हैं; और तब उनसे नये-नये निष्कर्ष भी निकालते हैं। उन्हे यह भी देखना पडता है कि किसी भाषा के प्रवाह और विकास पर उसके भाषियो के धार्मिक, नैतिक आदि विचारो और विश्वासों की कितनी और कैसी छाप पड़ी है, और क्या-क्या ऐतिहासिक

और राजनीतिक प्रभाव पडे हैं तथा सामाजिक जीवन के संघर्षों और सम्पर्कों ने उसे किस प्रकार ढाला, मोडा या बलित किया है। इस प्रकार के लोग भाषाओं की उत्पत्ति और विकास पर प्राय सभी दृष्टियों से विचार करके जो नये मत या सिद्धान्त स्थिर करते हैं उन्हीं का सामूहिक नाम भाषा शास्त्र है, और शब्दार्थ सम्बन्धी उसकी शाखा अर्थ विज्ञान कहलाती है। विद्वानो का मत है कि भाषा और शब्दो की ऐसी छानबीन से जातियो और देशो के इतिहास की परम्परा और शृङ्खला की प्रस्थापना म बहुत बडी सहायता मिलती है।

पर्याय विज्ञान या पर्यायिकी

इधर कुछ दिनो से पाश्चात्य देशों में शब्दों और अर्थों के सूक्ष्म निरूपण के आधार पर उनके पारस्परिक अन्तर या भेद भी स्थिर होने लग हैं इसे हम अर्थ विज्ञान की एक शाखा ही कह सकते हैं। इसम ऐसे शब्द-वर्गों के अर्थों का गम्भीर विवेचन होता है जो लोक म साधारणत पर्याय समझे जाते हैं। इसी लिए इस शाखा का आधुनिक नाम 'पर्यायिकी रखा गया है। प्राचीन भारत मे शब्दार्थों का विचार मुख्यत उनकी निरुक्ति या व्युत्पत्ति के आधार पर ही होना था। परन्तु उनके परवर्ती तथा लोक प्रचलित अनेक अर्थों के पारस्परिक सूक्ष्म अन्तरो का विचार करन की ओर विशेष ध्यान नही दिया जाता था। हमारे यहाँ क्रियाओ गुणो, रूपो आदि के आधार पर किसी पुराने शब्द के लिए कई नये नये शब्द अवश्य गढ लिये जाते थे और प्रसग के अनुसार लोग अपनी आवश्यकता देखते हुए उन्ही म से शब्द चुनकर उनका प्रयोग करते थे। उदाहरण के लिए हमारे यहाँ कमल चन्द्रमा, समुद्र, सूर्य आदि के वाचक बहुत से शब्द हैं। कवि और साहित्य कार अपनी रचनाओ मे कभी तो छन्दो और मात्राओ के विचार से, कभी प्रसग के अनुसार और कभी उनकी विवक्षाओ का ध्यान रखते हुए उन्ही बहुतेरे शब्दों मे से कुछ शब्द चुनकर उनके प्रयोग करते थे। इससे कई प्रकार के लाभ होते थे। पहली बात तो यह है कि किसी रचना म आदि से अन्त तक किसी पदार्थ भाव या विचार का वाचक एक ही शब्द बारबार लाते रहने से उसमे एक तानता आ सकती थी जो पाठको म अरुचि या ऊब भी उत्पन्न करती थी और रस के परिपाक म भी बाधक होती थी। फिर हमारे यहाँ की अधिकतर साहित्यिक रचनाएँ छन्दोबद्ध या पद्यात्मक हुआ करती थी। छन्दों के चरण छोटे मँझोले और बडे सभी प्रकार के होते

थे। छन्द शास्त्र के नियमो के अनुसार कभी तो किसी चरण मे छोटे शब्दों की आवश्यकता होती थी, और किसी में बड़े शब्दों की। अनुप्रास, यमक आदि के विचार से भी और रचना में ओज, प्रसाद आदि गुण लाने के उद्देश्य से भी अनेक प्रकार के ऐसे विशेषण और संज्ञाएँ रखनी पड़ती थी जिनकी गिनती पर्यायो में हो सकती थी। हमारे यहाँ नये शब्द प्रायः इन्ही आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए गये गढे जाते थे। अनेक प्रकार के और बहुतेरे शब्दो के प्रयोग से कर्त्ता का पाडित्य भी सूचित होता था रचना-कौशल भी।

प्रत्येक भाषा का शब्द-भण्डार जिन कारणो से बढता है उनमे से एक मुख्य कारण उस भाषा के भाषियो का सास्कृतिक और साहित्यिक स्तर की उच्चता या मान भी है। जब किसी भाषा का शब्द-भण्डार यथेष्ट भरा-पूरा हो जाता है तब उसमे स्वभावत: एक ही प्रकार का आशय या भाव प्रकट करनेवाले कई-कई शब्दो का एक स्वतन्त्र वर्ग भी बन जाता है। अन्न, जल, धन, पृथ्वी, वायु आदि मे से प्रत्येक के जो बहुत से वाचक शब्द हमारे यहाँ प्रचलित हैं वे भिन्न-भिन्न अवसरो पर और भिन्न भिन्न आवश्यकताओ के विचार से गढे गये हैं। पर्यायकी मे पर्याय माने जानेवाले शब्दों का जो सूक्ष्म आर्थी विवेचन होता है उससे हमे यही पता चलता है कि किस अवसर पर और किस प्रकार की आवश्यकता पूरी करने के लिए कौन सा शब्द सबसे अधिक उपयुक्त भी होगा और सबसे अधिक प्रभावशाली तथा भाव-व्यञ्जक भी। जिस प्रकार अच्छे चित्रकार के लिए यह जानना आवश्यक है कि कहाँ कौन-सा रंग लगना चाहिए और कहाँ कैसी रेखा अंकित होनी चाहिए अथवा अच्छे सगीतज्ञ के लिए यह जानना आवश्यक है कि कहाँ तीव्र स्वर लगेगा और कहाँ कोमल, कहाँ गिटकिरी लेनी चाहिए और कहाँ फन्दा देना चाहिए अथवा किस स्वर की कौन-कौन-सी श्रुतियाँ हैं और उनका उच्चारण किस प्रकार होता है। उसी प्रकार अच्छे साहित्यकार के लिए यह जानना भी आवश्यक होता है कि किसी शब्द के कितने अर्थ होते हैं और उन अर्थों मे कौन-कौन-सी मुख्य विवक्षाएं है, और किस प्रसंग मे किस विवक्षा से युक्त कौन-सा शब्द प्रयुक्त होना चाहिए।

आगे बढ़ने से पहले हम यहाँ पर्यायों और उनकी विवक्षाओ के सम्बन्ध मे कुछ बातें बतला देना आवश्यक समझते हैं। पर्याय का पहला और मौलिक अर्थ है—चरो ओर चलना; घूमना या चक्कर लगाना। पर उसके और कई अर्थों मे मुख्य और सबसे अधिक प्रचलित अर्थ है—अर्थ की दृष्टि से कोई ऐसा

शब्द जो उसी प्रकार का अर्थ रखनेवाले दूसरे शब्द के स्थान पर प्रयुक्त हो सके। अंगरेजी में सिनॉनिम (Synonym) का भी ठीक यही अर्थ है। परन्तु आज कल पर्याय का वह पुराना अर्थ तो छूट चला है और उसके स्थान पर कुछ बदला हुआ एक नया अर्थ लग गया है। प्रस्तुत प्रसंग में पर्याय मान जानेवाले शब्द दो प्रकार के होते हैं। अब हम ऐसे दो शब्दों को पर्याय कहते हैं जो हमारी भाषा के ही हों और अपने वर्ग के दूसरे शब्दों के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हों। उदाहरण के लिए संस्कृत और हिंदी में हम जिन्हें चन्द्रमा और सूर्य कहते हैं वे फारसी में माहताब और आफताब कहे जाते हैं, और अँगरेजी में उन्हें मून (moon) और सन (Sun) कहते हैं। ऐसे शब्द एक दूसरे के समानार्थक या समार्थक* ही कहे जाएंगे, पर्याय नहीं, क्योंकि हम अपनी भाषा में फारसी या अँगरेजी के शब्द ज्यों के त्यों नहीं ले सकते।

हाँ, पुरानी व्याख्या के अनुसार रत्नाकर समुद्र और सागर एक दूसरे के पर्याय अवश्य हैं क्योंकि इनका एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग हो सकता है। परन्तु आज कल की नई व्याख्या के अनुसार उक्त तीनों शब्द भी समानार्थक या समार्थक वर्ग में चले जाते हैं और पर्याय के क्षेत्र में ऐसे शब्द-वर्ग लिये जाते हैं जिनका आधारिक या मूल अर्थ तो बहुत कुछ एक ही सा हो, परन्तु जिनमें कुछ अलग अलग और नई नई विवक्षाएं भी लगी हों। जन साधारण ऐसे शब्दों के आधारिक या मूल अर्थ ही जानते हैं, और इसी लिए उनमें से एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं। परन्तु पर्यायकी हमें यह बतलाती है कि हमें उनका आधारिक या मूल अर्थ तो एक ओर छोड़ देना चाहिए और उनकी विवक्षाओं का अध्ययन करके उनका पारस्परिक अन्तर या भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और विवक्षा

* कुछ लोग ऐसे शब्दों को एकार्थक और समानक भी कहते हैं, पर हमारी समझ में ऐसा कहना ठीक नहीं है। एकार्थक का मुख्य अर्थ होता है—एक ही अर्थ वाला (अर्थात् ऐसा शब्द जिसका एक ही अर्थ हो)। इससे यह भाव नहीं सूचित होता है कि शब्द तो दो अलग अलग हैं पर उनका अर्थ एक ही है। इसी प्रकार समानक का अर्थ होता है—सम अर्थात् एक ही सा मान रखनेवाले। समान मान रखनेवाले बहुत से पदार्थ हो सकते हैं सेर भर गेहूं सेर भर दाल और एक रुपए का सिक्का—तीनों समानक हो सकते हैं। समानक का प्रयोग इसी लिए ठीक नहीं है कि न तो इसमें शब्द का सूचक कोई तत्त्व है और न अर्थ का सूचक।

गत अन्तर या भेद का ध्यान रखकर साहित्य मे ठीक तरह से उनका प्रयोग करना चाहिए।

पर्यायकी का महत्व

भाषा के प्रायोगिक और व्यावहारिक क्षेत्र मे पर्यायकी के ठीक और पूरे ज्ञान से हमे जितनी अधिक सहायता मिलती है उतनी और किसी चीज या बात से नही मिलती। पर्यायकी का मुख्य कार्य है—सभी प्रकार के शब्दों का स्पष्ट रूप हमे बतलाना और उनके अर्थो, आशयो और भावों का क्षेत्र और सीमा निर्धारित करना। जब तक इन सब बातो का हमे अच्छा ज्ञान न हो तब तक न तो, हमारी भाषा मे ओज आ सकता है, न प्रभावशालिता और न स्पष्ट भावव्यञ्जन। हम अपने अच्छे से अच्छे आशय या भाव तभी स्पष्ट कर सकते हैं जब हमारी भाषा मे शब्दो का ठीक और समुचित उपयोग न हो। इसके बिना हमारे आशय या भाव कुण्ठित और निष्प्रभ रह जाते है। आज-कल जितने अच्छे कवि, लेखक और वक्ता हुए है वे पर्यायकी के वैज्ञानिक तत्त्वो और सिद्धान्तो से भले ही परिचित न रहे हो; फिर भी उनमे दो बाते अवश्य होती है। एक तो उनका शब्द-भण्डार बहुत बड़ा होता है; और दूसरे शब्दो के अर्थो का भी बहुत अच्छा ज्ञान होता है। इसी के फल-स्वरूप वे अवसर, प्रसग और विषय के अनुसार ऐसे उपयुक्त शब्दो का चुनाव करते हैं जिनसे उनका आशय और उद्देश्य पूरी तरह से दूसरो की समझ मे आ जाते हैं; और वे उनसे प्रभावित होकर उनके अनुयायी, प्रशसक अथवा वशवर्ती हो जाते हैं। जब तक ये सब बाते न हो तब तक कवि, लेखक या वक्ता का परिश्रम कभी फलप्रद और सार्थक नही हो सकता। यदि आप भी अच्छी साहित्यिक कृति प्रस्तुत करना चाहते हो तो आपका आवश्यक कर्तव्य हो जाता है कि आप पर्यायकी का अच्छी तरह अध्ययन और अनुशीलन करे; और तब शब्दो का उपयुक्त चुनाव कर के अपनी कृति मे चार चाँद लगावे। यो तो शब्दो के ठीक चुनाव के बहुतेरे उदाहरण दिए जा सकते है; फिर भी हम यहाँ इस प्रकार के कुछ शब्द देकर अपना आशय स्पष्ट कर देना चाहते हैं। जलाशय, नद, समुद्र सरीखे और सवर्गीय प्रसगो के सम्बन्ध मे 'दुस्तर' विशेषण का ही प्रयोग उचित होगा। पर्वतो अथवा उनकी तरह उच्चताओ और सघनताओ के प्रसग मे 'दुर्लंघ्य' का प्रयोग ठीक होगा। कर्तव्यो और कार्यो सरीखी बातो के सम्बन्ध मे 'दुष्कर' का और साधनाओं तथा निरन्तर प्रयत्नो की अपेक्षा रखनेवाले शब्दो के सम्बन्ध में 'दुस्साध्य' का, घेरो, दुर्गो

आदि के वर्गों के साथ 'दुर्मेध' का, और गम्भीर विषयों, विवेचनों अथवा ऐसे ही दूसरे कामों के सम्बन्ध मे 'दुरूह' या 'दुर्बोध' सरीखे विशेषणों का उपयोग उचित होगा। यो तो इस प्रकार के और भी काय तथा शब्द बतलाए जा सकते हैं परन्तु विस्तार भय से हम इतना ही बतला देना यथेष्ट समझते हैं। आशा है, सुविज्ञ पाठक इतने से ही यह समझ लेंगे कि कब और कहाँ कसे शब्दो का चुनाव और प्रयोग करना चाहिए।

अपना आशय स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ ऐसी कुछ शब्दमालाओ या शब्द-वर्गों की एक छोटी सी सूची दे रहे हैं जिनके आधारिक या मूल अथ तो बहुत कुछ एक ही हैं, फिर भी जिनकी विवक्षाएँ एक दूसरी से बहुत कुछ भिन्न हैं।

अन्त, अवसान और समाप्ति,
अद्भुत, विचित्र और विलक्षण,
अनुराग प्रेम और स्नेह,
अनूठा, अनोखा और निराला,
असमजस, दुविधा और हिचक,
आश्चय कुतूहल और विस्मय
कपट छल और धोखा,
गलना घुलना और पिघलना,
तरग, लहर और वीचि,
द्वेष और वमनस्य,
लगाव, सम्पक और सम्बन्ध
वैर और शत्रुता,
शका, सदेह और सशय।

विचारशील पाठक सहज में समझ लेंगे कि इन शब्दा के आशय या भाव एक दूसरे से बहुत कुछ भिन्न हैं। परन्तु वह भिन्नता निरूपित या स्थिर कर सकना बहुत ही कठिन है और यदि मन मे वह भिन्नता समझी भी जा सके तो शब्दो मे उसे वर्णित करना और भी कठिन है। पर्यायकी का मुख्य क्षेत्र यही दोनों कठिन काम पूरे करना है।

यह तो हुई ऐसे शब्दो की बात जो हमारी भाषा मे बहुत दिनो से चले आ रहे हैं। परन्तु आज-कल हमारी भाषा मे बहुत से अंग्रेजी शब्दों के अनुकरण और आधार पर नये शब्द गढ़े जाने लगे हैं और ऐसे नये शब्दो के

अर्थों के सूक्ष्म भेद समझने के लिए पर्यायकी की आवश्यकता और उपयोगिता बहुत अधिक बढ जाती है। यहाँ हम इस प्रकार, के शब्द-वर्गों की एक छोटी सी सूची दे रहे हैं। अँग्रेजी के जिन शब्दो के लिए हिन्दी के पुराने शब्द प्रचलित अथवा स्थिर होने लगे है, उनमें भले ही पहले से हमारे यहाँ कोई भेद न पडा हो फिर भी अँगरेजी पर्यायकी में उनके जो भेद निरूपित हुए हैं उन्हें हिन्दी मे ग्रहण करना हमारे लिए अनिवार्य सा हो चला है। यदि अँगरेजी पर्यायकी मे निरूपित ये भेद-प्रभेद हम नही अपनावेगे तो भाषिक दृष्टि से हमारी हिंदी बहुत कुछ पिछडी रह जाएगी; और जिस हिंदी को हम अपने समस्त कार्यों मे अँग्रेजी का स्थान दिलाना चाहते है वह अँग्रेजी का स्थान लेने मे असमर्थ होगी : सूची इस प्रकार है :—

Bank	Shore
तीर	तट
Diplomacy	Politics
राजनय	राजनीति
Example	Instance, Illustration
उदाहरण	दृष्टात
List, Inventory	Catalogue
सूची, तालिका	सूचीपत्र
Requirement	Necessity, Need
अपेक्षा	आवश्यकता
Space	Sky, Firmament
अन्तरिक्ष	आकाश, महाव्योम
Specimen	Sample
नमूना	वानगी

यो तो छोटे-वडे सभी मनुष्य देखने मे बहुत कुछ एक ही तरह के होते है, पर उनके गुण, विचार, स्वभाव आदि एक दूसरे से या तो बहुत कुछ या थोडे बहुत भिन्न अवश्य होते है। यही बात ऐसे शब्दो के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिए जो देखने मे बहुत कुछ एक ही प्रकार या वर्ग के जान पड़ते है। वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक शब्द किसी विशिष्ट अवसर पर और किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए गढा या लिया जाता है। इसी लिए समझदारो का मत है कि प्रत्येक शब्द का एक स्वतंत्र अस्तित्व और स्वतंत्र महत्त्व होता है। परन्तु सब लोग सब शब्दो का ठीक-ठीक महत्त्व न जानने

या न समझने से ही एक की जगह उसी तरह के किसी दूसरे शब्द का प्रयोग कर चलते ह और दूसरे बहुत से लोग भी उन्ही का अनुकरण करने लगते ह। पर्यायकी हम यह बतलाती है कि एक से जान पडनेवाले कई शब्दो के आधारिक अथवा मूल अर्थ भले ही बहुत कुछ मिलते जुलते हो फिर भी उनमे से प्रत्येक शब्द मे कोई ऐसी स्वतत्र विवक्षा होती है जो उसे अपने सवर्गीय शब्दो से अलग रखती है। शब्दो की इस प्रकार की विशिष्ट विवक्षा का विवेचन ही पर्यायकी का मुख्य विषय है।

अब एक दो छोटे उदाहरण ले लीजिए। हम वृक्ष की छाया की जगह पेड की 'छाँह' तो कह सकते हैं, पर अर्थ या भाव की छाया की जगह छाह नही कह सकते। बाल्यावस्था मे भले ही हमने पढ या सीख लिया हो कि छाया' का अर्थ 'छाह होता है, पर इतने से ही हमारे सब काम नही चल सकते। कारण यही है कि छाया म जो कई सूक्ष्म विवक्षाएँ हैं वे सब की सब 'छाँह म नही आई हैं। इसका कारण यही है कि छाया का प्रयोग विद्वानो और साहित्यकारो ने जिन जिन अवसरो और प्रसगो म किया है उन सबसे न तो जन साधारण परिचित ही होते हैं और न नित्य प्रति के काम काज मे उन्ह कोई आवश्यकता ही होती है। फिर कुछ विशिष्ट शब्द या पद कुछ विशिष्ट अर्थों के सूचक हो जाते हैं और उनके अभिधाय मात्र से ही हमारे सब काम नही चल सकते। वश वृक्ष का जो आशय होता है वह खानदान का पेड से व्यक्त नही हो सकता। हाँ खानदान का पेड' से कुछ और ही अर्थ अवश्य निकल सकता है। कभी कभी दूसरो की देखादेखी भी हम अपने शब्दो की सूक्ष्म विवक्षाएँ भूल जाते हैं। हमारे यहाँ शक स देह और सशय ये तीनो शब्द एक ही वर्ग के हैं। परन्तु इन सब म विवक्षाएँ एक दूसरी से बिलकुल भिन्न हैं। हम अपने साहित्य के यथेष्ट ज्ञान के अभाव के कारण वे पुरानी विवक्षाएँ भूल गये हैं। फिर हम देखते हैं कि फारसी का एक 'शक' शब्द ही सब जगह समान रूप से प्रयुक्त होता है। अत हम भी एक 'सन्देह शब्द से ही अपने सब काम चला लेते हैं, और शका तथा सशय दोनो हमारे लिए व्यर्थ से हो जाते हैं। हम यह भी नही सोचते कि फारसी की तुलना मे सस्कृत का शब्द भण्डार कितना बडा और विपुल है। परन्तु साहित्यिको को तो इस प्रकार की बातो का ध्यान रखना ही पडता है, और रखना चाहिए ही।

हम ऊपर कह आए हैं कि पर्यायों का प्रयोग पहले मुख्यत साहित्यिक रचनाओ का लालित्य और सौदर्य बढ़ाने के लिए ही होता था। आज भी

हममे से अधिकतर लोग यही समझते हैं कि बहु-विध शब्दो के प्रयोग से भाषा का स्वरूप निखरता है। पर यही तक इसका अन्त नही है। साहित्यिक रचनाओ के लिए बहुत अधिक शब्दो का ज्ञान भी आवश्यक होता है और सब शब्दो के ठीक अर्थ और सूक्ष्म अन्तरो का ज्ञान भी अपेक्षित होता है। शब्दो का ठीक अवसर पर और ठीक अर्थों मे किया जानेवाला प्रयोग हमारी योग्यता का भी सूचक होता है। इसके सिवा आज-कल की नई परिस्थितियों मे पर्यायिकी की आवश्यकता और भी बढ गई है। न्याय-विभाग मे भी और राजनीति मे भी प्रायः एक-एक शब्द का सूक्ष्मतम अर्थ ढूँढा, देखा और निकाला जाता है। अनेक अवसरो पर तो अर्थ विवेचन के समय बाल की खाल निकालनेवाली कहावत तक चरितार्थ की जाती है। अतः हमारे लिए शब्दो के ठीक-ठीक अर्थो का ज्ञान प्राप्त करना दिन पर दिन और भी अधिक आवश्यक तथा महत्वपूर्ण होता जा रहा है। पर्यायिको का अध्ययन करनेवालो का एक और बहुत बड़ा लाभ होता है। उन्हे प्रत्येक शब्द और प्रत्येक भाव या विचार के सम्बन्ध मे सोचने-समझने का एक बिलकुल नया दृष्टिकोण प्राप्त होता है। वे प्रत्येक विषय के सूक्ष्मतम अङ्गों के विवेचन की एक नई कला सीखते है। अपने मत के प्रस्थापन के लिए उन्हे जो तर्क उपस्थित करने पडते है उनकी पुष्टि मे पर्यायिकी का ज्ञान और भी अधिक सहायक होता है। इसके सिवा किसी भाषा की पर्यायिकी का अध्ययन उस भाषा के मानकीकरण मे भी बहुत अधिक सहायक होता है, और उसे दुरूह या भ्रामक होने से बचाकर उसकी भाव-व्यञ्जकता और स्पष्टता बढाता है। यही कारण है कि मैं हिन्दीवालो के लिए पर्यायिकी का अध्ययन इतना अधिक आवश्यक समझता हूँ, और इसके अनुशीलन पर इतना जोर देता हू।

पहले पहल सन् १७१८ मे जिरर्ड नामक एक फ्रासीसी विद्वान् ने अपने एक ग्रन्थ मे यह बतलाया था कि पर्यायो को बिलकुल समानार्थी समझना बहुत बडी भूल है। इसी ग्रन्थ के अनुकरण और आधार पर इङ्गलैंड मे जॉन ट्रसलर नामक एक पादरी ने सन् १७७६ मे 'पर्यायवाची माने जानेवाले शब्दो मे भेद' नामक एक ग्रन्थ अग्रेजी मे प्रकाशित किया था। इस विषय का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'ब्रिटिश पर्यायिकी' (British Synonymy) के नाम से सन् १७९४ मे प्रकाशित हुआ था, जिसकी रचयित्री श्रीमती पियोजी थी। श्रीमती पियोजी अँगरेजी के सुप्रसिद्ध कोशकार और विद्वान् डा० जॉन्सन की घनिष्ट मित्र थी। यद्यपि इस ग्रंथ मे बहुत सी त्रुटियाँ थी और अनेक स्थानो पर शब्दो के अर्थों के सम्बन्ध मे डा० जॉन्सन ने मतभेद भी

प्रकट किया गया था, तो भी इस ग्रंथ से एक नई विचारधारा के प्रवाह में भी और अँगरेजी भाषा का स्वरूप स्थिर करने में भी बहुत कुछ सहायता मिली थी। तभी से और अनेक विद्वान इस विषय में रस लेने लगे, और अँगरेजी पर्यायकी क्रम क्रम से वैज्ञानिक और व्यवस्थित शास्त्र का रूप धारण करने लगी। अब तक अँगरेजी में इस विषय के पचीसों ग्रंथ प्रस्तुत हो चुके हैं, जिनमें क्रब, फर्नाल्ड आदि के पर्याय कोश परम उपयोगी हैं। सन १९४२ में अमरिका से जो वेबस्टर कृत पर्यायकोश निकला था उसमें शब्दों के वर्गीकरण अर्थों के विवेचन तथा प्रयोगों के उदाहरण आदि सभी ऐसी सीमा पर पहुँचा दिये गये हैं कि उससे आगे बढने के लिए अभी बीसियों बरस लगेंगे। फिर भी अनेक पाश्चात्य देशों में बडे-बडे विचारशील विद्वान् इस विषय में बहुत से नवीन अनुसंधान करते चलते हैं और इस विशिष्ट तथा विशुद्ध शास्त्र बनाने के प्रयत्न में लगे हैं। इन सभी कोशों में शब्दों के अर्थों तथा प्रयोगों का इतना अधिक सूक्ष्म विवेचन हुआ है कि देखकर दंग रह जाना पडता है—समझ में नहीं आता कि इस ऊँचाई तक पहुँचने में कितने दिन लगेंगे।

इस विषय की ओर एक दिन मेरा ध्यान यों ही संयोग वश हो गया था। मेरे सुयोग्य मित्र श्रीयुक्त शिवनाथ प्रसाद जी बेरी प्रायः मेरे यहाँ आया करते थे और हम लोगों में भाषा तथा शब्दों की चर्चा होती थी। प्रसंग चला—खेद, दुःख, शोक आदि के प्रयोगों का। हम लोग इनके अलग अलग अर्थ और भाव का विवेचन करने लगे। श्री बेरी जी के अनुरोध पर मैंने 'दुःख का परिवार' शीर्षक एक छोटा सा लेख लिखकर स्थानीय 'आज' में प्रकाशित कराया। कुछ मित्रों को यह लेख बहुत पसन्द आया और उन्होंने इस विषय की चर्चा और आगे बढ़ाने का आग्रह किया। कुछ मित्रों ने अँगरेजी पर्यायकोशों के एक दो ग्रंथों के नाम भी बतलाए। मैंने वे ग्रंथ मँगवाकर उनका अध्ययन किया और प्रायः दो वर्षों के परिश्रम से १०-११ वर्ष पूर्व शब्द-साधना नामक पुस्तक तैयार करके [illegible] गान्धि रत्न माला कार्यालय से प्रकाशित की थी। भारत सरकार के शिक्षा विभाग के कुछ अधिकारियों को यह काम पसन्द आया था इसलिए शिक्षा विभाग ने यह काम और आगे बढ़ाने के लिए मुझे अनुदान देना भी निश्चित किया था। शब्द साधना इस विषय का पहला काम था इसलिए उसमें शब्दों के वर्गीकरण की दृष्टि से भी और अर्थ विवेचन की दृष्टि से भी अनेक त्रुटियों का होना स्वाभाविक ही था। राजकीय अनुदान का सहारा पाकर मैं व सब

त्रुटियाँ दूर करना और 'शब्द-साधना' को नया रूप देना चाहता था। परन्तु दुर्भाग्यवश कुछ क्षेत्रो से मेरे मार्ग मे बड़ी-बड़ी बाधाएँ खडी की जाने लगी, और मैं जो कुछ करना चाहता था उसके लिए मुझे अवसर ही न मिल पाया। तो भी उसका बहुत कुछ संशोधित और परिवर्द्धित रूप 'शब्दार्थ मीमांसा' के नाम से प्रस्तुत हुआ जो बहुत कठिनता से सन् १९६५ के आरम्भ मे भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा प्रकाशित हुआ। उसमे प्राय: २१०० शब्दो के अर्थों का सूक्ष्म विवेचन तो हुआ था, परन्तु उसके अन्त मे शब्दानुक्रमणिका न लगने के कारण कोई विशिष्ट शब्द ढूँढ निकालना असभव नही तो बहुत कठिन अवश्य था। अब मैं इस काम को फिर नये रूप मे और नये सिरे से आगे बढाना चाहता हूँ, और इसी लिए यह 'शब्दार्थ दर्शन' पुस्तक हिन्दी जगत् को अर्पित कर रहा हूँ। इसमे शब्दो का अर्थ-विवेचन अक्षर-क्रम से देकर इसे शब्द-कोश का रूप दे दिया गया है जिसमे जिज्ञासुओ को कोई शब्द ढूँढने मे कष्ट न हो। इसमे मैंने ऐसे सैकडो नये शब्दो का विवेचन किया है जिनका पहले की उक्त दोनों पुस्तको मे विवेचन नही हुआ था। इसमे थोडे से पुराने विवेचित शब्द भी आ गये है, पर बहुत कुछ नये रूप में आये हैं। हो सकता है कि इसमे भी बहुत सी त्रुटियाँ और भूले हो, और इसमे सशोधन और सुधार की आवश्यकता हो। फिर भी मैं यह समझता हूँ कि यह पुस्तक हिन्दी पर्यायकी के मार्ग-दर्शन मे बहुत कुछ सहायक होगी। मानसिक और शारीरिक दोनो ही दृष्टियो से मैं दिन पर दिन शिथिल होता जा रहा हूँ। फिर भी जब तक शरीर चलेगा तब तक कुछ न कुछ करता ही चलूँगा और अपने साथ यह आशा लेकर परलोक जाऊँगा कि आनेवाली पीढ़ियाँ इस काम को अच्छी तरह आगे बढाकर हिन्दी को भी ससार की प्रमुख तथा श्रेष्ट भाषाओ मे स्थान दिलावेगी।

अन्त मे मैं इस सम्बन्ध की एक और उल्लेखनीय घटना की भी कुछ बाते बतला देना चाहता हूँ। जिन दिनो 'शब्दार्थ-मीमासा' का काम चल रहा था उन्ही दिनों मेरे छोटे भाजे चि० बदरीनाथ कपूर पी० एच० डी० के लिए प्रबन्ध प्रस्तुत करना चाहते थे। उन्होने प्रामाणिक हिन्दी कोश और मानक हिन्दी कोश मे भी तथा शब्द-साधना और शब्दार्थ मीमासा मे भी मेरे साथ बहुत कुछ काम किया था और शब्दो के सूक्ष्म आर्थी विवेचन मे उनकी रुचि बराबर बढ रही थी। अत. हम लोगो ने श्री शिवनाथ प्रसाद जी बेरी के परामर्श से यही निश्चित किया कि चि० बदरीनाथ के प्रबन्ध का विषय

पर्यायकी ही हो क्योंकि इस क्षेत्र में हिन्दी ही क्या कदाचित् ही किसी अन्य भारतीय भाषा में कोई काम हुआ हो। अतः उनके विषय का नामकरण हुआ—हिन्दी पर्यायों का भाषागत अध्ययन। उनके निर्देशक भी नियत हुए भाषा विज्ञान के सुप्रसिद्ध विद्वान् और मेरे परम प्रिय बन्धु डा० हरदेव बाहरी। इस कार्य के निर्देशन में उन्होंने बहुत अधिक रस लिया। प्राय तीन वर्षों के परिश्रम से चि० बदरीनाथ ने जो प्रबन्ध प्रस्तुत हुआ वह प्रस्तुतिकरण, विवेचन और विश्लेषण की दृष्टि से बहुत प्रशंसनीय प्रयास रहा। इसके परीक्षकों ने इसकी यथेष्ट प्रशंसा की और फिर जब प्रयाग के हिन्दी साहित्य सम्मेलन से यह प्रबन्ध प्रकाशित हुआ तब डा० सिद्धेश्वर वर्मा सरीखे उत्कृष्ट भाषाविद् तथा अन्य कई विद्वानों ने मुक्त कंठ से इसकी प्रशंसा करके चि० बदरीनाथ को परम उत्साहित किया। मैं इसे हिन्दी में पर्यायकी के आरम्भ का बहुत शुभ लक्षण समझता हूँ और आशा करता हूँ कि अर्थ विज्ञान की इस शाखा का अध्ययन और विवेचन निरन्तर कुछ न कुछ आगे बढ़ता रहेगा।

३

अर्थ-विवेचन की कला

शब्दो और अर्थो के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन करना मूलत. निरुक्त या भाषा-विज्ञान का काम है। निरुक्त के बाद साहित्य-शास्त्र मे कुछ दूसरी दृष्टि से यह विवेचन और अधिक पल्लवित होता है—इस विषय का और भी सूक्ष्म विचार किया जाता है। अभिधा से निकलनेवाला अर्थ अभिधेयार्थ, लक्षणा से निकलनेवाला अर्थ लक्ष्यार्थ, और व्यञ्जना से निकलनेवाला अर्थ व्यग्यार्थ कहलाता है। परन्तु कोशकार को भी शब्दो और अर्थों से बहुत काम पडता है, बल्कि यो कहना चाहिए कि उसके सारे काम का अधिकाश मुख्यत: शब्दो और उनके अर्थो से ही सम्बद्ध होता है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि कोशकार शब्दो और अर्थों के सैद्धान्तिक सम्बन्धवाले क्षेत्र से आगे बढ़कर उनके व्यावहारिक सम्बन्धवाले क्षेत्र मे प्रविष्ट होता है, जहाँ उसका दृष्टि-कोण बहुत कुछ बदल कर बिलकुल नया और स्वतन्त्र हो जाता है। यहाँ हम इस विषय का उसी नये दृष्टि-कोण से विचार करते हुए यह बतलाना चाहते हैं कि एक अभिधानिक या कोशकार के कार्य के लिए शब्दो के अर्थ कितने प्रकार के होते हैं अथवा अर्थ के विचार से कितने प्रकार या वर्ग होते है। इसी के साथ इस बात का भी विचार हो जायगा कि शब्दो और अर्थों के प्रायोगिक सम्बन्धवाले क्षेत्र मे कोशकार कहाँ तक और क्या काम कर सकता है, अथवा उसे कितना और कैसा काम करना चाहिए।

शब्द वस्तुत. क्रियाओ, गुणो, घटनाओ, पदार्थो आदि के सूचक सकेत मात्र होते हैं और ये सकेत भी साधारणत. उन्ही लोगो के काम के होते हैं जो उनका आशय समझते हो। किसी भाषा या समाज मे प्रचलित शब्द उसी भाषा के बोलने और समझनेवालो के काम के ही होते हैं। हाँ, विद्यार्थियों, विशेषत: अन्य भाषा-भाषी विद्यार्थियो के लिए बहुत से शब्द नये हो सकते हैं, और उन शब्दों का अर्थ, आशय या भाव समझने के लिए किसी प्रकार के विवरण या व्याख्या से सहायता लेनी पड़ती है। शब्दकोशो का काम ऐसे ही सुगम और सुबोध विवरण तथा व्याख्याएँ प्रस्तुत करना होता है। परन्तु इस प्रकार के विवरण और व्याख्याएँ प्रस्तुत करने मे बहुत

कुशलता, योग्यता और सतर्कता की आवश्यकता होती है। यदि ऐसा न हो तो कोश रचना का उद्देश्य सिद्ध नही हो सकता, और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोशकार को शब्दो के सभी प्रकार के आशयो, प्रयोगो, भावो आदि से पूर्णत परिचित होना पडता है, और इस प्रकार का पूर्ण परिचय हो जाने पर आर्थी विवेचन की कला का उत्कृष्ट ज्ञान कोशकार का सबसे बडा सहायक होता है।

शब्द कोश का वास्तविक महत्त्व उसमे दिए हुए शब्दो के अर्थो और व्याख्याओ पर आश्रित है क्योकि उसका मुख्य उपयोग अर्थ और परिभाषा या व्याख्या जानने के लिए ही होता है। कभी कभी लोग शब्दो के शुद्ध रूप या अक्षरी, निरुक्ति, लिंग शब्द भेद आदि जानने के लिए भी कोशो का सहारा लेते हैं पर कोश का यह उपयोग अर्थोवाले उपयोग की तुलना मे गौण ही होता है। अत हम कह सकते हैं कि शब्द वस्तुत शब्द कोश के शरीर मात्र के रूप मे होते हैं *उसके प्राण या आत्मा का स्थान अर्थों और* व्याख्याओ का ही प्राप्त है। जिन कोशो में शब्दो के अर्थ और व्याख्याएँ बिलकुल ठीक शुद्ध और स्पष्ट न हो और जिनके उपयोग से पाठको की शकाओ का निवारण तथा ज्ञान की वृद्धि न हो वे कोश बहुत कुछ निर्जीव या अल्प प्राण होते हैं।

अच्छे शब्द कोशो का उपयोग सभी तरह के लोग करते हैं, जिनमे बहुत से अन्य भाषा भाषी भी होते हैं। यह ठीक है कि हिन्दी शब्द कोश का उपयोग अधिकतर हिन्दी भाषी भी ही करेंगे। पर उसका उपयोग करनेवाले अन्य भाषा भाषियो की सख्या भी कम न होगी। आज कल हिन्दी राजभाषा बन गई है और उसका अध्ययन तथा प्रचलन भारत के सभी राज्यो मे पहले की अपेक्षा बहुत अधिक हो रहा है और विदेशो मे दूर दूर तक होने लगा है। इन परिस्थितियो मे हिन्दी के कोशो का महत्त्व बहुत अधिक बढ गया है। अत हिन्दी के भावी कोशकारो को इस बात का ध्यान रखना पडेगा कि हमारे दिये हुए अर्थो और व्याख्याओ से अन्य भाषा भाषी भ्रम मे न पड़ें और उनसे ठीक और पूरा लाभ उठा सकें। बल्कि हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि हमारे शब्द कोशो से भी उनका वैसा ही सतोष तथा समाधान हो, जैसा अन्य उन्नत भाषाओ के प्रथम श्रेणी के कोशो से होता है।

अब हम कुछ उदाहरण देकर अपना आशय स्पष्ट करना चाहते हैं। मान लीजिए कि आप कोश में भार्या शब्द का अर्थ देखना चाहते हैं। यदि उसमें

आपको उसका अर्थ मिले 'औरत' या 'स्त्री' तो क्या यह अर्थ ठीक होगा? कदापि नही। वस्तुत: बात यह है कि 'भार्या' संस्कृत के 'भार्य' (विशेषण) का स्त्री० रूप है जो संज्ञा के रूप मे प्रचलित हो गया है। व्युत्पत्तिक दृष्टि से भार्या का अर्थ होगा—ऐसी स्त्री जिसका भरण-पोषण करना किसी विशिष्ट पुरुष के लिए आवश्यक, उचित तथा कर्तव्य हो, अर्थात् ऐसी स्त्री जो भरण-पोषण की अधिकारिणी या पात्री हो। परन्तु सामाजिक दृष्टि से जोरू या पत्नी ही भरण-पोषण की अधिकारिणी समझी जाती थी, इसलिए उसका परवर्ती और विकसित अर्थ हो गया—जोरू या पत्नी। 'औरत' तो मूलत: 'मर्द' का और 'स्त्री' मूलत: 'पुरुष' का स्त्री० रूप है। यह ठीक है कि 'औरत' या 'स्त्री' का एक अर्थ 'जोरू' 'पत्नी' या 'भार्या' भी होता है; परन्तु 'औरत' या 'स्त्री' का वह प्राथमिक अर्थ नही है बल्कि परवर्ती और गौण अर्थ है। नारी, महिला और स्त्री मे भी ऐसे ही अर्थ-भेद हैं। 'खेह' का अर्थ धूल और राख एक साथ देना ठीक नही है, क्योकि धूल अलग चीज है और राख अलग चीज। 'सम्पूर्ण' और 'समस्त' में जो अन्तर है, वह इन वाक्यो से स्पष्ट हो जायगा—(क) यह सम्पूर्ण ग्रन्थ महत्त्व की और विचारणीय बातो से भरा हुआ है, और (ख) उनके समस्त ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित ही पडे हैं। इन वाक्यो मे 'समस्त' की जगह 'सम्पूर्ण' या 'सम्पूर्ण' की जगह 'समस्त' का प्रयोग ठीक न होगा। 'आकृष्ट' और 'आकर्षित' प्राय: समानार्थक समझे जाते हैं। परन्तु तात्त्विक दृष्टि से दोनो के अर्थों मे कुछ अन्तर है या होना चाहिए। 'आकृष्ट' का ठीक अर्थ होगा—खिंचा हुआ, और 'आकर्षित' का अर्थ होगा—खीचा हुआ। इसी प्रकार 'विभक्त' का अर्थ होगा—जो मुख्य भाग से काटकर अलग कर दिया गया हो; और 'विभाजित' का अर्थ होगा—जिसका विभाजन किया गया हो। इसी प्रकार बुरा, खराब, अनुचित, ना-मुनासिब सरीखे अर्थ एक साथ नही दिये जाने चाहिए। बुरा और खराब एक वर्ग मे रहेगे और अनुचित तथा ना-मुनासिब दूसरे वर्ग मे। यो साधारणत: 'निषेध' और 'वर्जन' एक दूसरे के पर्याय माने जाते है, परन्तु 'निषिद्ध' और 'वर्जित' के अर्थो पर ध्यान देने से दोनो का अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

इस सम्बन्ध मे हिन्दी शब्द-सागर का 'अधिकार' शब्द उदाहरण के रूप मे लिया जा सकता है। उसमें इसके पहले अर्थ के अन्तर्गत ये शब्द मिलते हैं—कार्यभार, प्रभुत्व, आधिपत्य और प्रधानता। यह स्पष्ट है कि इन चारों शब्दो के मुख्य अर्थों में कई बड़े और महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं। इसी प्रकार इस

शब्द के तीसरे अर्थ में ये शब्द मिलते हैं—दावा, कब्जा और प्राप्ति। परन्तु पहले हमें किसी चीज के सम्बन्ध में अपना दावा पेश करना पड़ता है, और जब हमारा दावा मान लिया जाता है और वह चीज हमें दिला दी जाती है तब उस पर हमारा कब्जा होता है, और इसके उपरान्त हम कह सकते हैं कि वह चीज हमें प्राप्त हुई है अथवा हम उसकी प्राप्ति हुई है।

तरङ्ग लहर और वीचि में अन्तर है। संस्कृत में भी और हिन्दी में भी इन तीनो शब्दो के अर्थों में विशेष अन्तर नहीं माना गया है फिर भी कुछ सूक्ष्म अन्तर हैं ही। अँगरेजी के wave शब्द का भी इसी प्रकार तीनो अर्थों में प्रयोग होता है। फिर भी आप्टे और मानिअर विलियम्स के संस्कृत अँग्रेजी कोशो में इन तीनो शब्दो के आगे wave तो दिया ही है परन्तु लहरि के आगे उसके साथ bellow भी दिया गया है, और वीचि के आगे उसके साथ ripple भी मिलता है। (विशेष देखें यथा स्थान तरंग, लहर और वीचि की माला) शंका संशय और संदेह में अनुराग प्रणय प्रेम और स्नेह में तथा इसी प्रकार के और बहुत से ऐसे शब्दों में जो साधारणत एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं बहुत सूक्ष्म अर्थ भेद होते हैं।*
उक्त प्रकार के अन्तरो के विचार से सब पर्याय बहुत समझ बूझकर और अलग-अलग वर्गों में बाँटकर रखे जाने चाहिए। यदि 'बाई का अर्थ वात या वायु लिया जाय तो वह अशुद्ध तथा भ्रामक होगा। इसकी ठीक व्याख्या है—रोगी के शरीर में होनेवाला वायु का प्रकोप। 'बदली का अर्थ केवल बादल या मेघ नहीं है, बल्कि वह ऐसी अवस्था है जिसमें आकाश बादलो

*इस प्रकार के लगभग १४०० शब्दो के अर्थों के अन्तरो का सूक्ष्म विवेचन मैंने 'शब्द-साधना नामक पुस्तक में किया था। इसके उपरान्त उसका परिवर्तित परिवर्धित और संशोधित रूप मैंने शब्दार्थ मीमांसा के नाम से प्रस्तुत किया था जिसमें दो हजार से अधिक शब्दो का विवेचन था और जो भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के द्वारा प्रकाशित हुआ था। परन्तु ये दोनो काम प्रारम्भिक ही समझे जाने चाहिए क्योंकि इनमें अभी बहुत कुछ सुधार अपेक्षित थे। इसके उपरान्त मैंने 'शब्दार्थक ज्ञानकोश प्रस्तुत किया जिसमें कई सौ नये शब्दो का भी विवेचन था और कुछ पुराने शब्दो के वर्गीकरण और विवेचन के दोषो का परिमार्जन भी हुआ था। प्रस्तुत पुस्तक उक्त शब्दार्थक ज्ञान कोश का और भी अधिक परिवर्तित, परिवर्धित और संशोधित रूप है।

से घिरा या भरा होता है। यदि 'प्रमेय' के सम्बन्ध मे कहा जाय—वह जिसे प्रमाणित करना हो; तो यह व्याख्या वहुत भ्रामक होगी, क्यों कि इससे उस व्यक्ति का भी आशय लिया जा सकता है, जिस पर कोई वात प्रमाणित करने का उत्तरदायित्व या भार हो। इसकी ठीक व्याख्या होगी—(कथन या वात) जो प्रमाणित की जाने को हो अथवा जिसे प्रमाण के द्वारा सिद्ध करना आवश्यक हो। 'सचेष्ट' के ये अर्थ ठीक नही—१. जिसमें चेष्टा हो। २. जो चेष्टा कर रहा हो। कारण यह है कि उक्त दोनो अर्थों मे चेष्टा शब्द दो अलग-अलग क्रियाओ या भावो का सूचक हैं, और जब तक दोनो क्रियाएँ या भाव स्पष्ट न किए जाएँ तब तक आशय न खुलेगा। तात्पर्य यह कि जहाँ तक हो सके, अर्थ ठीक, पूरा और स्पष्ट होना चाहिए। वह जिज्ञासुओं के लिए अधूरा, गलत या भ्रामक नही होना चाहिए।

कुछ अवस्थाएँ अवश्य ऐसी होती हैं, जिनमे या तो यथेष्ट अवकाश न होने (अर्थात् विस्तार-भय) के कारण या यथेष्ट साधन प्राप्त न होने के कारण पूरे अर्थ या विवरण नहीं दिये जा सकते। वहुत ही कम प्रचलित या कम ज्ञात शब्दो के सम्बन्ध में भी यही वात है। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि नित्य की वोल-चाल मे आनेवाले वहुत ही छोटे, परम प्रचलित और सरल शब्दो की ठीक ठीक व्याख्या करना भी वहुत अधिक कठिन और परिश्रम साध्य होता है; जैसे—कही, ठीक, तो, भी आदि। पशु-पक्षियो, कीडे-मकोडो, पेड़-पौधो के हजारो नाम और भेद होते हैं। इनमे से पूरा अथवा साधारण ज्ञान करानेवाला विवरण प्राय· उन्ही शब्दो का दिया जाता है, जो अधिक प्रसिद्ध होते अथवा प्राय: लोगो के सामने आते रहते हैं। शेष शब्दो के सम्बन्ध मे एक प्रकार* की चिडिया (पेड, मछली) आदि देना ही यथेष्ट होता है। पर यदि 'सरसो' के आगे लिखा हो 'एक तेलहन' या

*कोशो मे अर्थ या व्याख्या देने के समय प्राय: लिखा जाता है—एक प्रकार का ······। परन्तु इस पद का प्रयोग भी वहुत समझ-वूझकर किया जाना चाहिए क्योकि यह सब जगह समान रूप से ठीक नही वैठता। चिड़िया, पेड़, मछली आदि मे तो प्रकार होते हैं; पर आइट, इया, औटा, पन आदि प्रत्ययो के सम्बन्ध मे 'एक प्रकार का प्रत्यय' लिखना ठीक नहीं है। ऐसे अवसरो पर व्याख्या मे 'एक प्रत्यय' ही लिखा जाना चाहिए, क्योकि प्रत्ययो के प्रकार या भेद नही होते।

'सारग' मे भाग लिखा हो 'एक वृत' तो पाठको के हाथ-पल्ले क्या पडेगा ? यदि चित्र, विशेष, व्यतिरेक सरीखे शब्दो के अतर्गत केवल एक अलकार' कहकर चलता किया जाय, तो जिज्ञासुओ का काम न चलेगा। कारण यह है कि साधारण समझदार पाठक प्राय प्रसग से भी यह समझ लेंगे कि यह साहित्य क्षेत्र का कोई अलकार है। और कम समझनेवाले लोग या अल्प वयस्क विद्यार्थी 'एक अलकार' का मतलब यह भी समझ सकते हैं कि यह किसी तरह के गहने या जेवर का नाम है। जिज्ञासु या विद्यार्थी का काम तो तभी निकलेगा, जब उस अलकार का कुछ लक्षण या स्वरूप भी बतलाया जायगा। हमारे यहाँ वज्र बधिर, वज्र मूख आदि और उर्दू मे सख्त नालायक, सख्त बेवकूफ आदि प्रयोग प्रचलित हैं। इनमे वज्र और 'सख्त के विशिष्ट अर्थ तो हैं ही पर वे अर्थ एक विशिष्ट क्षेत्र तक परिमित हैं। कोशकार को ऐसे विशिष्ट अर्थ तो बतलाने ही चाहिए उनके प्रयोगो के क्षेत्र की परिमिति का भी निर्देश करना चाहिए।

प्रामाणिक कोश तथा मानक कोश तयार करते समय मुझे हिन्दी कोशो मे ऐसे हजारो शब्द मिले, जो अर्थ के विचार से अधूरे थे। उदाहरणार्थ— दावना' शब्द के 'अनाज दाना या ओसाना' और 'दमन करना' अर्थ तो कोशो मे मिलते हैं, इसके और भी दो अर्थ (स० दावा से व्युत्पन्न) होते हैं—एक तो जलाना और दूसरा चमकाना। पर ये अर्थ अब तक किसी हिन्दी कोश म नही आये हैं। भारतेन्दु जी ने इसी दूसरे अर्थ म इसका प्रयोग इस चरण मे किया है—दामिन दमकि दसो दिसि दावति छूटि छुवति छिति छोर।

श्री मथिलीशरण गुप्त के 'जय भारत' मे एक जगह आया है—

छूत तो किसी को नहीं इस तनु से यहाँ ?

और एक दूसरी जगह आया है—

जिसने दो ही दिन मे चुन कर डाला उनको आधा।

इन पक्तियो मे 'छूत और चुनना' जिन विशिष्ट अर्थों म प्रयुक्त हुए हैं, वे अर्थ अब तक किसी कोश मे नहीं आये हैं। हिन्दी का एक बहुत छोटा पर परम प्रसिद्ध शब्द 'कुछ है। हिन्दी शब्द-सागर म विशेषण रूप म उसका एक ही अर्थ आया है—'थोडी सख्या या मात्रा का। जरा। थोडा सा। टुक। उसम यह त्रुटि तो है ही कि सख्या और मात्रा का एक साथ ही उल्लेख है, जो वस्तुत अलग अलग होना चाहिए। पर 'कुछ' का एक दूसरा अर्थ उसम आया ही नही। हम कहते हैं—(क) कुछ लोग

इधर हो गये और कुछ उधर। (ख) कुछ चावल यहाँ रहने दो और कुछ वहाँ भेज दो। ऐसे अवसरो पर 'कुछ' का अर्थ जरा, थोड़ा, टुक आदि नही, बल्कि अनिश्चित मात्रा या सख्या अथवा आवे के लगभग होता है। 'तूलना' शब्द सकर्मक रूप मे और गाडियो के पहियो और धुरी के सिरो पर तेल देने या औगने के अर्थ मे तो प्रसिद्ध है ही, प्राय: सभी कोशों में आया है, पर वह शब्द कवियो ने अन्य अर्थों में भी प्रयुक्त किया है। उदाहरणार्थ दीनदयाल गिरि ने कहा है—

रग न तेरो है कछू सुबरन संग न तूलि।

और जयशकर 'प्रसाद' ने लिखा है—

मंजुल रसालन की मजरी के पुञ्जन में
पाय के प्रसाद तहाँ गूँज-गूँज तूले हों।

पर 'तूलना' के ये अर्थ अब तक किसी कोश मे नही आये।

भाषा-शास्त्र का एक वहुत चलता हुआ सिद्धान्त यह है कि किसी शब्द का प्रचार या व्यापकता जितनी ही अधिक होती है, जन-साधारण को उसके ठीक अर्थ का वोध भी उतना ही कम होता है। उदाहरण के लिए नित्य की बोल-चाल का 'सही' शब्द लीजिए। हम कहते हैं—(क) आप वैठे तो सही। (ख) आप वहाँ गये सही। (ग) अच्छा यही सही। (घ) हम दरिद्र सही आदि। अब जरा स्थिर-चित्त होकर विचार कीजिए कि उक्त प्रयोगो मे 'सही' का क्या अर्थ या भाव है, और वह अर्थ या भाव किसी को समझाने का प्रयत्न कीजिए। ऐसा अर्थ स्वय समझ लेना जितना सहज है, दूसरो को समझा सकना उतना सहज नही है। हिन्दीवाले तो ऐसे प्रयोगों के आशय से परिचित होने के कारण उनके अर्थ या विवरण की अधिक खोज नही करते। परन्तु यदि कोई बात-चीत में 'सही' के उक्त प्रयोग सुने या तुलसीकृत रामायण के 'प्रभु आशुतोप कृपालु शिव अवला निरखि वोले सही', मे के 'सही' शब्द का अर्थ जानना चाहे तो वह अर्थ उसे कोश मे मिलना चाहिए पर हिन्दी शब्दसागर के सम्पादन के समय 'सही' के उक्त प्रयोगो का अर्थ और विवरण शायद इसी लिए छूट गया था कि सम्पादको ने सोचा होगा कि यहाँ 'सही' विलकुल साधारण रूप मे प्रयुक्त हुआ है और वह अपने विशेषण तथा स्त्रीलिंग सज्ञावाले अर्थों मे तो आ ही चुका है, अत' उन्ही मे कही इसका भी अन्तर्भाव हो जायगा। उनका ध्यान इस शब्द के उक्त प्रकार के असाधारण प्रयोगो, उनसे सूचित होनेवाले कई तरह के विशिष्ट भावो और उसकी स्वतत्र व्युत्पत्ति की ओर नही गया था और फलत. हिन्दी

के सभी कोश 'सही' के ऐसे अर्थों से वंचित रह गये । उस शब्द के ऐसे ही विलक्षण प्रयोगों ने मुझे आकृष्ट करके उसका पूरा विवेचन करने के लिए प्रेरित किया था । (दे० मानक हिन्दी कोश तथा 'शब्द और अर्थ' के अन्त में सही का विवेचन) इन सब उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि शब्दों के अर्थों के सम्बन्ध में बहुत ही गम्भीर अध्ययन और छान-बीन होने की आवश्यकता है ।

आज कल अनेक प्राचीन ग्रन्थों के ऐसे भी संस्करण निकलने लगे हैं, जिनमें टीका टिप्पणियाँ भी रहती हैं । प्रायः सुयोग्य विद्वान् ही ऐसे संस्करणों का सम्पादन करते हैं । वे बहुत परिश्रम और छान बीन करके ग्रन्थों का सम्पादन करते और यथासाध्य शुद्ध पाठ और ठीक अर्थ देने का प्रयत्न करते हैं । पर कभी न कभी और कहीं न कहीं भूल सबसे हो ही जाती है । यह बात दूसरी है कि आप कम भूलें करें और मैं अधिक भूलें करूँ । पर मनुष्य कभी सर्वज्ञ नहीं हो सकता, और न सदा सब अवसरों पर यही कह सकता है कि जो पाठ, अर्थ या निरुक्ति मैंने बतलाई है, वही बिलकुल ठीक है, या इसके सिवा और कुछ पाठ, अर्थ या निरुक्ति हो ही नहीं सकती । मुझे नये शब्द और नये अर्थ एकत्र करने में ऐसे सुसम्पादित ग्रन्थों से बहुत अधिक सहायता मिलती है, और मैं उनके सुयोग्य सम्पादकों का बहुत ऋणी हूँ । उनके प्रति यथेष्ट आदर सम्मान का भाव रखते हुए भी मैं कह सकता हूँ कि कुछ स्थानों पर उनके दिये हुए पाठ या किये हुए अर्थ मुझे ठीक नहीं जान पड़ते और ठीक अर्थ तक पहुँचने के लिए मुझे इधर उधर भटकना पड़ता है । और जब तक सन्तोषजनक निराकरण नहीं हो जाता, तब तक मैं ऐसे शब्द और उनके अर्थ ग्रहण नहीं करता, उन्हें विचारणीय वर्ग में ही रखता हूँ ।*

ऐसा एक शब्द लीजिए । महाकवि सूरदास जी ने एक जगह कहा है—

ग्रीवा रन्ध्र नन चातक जल, पिक मुख बाजे बाजन ।

और दूसरी जगह कहा है

स्वाति बिना ऊपर सब मरियत ग्रीव रन्ध्र मत कीन्हों ।

इनमें का ग्रीव रन्ध्र या ग्रीवा रन्ध्र शब्द किसी कोश में नहीं आया है । कई संस्कृत कोशों में ढूंढने पर भी यह शब्द मुझे नहीं मिला । पर एक मित्र कहते हैं इसका अर्थ 'झिल्ली' नामक प्रसिद्ध बरसाती जन्तु है जो उक्त प्रसंगों में ठीक बैठता है । हो सकता है कि इसका शुद्ध रूप रन्ध्रग्रीव हो । इस प्रकार के शब्दों की ओर भी कोशकारों को ध्यान देना चाहिए ।

* मेरे पास ऐसे विचारणीय शब्दों की एक बहुत बड़ी सूची बन गई है जो फिर किसी अवसर पर प्रकाशित की जायगी ।

एक बार एक प्राचीन काव्य के नये संस्करण मे एक जगह एक शब्द (खेद है कि वह शब्द मुझे इस समय याद नही आता) का अर्थ मिला—एक प्रकार का बाजा, और दूसरी जगह उसी शब्द का अर्थ मिला—एक प्रकार का हथियार। सन्देह की निवृत्ति के लिए मैंने मूल से मिलान किया तो पता चला कि उसका प्रयोग हथियारो के प्रसग मे ही हुआ है, और दूसरी जगह वह भूल से ही बाजा बतलाया गया है। ऐसे अवसरो पर ध्यान रखने की मुख्य बात यह है कि शब्द ज्यो ज्यो पुराने होते चलते हैं, त्यो-त्यों उनका प्रयोग भी कम होने लगता है। प्रयोग की इस कमी के कारण लोग उनके अर्थ भूलने लगते या कुछ और समझने लगते हैं। प्राचीन ग्रन्थो के सम्पादक कभी-कभी या तो पुराने शब्दो मे नये मनमाने अर्थ लगा लेते हैं या उनका रूप ही बदल देते हैं। अच्छे कोशकार को यथा-साध्य ऐसे चक्करो से बचने के लिए बहुत सतर्क रहना पड़ता है।

मीराँ के पदो मे से शब्द-संग्रह करते समय मुझे एक पद मे ये दो चरण मिले—'मोती मानिक परत न पहिरूँ; मैं कबकी नटकी।' और 'गैणो तो म्हारो माला दोवडी औ चन्दन की कुटकी।' एक सुयोग्य विद्वान् ने कदाचित् अनवधानता के कारण इनमे से पहले चरण के 'नटकी' शब्द का अर्थ किया है—अस्वीकार कर दिया है, अर्थात् इसे नटना क्रिया से सम्बद्ध मान लिया है और दोवडी का अर्थ लिखा है—एक प्रकार का गहना। ऐसा सम्भवतः इसी लिए किया गया है कि मीराँ के उक्त पद मे पहले गैणो (हिं० गहना या आभूषण का राजस्थानी रूप) शब्द आया है। पर मुझे ये दोनों अर्थ ठीक नही जँचे। नटना क्रिया तो ठीक है, पर नटका के अर्थ मे कभी नटकना का प्रयोग नही होता। राजपूताने मे नट जाति के लोगो, विशेषतः बालकों और युवकों को 'नटका' भी कहते है, जिसका अर्थ होता है—नट जाति का या नट की सन्तान। 'नटकी' इसी 'नटका' का स्त्री० रूप है। मीराँ कहती है कि मैं कोई नट जाति की स्त्री नही हूँ जो चमकीले पत्थरो से अपने आपको सजाऊँ। 'दोवडी' के सम्बन्ध मे मैंने सोचा कि जिस मीराँ ने राज-सुख पर लात मारी थी, वह भला कोई गहना क्यो पहनेगी। तिसपर वह स्वयं कह रही है कि माला दोवड़ी और चन्दन की कुटकी ही मेरे गहने है। मैंने अपने विचारणीय शब्दो की सूची मे दोवडी शब्द के साथ उक्त चरण लिख लिया था। कोई छ महीने बाद जब 'कबीर साहित्य का अध्ययन' प्रकाशित हुआ और मैं उसमे से शब्द-संग्रह करने लगा, तब उसमे एक जगह मिला—पाँच गज दोवटी माँगी, चून लियो सानि। तब तुरन्त मेरा ध्यान मीराँ की दोवडी

की ओर गया और दोनो पक्षो को मिलाकर देखने पर मालूम हुआ कि 'दोवटी' और 'दोवडी' एक ही चीज है। ये शब्द स० द्विपट्ट* से निकले हैं, जिसका अर्थ है—साधारण मोटा कपडा। और तब यह शब्द मैंने अपनी प्रति म उक्त उदाहरणो सहित सकलित किया था। परन्तु 'शब्द और अर्थ' का पहला सस्करण प्रकाशित होने पर सीतामऊ के महाराजकुमार डॉ० रघुबीर सिंह जी ने मुझे सूचित किया कि राजस्थान म 'दोवड' या 'दोवडा' शब्द विशेषण के रूप म और 'दोलडा' के अर्थ म प्रचलित है, और 'दोवडी' इसी का स्त्री० रूप है। माला के साथ 'दोवडी का प्रयोग होने पर उसका अर्थ होता है—दो लडोवाली माला। राजस्थान मे बडे आदमी तो ५ ७ और ६ लडोवाली बहुमूल्य मालाएँ पहनते हैं परन्तु जन साधारण हलके मूल्य की दो लडोवाली मालाएँ ही पहनते हैं। मुझे भी यही अर्थ सगत और समीचीन जान पडता है। इसी के अनुसार 'मानक हिन्दी कोश के दूसरे सस्करण के लिए मैंने 'दोवडी' के अर्थ का सशोधन भी किया है।

'सूर सागर में एक जगह आया है—जनि बल बाँधि बढावहु छीति। इसमे पहले तो बल बाँधना' मुहावरा है, जिसका आज कल के शब्दो मे अर्थ है—जोर लगाना या प्रयत्न करना। यह मुहावरा ही अब तक कोश म नही आया है। दूसरा शब्द है 'छीति जिसको हिन्दी शब्द सागर मे स० क्षति से व्युत्पन्न माना गया है और जिसका अर्थ किया गया है—हानि, बुराई आदि। सूर के शब्दो का नये सिरे से सग्रह करते समय जब मेरा ध्यान इस शब्द पर गया, तब इसकी व्युत्पत्ति और अर्थ दोनो मुझे ठीक नही जान पडे। वास्तव मे बात यह है कि हि० छूना (स्पर्श करना) का उच्चारण ब्रज भाषा मे छीना होता है। जिस प्रकार खडी बोली मे छूना से भाववाचक सज्ञा छूत बनती है उसी प्रकार ब्रज भाषा म छीना से छीति बनती है। इस छीति का पहला अर्थ वही छूत होता है और दूसरा अर्थ सम्पर्क या सम्बन्ध होता है। सूरदास का आशय यही है कि प्रयत्नपूर्वक उनसे बहुत सम्बन्ध या हेल मेल मत बढाओ। और इस शब्द की निरुक्ति तथा अर्थ की इस प्रकार सगति बैठ जाने पर मैंने अपनी प्रति मे इसी के अनुसार सशोधन किया है।

कबीरदास के एक पद म आया है—पाहू घर आये, मुकलाऊ आये। सन्त समाज म यह चरण विशेष प्रसिद्ध है, और गुरु ग्रन्थ साहब म भी यह इसी रूप म आया है। एक आदरणीय विद्वान ने अपने ग्रन्थ म मुकलाऊ' का अर्थ किया है—मुक्त करना, विदा करना और इसीलिए उक्त पद का

*इसी से हिन्दी का दुपट्टा शब्द भी बना है और दोहर भी।

अर्थ दिया है—विदा कराने के लिए पाहुने आये हुए हैं। कबीर ने एक उलटबाँसी मे भी इस 'मुकलाना' शब्द का प्रयोग किया है—सुत मुकलाई अपनी माउ। उक्त ग्रन्थ मे इसका अर्थ किया गया है—पुत्र (अज्ञान) अपनी माता (माया) को बन्धन से मुक्त कर लाया है। परन्तु पंजाबी होने के नाते मैं जानता हूँ कि 'मुकलावा' पंजाबी मे द्विरागमन को कहते है। दामाद जब विवाह के बाद अपनी बहू को विदा कराके अपने घर लाने के लिए ससुराल जाता है, तब कहा जाता है कि वह 'मुकलावा' लेने के लिए गया है, और जब वहू घर आ जाती है, तब कहा जाता है—मुकलावा आ गया। इस दृष्टि से पहले उद्धरण का अर्थ होगा—बहू को विदा कराने के लिए दामाद* घर आया है और दूसरे उद्धरण का अर्थ होगा—पुत्र (अज्ञान) ने अपनी माता (माया) के साथ विवाह करके उसका गौना या द्विरागमन कराया है।

यह तो हुई ऐसे शब्दो की बात जो स्थानिक होते और जिनके विशिष्ट अर्थ होते हैं। इन्ही से मिलते-जुलते कुछ ऐसे शब्द और पद भी होते है जो विशिष्ट भौगोलिक स्थितियो अथवा सामाजिक रीति-रिवाजो से सम्बद्ध होते है, जैसे—'केसरिया बाना' और 'जौहर' का सम्बन्ध राजस्थान से है, और 'बीड़ा उठाना' भारत की सामन्त प्रणाली से सम्बद्ध है। 'झाँकी', 'टेसू' आदि कुछ विशिष्ट क्षेत्रो के सामाजिक त्यौहार है, और साँझी कुछ विशिष्ट स्थानो के देव-मन्दिरो मे प्रचलित सज्जा-कला है। इसी वर्ग में 'हाथों की चूडियाँ बनी रहना' (साथ मे राखिए नाथ उन्हे हम हाथ मैं चाहति चारि चुरीये।—देव) माथे का सिंदूर पोछा जाना, तृण गहना या दाँतो मे तिनका पकडना, तिनके की ओट पकडना, तिनके की ओट करना या लेना (तृन धरि ओट कहति वैदेही।—तुलसी) दिशाएँ रुकना, (किसी पर से) पानी वारकर पीना, सिर सूँघना आदि मुहावरे भी आते हैं। इस प्रकार के शब्दो और मुहावरो के अर्थ देने या व्याख्या करने के समय कुछ विशिष्ट प्रकार की जानकारी के सिवा बहुत कुछ सतर्कता की भी आवश्यकता होती है। "तिरिया तेल, हमीर हठ चढै न दूजी बार" मे के तेल चढना का आशय वही लोग समझ सकते है जो यह जानते है कि उत्तर भारत के हिन्दुओ मे विवाह से एक-दो दिन पहले वर और वधू के शरीर मे तेल पोतने की रसम होती है। बहुत दिन पहले मैंने उर्दू के एक बहुत बडे और मान्य शब्द-

* उक्त उद्धरण मे पाहू उसी प्रकार दामाद के लिए आया है, जिस प्रकार आज भी पाहुना पश्चिम में और मेहमान पूरब में दामाद का वाचक माना जाता है।

कोश में हिन्दी के 'कनात' शब्द की इसी जानकारी के अभाव के कारण, कैसी ही विलक्षण दुर्दशा देखी। उसके भारतीय सम्पादक महोदय हिन्दुओं की रीति रस्मों और 'कनात' की व्युत्पत्ति (कच्चा गज या कच्चा नाप में पहुँचा हुआ मूल) से बिलकुल अपरिचित थे, इसलिए इसका मनमाना अर्थ लगाते हुए वे लिख गये थे कि हिन्दू लोग इन दिनों में कन्याओं या लड़कियों का बस्ती के बाहर ले जाकर उनकी गत बनाते (दुर्दशा करते) हैं।

एक और क्षेत्र है, जिसमें अर्थों के सम्बन्ध में प्राय गड़बड़ी होती है। बहुत सी पुरानी चीजें या बातें ऐसी होती हैं, जिनका प्रचलन उठ जाने के कारण, लोगों का उनसे बहुत कम परिचय रह जाता है अथवा उनके सम्बन्ध में जनता में भ्रम फैल जाता है। उदाहरण के लिए आज-कल साधारणत 'नावक' का अर्थ 'तीर' ही समझा जाता है पर वास्तव में नावक साधारण तीर नहीं है, बल्कि वह एक विशेष प्रकार का छोटा तीर या उसका फल होता है, जो लोहे की नली में रखकर बारूद की सहायता से चलाया जाता था। इसी प्रकार छोटी मोटी बातें होती ह जिनके सम्बन्ध म कभी कोई विद्वान् विशेष छान-बीन करके उसके वास्तविक तथ्य का पता लगाता है और तब अपने नये अनुसन्धान का फल किसी पत्र-पत्रिका म प्रकाशित कराता है। कोशकार की दृष्टि इस क्षेत्र पर भी रहनी चाहिए। नेत्र कष्ट के कारण मैं पढ़ता बहुत कम हूँ, फिर भी फुटकर पत्र पत्रिकाओ म मुझे कभी कभी कुछ नये शब्द या अर्थ मिल ही जाते हैं। कुछ दिन पहले डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल दतिया का किला देखने गये थे। वहाँ उन्हे पुराने अस्त्र-शस्त्रों के सम्बन्ध म बहुत-सी नई बातें मालूम हुई थी, और मध्यकालीन युग के अनेक भारतीय आयुध देखने को मिले थे। उन्होने इस सम्बन्ध का एक विस्तृत लेख अगस्त १९५१ की 'कल्पना' म प्रकाशित कराया था। उस लेख म मुझे पचासो नये शब्द और नये विवरण मिले। उनका संग्रह करते समय एक नई और जानने योग्य बात यह मिली कि 'झिलम और 'टोप' दोनो एक ही चीज नहीं हैं, बल्कि दो अलग अलग चीजें हैं। दोनों मे ऐसा अन्तर है, जिसे अब लोग प्राय भूल गये हैं। टोप तो लोहे का उपकरण है ही, जो युद्ध के समय सिर पर पहना जाता था। पर झिलम उसम लगी हुई सिकड़ियो की उस झालर को कहते थे, जो पीछे गरदन की ओर लटकती थी। इसी अन्तर ने मेरा ध्यान इस बात की ओर भी आकृष्ट किया था कि इस शब्द का झिलमिली के साथ नरुक्तिक सम्बन्ध होना चाहिए। इसी प्रकार का कुछ विशिष्ट अन्तर जिरह और बख्तर मे भी है, पर वह अन्तर भी आज कल

लोग भूल गये हैं और दोनों एक चीज समझे जाते है। मानक हिन्दी-कोश के लिए उक्त चारों शब्दों की व्याख्या इसी आधार पर ठीक की गई है, और दोनों शब्द-युग्मों के अन्तर स्पष्ट किये गये हैं। पुराने शब्दों के अतिरिक्त आज-कल हमारे साहित्य मे ऐसे बहुत-से नये शब्द भी चल रहे हैं, जिनका ठीक-ठीक आशय कुछ विशिष्ट विद्वानों की आलोचनात्मक या साहित्यिक कृतियों मे तो कही-कही मिलता है, पर साधारण पाठकों को जिनके ठीक और स्पष्ट अर्थ का ज्ञान नही होता। इस प्रकार के शब्द तो खूब मँज जाने के कारण लोगों की जबान पर चढ जाते या कलम से उतर आते हैं, पर इनके ठीक आशयों से पाठक तो क्या स्वयं लेखक भी कभी-कभी पूरे परिचित नही होते। अभी हाल तक छायावाद और रहस्यवाद को बहुत-से लोग समानार्थक समझते थे, और कदाचित् अब तक कुछ लोग उनमे विशेष अन्तर नही मानते। पर दोनों मे अन्तर है—बहुत बड़ा अन्तर है। साधारण पाठको के लिए यह अन्तर स्पष्ट कर दिखलाना कोशकार का ही काम है। अभिव्यजनावाद, आदर्शवाद, प्रतीकवाद, यथार्थवाद, साधारणीकरण आदि सैकडों ऐसे नये शब्द साहित्य मे चल पडे हैं, जिन्हे ठीक और पूरी व्याख्या के साथ शब्द-कोशो मे स्थान मिलना चाहिए। चारो ओर दृष्टि रखने से कोशकार को ऐसी बहुत-सी नई बाते मिलती रहती हैं, जो उसके कोश मे औरों की तुलना मे बहुत कुछ नवीनता और विशेपता ला सकती हैं।

अब एक और क्षेत्र लीजिए, जो है तो परिमित, फिर भी प्राचीन हिन्दी-साहित्य मे वह पाया ही जाता है। वह है श्लेपो, उलटवाँसियो, कूटो आदि का वर्ग। श्लिष्ट शब्दो और पदो के अर्थ तो फिर भी थोडे बहुत-प्रयत्न से, या शब्द-कोशो की सहायता से, समझ मे आ जाते है, जैसे—कही मित्र शब्द आया हो तो पाठक समझ सकते हैं कि अमुक प्रसग मे यह सूर्य के लिए आया है, और अमुक प्रसग मे दोस्त के लिए। कही 'हंस' मिले तो वे समझ सकते हैं कि यहाँ यह पक्षी के लिए आया है और यहाँ सूर्य के लिए। 'द्विज-पाँति' से वे समझ सकते है कि यहाँ ब्राह्मणो की पक्ति वाला आशय अभीष्ट है, या दाँतो की पक्ति वाला या दोनो। इसका एक तीसरा अर्थ पक्षियो की पंक्ति भी हो सकता है। और इस क्षेत्र मे शब्द-कोशो से जिज्ञासुओ को सहायता मिल सकती है, पर इससे आगे नही।

अब उलटवाँसियाँ और कूट लीजिए। हिन्दी मे कबीर की उलटवाँसियाँ और सूर के कूट बहुत प्रसिद्ध हैं। पर उनका आशय समझना-समझाना सबका काम नही है, क्योकि उनका सम्बन्ध कुछ विशिष्ट घटनाओ, तथ्यो, परिस्थि-

तियो आदि से होता है। 'पहले पूत पीछे भई माई' सरीखी उलटबाँसियों या गिरजापति पतिनी पतिजा सुत' सरीसे कूटो का वास्तविक अभिप्राय कोशकार किसी प्रकार बतला ही नही सकता। उसका काम अलग अलग शब्दो के अर्थ बतलाना और व्याख्या करना ही है पौराणिक कथाओ, दार्शनिक तत्वो आदि का पारस्परिक सम्बन्ध और तारतम्य स्पष्ट करके उनका गूढ अभिप्राय या आशय बतलाना नही। कभी कभी कुछ शब्दो के आदि मध्य या अन्त के अक्षरो के योग से बननेवाले शब्दो का भी कवि लोग सकेत करते हैं। साधारण अवस्था मे पाठक स्वय ऐसे शब्द ढूँढ निकालते हैं। पर जहाँ शब्दो के पर्यायो के आदि अत के अक्षर जोडकर शब्द ढूँढने पडते हैं वहाँ न पाठको की बुद्धि काम करती है और न कोशो से सहायता मिल सकती है। सूर कृत "भूसुत (कुज) मेघकाल (बरखा) निसि (जामिनि) इनके आदि बरन चित आव का अर्थ—कुब्जा का ध्यान आता है।" भला शब्द कोश की सहायता से कैसे जाना जा सकता है? ऐसे प्रसगो मे आनेवाले पदो और वाक्यो का ठीक और पूरा विवेचन ग्रन्थ विशेष के सम्पादको का ही काम है। इस प्रकार के प्रयोगो की गणना तो पहेलियो के वर्ग मे होनी चाहिए और पहेलियाँ बूझने मे शब्द कोशो से कोई सहायता नही मिल सकती।

इसी से मिलती जुलती एक और ऐसी अवस्था है जिसमे कोशकार के हाथ पैर बँध जाते हैं—वह कुछ नही कर सकता। प्राय लोग साधारण अवस्थाओ मे कही कमल के लिए 'विधि तात', कही 'पूर्व दिशा' के लिए 'वासव', कही 'कल्प वृक्ष' के लिए 'काम भूरुह', और कही 'चन्द्रमा' के लिए 'गिरिजा पति भूषण' सरीखे पदो का प्रयोग कर जाते हैं। इसी वर्ग का शब्द लक्ष्मी सहज है। इसका शब्दार्थ है—वह जो लक्ष्मी के साथ उत्पन्न हुआ हो। पर समुद्र मथन के समय लक्ष्मी के साथ तेरह अन्य चीजें भी निकली थी, जैसे—अमृत, विष, चन्द्रमा आदि। यहाँ तक कि उच्चैश्रवा नाम का घोडा भी उसमें से निकला था। अब कोशकार 'लक्ष्मी सहज' का अर्थ दे तो क्या दे? और फिर 'लक्ष्मी सहज' तक ही बात है ही नही। लक्ष्मी के भी बीसियो पर्याय हैं और सहज के भी गाहियो। फिर समुद्र मन्थन से अमृत, ऐरावत चन्द्रमा, विष आदि और भी तेरह पदार्थ निकले थे और उन सबके नामो और पर्यायो के साथ 'सहज' अथवा उसके पर्यायो के योग से ऐसे सकडो यौगिक पद बन सकते हैं और उन सभी को किसी प्रकार कोशो मे स्थान नहीं दिया जा सकता। कोशकार तो अधिक से अधिक यही कर सकता है कि

समुद्र-मन्थन के अन्तर्गत कुछ ब्योरा दे दे। ऐसे पदों का आशय सजाने के लिए जिज्ञासुओं को दूसरे साधनों से सहायता लेनी पड़ेगी।

फिर कुछ ऐसे भिन्नार्थक शब्द भी होते हैं, जो किसी विशिष्ट क्षेत्र मे एक दूसरे के पर्याय मान लिए जाते हैं। उदाहरण के लिए चन्द्रमा का जो कलङ्क है, उसे कुछ लोग शश या खरगोश कहते हैं और कुछ लोग हिरन। कामदेव को मकर-ध्वज भी कहते है और मीन-केतु भी। कारण यही है कि उक्त प्रसगों में कवि-समय के अनुसार शश और हिरन तथा मकर और मीन एकार्थवाची मान लिये गये हैं। कोशकार न तो शश का अर्थ हिरन या मकर का अर्थ मीन ही बतला सकता है, न प्रतिक्रमात् ही। ऐसी बाते साहित्य-शास्त्र के अध्ययन से ही जानी जा सकती हैं।

अब और एक प्रकार के शब्द लीजिये, जिनके कुछ विशिष्ट क्षेत्रो या प्रसगों मे ही अपने कुछ विशिष्ट अर्थ होते हैं। रहस्य-सम्प्रदाय मे ऐसे बहुत से शब्द प्रचलित हैं, जिनके कुछ निजी और निराले अर्थ होते हैं; जैसे—उक्त सम्प्रदाय के ग्रन्थों मे अम्बर से अन्त.करण का, गुफा या सरोवर से हृदय का, और हस से जीव, प्राण, आत्मा आदि का अर्थ लिया जाता है। उक्त सम्प्रदाय का साहित्य हिन्दी मे प्रचुर मात्रा मे पाया जाता है, और अब उसके अध्ययन की ओर लोगो की रुचि भी बढने लगी है। पर अभी तक इस प्रकार के विशिष्ट अर्थों की ओर हिन्दी कोशकारों का ध्यान नही गया था। मेरी समझ मे इस प्रकार के कुछ बहुत प्रसिद्ध और प्रचलित शब्द-अर्थ कोशों मे सहज मे लिये जा सकते है और यही समझ कर मैंने मानक कोश मे इनका सकलन किया है।

कही-कही कवि लोग कुछ शब्दो का प्रयोग केवल साकेतिक रूप में कर जाते हैं और ऐसे शब्दों के द्वारा वे कोई ऐसा भाव प्रकट करना चाहते हैं, जो न तो सहसा किसी की समझ मे आ सकता है और न जिसका किसी दूसरे प्रसंग में वह अर्थ या आशय लग सकता है। उदाहरण के लिए तुलसी-सतसई मे गोस्वामी जी ने कहा है—भगन भगति करु मरम तजि, तगन सगन विधि होय। कहा जाता है कि इसमें का 'भगन' यहा माधव के लिए, 'तगन' सन्तोष के लिए और 'सगन' शुचिता के लिये आया है। ये सब शब्द (भगण, तगण, सगण) छन्द-शास्त्र के गणो के नाम हैं, और हो सकता है कि कुछ विद्वान् दिमाग लड़ाकर इन गणों को कुछ और तत्त्वों या बातों का भी सूचक सिद्ध कर सकें। पर गोस्वामी जी ने जिस अभिप्राय से इन शब्दों का प्रयोग किया है, वह अभिप्राय तुलसी-सतसई की अच्छी टीका से ही जाना जा **सकता है,**

किसी शब्द कोश की सहायता स नही। क्योकि गणो के ये नये नाम बहुत से शब्दो के सूचक हो सकते हैं। हाँ, लोग अपनी समझ स प्रसग के अनुसार इनका आशय समझ सकते हैं।

इस वग म ऐसे साधारण शब्द भी आते हैं जिनका हमारे यहाँ के भक्त कवियो ने विशेष रूप से प्रयोग किया है और जिनका सम्ब ध किसी विशिष्ट पौराणिक कथानक या घटना से होता है जस—याध गीध गणिका आदि। ये शब्द साधारणत जातिवाचक सज्ञा हैं। काशो मे इनके साधारण अथ तो मिल जायँगे पर जो विशिष्ट व्याध, गीध और गणिका उक्त पद म अभिप्रेत हैं उनका विवरण भी तो जिनासुओ को मिलना चाहिए। इस दृष्टि से अब तक किसी कोश मे ऐसे शब्दो का विवेचन नही हुआ है। पर यदि विचारपूवक देखा जाय तो कोशो मे बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध शब्दो के अ तगत इससे सम्ब ध रखनेवाले पौराणिक कथानको, घटनाओ या व्यक्तियो का भी कुछ उल्लेख होना चाहिए।

कभी कभी कवि लोग यौगिक पदो के अलग अलग अगो या शब्दो के पर्यायो के योग से भी नये शब्द बना लेते हैं, जसे—धनुष यन के लिए चाप मख, इद्र धनुष के लिए चक्र चाप, वाग्वीर या शब्द सूर क लिए गिरा भट या सुग्रीव के लिए सुकठ आदि। इस प्रकार के शब्द जब सस्कृत के क्षेत्र से आगे बढकर हिन्दी के क्षेत्र म आते हैं तब वे कोशकारो के लिए एक समस्या सी खडी कर देते हैं, जस—कामधेनु के लिए सुर गया या यदुराज के लिए जदुरया सरीखे प्रयोग। इस प्रकार के बहुत से नये शब्द भी बनाये जा सकते हैं, और उन सबकी कल्पना करके शब्द कोशो मे उन सबको स्थान देना न तो सगत ही है, न सम्भव ही। फिर भी इनम जो अधिक प्रसिद्ध हो या जिनका प्राचीन काव्यो म विशेष प्रयोग हुआ हो उन्हें शब्द कोश म ले लेना ही उचित होगा।

अथ की दृष्टि से कोशकार को एक और महत्त्वपूर्ण बात का ध्यान रखना पडता है। जीवित और प्रचलित भाषाए सदा बढती रहती हैं। उनम नये-नये शब्द और नये नये अथ बढ़ते रहते हैं और जब तक कोश मे ऐसे नये शब्द और नये अथ न लिये जाय, तब तक वह यथावधिक नही हो सकता। आज कल सारे देश में 'मत शब्द अँगरेजी के वोट' के लिए प्रचलित है। परन्तु जब इन पक्तियो का लेखक प्रामाणिक हिन्दी कोश तयार कर रहा था तब उसने देखा कि हिन्दी के किसी कोश मे मत का यह नया अथ नही आया है। कारण कदाचित् यही है कि जिस समय हिन्दी

शब्द-सागर बना था, उस समय इस नये अर्थ मे 'मत' शब्द बहुत अधिक प्रचलित नही हुआ था। यदि शब्द-सागर मे इस शब्द का उक्त अर्थ आया होता, तो अन्य कोशो मे भी अवश्य आ जाता। 'मत' का यह नया अर्थ पहले-पहल प्रामाणिक हिन्दी कोश मे बढाया गया था। 'चरम' अब तक विशेषण माना जाता है, पर अब वह उपन्यासों और नाटको के सम्बन्ध मे उस विशिष्ट स्थिति की सूचक सज्ञा के रूप मे भी व्यवहार होने लगा हैं, जिसमे घटना-क्रम या कथा-वस्तु आगे बढती हुई अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर उतार या समाप्ति की ओर चलती है और जिसे अँगरेजी मे 'क्लाइ-मेक्स' कहते हैं। आज-कल 'आकाश-वाणी' शब्द 'रेडियो' के लिए बहुत प्रयुक्त होता है। 'समारम्भ' का साधारण अर्थ है—अच्छा आरम्भ। पर अब यह हिन्दी मे उत्सव या समारोह के अर्थ मे चल पडा है। पहले 'दैनिकी' का अर्थ था—दैनिक वेतन या भाडा, पर अब वह अं० डायरी के अर्थ मे चल रहा है। 'निर्भर' का अर्थ है—अच्छी तरह भरा हुआ या पूरा, पर आज-कल वह अवलम्बित या आश्रित के अर्थ मे चलता है। अँगरेजी की देखा-देखी 'दुर्बलता' मे एक नया अर्थ लग गया है। हम कहते हैं—उनमे एक दुर्बलता यह भी है कि वे सुनी-सुनाई बातों पर जल्दी विश्वास कर लेते लेते है। स्थूल आकलन (या विचार) सूक्ष्म बुद्धि (या अन्तर) सरीखे प्रयोगो मे स्थूल और सूक्ष्म के जो अर्थ है, वे अब तक किसी कोश मे ठीक से नही आये हैं। ढूँढने पर इस प्रकार के सैकड़ो-हजारो नये शब्द मिल सकते हैं। जब तक ऐसे नये अर्थ कोश में न आवे, तब तक वह आधुनिक विद्यार्थियो के लिए उपयोगी और सर्वाङ्गपूर्ण नही कहा जा सकता।

यहाँ प्रसंगवश एक और बात बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। हिन्दी मे 'समाचार' आज-कल खबर के अर्थ मे बहुत प्रयुक्त हो रहा है, बल्कि यो कहना चाहिए कि अब इस शब्द का 'खबर' के सिवा और कोई अर्थ रह ही नही नया। कम से कम गोस्वामी तुलसीदास जी के समय से तो यह इसी अर्थ में प्रचलित है। यथा—समाचार पुरवासिन पाये। सस्कृत मे इसके 'अच्छा आचार' आदि कुछ अर्थ थे, पर वे सब प्रायः छूट से गये हैं। पहले इसमे पुराने अर्थों के साथ यह नया अर्थ लगा—किसी के आचरण का ज्ञान, परिचय या सूचना। और तब यही अर्थ विकसित होकर साधारण 'खबर' के रूप में परिणत हो गया। यह ठीक है कि संस्कृत के बहुत पुराने कोशो में इस शब्द का यह अर्थ नही मिलता। परन्तु केवल इसी आधार पर एक प्रतिष्ठित विद्वान् इसे संस्कृत का

शब्द मानने के लिए तयार नही हैं। वे इसके लिए क्लिष्ट कल्पना करते हुए कहते हैं कि 'खबर' के अर्थ म 'समाचार' शब्द सम्भवत स० सचार* से निकला होगा। पर यह द्रविड प्राणायाम के सिवा कुछ नही ह। सीधी सी बात यह जान पडती है कि समाचार का विकसित अर्थ रहा होगा—अच्छी तरह रहना। और इसी से आगे चलकर किसी के कुशलपूर्वक होने की जो सूचना होती होगी उसे भी 'समाचार' कहने लगे होंगे, और इस प्रकार यह शब्द 'खबर' के अर्थ म प्रचलित हो गया होगा। फिर यह मत भी ठीक नहीं है कि सस्कृत शब्द का जो अर्थ पुराने सस्कृत कोशा म न मिले उस अर्थ मे वह सस्कृत का शब्द ही न माना जाय। इस मत के अनुसार तो अपने नये अर्थों मे प्रचलित सैकडो हजारो शब्द सस्कृत के क्षेत्र स अलग हो जायगे।

आज कल भारत भर मे 'चल चित्र' शब्द फिल्म के अर्थ म बहुत अधिक प्रचलित है। 'चल' और 'चित्र' दोनो सस्कृत के शब्द हैं पर दोनो का यह यौगिक रूप सस्कृत मे प्रचलित नही था, यह रूप तो अब गढा गया है। सस्कृत कोशो म 'चल चित्र' शब्द ही नही मिलेगा अर्थ का तो कहना ही क्या है। यही बात 'प्रवर समिति', राज्य परिषद्', 'लोक सभा' 'स्थानिक स्वराज्य', 'स्थायी समिति' सरीखे सैकडो हजारो शब्दो के सम्बन्ध म भी है, जो इधर हाल मे नये बने हैं और बिलकुल नये अर्थों मे प्रचलित हुए हैं। फिर भी निरुक्ति की दृष्टि से ये शब्द सस्कृत के ही माने जायगे किसी अन्य भाषा के नही। सस्कृत व्याकरण के अनुसार उपसर्ग केवल बीस माने गये हैं। पर उपसर्ग हिन्दी मे भी होते हैं और अरबी फारसी, और अगरेजी आदि अन्य भाषाओ मे भी। अरबी म अल्, बिल, आदि उपसर्ग होते हैं। फारसी मे कम, बद आदि शब्द कुछ अवस्थाओ मे शब्दो के पहले उपसर्ग के रूप मे लगते हैं, जसे—कम्बख्त बदबू आदि। इसी प्रकार अँगरेजी के अन, प्री मिस, सब् आदि अनेक उपसर्ग होते हैं। यदि हम उपसर्ग शब्द का प्रयोग किसी ऐसे अव्यय या शब्द के सम्बन्ध म करें जो हिन्दी अथवा किसी अन्य भाषा म उपसर्ग की तरह लगता हो तो उसके विषय म यह आपत्ति ठीक नही कि इसे उपसर्ग नही कहना चाहिए, क्योकि यह सस्कृत के उपसर्गों की सूची मे नही आया है। ऐसे अवसरो पर हम अर्थों के सम्बन्ध म अपनी

* यो उत्तर प्रदेश मे रहनेवाले राजस्थानी भाई भले ही चिट्ठी पत्री में लिखा करें—आगे भाई जी समचार नग एक बचना। यहाँ भी यह समाचार का ही विकृत रूप है, सचार का नही।

दृष्टि व्यापक और धारणा उदार रखनी चाहिए। हमे इस सर्वमान्य सिद्धान्त के आगे सिर झुकाना चाहिए कि शब्दो के अर्थों का बराबर विकास होता रहता है, उनमे नये अर्थ लगते रहते हैं। सस्कृत के पुराने शब्द कुछ विशिष्ट अर्थो के क्षेत्र में बाँधकर नही रखे जा सकते, उनका अर्थ-विकास होता ही रहेगा।

भाषा-विज्ञान मे अर्थापदेश का तत्त्व आरम्भ से ही मान्य है। पर हमारे यहाँ यह तत्त्व कुछ अवस्थाओं मे असाधारण रूप से भी काम करता हुआ दिखाई देता है। उदाहरण के लिए अर्जुन शब्द लीजिए। यह पांडवों मे के एक भाई का नाम तो है ही जो प्रसिद्ध धनुर्धर थे। इसके अतिरिक्त यह एक प्रसिद्ध वृक्ष का भी नाम है। पहले तो एक विशिष्ट क्षेत्र मे पांडव अर्जुन के अनेक नाम बने और दूसरे क्षेत्र मे वृक्ष अर्जुन के। पर आगे चलकर दोनो के अलग-अलग नाम भी एक दूसरे के पर्याय माने जाने लगे। हमारे यहाँ कवियो ने अनेक स्थलो पर ऐसा ही किया है। हिन्दी का 'टेक' शब्द लीजिए। इसके अनेक अर्थो मे दो अर्थ बहुत प्रसिद्ध है। यथा—(क) दृढतापूर्वक की हुई ऐसी प्रतिज्ञा जिससे मनुष्य कभी विचलित न हो, और (ख) गीत का पहला चरण जो हर चरण के बाद दोहराया जाता है और जिसे संगीत के पारिभाषिक क्षेत्र मे आस्थाई (स्थायी) कहते है। इस अर्थ में इसका एक पुराना पर्याय गीत-भार भी है। परन्तु कवि प्रसाद ने एक जगह इस गीत-भार पद का निम्न पक्तियो में ऊपर बतलाए हुए पहले अर्थ मे ही प्रयोग किया है—

देखता हूं मरना ही भारत की नारियों का एक गीत भार है।

यहाँ गीत-भार टेक के पहले अर्थ मे हुआ है जो ठीक नही जान पडता।

यहाँ तक तो हुआ शब्दो के अर्थो का विवेचन, अब एक दूसरा अग या पक्ष लीजिए। शब्द-कोशों में अर्थ दो रूपो मे दिये जाते हैं—पर्याय रूप मे और व्याख्या रूप मे। अधिकतर अवसरो पर प्रसिद्ध और विशेष प्रचलित पर्याय दे देने से ही काम चल जाता है; जैसे—अनग, कदर्प, पंचशर, मदन, मनमथ, स्मर आदि के आगे कामदेव लिख दिया जाय और कामदेव मे विस्तृत विवरण या व्याख्या दे दी जाय तो काम चल जायगा। पर कुछ अवसरों पर तत्त्वो, पदार्थो, आदि की कुछ परिभाषा देने या व्याख्या करने की भी आवश्यकता होती है। यह परिभाषा कठिन या दुरूह शब्द को सुगम और सुबोध बनाने के लिए होती है। साधारण नियम यही है कि शब्दो की

व्याख्या पहले की जाती है और तब उसके पर्याय दिये जाते हैं। शब्दों की परिभाषा या व्याख्या का काम कभी कभी इसलिए बहुत कठिन हो जाता है कि हम शब्द का आशय या भाव तो ठीक तरह से समझ लेते हैं, पर शब्दों में वह आशय या भाव प्रकट करने का प्रकार या रूप निश्चित नहीं कर पाते। अपनी अनुभूति को अभिव्यञ्जना का रूप देने में हम पूरी तरह से समर्थ नहीं होते। शब्द की परिभाषा या व्याख्या करते समय उसके अनेक तत्त्वों या सिद्धान्तों का स्वरूप बतला देना भी आवश्यक है। वे तत्त्व या सिद्धान्त इस प्रकार हैं —

१—प्रत्येक परिभाषा या व्याख्या सदा एक वाक्य में पूरी होनी चाहिए, और जहाँ तक हो सके यह सब प्रकार से ठीक और पूरी होनी चाहिए। कोई शब्द जिस भाव या विचार का सूचक हो, उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी अङ्गों या रूपों पर वह परिभाषा बिलकुल ठीक घटनी चाहिए, अर्थात् उसमें अव्याप्ति दोष नहीं होना चाहिए।

२—किसी शब्द के जिस अर्थ की परिभाषा की जाय मुख्यतः उसी पर दृष्टि रहनी चाहिए। जहाँ तक हो सके परिभाषा संक्षेप में होनी चाहिए और उसमें इधर उधर की फालतू बातें नहीं आनी चाहिए, अर्थात् वह अति व्याप्ति दोष से भी रहित होनी चाहिए।

३—परिभाषा सदा सरल और स्पष्ट होनी चाहिए। उसका रूप ऐसा जटिल या दुरूह नहीं होना चाहिए कि स्वयं उस परिभाषा की भी परिभाषा अपेक्षित हो, और न उसमें ऐसे कठिन पारिभाषिक शब्द आने चाहिए जिन्हें समझने के लिए जिज्ञासुओं को कोशों आदि की सहायता लेनी पड़े। हाँ, कुछ विशिष्ट वैज्ञानिक शब्द कभी-कभी इसके अपवाद भी हो सकते हैं।

४—आरम्भिक परिभाषा या व्याख्या में कहीं वह शब्द या उसका कोई पर्याय नहीं आना चाहिए जिसकी परिभाषा या व्याख्या की जा रही हो।

परिभाषा के सम्बन्ध में एक बहुत ही विलक्षण बात यह है कि बहुत ही थोड़ी ऐसी चीजें या शब्द होते हैं जिनकी ठीक ठीक परिभाषा हो सकती है। जो शब्द जितना ही साधारण और सीधा-सादा होता है, उसकी परिभाषा करना भी उतना ही कठिन होता है। कारण यह है कि साधारण वस्तुओं या शब्दों की व्याख्या या परिभाषा करने के लिए अपेक्षया अधिक सरल और साधारण शब्द ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन होता है। इसलिए

अधिकतर हिन्दी कोशो मे लोग या तो केवल पर्याय देकर काम चलाते है या ऐसी परिभाषाएँ या व्याख्याएँ भर देते हैं जिनसे कुछ भी फल-सिद्धि नही हो सकती। इधर मानक हिन्दी कोश तैयार करने के समय जव मुझे हिन्दी और सस्कृत के प्राय. सभी शब्दो पर फिर से नई दृष्टि से विचार करना, पडा, तव मैंने देखा कि टेठ हिन्दी के वहुत ही छोटे, परम प्रचलित और साधारण शव्द भी अर्थ तथा व्याख्या की दृष्टि से अव तक निरे अधूरे पडे है, और उनके सम्वन्ध मे अधिक विचारपूर्वक नया काम करने की आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, हिन्दी शव्द-सागर के अच्छा, अभी, आन, इतना, उधर, उठना, उलटा, ऊँचा, ऊपर, और कच्चा, कटना, कड़ा, कल, आदि शव्द देखे जा सकते हैं। शव्द-सागर मे 'अच्छा' के सव अर्थ दो भागो मे वाँटकर रख दिये गये हैं, और उन दोनो भागो में पर्याय मात्र भरे पडे हैं। पहले अर्थ-भाग मे—उत्तम, भला, वढिया, उम्दा, खरा और चोखा दिया है और दूसरे अर्थ-भाग मे स्वस्थ, चगा तन्दुरुस्त, निरोग और आरोग्य। दूसरे अर्थ-भाग के पर्याय तो वहुत कुछ समानार्थक माने भी जा सकते हैं, पर पहले अर्थ-भाग मे दिये हुए पर्यायो का पारस्परिक सामजस्य स्थापित करना वहुत ही कठिन है। और फिर सवसे वडी वात यह है कि इतने पर्याय एक साथ दे देने पर भी 'अच्छा' शव्द का ठीक-ठीक आशय इसलिए समझ मे नही आ सकता है कि उन पर्यायों की भी कही कोई समुचित व्याख्या नही है। हर शव्द के साथ घूम-फिर कर वही पर्याय आते है। उनकी आत्मा या वास्तविक आशय का परिज्ञान करानेवाली व्याख्या कही नही मिलती। यही हाल 'आन' का है। उसमे सात-आठ अर्थ विभाग हैं, जिनमे से अनेक अर्थ-विभागो मे दिये हुए पर्यायो का आपस में कोई मेल नही वैठता। उदाहरणार्थ चौथे अर्थ-विभाग में, ढंग, तर्ज, अदा और छवि, और सातवे अर्थ-विभाग मे अदव, लिहाज, दवाव, लज्जा, शर्म, हया, शंका, डर और भय ऐसे पर्याय हैं जो अर्थ और आशय के विचार से एक दूसरे से वहुत दूर जा पडते हैं। कहाँ ढग और कहाँ छवि! कहाँ अदव, कहाँ शका और कहाँ भय! और तिस पर व्याख्या कही नहीं। मानक कोश के लिए इस एक 'आन' शव्द की व्याख्या निश्चित करने और तर्क संगत रूप में उसका पूरा विवेचन करने में मुझे चार दिन लगाने पडे थे और 'अभी' के विवेचन मे छ: दिन लगे थे। 'अभी' शव्द का शव्द-सागर में एक ही अर्थ है—इसी क्षण, इसी वक्त। पर जव हम कहते हैं—(क) वह अभी चार ही वर्ष का था कि उसके पिता का देहान्त हो गया; अथवा (ख) ग्रहण तो अभी माघ में लगेगा; अथवा (ग) यह तो अभी कल की

बात है, तो क्या इन प्रयोगा मे भी 'अभी का वही अर्थ है जो श द सागर मे दिया गया है ? कदापि नही*। इसी लिए मैं इस निष्कष पर पहुँचा हू कि ठेठ हि दी के बहुत ही छोटे और साधारण समझे जानेवाले शब्दो पर हमे नये ढग से और पूरा विचार करना चाहिए।

प्राय होता यही है कि पारिभाषिक और यारयात शब्द तो बहुत अधिक सरल होता है पर उसकी परिभाषा या यारया करना बहुत ही कठिन होता है और इसलिए उसकी परिभाषा और भी अधिक जटिल तथा दुरुह हो जाती है। यह ठीक है कि बहुत से पारिभाषिक और वज्ञानिक श द ऐसे होते हैं जिनकी ठीक और पूरी यास्या सरल और सुबोध रूप म नही हो सकती फिर भी अच्छे कोशकार का काम ही है उ ह यथा साध्य बोध गम्य बनाना। यही जाकर कोशकार की योग्यता और सूक्ष्म दर्शिता की परीक्षा होती है। परिभाषा या यास्या थाडे मे ऐसे ढग से की जानी चाहिए कि जिज्ञासु पाठक सहज म उसके स्थूल रूप से परिचित हो जायँ। कुछ शब्दो की कुछ विशिष्ट क्षेत्र मे असाधारण प्रकार की व्याख्या या पारिभाषिक विवेचन होना ह पर श०द कोशो म उनका ऐसी व्याख्या या विवेचन की आवश्यकता होती ह, जिसे सब लोग सहज म समझ सके। कुछ श द ऐसे भी (यथा—अधिकार, धातु मात्रा मूल योग रस विधि, सम आदि) होते हैं, जो भिन्न-भिन्न क्षेत्रो या शास्त्रो मे कुछ विशेष प्रकार के अर्थ रखते हैं। ऐसे अवसरो पर इस बात का सकेत कर देना भी को शकार का कतव्य हो जाता ह कि इस श द का यह अर्थ अमुक क्षेत्र या शास्त्र से सम्ब ध रखता ह।

इसके सिवा कुछ ऐसे श द भी होते हैं, जिनके अथ के सम्ब ध में तो विशेष विवाद नहीं होता, पर जिनकी व्याख्याएँ अलग अलग शास्त्रो में अलग-अलग प्रकार से होती हैं। तत्व, द्रव्य धम, मन सरीखे बहुत से ऐसे श द हैं, जिनका आध्यात्मिक क्षेत्र में एक प्रकार से अर्थ या व्याख्या की जाती है दाशनिक क्षेत्र में दूसरे प्रकार से, भौतिक विज्ञान में तीसरे प्रकार से और

---

* मानक हिन्दी कोश के लिए ऐसे सभी श दो का बिलकुल नय ढग म और पूरा तथा व्यास्यात्मक विवेचन मैंन किया ह।

मनोविज्ञान मे चौथे प्रकार से।* ऐसे अवसरो पर कोशकार का कर्त्तव्य है कि वह अर्थ के आरम्भ मे इस वात का सकेत कर दे कि अमुक शास्त्र या विज्ञान मे इस वात का अर्थ लिया जाता है, अथवा अर्थ के अन्त मे कोष्ठक में भी इस वात का निर्देश किया जा सकता हैं। इस प्रकार के निर्देश का ध्यान शब्दो के अतिरिक्त मुहावरों के सम्बन्ध में भी रखना पडता है, और कुछ अवसरो पर यह वतलाना भी आवश्यक हो जाता है कि अमुक शब्द या अर्थ किस भौगोलिक क्षेत्र या प्रदेश का है।

कोशकारों के सामने इधर हाल मे वेवस्टर की न्यू डिक्शनरी ने एक नया आदर्श रखा है जो वहुत ही उपयोगी तथा उपादेय होने के कारण अच्छे, और वडे शब्द-कोशो के लिए विशेष रूप से अनुकरणीय हैं। उसमें अनेक शब्दो के अन्तर्गत उनसे मिलते-जुलते पर्यायो के सूक्ष्म अन्तर भी दिखलाये गये हैं। यथा—फीयर (Fear) के अन्तर्गत ड्रेड (Dread), फ्राइट (Fright), एलार्म (Alarm), डिस्मे (Dismay), टेरर (Terror) और पैनिक (Panic) के सूक्ष्म अन्तर भी वतला दिये गये हैं। ऐसा यही सोचकर किया गया है कि कोशकार का काम शब्दो के अर्थ वतला देने से ही समाप्त नही हो जाता, वल्कि इससे भी आगे वढकर उसका काम होता है—लोगो को शब्दों के ठीक प्रयोग वतलाना। हमारे यहाँ ऐसे सैकड़ो-हजारो शब्द मिलेगे, जिनके पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर वतलाये जा सकते है, और इस प्रकार जिज्ञासुओं को शब्दो पर नये ढंग से विचार करने का अभ्यास कराया जा सकता है। इसी दृष्टि से मानक हिंदी कोश मे ठंढ और ठंढक; तुल्य, सदृश और समान, मात्रा और मान; सहना, झेलना और भोगना, संशय और सन्देह; साहित्य और वाङ्मय सरीखे अनेक शब्दो के अन्तर्गत उनके पारस्परिक सूक्ष्म भेद वतलाने का भी प्रयत्न किया गया है। यह ऐसा नया क्षेत्र है जिसमें भावी कोशकारो को अधिकाधिक काम करके दिखलाना चाहिए।

---

* उदाहरण के लिए अर्थ-शास्त्र में 'भूमि' का अर्थ जमीन या पृथ्वी तक ही परिमित नही रहता, वल्कि पृथ्वी के गर्भ, धरातल के ऊपरी भाग और उस पर की सव चीजो (नदी, पर्वत, गरमी, सरदी, वर्षा आदि) का भी उसमे अन्तर्भाव होता है, क्योकि सभी चीजो से किसी न किसी प्रकार का उत्पादन होता है या हो सकता है। इसके विपरीत उक्त शास्त्र मे मनुष्य का श्रम ही 'श्रम' माना जाता है। उसमे घोडे, वैलों या पशु-पक्षियों का श्रम इसलिए 'श्रम' नही माना जाता कि आर्थिक दृष्टि से मनुष्य के लिए उपयोगी होने पर भी स्वय उन पक्षियो के लिए उत्पादन या उपयोगी नही होता।

शब्दों की व्याख्या करते समय ध्यान में रखने की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह यथा-साध्य बोध गम्य या स्पष्ट होनी चाहिए—पहेली के रूप में या ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसे समझने के लिए जिज्ञासु को सिर-पच्ची करनी पड़े या सिर-पच्ची करने पर भी निराश या विफल ही रहना पड़े। व्याख्या के सम्बन्ध में सिद्धान्त यह होना चाहिए कि वह जिज्ञासुओं को निराश या खिन्न न करने पावे। बहुत ही साधारण ज्ञान रखनेवाले जिज्ञासु का तो उससे पूरा सन्तोष हो ही जाय, पर यदि वह व्याख्या किसी विद्वान या विशेषज्ञ के सामने पड़े, तो वह भी मान ले कि कोशकार ने यह विषय अच्छी तरह समझकर तो लिखा ही है, अच्छी तरह समझाकर भी लिखा है।

शब्द की व्याख्या के सम्बन्ध में एक सर्व मान्य नियम यह है कि जिस शब्द की व्याख्या की जाय स्वयं वह शब्द उस व्याख्या में नहीं आना चाहिए। कारण यह है कि परिभाषा या व्याख्या का मुख्य उद्देश्य कठिन को सहज या दुर्बोध को सुबोध करने के लिए ही होता है, और जो बात या विषय पहले ही दुर्बोध हो वह कुछ दूसरे शब्दों की सहायता से ही सुबोध कराया जा सकता है। कोशकार के लिए इस नियम का पालन आवश्यक तो है, पर इसके कारण कभी कभी उसका काम बहुत कठिन हो जाता है। मुझे याद है कि हिन्दी शब्द सागर के सम्पादन के समय इसी दृष्टि से 'करना' क्रिया की व्याख्या और विवेचन करने के लिए स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल को और मुझे पूरे तीन दिन लगाने पड़े थे। इस सम्बन्ध में अन्यान्य अनेक प्रामाणिक कोश देखकर हमें यह नीति निर्धारित करनी पड़ी थी कि शब्द की जो पहली और मूल व्याख्या हो, उसमें तो वह शब्द कदापि नहीं आनी चाहिए बाद के अर्थों में भी जहाँ तक हो सके वह शब्द बचाना चाहिए। पर कुछ अवस्थाओं में बाद के अर्थों में वह शब्द प्रयुक्त करना इसी लिए उतना दोषपूर्ण नहीं माना जाता कि पहले अर्थ में उसकी यथेष्ट व्याख्या हो चुकी होती है। अँगरेजी के अनेक अच्छे शब्द कोशों में यही परिपाटी दिखाई देती है और हिन्दी में भी यह आपत्तिजनक नहीं मानी जानी चाहिए।

अब हम अर्थों और विवरणों पर एक दूसरी दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। अधिकतर शब्द ऐसे होते हैं जिनके अनेक अर्थ होते हैं। पर वे सब अर्थ एक साथ ही उस शब्द में आकर लगे हुए नहीं होते। उनके अर्थ विकास का भी एक क्रम—एक इतिहास होता है, और अच्छे कोशकार के लिए उस क्रम या इतिहास का भी ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। यदि वे

सब अर्थ एक साथ गड्ड-मड्ड करके बिना किसी क्रम या व्याख्या के रख दिये जायँ तो एक भद्दे ढेर की तरह दिखाई देंगे। अच्छे कोशकार विवरणो और अर्थो का भी एक निश्चित क्रम लगाते हैं, और उन्हे नियमित तथा व्यवस्थित रूप मे सजा कर जिज्ञासुओ के सामने रखते हैं। साधारणतः शब्दो के अर्थ तीन प्रकार के होते हैं—मूल अर्थ या शब्दार्थ, चलित अर्थ और लाक्षणिक अर्थ। किसी शब्द का जो आरम्भिक और मूल अर्थ होता है, वही शब्दार्थ कहलाता है। उस मूल अर्थ के बाद उसमे कुछ और अर्थ लगते हैं, जिन्हें चलित अर्थ कहते हैं। कभी-कभी कुछ शब्दो में मंगल-भाषित, व्यंग्यात्मक, परिहासिक आदि लाक्षणिक अर्थ भी लग जाते हैं। मंगल भाषित का अभिप्राय है किसी अमंगल-सूचक शब्द के स्थान पर किसी मगलवाची शब्द का प्रयोग करना। सुहागिन स्त्रियो की चूड़ियाँ उस समय उतारी या तोडी जाती हैं, जब वे विधवा होती हैं, इसी लिए साधारण अवस्था मे वे चूड़ी के उतारने के लिए चूड़ियाँ बढाना और चूडी टूटने के समय 'चूड़ी बढना' का प्रयोग करती हैं। दुकान बन्द करना कारबार के समाप्त हो जाने की अशुभ भावना का सूचक है। इसलिए नित्य रात के समय दूकान बन्द करना लोक मे 'दूकान बढाना' कहलाता है। इसी प्रकार दीया बुझाना की जगह 'दीया बढाना' कहलाता है, और 'चूल्हा बुझाना' की जगह 'चूल्हा ठंढा करना' कहते हैं। कुछ समाजो और भाषाओ मे साधारण 'जाना' शब्द तक अशुभ माना जाता है। इसी लिए महाराष्ट्र में लोग जब कही से चलने लगते हैं, तब यह नही कहने—मी जातो (अर्थात् मैं जाता हूँ) बल्कि कहते हैं—मी येतो (अर्थात् मैं आता हूँ) यही बात बँगला मे भी है। फारसी मे भी ऐसे अवसरो पर प्रायः 'मी आयम' कहा जाता है। अर्थात् उक्त प्रसग मे 'आना' का प्रयोग जाना के अर्थ मे होता है। कदाचित् इसी विचार से हिंदी मे भी लोग 'अब मैं जाता हूँ' न कहकर प्रायः 'अब मैं चलता हूँ' कहते हैं। बहुत कुछ इसी वर्ग मे उर्दू भाषा तथा मुसलमानी समाज मे एक और प्रकार का प्रयोग प्रचलित है। जब कोई बहुत बड़ा आदमी, रईस या राजा बीमार पड़ता है तब उसके घर के लोग और नौकर-चाकर कहते हैं—आज-कल हुजूर के दुश्मनों की तबीयत खराब है। ऐसे अवसरो पर तबीयत की खराबी या बीमारी का आरोप 'हुजूर' के बदले उनके 'दुश्मनो' पर कर दिया जाता है। इसे हम अमंगल-वर्जित प्रयोग कह सकते हैं।

व्यंग्य के रूप मे लोग प्रायः दुष्ट के अर्थ मे भले-आदमी, महात्मा, महापुरुष, हजरत आदि का और किसी के मुँह पर 'कालिख पोतना', की जगह

विशिष्ट वर्गों या विभागों मे बँट सकने के योग्य हो सकते हैं, और अच्छे कोशकार को ऐसे अर्थों के वर्ग या विभाग भी निश्चित करने पडते हैं। प्रत्येक वर्ग या विभाग मे कुछ अलग अलग प्रकार के शब्द भी आते हैं, और इस प्रकार के सब अर्थ एक साथ आने चाहिएँ। उदाहरणार्थ-- रस शब्द लीजिए। इसके कुछ अर्थ तरल पदार्थों के वाचक होते हैं कुछ घन पदार्थों के और कुछ अमूर्त भावनाओ या अनुभूतियो से सम्बद्ध होते हैं और सम्भवत इसी क्रम से इसके अर्थों का विकास भी हुआ है। अत इसके अर्थ भी इसी क्रम से होने चाहिएँ। फिर 'रस' शब्द मे जीभ से सम्बन्ध रखनेवाले छ रसो का जहाँ उल्लेख हो, वहीं उसके बाद यह भी उल्लेख होना चाहिए कि काव्य मे यह इस अर्थ के आधार पर छ की सख्या का भी वाचक है, और जहाँ साहित्य के नौ रसो का उल्लेख हो, वहीं उसके बाद उसके ९ की सख्या के वाचक होने का भी उल्लेख होना चाहिए।

शब्दो के अर्थ देते समय उनका ठीक-ठीक पार्थक्य दिखलाने और विभाग करने के लिए उनके साथ सख्यासूचक अक देना बहुत आवश्यक होता है। हिंदी मे यह उपयोगी प्रथा 'हिंदी शब्द सागर' से चली थी और कुछ दूसरे कोशो ने भी इसका अनुकरण किया है। इससे जिज्ञासुओ को अर्थ समझने मे बहुत सुभीता होता है और किसी प्रकार का भ्रम नहीं होने पाता। स्वय कोशकार के लिए भी अर्थ सूचक सख्याएँ देना विशेष रूप से उपयोगी होता है। मान लीजिए कि हम किसी शब्द के आगे किसी ऐसे दूसरे शब्द का अभिदेश करना चाहते हैं जिसके कई अर्थ हैं, जो सबके सब उद्दिष्ट नहीं हैं, बल्कि उनमे से कोई विशेष अर्थ ही उद्दिष्ट है। उस समय उस शब्द की अर्थ-सख्या हमारे अभिदेश के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। पर प्राय कोशकार केवल स्थान की बचत करने के लिए अर्थ-सख्या रखते ही नहीं। शायद वे समझते हैं कि इस प्रकार बचाये हुए स्थान का उपयोग शब्दों की सख्या बढाने मे किया जा सकता है। पर इधर उधर के बहुत से शब्द इकट्ठे करके बहुत से अर्थ एक साथ खिचडी के रूप में तैयार करके लोगो के सामने रखन की अपेक्षा थोडे से ऐसे शब्द देना कहीं अच्छा है, जिनके अर्थ ठीक और पूरे हों और उचित क्रम तथा व्यवस्थित रूप मे रखे गये हों। अँगरेजी के अच्छे कोशों में इस प्रकार का बहुत सूक्ष्म विचार करके उनके अर्थ विभाग किये जाते हैं। उनमे प्रत्येक विभाग के साथ सख्या-सूचक अक तो रहते ही है,

उन विभागो के अन्तर्गत क, ख, ग, घ आदि देकर उनके उप-विभागवाले अर्थ भी दिये जाते हैं।*

अर्थों के ठीक विभाग और उप-विभाग और क्रम लगा लेने के बाद एक और बात का ध्यान रखना चाहिए। कभी-कभी कुछ शब्दो के विशिष्ट अर्थो के साथ कुछ विशिष्ट मुहावरे, पद, कहावतें, क्रिया-प्रयोग आदि सम्बद्ध होते हैं। ये सब बाते भी अपने ठीक स्थान पर, अर्थात् उन्ही अर्थों के तुरन्त बाद होनी चाहिएँ जिनका पालन सारे कोश मे आदि से अन्त तक एक-सा हो। यदि पहले क्रिया-प्रयोग, तब पद और अन्त मे मुहावरे या कहावते हों तो और भी अच्छा है। परन्तु साधारण क्रिया-प्रयोगों और मुहावरों मे जो सूक्ष्म अन्तर होता है, उसका कोशकार को पूरा और स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। उदाहरण के लिए 'हजामत बनाना' प्रयोग लीजिए। बिलकुल साधारण अर्थ मे तो 'हजामत' के साथ 'बनाना' शब्द क्रिया मात्र के रूप मे लगा है, पर किसी को मूर्ख बनाकर उससे रुपए वसूल करने के अर्थ में वह मुहावरा है। यही बात 'कान काटना', 'गोली मारना', 'चाल चलना', 'जान देना', 'मुँह खोलना', 'लोहा लेना' सरीखे प्रयोगों के सम्बन्ध मे भी है, जिनमे एक अर्थ के विचार से तो क्रियाएँ अपने साधारण रूप मे लगी हैं पर दूसरे अर्थ के विचार से वे मुहावरा बनाती हैं। मुहावरो और कहावतों मे भी इस प्रकार का बहुत बड़ा अन्तर है, और उस अन्तर का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए -- दोनो को एक साथ मिला नही दिया जाना चाहिए।

महावरो के सम्बन्ध मे अच्छे कोशकारो के सामने एक और बहुत बड़ी कठिनता उपस्थित होती है, जिससे पार पाने के लिए गम्भीर विचार और सूक्ष्म-दर्शिता की आवश्यकता होती है। साधारणतः मुहावरे कई शब्दो के पद होते हैं, और उन्हे देखकर यह निश्चय करना कठिन होता है कि कोई मुहावरा उसमें आए हुए किस शब्द के अन्तर्गत रखा जाय। साधारण नियम यही है कि सारे पद मे जो शब्द मुख्य हो, उसी मे यह पद (या मुहा-

---

* 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' के पहले सस्करण मे शब्दों के अर्थों के साथ भी और मुहावरो के अर्थो के साथ भी संख्या-सूचक अंक ही रखे गये थे। पर इसमे कही कही जिज्ञासुओ को भ्रम हो सकता था, इसलिए दूसरे संस्करण मे मुहावरो के अर्थो के साथ संख्या-सूचक अंको की जगह उनके विभेद सूचित करने के लिए, क, ख, ग आदि वर्ण लगाये गये हैं। यही परिपाटी 'मानक हिन्दी कोश' में भी रखी गई है।

करा) रखा जाता है। 'शब्द-सागर' में इस सिद्धान्त का यथा-साध्य बहुत कुछ पालन हुआ है, और उसमें हिन्दी के भावी कोशकारों के लिए इस समस्या का बहुत कुछ निराकरण हो चुका है। फिर भी कुछ स्थलों पर, दृष्टि-दोष से, उसमें अनेक भूलें रह ही गई हैं। उदाहरणार्थ—उसमें 'ऊपर' शब्द के अन्तर्गत 'किसी के ऊपर टूट पड़ना' और 'किसी के ऊपर हार पड़ना' मुहावरे भी दे दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में ध्यान देने की पहली बात यह है कि उक्त मुहावरों में 'किसी के ऊपर' पद प्रधान या मुख्य नहीं है, क्योंकि इसका रूप 'किसी पर' भी हो सकता है। वस्तुतः प्रधानता तो 'टूट पड़ना' और 'हार पड़ना' की है। अतः इनमें का पहला मुहावरा 'टूटना' के अन्तर्गत और दूसरा 'हार' के अन्तर्गत आना चाहिए। इन मुहावरों में 'किसी के ऊपर' या 'किसी पर' का कुछ भी महत्व नहीं है। यदि हम 'ऊपर' का महत्व मानें तो 'पर' का क्यों न मानें? यदि 'ऊपर' या 'पर' का ही महत्व माना जाय तब तो इधर-उधर के सैकड़ों-हजारों मुहावरे (जैसे—किसी पर मार पड़ना, किसी पर लानत भेजना आदि) 'ऊपर' या 'पर' के अन्तर्गत ही ला रखने पड़ेंगे। इसी प्रकार 'लग हाथ' या 'लगे हाथ' मुहा० 'हाथ' के अन्तर्गत रहना चाहिए, 'लगना' के अन्तर्गत नहीं। 'गोली मारना' मुहा० 'गोली' के अन्तर्गत और 'चाल चलना' मुहा० 'चाल' के अन्तर्गत रहना चाहिए।

मुहावरों के रूपों और अर्थों के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में एक और बात ध्यान देने योग्य है। कोशों में मुहावरे ऐसे रूप में देने चाहिएँ कि उनका ठीक ठीक प्रयोग भी लोगों को तुरन्त और स्पष्ट ज्ञात हो जाय। उदाहरणार्थ, हिन्दी शब्द-सागर में 'आँख' के अन्तर्गत सैकड़ों मुहावरे आये हैं, जैसे—आँख उठाना, आँख खोलना, आँख लगना आदि। ऐसे प्रत्येक मुहावरे का एक ही रूप रखकर उसके अन्तर्गत कई-कई अर्थ एक साथ दे दिये हैं, जिससे उस मुहावरे का आशय और प्रयोग ठीक तरह से स्पष्ट नहीं होने पाता। 'आँख लगना' ही लीजिए, जिसके हिन्दी शब्द सागर में तीन अर्थ आये हैं—नींद लगना, प्रीति होना और टकटकी लगना। पर इन तीनों अर्थों के प्रयोग के विचार से 'आँख लगना' के ये तीन रूप होते हैं—किसी की आँख लगना, किसी से आँख लगना और किसी ओर आँख लगना। अतः आगे चलकर बननेवाले अच्छे कोशों में यह मुहावरा इन रूपों में आना चाहिए—(किसी की) आँख लगना, (किसी से) आँख लगना और (किसी ओर) आँख लगना। इसके सिवा इस मुहावरे का एक चौथा अर्थ भी होता है—प्राप्ति की इच्छा

से ध्यान लगा रहना। और इस दृष्टि से इसका रूप होगा—(किसी चीज पर) आँख लगना। 'मानक हिन्दी कोश' मे ये सब मुहा० इन्ही रूपो मे दिये गये हैं। इस प्रणाली से पाठको का विशेष उपकार होगा, मुख्यत: अन्यान्य भाषा-भाषी सहज मे इनका ठीक-ठीक प्रयोग करना सीख सकेंगे। जो बात यहाँ आँख के सम्बन्ध मे कही गई है, वही सैकड़ो-हजारो अन्यान्य शब्दो के मुहावरो के सम्बन्ध मे भी समझनी चाहिए।

मुहावरों के आर्थी विवेचन के सम्बन्ध मे ध्यान रखने की एक बात और है। जिस प्रकार किसी वर्ग के अनेक शब्द एक दूसरे के समानार्थी जान पडने पर भी सूक्ष्म विवेचन करने पर कुछ विशिष्ट सूक्ष्म अन्तरो से युक्त सिद्ध होते हैं, उसी प्रकार कुछ मुहावरे भी ऐसे होते हैं जो देखने में तो एक दूसरे के बहुत कुछ सदृश जान पड़ते हैं, फिर भी जिनके अर्थो और भावो मे बहुत बडा अन्तर होता है। उदाहरणार्थ ये दो मुहावरे लीजिए—

(क) किसी का कलेजा तर होना।

(ख) किसी की छाती ठढी होना।

उक्त दोनो मुहावरो मे कलेजा और छाती तथा तर और ठढी बहुत कुछ समानार्थक है, फिर भी दोनों मुहावरो के आशय एक दूसरे से बिलकुल भिन्न और बहुत कुछ विपरीत हैं। कलेजा तर होने का प्रयोग तो किसी शुभ प्राप्ति या लाभ होने और उससे यथेष्ट तृप्ति प्राप्त होने के प्रसंगों मे होता है। परन्तु 'छाती ठढी होना' का प्रयोग ऐसे अवसरो पर होता है जब हम देखते हैं कि किसी ऐसे व्यक्ति का कोई बहुत बड़ा अपकार या हानि होती है, जिसके प्रति हमारे मन मे ईर्ष्या या द्वेष का भाव होता है। यही बात 'कलई खुलना' और 'भडा फूटना' सरीखे अन्यान्य अनेक मुहावरों के सम्बन्ध मे भी है।

प्रत्येक शब्द का अर्थ उसके उसी रूप के अन्तर्गत आना चाहिए, जो सबसे अधिक विस्तृत क्षेत्र मे प्रचलित हो तथा मानक माना जाता हो। शब्द के शेष पर्यायों या रूपो के आगे वही मानक और विशेष प्रचलित रूप अभि-दिष्ट होना चाहिए, जिसके साथ अर्थ, व्याख्याएँ, मुहावरे आदि दिये हो। परन्तु अभिदेश करते समय कोशकार को बहुत सावधान रहना चाहिए। बहुत से शब्द ऐसे होते हैं जो एक से अधिक शब्द-भेदवाले होते हैं। यह

ठीक है कि संज्ञा शब्द का अभिदेश संज्ञा के प्रति ही होगा,* विशेषण का विशेषण और क्रिया विशेषण का क्रिया विशेषण के प्रति। यदि किसी अक र्मक क्रियावाले शब्द के आगे लिखा हो—दे० 'चूना', तो जिज्ञासु को 'चूना' का वही अर्थ देखना चाहिए जो उसके अकर्मक क्रियावाले विभाग में हो। और यदि किसी संज्ञा शब्द के आगे लिखा हो—दे० 'चूना' तो जिज्ञासु को उसके संज्ञावाले विभाग के अन्तर्गत ही उसका अर्थ देखना चाहिए। यह तो हुआ जिज्ञासु का काम। पर हम सभी जिज्ञासुओं से यह आशा नहीं रख सकते कि वे इस प्रकार की सूक्ष्म बातों या भेदों का हर समय ठीक और पूरा ध्यान रखेंगे। अतः उनके मार्ग-प्रदर्शन और सहायता के लिए कुछ सुभीता कर देना भी कोशकार का कर्तव्य होता है। उसे अभिदेश के समय उस अर्थ का भी कुछ संकेत कर देना चाहिए जो इस प्रसंग में अभीष्ट हो जैसे—यदि 'चूना' का अ० क्रियावाला अर्थ उद्दिष्ट हो तो कोष्ठक में उसके आगे टपकाना, रसना या और कोई ऐसा प्रसिद्ध पर्याय दे देना चाहिए, जो 'चूना' के क्रियावाले अर्थ में आया हो और यदि संज्ञा वाला अर्थ अभीष्ट हो तो 'चूना' के आगे कोष्ठक में 'फूँका हुआ पत्थर' या इसी प्रकार का और कोई संकेत कर देना आवश्यक है। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं, अभिदेश के लिए शब्द की अर्थ संख्या भी बहुत उपयोगी होती है। यदि हम किसी शब्द के आगे लिख दें—दे० काँटा घाट प्रत्यय, मन, राग वाचन या शाखा तो जिज्ञासु को शब्द के सभी अर्थ देखने पड़ेंगे और तब अपनी बुद्धि से यह सोचना पड़ेगा कि इन सब अर्थों में से कौन सा अर्थ अभीष्ट है। पर यदि हम लिख दें —दे० 'काँटा' (पक्षियों का), 'काँटा' (तराजू का), काँटा' (गणित का) या दे० 'प्रत्यय (सृष्टि का), 'प्रत्यय (साहित्य का), या दे० 'मन' (अन्तःकरण), 'मन' (तौल) या दे० शाखा' (वृक्ष की), 'शाखा' (वेद की) आदि तो पाठकों को अभीष्ट अर्थ तक पहुँचने या बात समझने में विशेष सुभीता होगा। और हो सकता है कि इतने अभिदेश से जिज्ञासु का उस समय काम चल जाय, और उसे अभिदिष्ट शब्द देखने की आवश्यकता न रह जाय। अथवा जहाँ किसी कारण से ऐसा न हो सके वहाँ यदि हम लिख दें—दे० 'प्रत्यय ४ 'राग' ८, या वाचन' ६ तो

* कभी-कभी स्त्री० संज्ञा किसी पुलिंग संज्ञा के प्रति भी अभिदिष्ट होती है और प्रतिक्रमात् भी। ऐसे अवसरों पर भी अभिदिष्ट शब्द के बाद कोष्ठक में उसके विशिष्ट अर्थ का संकेत कर देना आवश्यक होता है।

जिज्ञासु विना किसी कठिनता के और सहज मे हमारा आशय समझ लेंगे और तुरन्त अभीष्ट अर्थ तक पहुँच जायँगे।

परन्तु अभिदेशों के सम्वन्ध मे कई वातो का ध्यान रखना आवश्यक है। कोशो मे और विशेषतः वडे-वडे कोशो मे अभिदेशो का प्रयोग जहाँ तक हो सके, खूव सोच समझकर और यथा-साध्य परिमित होना ही चाहिए। इसके कई कारण हैं। पहली वात तो यह है कि ऊपर से समानार्थक जान पडनेवाले शब्दो मे भी प्राय: अर्थ सम्वन्धी कुछ सूक्ष्म भेद होते हैं. और ऐसे अर्थोवाले शब्दो का भी अभिदेशिक सम्वन्ध करना ठीक नही होता। दूसरे वहुत वडे और कई खडोवाले कोशो मे अभिशिष्ट शब्द तक पहुँचने के लिए कुछ अतिरिक्त परिश्रम करना और समय लगाना पड़ता है। तीसरे, अभि-दिष्ट शब्द प्राय: स्वतन्त्र व्युत्पत्तिवाले होते हैं, और कुछ अवस्थाओ मे व्युपत्ति ढूँढनेवाले जिज्ञासु अभीष्ट सिद्धि से वञ्चित रह जाते हैं। चौथे, कभी-कभी कम प्रचलित अभिदिष्ट शब्द अपने स्वतन्त्र उदाहरण की भी अपेक्षा रखते हैं। ये सभी वाते ऐसी हैं जिनका अच्छे कोशकार को ध्यान रखना पड़ता है।

एक वात और है। शब्दों के आगे अभिदेश देते समय कोशकार को यह भी देख लेना चाहिए कि हम जिस शब्द की ओर सकेत कर रहे हैं, उसमें ठीक और पूरा, अर्थ आया भी है या नही। हिन्दी शब्द-सागर के पहले संस्करण मे 'कलछी' के आगे छपा था—दे० 'कलछा', और 'कलछा' के आगे छपा था—दे० 'कलछी'; पर अर्थ या व्याख्या दोनो मे से किसी शब्द के आगे नही थी। जिस दूसरे शब्द की ओर सकेत किया जाता है, वह शब्द देखने पर उसके आगे यदि किसी तीसरे शब्द का अभिदेश मिलता है, तो जिज्ञासु को उलझन होती है। यह भी कोश का वड़ा दोष माना जाता है, अच्छे कोशकारो को इससे भी वचना चाहिए।

———

शब्दों का आर्थी महत्व

जिस प्रकार कुशल चिकित्सक के लिए सभी प्रकार की ओषधियों
के गुणों, परिणामों और प्रभावों का पूरा ज्ञान आवश्यक
होता है, उसी प्रकार कुशल लेखक या साहित्यकार
के लिए भी शब्दों के अर्थों, भावों और
विवक्षाओं का पूरा ज्ञान भी परम
आवश्यक होता है।

दूसरा खण्ड

ज्ञान और विज्ञान

परमात्मा ने मनुष्य को प्रबल जिज्ञासा वृत्ति तो दी ही है, उसे परितोष और फलवती करने के लिए यथेष्ट बुद्धि-बल भी दिया है। आज संसार में हम ज्ञान और विज्ञान का जो इतना अधिक प्रकाश तथा वैभव दिखाई देता है, वह सब इन्हीं दोनों का प्रसाद है। हिन्दी सेवियों का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने शब्दों की आर्थी शक्ति का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करें और आर्थी विवेचन की प्रक्रिया का विकास करके उसे विज्ञान के क्षेत्र में उचित स्थान दिलाने का प्रयत्न करें।

तुलनात्मक और व्याख्यात्मक विवेचन

अंक आँकड़े और संख्या

अंक	आँकड़े	संख्या
Figure, Digit	1. Numerals 2 Statistics	Number

इस वर्ग के शब्द गिनतियो और उनके सूचक चिह्नो आदि के वाचक तो है ही, फिर भी अपने क्षेत्र में कुछ विशिष्ट अभिप्रायो या आशयो से युक्त है।

'अंक' पु० (स०) मूलत: उसी धातु से बना है, जिससे अ कन बना है। अ कन का अर्थ है—किसी चीज पर पहचान के लिए चिह्न, छाप, निशान या मोहर लगाना। अपने परवर्ती अर्थ मे यह उस क्रिया का भी सूचक है, जिसमें किसी चीज की आकृति या रूप सूचित करने के लिए उल्टी-सीधी और टेढी-मेढी रेखाएँ बनाई जाती हैं। इसी के अन्तर्गत चित्र बनाने और लिखने की क्रियाएँ आती है। इसी आधार पर अ क का एक आरम्भिक अर्थ चिह्न, छाप या निशान और दूसरा अर्थ लिखावट या लेख भी होता है। इसका एक और विकसित अर्थ प्रारब्ध या भाग्य भी होता है, क्योंकि वह विधाता का कभी न मिटनेवाला लेख माना जाता है। इसके कुछ और विकसित अर्थ होते हैं; जैसे—क्रोड या गोद, कटि या कमर आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे अ क का अर्थ है—संख्या वाचक शब्दो का सूचक चिह्न। हम एक, दो, तीन आदि साख्याओ का जहाँ तक उच्चारण करते हैं वहाँ तक तो उन्हे साख्या कहते है; परन्तु जिस प्रकार अक्षरो की उच्चारण ध्वनिया सूचित करने के लिये उनके अ किन या लिखित रूपो को "वर्ण" कहते हैं (दे० 'अक्षर और वर्ण') उसी प्रकार साख्या सूचक उच्चारण ध्वनियों का बोध कराने वाले चिह्नो को इसलिए अ क कहते हैं कि हम उन्हे टेढी-मेढी रेखाओं से लिखकर उनका प्रतीकात्मक आकार या रूप बनाते हैं।*

---

* अ ग्रेजी मे Figure का भी प्रमुख अर्थ आकृति या रूप ही है। कहा जा सकता है कि अ ग्रेजी मे अङ्क को भी इसलिए Figure कहते हैं कि साख्याओ की अमूर्त उच्चारण ध्वनियो को किसी प्रकार अङ्कित या चित्रित करके अथवा लिखकर मूर्त रूप दिया जाता है। इस प्रकार अङ्क और Figure दोनों की सार्थकता सिद्ध भी होती है और सूचित थी।

'आँकड़े' पु० है तो सं० अङ्क का अपभ्रष्ट रूप ही, पर इसके सम्बन्ध में दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। एक तो यह कि इसका प्रारंभिक और मूल रूप 'आँकड़ा' है, और दूसरे यह कि आँकड़े इसी का बहुवचन रूप है। अंक का प्रयोग तो दोनों वचनों में होता है, परन्तु हिंदी में "आँकड़ा" एक वचन में और 'आँकड़े' दो वचन में प्रयुक्त होता है। जैसे—(क) यहाँ लिखने में तुम एक आँकड़ा छोड़ गये हो और (ख)—बच्चे ने आँकड़े लिखना अच्छी तरह सीख लिया है। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि प्रस्तुत प्रसंग में 'आँकड़ा' और 'आँकड़े' का अर्थ वहीं तक सीमित है, जहाँ तक अंक का ऊपर बतलाया हुआ अर्थ निरूपित है।

परन्तु बहुवचन रूप में आजकल 'आँकड़े' का प्रयोग एक नये और विशिष्ट अर्थ में होने लगा है। प्राय किसी कार्य विभाग या विषय से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ विशिष्ट महत्वपूर्ण तथ्य पक्ष या स्थिति स्पष्ट रूप से सूचित करने और उसके आधार पर कोई निष्कर्ष निकालने या सिद्धांत स्थिर करने के लिए संख्याएँ आदि एकत्र करके उनका वर्गीकरण करके उन्हें सारिणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और तब उनका अध्ययन, अनुशीलन और विवेचन किया जाता है। इस प्रकार की सभी संख्याओं की पारिभाषिक और सामूहिक संज्ञा 'आँकड़े' हैं। जैसे–(क) इधर दस वर्षों के आँकड़े से सिद्ध होता है कि मृत्यु संख्या बराबर कुछ न कुछ घट रही है। और (ख) शासन ने आँकड़ों के आधार पर यह बतलाया है कि गत और विगत वर्षों की तुलना में इस वर्ष कई खाद्यान्नों की उपज दूनी से भी अधिक हुई है, और तिलहन तथा पटसन की उपज भी प्राय ड्योढ़ी हो गयी है।

'संख्या' स्त्री० (सं०) उसी 'ख्या' से बना हुआ शब्द है जिसके अर्थ हैं—ज्ञात या परिचित कराना नाम स्थिर करना, पुकारना आदि, और जिससे आख्या, उपाख्यान ख्याति सरीखे शब्द बने हैं। संख्या का यों साधारण अर्थ तो है–गणना करने या हिसाब लगाने के लिए वस्तुओं की गिनती करना। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में संख्या का मुख्य अर्थ है वह मान या राशि जो गिनने या हिसाब लगाने पर निश्चित हुई हो। संख्या' और अङ्क में ध्यान रखने योग्य दो मुख्य अन्तर हैं। एक तो यह कि संख्या मूलत अर्थ की दृष्टि से वहीं तक सीमित है जहाँ तक हम उसके वाचक शब्दों का उच्चारण करते हैं अर्थात् यह उच्चारण ध्वनि मात्र का

वाचक है और इन ध्वनियों के लिखित रूप 'अङ्क' कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त तात्विक दृष्टि से १ से ९ तक लिखे जानेवाले सब शब्द और दहाई की सूचक बिन्दी ही अङ्को के अन्तर्गत आती है। परन्तु संख्या के सम्बन्ध मे इस प्रकार का कोई बन्धन नही है। सख्याएँ सैंकड़ो, हजारो, लाखों, करोड़ों, अरबो और इससे भी अधिक तक हो सकती हैं। यदि हम लिखें—'सन् १६५२ में देश मे बहुत बड़ा अकाल पड़ा था।' तो यहाँ 'एक, छः, पाँच, दो' से तो संख्या ही सूचित होगी। परन्तु इसमे के एक छः, पाँच और दो की गिनती अङ्कों मे अलग-अलग होगी। परन्तु आज-कल कुछ विशिष्ट क्षेत्रो मे प्रयोग और लोक-व्यवहार की दृष्टि से 'अङ्क' और 'संख्या' एक दूसरे के पर्याय के रूप मे भी चल पडे हैं; जैसे—(क) यह तो इस मासिक पत्रिका का तीसरा ही अङ्क है; अथवा तीसरी ही संख्या है। और (ख) आपकी पत्रिका के चौथे और पाँचवे अङ्क हमे अभी तक नही मिले हैं; अथवा छठी और सातवी सख्याएँ छपते ही भेज दीजिएगा आदि।*

× ×

अंकुश और नियंत्रण

Check — Control

इस वर्ग के शब्द किसी को ठीक तरह से चलाने और वश मे रखने के वाचक हैं।

'अंकुश' पुं० [सं०] मूलतः छोटी बरछी की तरह का वह हथियार है जिसके अगले सिरे पर दोनो ओर दो उल्टी अंकुड़ियाँ लगी रहती हैं। यह महावत के हाथ मे रहता है और इसी की सहायता से वह हाथी को चलाता, मोड़ता और रोकता है। हिन्दी में इसे 'गज-बाग' भी कहते हैं। परन्तु

* गणित के क्षेत्र मे संख्याएँ दो प्रकार की मानी गई हैं—क्रम-संख्या और गण-सख्या। नियत और निश्चित क्रम से चलनेवाली १, २, ३, ४ आदि अथवा ३२, ३३, ३४ आदि सख्याएँ क्रम-सख्या (Ordinal number) कहलाती हैं। तीसरा, चौथा, पाँचवाँ आदि भी क्रम-संख्यक विशेषण होते हैं; क्योकि ये किसी श्रृंखला मे क्रमागत स्थानों के सूचक हैं। परन्तु १५६, १२७२, ८७६६ सरीखी गण या समूह वाचक सख्याएँ गण संख्या कहलाती हैं।

अपने परवर्ती और विकसित अर्थ में यह उस अधिकार का वाचक है जिसके बल पर यह दूसरे को किसी काम में प्रवृत्त करता अथवा कोई काम करने से रोकता है, जैसे—यदि लडको पर अकुश न रखा जाय तो वे मनमाना आचरण करने लगते और बिगड जाते हैं। इसी आधार पर 'निरकुश' ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जो अपने बडों का अधिकार और आज्ञा न मानकर मन माने अनुचित आचरण करता है।

नियन्त्रण' पु ० [स०] का मुख्य अर्थ है किसी काम, बात या व्यक्ति को नियम या बन्धन से बांधना। परन्तु अपने परवर्ती और विकसित रूप म यह किसी अधिकारी या बडे की उस क्रिया का वाचक है जिसके द्वारा वह दूसरों को नियमो, बन्धनो आदि मे बाँधकर अपने अधीन या वश में रखता है और उचित आचरण, माग आदि से विचलित नही होने देता। इस प्रकार किसी विषय और व्यक्ति को पूरी तरह से अपने अधिकार और वश में रख कर उसे ठीक रास्ते पर आगे बढाना या चलाना ही नियन्त्रण है। फिर भी इसम मुख्य भाव किसी को पथ भ्रष्ट होने या बिगडने से बचाने का ही है, जसे—(क) सुयोग्य अधिकारी अपने अधीनस्थ कमचारियो को सदा नियन्त्रण में रखते हैं, (ख) सरकार ने अनाज (या करो की वसूली) पर नियन्त्रण रखने के लिए एक नया विधान बनाया है। (ग) अब ऐसे नए इजिन बनने लगे हैं जिनकी सहायता से वायुयान पर चालक का पूरी तरह से नियन्त्रण रह सकता है।

'अकुश' और 'नियन्त्रण' मे मुख्य अन्तर यह है कि 'अकुश' किसी व्यक्ति को किसी काम म बलपूवक प्रयुक्त करने के अथ मे भी प्रयुक्त होता है, परन्तु 'नियन्त्रण मे इधर उधर जाने या बिगडने से रोकने का ही भाव है। × ×

अग अवयव और घटक

अग	अवयव	घटक
Component, Part	Limb	1 Constituent 2 Factor

ये तीनो शब्द मूलत किसी शरीर, शरीरी या समूचे पदाथ के ऐसे अशों या भागो के वाचक हैं जो या तो उसके अन्दर या बाहर अभिन्न रूप से स्थित

रह कर अथवा बाहर की ओर कुछ दूर तक निकले या बढे रह कर कोई विशिष्ट क्रिया करते हैं अथवा उसे पूर्णता तक पहुँचाते हैं।

'अग' पु० [स०] के अनेक अर्थो मे मुख्य अर्थ है—किसी पदार्थ, प्राणी या शरीर का प्रत्येक ऐसा अंश या भाग जो नित्य या स्थायी रूप से उसके साथ लगा रहकर या तो उसकी क्रिया करता हो या उसे सम्पूर्णता प्राप्त कराता हो। यह बात दूसरी है कि हम किसी पदार्थ या प्राणी का कोई अंग काट-कर अलग कर लें; परन्तु जब तक वह अग उस पदार्थ या प्राणी मे लगा रहता है तब तक उसके साथ उसका नित्य या समवाय सम्बन्ध रहता ही है। आँख, कान, नाक, पैर, हाथ आदि सभी हमारे शरीर के अंग हैं; जड़ें, डालें, पत्तियाँ आदि सभी वृक्षों के अंग हैं। और खिड़कियाँ, दरवाजे और दीवारें आदि मकान के अंग हैं।

'अवयव' भी है तो अंग ही; परन्तु आज-कल अंग्रेजी के Limb के अनु-करण पर इसमें कुछ विशिष्ट अर्थ लग गया है। यह हमारे ऐसे अगो का वाचक हो गया है जो शरीर के बाहर की ओर कुछ आगे या दूर तक निकले या बढ़े हुए होते हैं। इस आधार पर हमारे पैर और हाथ अवयव ही कहे जाएँगे। इसी प्रकार वृक्षो की बडी लम्बी डालियाँ अवयव के अन्तर्गत ही आती हैं क्योकि वे दूर तक बाहर निकली और फैली होती हैं पर उनकी पत्तियों, फलो, फूलों आदि की गिनती उनके अगो मे ही होती है, अवयवो में नही। शरीर के जितने घटक हैं वे सब के सब अग तो होंगे परन्तु अवयव वही होगे जो दूर तक बाहर निकलें हो। दोनों मे एक और अन्तर यह भी है कि अग का प्रयोग तो प्राणियो के अतिरिक्त सभी प्रकार के ज[illegible] पदार्थों और अमूर्त तत्वों, भावों आदि के भागों और विभागों के सम्बन्ध में होता हैं, परन्तु वे सब लोक-व्यवहार मे कभी अवयव नही कहे जाते। न्याय और व्यवस्था करना शासन का अंग तो है, पर अवयव नही है। विज्ञान और शास्त्र के सैकड़ो प्रकार और विभाग तो उनके अंग हैं ही, और उनमें से प्रत्येक की शाखा-प्रशाखाएँ भी अंग ही कही जाएँगी, अवयव नही। हम भी अपने देश या समाज के अग तो हैं, परन्तु अवश्य नही। अवयव का प्रयोग मुख्यत. प्राणियो और वनस्पतियो के क्षेत्र में ही होता है और वह भी उनके ऐसे भागो के ही सम्बन्ध में होता है जो कुछ दीर्घकाय हो और कुछ विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ सम्पादित करते हों।

'घटक' पु० [सं०] घटन का विकारी रूप है इसका प्रारम्भिक अर्थ है—घटित करने या घटना का रूप देनेवाला*, अर्थात् कोई ऐसी चीज या बात जो किसी घटना को दृश्य अथवा मूर्त बनाती हो—उसे किसी काम या बात के रूप म उपस्थित या प्रस्तुत करती हो। कोई काम चीज या बात तभी पूरी होती है जब उसे घटित करनेवाले सभी अग या तत्व वर्तमान हों और ठीक तरह से अपने काम करते आए हों या कर रहे हों।

हमारे शरीर के सभी अगो या अवयवों के फलस्वरूप हमारी नसें, मास पेशियाँ, हड्डियाँ आदि हमारे शरीर की घटक तो हैं ही, हमारे शरीर का प्रत्येक कण और हमारे लहू की हर बूँद हमारे शरीर की घटक है, क्योंकि इन सभी के योग से हमारा शरीर घटित हुआ या बना है। धातु का प्रत्येक कण उसका घटक होता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने दल या समाज का घटक कहा जाता है। यन्त्र के घटक उसके कल-पुर्जे और शासन के घटक उसके काय-कर्त्ताओं के अतिरिक्त सब कार्यालय या विभाग भी होते हैं। यह भी है तो अग की तरह बहुत व्यापक अर्थों वाला शब्द, परन्तु अतर यही है कि अग केवल अश या भाग सूचित करता है, और घटक यह सूचित करता है कि वह बनाने और रूप देनेवाला तत्त्व है। × ×

अडोच्छेद—पु० [स०] दे० 'गर्भ निरोध, गर्भ पात, गर्भ स्राव और भ्रूण हत्या'।

अत	अवसान	और	समाप्ति
End	Termination		Completion

ये तीनो शब्द उस बिंदु या स्थिति के वाचक हैं जहाँ तक पहुँचने पर कोई अवधि, क्रिया, गति आदि व्यापार पूरे हो जाते हैं और उससे आगे नही

* गोस्वामी तुलसी दास जी ने भरत के सम्बन्ध में कहा है—घटई तेज बल मुख, छवि सोई। 'यहाँ घटई का अर्थ घटना या कम होना नही है, बल्कि घटित होना, बनना या मूर्त रूप प्राप्त करना है। आशय यह है कि तेज का बल दिन पर दिन बढता, और बनता जा रहा है अर्थात् प्रत्यक्ष और स्पष्ट होता जा रहा है और भरत के मुख की शोभा या श्री पहले की ही तरह ज्यों की त्यों बनी हुई है उसमे कोई कमी नहीं होने पाई है। ऐसा तभी हो सकता है जब तेज, बल बराबर बढ़ता हुआ दिखाई देता हो।

बढते । इस प्रकार ये शब्द चरम सीमा के सूचक है । इनमें का 'अन्त' शब्द अर्थ और प्रयोग दोनो की दृष्टि से सबसे अधिक व्यापक हैं, और शेष दोनों शब्द इसके घेरे या विस्तार के अन्दर ही रहते हैं । फिर भी मुख्य विवक्षाओं के विचार से तीनो में कुछ सूक्ष्म अन्तर है ही ।

'अत' मुख्यत: आदि का विपर्याय है । इसका प्रयोग मुख्यत: नीचे लिखे क्षेत्रो या प्रसंगो मे होता है :—

१ अवधि या समय के सम्बन्ध मे ; जैसे—वर्ष का अन्त, शरद् ऋतु का अन्त आदि ।

२ क्रिया या गति के सम्बन्ध में ; जैसे—प्रवास या यात्रा का अन्त ।

३ विस्तार के सम्बन्ध मे , जैसे—कथा का अन्त, पुस्तक का अन्त, पर्वतमाला या सीमा का अन्त ।

४. व्यवहार या व्यापार के सम्बन्ध मे ; जैसे—जीवन का अन्त, शिक्षा का अन्त आदि ।

'अवसान' भी है तो अन्त का ही पयर्या, फिर भी इसमें किसी ऐसे कार्य, स्थिति आदि के पूरे होने का भाव प्रधान है जिसकी अवधि, व्याप्ति, सीमा आदि पहले से निर्धारित या निश्चित हो, जैसे—जीवन का अवसान; दिवस का अवसान; यात्रा का अवसान । जीवन के अन्त का भाव सूचित करने के लिए ही इसका एक अर्थ 'मरण' या 'मृत्यु' भी है । आज-कल कुछ स्थानो पर उनकी यात्रा के समय उद्दिष्ट स्थान तक पहुँचने के सम्बन्ध मे यात्रियो से जो एक विशेष प्रकार का कर लिया जाता है उसे 'आवसानिक कर' (terminal tax) कहते है । काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि का टिकट खरीदनेवाले रेलवे यात्रियो को टिकट के दाम के साथ ही साथ यह आवसानिक कर भी चुकाना पड़ता है ।

'समाप्ति' भी है तो एक प्रकार का 'अन्त' ही, परन्तु यह 'आरम्भ' का विपर्याय है ।* जो कार्य हाथ में लिया जाता है, उसके पूरे हो जाने की अवस्था ही मुख्यत' समाप्ति है; जैसे—इस पुस्तक की समाप्ति मे अभी एक महीने की देर है । जो क्रम कुछ समय से बराबर चल रहा हो उसका पूरा

* यद्यपि संस्कृत व्याकरण और व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'समाप्ति' वह अवस्था है जिसमें किसी वस्तु का सदा के लिए अन्त, आदर्शन और अभाव हो जाय; परन्तु हिन्दी मे इसका प्रयोग किसी काम चीज या बात के पूरे और सम्पन्न हो जाने के अर्थ मे भी होता है ।

होना भी 'समाप्ति' ही है, जैसे—वर्ष की समाप्ति पर सबका हिसाब चुका दिया जायगा। अब 'अंत' और समाप्ति के अर्थों में ध्यान रखने की एक मुख्य बात यह भी है कि अंत तो अधिकतर अवस्थाओं में यह सूचित करता है कि जिसका अंत हुआ है उसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी, जैसे—जीवन का अंत, सत्ययुग का अंत। परन्तु जिसकी समाप्ति होती है उसकी प्रायः फिर से आवृत्ति भी होती या हो सकती है, जैसे—इस पुस्तक के पहले संस्करण की समाप्ति पर शीघ्र ही दूसरे संस्करण का भी प्रकाशन हो जायगा।

अंतरावर्त्त और बहिरावर्त्त

Enclave Exclave

अंग्रेजी के एन्क्लेव और एक्सक्लेव के लिए मेरे देखने में कोई अच्छा शब्द युग्म नहीं आया था, इसलिए मैंने मानक हिंदी कोश के परिशिष्ट में इनके समान 'अंतरावर्त' और 'बहिरावर्त' शब्द स्थिर किए थे।

प्रायः ऐसा होता है कि दो पड़ोसी देशों में से किसी एक देश का कुछ भू भाग दूसरे देश की सीमा के अन्दर रहता है। उदाहरण के लिए पश्चिमी बङ्गाल के दो-तीन छोटे छोटे भू खण्ड पूर्वी पाकिस्तान की सीमा के अन्दर पड़ते हैं, और इसी प्रकार पूर्वी पाकिस्तान के दो-तीन छोटे छोटे भू-खण्ड पश्चिमी बङ्गाल की सीमा के अन्दर पड़ते हैं। हमारे जो भू भाग पाकिस्तान की सीमा में पड़ते हैं, वे हमारी दृष्टि से बहिरावर्त्त हैं और पाकिस्तान की दृष्टि से अंतरावर्त्त। इसी प्रकार पाकिस्तान के जो भू भाग भारत की सीमा के अन्दर हैं वे पाकिस्तान की दृष्टि से उसके बहिरावर्त्त हैं और हमारी दृष्टि से अंतरावर्त्त। परन्तु अंग्रेजी में अधिक हर ऐसे भू-खण्डों के लिए केवल एन्क्लेव का ही प्रयोग होता है। फिर भी एन्क्लेव और एक्स्क्लेव में बहुत बड़ा अन्तर तो है ही अतः दोनों के लिए शब्द भी अलग अलग होने चाहिए।*

इसी आधार पर मैंने उक्त दोनों शब्दों में आवर्त्त का अर्थ छोटा भू खण्ड भी मान लिया है और उसी में उपसर्ग लगाकर ये शब्द बनाये हैं।

* सं० में आवर्त्त का एक अर्थ—बहुत बड़ा देश या प्रदेश, जैसे—आर्यावर्त ब्रह्मावर्त आदि।

अंतरिक्ष, आकाश, व्योम और महाव्योम

Space, Sky, Upper Atmosphere Firmament

ये चारो शब्द उस खुले हुए और परम विस्तृत अवकाश या खुले स्थान वाचक है जो हमे अपने ऊपर हर जगह दिखाई देता है और जिसमे ग्रहो, तारो, नक्षत्रो आदि का अवस्थान है। भले ही 'आकाश' का मूल अर्थ कितना ही व्यापक क्यो न हो परन्तु आज-कल वह मुख्यतः उस वातावरण का ही वाचक रह गया है जो हमारी पृथ्वी को चारो ओर से घेरे हुए है और जिसमे पक्षी आदि उड़ते हैं, बादल आते-जाते दिखाई देते हैं और हवा चलती है। सस्कृत मे 'गगन', 'नभ' आदि इसके अनेक नाम या पर्याय हैं और हिन्दी मे फारसी का 'आसमान' भी इसकी जगह चलता है। भौतिक विज्ञान के अनुसार हमारी पृथ्वी को चारो ओर से जिस वायु ने घेरा हुआ है उसके कई स्तर निरूपित हैं। पृथ्वी के पास की वायु तो सघन है, परन्तु ज्यो-ज्यों हम ऊपर उठते हैं त्यो त्यो उसकी सघनता कम होती जाती है और विरलता बढ़ती जाती है। आगे चलकर इस वायु का बिलकुल अभाव भी हो जाता है और दूसरे आकाशीय तत्त्व मिलने लगते हैं।

पृथ्वी के वातावरण के उपरान्त अन्यान्य ग्रहो, नक्षत्रो आदि तक जो सारा विस्तार है वही 'अतरिक्ष' है। 'अतरिक्ष' का शब्दार्थ ही है—ग्रहों, नक्षत्रो आदि के बीच का अवकाश या खाली स्थान। आज-कल वातावरण के उक्त ऊपरी विस्तार मे चलनेवाले जो यान्त्रिक यान बनते हैं उन्हे इसी लिए 'अन्तरिक्ष-यान' कहते हैं।

'व्योम' यो तो है आकाश का भी वाचक और अन्तरिक्ष का भी, क्योकि उसका शब्दार्थ ही है—वह जिसने सबको चारो ओर से घेर तथा व्याप्त कर रखा हो। परन्तु लोक मे उसका व्यवहार अधिकतर आकाशवाले अर्थ मे ही देखने मे आता है। तात्त्विक दृष्टि से कहा जा सकता है कि अन्तरिक्ष में केवल ऊँचाई का, आकाश मे ऊँचाई और निचाई दोनो का और व्योम में ऊँचाई-निचाई तथा चौड़ाई तीनो का भाव सम्मिलित है। इसी व्योम शब्द मे महा उपसर्ग या विशेषण लगाकर आज-कल नया 'महाव्योम' शब्द बनाया गया है। अर्थ की दृष्टि से यह आकार और अन्तरिक्ष दोनो की तुलना मे बहुत अधिक व्यापक है। यह उस समस्त परम विशाल आकाश का वाचक है जिसमे सारा ब्रह्माण्ड स्थित है। न तो कही इसके आदि की ही कल्पना की जा सकती है और न अन्त की ही। इसमे लाखो-करोडो नक्षत्र या आकाशस्थ पिंड तो हैं ही, असख्य छाया-पथ और असख्य नीहारिकाएँ भी हैं

जो नित्य नये नये ग्रह, नक्षत्रों आदि की सृष्टि करती रहती है, और आधुनिक विज्ञान के अनुसार जिसका विस्तार दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है।

अंतर्ज्ञान और सहजवृत्ति

Intuition   Instinct

इस वर्ग के शब्द प्राणियों की ऐसी प्राकृतिक और स्वाभाविक शक्तियों के वाचक हैं जिनसे वे बिना किसी प्रकार के प्रयत्न या प्रयास के कोई तथ्य या बात आपसे आप और तत्काल जान या समझ लेते हैं।

'अंतर्ज्ञान' पुं० [सं०] हमारे अन्तर में रहनेवाला वह प्रकृति दत्त ज्ञान है जो हमें किसी काम या बात के तत्त्व या वास्तविक स्वरूप से तुरंत उत्पन्न होता है। इसके लिए हमें न तो मन में कोई तर्क वितर्क करना पड़ता है न कुछ सोचना समझना पड़ता है। इसमें कर्मेन्द्रियों की सहायता से किसी बात तक पहुँच जाना अथवा बोध प्राप्त किया जाता है। इससे मनुष्य को अतीन्द्रिय तथा लोकोत्तर बातों या विषयों का ज्ञान हो जाता है। हम जानें या न जानें, चाहें या न चाहें, पर अंतर्ज्ञान आवश्यकता पड़ने पर हमसे अपेक्षित और कर्तव्य करा ही लेता है। इस प्रकार का ज्ञान हममें जन्म काल से ही रहता है, इसी लिए इसे सहज ज्ञान कहते हैं। इसे 'अंतर्बोध' भी कहते हैं।

'सहजवृत्ति' स्त्री० इधर हाल का बना हुआ पद है। यह भी है तो बहुत कुछ वही जो अंतर्ज्ञान है, परन्तु दोनों में मुख्य अन्तर यह है कि अंतर्ज्ञान का प्रयोग प्रायः मनुष्यों के ही सम्बन्ध में होता है और सहजवृत्ति का प्रयोग सब प्रकार के जीव जन्तुओं या प्राणी मात्र के सम्बन्ध में होता है। मनुष्य की चेतना शक्ति इतनी बढ़ी हुई होती है कि उसे पारिभाषिक क्षेत्र में, ज्ञान के क्षेत्र में स्थान मिलता है। परन्तु जीव जन्तुओं की चेतना शक्ति पारिभाषिक दृष्टि से वृत्ति के क्षेत्र तक ही परिमित रहती है। यही सहजवृत्ति प्राणियों को अपने क्षेम-कल्याण, जीवन निर्वाह, वंश-वृद्धि आदि में प्रवृत्त करती और इनके लिए सक्षम रखती है। जीव जन्तुओं आदि में इस वृत्ति के वर्धन, विकास आदि के लिए विशेष अवकाश नहीं होता और इसका स्वरूप बहुत कुछ एक सा बना रहता है। परन्तु मानव वर्ग में उनके अंतर्ज्ञान का बहुत कुछ विकास हो सकता और प्रायः होता भी है। अंतर्ज्ञान से ही मनुष्य के कर्तृत्व का क्षेत्र और ज्ञान का भण्डार बढ़ता रहता है। ✓ ×

अंतर्बोध—पुं० [सं०]=अन्तर्ज्ञान दे० 'अंतर्ज्ञान और सहज-वृत्ति'।

अंतर्विवेक और विवेक

Conscience

अँगरेजी के 'कॉन्शेन्स' (Conscience) शब्द के लिए हिन्दी मे बहुत दिनो से 'विवेक' शब्द का प्रयोग होता चला आ रहा है। परन्तु हिन्दी का यह शब्द अँगरेजी के मूल शब्द का ठीक और पूरा भाव प्रकट करने मे अक्षम है और कदाचित् यही सोचकर भारत सरकार ने अपनी शब्दावली मे इसके बदले 'अन्तर्विवेक' शब्द रखा है जो अपेक्षया अधिक ठीक जान पडता है। अँगरेजी के 'कॉन्शेन्स' का वास्तविक अर्थ है अच्छे और बुरे या उचित और अनुचित का ऐसा ज्ञान जो अच्छे या उचित के सम्पादन मे प्रवृत्त करता हो। परन्तु सस्कृत मे 'विवेक' का मूल अर्थ है—किसी बात या वस्तु के सभी अगो पर अच्छी तरह विचार करके उसके मूल अथवा वास्तविक रूप का ज्ञान प्राप्त करना अथवा उसकी परख करना। इस दृष्टि से 'विवेक' और 'विवेचन' एक दूसरे के पर्याय या समानक ठहरते हैं। अर्थात् यह विशुद्ध बौद्धिक क्रिया है और इसमे अच्छे या भले की ओर प्रवृत्त करने-कराने का कोई भाव नही है। अँगरेजी 'कॉन्शेन्स' के मूल मे किसी प्रवृत्तिकारक आतरिक शक्ति का भाव निहित है जिसका विवेक' मे पूर्णत· अभाव है। कदाचित् यही आन्तरिक शक्तिवाला भाव सूचित करने के लिए भारत सरकार की शब्दावली मे 'विवेक' के बदले 'अन्तर्विवेक' रखा गया है। अँगरेजी के 'कॉन्शेन्स' शब्द के सम्बन्ध मे ध्यान रखने की एक बात यह भी है कि यह मूलत: यूनानी दर्शन की कल्पना है। न तो भारतीय दर्शन मे ही ऐसी किसी आतरिक शक्ति का अस्तित्व माना गया है और न आधुनिक पाश्चात्य दर्शन ने ही इसे ग्राह्य किया है। भारतीय दर्शन मे केवल एक 'अन्त:करण' माना गया है और मन, चित्त, बुद्धि तथा अहकार ये चारो उसके क्रियात्मक अग कहे गये हैं। अग्रेजी 'कॉन्शेन्स' का ठीक ठीक आशय या भाव प्रकट करने के लिए ऐसा शब्द होना चाहिए जिसमे बुद्धि के साथ मन का भी सयोग हो। इसी विचार से हमारी सम्मति मे आज-कल के बहुप्रचलित 'विवेक' के स्थान पर 'अतर्विवेक' का प्रयोग ही ठीक होगा क्योकि यह शब्द मन और बुद्धि दोनों के सयुक्त क्रिया-कलाप का सूचक है।

———

जो नित्य नये नये ग्रह, नक्षत्र आदि की सृष्टि करती रहती हैं, और आधुनिक विज्ञान के अनुसार जिनका विस्तार दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है।

अंतर्ज्ञान और सहजवृत्ति
Intuition Instinct

इस वर्ग के शब्द प्राणियों की ऐसी प्राकृतिक और स्वाभाविक शक्तियों के वाचक हैं जिनसे वे बिना किसी प्रकार के प्रयत्न या प्रयास के कोई तथ्य या बात आपसे आप और तत्काल जान या समझ लेते हैं।

'अंतर्ज्ञान' पु० [सं०] हमारे अन्तर में रहनेवाला वह प्रकृति दत्त ज्ञान है जो हम किसी काम या बात के तत्व या वास्तविक स्वरूप से तुरंत उत्पन्न होता है। इसके लिए हम न तो मन में कोई तर्क वितर्क करना पड़ता है न कुछ सोचना समझना पड़ता है। इसमें कर्मेंद्रियों की सहायता से किसी बात तक पहुँच जाता अथवा बोध प्राप्त किया जाता है। इससे मनुष्य को अतींद्रिय तथा लोकोत्तर बातों या विषयों का ज्ञान हो जाता है। हम जानें या न जानें चाहें या न चाहें पर अंतर्ज्ञान आवश्यकता पड़ने पर हमसे अपेक्षित और कर्तव्य करा ही लेता है। इस प्रकार का ज्ञान हममें जन्म काल से ही रहता है, इसी लिए इसे सहज ज्ञान कहते हैं। इसे 'अंतर्बोध' भी कहते हैं।

सहजवृत्ति' स्त्री० इधर हाल का बना हुआ पद है। यह भी है तो बहुत कुछ वही, जो अंतर्ज्ञान है परन्तु दोनों में मुख्य अंतर यह है कि अंतर्ज्ञान का प्रयोग प्रायः मनुष्यों के ही सम्बन्ध में होता है और सहजवृत्ति का प्रयोग सब प्रकार के जीव जन्तुओं या प्राणी मात्र के सम्बन्ध में होता है। मनुष्य की चेतना शक्ति इतनी बढ़ी हुई होती है कि उसे पारिभाषिक क्षेत्र में ज्ञान के क्षेत्र में स्थान मिलता है। परन्तु जीव जन्तुओं की चेतना शक्ति पारिभाषिक दृष्टि से वृत्ति के क्षेत्र तक की परिमित रहती है। यही सहजवृत्ति प्राणियों को अपने क्षेम कल्याण जीवन निर्वाह वंश-वृद्धि आदि में प्रवृत्त करती और इनके लिए समर्थ रखती है। जीव जन्तुओं आदि में इस वृत्ति के वर्धन विकास आदि के लिए विशेष अवकाश नहीं होता और इसका स्वरूप बहुत कुछ एक सा बना रहता है। परन्तु मानव वर्ग में उनके अन्तर्ज्ञान का बहुत कुछ विकास हो सकता और प्रायः होता भी है। अन्तर्ज्ञान से ही मनुष्य के कर्तृत्व का क्षेत्र और ज्ञान का भण्डार बढ़ता रहता है। × ×

अंतर्बोध—पु० [सं०]=अन्तर्ज्ञान दे० 'अन्तर्ज्ञान और सहज-वृत्ति।

चर होता चलता हैं। इसी एक शृंखला या श्रेणी के अन्त या समाप्ति पर जो कार्य होता है उसका वाचक आंतिक होना चाहिए। यदि हम कहे—"उच्च न्यायालय का यह अन्तिम निर्णय है" तो इसका आशय यही होगा कि अब इसके बाद और कोई निर्णय किसी प्रकार हो ही नही सकता। परन्तु वास्तव मे सर्वोच्च न्यायालय को सम्बद्ध विषय मे फिर से विचार तथा निर्णय करने का अधिकार तो होता ही है। ऐसी अवस्था मे उच्च न्यायालय का निर्णय आतिक होगा और सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस लिए अन्तिम होगा कि वह निर्णय किसी प्रकार बदला ही नही जा सकता। कोई आयोग या अधिकरण इसी विषय पर अपने जो विचार प्रकट करेगा या निष्कर्ष निकालेगा वह आतिक ही होगा। परन्तु राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार उस विषय पर फिर से विचार कर सकती है और अपना नया निर्णय दे सकती हैं। ऐसा ही निर्णय अन्तिम कहा जाएगा। हम किसी विषय पर पूर्ण रूप से विचार करके स्थायी रूप से अपना जो मत व्यक्त करते हैं वह हमारा आन्तिक मत होता है। दूसरे अनेक विद्वान् भी उस विषय पर किसी दूसरे रूप मे विचार करके अपने अलग-अलग आतिक मत व्यक्त कर सकते है। इस सम्बन्ध में अन्तिम मत तो तभी स्थिर हो सकता हैं जब सभी विद्वान् एकत्र होकर अपने मतो का प्रतिपादन करें; और सब लोग मिलकर कोई ऐसा सर्वमान्य या सर्व-सम्मत मत स्थिर करे जिसमे किसी प्रकार के वर्तन या सशोधन के लिए कोई अवकाश ही न रह जाय।

'आवसानिक' स० 'अवसान' का विशेषण रूप है*। आवसानिक मे मुख्य भाव किसी विस्तार की अन्तिम सीमा तक पहुँचने का है। किसी कार्य के सब अगो और क्रमो को पूरा करते हुए अथवा किसी विस्तार को पार करते हुए उसके अन्त या समाप्ति तक पहुँचते हैं, तब इस पहुँचवाली अन्तिम क्रिया ही आवसानिक होती है। प्राय: यात्रियो पर कोई मार्ग पूरा करने या उसके अन्तिम विन्दु तक पहुँचने के सम्बन्ध मे अनेक स्थानों पर जो कर लगाए जाते है वे 'आवसानिक कर' कहलाते हैं। काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि जाने वाले यात्रियो पर रेल अधिकारी प्राय ऐसे कर लगाते है जो रेल के टिकट के दाम मे ही जोड़ लिए जाते है।

'समापक या समाप्तिक' का प्रयोग मुख्यत: ऐसे कामों या बातों के अन्तिम अश का सूचक है जो क्रम-क्रम से चलती हुई आगे बढ़ती हैं, जैसे—ग्रथ, लेख

* दे०—अन्त, अवसान और समाप्ति।

अंतिम आंतिक आवसानिक
Last final terminal
और समापक या समाप्तिक
concluding

ये विशेषण ऐसी स्थितियों के सूचक हैं, जिनमे कोई काम या बात कुछ और कामो या बातो के बाद घटित या पूरी होती है।

'अंतिम' वि० [स०] का मुख्य अर्थ है—सबके अंत मे या समाप्ति पर होनेवाला। जब एक ही कोटि या वर्ग के बहुत से काम हो चुकते हैं तब सबके आखीर या बाद में होनेवाला काम अंतिम कहलाता है। आशय यही होता है कि इस तरह का काम इसके उपरान्त या तो फिर हुआ ही नही या होगा ही नही। हम कहते हैं—यह उनकी अंतिम कृति या पुस्तक है अर्थात् इसके बाद उन्होने फिर किसी कृति या पुस्तक की रचना नही की। यदि कहा जाय—"यही उनके भाषण का अंतिम वाक्य था" तो आशय यही होगा कि इसी वाक्य से उनका भाषण समाप्त हुआ और फिर उन्होने भाषण सम्बन्धी कोई और वाक्य नही कहा। "वे अंतिम बार होली के अवसर पर काशी आए थे" तो आशय यह होगा कि वे इसके बाद फिर आज तक यहाँ आए ही नही अथवा यह भी आशय हो सकता है कि इसके बाद वे अपने जीवन में कभी काशी आए ही नही।

'आंतिक' भी [स०] अंत से बना हुआ बहुत कुछ वैसा ही विशेषण है जैसा अंतिम है। यद्यपि यह रूप मुझे स० कोशो में नही मिला है। फिर भी मैंने यह जान और समझकर स्थिर किया है कि व्याकरण की दृष्टि से इसकी सिद्धि मे कोई बाधा नही है। अंग्रेजी के Final का ठीक ठीक आशय और भाव प्रकट करनेवाला कोई अच्छा और ठीक शब्द मेरे देखने में नही आया है। अधिकतर लोग इसके लिए प्राय 'अंतिम' का ही प्रयोग कर जाते हैं। जो मेरी समझ मे बहुत कुछ भ्रामक है। अत मेरा सुझाव है कि अंग्रेजी Final के स्थान पर हिंदी में आंतिक का ही प्रयोग होना चाहिए। अंतिम तो वस्तुत उस स्थिति का सूचक है जिसमें कोई क्रमबद्ध या परम्परा वाला कार्य पूरी तरह से और सदा के लिए समाप्त हो जाता है, और फिर उसके बाद उसका कोई और आवर्तन नही होता। परन्तु कुछ अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमे कोई कार्य शृंखला या श्रेणी के रूप में बरा

चर होता चलता हैं। इसी एक शृ ंखला या श्रेणी के अन्त या समाप्ति पर जो कार्य होता है उसका वाचक आतिक होना चाहिए। यदि हम कहे—"उच्च न्यायालय का यह अन्तिम निर्णय है" तो इसका आशय यही होगा कि अब इसके वाद और कोई निर्णय किसी प्रकार हो ही नही सकता। परन्तु वास्तव में सर्वोच्च न्याय।लय को सम्वद्ध विषय में फिर से विचार तथा निर्णय करने का अधिकार तो होता ही है। ऐसी अवस्था मे उच्च न्यायालय का निर्णय आतिक होगा और सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस लिए अन्तिम होगा कि वह निर्णय किसी प्रकार वदला ही नही जा सकता। कोई आयोग या अधिकरण इसी विषय पर अपने जो विचार प्रकट करेगा या निष्कर्ष निकालेगा वह आतिक ही होगा। परन्तु राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सर-कार उस विषय पर फिर से विचार कर सकती है और अपना नया निर्णय दे सकती हैं। ऐसा ही निर्णय अन्तिम कहा जाएगा। हम किसी विषय पर पूर्ण रूप से विचार करके स्थायी रूप से अपना जो मत व्यक्त करते हैं वह हमारा आन्तिक मत होता है। दूसरे अनेक विद्वान् भी उस विषय पर किसी दूसरे रूप में विचार करके अपने अलग-अलग आतिक मत व्यक्त कर सकते हैं। इस सम्वन्ध मे अन्तिम मत तो तभी स्थिर हो सकता है जब सभी विद्वान् एकत्र होकर अपने मतो का प्रतिपादन करे, और सब लोग मिलकर कोई ऐसा सर्वमान्य या सर्व-सम्मत मत स्थिर करे जिसमे किसी प्रकार के वर्तन या सशोधन के लिए कोई अवकाश ही न रह जाय।

'आवसानिक' स० 'अवसान' का विशेषण रूप है*। आवसानिक मे मुख्य भाव किसी विस्तार की अन्तिम सीमा तक पहुँचने का है। किसी कार्य के सब अगो और क्रमो को पूरा करते हुए अथवा किसी विस्तार को पार करते हुए उसके अन्त या समाप्ति तक पहुँचते हैं, तव इस पहुँचवाली अन्तिम क्रिया ही आवसानिक होती है। प्राय: यात्रियो पर कोई मार्ग पूरा करने या उसके अन्तिम विन्दु तक पहुँचने के सम्वन्ध मे अनेक स्थानों पर जो कर लगाए जाते है वे 'आवसानिक कर' कहलाते हैं। काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि जाने वाले यात्रियो पर रेल अधिकारी प्राय: ऐसे कर लगाते है जो रेल के टिकट के दाम मे ही जोड़ लिए जाते हैं।

'समापक या समाप्तिक' का प्रयोग मुख्यत: ऐसे कामों या वातो के अन्तिम अश का सूचक है जो क्रम-क्रम से चलती हुई आगे वढती हैं, जैसे—ग्रथ; लेख

* दे०—अन्त, अवमान और समाप्ति।

अंतिम आंतिक आवसानिक
Last final terminal
और समापक या समाप्तिक
concluding

ये विशेषण ऐसी स्थितियों के सूचक हैं, जिनमें कोई काम या बात कुछ और कामों या बातों के बाद घटित या पूरी होती है।

'अन्तिम' वि० [स०] का मुख्य अर्थ है—सबके अंत में या समाप्ति पर होनेवाला। जब एक ही कोटि या वर्ग के बहुत से काम हो चुकते हैं तब सबके आखीर या बाद में होनेवाला काम अंतिम कहलाता है। आशय यही होता है कि इस तरह का काम इसके उपरान्त या तो फिर हुआ ही नहीं या होगा ही नहीं। हम कहते हैं—यह उनकी अंतिम कृति या पुस्तक है अर्थात् इसके बाद उन्होंने फिर किसी कृति या पुस्तक की रचना नहीं की। यदि कहा जाय—"यही उनके भाषण का अंतिम वाक्य था" तो आशय यही होगा कि इसी वाक्य से उनका भाषण समाप्त हुआ और फिर उन्होंने भाषण सम्बन्धी कोई और वाक्य नहीं कहा। वे अंतिम बार होली के अवसर पर काशी आए थे" तो आशय यह होगा कि वे इसके बाद फिर आज तक यहाँ आए ही नहीं अथवा यह भी आशय हो सकता है कि इसके बाद वे अपने जीवन में कभी काशी आए ही नहीं।

'आंतिक' भी [स०] अंत से बना हुआ बहुत कुछ वैसा ही विशेषण है जैसा अंतिम है। *यद्यपि यह रूप मुझे स० कोशों में नहीं मिला है।* फिर भी मैंने यह जान और समझकर स्थिर किया है कि व्याकरण की दृष्टि से इसकी सिद्धि में कोई बाधा नहीं है। *अंग्रेजी के* Final का ठीक ठीक आशय और भाव प्रकट करनेवाला कोई अच्छा और ठीक शब्द मेरे देखने में *नहीं आया है। अधिकतर लोग इसके लिए प्राय* 'अंतिम' का ही प्रयोग कर जाते हैं। जो मेरी समझ में बहुत कुछ भ्रामक है। अतः मेरा सुझाव है कि *अंग्रेजी* Final *के स्थान पर हिंदी में* आंतिक का ही प्रयोग होना चाहिए। अंतिम तो वस्तुतः उस स्थिति का सूचक है जिसमें कोई क्रमबद्ध *या परम्परा वाला काम* पूरी तरह से और सदा के लिए समाप्त हो जाता है, और फिर उसके बाद उसका कोई और आवर्तन नहीं होता। परन्तु कुछ *अवस्थाएँ ऐसी होती हैं जिनमें कोई काम शृंखला या श्रेणी के रूप में बरा*

वर होता चलता हैं। इसी एक शृंखला या श्रेणी के अन्त या समाप्ति पर जो कार्य होता है उसका वाचक आतिक होना चाहिए। यदि हम कहे—"उच्च न्यायालय का यह अन्तिम निर्णय है" तो इसका आशय यही होगा कि अब इसके वाद और कोई निर्णय किसी प्रकार हो ही नही सकता। परन्तु वास्तव मे सर्वोच्च न्यायालय को सम्बद्ध विषय मे फिर से विचार तथा निर्णय करने का अधिकार तो होता ही है। ऐसी अवस्था मे उच्च न्यायालय का निर्णय आतिक होगा और सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय इस लिए अन्तिम होगा कि वह निर्णय किसी प्रकार बदला ही नही जा सकता। कोई आयोग या अधिकरण इसी विषय पर अपने जो विचार प्रकट करेगा या निष्कर्ष निकालेगा वह आतिक ही होगा। परन्तु राज्य सरकार अथवा केन्द्रीय सरकार उस विषय पर फिर से विचार कर सकती है और अपना नया निर्णय दे सकती हैं। ऐसा ही निर्णय अन्तिम कहा जाएगा। हम किसी विषय पर पूर्ण रूप से विचार करके स्थायी रूप से अपना जो मत व्यक्त करते हैं वह हमारा आन्तिक मत होता है। दूसरे अनेक विद्वान् भी उस विषय पर किसी दूसरे रूप मे विचार करके अपने अलग-अलग आतिक मत व्यक्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध मे अन्तिम मत तो तभी स्थिर हो सकता है जब सभी विद्वान् एकत्र होकर अपने मतो का प्रतिपादन करें; और सब लोग मिलकर कोई ऐसा सर्वमान्य या सर्व-सम्मत मत स्थिर करे जिसमे किसी प्रकार के वर्तन या सशोधन के लिए कोई अवकाश ही न रह जाय।

'आवसानिक' स० 'अवसान' का विशेषण रूप है*। आवसानिक मे मुख्य भाव किसी विस्तार की अन्तिम सीमा तक पहुँचने का है। किसी कार्य के सब अगो और क्रमो को पूरा करते हुए अथवा किसी विस्तार को पार करते हुए उसके अन्त या समाप्ति तक पहुँचते हैं, तब इस पहुँचवाली अन्तिम क्रिया ही आवसानिक होती है। प्राय: यात्रियो पर कोई मार्ग पूरा करने या उसके अन्तिम विन्दु तक पहुँचने के सम्बन्ध मे अनेक स्थानों पर जो कर लगाए जाते है वे 'आवसानिक कर' कहलाते है। काशी, प्रयाग, हरद्वार आदि जाने वाले यात्रियो पर रेल अधिकारी प्राय. ऐसे कर लगाते है जो रेल के टिकट के दाम मे ही जोड लिए जाते हैं।

'समापक या समाप्तिक' का प्रयोग मुख्यत: ऐसे कामों या बातो के अन्तिम अश का सूचक है जो क्रम-क्रम से चलती हुई आगे बढती हैं, जैसे—ग्रथ, लेख

* दे०—अन्त, अवसान और समाप्ति।

मे ही प्रयुक्त होता है। इसका भी पर्याय 'अन्त है, जसे--मैं आदि स अ त तक सारी पुस्तक पढ गया हू। कुछ अवस्थाओं म इसका प्रयोग विशेषण के रूप मे भी होता है, जैसे—आदि कवि। इसके अतिरिक्त इसका प्रयोग अनेक कही हुई बातो या गिनाई हुई चीजो के अ त म अ वय के रूप मे भी होता है, जसे—हमारे यहाँ के कवि, नाटककार, लेखक, समालोचक आदि। ऐसी अवस्था में इसका अथ होता है-–इसी प्रकार के और भी अनेक। कुछ लोग इसके प्रयोग के सम्ब ध म कुछ भूल भी करते है, जसे—हमारे यहा के कवि, नाटककार लेखक और समालोचक आदि। ऐसे अवसरो पर वाक्य म 'और का प्रयोग ठीक नही है। और का प्रयोग तभी ठीक माना जायगा जब समा लोचक' के बाद आदि' न रहे। वाक्य म 'और का प्रयोग करके हम माना यह सूचित करते हैं कि उसके बाद वाले श ब्द तक ही हमारी कही हुई बातें या गिनाए हुए नाम सीमित हैं। पर तु 'आदि इस बात का सूचक होता है कि अभी और भी ऐसी बहुत सी बातें या बहुत से नाम हैं जिनका विस्तार-भय से यहाँ उल्लेख नही किया जा रहा है। इसके स्थान पर प्राय 'इत्यादि' का भी प्रयोग होता है, जसे–सूर तुलसी, केशव पद्माकर, बिहारी इत्यादि।

'आरम्भ' और 'प्रारम्भ' मे कोई विशेष अ तर नही है यदि कोई सूक्ष्म अ तर हो सकता है तो वह इसी आधार पर हा सकता है कि आरम्भ में 'प्र उपसग लगाकर 'प्रारम्भ श द बनाया गया है। सस्कृत मे 'प्र उपसग का प्रयोग प्राय आधिक्य, उत्कष, पूणता आदि के भाव सूचित करने के लिए होता है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि आरम्भ की तुलना म 'प्रारम्भ बहुत कुछ आगे बढा हुआ और उक्त प्रकार के भावो से युक्त शब्द है। आरम्भ बहुत ही साधारण और सामा य कोटि के प्रसगो में प्रयुक्त होता है जसे–काय का आरम्भ दिन का आरम्भ युद्ध का आरम्भ आदि। पर तु प्रारम्भ' मे कुछ औपचारिकता, महत्ता कुछ साहित्यिकता और कुछ सुष्ठुता का भी पुट रहता है, जसे—कवि सम्मेलन का प्रारम्भ महासभा का प्रारम्भ आदि। एक और सूक्ष्म भेद यह भी माना जा सकता है कि आरम्भ' का विपर्याय तो 'अ त होता है, परन्तु 'प्रारम्भ का विपर्याय प्राय 'समाप्ति होता है। हि दी मे इन दोनो श दो के स्थान पर प्राय 'शुरु (अ० शुरूअ) का भी प्रयोग होता है।

यो विशुद्ध प्रारम्भिक अथ की दृष्टि से छड और पहल भी इसी वग मे आते हैं पर तु उनके परवर्ती और विकसित अर्थो म कुछ नई रगत

भी चढ जाती है। इसी लिए इन शब्दो का विवेचन 'छेड़ और पहल' शीर्षक के अन्तर्गत यथास्थान किया गया है।

'समारम्भ' पु० [सं०] भी तो है वहुत कुछ वही जो आरम्भ और प्रारम्भ हैं फिर भी इसमे औपचारिकता तथा गरिमा के भाव विशेप रूप से सम्मिलित हैं, और यह मागलिक आरम्भ का वाचक माना जाता है। इसके विषय मे और वाते जानने के लिए दे० 'अनावरण, उद्‌घाटन समारम्भ'। ×

अद्‌भुत—वि० दे० 'विचित्र, विलक्षण और अद्‌भुत'।

अधिकरण—पु० [स०] दे० आयोग, अधिकरण, न्याधिकरण, परिषद् और मंडल।'

अधिकार और स्वत्व

Right, Authoritys Ownership

अधिकार मूलत: अधि+कृ से बना है जिसका अर्थ है–किसी को कोई काम पूरा करने या अपनी देख-रेख मे पूरा कराने के लिए प्रधान या मुख्य बनाकर नियुक्त करना। इसी आधार पर 'अधिकार' का भौतिक अर्थ होता है—सब कामो की पूरी तरह से की जानेवाली देख-भाल या निरीक्षण। परन्तु आगे चलकर इसमें कई अर्थों का विकास हुआ। लोक-व्यवहार मे इसका पहला अर्थ होता है—वह शक्ति जिसके द्वारा मनुष्य किसी कार्य के सम्वन्ध में औरो को कोई आज्ञा देता है अथवा उनसे उनके कर्तव्यो का पालना कराता है। इसी अर्थ मे यह विवक्षा भी सम्मिलित है कि वह लोगो को अपना अनुचर और आज्ञाकारी वनाये रखता है। साराश यह कि इसमे आदेश, व्यवस्था, शासन आदि के तत्त्व प्रधान हैं; जैसे—राष्ट्रपति को अपने क्षेत्र या राष्ट्र मे यह अधिकार होता है कि वह जव और जहाँ चाहे युद्ध छेड सकता अथवा वन्द कर सकता है।

अपने परवर्ती अर्थ में 'अधिकार' वह शक्ति या स्थिति है जो किसी व्यक्ति को कोई काम कर सकने के योग्य या समर्थ बनाती है। यह शक्ति या स्थिति नैतिक दृष्टि से भी प्राप्त हो सकती हैं, नैसर्गिक दृष्टि से भी और विधिक दृष्टि से भी। कुछ अवस्थाओ मे वह प्रयत्नपूर्वक अर्जित या प्राप्त भी की जा सकती है। नैतिक दृष्टि से हमे समाज मे प्रचलित कुप्रथाएँ दूर करने का अधिकार होता है। नैसर्गिक या प्राकृतिक दृष्टि से हमे जीवित रहने और

काल यापन करने का अधिकार होता है और विधिक दृष्टि से दूसरों के अत्याचार आक्रमण आदि से अपनी रक्षा का अधिकार होता है। इसके सिवा हम अध्ययन और मनन करके किसी विज्ञान या शास्त्र में ऐसा अधिकार प्राप्त करते हैं कि लोगों को हमारा कथन या निर्णय मानना पड़ता है अथवा हम धन देकर कोई ऐसी सम्पत्ति खरीदते हैं जिसके सम्बन्ध में हमें उसे दान करने बेचने अथवा और किसी प्रकार से हस्तांतरित करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसी दृष्टि से हम किसी विषय के भी अधिकारी कहे जाते हैं और किसी सम्पत्ति के भी।

इस सम्बन्ध में ध्यान देने की एक और बात है। किसी वस्तु या विषय पर हमारे अर्जित किये हुए जो अधिकार होते हैं, उन पर हमारा पूर्ण स्वत्व या स्वामित्व भी होता है। परन्तु कुछ अधिकार ऐसे भी होते हैं जिन पर हमारा कोई स्वत्व या स्वामित्व नहीं होता। पहले प्रकार के अधिकार तो कुछ अवस्थाओं अथवा कुछ रूपों में हस्तांतरित भी किये जा सकते हैं परन्तु दूसरे प्रकार के अधिकारों के सम्बन्ध में यह बात नहीं होती। जब हम किसी राज्य के मन्त्री या किसी सभा के सचिव बनाये जाते हैं तब तत्सम्बन्धी अधिकार हमारे अर्जित किए हुए नहीं होते वे दूसरों के द्वारा हमें प्रदत्त होते हैं। ऐसे अधिकारों पर हमारा स्वत्व तो होता है परन्तु स्वामित्व नहीं होता और इसी लिए हमारे ऐसे अधिकार यथेष्ट विस्तृत होने पर भी परिमित या सीमित ही होते हैं। उदाहरणार्थ शिक्षा मन्त्री अपने विभाग की सारी व्यवस्था भी कर सकता है और उसके कार्यकर्ताओं पर अपना नियन्त्रण या शासन भी रखता है। परन्तु ये सब काम वह तभी तक कर सकता है जब तक अपने पद पर आसीन रहे। उस पद से हट जाने या हटा दिये जाने पर उसका वह अधिकार नष्ट हो जाता या उसके हाथ से निकल जाता है। दूसरी बात यह भी है कि वह अपने समस्त अधिकार अपनी इच्छा से किसी दूसरे को सौंप नहीं सकता और इसी दृष्टि से कहा गया है कि ऐसे अधिकार पर व्यक्ति का स्वामित्व नहीं होता। हिन्दी में अरबी का इख्तियार शब्द भी इसके समानार्थक के रूप में प्रयुक्त होता है।

अपने तीसरे अर्थ में 'अधिकार' उस स्थिति का वाचक है जिसमें कोई व्यक्ति किसी सम्पत्ति को अपने वश में करके उसका उपभोग भी करता है और उस पर नियन्त्रण भी रखता है। ऐसी स्थिति वैध भी हो सकती है और अवैध भी। हमारी जो सम्पत्ति किसी दूसरे के हाथ में चली गई हो, उसे

फिर से प्राप्त करके हम उस पर अपना अधिकार स्थापित करते अथवा यह भी हो सकता है कि हम किसी युक्ति से किसी दूसरे की सम्पत्ति अपने हाथ मे करके उस पर अपना अधिकार जमा ले। इसके सिवा कोई व्यक्ति अपनी इच्छा से अपनी सम्पत्ति की व्यवस्था करने के लिए उसका अधिकार हमे सौप सकता है। हिन्दी मे इस तीसरे अर्थ के लिए कब्जा (अ० कब्ज:) शब्द भी प्रचलित है।

हिन्दी के अधिकतर कोशो मे 'अधिकार' का एक अर्थ 'दावा' भी मिलता है। परन्तु वस्तुत. अधिकार का अर्थ दावा नही। दावे का भाव तो इसमे तब आता है जब हम इसके साथ 'जताना' या 'जतलाना' क्रिया का प्रयोग करते है। जब हम कहते है—उस मकान पर दोनो पक्ष अपना दावा जताते हैं तब यह भी कहा जा सकता है कि उस मकान पर दोनो पक्ष अपना दावा पेश करते हैं। यो 'दावा जताना' का साधारण अर्थ होता है—यह प्रदर्शित करना कि अमुक वस्तु पर हमारा भी अधिकार होना चाहिए। साधारण अवसरो पर 'दावा जताना' का यह भी अर्थ होता है—लोगो को दिखाने या उन पर अपना प्रभाव डालने के लिए अपने प्राप्त अधिकार का प्रदर्शन करना; जैसे—जब देखो तब वे दफ्तर के लोगो पर अपना अधिकार जताते रहते हैं। आशय यह होता है कि वे अनावश्यक और अनुचित रूप से अपने अधिकार या शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

'स्वत्व' 'स्व' का भाववाचक रूप है। इसका मूल अर्थ है—अपनापन। जो वस्तु पूर्णत. हमारी अपनी या निजी हो उसी के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उस पर हमारा स्वत्व है। ऊपर अधिकार के जो कोई अर्थ बतलाये गये हैं उनसे इसमे मुख्य अन्तर यही है कि स्वत्व या तो पैतृक और वंशानुक्रमिक रूप मे प्राप्त होता है अथवा स्वय अर्जित करके ऐसे रूप मे प्राप्त किया जाता है कि उसमे दूसरे का कोई अश या अधिकार न हो। कुछ अवस्थाओ मे इस स्वत्व के भोग का कुछ अश किसी दूसरे को भी उपयोग या उपभोग के लिए दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ हम मौलिक और स्वतन्त्र रूप से जो साहित्यिक रचना करते है उस पर पूर्ण रूप से हमारा स्वत्व होता है। परन्तु उसके प्रकाशन, विक्रय, वितरण आदि का अधिकार हम किसी दूसरे को भी दे सकते और देते हैं। फारसी का 'मिल्कियत' (स्त्री०) शब्द स्वत्व का बहुत कुछ समानार्थक है।

× ×

अधिदान—पु० [स०] दे०, 'दान, प्रदान, अविदान, अनुदान, परिदान और प्रदान'।

अधिदेश—पु० [स०] दे० 'अध्यादेश, परादेश और समादेश'।

अधीक्षक—पु० [स०] दे०, निरीक्षण, अधीक्षण, पर्यवेक्षण पुनरीक्षण सम्प्रेक्षण और सर्वेक्षण।

अधीक्षण—पु० [स०] दे० 'निरीक्षण अधीक्षण, पर्यवेक्षण पुनरीक्षण सम्प्रेक्षण और सर्वेक्षण।

अध्ययन, अनुशीलन, परिशीलन और मनन
Study — Contemplation

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओ के वाचक हैं जो किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने अथवा उस विषय के अगो और समस्याओ का स्वरूप समझने के लिए कुछ विशिष्ट साधनो (यथा—ग्रथ, लेख आदि) के आधार पर की जाती हैं। हम साधारण रूप से पुस्तकें, समाचार पत्र आदि सरसरी तौर पर पढ तो जाते हैं, परन्तु विशेष ध्यान देकर उन पर कोई विचार नही करते। पर जब हम किसी ग्रथ या विषय की सब बातो का अच्छा और यथासाध्य पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए ध्यान देकर और विशेष विचारपूर्वक कुछ पढ़ते हैं तब हमारा वहा पढना 'अध्ययन' कहलाता है। इसके लिए विशेष तत्परता और मनोयोग की आवश्यकता पडती है।

साधारणत ग्रथो, विद्याओ आदि का अध्ययन तो होता ही है, किसी काल, देश आदि की आर्थिक, औद्योगिक, राजनीतिक सामाजिक आदि परिस्थितियो और प्रवृत्तियो का भी इस उद्देश्य से अध्ययन किया जाता है कि उनका इतिहास गतिविधि विकास आदि के तथ्य जानकर उनकी उपयोगिता भविष्य आदि का निरूपण हो सके।

'अनुशीलन' और परिशीलन' दोनों बहुत कुछ एक ही हैं। परन्तु अध्ययन की तुलना मे ये कई दृष्टियो से बहुत कुछ आगे बढे हुए होते हैं। इनमे प्रस्तुत विषय से सम्बन्ध रखनेवाली ओरो की और अधिक सूक्ष्म बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है, और उसके भेद विभेदों और जटिल समस्याओ पर भी अधिक गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है। तात्विक

दृष्टि से देखने पर कहा जा सकता है कि किसी जाने या पढे हुए विषय का मन मे बार-बार चिन्तन करना अनुशीलन है, और अन्यान्य ग्रन्थो की सहायता से तुलनात्मक विवेचन करना परिशीलन है; जैसे—दर्शनशास्त्र या मनोविज्ञान का पूरा-पूरा अनुशीलन या परिशीलन कर लेने पर ही मनुष्य उसके सम्बन्ध मे कुछ कहने या लिखने का अधिकारी होता है। अध्ययन मे तो किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने का भाव प्रधान है। परन्तु अनुशीलन या परिशीलन का उद्देश्य होता है गम्भीर तथा सूक्ष्म बातो का ज्ञान प्राप्त करके उनके सम्बन्ध मे कोई नई बात ढूँढ निकालना या किसी नये निष्कर्ष तक पहुँचना; जैसे—विश्वविद्यालय मे जो अनुशीलन-विभाग खुला है उसमे सूर साहित्य का नये सिरे से विवेचन हो रहा है और उसके फलस्वरूप बहुत सी ऐसी नई बाते सामने आ सकती हैं जिनकी ओर अभी तक लोगो का ध्यान नही गया है।

'मनन' सस्कृत मन से सम्बद्ध है और इसका मुख्यार्थ है—किसी विषय पर मन ही मन बहुत अच्छी तरह विचार करना या सोचना-समझना। यह वस्तुत: हमारी ज्ञानेन्द्रिय का कार्य है। हम पहले कोई विषय अच्छी तरह पढ या सुन लेते हैं, और तब मन ही मन इस बात का विचार करते हैं कि जो कुछ हमने पढा या सुना है वह कहाँ तक ठीक है। इसके सिवा हम उस विषय की गहराई या तह तक पहुँचने का विशिष्ट मानसिक प्रयत्न करते हैं, और तर्क-वितर्क, अनुमान आदि की सहायता से उसका ठीक-ठीक स्वरूप निर्धारित करते हैं। इसके लिए विशिष्ट बौद्धिक या मानसिक शक्ति अपेक्षित होती है, और फलत. यह अनुशीलन या परिशीलन का बहुत बढा हुआ और विकसित रूप होता है। × ×

आध्यादेश, परादेश, और समादेश
Ordinance Mandate Writ

इस वर्ग के शब्द प्रशासनिक और विधिक क्षेत्र मे कुछ उच्च स्तर के और विशिष्ट प्रकार के आदेशो के वाचक हैं, और इधर हाल मे कुछ नये अर्थ सूचित करने के लिए प्रचलित हुए है।

आध्यादेश पु० (स० अधि+आदेश) वह आधिकारिक आदेश है जो किसी कार्य, व्यवस्था आदि के सम्बन्ध मे राज्य के प्रधान शासक द्वारा

दिया या निकाला जाता है। हमारे यहाँ सारे भारत के लिए अथवा उसके किसी अश के लिए आध्यादेश' जारी करने का अधिकार राष्ट्रपति महोदय को है और अपने अपने प्रदेश के लिए राज्यपाल को भी ऐसा करने का अधिकार है। परन्तु इसम प्रतिब ध यह है कि आध्यादेश उन्ही न्दिनो मे निकाला जा सकता है जिन दिनो ससद् या विधान-सभा का अधिवेशन न हो रहा हो। अध्यादेश की अवधि अधिक से अधिक ६ मास की होती है और इस बीच म यदि ससद या विधान सभा का अधिवेशन आरम्भ हो जाय, तो आध्यादश उस अधिवेशन मे पारित कराना पडता है और उसे विधान का रूप देना पडता है। ऐसा आध्यादेश किसी जटिल या विषम स्थित म ही प्रशासनिक व्यवस्था ठीक रखने के लिए जारी किया जाता है।

परादेश पु० (स० परा + देश) मेरी सम्मति म अग्रेजी के mandate के लिए अधिक उपयुक्त होगा।*

'परादेश वह अधिकार ह जो कोई बहुत उच्च अधिकार रखनेवाला मडल या सस्था अपने किसी सदस्य राज्य को किसी उपनिवेश या प्रदेश की कुछ दिनो तक व्यवस्था करने और शासन चलाने के लिए देता है। ऐसा उप निवेश या प्रदेश उस राज्य की देख भाल के लिए थाती या यास के रूप मे ही नियत समय तक रहता है। इस बीच मे या तो वह उपनिवेश अथवा वह प्रदेश अपना शासन चलाने के लिए आप ही योग्य वन जाता ह अथवा उसमें इस प्रकार की योग्यता लाने के लिए वह किसी दूसरे राज्य को सौंप दिया

* भारत सरकार ने *mandate* के लिए 'प्रादेश शब्द स्थिर किया है। जो एक दृष्टि से ठीक नहीं है। अग्रेजी म mandate से उसका वि० रूप mandatory रूप बनता है। परन्तु यदि हम प्रादेश से उसका वि० रूप बनाना चाहे तो हमे प्रादेशिक' शब्द रखना पडेगा। जो पहले से Provincial और Rigonal के लिए प्रचलित है। डा० रघुवीर ने अपने कोश मे इसके लिए अधिदेश शब्द स्थिर किया है। इसमे का 'अधि उपसग अतिरेक या अधिक क भाव का सूचक है परन्तु mandate में अतिरेक या आधिक्य का भाव नहा है बल्कि उच्चाधिकार या वरिष्ठता का भाव प्रधान है। इसके सिवा अधिदेश और आध्यादेश में आशय की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर भी नहीं ह । विचार स मैंने 'परादेश रूप स्थिर किया ह। वरिष्ठता या श्रेष्ठता का भाव सूचित करने के लिए 'परा अधिक उपयुक्त ह जैसा कि परा मनोविज्ञान आदि में व्यक्त होता ह।

जाता है इससे और आगे बढने पर वह आदेश भी 'परादेश' कहलाता है जो किसी उच्च न्यायालय की ओर से किसी अधीनस्थ न्यायालय को कोई विशिष्ट कार्य करने के लिए दिया जाता है, इसका वि० रूप परादेशिक होगा ; जैसे—अमुक राज्य को अमुक प्रदेश पर शासन करने का परादेशिक अधिकार मिला हो ।

समादेश पु० (स० सम् + आदेश) समादेश का साधारण अर्थ है—आधिकारिक रूप से किसी अधीनस्थ को दिया जानेवाला आदेश या आज्ञा। परन्तु आज-कल हमारे यहाँ समादेश सर्वोच्च न्यायालय अथवा किसी उच्च न्यायालय का दिया हुआ वह आदेश है जो किसी अधीनस्थ न्यायालय को किसी मामले की सुनवाई तब तक रोक रखने के लिए कहा जाता है, जब तक सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय उस मामले के सम्बन्ध मे अपना निश्चय या विचार प्रकट न कर दे। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी न्यायालय मे कोई राजनीतिक या सविधानिक विवाद विचारार्थ उपस्थित किया जाता है परन्तु प्रतिवादी को उसके सम्बन्ध मे कोई विधिक या वैधानिक आपत्ति होती है। ऐसी अवस्था मे प्रतिवादी अपने क्षेत्र के उच्च न्यायालय अथवा केन्द्रीय सर्वोच्च न्यायालय मे इस आशय का प्रार्थना-पत्र या याचिका उपस्थित करता है कि अधीनस्थ न्यायालय तब तक इस पर विचार न करे, जब तक आप इसकी वैधानिकता आदि के सम्बन्ध मे अपना निर्णय न दे दे। ऐसे प्रार्थना-पत्र या याचिका को 'समादेश याचिका' कहते हैं। × ×

अनशन, उपवास, प्रायोपवेषन, लंघन और व्रत
(Fast) (Fast)

सस्कृत की ये चारो पु० सज्ञाएं उस अवस्था की सूचक हैं जिसमे मनुष्य भोजन नही करता और भूखा रहता है। 'अनशन' और 'व्रत' का प्रयोग तब होता है जब मनुष्य अपनी इच्छा से और जान-बूझ कर किसी अभिप्राय या उद्देश्य से कुछ समय के लिए भोजन छोड देता है। परन्तु 'उपवास' और 'लघन' अपनी इच्छा के अतिरिक्त चिकित्सक के आदेश या निर्देश पर अथवा विवशता की दशा मे भी किये जाते अथवा होते हैं।

'अनशन' मूलतः स० के अशन (खाना या भोजन करना) के पहले स० का अन् उपसर्ग लगने से बना है; और इसका सीधा-सादा शब्दार्थ है

न खाना या भोजन न करना। वस्तुतः अनशन किसी प्रकार की खिन्नता, रोष, विरक्ति आदि उत्पन्न होने पर किया जाता है। परन्तु आज-कल यह शब्द एक विशिष्ट अर्थ या भाव सूचित करने के लिए होने लगा है। आज-कल प्रायः ऐसा होता है कि बन्दी, मजदूर, राजनीतिक नेता आदि अपनी इच्छा के अनुसार कोई काम कराना तो चाहते हैं पर अधिकारी उनकी बात नहीं मानते या नहीं सुनते। अतः अधिकारियों को विवश करने के लिए वे कहते हैं कि हम तब तक भोजन नहीं करेंगे जब तक हमारी माँगें पूरी नहीं हो जाएँगी। अँगरेजी में ऐसी स्थिति का सूचक एक प्रसिद्ध पद है—हंगर स्ट्राइक (Hunger strike)। हिन्दी में बहुत दिनों से इसके अर्थ अनुकरण पर 'भूख-हड़ताल' पद चल रहा है जो बिलकुल निरर्थक भी है और बहुत ही भद्दा भी। कुछ समझदार लोग इसके स्थान पर जो 'अनशन' का प्रयोग करते हैं वही ठीक भी है और सार्थक भी। 'भूख-हड़ताल' के स्थान पर सदा इसी का प्रयोग होना चाहिए।

'उपवास' का प्रयोग हमारे यहाँ प्राचीन काल में एक प्रकार का ऐसा आध्यात्मिक और धार्मिक आचरण होता था जिसमें लोग संसार से विरक्त होने के लिए इंद्रियों के सब प्रकार के सुख-भोगों का परित्याग कर देते थे। वे शरीर के निर्वाह के लिए खाते-पीते तो थे पर तु आभूषणों, वस्त्रों, सुगंधियों आदि का व्यवहार नहीं करते थे और मनोविनोद आदि की लौकिक बातों से बिलकुल अलग और दूर रहते थे। आगे चलकर यह शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त होने लगा था जिस अर्थ में आज-कल हिंदू समाज में एकादशी का व्रत में का 'व्रत' शब्द प्रयुक्त होता है (दे० नीचे 'व्रत') अर्थात् इसका अर्थ होता था—संयमी बनने के लिए किसी दिन भोजन न करना। परन्तु आज कल इसका प्रयोग कुछ और विस्तृत रूप में भी होने लगा है। हम आध्यात्मिक और धार्मिक दृष्टि से तो किसी किसी दिन भोजन छोड़कर भूखे रहते ही हैं, परन्तु रोगी होने पर चिकित्सक लोग हमारे शारीरिक कल्याण और स्वास्थ्य के लिए हमें उपवास कराते हैं। अर्थात् हमारे लिए भोजन की मनाही कर देते हैं। इसके सिवा दरिद्रता, दुर्भिक्ष आदि के कारण भी कभी कभी लोगों को उपवास करने के लिए विवश होना पड़ता है। तात्पर्य यह कि भोजन-सामग्री बहुत ही कम मिलने अथवा बिलकुल न मिलने की दशा में भी लोगों को उपवास करना अर्थात् भूखा रहना पड़ता है।

'प्रायोपवेशन' में के 'प्राय' का अर्थ है—मृत्यु की कामना करना और 'उपवेशन' का अर्थ है—बैठना। इस प्रकार प्रायोपवेशन का अर्थ

होता है—मृत्यु की कामना करते हुए बैठे रहना। यह हमारे यहाँ की बहुत प्राचीन प्रथा है। प्राचीन भारत मे ऋषि-मुनि आदि जब बहुत वृद्ध हो जाते थे अथवा मानसिक चिंताओ या शारीरिक कष्टो से बचने के लिए अपने प्राण देना चाहते थे, तब वे अन्न-जल छोड़कर मृत्यु की कामना करते हुए शान्त भाव से किसी स्थान पर बैठ जाते थे और उसी दशा मे प्राण त्याग देते थे। इसी प्रथा को प्रायोपवेपन कहते थे। महाभारत मे द्रोण के प्रायोपवेपन की कथा आई है।

'लघन' सं० की लंघ् धातु से बना है जिसका अर्थ है किसी ऊँची चीज पर एक ओर से चढकर दूसरी ओर से नीचे उतरना अर्थात् किसी चीज के ऊपर से होते हुए और उसे पार करते हुए आगे बढना। हिन्दी की 'लाँघना' क्रिया इसी स० लघन से बनी है; और इसी लघन मे उत् उपसर्ग लगने से 'उल्लघन' बनता है। सस्कृत मे लंघन के जो कई अर्थ है उनमे से एक अर्थ यह भी है—नियत समय पर भोजन न करके भूखे पेट ही समय बिताना; अर्थात् है तो यह भी बीच मे कुछ समय तक भोजन न करने का वाचक; परन्तु लोक-व्यवहार मे यह शब्द प्रायः रोगियों के सम्बन्ध मे प्रयुक्त होता है। वैद्यक का एक प्रसिद्ध वाक्य है—लंघन परमौपधम्; अर्थात् लघन रोगो की सबसे अच्छी दवा है। वैद्य लोग स्वस्थ्य-रक्षा के विचार से रोगियो को जो भोजन से विरत रखते हैं वह लघन कराना कहलाता है। इस विशिष्ट अर्थ मे 'उपवास' और 'लघन' को समानार्थक ही समझना चाहिए। प्राचीन और मध्ययुगीन भारतीय हिन्दू समाज में यह प्रथा थी कि जब घर का कोई आदमी मर जाता था तब स्त्रियाँ दिन भर भोजन नही करती थी, केवल रात के समय एक बार भोजन करती थी। इस प्रकार दिन भर शोक-सूचक भूखे रहने को भी 'लघन' ही कहते थे। 'उपवास' और 'लंघन' दोनो के लिए हिन्दी मे उर्दू का 'फाका' (अ० फाकः) भी पर्याय के रूप मे प्रचलित है।

'व्रत' के संस्कृत मे बहुत से अर्थ हैं; जैसे—आज्ञा या आदेश, नियम, विधान आदि। परन्तु मुख्य रूप से यह ऐसे दृढ निश्चय या प्रतिज्ञा का वाचक है जो धार्मिक, नैतिक आदि दृष्टियों से और किसी सद् उद्देश्य से की गई हो और जिसका पालन निष्ठापूर्वक किया जाता हो। पातिव्रत, ब्रह्मचर्य आदि में का व्रत इसी प्रकार के निश्चयों और प्रतिज्ञाओ का सूचक है। आगे चलकर इसका प्रयोग भी उपवास की तरह आध्यात्मिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों

मे समयपूर्वक किये जानेवाले आचरण के सम्बन्ध मे होने लगा था। प्रस्तुत प्रसग म यह धार्मिक दृष्टि से किये जानेवाले उपवास का ही समानार्थक माना जाता है और इस क्षेत्र म उपवास की तुलना मे इसी का प्रचार है, जसे—एकादशी या पूर्णिमा का व्रत, रामनवमी या शिवरात्रि का व्रत आदि आदि। धार्मिक दृष्टि से २४ घटे तक कुछ भी न खाना निराहार व्रत कहलाता है और निजला एकादशी वाले व्रत का नामकरण इस दृष्टि से हुआ है कि उस दिन २४ घटे जल तक न पीने का विधान है। परतु साधारणत यही देखा जाता है कि लोग व्रत के दिन एक ही बार भोजन करते हैं और अन्न न खाकर उसके बदले फल अथवा फलो से बनी हुई चीजें ही खाकर अथवा दूध ही पीकर रह जाते हैं। मुसलमान लोग धार्मिक दृष्टि से उक्त प्रकार का जो उपवास करते हैं वह 'रोजा' कहलाता है। × ×

अनाचार, कदाचार, दुराचार

Misconduct Bad conduct

भ्रष्टाचार और व्यभिचार

Corruption (i) Adultery
(ii) Prostitution

इस वग के शब्द ऐसे आचारो के वाचक हैं जो लोक तथा समाज म घृणित, निन्दनीय या बुरे माने जाते हैं।

अनाचार (पु० स०) ऐसी स्थिति का वाचक है जिसम आचार का न तो कोई ध्यान ही रखा जाता हो और न कोई सिद्धात ही माना जाता हो। जब जो कुछ अच्छा जान पडे या जी मे आवे अथवा जिसमे अपना लाभ या हित दिखाई दे तब वही कर डालना अनाचार है। यह बिलकुल अनियत्रित और मनमाने ढग से किए जानेवाले कामो और व्यवहारो का सूचक है। यह ऐसे अनुचित आचरण और व्यवहार का सूचक है जिसम किसी प्रकार के नियम परिपाटी या विधान की कुछ भी परवाह नही की जाती—उसे तुच्छ या निरथक समझा जाता है।

कदाचार और दुराचार (पु० स०) दोनो मूल अथ के विचार से बहुत कुछ एक ही है, दोनो का अथ है—दूषित और बुरा आचार। मध्य युग के सस्कृत ग्रथो म तो 'कदाचार' का प्रयोग प्राय मिलता है परन्तु आज कल इसका प्रयोग बहुत कम होता है और इसके स्थान पर दुराचार ही विशेष रूप

से प्रचलित है। चोरी, जूआ, मद्य-पान, वेश्यागमन आदि सभी बुरी बातें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। यहाँ तक कि धोखेबाजी, बेइमानी आदि की गिनती भी 'दुराचार' मे होती है।

'भ्रष्टाचार' (पु० स०) भ्रष्ट+आचार के योग से बना है। इसका मूल अर्थ तो आचार से भ्रष्ट, रहित या हीन होता ही है; परन्तु अब इसका प्रयोग कुछ विशिष्ट प्रकार के बुरे आचरणो और व्यवहारों के सम्बन्ध में होने लगा है। आज-कल राजनीति, व्यापारिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों मे जो बहुत से नये प्रकार के, विधि-विरुद्ध और निन्दनीय आचरण तथा व्यवहार होने लगे हैं यह उन सबके सामूहिक रूप का सूचक हो गया है। चोर-बाजारी, मुनाफाखोरी, तस्कर व्यापार सरीखे जितने अनुचित कार्य लोग स्वय अथवा राजकीय कार्यकर्ताओ के सहयोग तथा सहायता से करते हैं, अथवा राजकीय कर्मचारी अनेक प्रकार के पक्षपात पूर्ण और बेइमानी के काम करते है अथवा बडी-बड़ी रिश्वते लेकर उस प्रकार के काम होने देते हैं अथवा धन, पद आदि के लोभ मे पड़कर अनेक प्रकार के अनुचित कार्य करते है, उन सबकी गिनती अब भ्रष्टाचार मे ही होती है।

'व्यभिचार' (पु० स०) हमारे यहाँ का बहुत पुराना और प्रचलित शब्द है। यह मुख्यतः पुरुषो और स्त्रियो के अनुचित और नीति-विरुद्ध लैंगिक सम्बन्ध का वाचक हैं। परन्तु यह सम्बन्ध दो प्रकार का होता है। एक तो केवल इन्द्रिय-सुख अथवा काम-वासना की तृप्ति के लिए होता हैं, और दूसरा विशुद्ध धन उपार्जित करने के उद्देश्य से। पर-पुरुष और पर-स्त्री से सम्बन्ध रखनेवाले लोग भी व्यभिचारी कहलाते हैं; और वेश्याओं आदि की गिनती भी व्यभिचारिणी स्त्रियो मे होती है। परन्तु आज-कल इस दूसरे प्रकार के साथ अंग्रेजी के Prostitution के अनुकरण पर एक नया अर्थ भी लग चला है। बहुत से लोग किसी उच्चकोटि के कार्य, गुण, वस्तु आदि का कभी-कभी किसी बहुत ही निकृष्ट या बुरे उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रयोग कर जाते अथवा बहुत ही अशोभन रूप से उससे लाभान्वित होने का प्रयत्न करते हैं। इसे भी उस उत्तम कार्य या वस्तु से व्यभिचार कराना कहते है; जैसे—धर्म का मुख्य उद्देश्य तो मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति करना और उसे ईश्वर की ओर उन्मुख तथा प्रवृत्त करना होता है; परन्तु कभी-कभी कुछ लोग बहुत ही अनुचित तथा निंदनीय रूप से अपना आर्थिक, राजनीतिक या सामाजिक उद्देश्य सिद्ध करने का उससे प्रयत्न करते है। आज-कल के नये प्रयोग के विचार से इसे धर्म से व्यभिचार कराना कहा जा सकता है और कुछ क्षेत्रो मे कहा भी जाने लगा है। × ×

अनावरण, उद्घाटन या समारंभ और विमोचन
[Unveiling] [Inuguration] [Release]

इस वर्ग के शब्द कुछ विशिष्ट प्रकार के सार्वजनिक समारोहों के ऐसे आरम्भिक और औपचारिक कृत्यों के वाचक हैं जो जन साधारण का ध्यान आकृष्ट करने अथवा लोक में विशेष प्रचार करने के उद्देश्य से किये जाते हैं।

'अनावरण' स० के आवरण के पहले अन उपसर्ग लगने से बना है। इसका शब्दार्थ है आवरण (ढकने वाली चीज या परदा) न रहने देना या हटाना। जिस चीज के आगे कोई परदा पड़ा हो उसे हटाना ही अनावरण है। पर आज कल इसका प्रयोग किसी महापुरुष के नये बने हुए चित्र या मूर्ति के सार्वजनिक रूप से पहले पहल प्रदर्शित करने के उद्देश्य से किये जाने वाले समारोह के सम्बन्ध में होता है। ऐसे अवसरों पर चित्र या मूर्ति के सामने पहले से कोई परदा टँगा रहता है और समारोह का आरम्भ करते हुए कुछ लोग उस महापुरुष के सम्बन्ध में भी और उसके चित्र या मूर्ति के सम्बन्ध में भी मुख्य बातें बतलाते हैं और तब वह पर्दा हटा कर लोगों के लिए चित्र या मूर्ति अनावृत्ति कर देते हैं। यही क्रिया 'अनावरण' कहलाती है।

उद्घाटन [पु० स०] के आरम्भिक और मुख्य अर्थ हैं—ऊपर उठाना, खोलना आदि। तात्विक दृष्टि से इसका आरम्भिक अर्थ भी बहुत कुछ वही है जो अनावरण का है। इसमें भी आड़ में रखनेवाली चीज या परदे को दूर करने और हटाने का भाव प्रधान है। इसी आधार पर रहस्योद्घाटन का अर्थ होता है—रहस्य के ऊपर पड़ा हुआ आवरण या परदा हटाना, *जिससे रहस्य का वास्तविक रूप सबके सामने आ जाय।* परन्तु आज कल इसका प्रयोग अंग्रेजी के 'इनागुरेशन' (Inauguration) के स्थान पर होने लगा है जो उपयुक्त और ठीक मालूम नहीं पड़ता। प्रायः कहा जाता है—(क) अमुक स्थान पर नहर (पुल या बाँध) का उद्घाटन हुआ। (ख) आज शिक्षा मन्त्री महोदय अमुक सभा (या सम्मेलन) का उद्घाटन करेंगे। परन्तु नहर, पुल, सभा, सम्मेलन आदि ऐसी चीजें नहीं हैं जिनके सामने कोई आड़ खड़ी हो या परदा पड़ा हो। धमन भट्ठी के आरम्भ का उद्घाटन और महाविद्यालय के शिलान्यास का उद्घाटन सरीखे वाक्यों में उद्घाटन का प्रयोग बिलकुल असंगत और अर्थहीन होता है। वस्तुतः इसका आशय

होता है—किसी अच्छे और उपयोगी कार्य का शुभ-आरम्भ। परन्तु उद्घाटन मे न तो शुभ का ही भाव है, न आरम्भ का ही। यद्यपि यह शब्द बहुत अधिक चल पड़ा है और इसे छोडना या हटाना सहज नही है, फिर भी मैं चाहता हूँ कि हिन्दीवाले इस पर अच्छी तरह विचार करे और यदि उचित समझें तो ऐसे अवसरो के लिए 'उद्घाटन' के स्थान पर 'समारम्भ' का प्रचलन करें जो सभी दृष्टियो से उपयुक्त भी है और सार्थक भी। समारंभ के सम्बन्ध मे विशेप बातें जानने के लिए दे० 'अथ, आदि आरम्भ, प्रारम्भ और समारम्भ'।

'विभोजन' [पु० स०] के मुख्य अर्थ हैं—छोडना, त्यागना, बन्धन से मुक्त करना, स्वतन्त्र करना आदि। परन्तु आज-कल इसका प्रयोग कुछ नये प्रसगो मे होने लगा है। जब कोई चीज बनकर तैयार होती है और पहले-पहल उसे जन-साधारण के सामने उपयोग के लिए रक्खी या लाई जाती और प्रचलित या प्रचारित की जाती है, तब ऐसी क्रिया के आरम्भ मे कोई आयोजन या उत्सव किया जाता है तब जनता को उसके उपयोग का सुभीता प्राप्त होता है। अब इसी प्रकार की क्रियाएं 'विमोचन' कही जाने लगी है। उदाहरणार्थ जब कोई नया बाँध तैयार होता है तब नहरो मे उसका पानी छोड़ना 'विमोचन' कहलाता है। इसी प्रकार नए और महत्वपूर्ण प्रकाशनो आदि का किसी मान्य पुरुष के हाथो पहले विमोचन कराया जाता है और तब उसकी बिक्री आदि का आरम्भ होता है, जैसे—आज राष्ट्रपति महोदय ने महात्मा गाधी की जीवनी के पहले खण्ड का विमोचन किया। × ×

अनुकरण, अनुगमन, अनुवर्तन और अनुसरण

इस वर्ग के शब्द ऐसे कामो या बातो के वाचक हैं जो किसी को कोई अच्छा काम करते हुए देखकर अथवा किसी के ऐसे ही किए हुए काम को देखकर उन्ही के अनुरूप या अनुसार किए जाते हैं।

'अनुकरण' मे मुख्य शब्द करण है। इसमे किसी के किए हुए काम के अनुसार वैसा ही कोई और काम करने का भाव प्रधान है; जैसे—कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर सस्कृत मे पवन-दूत, हसदूत आदि अनेक काव्य रचे गए थे। इससे विशेषण कर्त्तारूप अनुकारी (अनुकरण करनेवाला) बनता है।

'अनुगमन' में मुख्य शब्द गमन है और इसी लिए इसका अर्थ है किसी के पीछे-पीछे अथवा किसी के दिखलाए हुए रास्ते पर चलना, जैसे-वनवास के समय लक्ष्मण और सीता ने भी राम का अनुगमन किया था। इससे विशेषण कर्ता रूप अनुगामी (अनुगमन करनेवाला) बनता है।

अनुवर्तन [पु० सं०] 'वर्तन' में 'अनु' उपसर्ग लगने से बना है। वर्तन के दो मुख्य अर्थ हैं—एक तो काम में लाना या बरतना, और दूसरा बर्ताव या व्यवहार करना। इसी आधार पर अनुवर्तन का अर्थ होता है—किसी को किसी प्रकार का बर्ताव या व्यवहार करते हुए देखकर अर्थात् उसकी देखा देखी स्वयं भी उसी तरह का बर्ताव या व्यवहार करना। इसी आधार पर कहा जाता है—हमारे पिता जी सदा दूसरों के साथ उदारता और सज्जनता का व्यवहार करते थे, इसी लिए जहाँ तक हो सकता है, मैं भी उन्हीं का अनुवर्तन करता हूँ।

'अनुसरण' में मुख्य शब्द 'सरण' है, जिसका अर्थ होता है धीरे धीरे चलते हुए आगे बढ़ना। जब हम किसी को बहुत आगे बढ़ा हुआ देखते हैं और उसी की तरह आगे बढ़ने के लिए उसी की देखा देखी कुछ और काम करते हैं, तब उस स्थिति का वाचक शब्द अनुसरण होता है, जैसे—औद्योगिक व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में भारत आज कल पाश्चात्य देशों का अनुसरण कर रहा है। इससे विशेषण कर्ता रूप अनुसारी (अनुसरण करनेवाला) बनता है।

यहाँ यह ध्यान रहे कि उक्त तीनों प्रकार के कार्य तभी किए जाते हैं जब हम किसी के कामों को आदर्श या श्रेष्ठ समझते हैं और उसे किसी विशिष्ट क्षेत्र में नेता या पथ दर्शक मानते हैं। × ×

अनुकल्प और विकल्प
(Alternative) (Option)

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियों के वाचक हैं जिनमें हम दो या अधिक कामों, चीजों, बातों आदि में से कोई एक अपने कार्य निर्वाह के लिए या तो विवशतापूर्वक या स्वतन्त्रतापूर्वक अपनानी और चुननी पड़ती है।

'अनुकल्प' पु० [सं०] वह स्थिति है जब हमारे सामने दो या अधिक चीजें या बातें होती हैं और उनमें से कोई एक बात हमारे लिए आवश्यक रूप से

ग्राह्य होती है या हमे चुननी पडती है। परन्तु किसी प्रकार के अभाव कठिनता ता या विवशता के कारण हम उनमें से आवश्यक और प्रमुख चीज या बात ग्रहण करने मे असमर्थ होते है। तब शेष चीजो या बातो मे से कोई एक हमे ग्रहण या मान्य करनी पड़ती है। ऐसी ही ग्राह्य या मान्य चीज या बात ही आवश्यक या प्रमुख चीज या बात के बदले मे ग्रहण कर सकने को अनुकल्प* कहते हैं।

यद्यपि अँगरेजी मे भी Alternative का ठीक वही आशय लिया जाता है, जो यहाँ अनुकल्प का बतलाया गया है, पर जान पडता है कि Option से उसका इस प्रकार का पार्थक्य इधर हाल मे निश्चित हुआ है। फर्नाल्ड ने English Synonyms and Antonyms (पृष्ठ ६०) मे बतलाया है कि मिल और ग्लैडस्टन ने Alternative का प्रयोग Option वाले अर्थ मे किया है। पर आक्सफर्ड डिक्शनरी से पता चलता है कि अँग्रेजी मे सन् १६५० से ही Alternative मे दो मे से कोई एक ग्रहण करने का भाव चला आ रहा है। हिन्दी मे Alternative का जो दूसरा अर्थ एकान्तर है, वह भी इसी 'दो मे से एक वाले' भाव से युक्त है।

अर्थात् एक के अभाव मे उसके स्थान पर काम दे सकनेवाला कोई और पहले का अनुकल्प कहलाता है।

'विकल्प' पु० [सं०] भी है तो बहुत कुछ वही जो अनुकल्प है, फिर दोनों मे कुछ सूक्ष्म अन्तर है। विकल्प एक तो बहुत-सी चीजो के सम्बन्ध मे होता है; और दूसरे उसमे हमारे अधिकार, अनुकूलता, रुचि आदि का भाव मुख्य होता है। यदि उसमे कभी या कही कुछ विवशता होती भी है, तो वह गौण ही रहती है। आज-कल विद्यार्थियो के सामने किसी परीक्षा के लिए

---

* अब तक के हिन्दी कोशो मे Alternative और Option दोनो के लिए एक 'विकल्प' शब्द ही आता रहा है। इस विवेचन के समय जब मुझे इनके लिए दो अलग अलग शब्दो की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब ढूँढने पर मुझे संस्कृत कोशो मे Alternative के लिए अपने यहाँ का पुराना शब्द अनुकल्प मिला, और इसके उदाहरण भी इन रूपो मे मिले--यदि कुश न हो तो दूर्वा (मॉनियर विलियम्स) और तडुल न हो तो यव (आप्टे) से काम चल सकता है, अर्थात् इनमे से दूसरे पदार्थ पहले पदार्थ के अनुकल्प है।

बहुत से विषय रहते हैं, और वे विकल्प से उनमें से कुछ विषय अपनी पढ़ाई के लिए चुन लेते हैं।*

× ×

'अनुकारी' वि० [सं०] दे० 'अनुकरण, अनुगमन, और अनुसरण' के अन्तर्गत 'अनुकरण'।

अनुकूल, अनुरूप और अनुसार

इस वर्ग में शब्द हैं तो मुख्यतः विशेषण ही, पर कुछ अवस्थाओं में इनका प्रयोग क्रिया विशेषण के रूप में होता है।

'अनुकूल' संस्कृत के 'कूल' में 'अनु' उपसर्ग लगने से बना है। 'कूल' का मुख्य अर्थ है नदी का किनारा या तट। इसी आधार पर 'अनुकूल' का मुख्य अर्थ होता है—जो उसी किनारे या तट पर हो जिस पर हम हैं या वक्ता है। इसी लिए हिन्दी में इसका पहला अर्थ होता है—(ऐसी बात, व्यक्ति या स्थिति) जो हमारी इच्छा, प्रवृत्ति, रुचि आदि के अनुसार ही काम करता, चलता या रहता हो, जैसे—उनके चारों लड़के उनके अनुकूल हैं, अर्थात् वे जो कुछ करते कहते या चाहते हैं वही चारों लड़के करते हैं। किसी की आज्ञा इच्छा आदि मान कर उसके अनुसार आचरण या व्यवहार करना ही उसके अनुकूल रहना या होना है। इसी प्रकार अनुकूल वायु या अनुकूल परिस्थिति का अर्थ होगा वैसी ही वायु या स्थिति जैसी हम चाहते हैं। और फलतः जो हमारे उद्देश्य या काम की सिद्धि में सहायक ही होती है, बाधक नहीं होती। अनुकूल बात या व्यक्ति हमारे लिए उत्साहवर्धक भी होता है और लाभदायक भी। इसमें मुख्य भाव हमारे पक्ष में होने का है विपक्ष में, या विरुद्ध होने का नहीं। इसका विपर्याय 'प्रतिकूल' होता है। दे० 'प्रतिकूल, विपरीत और विरुद्ध'।

---

* इससे विशेषण वैकल्पिक बनता है परन्तु आजकल इसका अर्थ और भाव सूचित करने के लिए इसके स्थान पर कुछ लोग 'ऐच्छिक' का भी प्रयोग करने लगे हैं जो कई दृष्टियों से कुछ ठीक नहीं जान पड़ता। कारण यह है कि विकल्प में तो हमारे लिए चुनाव का क्षेत्र बहुत कुछ नियत या परिमित होता है परन्तु ऐच्छिक के सम्बन्ध में यह बात ठीक नहीं बैठती। ऐच्छिक का संबंध तो हमारी इच्छा, प्रवृत्ति, रुचि आदि से है, और इसी लिए ऐच्छिक का क्षेत्र विवक्षा की दृष्टि से बहुत अधिक विस्तृत हो जाता है।

'अनुरूप' सस्कृत के 'रूप' में 'अनु' उपसर्ग लगने से बना है। इसका मुख्य अर्थ है किसी के रूप (आकार-प्रकार, आचार-व्यवहार, गुण-दोष आदि) के ढग या तरह का; अर्थात् जो किसी के रूप से बहुत कुछ मिलता-जुलता हो; जैसे—वे उदारता, योग्यता, विद्वत्ता आदि की दृष्टि से अपने गुरु (या पिता) के अनुरूप ही है। आशय यही होता है कि उनके गुरु या पिता मे जो जो अच्छी बाते थी प्रायः वे सभी उनमें भी बहुत कुछ पाई जाती हैं। किसी चित्र या मूर्ति को देखकर बहुत कुछ वैसा ही जो चित्र या मूर्ति बनाई जाती है, उसके सम्बन्ध मे कहा जाता है—यह मूल चित्र या मूर्ति के ठीक अनुरूप है।

'अनुसार' सस्कृत के 'सार' में अनु उपसर्ग लगने से बना है। 'सार' के कई अर्थो मे से एक अर्थ गति और दूसरा आगे बढना या फैलना भी है। यह सार वस्तुतः उसी 'सरण' का विकारी रूप है, जिसमें अनु उपसर्ग लगने से 'अनुसरण' बना है। (दे०—ऊपर अनुकरण, अनुगमन और अनुसरण) इसका शब्दार्थ है—जो किसी को देखकर उसी की तरह आगे चल या बढ़ रहा हो। प्रस्तुत प्रसङ्ग में क्रि० वि० रूप में अर्थ होता है—किसी के ढंग या मार्ग पर (चलने या बढनेवाला)। इसका प्रयोग आदर्श, आदेश, नियम, विधान, विधि आदि के क्षेत्रो मे होता है; जैसे—आज्ञानुसार, नियमानुसार आदि। अर्थात् आज्ञा या नियम जैसा कहता या बतलाता हो, ठीक उसी तरह पर। कुछ अवसरो पर इसका प्रयोग मत, विचार आदि के सम्बन्ध मे भी होता हैं; जैसे पुराणो या वेदो के अनुसार; महाभारत या रामायण के अनुसार आदि। आशय यही होता है कि वेदो, पुराणो आदि में जैसा कहा गया है, यह वैसा ही है अथवा इसका पालन इसी तरह होना चाहिए। इसी लिए हम कहते हैं—आपके मत के अनुसार तो यह बात किसी तरह ग्राह्य या मान्य हो ही नही सकती। × ×

अनुगणन—पु० [स०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन'।

अनुदान—पु० [स०] दे० 'अनुकरण, अनुगमन, अनुवर्तन और अनुसरण'।

अनुगामी—वि० [सं०] दे० 'अनुकरण, अनुगमन, और अनुवर्तन अनुसरण' के अन्तर्गत 'अनुगमन'।

अनुताप—पु० [सं०] दे० 'ताप, परिताप, पश्चाताप और संताप' के अन्तर्गत 'पश्चाताप'।

अनुदान—पु० [सं०] दे० 'दान, अशदान, अनुदान, परिदान और प्रदान'।

अनुपात और समानुपात
(Ratio) (Proportion)

ये दोना शब्द चीजो की मात्रा, मान सख्या आदि के पारस्परिक सबधा के सूचक हैं।

अनुपात पु० [स०] का मूल अर्थ है—घटनाओ घाता, वस्तुओ आदि का एक एक करके सामने आते जाना, उपस्थित होना या ऊपर से गिरना। परन्तु प्रस्तुत प्रसग म यह एक ही तरह की दो चीजो या मान के ऐसे पारस्परिक सबध या स्वरूप का वाचक है जो उनके अशो या स्थितियो के आधार पर निश्चिय किया जाता है, जैसे—हमारे नगर मे पुरुषो और स्त्रियो का अनुपात १० और ८ है। आशय यही होता है कि सारी आबादी की दृष्टि स १० पुरुष हैं वहाँ स्त्रियाँ केवल ८ हैं अर्थात् पुरुषा की तुलना म स्त्रियो का अनुपात ४ ५ है। और भी सरल रूप मे हम कह सकते हैं ५ और २ म वही अनुपात है जो २० और ८ अथवा ४० और १६ मे है। इस प्रकार तुलनात्मक मान ही मूलत अनुपात है, और वह मुख्यत गुणा और भाग के आधार पर ही स्थिर होता है।

समानुपात' इसी अनुपात का दूसरा प्रकार या भेद है, जो किसी एक वस्तु के भिन्न भिन्न अगो या अशा का उस समूची वस्तु के आकार प्रकार, विस्तार आदि के विचार पर स्थिर होता है। यही, वह तत्व है जिससे उस समूची वस्तु के ठीक और पूरे स्वरूप म सगति सामजस्य और सुन्दरता आती है—उसके कार्यों गुणो आदि में पूर्णता आती है। यह अगी और उसके अगो के पारस्परिक अनुपात का सूचक है, जसे—आम का अचार डालने के समय उसमे तेल नमक, मिच मसाले आदि समानुपात म ही डालने चाहिए। यदि आम ५ सेर हो तो तेल २½ सेर और नमक मिच मसाले आदि १ पाव होने चाहिए पर आम यदि १० सेर हो तो तेल ५ सेर और नमक मिच मसाले आदि ½ सेर होने चाहिए। यही इन सब चीजो का पारस्परिक समानुपात है। × ×

अनुपूर्ति—स्त्री० [स०] दे० 'पूर्ति अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति।

किये हुए बहुत से कामो का अच्छा ज्ञान पुञ्ज वतमान हो। यह तो हुई हमारी अपनी वयक्तिक बात। इसके सिवा दूसरे लोगो के व्यवहारो तथा प्राकृतिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि घटनाओ और परिवतनो से भी हम जो परिज्ञान होता है वह भी उसी के अ तगत आता है। ऐसा अनुभव केवल व्यक्तियो को ही नही, बल्कि जातियो देशों, समाजो आदि को भी होता है। हम कहते हैं—हि दू जाति (अथवा भारतवष) को विदेशी शासन काल मे अनेक प्रकार क कटु अनुभव हुए थे। हिन्दी म इसके लिए फारसी का 'तजरूबा' शब्द भी विशेष प्रचलित है।

अनुभूति' के सम्ब ध में ऊपर जो मुख्य बात कही गयी है उसके अतिरिक्त और भी कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं। पहली बात तो यह है कि यह विशुद्ध वयक्तिक होनी ह, सामाजिक या सामूहिक नही होती। दूसरी बात यह भी ह कि अपने परिवर्ती और विकसित अथ में अनुभव तो मनुष्य को कुछ ज्ञान या बुद्धि प्राप्त कर लेने के उपरा त ही होता ह परन्तु अनुभूति (जसे—ताप, शीत आदि की) छोटे बचो तक को होती ह, भले ही वे अपनी अनुभूति कह या बतला न सकते हो। अनुभव यदि बुद्धि का विषय ह तो अनुभूति हमारी चेतना का विषय ह। अनुभूति की छाप और प्रभाव तो प्राय तात्कालिक तथा अल्पकालीन होता ह, पर तु अनुभव का प्रभाव बहुत कुछ दीघकाल यापी अथवा स्थायी हो सकता ह। हि दी म अनुभूति के लिए अरबी के एहसास श द का भी प्रयोग प्राय देखने में आता ह।

दाशनिक क्षेत्र म अनुभूति एक विशिष्ट अथ में प्रचलित ह। वहाँ वह उस ज्ञान की वाचक ह, जो अनुमिति, उपमिति, प्रत्यक्ष या श ब्द बाध नाम क चार प्रमाणो में स किसी प्रमाण के आधार पर प्राप्त हो। पर तु यह प्रसग हमार प्रस्तुत विषय से भिन्न ह। × ×

अनुभूति—स्त्री० [स०] दे० अनुभव और अनुभूति।
अनुरक्ति—स्त्री० [स०]=अनुराग, द० अनुराग, प्रीति प्रम और स्नेह'।

अनुराग, प्रीति, प्रेम और स्नेह

इस वग क श द ऐस हार्दिक व्यवहारा या सम्ब धा के वाचक हैं जिनक कारण हम किसी काम, बात या व्यक्ति के प्रति विशिष्ट रूप से आकृष्ट या प्रवृत्त हाते हैं और या तो उन कार्मो या बाता की सिद्धि के लिए प्रयत्नशील होते हैं या उन व्यक्तिया के साथ आत्मीयता या घनिष्टता स्थापित करना चाहते हैं।

'अनुराग' सस्कृत के 'राग' शब्द मे अनु उपसर्ग लगने से बना है। ैयक्तिक क्षेत्र मे किसी व्यक्ति के आचरण, व्यवहार आदि देखने से हमारे मन पर जो रङ्ग या रङ्गत चढती है उसे राग कहते हैं। राग हो जाने पर हमारी जो अनुकूल और मधुर मानसिक स्थिति होती है, वही अनुराग है। साराश यह कि किसी बात या व्यक्ति की ओर शुद्ध भाव से मन लगना ही उसके प्रति होनेवाला अनुराग है। इसका विपर्याय 'विराग' है। अनुराग का प्रयोग प्रायः अच्छे अर्थो मे ही होता है; जैसे—चित्रकला, संगीत या साहित्य के प्रति होनेवाला अनुराग। शृंगारिक क्षेत्र मे यह आरम्भिक या हलके प्रेम का भी सूचक होता है। व्यक्तियो के विचार से यह एक-पक्षीय भी हो सकता है, और उभय-पक्षीय या पारस्परिक भी हो सकता है। परन्तु यह आवश्यक नही है कि हमारे मन मे जिसके प्रति अनुराग हो वह भी हमसे अनुराग करता हो या करे ही। इसका दूसरा समार्थक 'अनुरक्ति' भी है।

साधारणतः अर्थ के विचार से 'प्रीति' और 'प्रेम' बहुत कुछ एक ही हैं, फिर भी प्रयोग के क्षेत्र मे इनमे कभी-कभी कुछ अन्तर भी दिखाई देता है। किसी उत्तम और सुन्दर बात या वस्तु अथवा श्रेष्ठ सत्ता के प्रति स्वाभाविक रूप से होनेवाला सात्विक झुकाव या प्रवृत्ति ही वास्तविक रूप मे प्रेम है; जैसे—ईश्वर, देश या साहित्य के प्रति होनेवाला प्रेम। परन्तु लौकिक व्यवहार मे प्रेम का प्रयोग प्रायः मोहजन्य अथवा स्वार्थमूलक भावना या व्यापार के प्रसंग में भी होता है। शृंगारिक क्षेत्र मे यह स्त्री-पुरुष के उस प्रेम का वाचक है जो साधारण अनुराग और स्नेह से बहुत कुछ आगे बढा हुआ हो। इसमे ऊपर कही हुई वासनाहीन और विशुद्ध प्रेमपूर्ण स्थिति की भी थोडी बहुत छाया या रगत होती है और व्यवहार के निर्वाह की दृढता और पुष्टता का भी कुछ भाव होता है। इस विशिष्ट अर्थ मे इसका दूसरा समार्थक 'प्रणय' भी है।

'प्रीति' का प्रयोग अधिकतर लौकिक व्यवहार मे प्रायः प्रेम के समान ही होता है। इसमें अनुराग वाले तत्त्व भी हैं और स्नेहवाले तत्त्व भी। व्युत्पत्तिक दृष्टि से प्रीति और प्रिय एक ही मूल धातु से बने हैं। प्रिय का धात्वर्थ है—जिसे देखने या पाने से मन तृप्ति और प्रसन्न होता हो। ऐसी वस्तु के प्रति हमारे मन मे जो उत्कठापूर्ण प्रवृत्ति होती है वही 'प्रीति' है। यह शृंगारिक क्षेत्र के सिवा पारिवारिक और सामाजिक क्षेत्रो में भी प्रयुक्त होता है।

'प्रेम' [पु० मं०] वस्तुत प्रीति का वह रूप है जो आपसदारी के लोगों और बराबरवालों म होता है। ऊपर प्रीति के सम्बन्ध मे शृगारिक और सामाजिक क्षेत्र की जो बातें कही गयी हैं व सभी बाते पूरा रूप से प्रेम के सम्बन्ध म भी समझी जानी चाहिए। फिर भी यह कहा जा सकता है कि 'प्रीति तो मुख्यत सामाजिक क्षेत्र का और प्रेम अधिकतर शृगारिक क्षेत्र का शब्द माना जाने लगा है। साधारणत हमारी भाषा मे प्रीति' और 'प्रेम' दोनो के स्थान पर प्राय हिन्दी का 'प्यार' और अरबी का 'मुहब्बत शब्द भी प्रयुक्त होता है।

सस्कृत म स्नेह' के कई अर्थों म से एक अथ चिकनापन या चिकनाहट और दूसरा अथ तेल भी है। चिकना और तरल पदाथ या तेल सदा नीचे की ओर ही ढलता है इसी आधार पर तात्विक दृष्टि से जो प्रीति अपने से छोटा के प्रति होती है, मुख्यत वही स्नेह है। परन्तु अब इसका प्रयोग बराबर वाला के साथ होनेवाली प्रीति के सम्बन्ध म भी अधिकता से होने लगा है। प्रस्तुत प्रसग म यह मनुष्यो के ऐसे पारस्परिक सम्बन्ध का वाचक है जिसमे दोनो ओर स सब व्यवहार बहुत ही शुद्ध, सरल और सुखद रूप म चलते रहते हो। आपसी व्यवहार मे न तो कभी कही कटुता आने पाती है और न रुखाइ। यह बहुधा हृदय की शुद्धता और स्वाथहीनता का सूचक होता है और प्राय घनिष्ट परिचय या सम्बन्ध के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। कुछ अवस्थाओ मे यह प्राकृतिक या स्वाभाविक भी हो सकता है, अर्थात् समान गुण धम विचार आदि भी इसके मूल मे हो सकतते हैं।

'अनुराग' से 'स्नेह कुछ बढा हुआ तो होता ही है, इसके सिवा इसम कुछ और भी अन्तर है। अनुराग तो मूर्त्त और अमूर्त्त दोना के प्रति हो सकता है, पर स्नेह सदा व्यक्तियो म ही होता है। × ×

अनुरूप—[वि०, क्रि० वि०] दे० 'अनुकूल अनुरूप और अनुसार'

अनुरोध और आग्रह

इन शब्दों का प्रयोग ऐसे प्रसगा मे होता है जब हम किसी से कोई काम करने या बात मानने के लिए यह समझते हुए प्राथना करते ह कि वह साधारण स्थिति मे अथवा सहसा हमारी प्राथना मानने के लिए तयार या राजी न होगा।

'अनुरोध' पुं० का शब्दार्थ है पीछे से आकर रोकना। यों सं० मे इसके और अर्थ भी हैं; जैसे—(क) किसी की इच्छा पूरी करके उसे अनुरक्त, कृतज्ञ या प्रसन्न करना। (ख) आदर, सम्मान आदि। परन्तु हिन्दी मे ये अर्थ प्रचलित नही है। पर हाँ, तुलसी ने इसका प्रयोग बाधा या रुकावट के अर्थ मे अवश्य किया है। यथा—सोधु बिन, अनुरोधु ऋतु को बोध विहित उपाउ।—तुलसी। परन्तु इस अर्थ मे भी इसका प्रयोग क्वचित ही देखने मे आता है। शब्दार्थ के विचार से यह किसी आगे बढते हुए व्यक्ति को पीछे रोक कर उससे कुछ कहने के भाव का सूचक है। परन्तु इस प्रकार कहने मे नम्रता, श्रेष्ठता और सज्जनता के तत्व भी निहित है। मुख्य रूप से यह किसी से किये जानेवाले ऐसे निवेदन या प्रार्थना का वाचक है जो हृदय से अथवा इस दृष्टि से की जाती है कि वह स्वीकृत होनी ही चाहिए। इसी लिए कहा जाता है कि (क) हमारा अनुरोध है कि कल आप हमारे यहाँ आने की कृपा करे अथवा (ख) मैं तो आपके अनुरोध पर ही वहाँ गया था; अन्यथा मेरी इच्छा वहा जाने की नही थी। (ग) राज्यपाल ने मुख्यमत्री से अनुरोध किया है कि वे नया मत्रि-मंडल बनने तक राज्य का काम चलाते रहे। इस दृष्टि से हम इसे आज्ञा और प्रार्थना के मध्यवर्ती भाव का सूचक शब्द मान सकते हैं।

'आग्रह' [पु० स०] का मूल अर्थ है अच्छी तरह ग्रहण करना या पकड़ना। इसके सिवाय स० मे इसके और भी कुछ अर्थ हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे यह मूलत: किसी व्यक्ति का हाथ पकडकर उसे बैठाने या रोकने के भाव का सूचक है। इसी लिए इसमे सामान्य बल-प्रयोग और हठ के तत्व भी सम्मिलित है। हिन्दी मे यह मुख्यत: ऐसे अनुरोध का वाचक है जिस पर बहुत जोर दिया गया हो इसी लिए इसे हम जिद या हठ का बहुत हलका रूप भी कह सकते हैं। जब हम कहते हैं, 'हमारा आग्रह है कि आप उसे कुछ रुपये अवश्य दे दें' तब हम रुपये देने के लिए अनुरोध तो करते ही है—पर उस अनुरोध मे बहुत कुछ जोर या हल्के दबाव का भी भाव आ जाता है। कुछ अवस्थाओ मे हम यह भी कहते हैं—हमारा आप से साग्रह अनुरोध है। ऐसी अवस्थाओ मे आशय यही होता है कि हमारा अनुरोध साधारण नही बल्कि जोरदार है। कुछ अवस्थाओ मे यह दृढ निश्चय या पूरी तत्परता का भाव भी सूचित करता है; यथा—राक्षस बडे आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्ट साधन मे प्रवृत्त हुआ।—भारतेन्दु कृत मुद्रा राक्षस। × ×

अनुलोम और विलोम

इस वर्ग के शब्द कुछ निश्चित क्रम या नियम से होनेवाले कुछ विशिष्ट कामों या बातों के रूप के वाचक हैं।

'अनुलोम (पु० स०) का प्राथमिक अर्थ है—शरीर पर निकलनेवाले लोमों अर्थात् बालों या रोओं का ठीक और प्राकृतिक क्रम। इसी से आगे चलकर इसका अर्थ होता है—ठीक वैसा ही जैसा रोओं के उगने का क्रम होता है, अर्थात् नियत, निश्चित या स्वाभाविक क्रम प्रकार अथवा रूप। आगे चलकर यह आरम्भ से अन्त की ओर अथवा ऊँचे या बड़े से नीचे या छोटे की ओर चलनेवाला क्रम, परन्तु इससे भी ठीक विवक्षा यह है कि जो क्रम किसी मान्य पद्धति या शास्त्र में निरूपित हो ठीक वही क्रम। सगीत में सातों स्वरों का आरम्भ षड्ज से चलकर निषाद तक समाप्त होता है। यह बात दूसरी है कि ये स्वर क्रमश ऊँचे और तेज होते जाते हैं, पर इनका क्रम षड्ज ऋषभ गांधार आदि के रूप में नियत है। इसी लिए यह क्रम *अनुलोम* कहा जाता है। घड़ी में भी पहले एक बजता है पर तु क्रमश आगे बढ़ते बढ़ते वह बारह तक पहुँचता है, पर तु शास्त्रों में वर्णों का क्रम ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बतलाया गया है और यही पूर्व निश्चित क्रम अनुलोम कहा गया है। ब्राह्मणों को अपने वर्ण की कन्या के अतिरिक्त शेष तीनों वर्णों की कन्या से विवाह करना विहित कहा गया है। इस लिए यदि ब्राह्मण किसी क्षत्रिय या वैश्य की कन्या से अथवा क्षत्रिय किसी वैश्य या शूद्र की कन्या से विवाह करे तो वह अनुलोम विवाह कहा जायगा।

'विलोम' इसी अनुलोम का विपर्याय है, ऊपर अनुलोम के जो क्रम बतलाए गए हैं उनके उलटे या विपरीत क्रम ही विलोम कहलाते हैं। यदि घड़ी की सूई बारह से खींचकर पीछे ग्यारह या दस की ओर लाई जाय तो क्रम विलोम कहा जायगा। इसी प्रकार यदि वैश्य किसी क्षत्रिय या ब्राह्मण की कन्या से विवाह करे तो वह विलोम विवाह कहा जायगा। × ×

अनुवर्तन—पु० [स०] दे० 'अनुकरण अनुगमन अनुवर्तन और अनुसरण।

अनुविधान—पु० [स०] दे० 'विधा विधान प्रविधान और सविधान।

अनुवृत्ति—स्त्री० [स०] दे० 'पारितोषिक पारिश्रमिक, पुरस्कार, आनुतोषिक और अनुवृत्ति।

अनुवेतन—पु० [सं०] दे० 'पारितोपिक, पारिश्रमिक, पुरस्कार, आनुतोपिक और अनुवृत्ति' के अन्तर्गत 'अनुवृत्ति'।

अनुशसा—स्त्री० [स०] दे० 'आशंसा, अनुशसा, अभिशसा और प्रशसा'।

अनुशासन—पु० [स०] दे० 'शासन प्रशासन और अनुशासन'।

अनुसधान—पु० [सं०] दे० 'खोज, अनुसधान, अन्वेषण और शोध'।

अनुसरण—पु० [सं०] दे० 'अनुकरण, अनुगमन, अनुवर्तन और अनुसरण।

अनुसार—क्रि० वि० [सं०] दे० 'अनुकूल, अनुरूप और अनुसार।

अनुसारी—वि० दे० 'अनुकरण, अनुगमन और अनुसरण' के अन्तर्गत अनुसरण'।

अनूठा, अनोखा और निराला

इस वर्ग के शब्द ऐसे कामो, चीजो, बातो आदि के विशेषण है, जो साधारण से भिन्न होने के सिवा किसी प्रकार की विलक्षण नवीनता से भी युक्त होते हैं और इसी लिए लोगो का ध्यान आकृष्ट करते हैं। 'अनूठा' सं० अनुच्छिष्ट से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—जिसे किसी ने जूठा न किया हो। इस प्रसग मे इसका आशय यह है कि जिसकी ओर अभी तक ध्यान न गया हो अथवा जिसे किसी ने छूआ न हो। जो अपने वर्ग या जाति के और सब पदार्थों, व्यक्तियो आदि की तुलना मे कोई ऐसा नयापन या विशेपता रखता हो जो हमे चकित करने के साथ ही प्रसन्न भी कर सके उसे अनूठा कहते हैं। इसमे कुछ नई तरह की आकर्षक विचित्रता और सुन्दरता का भाव मुख्य है। अनूठा सदा उत्कृष्ट होता है; जैसे—अनूठा रूप या अनूठी उक्ति अपने वर्ग मे सबसे अलग भी होती है, बढकर भी और आनन्दप्रद भी।

'अनोखा' संभवतः सस्कृत के अनवीक्ष्य से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—जैसा पहले कभी देखा न गया हो। यह अपने साधारण रूप से भिन्न होने पर भी प्राय: अभीष्ट और प्रिय रूपवाला होता है, जैसे—अनोखी अदा। परन्तु कुछ अवस्थाओं मे इसमे किसी प्रकार की उग्रता, तीव्रता आदि की भी कुछ छाया दिखाई पड़ती है जो मन मे कुछ खटक भी उत्पन्न करती हैं और कुछ व्यंग्य भी; जैसे—आप ही सबसे अनोखे हैं जो सभी अच्छी-अच्छी चीजे ले जाएँगे और दूसरे लोग मुँह ताकते रह जाएँगे। कविताओं,

गीता आदि म जो 'अनोखे लला' सरीखे पद आते हैं वे इसी भाव के सूचक होते है।

निराला' स० निरालय से त्पुत्पन्न है जिसका अर्थ है एकात स्थान या ऐसी जगह जहाँ कोई न हो। परन्तु व्यवहार मे निराला एसी वात, वस्तु या व्यक्ति का सूचक होता है जो अपनी बनावट रूप विशिष्टताओ आदि के कारण सबसे अलग तरह का हो और जिसम कुछ बढा चढा अनूठापन हो, जैसे—निराली छटा, अर्थात् ऐसी छटा या शोभा जो पहल कभी देखी न गई हो या किसी अन्य स्थान पर दिखाई न पडती हो। यह उत्कृष्टता श्रेष्ठता आदि का सूचक है और इसम आश्रय के सिवा आदर और प्रशसा का भाव भी सम्मिलित है। × ×

अनोखा—वि० [हि०] द० 'अनूठा, अनोखा और निराला'।

अन्वेषण—पु ० [स०] दे० खोज, अनुसधान अन्वेषण और शोध'

अप्रज्ञेय—वि० [स०] दे० 'प्रज्ञा और प्रतिभा के अतर्गत प्रज्ञा।

अपस्थिति—स्त्री० [स०] दे० 'आपात, आपातिक स्थिति और अपस्थिति' (या विस्थति)।

अपेक्षा और आवश्यकता

Requirement 1 Necessity, 2 Need

ये शब्द किसी काम या वात की उस स्थिति क वाचक हैं, जिसम अभी कोई ऐसा अधूरापन या कमी हो जिसे पूरा किये विना वह काम या वात ठीक और पूरी न हो सकती हो। यदि एसा अधूरापन या कमी पूरी न की जाए तो वह काम या बात या तो अपूर्ण मानी जाती है या दपपूर्ण।

'अपेक्षा [स्त्री० म०] म 'अप का अथ है अभाव या कमी, और ईक्ष परन्तु का अथ है देखना। इस प्रकार 'अपना का मूल अथ है—ऐसी चीज ढूढने या पाने के लिए इधर उधर देखना जिसका अभाव या कमी प्रतीत हो रही हो। प्रस्तुत प्रसग म 'अपेक्षा' वह स्थिति है जिसकी पूर्ति स काय की उपयोगिता या महत्त्व बहुत कुछ बढ जाता है और वह अपने उचित तथा मानक रूप तक पहुँच जाता है। फिर भी यदि यह कमी पूरी न हो तो भी काम जैसे-तसे चल सकता है, जैसे—यो तो यह पुस्तक और सब तरह म अच्छी है फिर भी इसमे प्रतिपादित विषय को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरणों और

प्रमाणों की अपेक्षा है। हिंदी मे कही-कही इसके स्थान पर फा० का 'दरकार' शब्द भी चलता है।

'आवश्यकता' वस्तुतः 'अपेक्षा' की तुलना मे बहुत आगे बढी हुई स्थिति का वाचक है। यह सस्कृत के 'आवश्यक' विशेपण का भाववाचक संज्ञा रूप है। यह ऐसी अवस्था का सूचक है जिसमे किसी खास चीज या वात के विना किसी तरह काम चल ही न सकता हो। प्राणी मात्र को अपने जीवन-निर्वाह के लिए खाद्य-पदार्थ, जल और वायु की आवश्यकता होती है। आशय यह होता है कि इन चीजो के विना उसका काम किसी तरह चल ही नही सकता—वह किसी प्रकार जीवित रह ही नहीं सकता। परन्तु हमारे भोजन मे चीनी, नमक आदि की अपेक्षा ही होती है क्योकि इसके विना भी हमारा काम चल तो सकता है भले ही इसके विना भोजन पौष्टिक या स्वादिष्ट न हो सकता हो। वस्त्रो मे टिकाऊपन भी अपेक्षित होता है और सुन्दरता भी। पर वस्त्र वनाने के लिए ऊन, रूई, रेशम आदि की आवश्यकता होती है क्योकि इन चीजो के विना वस्त्र किसी तरह वन ही नही सकते। हिन्दी मे इनके स्थान पर अरबी का 'जरूरत' शब्द भी चलता है। × ×

अफसोस—पुं० [फा०]=खेद; दे० 'दुःख, खेद, विपाद और शोक।'

अभिकलन—पु० [स०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन'।

अभिक्षेप—पुं० [स०] दे० 'आक्षेप, अभिक्षेप, भर्त्सना'।

अभिभाषण—पुं [स०] दे० 'प्रवचन, भापण, वक्तृता और व्याख्यान।'

अभिमान, गर्व, घमंड और शेखी

Pride Pride Pride Vainglory

इस वर्ग के शब्द व्यक्तियो की ऐसी मानसिक स्थिति के सूचक है जिसमे वह अपने आपको प्रभुत्व, योग्यता, शक्ति आदि के विचार से औरो की तुलना मे वडा या श्रेष्ठ समझता है; और अपना यह वडप्पन समय समय पर अपने आचार-व्यवहार अथवा वात-चीत मे प्रदर्शित करता रहता है।

'अभिमान' सस्कृत 'मान मे 'अभि' उपसर्ग लगने से वना है; 'अभि' का अर्थ है—चारो ओर, और 'मान' का यहाँ अर्थ है—इज्जत

इस प्रकार इसमें मुख्य भाव ग्रौरो ग्रौर ग्रर्थात् सब जगह प्रतिष्ठा या सम्मान प्राप्त करनेवाली उत्कट ग्रभिलाषा का भाव प्रधान है। जब मनुष्य यह समझने लगता है कि मुझमे औरों की अपेक्षा अधिक गुण, बल बुद्धि या विद्या है और इसके फलस्वरूप सब जगह मेरा मान या प्रतिष्ठा होनी चाहिए तब उसके मन में उत्पन्न होनेवाली ऐसी धारणा या भावना ही ग्रभिमान कहलाती है। इसके कारण मनुष्य ग्रपने ग्रापको ग्रौरो से बडा ग्रौर दूसरो को ग्रपने से छोटा या हीन समझने लगता है। यह साधारणत दो प्रकार का होता है—सद् ग्रौर ग्रसद् ग्रथवा उचित ग्रौर ग्रनुचित। यह मनुष्य में रहनेवाले ग्रह का विकसित रूप है। यो हर योग्य ग्रौर समझदार व्यक्तियो को सदा ग्रपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रहता भी है ग्रौर रखना भी पडता है। वह न तो स्वयम कोई ऐसा काम या बात करना चाहता है जिससे उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचे, ग्रौर न वह यही चाहता है कि दूसरे लोग कोई ऐसा काम या बात करें जो उसकी प्रतिष्ठा या सम्मान को हानि पहुँचानेवाला हो। इस सीमा तक ग्रभिमान उचित ग्रौर सद् ही होता है। यथा— ग्रस ग्रभिमान जाइ जनि भोरें। मैं सेवक रघुपति पति मोरे। —(तुलसी) यहाँ तक तो ग्रावश्यक भी होता है ग्रौर प्रशसनीय भी। किसी प्रकार की प्रतिष्ठा या सम्मान प्राप्ति भी मनुष्य मे इस प्रकार का ग्रभिमान उत्पन्न करती है, जैसे—'जो एक समय मेरे जीवन के एकमात्र ग्राभूषण थे, जिन पर मुझे ग्रभिमान था उनको नष्ट होते देखकर मेरी ग्राँखो म ग्राँसू निकल पडते हैं। (रघुबीर सिंह) पर ग्रौचित्य की इस सीमा से ग्रागे बढने पर वह ग्रवस्था ग्राती है, जिसमे ग्रपनी प्रतिष्ठा या मान के सामने दूसरो की प्रतिष्ठा या मान तुच्छ जँचने लगता है। इसम मनुष्य साधारणत ग्रपनी ही प्रतिष्ठा या बडप्पन के ध्यान म लीन रहता है ग्रौरो की प्रतिष्ठा या बडप्पन उसे जल्दी दिखाई ही नही देता ग्रथवा वह उनकी ग्रोर ध्यान देने की ग्रावश्यकता ही नही समझता। ऐसी ग्रवस्था म यह ग्रभिमान मनुष्य की नैतिक दुर्बलता ग्रौर मानसिक तुच्छता का सूचक होता ग्रौर समाज मे निंदनीय माना जाता है। इस प्रकार के ग्रभिमान के फेर म पडकर मनुष्य ग्रपनी विद्या बुद्धि या शक्ति का महत्व बहुत ग्रधिक समझकर दूसरों को तिरस्कार या उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है। ऐसा मनुष्य बडो तथा बराबरवालो के सामने उद्दड तथा उद्धत हो जाता है ग्रौर छोटो को घृणा या उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है जैसे—(क) ग्रभिमानी व्यक्ति प्राय मुँह की खाता है। (महादेवी) ग्रथवा (ख) ग्रभिमानी का सिर सदा नीचा होता है।

'गर्व' (स०) भी है तो वहुत कुछ वही जो अभिमान है फिर भी लोक-व्यवहार मे हम दोनो मे कुछ सूक्ष्म अन्तर देखने मे आता है। अभिमान तो सद् और असद् दोनो प्रकार का होता है परन्तु गर्व प्राय॰ सद् अभिमान का ही वाचक माना जाता है। हम यह तो कह सकते है—मैं गर्वपूर्वक समाज मे सिर ऊँचा करके खडा हो सकता हू। पर यह नही कह सकते—मैं अभिमानपूर्वक सिर ऊँचा करके खडा हो सकता हूँ।' कारण यही है कि गर्व की अपेक्षा अभिमान लोक मे अधिक बुरा समझा जाता है। कदाचित् इसी विचार से साहित्य मे भी एक सचारी भाव अभिमान नही, वल्कि गर्व माना गया है और इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है—इसमे मनुष्य अपने किसी गुण या विशेषता के कारण अपने आप को दूसरो से वढा-चढा समझता है और अपने आचार तथा व्यवहार से अपनी श्रेष्ठता प्रकट करता है।

'घमंड' इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है। यह अभिमान का वह निन्दनीय और निकृष्ट रूप है जिसकी ऊपर 'अभिमान' के अन्तर्गत चर्चा की गई है। इसमे मनुष्य साधरणत: अपनी ही प्रतिष्ठा, वडप्पन, योग्यता, शक्ति आदि के ध्यान मे इतना चूर रहता है कि उसे दूसरो के इस प्रकार के गुण या तो दिखाई ही नही देते और यदि दिखाई देते भी है तो भी अपने गुणों की तुलना मे उसे दूसरो के ये गुण उपेक्ष्य, तुच्छ या नगण्य जान पडते हैं। यह मनुष्य की नैतिक दुर्वलता और मानसिक तुच्छता का सूचक होता है और इसी लिए समाज मे ऐसा व्यक्ति बहुत ही हीन दृष्टि से देखा जाता है। इसके साथ प्राय: चूर होना, टूटना, तोडना आदि क्रियाओ का प्रयोग होता है। इसके कुछ आगे वढकर यह उस स्थिति का भी सूचक होता है जिसमें कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पृष्ठ-पोपण, समर्थन या सहायता के वल पर दूसरो को अपने सामने महत्वहीन समझता है। इसी लिए कहा जाता है—हम जानते हैं कि तुम अपने वडे भाई के घमड पर ही इतना कूदते हो। आशय यह होता है कि तुम्हारे मन मे यह विश्वास है कि यदि तुम पर कोई विपत्ति या संकट आएगा तब तुम्हारे भाई आडे आकर तुम्हारी सहायता करेगे। उर्दू वालो की देखा देखी हिन्दी मे इसके स्थान पर कभी कभी 'गरूर' का भी प्रयोग देखने मे आता है।

'शेखी' उस 'शेख' से वना है जिसका पहला अर्थ है—पूज्य और सम्मानित वृद्ध व्यक्ति। इसका दूसरा या परवर्ती अर्थ 'दल का नायक या सरदार' भी होता है। मध्य युग मे अरव के वडे-वड़े कवीलो के सरदार शेख

ही कहलाते थे। उनमे प्राय अतिरिक्त अभिमान या घमड भी यथेष्ट मात्रा में होता था, इसी लिए 'शेखी' भी बहुत कुछ वही है जो 'घमड' है। फिर भी हम कह सकते हैं कि अभिमान से शेखी' कुछ बातो म और आग बढी हुई है। यह प्राय थोथी भी होती है और आचार व्यवहार अथवा बात चीत म इसका प्रदर्शन भी उचित अनुचित सभी अवसरा पर आवश्यकता से अधिक होता है। इसमे प्राय किये हुए साधारण कामो का भी बहुत बढ-चढकर बखान होता ह और यह भी सूचित किया जाता ह कि हम ऐसे बडे बडे काम कर सकते हैं। इसके साथ प्राय दिखाना बघारना, हाँकना आदि क्रियाओ का प्रयोग होता ह। × ×

अभियान, **आक्रमण,**
Expedition, 1 Attack, 2 Assult, Onset

धावा लाम, और लामबन्दी
Mobilisation

इस वग के शब्द हैं तो मुख्यत सनिक क्षेत्र के और शत्रु को दबाने के लिए आगे बढने के वाचक, परन्तु इनके साथ कुछ और विवक्षाए भी लग गई हैं।

'अभियान' [पु० स०] का पहला अथ है कही या किसी तक पहुँचने के लिये आगे बढना या चढना। पर तु आगे चलकर यह शब्द सेनाओ की उस यात्रा का वाचक हो गया जो शत्रु को दबान या उससे लडने के लिए की जाती है। इस प्रकार इसका अथ हुआ—शत्रु स लडन के लिए आगे बढना। इसके स्थान पर हिन्दी की 'चढाइ और उदू 'हमला (अ० हम्ल) शब्द का भी प्रयोग होता है। (दे०— चढाई, चढान चढाव और चढावा) इसके अतिरिक्त आज कल इसका प्रयोग एक और विकसित अथ म होने लगा है। जब कुछ लोग कोई बहुत बडा उद्देश्य सिद्ध करन के लिए दल-बल सहित और सघटित रूप मे काय क्षेत्र म उतरते हैं और पूरी तरह से प्रयत्न करना आरम्भ करते हैं, तब उस भी 'अभियान कहते हैं, जस— किसी रोग के उन्मूलन या किसी निधि के लिए धन सग्रह अथवा निर्यात बढाने का अभियान आरम्भ करना। इसके अतिरिक्त किसी बात का पता

लगाने या वल-विक्रम दिखलाने के लिए वडी-वड़ी कठिनाइयो को पार करते हुए दल-वल सहित कही जाना भी 'अभियान' कहलाता है; जैसे—(क) उत्तरी ध्रुव का होनेवाला अभियान; और (ख) हिमालय की किसी चोटी पर चढने के लिए पर्वतारोहियो का अभियान आदि।

'आक्रमरण' [पु० स०] का भी पहला अर्थ किसी के पास तक पहुँचने के लिए आगे वढना ही है। आगे चलकर इसमे अपनी सीमा पार करके दूसरे की सीमा मे पहुँचने का भाव भी सम्मिलित हो गया। अभियान मे तो मूलतः आगे वढने का भाव ही प्रधान है। परन्तु आक्रमरण मे किसी को दवाने और हानि पहुँचाने का भाव प्रधान है। अपने आधुनिक प्रचलित अर्थ मे यह शब्द शत्रु पर की जानेवाली सैनिक चढाई का ही वाचक है*। परन्तु कुछ अवस्थाओ मे इसका रूप सामूहिक से वैयक्तिक भी हो जाता है। एक देश की सेना तो दूसरे देश या उसकी सेना पर आक्रमरण (चढ़ाई या हमला) करती ही है, परन्तु एक व्यक्ति भी किसी दूसरे व्यक्ति को मारने-पीटने या या शारीरिक कष्ट पहुँचाने के लिए उस पर आक्रमरण या हमला करता है; और व्यक्तियों के छोटे-मोटे दल किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो के दल पर आक्रमरण करते हैं। इससे और आगे वढने पर व्यावहारिक क्षेत्रो मे भी लाक्षणिक रूप मे इसका प्रयोग होता है। हम किसी के मत या विचार का खण्डन अथवा विरोध करने के लिए यदि कुछ कटु उक्तियो का प्रयोग करते है, तव हमारा ऐसा करना इस लिए 'आक्रमरण' कहलाता है कि हम जिसका खण्डन या विरोध करते हैं, उसकी प्रतिष्ठा या सम्मान को हानि पहुँचाना चाहते हैं, और उसे दूसरो की दृष्टि मे तुच्छ या हीन सिद्ध करना चाहते हैं। इसी आधार पर कहा जाता है—आज-कल सरकार की खाद्य नीति पर चारो ओर से वहुत आक्रमरण या हमले हो रहे हैं। अन्तिम दोनो अर्थो मे 'आक्रमरण' की जगह 'चढाई' का प्रयोग इस लिए नही होता कि इसमे लोग चढ़कर अर्थात् कुछ दूर चलकर नही जाते, वल्कि जहाँ रहते हैं वही से वह क्रिया करते हैं, जिसका अन्तरभाव आक्रमरण मे होता है।

---

* आक्रमरण के सम्वन्ध मे ध्यान रखने की एक विशेष वात यह है कि विधिक क्षेत्र मे तो काम चलाने भर के लिए इसकी व्याख्या कर दी गयी है, परन्तु राजनीतिक और सामरिक दृष्टियो से अभी तक इसकी कोई ठीक और पूरी व्याख्या नही हो पायी है।

'धावा [पु० स० धावन, हि० धाना=बहुत जल्दी जल्दी आगे बढना या दौडना] अपने मूल अर्थ मे बहुत तेजी से आगे बढने या दौडते हुए कहीं जाने की क्रिया और भाव का सूचक है। इस अर्थ म इसके साथ बहुधा 'मारना' क्रिया का प्रयोग होता हैं, जसे—अभी तो मैं चार कोस का धावा मारकर यहाँ पहुँचा हू।

इससे और आगे बढने पर यह शत्रु पर किये जानेवाले आक्रमण या चढाई का भी वाचक हो गया है। इस अर्थ मे इसके साथ प्राय बोलना क्रिया का प्रयोग होता है। शत्रु पर धावा बोलने का अर्थ होता है—आक्रमण या चढाई करने के लिए तेजी से आगे बढना। आक्रमण की तरह कुछ अवस्थाओ मे लाक्षणिक रूप म भी इसका प्रयोग होता हैं, जसे—सभी विरोधी पक्षो ने मिलकर सरकारी पक्ष का विरोध करने के लिए उस पर धावा बोल दिया। आशय यही होता हू कि सबने सरकार की तीव्र निन्दा और बौछारें करना आरम्भ कर दिया।

'लाम [स्त्री० अ०] का अर्थ हैं—युद्ध के समय पहना जानेवाला कवच या जिरह। कदाचित इसी आधार पर यह सेना और सैनिक आक्रमण या चढाई का भी वाचक हो गया है। किसी देश पर सैनिक चढाई करने के लिए सैनिको को तयार करन और अस्त्र शस्त्र से सज्जित करन की क्रिया इसी लिए 'लामबन्दी कहलाती है। लाम पर जाने का अर्थ होता है—सैनिक अभियान मे सम्मिलित होकर युद्ध क्षेत्र तक पहुँचना। साधारण बोल चाल म लाम का एक अर्थ इस लिए कतार या पक्ति भी हो गया है कि सैनिको की टुकडिया कतार बाँधकर और पक्ति के रूप मे आगे बढती हैं। इसी आधार पर हिन्दी म 'लाम लगाना' मुहावरा भी बन गया है जिसका अर्थ होता है—निरन्तर एक के बाद एक उपस्थित करना या रखना। लोग कहते हैं—तुमने तो चीजो (या बातो) की लाम लगा दी है। × ×

अभिलाषा—स्त्री [स०] दे० 'इच्छा कामना, अभिलाषा आकाक्षा, और स्पृहा।

अभिशसा—स्त्री० [स०] दे० आशसा अनुशसा अभिशसा और प्रशसा।

अभी

हिन्दी का यह शब्द देखने म है तो बहुत ही छोटा निरीह और साधारण और इसका व्यवहार नित्य सभी लोग दिन मे बीसों-पचीसों बार करते हैं।

यह 'अब' और 'ही' के योग से बना है, और इसका सीधा-सादा अर्थ है—इसी समय । इसी आधार पर 'हिन्दी शब्दसागर' मे इसका अर्थ दिया गया है—इसी क्षण, इसी समय, इसी वक्त; जैसे—अभी पत्र लिखो । अर्थात् इसी क्षण या तत्काल पत्र लिखो, कुछ भी विलव मत करो । यह केवल वर्तमान काल से सम्बन्ध रखनेवाला एक ही अर्थ है जो तीन भिन्न-भिन्न रूपो मे दिया गया है । साधारणत. इस शब्द का यही अर्थ अलम् समझा जायगा । पर क्या सचमुच 'अभी' का इसके सिवा और कोई अर्थ नही होता ? मुझे तो इसके अनेक ऐसे अर्थ तथा प्रयोग मिले हैं जो वर्तमान काल के सिवा भूत-कालिक और भविष्यत्कालिक प्रसगो से भी सम्बन्ध रखते है और इसी लिए जो शब्दसागर के उक्त अर्थ की व्याप्ति के बाहर दिखाई देते हैं । आइये, जरा वे अर्थ और प्रयोग देखिये । पहले वर्तमान-कालिक प्रसग ही लीजिए । हम कहते हैं—अभी बारह बजे हैं, अभी बैठे रहो अथवा अभी जल्दी मत करो । स्पष्ट है कि इन प्रयोगो मे 'अभी' का अर्थ इसी समय नही है, बल्कि 'इस समय' या 'प्रस्तुत समय मे' है । शब्दसागर मे दिये हुए उक्त अर्थ के 'इसी' मे जो जोर है, वह हमारे दूसरे अर्थ के 'इस' मे नही रह गया है । ऐसे अवसरो पर 'अभी' मे प्रस्तुत के कुछ पूर्ववर्ती क्षणो का भी और कुछ परवर्ती क्षणो का भी अतर्भाव हो जाता है । यह तो बहुत ही साधारण अन्तर हुआ । पर इसके सिवा 'अभी' के अनेक ऐसे प्रयोग भी होते हैं, जिनमे अर्थ के विचार से बहुत अधिक अन्तर हैं । उदाहरणार्थ अभी तो वही पुराना नियम चल रहा है, आदि । इन प्रयोगो मे 'अभी' के ऊपरवाले दोनो अर्थो मे से कोई अर्थ ठीक नही घटता, बल्कि ऐसे अवसरो पर इसका अर्थ होता है—प्रस्तुत या वर्तमान दिनो मे, अर्थात् आज-कल या इन दिनो । साराश यह कि उक्त तीनो प्रयोगो मे 'अभी' से सूचित होनेवाले काल का मान या व्याप्ति पहले तो एक क्षण से बढ़कर दस-पाँच या दस-बीस क्षणो तक पहुँची है और तब इससे भी आगे बढ़कर उसमे महीनो क्या, बल्कि वर्षो तक को अपनी लपेट मे ले लिया है । अब भूतकालिक प्रसगो मे 'अभी' के प्रयोग देखिए । हम कहते हैं—अभी वह सोकर उठा ही था कि उसके कुछ मित्र आ पहुँचे । यहाँ 'अभी' प्रस्तुत या वर्तमान काल से नही, बल्कि भूतकाल से सम्बन्ध रखता है और वह किसी विगत काल-मान या उसके किसी उद्दिष्ट अ श की ओर सकेत करता हुआ प्राय: 'उस समय' का अर्थ सूचित करता है ।

इससे और आगे बढने पर हमें 'अभी' के कुछ ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जो भविष्यत्काल से सम्बन्ध रखते हैं । हम कहते हैं—वे अभी महीनों यहाँ

ठहरेंगे अथवा अभी इस काम मे दो महीने और लगेंगे। ऐसे प्रसगो मे इसका अथ होता है—इस समय से लेकर अथवा अब से आगे। यदि तार्किक दृष्टि से यह अथ न भी हो, तो भी इसी से कुछ मिलता जुलता अथ तो अवश्य होता है जो मुख्यत किसी भावी अवधि स सम्बन्ध रखता है।

इसके सिवा 'अभी का प्रयोग किसी भावी समय के सम्बन्ध मे केवल जोर दने के लिए भी होता है, जैसे—अभी परसो वे फिर आने को हैं, अथवा ग्रहण तो अभी माघ म लगेगा। उक्त उदाहरणो मे 'अभी' का प्रयोग क्रमात् परसा और 'माघ पर जोर देने के लिए ही हुआ है कोई विशिष्ट अथ सूचित करने के लिए नही। यही बात इस प्रकार के भूतकालिक प्रयोगो म भी दिखाई देती है, जैसे—(क) अभी कल तक तो वे यही थे। (ख) अभी पिछले सप्ताह ही तो तुमने सौ रुपए लिये थे।

मेरा नम्र निवेदन है कि हिन्दी की वतमान मर्यादापूण स्थिति का ध्यान रखते हुए हिन्दी वालो और विशेषत भावी कोशकारो को शब्दो के अर्थो का विचार या विवेचन करते समय इस प्रकार के सूक्ष्म अन्तरो पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

× ×

अर्थ, आशय, ध्वनि और विवक्षा

Meaning, Sense, Implication

ये शब्द ऐसी चीजो, बातो विचारो आदि के वाचक हैं, जो किसी समाज में प्रचलित पदो, वाक्यों शब्दो आदि के तात्पय का बोध उस समाज के दूसरे लोगो को कराते हैं। 'अथ' इस वग का सबसे अधिक प्रचलित और व्यापक भावोवाला शब्द है। यों तो अनेक प्रकार की क्रियाओ, चिह्नों मुख मुद्राओ आदि के भी कुछ न कुछ अथ होते हैं, परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे अथ का सम्बन्ध किसी भाषा के वाक्यो, शब्दों आदि तक ही परिमित है। हमारे काम के लिए अथ वह तत्व है जो किसी उच्चरित अथवा लिखित वाक्य का अभिप्राय सूचित करता है, जैसे—(क) शब्दकोशो म सभी प्रकार के शब्दों के अर्थ दिये रहते हैं, (ख) गीता के इस सस्करण म मूल श्लोकों के अतिरिक्त उनके अथ भी दिये हैं, और (ग) उनकी भाषा इतनी जटिल और सस्कृत बहुल होती है कि साधारण लोग उनकी बातो का पूरा पूरा अथ नही समझ पाते। हिन्दी में इसके स्थान पर उदू का 'माने' (अ० मअ्ना) भी प्रचलित है जिसका प्रयोग सदा बहुवचन मे होता है।

'आशय' शब्द हिन्दी मे दो मुख्य अर्थों मे प्रचलित है। पहला अर्थ है—वह उद्देश्य या लक्ष्य जिसे ध्यान में रखकर कोई बात कही जाती है, जैसे—मेरा आशय यह नही था कि तुम उनसे झगड़ा कर बैठो। इसका दूसरा अर्थ किसी विस्तृत कथन का वह सारांशिक रूप है जो संक्षिप्त और सुबोध रूप मे दूसरो को समझाने के लिए प्रस्तुत किया जाता हैं; जैसे—इन सब बातो का आशय यही है कि मनुष्य को सदा सत्य और सदाचार का आचरण (अथवा पालन) करना चाहिए। अरबी का 'मतलब' शब्द भी इसके समार्थक के रूप मे उक्त दोनो अर्थों मे प्रयुक्त होता है।

यो तो संस्कृत मे 'ध्वनि' के अनेक अर्थ हैं, परन्तु हिन्दी में इसका प्रयोग दो क्षेत्रो मे अलग-अलग अर्थों मे होता। एक ध्वनि तो वह है जो कंठ से उच्चरित होती है, अथवा ठोस पदार्थों पर किसी प्रकार का आघात लगने से उत्पन्न होती और कानो से सुनाई पड़ती हैं। ध्वनि के इस रूप का वर्णन पुस्तक के पहले प्रकरण 'शब्द और अर्थ' में अर्थ के प्रसग मे तथा उसके 'ध्वनि विज्ञान' शीर्षक के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक किया जा चुका है। प्रस्तुत प्रसग मे ध्वनि विशेषतः काव्य-शास्त्र और साहित्य का पारिभाषिक शब्द है और एक विशिष्ट प्रकार के अर्थ या आशय का सूचक है। हमारे साहित्य-शास्त्र के अनुसार ध्वनि की उत्पत्ति शब्दो की व्यंजना-शक्ति से होती है। इसी लिए ध्वनि को व्यंग्यार्थ भी कहा गया है। इसे काव्य की आत्मा या सर्वश्रेष्ठ गुण माना गया हैं और यह रस के परिपाक मे सबसे अधिक सहायक होती हैं। इसका मूल आधार किसी प्रकार का कटाक्ष, वक्रता या व्यंग्य होता है। 'ध्वनि वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ शब्दों के अभिधार्थ तो गौण रह जाते हैं, और व्यंग्यार्थ बहुत ही चमत्कारपूर्ण तथा नवीन रूप मे सामने आता और समझदारो के मन मे एक विशेष प्रकार के आनन्द का उद्रेक करता है। साधारणतः ध्वनि सदा सब लोगो की समझ से आनेवाली चीज नही है। यथेष्ट परिष्कृत और संस्कृत बुद्धिवाले सहृदय लोग ही उसे समझ पाते है। बौद्धिक दृष्टि मे निम्न स्तर पर रहनेवाले लोग सदा उस तक नही पहुँच पाते।

कुछ अवस्थाओ में तो लेखक या वक्ता अपनी रचना या कथन को ऐसा रूप देता है कि उससे एक विशिष्ट प्रकार की ध्वनि निकलती है। उदाहरण के लिए यह कहानी लीजिए। एक सज्जन का किसी बात पर उनके पड़ोसी से कुछ झगड़ा हो गया। उन सज्जन ने बहुत ही धीरे से और नम्रतापूर्वक कहा—मैं तो आपको भला आदमी समझता था। पडोसी ने बहुत बिगडकर और तीखे स्वर मे कहा—मैं भी आपको भला आदमी समझता था। इस पर पहले

राजन ने फिर उसी प्रकार नम्रतापूर्वक कहा—भूल मुझसे ही हुई थी। इस छोटे से वाक्य से ध्वनि यह निकलती थी कि आप वस्तुतः भले आदमी नहीं हैं। आपको भला आदमी समझकर मैंने भूल की।

कुछ अवस्थाओं में बिलकुल सहज भाव से कही हुई बात से भी कोई विलक्षण ध्वनि निकल पडती है। पचीसों वर्ष पहले की बात है। महामना प० मदन मोहन मालवीय केन्द्रीय विधान सभा में अछूतों के उद्धार की चर्चा कर रहे थे। एक मुसलमान सदस्य ने बात काट कर पूछा—क्या आप भी अछूतों से मिलते हैं? मालवीय जी ने बहुत ही सहज भाव से उत्तर दिया—मैं अछूतों से भी उसी प्रकार प्रेमपूर्वक मिलता हूं जिस प्रकार स्वयं आपसे मिलता हूं। इस पर जोरों का ठहाका लगा क्योंकि इससे यह ध्वनि निकलती थी कि आप भी मेरी दृष्टि में अछूतों के समान ही हैं।

कुछ अवस्थाओं में अनजान में ही मुंह से कोई ऐसी बात निकल जाती है जिससे ध्वनि तो अवश्य निकलती है, पर उस ध्वनि के कटाक्ष या व्यंग्य का पात्र स्वयं वक्ता बन जाता है। कहते हैं कि एक बार किसी अदालत में किसी गवाह से जिरह करते समय वकील ने खिझलाकर कहा—मैंने तुम्हारे जैसा बेवकूफ आज तक कभी नहीं देखा। जज ने न्यायालय के सम्मान की रक्षा के विचार से वकील को सचेत करने के लिए कहा—मेरे यहाँ रहते हुए आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। जज के इस कथन से ध्वनि यह निकलती थी कि इस गवाह से बढकर बेवकूफ तो मैं यहाँ मौजूद हूं।

कहते हैं कि एक बार एक आदमी किसी दवाखाने में कोई दवा खरीदने गया। दूकानदार ने कहा वह दवा तो नहीं है इसके बदले यह दूसरी दवा ले जाइए इससे आपको अवश्य लाभ होगा। उस आदमी ने पूछा—आपने कैसे जाना कि इस दवा से अवश्य लाभ होगा। दूकानदार ने कुछ सकपकाकर कहा—जो आदमी एक बार यहां से दवा ले गया, वह फिर दोबारा लौट कर नहीं आया। दुकानदार का आशय तो यह था कि इस दवा से उसे इतना लाभ हुआ कि फिर आने की आवश्यकता ही नहीं पडी। पर उसके कथन से यह ध्वनि निकलती थी कि या तो वह आदमी यह दवा खाकर मर ही गया और या इसका कोई प्रभाव न देखकर इतना निराश हुआ कि वह मेरी दुकान पर फिर आया ही नहीं।

साराश यह कि ध्वनि किसी उक्ति या कथन का वह अनुरणन, गूंज या झनकार है जो पदों और वाक्यों के शब्दार्थ से बिलकुल अलग और ऊपर होती है।

'विवक्षा' हमारे यहाँ का पुराना साहित्यिक शब्द है। इसका धातु-मूलक या मूल अर्थ होता है—कुछ कहने अथवा अपने मन का भाव या विचार प्रकट करने की इच्छा। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे इसे अर्थ का एक विशिष्ट प्रकार या भेद ही कहना उचित होगा। कभी-कभी ऐसा होता है कि हम जो बात कहते हैं उसका एक साधारण अर्थ तो होता ही है, पर उसके साथ ही हमारी शब्दावली का रूप कुछ ऐसा होता है कि हमारा अभिप्रेत या उद्दिष्ट आशय कुछ भिन्न ही होता है। वही विशिष्ट आशय सूचित करनेवाला तत्व विवक्षा है। यो पिशाच और वज्र का साधारण अर्थ तो सभी लोग जानते हैं; पर जब हम किसी को 'अर्थ-पिशाच' या 'वज्र-मूर्ख' कहते हैं, तब पिशाच अथवा वज्र से हमारा तात्पर्य कुछ और ही हो जाता है, जो शब्द की लक्षणा शक्ति से व्यक्त होता है। यो अभिधा की दृष्टि से 'कृतार्थ' और 'सिद्धार्थ' के अर्थों मे कोई विशेष अन्तर नही है; परन्तु अपना कोई उद्देश्य पूरा हो जाने पर हम अपने आपको 'कृतार्थ' तो कह सकते हैं, परन्तु 'सिद्धार्थ' न तो कहते ही हैं और न कह ही सकते हैं। कारण यही है कि साधारण 'कृति' की तुलना मे 'सिद्धि' बहुत अधिक गौरवमयी और महिमा वाली विवक्षा से युक्त है। और इसी लिए 'सिद्धार्थ' जैन-तीर्थंकर तथा गौतमबुद्ध सरीखी बहुत बड़ी विभूतियो का वाचक हो गया है। प्राचीन साहित्यकारो का मत है कि शब्दो की लक्षणा और व्यजना शक्तियो से हमारा जो आशय या भाव प्रकट होता है वही हमारी विवक्षा है।

परन्तु आज-कल विवक्षा का प्रयोग अँगरेजी के 'इम्प्लिकेशन' (Implication) के स्थान पर होने लगा है।* हम यह तो जानते ही हैं कि कुछ विशिष्ट प्रकार के ऐसे शब्दो के अलग-अलग वर्ग होते हैं जिनके साधारण अर्थ बहुत कुछ एक से या मिलते जुलते होते हैं; जैसे—(क) कष्ट, दुःख, पीड़ा और वेदना; (ख) अभिमान, गर्व और घमड; (ग) अध्ययन, अनुशीलन और पठन; आदि आदि। ऐसे शब्दो के साधारण अर्थ ही अधिकतर लोग जानते हैं; परन्तु इनके सूक्ष्म अन्तरो या भेदो से परिचित होने अथवा उन पर विचार

---

* वेब्स्टर की Synonyms Dictionary मे Implication की जो व्याख्या दी गई है उसे देखते हुए विवक्षा को हम उसका ठीक और पूरा समार्थक नही कह सकते। फिर भी आज-कल दोनो एक दूसरे के समार्थक माने जाने लगे हैं जो कुछ ठीक नही जँचता। कारण यह है कि विवक्षा सदा वक्ता को अभिप्रेत या उद्दिष्ट होती है, परन्तु 'इम्प्लिकेशन' मे ऐसे भावो का भी समावेश होता है जो वक्ता को अभिप्रेत या उद्दिष्ट नही होते।

करते या न तो उन्हें अवकाश ही रहता है, और न अवसर ही मिलता है। किसी शब्द के अर्थ और विवक्षा में बहुत कुछ उसी प्रकार का अन्तर होता है, जिस प्रकार का अन्तर मनोविज्ञान की दृष्टि से हमारी चेतना और उपचेतना* में होता है। एक ही वर्ग के भिन्न-भिन्न शब्दों के अर्थों की एक ऊपरी तह होती है। यह तह देखने पर ऐसी जान पड़ती है कि इनके अर्थों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, और इसी लिए लोग प्रायः एक के स्थान पर दूसरे शब्द का और दूसरे के स्थान पर तीसरे शब्द का प्रयोग कर जाते हैं। यही कारण है कि साधारण शब्द-कोशों में ये बहुत कुछ पर्याय समझे जाते और मिश्रित रूप में पाये जाते हैं। परन्तु शब्दों के अर्थ की इस ऊपरी तह के नीचे एक और भीतरी तह भी होती है। उसे ध्यानपूर्वक देखने पर हमें यह पता चलता है कि किसी शब्द में कौन सा ऐसा विशिष्ट आशय या भाव है जो उसे वर्ग के अन्यान्य शब्दों से उसे पृथक करता है। किसी शब्द का ऐसा विशिष्ट आशय या भाव सूचित करनेवाला तत्व ही विवक्षा है। इस विवक्षा का ज्ञान न होने के कारण ही लेखक और वक्ता अनजान में ही एक की जगह दूसरे शब्द का प्रयोग कर जाते हैं और साधारण पाठक या श्रोता भी उसका कोई मनमाना अर्थ समझकर अपना काम चलता करते हैं। पर्यायकी में पर्याय समझे जानेवाले शब्दों के अर्थों और प्रयोगों में होनेवाले ऐसे ही सूक्ष्म अन्तरों या भेदों का विवेचन होता है। शब्दों में होने वाली विवक्षा के सिवा उक्ति या कथन सम्बन्धी वाक्यों में भी कुछ विवक्षा होती है जो उन वाक्यों के अभिधार्थ से कुछ भिन्न होती है। यहाँ उदाहरण स्वरूप कुछ ऐसे वाक्य दिये जाते हैं —

१ वाक्य—अब इसके सिवा हमारे पास और उपाय ही क्या रह गया है।

विवक्षा—अब इसके सिवा हमारे पास और कोई उपाय ही नहीं है।

२ वाक्य—अब तो उनकी रक्षा ईश्वर के ही हाथ है।

विवक्षा—अब उनकी रक्षा की कोई सम्भावना नहीं रह गई है।

३ वाक्य—क्या तुमने मुझे कभी बासी रोटी खाते देखा है ?

विवक्षा—मैं सदा ताजी रोटी ही खाता हूँ।

---

* हिन्दी की मनोवैज्ञानिक पुस्तकों में आरम्भ से अंगरेजी के Subconsciouness के लिए 'अवचेतना' का प्रयोग होता आया है। परन्तु इसके लिए उपयुक्त शब्द 'उपचेतना' ही है, 'अवचेतना' नहीं।

इन उदाहरणों से यही सूचित होता है कि विवक्षा भी लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की तरह का एक अर्थ है, और इसमे दोनो का कुछ न कुछ मिश्रण रहता है।

ध्वनि और विवक्षा मे नीचे लिखे तीन मुख्य अन्तर होते हैं :—

१. ध्वनि तो केवल वाक्यों मे होती है, पर विवक्षा वाक्यो के सिवा शब्दो मे भी होती है।

२ ध्वनि अभिधार्थ पर आश्रित नही होती, पर विवक्षा अभिधार्थ पर आश्रित होती है। और

३. ध्वनि मे तो कटाक्ष या व्यग्य की प्रधानता होती है पर विवक्षा मे कटाक्ष या व्यंग्य का होना आवश्यक नही हैं। × ×

अलहदी—वि० = अहदी; दे० 'अहदी, आलसी, आस्कती, दीर्घसूत्री, और सुस्त'।

अवयव—पुं० [सं०] दे० 'अंग, अवयव और घटक'।

अवरोध—पु० [स०] दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध, निरोध, प्रतिरोध और विरोध।

अवसरवाद

Opportunism

'अवसरवाद' [पु० सं०] कुछ लोगो की ऐसी नीति और मनोवृत्ति का वाचक पद है, जो प्राय: किसी अच्छे और लाभदायक अवसर की ताक मे लगे रहते हैं और ऐसा अवसर मिलते ही वे अपना कोई स्वार्थ सिद्ध कर लेते हैं। इसके मूल मे अपनी उन्नति, प्रसिद्धि हित-साधन की भावना ही प्रबल होती है—नीति, लोकलज्जा, सिद्धान्त आदि का कोई विशेप ध्यान नही रखा जाता। आवश्यकता पड़ने पर ऐसी मनोवृत्तिवाले लोगों को अपना मत या विचार बदलने मे न तो देर ही लगती है न संकोच ही होता है। आज-कल राजनीतिक, व्यापारिक, सामाजिक आदि क्षेत्रो मे ऐसे बहुत से लोग देखने मे आते हैं, परन्तु लोक मे वे आदर की दृष्टि से नही देखे जाते। × ×

अवसरवादी और समय-सेवी
Opportunist Time server

इस वर्ग के शब्द ऐसे व्यक्तियों के विशेषण हैं जो सभी उपयुक्त अवसरों और समयों से कुछ न कुछ लाभ उठाने के प्रयत्न में लगे रहते और प्रायः कुछ लाभ उठा भी लेते हैं।

अवसरवादी वे लोग कहलाते हैं जो अवसरवाद के अनुयायी और पालक होते हैं। अवसरवाद के सम्बन्ध में मुख्य बातें ऊपर 'अवसरवाद' के विवेचन में बतलाई जा चुकी हैं। समय-सेवी भी बहुत कुछ अवसरवादियों की कोटि में ही आते हैं फिर भी दोनों में कुछ सूक्ष्म अन्तर है। अवसरवादी तो उपयुक्त अवसर मिलने पर ही अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। परन्तु समय-सेवी जब जैसा समय देखते हैं तब अपने आपको वैसे ही रङ्ग में रँग लेते और वैसा ही रूप अपना लेते हैं। अनुकूल अवसर तो उतनी जल्दी जल्दी सामने नहीं आते परन्तु अनेक प्रकार के समय तो बराबर सामने आते ही रहते हैं। आज जिस बात या व्यक्ति के पक्ष में रहते हैं कल ही उसके विपरीत और विरुद्ध आचरण या व्यवहार करने लगते हैं ऐसे लोग प्रायः खुशामदी होते, ठकुर सुहाती और मुँह देखी बातें करनेवाले होते हैं। उनका सारा लाभ और हित प्रायः ऐसी ही बातों पर आश्रित होता है। यही कारण है कि अवसरवादियों की तुलना में समय-सेवी लोग और भी अधिक तुच्छ या हीन दृष्टि से देखे जाते हैं। × ×

अवसान—पु० [सं०] दे० 'अन्त' अवसान और समाप्ति।

अवस्था, दशा और स्थिति
Condition Sta e 1 Position 2 Situation

साधारणतः अवस्था, दशा और स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं दिखाई देता। हम कहते हैं—ऐसी अवस्था में उनकी कोई सहायता नहीं की जा सकती। यदि इस वाक्य में अवस्था की जगह दशा या स्थिति का प्रयोग किया जाय तो भी प्रायः काम चल जाता है। ऐसे परिवर्तनों से उक्त वाक्य के अर्थ या आशय में कोई विशेष अन्तर नहीं आने पाता। इससे पता चलता है कि एक सीमा तक इन तीनों शब्दों के अर्थ प्रायः समान हैं और

इसी लिए ये एक दूसरे के समानक माने जा सकते है। फिर भी ये तीनों अलग अलग शब्द हैं; अतः इनके अर्थो में भी परस्पर कुछ अन्तर होना ही चाहिए, भले ही वह अन्तर थोडा या सूक्ष्म हो। और वास्तव मे अन्तर है भी, क्योकि कुछ प्रसगों में ये शब्द एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो ही नही सकते। और ऐसे प्रसगो का विचार करने पर ही जाना जा सकता है कि इन तीनो शब्दो के अर्थो मे क्या अन्तर है ?

हमारे यहाँ मनुष्य की कही ४, कही ८ और कही १० अवस्थाएँ मानी गई हैं, जैसे—जन्म, शैशव, बाल्य, कौमार्य, पौगड, यौवन, जरा आदि। इन अवस्थाओ को दशा भी कहते हैं। पर ज्योतिष में ग्रहो का नियत भोग-काल दशा ही कहलाता है, अवस्था या स्थिति नही। फिर हम कहते हैं—यहाँ की स्थिति आपके सँभाले नही सँभलेगी। इस प्रसंग में स्थिति का काम अवस्था या दशा से नही चल सकता। अर्थात् कही तो अवस्था, दशा और स्थिति तीनो एक दूसरे के पर्याय होते हैं, कही केवल अवस्था और दशा एक दूसरे के पर्याय होते हैं; और कही ये तीनो शब्द अलग अर्थ रखते हैं; और इनमें से किसी एक का काम दूसरे से नही चल सकता। जिन प्रसंगो मे ये तीनों शब्द एक दूसरे का काम दे जाते हैं, कुछ तो उन्ही प्रसगों के आधार पर और कुछ इन तीनो शब्दो के ठीक-ठीक अर्थ-विस्तार न जानने के कारण ही इनके प्रयोगो मे प्रायः गड़बडी होती है। तीनो शब्दो के आर्थी क्षेत्र का यह अन्तर उनके भोग-काल के आधार पर स्थित है। अवस्था की अपेक्षा दशा का और दशा की अपेक्षा स्थिति का भोग-काल साधारणतः कुछ अधिक होता है। जो अवस्था* आज है, वह कल बदल सकती है; पर दशा के बदलने मे कुछ अधिक समय लगता है‡। और इन दोनो की अपेक्षा स्थिति का भोग-काल साधारणत कुछ और भी अधिक होता है†। अर्थात्

---

* दूसरे प्रसग मे यही अवस्था वय या उमर की वाचक है, और वहाँ यह क्षण-क्षण बदलनी और बढती रहनेवाली चीज है। दे० 'आयु, अवस्था और वय'।

‡ ज्योतिष मे ग्रहो का भोग-काल इसी लिए दशा कहलाता है कि उसकी कुछ निश्चित मर्यादा होती है; और उसको बदलने के लिए कुछ समय अपेक्षित होता है।

† स्थिति का एक और अर्थ उस स्थान से सम्बद्ध है, जहाँ कोई वस्तु स्थित होती है।

तुलनात्मक दृष्टि से स्थिति की अपेक्षा दशा और दशा की अपेक्षा अवस्था कुछ जल्दी और सहज मे बदलनेवाली होती है। इन तीनो शब्दो म दूसरा पारस्परिक अतर इनके मान या व्याप्ति क क्षेत्रों से सम्बध रखता है। अवस्था म जितनी बाते अन्तभुक्त होती हैं, उनकी अपेक्षा दशा मे कुछ अधिक बातो का अतर्भाव होता है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि अवस्था शब्द भी उसी 'स्था' धातु से बना है जिससे स्थिति शब्द बना है। अवस्था का एक धात्वथ है—खडा होना या वर्त्तमान होना, और इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि अवस्था का बहुत कुछ सम्बध वतमान से है।* स्थिति का अथ है—स्थित होने या ठहरे रहने की अवस्था या भाव। यह मुख्यत एक प्रकार के ठहराव की सूचक भाववाचक सना है। भाव सदा वर्त्तमान की अपेक्षा कही अधिक विस्तृत तथा स्थायी होता है—उसकी याप्ति उन भूत और भविष्य कालो तक होती है, जो वतमान की अपेक्षा कही अधिक विस्तृत हैं। और इस दृष्टि से भी इन शब्दो के भोग कालवाले और मान या व्याप्तिवाले अतरो की पुष्टि होती है। दशा की व्युत्पत्ति कुछ सदिग्ध रूप से 'दश' कही गई है। दश का पहला अथ है—दाँत से पकडना या दाँत गडाना। इस यापार मे भी और इसके फल मे भी काल विस्तार का कुछ भाव है ही। 'दश' का दूसरा अथ कपडे का छोर या सिरा भी है, और उसमे भी विस्तार का भाव निश्चित रूप से है ही।

---

* इसी दृष्टि से अ० हाल को स० अवस्था का समानार्थी माना जाता है। हाल का पहला अर्थ वर्त्तमान है और अवस्था भी बहुत कुछ वतमान से ही सम्बद्ध है। उर्दू का एक शेर है—

देखकर कासिद को मर उसने पूछा खर है
अब कहो क्या हाल है जिन्द है या जाता रहा

इसके द्वितीय चरण का 'अब' ही इस बात का सूचक है कि कुछ देर पहले कुछ और हाल मिल चुका था और इस समय का हाल या अवस्था पूछी जा रही है। एक और शेर है—

उनके देखे से जा आ जाती है रौनक मुँह पर
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है

यहाँ भी थोडे समय के लिए प्रिय के सामने आ जाने पर मुँह पर रौनक आ जाती है, पर इसी क्षणिक परिवतन के कारण प्रेमी की अवस्था अच्छी मान या समझ ली जाती है। इन उदाहरणों से भी अवस्था और दशा सम्बधी हमारे निरूपित अतरो का समथन होता है।

अब कुछ प्रयोग देखिए। जो व्यापारी वहुत दिनो से लाखो रुपयों का क्रय-विक्रय और लेन-देन करता आ रहा हो और बाजार मे जिसकी अच्छी साख हो, उसके सम्बन्ध में कहा जायगा—इसकी स्थिति वहुत अच्छी है। यहाँ स्थिति उसकी धन सम्पत्ति, मान-मर्यादा, व्यवहार-कुशलता आदि अनेक बातो की सूचक है। यदि बीच मे कुछ घाटे या व्यापार की मन्दी आदि के कारण उसके कार्यों मे कुछ शिथिलता आने लगे तो कहा जायगा—आज कल उसकी दशा ठीक नही है। अब यदि कुछ दिन वाद उसका कार-बार फिर ज्यो का त्यो चलने लगे, तो कहा जायगा—बीच मे उसकी दशा कुछ खराब हो गई थी, पर अब फिर ठीक हो गई है। पर आदि से अब तक उसकी स्थिति अच्छी ही मानी जायगी; बीच मे बदलनेवाली दशा से उस स्थिति मे कोई विशेष अन्तर न आवेगा। किसी रोगी को देखकर चिकित्सक कह सकता है—कल से आज इसकी अवस्था कुछ अच्छी है; और यदि यही क्रम चलता रहा तो एक सप्ताह तक इसकी दशा वहुत कुछ सुधर जायगी। इससे सूचित होता है कि रोगी की दशा कुछ समय तक प्रायः एक-सी चल सकती है, पर उसकी अवस्था मे जल्दी-जल्दी सुधार अथवा बिगाड हो सकता है। हम कोई कल (मशीन) देखने जाते हैं, और लौट कर अपने मित्रो से कहते है—हमने तो उसे चलती हुई अवस्था मे देखा था, पर हमारे मिस्त्री का कहना है कि वह ठीक दशा में नही है। कुछ मरम्मत होने पर वह ठीक दशा में आ सकती और अच्छी तरह काम दे सकती है। उक्त दोनो प्रसगों मे यदि अवस्था की जगह दशा और दशा की जगह अवस्था का प्रयोग किया जाय तो वाक्यो मे कुछ खटक-सी आ जायगी। इससे सिद्ध होता है कि अवस्था की काल-व्याप्ति उतनी अधिक नही होती, जितनी दशा की होती है।

एक दूसरी दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि अवस्था और दशा दोनो वहुत कुछ आत्मगत या व्यक्तिगत होती हैं, पर स्थिति वहुत कुछ वाहरी वातो पर भी आश्रित या होती है। आर्थिक, प्रशासनिक आदि दृष्टियो से किसी देश की दशा तो वहुत अच्छी हो सकती है, पर दूसरे देशो या राष्ट्रो की वक्र दृष्टि के कारण उसकी स्थिति चिन्तनीय या शोचनीय भी हो सकती है। यदि कोई सैनिक टुकडी युद्ध-क्षेत्र में कही शत्रुओ से घिर जाय तो हम कहेंगे—वह टुकड़ी विकट स्थिति मे पड गई है। पर जब शाति-काल मे अपने ही देश में सैनिक शरीरतः दुर्बल हो, उनके पास यथेष्ट अस्त्र-शस्त्र न हो अथवा वे आदेशो, नियमो, नियत्रणो आदि का ठीक तरह से पालन न करते हो, तो कहा जायगा—उनकी दशा अच्छी नही है।

'अहंता' व्याकरण की दृष्टि से 'अहं' का भाव वाचक संज्ञा रूप है। इसी लिए ऊपर अहं के जो अर्थ बतलाए गए हैं यह उनकी भावात्मक संज्ञा है। लोक व्यवहार में इसका प्रयोग 'अहंकार' के ऊपर बतलाए हुए दूसरे अर्थ में भी होता है।

'अहंभाव' भी मुख्यत उन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता है जो अहं और अहंकार के परवर्ती, विकसित और विस्तृत अर्थ हैं। इस दृष्टि से 'अहंता' और 'अहंभाव' के अर्थों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

'अहंमन्यता' का शब्दार्थ है—अपने आपको ही मानना। इसका आशय यह है कि अपने आपको औरों से बड़ा अथवा बहुत बड़ा समझना। इसे हम अहंकार' का बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ रूप कह सकते हैं। जब किसी व्यक्ति में अहंमन्यता आ जाती है तब वह प्राय अपने आपको बहुत बड़ा और दूसरों को बहुत तुच्छ या हेय समझने लगता है। लेकिन व्यवहार में यह अहंकार से कहीं अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट होता है। इस भावना के फल स्वरूप मनुष्य यही चाहता है कि लोग मेरे गुणों आदि की अधिक से अधिक चर्चा तथा प्रशंसा करें और मेरा अधिक से अधिक सम्मान करें और दूसरों को मेरी तुलना में तुच्छ या हेय समझें।

इस वर्ग के अन्यान्य शब्दों के लिए देखें—(१) अभिमान' गर्व घमंड और शेखी। और (२) 'हमीं और हमेव। × ×

अहंकार—पु० [स०] दे० 'अहं, अहंकार, अहंता, अहंभाव और अहंमन्यता'।

अहंता—स्त्री० [स०] दे० 'अहं अहंकार अहंता, अहंभाव और अहंमन्यता'।

अहंभाव—पु० [स०] दे० अहं, अहंकार, अहंता, अहंभाव और अहंमन्यता'।

अहंमन्यता—स्त्री० [स०] दे० 'अहं, अहंकार, अहंता अहंभाव और अहंमन्यता'।

अहदी, आलसी, आस्कती, दीर्घसूत्री और सुस्त

Indolent Lazy

इस वर्ग के शब्द ऐसे व्यक्तियों के वाचक हैं जो सहसा या तो कोई काम करना नहीं चाहते और या बहुत ही कठिनता से अथवा विवश होकर अपने काम में लगते हैं।

'अहदी' अरबी भाषा का शब्द है जिसका मूल अर्थ है—आलसी या सुस्त। परन्तु हिन्दी मे यह शब्द एक ऐसे भाव का सूचक बन गया है जो आलस्य या सुस्ती की तुलना मे बहुत आगे बढा और प्राय: चरम सीमा तक पहुँचा हुआ है। अकबर के शासन-काल मे कुछ ऐसे विशिष्ट प्रकार के योद्धा और वीर होते थे जो केवल बहुत ही विकट अवसरो पर युद्धक्षेत्र मे भेजे जाते थे। वे लोग अपना शेष समय बहुत ही सुखपूर्वक अपने घर रहकर बिताते थे। जान पड़ता है कि इसी आधार पर हिन्दी मे यह शब्द ऐसे लोगो का वाचक बन गया है जो यथासाध्य नाम को भी कोई काम नही करना चाहते, और चुपचाप अपनी जगह पर आराम से बैठे रहना ही चाहते हैं। इसी लिए हिन्दी मे अहदी का अर्थ हो गया है—बहुत बडा अकर्मण्य या बिलकुल निकम्मा पर साथ ही बहुत बड़ा आलसी या सुस्त। इसी आधार पर अहदियो के सम्बन्ध मे बहुत से किस्से भी गढ लिये गये हैं।* कुछ हिन्दी भाषी क्षेत्रो मे इस अर्थ मे इसका विगड़ा हुआ रूप 'अलहदी' भी प्रचलित है।

---

* इनके सम्बन्ध मे एक प्रसिद्ध किस्सा इस प्रकार है। एक बार कोई घुडसवार अपने काम से कही चला जा रहा था। रास्ते मे एक जगह उसने देखा कि सड़क के किनारे बेर के एक पेड़ के नीचे तीन आदमी बहुत ही आराम और निश्चिंत भाव से लेटे हुए हैं। उनमे से एक ने घुड़सवार को आवाज देकर कहा—भैया, जरा यहाँ आना। घुड़सवार ने उसके पास पहुँच कर पूछा—कहो, क्या बात है? उसने कहा—यह बेर मेरी छाती पर आ पड़ा है, इसे उठाकर मेरे मुँह मे डाल दो। घुडसवार ने कहा—तुम इतने अहदी हो कि अपने छाती पर पड़ा हुआ बेर भी उठाकर अपने मुँह मे नही डाल सकते, जो इसके लिए मुझे इतनी दूर से यहाँ बुलाया है? पास लेटे हुए दूसरे आदमी ने कहा—अजी कुछ न पूछिए, यह बहुत बड़ा अहदी है। कल रात को एक कुत्ता मेरा मुँह चाट रहा था, पर इससे उस कुत्ते को दुत्कारते न बना। यह भी कहते है कि अकबर के समय मे बहुत से ऐसे लोग काम-धन्धे से बचने के लिए अहदियो मे अपना नाम लिखा लेते थे और राजकीय वृत्ति लेकर घर बैठे रहते थे। जब ऐसे लोगो की संख्या बहुत अधिक बढ गयी तब वास्तविक अहदियो की परीक्षा लेने के लिए उन्हे एक बडे घेरे मे भेज दिया गया और तब उस घेरे मे आग लगा दी। नकली और बने हुए अहदी तो आग लगते ही भाग निकले, पर दो-चार वास्तविक अहदी फिर भी वही पडे रह गये।

'आलसी' हि० आलस (सं० आलस्य) से बना हुआ विशेषण है। आलसी उसे व्यक्ति को कहते हैं जो काम करने से बहुत घबराता हो और चुपचाप आराम से पड़ा रहना चाहता हो। ऐसा व्यक्ति जहाँ तक हो सकता है अपने काम टालता चलता है और सोचता है कि अभी रहने दो, कल करेंगे या फिर किसी दिन देखा जायगा।

'अलसानी' सम्भवतः आसक्ति या आलस्य से सम्बद्ध जान पड़ता है। अलसानी व्यक्ति काम आरम्भ करने के समय तो अवश्य कुछ आलस्य दिखलाता है क्योंकि किसी न किसी कारण वह अपने आपको अशक्त या असमर्थ सा समझता है। फिर भी जब वह उठकर अपने काम में लगता है तब या तो जमे-जमे और या ठीक तरह से अपना काम करता रहता है। अलसानी को सवेरे सोकर उठने में तो अवश्य आलस्य मालूम होती है पर जब वह उठ बैठता है तब अपने सब काम करने लगता है।*

'दीर्घसूत्री' सं० का पुराना शब्द है। यह ऐसे व्यक्ति का वाचक है जो काम तो करता हो, परन्तु बहुत ही धीरे धीरे करता हो और हर काम में आवश्यकता से बहुत अधिक समय लगाता हो। ऐसा व्यक्ति स्वभावतः प्रायः यह सोचता रहता है कि अभी यह काम करूँ तो कैसे करूँ। इस प्रकार का सोच विचार बराबर उसके कार्यों में बाधक होता रहता है। ऐसा व्यक्ति बहुत ही आवश्यक काम भी प्रायः ठीक समय पर पूरा नहीं कर पाता और बहुत से कामों या बातों में प्रायः पिछड़ा हुआ रहता है। ऐसे व्यक्ति की बुद्धि ही प्रायः कुछ मन्द होती है।

'सुस्त' फारसी का एक प्रसिद्ध विशेषण है जो हिन्दी में कई अर्थों में बहुत प्रचलित है। फारसी में भी इसके कई मूल अर्थ हैं यथा—(क) कमजोर या दुबल, (ख) धीमा या मन्द, (ग) शिथिल या स्फूर्तिहीन, (घ) उदास या खिन्न आदि आदि। हिन्दी में यह शब्द प्रायः उक्त सभी अर्थों में प्रचलित

---

* स्वर्गीय प० रामचन्द्र शुक्ल अपनी अन्तिम अवस्था में कभी कभी कहा करते थे कि पहले तो मैं केवल अलसानी ही था, पर अब देखता हूँ कि मैं दिन पर दिन आलसी होता जा रहा हूँ। उनकी इस बात पर एक बार मैंने हँसते हुए कहा था— अच्छा अब यहीं रुक जाइए, और आगे मत बढ़िए, नहीं तो आपको अहमदिया में नाम लिखाना पड़ेगा। इस बातचीत से उक्त तीनों शब्दों के आशय या भाव का तारतम्य बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

है। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे यह आलसी, आस्कती और दीर्घसूत्री तीनो के पर्याय के रूप मे चलता है। परन्तु इसमे मुख्य भाव कर्मठता या क्रियाशीलता की कमी और गति की मन्दता है। सुस्त आदमी कुछ तो मानसिक दृष्टि से और कुछ शारीरिक दृष्टि से असमर्थ या दुर्बल होता है। वह आस्कती तो होता ही है, पर उसके लिए आलसी होना उतना आवश्यक नही है। हाँ, उसमे दीर्घसूत्रता की थोडी-बहुत प्रवृत्ति सदा बनी रहती है, और हर काम मे निरन्तर प्रकट होती रहती है। × ×

आँकडा, आँकड़े पुं० [सं०]—दे० 'अक, आँकड़े और सख्या'।

आँख

मेरे विद्या-गुरु स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा कहा करते थे—आँख की सभी बातें बुरी होती हैं। उसका आना बुरा, जाना बुरा, उठना बुरा, बैठना बुरा, देखना बुरा, दिखाना बुरा—सब कुछ बुरा। और मैं समझता हूँ कि उसके अर्थों और मुहावरो का विवेचन भी बुरा और सबसे बुरा है।

इसके कई कारण हैं। पहली बात तो यह है कि हिन्दी मे सबसे अधिक मुहावरे कदाचित् आँख से ही सम्बद्ध हैं जिनका वर्गीकरण और विवेचन बहुत ही श्रम-साध्य है। ये मुहावरे मुख्यतः तीन भागो मे बँट सकते हैं। पहला विभाग तो स्वय शारीरिक इन्द्रिय से सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरो का है; जैसे—आँख आना, आँख उलटना, आँख कडुआना, आँखे चार करना या होना, आँखे डबडबाना, आँखे पसीजना, आँखे पथराना, आँख फड़कना आदि। ये सब मुहावरे ऐसे हैं जिनका व्यापार स्वय 'आँख' नाम की इन्द्रिय से होता है। मुहावरो का दूसरा वर्ग आँख की देखनेवाली शक्ति से सम्बन्ध रखता है। इसके अन्तर्गत किसी चीज पर आँख गडना या गडाना, आँख जमाना, आँख डालना, आँखे बदलना, आँख मिलाना, आँख लटाना आदि मुहावरे आते हैं। मुहावरो का एक तीसरा वर्ग वह है जिसमे विशुद्ध लाक्षणिक रूप मे होनेवाले प्रयोग आते हैं; जैसे—आँखो का काँटा होना, आँख का पानी ढलना, आँखे चरने जाना, आँखे चुराना, आँखो का सुरमा चुराना, आँखे बिछाना, आँखो मे चरबी छाना या टेसू या सरसो फूलना, आँखो मे रखना या पालना, आँखो मे रात काटना या बिताना, आँखो मे समाना आदि।

इन मुहावरों के सम्बन्ध में ध्यान रखने की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कुछ अवस्थाओं में 'आँख' शब्द का एक वचन में प्रयोग होता है और कुछ अवस्थाओं में 'आँखें' या 'आँखों' के रूप में अर्थात् बहुवचन में प्रयोग होता है। पर कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी हैं जिनमें आँख का प्रयोग विकल्प से दोनों वचनों में होता है। 'आँख आना' (रोग) सदा एक वचन में ही प्रयुक्त होता है। (पेट फूला है, आँख आयी है। वाह एक बाल की दुहाई है।—अकबर) यही बात 'आँख लगना' के सम्बन्ध में भी है जिसके चार अर्थ होते हैं—एक तो झपकी या हलकी नींद आना और दूसरा शृङ्गारिक प्रसंग में किसी के प्रति अनुरागात्मक प्रवृत्ति होना। किसी उर्दू शायर का एक मिसरा है—'न लगी आँख जब से आँख लगी।' तीसरा अर्थ प्रतीक्षा के प्रसंग में होता है, जैसे—किसी ओर आँख लगना। और चौथा अर्थ होता है—लालसा या लोलुपता के प्रसंग में, जैसे—तुम्हारी इस किताब पर हमारी बहुत दिनों से आँख लगी है। कड़ी निगाह या पूरे ध्यान के अर्थ में भी आँख का सदा एक वचन में प्रयोग होता है, जैसे—उस पर आँख रखना कोई चीज उठा न ले जाय। यही बात (किसी ओर या किसी की ओर) आँख उठाना या उठाने के सम्बन्ध में भी है, जैसे—तुम्हारी ओर कोई आँख नहीं उठा सकता। आँखें फड़कना का भी इस दृष्टि से एक वचन में ही प्रयोग होता है क्योंकि दोनों आँखें कभी एक साथ नहीं फड़कतीं। आँखें चार करना या लड़ाना, आँखें चरने जाना, आँखें तरेरना, आँखें निकालना, आँखें पथराना, आँखें फेरना, फोड़ना, बदलना, मलना, सेंकना आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं जिनमें आँख का सदा बहुवचन में ही प्रयोग होता है। आँखों का काजल चुराना, आँखों का पानी ढलना आदि प्रयोगों में भी सदा बहुवचन का ही प्रयोग होता है। पर खटकने, मटकने आदि के प्रसंग में 'आँख' अर्थात् एक वचन का भी प्रयोग होता है और 'आँखें' अर्थात् बहुवचन का भी। यही बात आँख (या आँखें) ऊँची करना, आँख (या आँखें) खुलना, आँख (या आँखें) मिलना, आँख (या आँखें) बन्द होना या मुँदना, आँख (या आँखों) से ओझल होना आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं जिनमें 'आँख' का विकल्प से एक वचन में भी प्रयोग होता है और बहुवचन में भी। आँखों के प्रयोगों और मुहावरों के सम्बन्ध में वचन का यह तत्त्व भाषा की शुद्धता के विचार से बहुत ही महत्त्व का है। अभी तक इस तत्त्व की ओर किसी कोशकार का ठीक और पूरा ध्यान नहीं गया है। यही कारण है कि हिन्दी कोशों में 'आँख' के प्रयोगों और मुहावरों के जो रूप मिलते हैं, वे प्राय वचन की दृष्टि से बहुत ही अपूर्ण तथा भ्रामक हैं। मुझे इस विषय में बहुत कुछ छान-बीन और विचार करना पड़ा है, और

उसमे जो-जो कठिनाइयाँ मेरे सामने आई है उन्ही को देखते हुए मुझे इस लेख के आरम्भ मे कहना पडा है कि आँखो की और सब बातो के साथ उसके अर्थो और मुहावरों का वर्गीकरण और विवेचन भी 'बुरा' ही है।

वचन का निर्णय प्रयोगो के आधार पर ही करना पड़ता है और इस निर्णय के लिए ऐसे ही कवियो और लेखको के प्रयोग लिये जाते हैं, जो भाषा की शुद्धता तथा सौष्ठव के विचार से आदर्श, प्रामाणिक तथा मान्य हो। पर ऐसे प्रयोग ढूंढ निकालना और उनके आधार पर कुछ सिद्धात स्थिर करना सहज नही होता। बाजारू या राह चलते आदमी भूल से जो अशुद्ध प्रयोग करते हैं, उन्हे छाँटकर अलग करना और भी कठिन होता है। और इतना सब कुछ कर चुकने के बाद भी कोशकार के सामने कुछ कठिनाइयाँ रह ही जाती हैं। मानक कोश के अगले सस्करण के लिए 'आँख' का जो विवेचन मैं कर रहा हूँ, वह ऐसी ही अनेक कठिनाइयो के कारण अभी तक ठीक, पूरा और सन्तोषजनक नही हो पाया है। एक वचन वा न प्रयोग तो एक वचन मे और बहुवचन वाले प्रयोग बहुवचन मे रखकर आधी कठिनता दूर कर ली जाती है, पर अभी तक मैं यह निश्चय नही कर पाया हूँ कि उभयवचन प्रयोगो का क्या रूप रखा जाय, अथवा यह तत्त्व किस प्रकार सूचित किया जाय। यदि कोई सुविज्ञ सज्जन कोई मार्ग बतला सके तो मैं उनका परम कृतज्ञ होऊँगा।

'हिन्दी शब्द-सागर' मे देखने की इद्रियवाला 'आँख' का एक ही अर्थ दिया गया है, और उसी के पेटे मे उससे सम्बन्ध रखनेवाले सब मुहावरे भी दिये गये हैं। उसमे पहला मुहावरा सिर्फ 'आँख' के रूप मे दिया है, और उसके चार अर्थ दिये हैं—१. ध्यान। लक्ष। २ विचार। विवेक। परख। ३ कृपा-दृष्टि। दया-भाव। और ४ सन्तति, सन्तान, लड़का-वाला। यह विवेचन-प्रकार कई दृष्टियो से ठीक नही है। पहली बात तो यह है कि कोई अकेला शब्द कभी मुहावरे के क्षेत्र मे नही आता। मुहावरे के लिए शब्द के साथ क्रिया अथवा और किसी प्रकार के एक दो शब्द रहने आवश्यक होते हैं। फिर सन्तति या सन्तान 'आँख' का उसी प्रकार कोई अर्थ नहीं है, जिस प्रकार 'अन्धे की लकड़ी' का अर्थ 'सन्तान' नही है। 'शब्द सागर' मे 'आँख' के इस अर्थ के जो उदाहरण हैं, वे ही मेरे उक्त कथन की सत्यता सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं। शेष अर्थ स्वय 'आँख' शब्द के हैं, न कि 'आँख' रूपी मुहावरे के। इनके सिवा 'आँख' के कुछ और अर्थ हैं, जो शब्द-सागर मे

नही ग्राये हैं। ऊपर वचन के सम्बन्ध मे मैंने एक उदाहरण दिया है—उस पर ग्राँख रखना, कोई चीज उठा न ले जाय। इसके सिवा हम कहते है—उस ग्रादमी की शक्ल हमारी ग्राँख मे है, सामना होते ही हम उसे पहचान लेगे। इन दोनो प्रसगा म ग्राँख के जो स्वतन्त्र ग्रथ हैं उन्हे भी शब्द कोशो म स्थान मिलना चाहिए।

'शब्द सागर' मे 'ग्राँख' के मुहावरो के सम्बन्ध म ग्रौर भी कई प्रकार की त्रुटियाँ हैं। उसमे ग्राँख का तारा, ग्राँख का परदा, ग्राँख की पुतली, ग्राँखो के डोरे ग्रादि ऐसे प्रयोग भी ग्रा गये हैं, जो किसी प्रकार मुहावरे नही माने जा सकते ग्रौर जो कोरे पद या बोलचाल के प्रयोग मात्र हैं। उसके दूसरे सस्करण म चचल ग्राँख, धँसी ग्राँख, मतवाली ग्राँख, रसभरी ग्राँख ग्रादि ग्रनेक यौगिक पद भी रख दिये गये हैं जो कई दृष्टिया से ग्रसगत भी है क्योकि इस प्रकार सज्ञाग्रो के साथ विशेषण लगाकर तो हर जगह सकडो पद बनाये जा सकते हैं। इसके सिवा ग्राँख का ग्रधा गाँठ का पूरा, ग्राख की बदी भौंह के ग्रागे, ग्राँख मे नून राई, ग्राँखो से कलेजे ठढक ग्रादि ऐसी कहावता भी हैं जो वस्तुत मुहावरो के ग्रन्तगत नही बल्कि कहा वतो के स्वतन्त्र वर्गीकरण मे होनी चाहिए। इसके सिवा उसम ग्रौर भी कई छोटी मोटी त्रुटियाँ हैं। पर इन त्रुटियो का मुख्य कारण यही है कि एक तो शब्द सागर बिलकुल नया ग्रौर पहला प्रयत्न था। फिर उस पहले प्रयत्न मे भी 'ग्राँख' का विवेचन बिलकुल ग्रारम्भिक ग्रश म था। उस समय तक कोश की पद्धति या स्वरूप ठीक प्रकार से स्थिर नही हो पायी थी। परन्तु भविष्य मे बननेवाले प्रथम श्रेणी के कोशो मे इस प्रकार की त्रुटियो की पुनरावृत्ति ग्रशोभन ही होगी ग्रौर इसी लिए इस क्षेत्र म बिलकुल नये सिरे से काम होना चाहिए।

ग्रब जरा ग्राँख के मुहावरो ग्रौर इनके ग्रर्थों के सूक्ष्म ग्रन्तर भी देखिए। एक बहुत ही प्रचलित ग्रौर प्रसिद्ध मुहावरा है—ग्राँख उठाना। हिन्दी शब्द सागर म इसके ग्रथ इस प्रकार ग्राये हैं—(१) *ताकना या देखना ग्रौर* (२) बुरी नजर से देखना। बुरा बरताव करना। हानि पहुँचाने की चेष्टा करना। यहाँ इस बात से मतलब नही है कि इनमे से दूसरा या ग्रन्तिम ग्रथ कितना ग्रतिव्यापक ग्रसगत तथा त्रुटिपूर्ण है। यहाँ ध्यान देने का मुख्य विषय स्वय मुहावरे का रूप (ग्राँख उठाना) है। वस्तुत यह मुहावरा चार प्रकार से ग्रथवा यो कहना चाहिए कि चार ग्रलग ग्रलग ग्रर्थों ग्रौर प्रसगो म प्रयुक्त होता है। यथा—(१) किसी ग्रोर ग्राँख उठाना—ताकना

या देखना; (२) किसी के सामने आँख उठाना--धृष्टता या साहसपूर्वक किसी की ओर देखना या किसी से निगाह मिलाना; (३) किसी चीज की ओर आँख उठाना—प्राप्ति की इच्छा या लोभ-भरी दृष्टि से देखना; और (४) किसी व्यक्ति की ओर आँख उठाना या उठाकर देखना--किसी को कष्ट या हानि पहुँचाने का विचार करना। और इन्ही चारो दृष्टियो से इस मुहावरे के चार अलग-अलग रूप होने चाहिए और वे रूप भी इतने शुद्ध तथा स्पष्ट होने चाहिए कि जिज्ञासुओ के लिए भ्रम मे रहने की जगह न रह जाय।

इसी प्रकार 'आँख गडना' के दो अलग-अलग अर्थ हैं--एक तो आँख मे किरकिरी पड़ने के कारण हलकी खटक या चुनचुनाहट होना, और यह मुहावरा स्वय आँख नामक इन्द्रिय से सम्बद्ध होने के कारण इन्द्रियवाले उसके पहले अर्थ के अन्तर्गत रहना चाहिए। 'आँख गडना' का दूसरा प्रयोग है--'किसी चीज पर आँख गडना' अर्थात् प्राप्त करने के उद्देश्य से किसी चीज पर ध्यान लगा रहना। यह दूसरा प्रयोग स्वय इन्द्रिय से नही, वल्कि उसकी दृष्टि-शक्ति से सम्बन्ध है, इसलिए वह इसी दूसरे अर्थ के अन्तर्गत रहना चाहिए और उसके पहले यह सकेत भी होना चाहिए कि इसका प्रयोग किसी चीज के सम्बन्ध मे होता है। नीद टूटने के अर्थ मे 'आँख खुलना' अलग वात है और अलग अर्थ से सम्बन्ध रखता है। पर किसी विषय मे भ्रम दूर होने और नया ज्ञान या वोध होने के अर्था मे 'आँख खुलना' अलग वात है और अलग अर्था से सम्बद्ध है। यही वात 'आँख लगना' के सम्बन्ध मे भी है, जिसके कई अर्था और रूप है। जैसे--(क) रोगी की आँख लगना, (ख) किसी की प्रतीक्षा मे दरवाजे या रास्ते की ओर आँख लगना, (ग) किसी चीज पर आँख लगना और (घ) किसी व्यक्ति से आँख लगना। इसलिए केवल गडना, खुलना; लगना आदि क्रियाओ से भ्रम मे पड़कर सव प्रयोगो और मुहावरो को एक साथ रखना ठीक नही।

मुहावरो के विवेचन के समय एक और महत्त्वपूर्ण वात पर ध्यान रखना वहुत आवश्यक होता है। हिन्दी मे 'आँख' के दो मुहावरे वहुत प्रचलित है—आँखे निकालना और आँखे फोडना। साधारण मुहावरे के क्षेत्र मे 'आँखे निकालना' का अर्था होता है--क्रोधपूर्ण दृष्टि से किसी की ओर देखना। अर्थात् यह 'आँखे तरेरना' का समानार्थक है। इसके पहले प्रायः 'किसी पर' पद का प्रयोग होता है। 'आँखे फोडना' का प्रयोग लगातार कोई ऐसा

बारीक काम करते रहने के प्रसग मे होता है जिसमे निगाह पर बहुत जोर पड़े। स्त्रियाँ कसीदा काढ़ने मे आँखे फोडती हैं और प्रसवाला को प्रूफ देखने मे आँखे फोडनी पडती हैं। पर हैं ये दोनो मुहावरे दृष्टि शक्ति से ही सम्बद्ध और इनका प्रयोग स्वय कर्ता या वक्ता के ही सम्बन्ध मे होता है। परन्तु प्राचीन काल म दण्डस्वरूप भी किसी की आँखे निकाली या फोडी जाती थी और अब भी डराने धमकाने के लिए कहा जाता है—मेरी तरफ देखोगे तो आँखे निकाल लूँगा या फोड दूँगा। इन प्रयोगो क सम्बन्ध मे दो बातें ध्यान देने की हैं। एक तो यह कि इन व्यापारो का परिणाम कर्ता या वक्ता पर नही, बल्कि दूसरा पर होता है—मध्यम पुरुष के उद्देश्य से होता है। और दूसरी सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि ऐसे प्रयोग मुहावरे के क्षेत्र या परिभाषा म कभी आ ही नही सकते, क्योकि इनमे 'निकालना' या 'फोडना' क्रियाओ का प्रयोग आँख के साथ बिलकुल साधारण क्रिया के रूप में होता है—ये आँखो से सम्बद्ध क्रिया प्रयोग मात्र हैं। हम कहते हैं—(क) उसने दीवार पर अपना सिर पटककर फोड लिया। अथवा (ख) तुमने बच्चे की लापरवाही से उठाकर उसका हाथ तोड दिया। बिलकुल साधारण अर्थ में ऐसे प्रयोग कभी मुहावरे नही कहलाते। हाँ, विशिष्ट अर्थों और विशिष्ट प्रसगो मे भले ही इनका प्रयोग मुहावरे के रूप मे होता हो। जैसे—(क) तुम्हारे साथ बहस करने मे कौन सिर फोडे ! अथवा (ख) इनके सब अधिकार (या सम्पत्ति) छीन लो और इन्हे हाथ पर तोडकर (अर्थात् अकर्मण्य और निष्क्रिय बनाकर) घर म बठा दो। साराश यह कि जिन प्रयोगो म मुहावरो वाला मुख्य लाक्षणिक तत्त्व न हो उन्हे मुहावरो के अन्तर्गत नहीं मानना चाहिए और साधारण क्रिया प्रयोगवाले विभाग मे ही रखना चाहिए। हाँ, 'आँख निकालना' और आँख फाडना का साधारण अर्थ कोशो म इस दृष्टि से अब य रहना चाहिए कि य दण्ड देने के ऐसे प्राचीन प्रकार थे जो आजकल के सभ्य जगत् म नही रह गये हैं। × ×

आंतिक—वि० [स०] दे० अन्तिम आतिक, आवसानिक और समापक या सामापिक।

आईन—पु०=अनुविधि दे० विधि और सविधि।

आकलन—पु० [स०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन।

आकांक्षा—स्त्री० [स०] दे० 'इच्छा, कामना, अभिलाषा, आकाक्षा और स्पृहा।

आकाश—पु० [स०] दे० 'अंतरिक्ष, आकाश, व्योम और महाव्योम'।
आक्रमण—पु० [सं०] दे० 'अभियान, आक्रमण, धावा, लाम और लामबन्दी'।

आक्षेप [बौछार] अभिक्षेप [छींटा]

Aspersion Reflection

और भर्त्सना [फटकार]

Stricture

इस वर्ग के शब्द ऐसे कथनो या वक्तव्यो के वाचक हैं जिनमे किसी के अनुचित अनुपयुक्त या दूषित कार्य अथवा व्यवहार की कुछ कटु आलोचना की गई हो और उस पर ठीक मार्ग से च्युत होने का आरोप किया गया हो।

'आक्षेप' [पु० स०] के आरम्भिक अर्थ हैं—ऊपर से गिरना, किसी पर कुछ गिराना, कोई चीज दूर हटाना या फेकना आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे यह किसी की कही हुई ऐसी बात का वाचक होता है जो किसी दूसरे के आचरण, कार्य या व्यवहार को अनुचित और निंदनीय ठहराने के लिए और उसे दोषी या भ्रात सिद्ध करने के लिए कही जाती है। ऐसी बात कुछ कठोर तो होती ही है; कुछ अवस्थाओ मे ऐसी बात व्यंग्यात्मक भी होती है। इसका मुख्य उद्देश्य उस आदमी को लज्जित करना तो होता ही है कुछ सोचने-समझने पर विवश करना भी होता है; जैसे—(क) उनके भाषण (या लेख) मे हिन्दी वालो पर कई प्रकार के आक्षेप भी थे। (ख) उनकी बातो मे प्रायः अपने संगी-साथियो पर कुछ न कुछ आक्षेप रहता ही है। इसके स्थान पर हिन्दी के 'बौछार' शब्द का भी प्रयोग हो सकता है।

'अभिक्षेप' [पु० स०] मेरी समझ मे अंग्रेजी के Reflection के लिए अधिक उपयुक्त होगा। एक दो कोशो मे मुझे इसके लिए 'अविक्षेप' शब्द मिला है, परन्तु एक विशिष्ट कारण से मुझे यह कुछ ठीक नही जान पडता। संस्कृत मे 'अधि' का एक अर्थ ऊँचाई पर से या ऊपर से भी होता है परन्तु Reflection का जो आशय या भाव प्रस्तुत प्रसग मे बतलाया गया है; उसमे ऊँचाई या ऊपरवाला कोई तत्त्व नही है। हाँ, उसमें अप्रत्यक्ष रूप से या कहीं से परवर्तित होकर आने का तत्त्व प्रधान हो। 'अभि' का एक अर्थ

बाहर ही। यह मुख्य रूप से पूर्णता की वह स्थिति ही है जिसका कल्पित चित्र हम अपने मानस पट पर अंकित कर लेते हैं। इसी लिए हम कहते हैं—महात्मा गाँधी ने भारत के लिए राम राज्य को आदर्श माना था। परन्तु कुछ अवस्थाओं में हम किसी प्रस्तुत अथवा वर्तमान गुण, तथ्य या विशेषता को अनुकरणीय और श्रेष्ठतम मानकर काम चलाने के लिए उसे भी आदर्श कह लेते हैं, परन्तु वह होना चाहिए जनसाधारण की पहुँच के बाहर ही, जैसे—आज भी बहुत से भारतवासी तथा विदेशी लोग महात्मा गांधी के चरित्र और जीवन को अपना आदर्श मानते हैं। हिन्दी में इसके स्थान पर नमूना (फा० नमून) का भी प्रयोग होता है।

'प्रतिमान' का मुख्य अर्थ है—किसी के जोड़ की या बराबरी करनेवाली चीज या बात। परन्तु आज कल हिन्दी में अँगरेजी के माडल (Model) के अनुकरण पर इसमें दो नये अर्थ लग गये हैं। पहले नये अर्थ में अब यह ऐसी अच्छी, पूर्ण अथवा सुन्दर वस्तु का वाचक होता है जिसके अनुकरण पर हम वैसी ही दूसरी चीज या चीजें बनाते हैं। चित्रकला, मूर्तिकला आदि में चीजों के सिवा व्यक्तियों का भी इसमें अन्तर्भाव होता है। इसमें मुख्य भाव यही है कि पहले कोई चीज नमूने के तौर पर अपने सामने रख ली जाय और तब उसके अनुरूप दूसरी कोई चीज या बहुत सी चीजें बनाई जायँ, जैसे—(क) उन्होंने पहले कई प्रकार के अच्छे विदेशी खिलौने चुनकर अपने पास प्रतिमान के रूप में रख लिए और तब उन्हीं के अनुरूप खिलौने बनाने के लिए एक कारखाना खोल दिया, और (ख) अनेक चित्रकार और मूर्तिकार पहले किसी बलिष्ठ या सुन्दर व्यक्ति को अपने सामने प्रतिमान के रूप में रखकर उसका चित्र या मूर्ति बनाते हैं। अपने इस अर्थ में यह ऐसी चीज या व्यक्ति का वाचक होता है जो पहले से हमारे सामने वर्तमान हो और जिसका अनुकरण हम अपनी कृति में करते हों। दूसरे अर्थ में भी मुख्यता तो उक्त बातों की ही होती है, परन्तु एक विशिष्ट अन्तर यह होता है कि इसमें हमारा प्रतिमान पहले से उपस्थित या वर्तमान नहीं होता बल्कि हमें स्वयं अपनी कल्पना अथवा कौशल से उसका रूप प्रस्तुत करना पड़ता है। कारीगरों को जब कोई मकान या मूर्ति बनानी होती है तब वे पहले अपनी कल्पना से उसका एक छोटा सा प्रतिमान प्रस्तुत करके अपने सामने रख लेते हैं, और तब उसके आकार प्रकार, गुण-दोष रंग रूप आदि का अच्छी तरह विवेचन करते हैं, और यदि आवश्यकता हो तो उसमें कुछ परिवर्तन या सुधार भी कर लेते हैं। जब उनकी दृष्टि में वह बदला या सुधरा हुआ रूप बिलकुल ठीक

और निर्दोप ठहरता है तव वे उसी के अनुरूप पूरा मकान या बडी मूर्ति बनाते हैं। प्रत्येक दशा मे प्रतिमान वह वस्तु है जिसकी अनुकृति प्रस्तुत की जाती है, फिर चाहे वह पहले से वर्तमान हो अथवा अपनी कल्पना से नई बनाई जाय।

इसी प्रकार 'प्रतिरूप' भी हमारे यहाँ का पुराना शब्द है जिसका विशेषण रूप मे अर्थ होता है--जाली या नकली, और सज्ञा रूप में अर्थ होता है--प्रतिमा या मूर्ति। परन्तु आज-कल यह भी अँगरेजी के मॉडल (model) वाले उन अर्थों मे ही प्रयुक्त होने लगा है जिनका विवेचन ऊपर 'प्रतिमान' के अन्तर्गत हुआ है। हिन्दी मे आदर्श, प्रतिमान और प्रतिरूप तीनो के स्थान पर फारसी का 'नमूना' शब्द भी प्रचलित है।

सस्कृत मे 'मान' के अनेक अर्थ हैं; जैसे--नाप, तौल, लबाई, चौड़ाई, आकृति की समानता आदि। प्रस्तुत प्रसग मे 'मान' शब्द इन बातो का सामूहिक वाचक माना गया है और इसी अर्थ के विचार से उसमे 'क' प्रत्यय जोड़कर 'मानक' शब्द बनाया गया है।* आशय की दृष्टि से मानक भी बहुत कुछ वही कहा जा सकता है जो 'आदर्श' है। आदर्श तक पहुँचना तो यदि असम्भव नही तो बहुत कुछ कठिन अवश्य होता है। परन्तु मानक की स्थापना इसी उद्देश्य से होती है कि लोग अपने व्यावसायिक उत्पादनों मे भी उसे अपना लक्ष्य बनाकर उस तक पहुँचे ही। इसके सिवा मानक प्राय: नियम, परिपाटी, विधान आदि पर आश्रित होता है, और उस तक पहुँचना कठिन तो हो सकता है परन्तु असम्भव नही। वह प्रामाणिकता का ऐसा प्रतीक होता है जिसका पालन लोगो के लिए आवश्यक कर्तव्य माना जाता है। किसी वस्तु का नाप-तौल, रूप-रग, आकार-प्रकार अथवा किसी बात के गुण, महत्व, विशेषता आदि जाँचने और स्थिर रखने के लिए प्राय: आधिकारिक रूप से जो प्रतिमान सब जगह अनुकरणीय माना है, वही मानक कहलाता है। इसी मानक के विचार से चीजो या बातों के बढिया-घटिया और अच्छे-बुरे होने का अनुमान तथा निर्णय किया जाता है। औषधो, दैनिक व्यवहार की वस्तुओ, रासायनिक उत्पादनो (जैसे--तेल, मद्य आदि) का

* प्राय १५-१६ वर्ष पहले मैंने 'अच्छी हिन्दी' के किसी आरभिक सस्करण मे अँगरेजी 'स्टैन्डर्ड' के लिए 'मानक' शब्द सुझाया था। उस समय कुछ लोगो ने इस पर कड़ी टिप्पणी भी की थी। पर अब यह शब्द अच्छी तरह चल गया है, और भारत सरकार ने इसे मान लिया है।

भी आधिकारिक रूप से मानक स्थिर कर लिया जाता है और उद्योग धंधों मे लगे हुए कल कारखानो और लोगो से यह आशा की जाती है कि वे अपनी चीजें इसी मानक के अनुरूप तयार करें—उनमे किसी प्रकार का घाल मेल या मिलावट न करें। इसी तरह प्राय लोग कुछ और क्षेत्रो म भी अपनी दृष्टि से कोई मानक स्थिर कर लेते हैं और कहते हैं—(क) आज कल अमुक पत्र या पत्रिका अपने मानक से गिर गई है, अथवा (ख) वे अपनी साहित्यिक रचनाओं का मानक दिन पर दिन ऊँचा करते चलते हैं। आशय यही होता है कि साधारणत जो अच्छी स्थिति होनी चाहिए या रहती है उससे (१) पत्रिका नीचे गिरती जा रही है, या (२) रचनाए ऊपर उठती जा रही हैं। किसी चीज को मानक रूप देने का काम मानकीकरण कहलाता है। × ×

आदर्शवाद और यथार्थवाद
Idealism Realism

भारतीय साहित्य म ये दोनो विचारधाराएँ पाश्चात्य साहित्य के संपर्क से आई है। साधारणत लोग इन्हें परस्पर विरोधी समझते हैं परन्तु वास्तव मे ये दोनों परस्पर पूरक होती हैं और इनम अन्योन्याश्रय सम्बन्ध होता है। कारण यह कि सभी जातियो और सभी देशो म साहित्य की रचना समाज की यथार्थ और वास्तविक स्थिति पर ही आश्रित होती है परन्तु उसका उद्देश्य समाज को उन्नत करना होता है। इसी लिए उसमें एक ओर तो यथार्थ का आधार या भूमिका होती है और दूसरी ओर उसके ऊपर आदर्श का भव्य भवन निर्मित होता है। पर तु न जाने क्यों पाश्चात्य साहित्यकारों ने इन्हें दो भिन्न भागों म विभक्त करके एक को दूसरे से पृथक् कर रखा है।

लौकिक और व्यावहारिक दृष्टि से आदर्शवाद वह मत या सिद्धान्त है जिसमें यह माना जाता है कि मनुष्य को अपनी दृष्टि के सामने सदा अच्छी से अच्छी बातें या आदर्श रखने चाहिएँ और उनकी प्राप्ति तथा सिद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। दार्शनिक दृष्टि से इसका मुख्य उद्देश्य चिरन्तन सत्य तक पहुँचकर आत्मिक या आध्यात्मिक सुख प्राप्त करना होता है। परन्तु कला और साहित्य के क्षेत्र म यह उस विशिष्ट प्रणाली का सूचक हो गया है जिसमे किसी कृति में उत्तम कल्पित आदर्शों की अभिव्यक्ति और स्थापना करने का प्रयत्न किया जाता है और उस यथार्थवाद का

रूप देने अथवा आदर्श की ओर प्रवृत्त करने का कौशल प्रधान होता है। इसमे यथार्थ के लौकिक स्तर से ऊपर उठकर अधिक कल्याणकारी और सुन्दर धारणा अथवा विचारणा का प्रतिपादन होता है।

यथार्थवाद का मूल यूनानी दार्शनिक अफलातून (प्लैटो) के इस मत या सिद्धात मे माना जाता है कि हमे जिस अमूर्त या मूर्त बात या वस्तु का वोध होता है, वह यथार्थ मे स्वतन्त्र सत्तावली इकाई होती है। कुछ फ्रांसीसी लेखको ने इसी आधार पर यह मत प्रतिपादित किया था कि साहित्य मे समाज के प्रस्तुत यथार्थ या वास्तविक घटनाओ और स्थितियों का ही उल्लेख और विवेचन होना चाहिए, कल्पित भावनाओं और विचारों से लेखको को बचना चाहिए। साहित्य से आगे वढकर यह मत कला के क्षेत्र में भी चल पड़ा था। आज-कल हमारे साहित्य मे इस मत के समर्थक कहते हैं कि प्रत्येक घटना या बात अपने यथार्थ रूप मे चित्रित की जानी चाहिए। इसमें आदर्शो का ध्यान छोड़कर उसी रूप मे कोई चीज या बात लोगो के सामने रखी जाती है, जिस रूप मे वह नित्य या प्रायः लोगो के सामने आती रहती है। इसमे कर्ता न तो अपनी ओर से टीका टिप्पणी करता है, न अपना दृष्टिकोण बदलता है और निष्कर्ष निकालने का काम दर्शको या पाठको पर छोड़ देता है। परन्तु इस पक्ष का एक दूसरा आपत्तिजनक अंग या पार्श्व भी है। अनेक अवसरो पर यथार्थ बहुत कुछ गर्हित, जघन्य या वीभत्स भी होता है, और कुछ लेखक यथार्थवाद के नाम पर अपनी कृतियों मे उसी दूषित और हीन रूप का चित्रण करने लगते हैं जिससे समाज मे अश्लीलता और कुरुचि का प्रसार होने लगता है। समाज के विशुद्ध सुधार की दृष्टि से यथार्थ का चित्रण ऐसा होना चाहिए जो लोगो को त्रुटियो और दोषो से वचने के लिए प्रवृत्त करे। कवीर, तुलसी आदि ने भी अपनी कृतियो मे अपने समय के समाज का वहुत कुछ यथार्थ चित्रण किया है; परन्तु ऐसे रूप मे किया है कि लोग दोषो और वुराइयो से वचकर ठीक रास्ते पर चले। यही वह स्थिति है जिसमे यथार्थ की भीत पर आदर्श का भवन वनता है।

× ×

आदि—पुं० [सं०] दे० 'अथ, आदि, आरम्भ और समारभ'।

आदिकल्प—पुं० [सं०] दे० 'कल्प और युग'।

आदेश—पुं० [स०] दे० 'आज्ञा, आदेश, निदेश और निर्देश'।

आन

मानव कोश का सम्पादन करते समय मुझे जो बहुत से पेचीदे और विकट शब्द मिले थे उन्हीं में 'आन' भी है। मैं पेचीदे और विकट उन शब्दों को मानता हूँ जो आशय और प्रयोग की दृष्टि से अनेक प्रकार की अर्थी छायाओं से युक्त हों, जिनके अर्थों वर्गीकरण तथा विकास का क्रम निरूपित करने में अनेक प्रकार की जटिल समस्याएँ सामने आती हों। तिस पर यदि ऐसे शब्दों के अनेक शब्द भेद भी हों और उनकी अलग अलग निरुक्तियाँ या व्युत्पत्तियाँ भी स्थिर करनी पड़ती हों तो उनका विवेचन और भी पेचीदा तथा विकट हो जाता है। 'आन' भी ऐसे ही शब्दों में है।

हिंदी शब्द सागर में 'आन' के अर्थ दिये गये हैं—१ मर्यादा, २ शपथ, सौगन्ध, कसम, ३ दुहाई, विजय घोषणा, ४ ढंग, तर्ज, अदा, ५ क्षण अल्पकाल, ६ अकड़ ऐंठ, दिखावा, ७ अदब, लिहाज दबाव लज्जा, शर्म, हया, ८ प्रतिज्ञा, प्रण, हठ, टेक। उक्त कोश में एक तो ये सब अर्थ एक ही व्युत्पत्ति के अंतर्गत आये हैं दूसरे इनमें कोई व्याख्या नहीं है, पर्याय ही पर्याय हैं और तीसरे कई वर्गों में ऐसे पर्याय भी हैं जो एक दूसरे के वाचक नहीं हैं, और फलत निरर्थक तथा भ्रामक हैं। फरहंग आसफिया, मुहज्जब उल्लुगात आदि उर्दू कोशों में भी कुछ इसी तरह के पर्याय हैं जिनमें अंदाज, अदा नाज, शान आदि पर्याय भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। साराश यह कि कहीं इसकी कोई ऐसी परिभाषा या व्याख्या नहीं मिलती जिससे अन्य भाषा भाषी इसका ठीक ठीक अर्थ और आशय जान सकें, इसके भिन्न भिन्न अंशों का काम क्षेत्र समझ सकें और इसकी आत्मा तक पहुँच सकें। इसी लिए इसका सारा विवेचन करने में उस समय मुझे पूरे ५ दिन लग गये थे। यह बात आज से ७ ८ वर्ष पहले की है। उसके बाद इधर मुझे इसके और भी कई सूक्ष्म अर्थ भेद तथा प्रयोग मिले, जिनके कारण मुझे पुराने विवेचन का अधिकांश फिर से दोहराकर ठीक करना पड़ा। इसी लेख की सब बातें पुराने और नये दोनों विवेचनों के निष्कर्ष के रूप में हैं।

अपने परम प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थों में 'आन' संस्कृत 'आणि' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है—प्रतिष्ठा या मर्यादा। उर्दू वाले जो इस शब्द को फारसी का मानते हैं, उसका मूल आधार भी यही है। तात्विक दृष्टि से अपने प्राथमिक अर्थ में 'आन' की परिभाषा होनी चाहिए—'परम्परा

प्रतिज्ञा, सकल्प, सिद्धान्त आदि के निर्वाह या पालन की वह दृढ भावना जिसके मूल मे अपनी या अपनी जाति, वर्ग, समाज आदि की प्रतिष्ठा या मर्यादा की रक्षा का विचार प्रधान होता है।' मानक कोश मे यही परिभाषा दी गयी है और इसके ये उदाहरण दिये गये हैं—(क) वीर लोग अपनी आन पर प्राण देते हैं। (ख) वह आनवाला रोजगारी है, सहज मे नही दवेगा। आगे चलकर इसका दूसरा अर्थ होता है—'किसी की उक्त भावना या गौरव के आधार पर या उसका स्मरण कराते हुए दी जानेवाली दुहाई (दे० 'दुहाई') या की जानेवाली पुकार।' तीसरा अर्थ होता है—'उक्त के आधार पर दी जानेवाली शपथ या सौगन्ध।' जैसे—तुम्हे भगवान की आन है, वाल-वच्चो को इस प्रकार असहाय छोडकर कही मत जाना। आगे चलकर इसका एक और अर्थ होता है—'किसी की मर्यादा या महत्त्व के प्रति मन मे होनेवाली आदरपूर्ण धारणा या पूज्य वुद्धि।' उदाहरण के रूप मे उर्दू का यह शेर है—ठढियाँ निकली हैं वच्चे को पड़ा फिरता है। कुछ किसी वात की भी आन है गोइयाँ तुमको—जान साहव। इसी अर्थ के आधार पर एक मुहावरा भी प्रचलित है—'(किसी की) आन मानना, जिसके दो अर्थ होते हैं। एक तो यह कि वड़ो का आदर करते हुए उनके सामने नम्रता और शालीनता का व्यवहार करना; जैसे—भले घर की स्त्रियाँ वडे-वूढो की आन मानती है। और दूसरा अर्थ यह होता है—किसी का वडप्पन या महत्त्व देखकर उसके सामने झुकना या दवना, जैसे—देखकर कुरती गले मे सब्जवानी आपकी। धान के भी खेत ने है आन मानी आपकी।—नजीर।

फिर इसका एक और अर्थ होता है—'अपनी मर्यादा, सुरक्षा आदि के विचार से किया जानेवाला कोई ऐसा निश्चय जिसके फलस्वरूप किसी काम या वात का निषेध या वर्जन होता हो।' जैसे—(क) तुम्हे तो हमारे यहाँ आने की आन है। (ख) उनके घर मे हरी चूडियो की आन है। फिर हम यह भी कहते हैं—'उसे न जाने क्या आन पड गयी है कि वह किसी तरह मनाये नही मानता।' ऐसे अवसरो पर इसका आशय होता है—अपनी मर्यादा आदि की रक्षा के विचार से किया जानेवाला ऐसा दृढ निश्चय या सकल्प जो जिद या हठ के रूप मे परिणत हो गया हो। और जव हम कहते हैं—'तुम तो वात-वात मे अपनी आन ही दिखाते रहते हो', तो आशय होता है—अपनी मर्यादा, महत्व आदि की उत्कट भावना के कारण उत्पन्न होनेवाला मिथ्या अभिमान अर्थात् अकड या ऐंठ। मेरी समझ मे प्रस्तुत प्रसग

में इसके उक्त भावी विकास का ध्यान रखते हुए शब्दकोशों में इसके अर्थों का वर्गीकरण और विवेचन बहुत कुछ इसी रूप में होना चाहिए।

अब इस शब्द के दूसरे भावी क्षेत्र में आइये। हम कहते हैं—उसने ऐसा आन से कविता पढ़ी (या ठुमरी गायी) कि सब लोग वाह वाह करने लगे, अथवा—उसकी हर आन बहुत भली मालूम देती है। ऐसे अवसरों पर इसका अर्थ होता है—किसी काम या बात का ऐसा ढंग, प्रकार या स्वरूप जो अनोखा या निराला होने के सिवा आकर्षक तथा हृदयग्राही भी हो, इस से और आगे बढ़ने पर इसका अर्थ होता है—अदा अर्थात् लुभावनी अंग भंगी या मनोहर हाव भाव। यहाँ भी यह है तो उसी संस्कृत 'आणि' से व्युत्पन्न, परन्तु इसका सम्बन्ध उसके 'प्रतिष्ठा' या 'मर्यादा' वाले अर्थ से नहीं है बल्कि मर्मस्थल या उसे स्पर्श करनेवाले तत्त्व से है।

फिर 'आन' का एक और अर्थ होता है—बहुत ही थोड़ा समय, क्षण या पल। इस अर्थ में यह मूलतः अरबी का शब्द माना जाता है, परन्तु इसका सम्बन्ध संस्कृत के उस 'आन' शब्द से भी हो सकता है जिसका पहला अर्थ होता है—उतना समय जितना एक बार साँस लेने में लगता है। जब हम कहते हैं—'आन की आन में ही वहाँ का सारा नक्शा बदल गया', तब इसका प्रयोग इसी अर्थ या आशय से सम्बद्ध होता है। इसी से और आगे बढ़कर यह साधारण काल या समय का भी वाचक हो जाता है, यथा—
मिली के बिछुरन मरन कि आना।—जायसी।

पूरबी हिन्दी में यह शब्द विशेषण रूप में 'अपर' या 'दूसरा' के अर्थ में भी प्रचलित है और वहाँ यह संस्कृत 'अन्य' से बना है। बोलचाल में पूरबी हिन्दी में इसका प्रयोग कुछ इस प्रकार होता है, जैसे—तुम तो इसी तरह आन का आन समझ लेते हो। आशय होता है—कहा तो कुछ और जाता है पर तुम समझते हो कुछ और।

कुछ क्रियाओं और विशेषणों के अन्त में यह (आन) प्रत्यय के रूप में भी लगता है और इसके संयोग से प्रायः भाववाचक संज्ञाएँ बनती हैं, जैसे—उठना से उठान, मिलना से मिलान, ऊँचा से ऊँचान, चौड़ान आदि। इस प्रत्ययवाले रूप और अर्थ की चर्चा अभी तक किसी कोश में नहीं हुई है पर व्याकरणों में अवश्य है। मेरी समझ में प्रत्ययों की चर्चा भी कोशों में रहना बहुत आवश्यक है और इसी लिए मैंने इसे मानक कोश में भी और यहाँ भी स्थान दिया है।

इस प्रत्ययवाले रूप के सम्वन्ध मे ध्यान रखने की एक और वात यह भी है कि इस प्रत्यय से युक्त कुछ शब्द तो पुंलिंग के रूप मे प्रचलित मिलते हैं और कुछ शब्द स्त्रीलिंग के रूप मे। भाषा-तत्वज्ञो और वैयाकरणो के लिए यह विषय विशेप रूप से विचारणीय है। मैं तो इस पर विचार करूँगा ही, यदि अन्य सज्जनो के ध्यान में इसके कुछ कारण आवे तो वे मुझे सूचित करने की कृपा करे। × ×

आनुतोषिक—पुं० [स०] दे० 'पारितोपिक, पारिश्रमिक, पुरस्कार, आनुतोपिक और अनुवृत्ति।'

आपत्कालीन स्थिति—स्त्री० [स०] दे० 'आपात, आपातिक स्थिति और अपस्थिति (या विस्थिति)।'

आपात आपातिक-स्थिति और अपस्थिति
Emergency, Emergency; Crisis
या विस्थिति

इस वर्ग के शब्दो का प्रयोग ऐसे अवसरो या स्थितियो के सम्वन्ध में होता है जिनमे किसी चलते हुए काम मे कोई जटिल या विकट वाधा उपस्थित होती है और जिनमे यह सोचना पड़ता है कि यह वाधा किस प्रकार दूर की जाय।

'आपात' पु० [सं०] का मूल अर्थ है ऊपर या वाहर से अचानक आकर गिरना या उपस्थिति होना परन्तु अपने विकसित अर्थ मे यह ऐसी आकस्मिक घटना का वाचक हो गया है जो लोगों को चकित और विचलित कर दे। जातियो, राष्ट्रो, व्यक्तियो और सस्थाओ के चलते हुए कामो मे कभी-कभी अचानक जो वहुत वडी गडवड़ी या विकट समस्या आ उपस्थित होती है, यह शब्द अव उसी का वाचक हो गया है। अचानक देश मे वहुत वडी वाढ या भूकम्प आ जाता है अथवा वहुत वड़ी क्राति या विद्रोह के लक्षण दिखाई पडते हैं। ऐसी घटनाओ की न तो पहले से कभी कल्पना ही की जा सकती है और न कभी संभावना ही प्रतीत होती है। परन्तु इनका विकट स्वरूप देखते हुए यह आवश्यक होता है कि वहुत समझ वूझकर और तत्काल ऐसा निराकरण या मीमासा की जाय जिससे विगडती हुई वात फिर वन जाय और आगे विगडने की सम्भावना न रह जाए। इससे विशेषण रूप 'आपातिक'

करता है। जिसके स्थान पर उर्दू वालों की देखा देखी अब कुछ लोग 'हंगामी' (फा० हंगाम = उथल-पुथल, उपद्रव, विप्लव आदि) का भी प्रयोग करने लगे हैं।

आपातिक स्थिति' स्त्री० [स०] वही आकस्मिक, जटिल और विकट स्थिति है जिसका उल्लेख ऊपर 'आपात' के अन्तर्गत हुआ है। साधारणतः हिन्दी में 'आपात' का प्रयोग न करके प्राय आपातिक स्थिति का ही प्रयोग करते हैं। कुछ लोग इन पारिभाषिक शब्दों से यथोचित अपरिचित होने के कारण ही आपत्कालीन स्थिति' और सङ्कटकालीन स्थिति का भी प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार विशेषण आपातिक की जगह सङ्कटपूर्ण या सङ्कटमय का भी प्रयोग करते हैं। ऐसी विकट स्थिति उत्पन्न होने पर प्रमुख कार्य कर्ताओं या व्यवस्थापकों की जो सभा या समिति विचार करने के लिए बुलाई जाती है उसके सम्बन्ध में 'आपातिक बैठक या आपत्कालीन बैठक' सरीखे पदों का प्रयोग अधिक अच्छा होगा न कि सङ्कटकालीन बैठक या सभा सरीखे पदों का। औद्योगिक व्यापारिक शासकीय आदि क्षेत्रों में प्राय: अस प्राय आपातिक स्थितियाँ उत्पन्न होती रहती हैं जिनकी चर्चा जन साधारण प्राय समाचार पत्रों में देखते रहते हैं।

अपस्थिति स्त्री० [स०] 'स्थिति' के पहले 'अप' उपसर्ग लगने से बना है। अंग्रेजी के क्राइसिस (Crisis) के लिए अभी तक कोई अच्छा और चलता हुआ शब्द मेरे देखने में नहीं आया है इस लिए मेरा सुझाव है कि 'क्राइसिस' के लिए यदि इसका प्रचलन हो जाय तो अच्छा हो अथवा इसके बदले में 'विस्थिति (विकट या विकृत स्थिति)' का भी प्रयोग हो सकता है, परन्तु मेरी समझ में अपस्थिति' ही सुगम और सुबोध है। ऐसी स्थिति 'आपातिक स्थिति' की तुलना में होती तो बहुत कुछ हलकी ही है फिर भी इसमें किसी बड़े उलट पलट का खटका लगा ही रहता है और इसी लिए यह बहुत कुछ चिन्ताजनक भी होती है। यदि कोई या कई बैंक या महाजनी कोठियाँ सहसा अपना देन चुकाना या कारबार करना बंद कर दें तो बाजार में खलबली मच जाती और अपस्थिति उत्पन्न हो जाती है। राजनीतिक क्षेत्र में यदि कुछ विरोधी दल आपस में मिल जाय अथवा आपस में मिले हुए दल एक दूसरे का साथ छोड़ दें तो भी शासन के क्षेत्र में खलबली मच जाती और अपस्थिति उपस्थित हो जाती है। यदि किसी रोगी की स्थिति सहसा अधिक बिगड़ जाय तो उसे भी अपस्थिति कहेंगे। × ×

आपातिक—दे० 'आपात, आपातिक स्थिति और अपस्थिति या विस्थिति'?

आपातिक स्थिति—स्त्री दे० 'आपात, आपातिक स्थिति और अपस्थिति या विस्थिति'।

आपूर्ति—स्त्री० [सं०] दे० 'पूर्ति, अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति'।

आफत—स्त्री० [फा०] दे० 'विपत्ति और संकट'।

आयु, अवस्था और वय
Age

इस वर्ग के शब्द प्राणियो के जीवन-काल की विभिन्न और विशिष्ट प्रकार की स्थितियो के वाचक हैं। परन्तु कुछ लोग इनके सूक्ष्म आर्थी भेदों का ध्यान न रखकर एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं।

'आयु' स्त्री० [सं०] वस्तुतः किसी प्राणी या व्यक्ति के समस्त जीवन-काल की सूचक है। जन्म से मरण तक का सारा काल आयु है ज्योतिषी लोग जन्म-पत्री मे आयु-भाव देखकर यह बतलाते हैं कि जातक कितने दिनो तक जीवित रहेगा। आयुर्वेद में जन्म से मरण तक होनेवाले सभी प्रकार के रोगों का विवेचन भी होता है और समस्त जीवन-काल मे स्वस्थ रहने के उपाय भी बतलाये जाते हैं। छोटे बच्चो आदि को आशीर्वाद देने के समय भी और बडो के प्रति शुभ-कामना प्रकट करने के समय भी कहा जाता है तुम दीर्घ जीवी हो अथवा आप दीर्घायु हो।

'अवस्था' स्त्री० [सं०] मुख्यतः जीवन-काल के उतने अंश या भाग की वाचक है जितना कोई व्यक्ति किसी कथित समय मे पूरा कर चुका या बिता चुका हो; जैसे—(क) बारह वर्ष की अवस्था मे ही वे विरक्त होकर घर से निकल पडे थे। (ख) बीस वर्ष की अवस्था मे ही वे वकालत करने लगे थे। परन्तु बहुत से लोग ऐसे अवसरो पर भी 'अवस्था' के स्थान पर 'आयु' का प्रयोग कर जाते हैं, जो ठीक नही है। प्रायः सामयिक पत्रो मे छोटे बच्चों की लिखी हुई कविताओ, कहानियो पर उनके नाम के साथ लिखा होता है—आयु १२ वर्ष, आयु १४ वर्ष आदि। अस्पतालो आदि मे रोगियो को जो परची लिखकर दी जाती है, उसमे भी एक कोष्टक के ऊपर प्रायः 'आयु' लिखा रहता है जो ठीक नही है। उक्त दोनो स्थितियो में 'आयु' की जगह 'अवस्था' का ही उपयोग होना चाहिए। आयु और अवस्था दोनो के स्थान पर हिन्दी मे उमर 'अ० उम्र' का भी प्रयोग होता है।

इसके सिवा अवस्था का प्रयोग जीवन काल के कुछ विशिष्ट और विस्तृत विभागों के लिए भी होता है जैसे—बाल्यावस्था, युवावस्था वृद्धावस्था आदि। इसके सिवा कुछ विशिष्ट प्रकार की स्थितियों के सम्बन्ध में भी यह शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे—जीवितावस्था, मरणावस्था, रुग्णावस्था आदि। ऐसी अवस्थाओं में यह दशा या स्थिति का ही वाचक होता है, काल मान का नहीं।

'वय' पु० [स० वयस्] भी मुख्यत उन्हीं अर्थों का वाचक है, जो ऊपर अवस्था के बतलाए गये हैं। फिर भी यह एक दो बातों में उससे कुछ और आगे बढ़ा हुआ है। हम कहते हैं—व्यक्ति के गुणों का आदर होता है, वय का नहीं। ऐसे अवसरों पर वय जीवन के हर एक कालमान का सूचक हो जाता है, किसी विशिष्ट काल मान का वाचक नहीं रह जाता। इसके सिवा वय मनुष्य की उस अवस्था का वाचक होता है जिसमें वह बाल्य काल बिता कर यौवन-काल में प्रवेश करता है और अपने सब काम काज स्वयं करने, समझने और समझने के योग्य हो जाता है। इसी आधार पर 'वयस्क' शब्द बना है, जो ऐसे व्यक्ति का वाचक होता है, जो मानसिक और शारीरिक दृष्टियों से अच्छी तरह पुष्ट और समर्थ या सशक्त हो गया हो, जैसे—जनमत गणना के समय सभी वयस्क पुरुषों और स्त्रियों को मत देने का अधिकार होता है। × ×

आयोग, Commission अधिकरण, Tribunal न्यायाधिकरण Judicial Tribunal परिषद् Council और मण्डल Board

इस वर्ग के शब्द ऐसी समितियों आदि के वाचक हैं जो अनुसंधान, न्याय प्रशासन आदि के कुछ निश्चित कामों के लिए विशेष रूप से नियुक्त की जाती हैं।

'आयोग पु० [स०] का मुख्य अर्थ है—कोई काम पूरा करने के लिए किसी को नियुक्त करना। आज-कल इसका प्रयोग राज्य द्वारा नियुक्त की हुई ऐसी संस्था के लिए होता है जिसे कुछ निश्चित और विशिष्ट कार्यों की पूरी जाँच-पड़ताल करके उन पर अपना मत या विचार व्यक्त करने

का कार्य सौंपा जाता है। आयोग में एक व्यक्ति भी प्रधान अधिकारी हो सकता है और कई भी। इसे अपना अतिम मत और सिफारिशे सरकार के पास भेजनी पड़ती हैं; और तव सरकार उस पर अच्छी तरह विचार करके अपना निर्णय या निश्चय जनता अथवा विधायिका के सामने उपस्थित करती है। आयोग प्राय: उस विपय के अधिकारियों और जानकारो की गवाहियाँ लेता है; और सव वातो की अच्छी तरह छानवीन करके अपना मत या विचार स्थित करता है; जैसे—सरकार ने राष्ट्र-भापा निश्चित करने (अथवा आयकर, लाभकर आदि की विधियो मे संशोधन और सुधार करने) के लिए एक आयोग नियुक्त किया है।

'आयोग' पु० [स०] के प्रारम्भिक अर्थ तो आधार, प्रकरण आदि हैं; परन्तु उसका एक पुराना अर्थ न्यायालय भी है। परन्तु आज-कल इसी न्यायालय वाले अर्थ के आधार पर इसका जो नया परिवर्तित तथा विकसित रूप वना है वह इससे कुछ भिन्न और हमारे यहाँ की पुरानी पंचायतों के रूप से वहुत कुछ मिलता-जुलता है। आज-कल प्राय: किसी विवाद-ग्रस्त विपय का विवेचन करके कुछ निर्णय करने के लिए किसी राजकीय विभाग अथवा अधिकार सम्पन्न वड़ी सस्था के द्वारा जो समिति नियुक्त की जाती है वही अधिकरण कहलाती है। आयोग की तुलना में इसके अधिकार और कार्यक्षेत्र कुछ परिमित होते हैं; और इसका स्वरूप कुछ गौण प्रकार का होता है। अधिकरण के अधिकारी एक भी हो सकते हैं और दो-चार भी। इनका काम दोनो विरोधी पक्षो को समझा-बुझाकर उनमे समझौता कराना होता है ऐसा समझौता प्राय: दोनो पक्षो को मान्य होता है पर यदि किसी कारण मे समझौता न हो, तो अधिकरण अपना निर्णय और मत उच्च अधिकारियो के पास विचारार्थ भेज देता है।

'न्यायाधिकरण' पु० [स०] भी है तो प्रकार का अधिकरण ही; परन्तु इसके अधिकार और कर्तव्य अधिक महत्वपूर्ण भी होते हैं और सर्व-मान्य भी। कारण यह है कि इस अधिकरण के प्रधान अधिकारी प्राय: राज्य के अनुरोध पर उच्च न्यायालयो के द्वारा नियुक्त होते हैं, और वे अधिकारी ऐसे ही लोग होते हैं जो या तो न्याय विभाग मे किसी ऊँचे पद पर काम कर रहे हो अथवा अव उससे अलग होकर अवकाश प्राप्त कर चुके हो। ऐसे अधिकारो का निर्णय अधिकार सम्पन्न न्यायालय के निर्णय के समान ही माना जाता है।

'परिषद्' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है चारो ओर घेरा बनाकर बैठना। परन्तु वैदिक काल मे विद्वानो की वह सभा परिषद् कहलाती थी, जो राजा किसी विषय पर परामर्श लेने, विचार करने और व्यवस्था माँगने के लिए बुलाता था। आज कल भी इसी आधार पर परिषद् किसी बडी सभा या सम्मेलन के अर्थ म प्रचलित है। जसे संस्कृत प्रचारक परिषद्, सगीत परिषद् आदि। बौद्ध काल मे वे निर्वाचित राजकीय संस्थाएँ परिषद कहलाती थी जो (क) राजकीय व्यवस्था, (ख) शिक्षा प्रचार। और (ग) सामाजिक सगठन के लिए बनाई जाती थी। इसी आधार पर आज कल कुछ ऐसी समितियो को भी परिषद् कहते हैं। जो प्रशासनिक कार्यो म राज्य को परामर्श और सहायता देने के लिए नियत की जाती हैं। ऐसी समितियो के कुछ विशिष्ट अधिकार होते हैं और वे आपस म विचार और विमर्श करके कुछ काय प्रणालिया विधियाँ आदि निश्चित करती हैं, और या तो स्वय उन्ह कार्यान्वित करती हैं अथवा शासन को उनके अनुसार काय करने की सम्मति देती हैं, जसे—राज्यपाल या राष्ट्रपति की परामर्श परिषद्। कुछ स्थितियो म विधान सभाओ की विशिष्ट शाखा या उच्च सदन को भी परिषद् कहते हैं। जैसे—विधान सभा ने तो पहले ही अमुक विधान स्वीकृत कर लिया था अब यह विधान परिषद् के पास विचार और स्वीकृति के लिए भेजा गया है।

मडल' पु० [स०] के भी आरभिक अथ हैं—घेरा, चक्र आदि जसे—चन्द्र मण्डल, भू मडल, रास मडल आदि। किसी विशिष्ट प्रकार या रूप वाले भू खड का भी घेरा कहते हैं जसे—व्रजमण्डल। इसके सिवा कुछ विशिष्ट प्रकार के लोगो के वग या समूह को भी मण्डल कहते हैं जसे—मित्र मडल राजकीय मडल आदि। परतु आज कल प्रशासनिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रो मे कुछ विशिष्ट प्रकार के नागरिको अथवा सुविज्ञो के उस वग या समुदाय को मडल कहते हैं जिसके सदस्यो की नियुक्ति शासन की ओर से होती है, और जिसे किसी विशिष्ट प्रकार के काय विभाग की व्यवस्था, नियन्त्रण और सचालन का भार सौंपा जाता है। इसके अधिकार मुख्य रूप से प्रशासनिक तो होते ही हैं कुछ अवस्थाओ म न्यायायिक भी होते हैं, जसे—राजस्वमडल [Revenue Board], वेतनमडल [Wage Board] आदि। कुछ सस्थाओ में ऐसे मडल शासकीय मडलो से भिन्न और निजी भी होते हैं, जसे—क्रिकेट अथवा गेन्द कूद आदि और उनके खिलाडियो का चुनाव

अथवा नियुक्ति करने तथा दल बनानेवाले मडल। पर कुछ लोग इसके स्थान पर भी 'अधिकरण' का प्रयोग करने लगे है, जो ठीक नही है। × ×

आरंभ—पु० [स०] दे० 'अथ, आदि, आरभ, प्रारभ, प्रारभ और समारंभ'।

आरक्षक—पु० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, सरक्षा, और सुरक्षा'।

आरक्षा—स्त्री० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, सरक्षा, और सुरक्षा'।

आरक्षित—भू० कृ० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा सरक्षा और सुरक्षा'।

आलोचना समालोचना और समीक्षा

Criticism Review Review

इस वर्ग के शब्द अभिधार्थ की दृष्टि से बहुत कुछ एक से ही हैं; इसीलिए लोग प्राय इनमे से एक का प्रयोग दूसरे के स्थान पर कर जाते हैं। परन्तु वास्तव मे इन शब्दो के भावार्थ मे बहुत कुछ सूक्ष्म अन्तर है, जिनका ध्यान रखना आवश्यक है।

'आलोचना' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—देखना, और दूसरा अर्थ है—चिन्तन, मनन या विचार करना। अभी कुछ दिन पहले तक उसी अर्थ मे इसका प्रयोग होता था, जो अर्थ नीचे 'समालोचना' मे बताया गया है; परन्तु आज-कल इसका प्रयोग किसी व्यक्ति के कथन, निश्चय या विचार के दोषो का उल्लेख करते हुए उसका विरोध करने और अपनी असहमति व्यक्त करने के लिए होता है; जैसे—प्रधान मत्री के वक्तव्य की विरोधी दलो के नेताओ ने कड़ी आलोचना की। आशय यही होता है कि प्रधान मंत्री के वक्तव्य की त्रुटियाँ और दोष दिखलाए गये; तथा कुछ कठोर शब्दो मे उनका विरोध किया गया।

'समालोचना' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—अच्छी तरह देखना और ध्यान पूर्वक विचार करना। परन्तु आज-कल इसका प्रयोग किसी कलात्मक, वैज्ञानिक अथवा साहित्यिक कृति अथवा रचना के सम्बन्ध में विचार पूर्वक कही जाने वाली बातो और सम्मतियों के सम्बन्ध मे होता है। वास्तविक अर्थ मे 'समालोचना' ऐसे मत या सम्मति की वाचक है, जो

किसी कृति के गुणों और दोषों का अच्छी तरह विवेचन करते हुए व्यक्त की जाती है। किसी कृति की समालोचना के लिए अच्छे अध्ययन और विशेष ज्ञान की आवश्यकता तो होती ही है, साथ ही यह भी आवश्यक होता है कि उसमें किसी प्रकार का द्वेष या पक्षपात न हो और जो कुछ कहा जाय उसका रूप शिक्षात्मक हो। आज-कल सामयिक पत्रों में पुस्तकों आदि की जो समालोचनाएँ होती हैं उनका मान यही होना चाहिए।

'समीक्षा' स्त्रीलिंग भी है तो बहुत कुछ वही जो 'समालोचना' है, फिर भी यह उससे कुछ भिन्न है। समालोचना में तो समालोचक अपने निजी विचार भी प्रकट करता है पर समीक्षा में यह बात नहीं होती। जब कहीं कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना या बात होती है तब उसका संक्षिप्त विवरण लोगों के सामने उपस्थित करने को ही 'समीक्षा' कहते हैं। आज-कल रेडियो पर बाजार भाव की जो समीक्षा होती है, उसमें चीजों की दरों आदि के उतार-चढ़ाव और वर्तमान स्थिति का ही उल्लेख रहता है। इसी प्रकार संसद की समीक्षा में यह बतलाया जाता है कि संसद में किन किन बातों पर विचार हुआ, और उन बातों के सम्बन्ध में अलग दलों या व्यक्तियों ने अपने क्या मत या विचार प्रकट किये, अथवा उनमें परस्पर किस प्रकार के आक्षेप और प्रत्याक्षेप हुए। ऐसी अवस्थाओं में समीक्षक सब बातों का संक्षिप्त रूप ही बतलाता है, उनके सम्बन्ध में अपनी ओर से न तो कोई टीका-टिप्पणी करता है और न अपना मत या विचार ही प्रकट करता है। × ×

आवश्यकता—स्त्री० [सं०] दे० 'अपेक्षा और आवश्यकता'।

आवसानिक—वि० [सं०] दे० 'अन्तिम, आंतिक आवसानिक और समापक या समाप्तिक'।

आविष्कार और उपज्ञा (या खोज)

Invention Discovery

इस वर्ग के शब्द हैं तो मुख्यतः दो अलग अलग भावों या विचारों के सूचक, परन्तु इनमें से आविष्कार इतना अधिक प्रचलित हो गया है कि उसी से दोनों भाव या विचार सूचित किये जाने लगे हैं*। अतः यहाँ दोनों के आशय और भाव अलग अलग स्पष्ट कर देना आवश्यक जान पड़ता है।

* भारत सरकार ने दोनों भावों को अलग अलग मानकर Invention के लिए आविष्कार और ईजाद शब्द दिए हैं, और Discovery के लिए खोज तथा शोध शब्द रखे हैं। Invention के दोनों अर्थ ठीक तो हैं हो, परन्तु शोध हिंदी में प्रायः Research के लिए प्रयोग होता है अतः मेरी समझ में Discovery के लिए उपज्ञा और खोज ही अधिक उपयुक्त होंगे।

'आविष्कार' पु० [स०] का मुख्य अर्थ है--किसी चीज का दृश्य बनाना अर्थात् जो चीज दृश्य या प्रत्यक्ष न हो उसे दृश्य या प्रत्यक्ष करके सबके सामने लाना। परन्तु इधर बहुत दिनो से इसका प्रयोग ऐसी नई चीजो बातो या रचनाओ के सम्बन्ध मे होता रहा है जो पहले से किसी को मालूम न रही हो अथवा पहले कभी बनी न रही हो। इस प्रकार के नये काम मुख्यत: विशेष अध्ययन, अनुशीलन, कल्पना, परीक्षण आदि के फलस्वरूप प्रस्तुत होते हैं; और इनका सम्बन्ध भौतिक विज्ञान, रसायन अथवा इसी प्रकार के और किसी वैज्ञानिक क्षेत्र से होता है। ऐसे कामो या चीजों का जन-साधारण के लिए विशेष रूप से उपयोगी और लाभदायक होना भी आवश्यक होता है। यह कर्त्ता (या आविष्कर्त्ता) के विशिष्ट अध्यवसाय, परि-श्रम और मानसिक कौशल या प्रवीणता का भी परिचायक होता है; जैसे—बिजली से प्रकाश उत्पन्न करने या समाचार भेजने की युक्ति का आविष्कार; किसी नये उपकरण या यत्र का आविष्कार; अणु बम अथवा क्षेप्यास्त्र का आविष्कार, पृथ्वी अथवा किसी ग्रह के चारो ओर चक्कर लगाने वाले उप-ग्रह का आविष्कार आदि आदि। ये सभी चीजें या बाते ऐसी हैं, जिन्हे बनाना पहले वाले लोग नही जानते थे परन्तु किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह ने मिलकर ये नये काम किये थे या नई चीजें निकाली थी; और उन्हे सबके उपयोग के लिए उपस्थित तथा प्रस्तुत किया था। कुछ अवस्थाओ मे इसका प्रयोग लाक्षणिक रूप मे भी होने लगा है; जैसे—(क) चीन दूसरे राष्ट्रो को बदनाम करने के लिए नित्य नये-नये आरोपो का आविष्कार करता रहता है। और (ख) तुम तो छुट्टियाँ लेने के लिए नित्य नये-नये बहानों का आविष्कार करते रहते हो। कुछ लोग इसके स्थान पर अ० 'ईजाद' का भी प्रयोग करते हैं।

'उपज्ञा' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—कोई चीज ढूँढ़ निकालना, पता लगाना आदि। ढूँढी वही चीज जाती है और पता उसी का लगाया जाता है जो पहले से वर्तमान हो या रही हो, परन्तु अब लोग जिसे जानते ही न हो अथवा बिलकुल भूल चुके हो परन्तु अब जो अन्धकार में पड़ गई हो और जिसे लोग जानते ही न हो अथवा बिलकुल भूल चुके हो। अर्थात् किसी चीज पर पड़ा पर्दा हटाना ही उपज्ञा है। इस दृष्टि से यह कहना ठीक नही है—(क) कोलम्बस ने अमेरिका का आविष्कार किया था। अथवा (ख) हर्शल नामक ज्योतिषी ने वरुण ग्रह का आविष्कार किया था। कारण यह है कि अमेरिका भी बहुत पहले से विद्यमान था और वरुण

भी। कोलम्बस और हमल ने तो उन्हें ढूँढकर उनका पता भर लगाया था। अतः ऐसे अवसरों पर यही कहना ठीक होगा कि अमुक ने अमुक की उपज्ञा की थी। परन्तु हो सकता है कि इस प्रकार का प्रयोग बिलकुल नया होने के कारण लोगों को कुछ खटके। इस लिए यह भी कहा जा सकता है कि अमुक ने अमुक की खोज की थी या उसे ढूँढ निकाला था।

एक दूसरे प्रसंग में खोज का जो अर्थ होता है उसके लिए दे० 'खोज, अनुसंधान, अन्वेषण और शोध'। × ×

आशंका—स्त्री० [सं०] दे० 'शंका, आशंका, संदेह और संशय'।

आशंसा,	अनुशंसा	अभिशंसा
1 Desire, wish	Recommendation	1 Appriciation
2 Hope		2 Admiration
	और	प्रशंसा
		Praise

इस वर्ग के शब्द संस्कृत शंस के विकारी रूप हैं। शंस् के दो मुख्य अर्थ हैं—१ किसी की कही हुई बात की आवृत्ति करना। और २ किसी के गुणों का कथन करना।

'आशंसा' स्त्री० [सं०] के भी दो मुख्य अर्थ हैं—१ अभिलाषा इच्छा या कामना करना और २ आशा। परन्तु इनमें से पहला अर्थ ही अधिक प्रचलित तथा प्रधान है और उसी की छाया या विवक्षा इस वर्ग के पर्याय शब्दों में मुख्य रूप से काम करती हुई दिखाई देती है। जब हम किसी के सम्बन्ध में अपनी शुभाशंसा प्रकट करते हैं तब आशय यही होता है कि हम उसके कल्याण या मंगल की कामना करते हैं।

'अनुशंसा' स्त्री० [सं०] का भी पहला अर्थ वही है, जो आशंसा का पहला अर्थ है। परन्तु सं० में इसका दूसरा अर्थ है—गुण कथन करने में किसी का साथ देना या सम्मिलित होना। परन्तु हिन्दी में अब इसमें एक तीसरा नया अर्थ लग गया है और यह अंग्रेजी के Recommendation का समार्थक हो गया है। जब कोई व्यक्ति किसी नये काम में या नई नौकरी पर लगना चाहता है तब वह कुछ और योग्य व्यक्तियों के पास जाता है जो उसे अच्छी तरह जानते हैं और जो उसके कार्यों, गुणों, योग्यताओं के

आधार पर यह कह सकते है कि हाँ यह व्यक्ति अमुक काम या नौकरी के लिए उपयुक्त है। ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध मे उक्त प्रकार की जो अच्छी बातें कही जाती हैं उन्ही को अनुशसा कहते है।* इस प्रकार की अनुशसा व्यक्तियो के अतिरिक्त उपयुक्त पदार्थो, स्थानो आदि के सम्बन्ध मे भी हो सकती है; जैसे—(क) इस कपडे (या दवा) की अनुशंसा मेरे कई मित्रों ने की है और (ख) मेरे चिकित्सक ने जल-वायु बदलने के लिए दार्जिलिंग जाने की अनुशसा की है। अब तक इसके स्थान पर सिफारिश (स्त्री० फा०) का ही प्रयोग होता आया है और अनुशसा का प्रयोग उसी के स्थान पर होने लगा है।

'अभिशंसा' स्त्री० [सा०] के दो मूल अर्थ हैं। एक तो किसी पर कोई अभियोग, कलक या दोष लगाना, और दूसरा किसी की अच्छी बातो या गुणों का बखान करना। इस प्रकार यह शब्द दो परस्पर विरोधी विवक्षाओ से युक्त है। परन्तु पहले अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग बहुत कुछ छूट गया है। पर दूसरा अर्थ कुछ अशो मे अभी तक प्रचलित है। इसी दूसरे अर्थ के आधार पर मेरा सुझाव है कि इसका प्रयोग अंग्रेजी के Admiration† का भाव सूचित करने के लिए अधिक उपयुक्त होगा। हम किसी व्यक्ति के कार्यो, गुणो आदि को बहुत अच्छा समझते हैं और इसी आधार पर हम हृदय से उसका आदर करते और आवश्यकता होने पर अच्छे शब्दों मे और उत्साह-पूर्वक उसकी चर्चा करते हैं हमारी इस प्रकार की भावना और उस व्यक्ति अथवा उसके कार्यो, गुणो आदि की चर्चा ही वस्तुत: उसकी अभिशसा है।

---

* कुछ लोग इसके स्थान पर सस्तुति का प्रयोग करते हैं। जो हमारी समझ मे ठीक नही है। कारण यह है कि स्तुति तो आर्थी अभिव्यजना की दृष्टि से 'प्रशसा' की अपेक्षा भी बहुत आगे बढा हुआ शब्द है। Recommendation की मर्यादा और स्वरूप का ध्यान रखते हुए हम उसका समार्थक प्रशसा के वर्ग मे ही रख सकते हैं; स्तुति की कोटि या वर्ग मे उसे स्थान नही दे सकते। तिसपर स्तुति के पहले स उपसर्ग लग जाने से उसकी व्याप्ति और भी बढ जाती है। इसलिए 'अनुशसा' ही उपयुक्त और समुचित शब्द हो सकता है।

† अँग्रेजी मे Admiration और Praise के अर्थों मे जो बहुत बड़ा अन्तर है, उसी के आधार पर यहाँ अभिशंसा और प्रशंसा का विवेचन किया गया है।

अपने किसी मित्र के आने की प्रतीक्षा करते हैं तब हम मानो पहले से यह जानते हैं कि व आने को हैं। परन्तु प्रत्याशा मे हम यह तो जानते हैं कि अमुक काम या बात हो तो सकती है, परन्तु उसके सम्बन्ध मे यह नही जानते कि वह कब हो जायेगी, अथवा होगी भी या नही। फिर भी परिस्थितियाँ देखते हुए यह समझा जाता है कि कभी या किसी दशा म ऐसा हो सकता है, यह असम्भव नही है। परन्तु इस अर्थ म 'प्रत्याशा' का प्रयोग हमारे देखने मे कदाचित् ही कभी आया हो। पर तु हाँ, इसका विपर्याय और वह भी भूत कृदत रूप म अवश्य देखने मे आता है। प्राय पुस्तकों और समाचार पत्रो मे लिखा मिलता है—अमुक घटना अप्रत्याशित रूप से घटित हुई है। आशय यही होता है कि ऐसी घटना घटित होने की न तो कोई आशा ही थी, और न कल्पना या सम्भावना ही।

आशावाद और निराशावाद

Optimism Pessimism

आशावाद की मूल मान्यता यह है कि ससार की सभी बातें अच्छी हैं और अत मे उनकी बुरी बातों पर अवश्य विजय प्राप्त होती है। इसके विपरीत निराशावाद की मूल मान्यता यह है कि वर्तमान ससार बहुत ही बुरा है और इसमें अच्छाई के लिए कोई स्थान नही है। आशय यही है कि एक म सत् की और दूसरे म असत् की प्रधानता मानी गई है। परन्तु साधारणत लोक व्यवहार म आशावाद का यह आशय माना जाता है कि मनुष्य को सदा यही समझना चाहिए कि अब या भविष्य में जो कुछ होगा, वह अच्छा, शुभ और हितकर ही होगा। इसलिए परम विकट और विपरीत परिस्थितियों म भी मन म आशान्वित रहना चाहिए—कभी निराश या हताश नहीं होना चाहिए। इसके विपरीत निराशावाद म यही समझा या सोचा जाता है कि जो कुछ हो रहा है उसका परिणाम अच्छा नही होगा थोडा या बहुत बुरा ही होगा।

आश्चर्य अचम्भा

(i) Surprise (ii) Astonishment Amazement

विस्मय और कुतूहल

Wonder Curiosity

इस वर्ग के शब्द ऐसी मनोदशाओं के वाचक हैं जो हम कोई अद्भुत या विलक्षण काम वस्तु या व्यवहार दिखाई देने पर उत्पन्न होती हैं।

'आश्चर्य' पु० [स०] हमारे मन की उस दशा या स्थिति का सूचक शब्द , जो हमे कोई अनोखा, अप्रत्याशित या असाधारण काम, चीज या बात दिखाई देने पर होती है। हम साधारणत. जो काम या बात देखने के अभ्यस्त नही होते या जिसमे कोई ऐसी नवीनता या विशेषता होती है जो हमें विलक्षण जान पडती है तब हमें आश्चर्य होता है। हम ऐसे काम या बात का कारण अथवा रहस्य समझने मे असमर्थ रहते हैं; जैसे—आश्चर्य तो इस बात का है कि आज आप यहाँ आ कैसे गये आशय यही होता है कि आप तो साधारणत. यहाँ कभी आते नही आज कैसे और क्यो आ गए।

'अचभा' पु० को शब्द सागर में स० असम्भव से व्युत्पन्न माना गया है, जो कुछ ठीक नही जान पडता। हो सकता है कि इसका सम्बन्ध सं० स्तम्भ से हो जिसका प्राकृत रूप चम्भ होता है। इसी स्तम्भ के विकारी रूप स्तम्भ, स्तब्ध आदि होते है, जिनका आशय होता है—गति शून्य या जडवत् होना। यह आश्चर्य का कुछ और आगे बढा हुआ रूप है। हम साधारणत: जब कोई ऐसी चीज या बात देखते हैं, जिसकी हमारी समझ में कोई संभावना नही होती तब हमे अचभा होता है। हिन्दी का एक प्रसिद्ध दोहा है—

नव द्वारे को पींजरा तामे पछी कौन।
रहिवे को आचरज है गये अचभा कौन॥

इसमे 'आश्चर्य' और 'अचभा' का अन्तर बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। नव द्वारो वाले पिंजडे मे किसी पछी का रहना ही आश्चर्य की बात है, क्योकि साधारणत: ऐसा होता हुआ देखा नही जाता। पर उसमे से उसका निकल जाना कोई अचम्भे की बात नही है, हम साधारणत: यही समझते है कि ऐसे पिंजडे मे पछी के रहने की कोई सम्भावना नही है। इसी लिए कहते हैं कि इसमे से पछी निकलकर चला जाय तो यह अचम्भे की कोई बात नही है। अचम्भा हमें ऐसी स्थिति मे पहुँचाता है जिसमे हमारी बुद्धि कुछ काम न करती हो, और इसी लिए हम विशेष कुछ कह भी न सकते हो।

कुछ लोग भूत कृदन्त रूप अचम्भित भी बना लेते हैं जो ठीक नही है। इसके स्थान पर स० 'चकित' का प्रयोग ही ठीक होगा। हिन्दी में कुछ लोग 'आश्चर्य' और 'अचम्भा' के स्थान पर ताज्जुब (पु० अ० तअज्जुब) का भी प्रयोग करते हैं।

'विस्मय' पु० [सं०] को हम आश्चर्य और अचम्भा दोनों का और भी आगे बढ़ा हुआ रूप कह सकते हैं।* जब हमें कोई ऐसी अद्भुत या विलक्षण वस्तु दिखाई देती है, जिसके अस्तित्व की हम सहसा कल्पना भी नहीं कर सकते तब हमारे मन में विस्मय उत्पन्न होता है। साधारणतः विस्मय होने पर मनुष्य की आकृति या मुद्रा प्रायः कुछ विकृत सी हो जाती है। जल्दी समझ में नहीं आता कि ऐसा अद्भुत या विशाल कार्य मनुष्य कैसे सम्पन्न कर सका। आगरे का ताजमहल, चीन की दीवार और आधुनिक विज्ञान के चमत्कारपूर्ण आविष्करण साधारण मनुष्यों के लिए बहुत ही विस्मय जनक होते हैं। कुछ लोग इसके स्थान पर हैरत (स्त्री० अ०) का भी प्रयोग करते हैं।

'कुतूहल पु० [सं०] हमारे मन की वह जिज्ञासा वृत्ति है जो कोई अद्भुत, असाधारण अथवा बहुत विलक्षण काम, चीज या बात देखने पर उसका कारण तथ्य रहस्य या वास्तविक स्वरूप जानने के लिए हमारे मन में उत्पन्न होती है। यह वृत्ति बालकों से लेकर वृद्धों तक सभी के मन में होती या हो सकती है। जिस काम चीज या बात के विषय में हमारे मन में कुतूहल उत्पन्न होता है, उसका हमारे साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं है हम बिना किसी कारण के ही किसी अनजानी या नई चीज के बारे में कुछ विशेष बातें जानना चाहते हैं। जानने की यह इच्छा ही कुतूहल है। छोटे बच्चे केवल कुतूहलवश कोई खिलौना यह जानने के लिए तोड़ देते हैं कि यह कैसे चलता या नाचता है अथवा इसके अन्दर क्या है। इसका मूल उद्देश्य अपनी किसी प्रकार की जानकारी बढ़ाना ही होता है, परन्तु हमारे मन में यह प्रवृत्ति उत्पन्न करनेवाला तत्व आश्चर्य अचम्भा या विस्मय ही होता है। कुछ लोग इसके स्थान पर कौतूहल (पु० सं०) का भी प्रयोग करते हैं, परन्तु अधिकतर लोग कुतूहल का ही प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।

× ×

---

* विस्मय वस्तुतः सं० स्मय में वि उपसर्ग लगने से बना है। स्मय का अर्थ है—मुस्कराहट या हँसी। इसी के विकारी रूप स्मित (मुस्कराता हुआ) और स्मिति (मुस्कराहट) हैं। अंग्रेजी का Smile भी इसी से सम्बद्ध जान पड़ता है। मनुष्य जब कोई बहुत ही अद्भुत या विलक्षण बात या वस्तु देखकर प्रसन्न होता है परन्तु उसका आश्चर्य बहुत अधिक बढ़ा हुआ होता है तब उसकी वही मानसिक स्थिति विस्मय कहलाती है।

आश्वासन,	ढारस,	तसल्ली,
Assurance	Comfort	(i) Comfort (ii) Satiftaction
दिलासा	और	सांत्वना
Comfort		(i) Consolation (ii) Solace

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातो के सूचक हैं जो किसी दु.खी, निराश या हताश व्यक्ति की चिंता या व्याकुलता दूर करके उसे भविष्य के लिए आशान्वित अथवा उत्साहित करने अथवा धैर्य दिलाने के लिए कही जाती हैं।

'आश्वासन' पु० [स०] का मूल अर्थ तो है—अच्छी तरह या सुख पूर्वक साँस लेना परन्तु अपने विकसित अर्थ मे यह ऐसी स्थिति का वाचक है जिसमें मनुष्य स्वय प्रसन्न और सुखी रहता और दूसरो को भी प्रसन्न तथा सुखी करता है। प्रस्तुत प्रसग मे आश्वासन का अर्थ है—कष्ट या दु ख मे पडे हुए व्यक्ति से यह कहना कि तुम चिंता मत करो, तुम्हारा कष्ट या दु ख या तो स्वयम् दूर हो जायगा या हम उसे दूर करने का यथा-साध्य प्रयत्न करेंगे। इसके अतिरिक्त किसी का कोई काम पूरा करने के लिए अथवा उसे सहायता देने के लिए निश्चित रूप से जो बाते कही जाती है, उन्हे भी आश्वासन ही कहते हैं, जैसे—अधिकारियो ने कर्मचारियो को उनके कष्ट और शिकायते दूर करने का आश्वासन दिया है। इसमे मुख्य भाव मन मे यह भावना उत्पन्न कराने और होने का है कि कार्य यथासाध्य अवश्य हो जायगा।

'ढारस' की व्युत्पत्ति कुछ संदिग्ध-सी है। कही-कही इसका दूसरा रूप ढाढस भी प्रचलित है; इसलिए इसका सम्बन्ध सस्कृत दृढ या दार्ढ्य से सूचित होता है। इसका प्रयोग मुख्यत अधीर, खिन्न या हतोत्साह व्यक्ति की चिंता और निराशा दूर करके उसे आशान्वित और प्रोत्साहित करने के लिए होता है। इसके साथ मुख्यत. देना और बँधाना क्रियाओ का प्रयोग होता है।

'तसल्ली' अरबी भाषा का शब्द है, जो हिंदी मे मुख्यतः दो अर्थो में प्रचलित है। इसका पहला अर्थ तो बहुत कुछ यही है जो ऊपर आश्वासन का बताया जा चुका है। एक तो इसका प्रयोग किसी का कष्ट, चिंता या दु ख कम करने के लिए और उसे धैर्यपूर्वक और शात भाव से रहने के लिए कही जानेवाली बातो के सम्बन्ध मे होता है। ऐसे प्रसगो मे इसके साथ देना क्रिया का प्रयोग होता है। दूसरे इसका प्रयोग किसी की जिज्ञासा या सन्देह दूर करके उसे सतुष्ट करने के प्रसगो मे होता है; जैसे—लोगो ने

प्रश्न तो कई प्रकार के किए परन्तु मैंने उत्तर से उन सब लोगों की तसल्ली कर दी। ऐसे अवसरों पर इसके साथ करना या कराना क्रिया का प्रयोग होता है।

'दिलासा' फारसी दिल से बनाया हुआ शब्द है, इसका मुख्य अर्थ है—किसी के दिल या मन में उत्पन्न होने वाले क्षोभ, चिंता या विकलता को कम अथवा दूर करने के लिए कही जानेवाली बात। इस दृष्टि से हम इसे ढारस और तसल्ली का पर्याय भी कह सकते हैं। फिर भी उक्त दोनों शब्दों से दिलासा में कुछ सूक्ष्म अन्तर अवश्य देखने में आता है। ढारस या तसल्ली में तो बहुत कुछ दृढ़ निश्चय और सत्यता की भावना वर्तमान रहती है परन्तु लोक-व्यवहार में इसका प्रयोग ऐसी बातों के सम्बन्ध में भी होता है जो केवल ऊपरी मन से अथवा नाम मात्र के लिए कही जाती हैं। उर्दू और हिन्दी में 'दम दिलासा' पद बहुत प्रसिद्ध है। इसका प्रयोग ढारस, तसल्ली या दिलासा की तरह तो होता ही है परन्तु कुछ अवसरों पर इसका प्रयोग दूसरों को धोखे में रखकर अपना काम निकालने अथवा टाल मटोल करके समय बिताने के लिए कही जाने वाली बातों के सम्बन्ध में भी होता है।

सान्त्वना' स्त्री० [सं०] का मुख्य अर्थ तो है—किसी असंतुष्ट या रुष्ट व्यक्ति को मीठी मीठी बातों से प्रसन्न या संतुष्ट करना। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इसका प्रयोग मुख्यतः दो अर्थों में होता है—एक तो सहानुभूति पूर्वक किसी को यह बतलाना या समझाना कि जो अनिष्ट या हानि हो चुकी है, वह अनिवार्य या अवश्यम्भावी थी अब उसके लिए चिंता करना व्यर्थ है। अब उत्साह तथा धैर्य पूर्वक आगे के कामों और बातों की ओर ध्यान दो। इसी से कुछ और आगे बढ़कर यह ऐसी बातों का भी सूचक हो गया है जो किसी आर्त्त या शोकाकुल व्यक्ति का दुःख और विकलता कम करने के लिए कही जाती हैं। इसमें संवेदन और सहानुभूति का भाव प्रधान होता है, जैसे (क) किसी के पिता या माता की मृत्यु पर उसे सान्त्वना देना। (ख) किसी की बहुत बड़ी हानि हो जाने पर उसे सान्त्वना देना। इसका मुख्य उद्देश्य मन की उदासी उद्वेग, दुश्चिंता आदि दूर करना होता है जैसे—विपत्ति के उन दिनों में मुझे गीता के अनुशीलन से बहुत सान्त्वना मिली थी। आज कल इससे कुछ और आगे बढ़कर इसका प्रयोग प्रतियोगिताओं आदि के क्षेत्र में भी होने लगा है। प्रायः ऐसा होता है कि कुछ प्रतियोगी किसी कारण से बाजी तो नहीं जीत पाते फिर भी उनका काम बहुत अच्छा और संतोषजनक होता है। ऐसे लोगों की योग्यता से प्रसन्न होकर उन्हें भी इसलिए कुछ

त्स्कार दिया जाता है कि वे हतोत्साह न होने पावे और आगे चलकर वरावर च्छा काम करके दिखलाते रहे। ऐसे पुरस्कार भी सात्वना पुरस्कार Consolation Prize) कहते हैं। 'सात्वना' के साथ साधारणत· देना ौर मिलना क्रियाओं का प्रयोग होता है। × ×

आस-पास—अव्य० दे० 'लगभग, प्राय., और आस-पास'।

आसमान—पु० [स०] दे० 'अन्तरिक्ष, आकाश, व्योम और महाव्योम।'

आस्कती—वि० दे० 'अहदी, आलसी, आस्कती, दीर्घसूत्री और सुस्त।'

आस्था, निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति

Consideration Fidelity Reverence Devotion

इस वर्ग के शब्द हमारी ऐसी धारणाओं और मनोभावो के वाचक हैं जो किसी मान्य, योग्य या श्रेष्ठ व्यक्ति अथवा विचारो, सिद्धान्तो आदि के प्रति हमारे मन मे इसलिए घर कर लेते हैं कि हम उन्हे वहुत कुछ आदर की दृष्टि और पूज्य भाव से देखते हैं; और इसी लिए जिनके प्रति हम अपना कुछ विशिष्ट उत्तरदायित्व समझते हैं और अवसर पड़ने पर उनसे अच्छी प्रेरणाएँ भी प्राप्त करते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि चारो शब्द मनोभावो के विचार से उत्तरोत्तर वढती हुई दृढता और प्रवलता के भी सूचक हैं।

'आस्था' स्त्री० [स०] मुख्यतः कही दृढतापूर्वक टिके रहने या स्थित होने का भाव सूचित करती है। हम किसी काम, चीज, वात या व्यक्ति को औरो की तुलना में वहुत कुछ अच्छा समझते हैं; और उसे आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। इसी लिए हम उसे वहुत कुछ अवलंवन या आश्रय का आधार मानते हैं और सहज मे उसे खोने के लिए तैयार नही होते। यह मुख्यत. वौद्धिक या मानसिक ही होती है। हम कहते हैं—'वौद्ध धर्म पर उनकी विशेप आस्था थी' आशय यहाँ होती है कि वे अन्य धर्मो की अपेक्षा वौद्ध धर्म को अधिक अच्छा समझते और आदर की दृष्टि से देखते थे, भले ही वे उसके उपदेशो, नियमो, सिद्धान्तो आदि का पालन न करते रहे हो।

'निष्ठा' स्त्री० भी मूल अर्थ या आशय की दृष्टि से वहुत कुछ वही है, जो आस्था है; फिर भी इसमे अपेक्षया कुछ अधिक तीव्रता और महत्ता है। अपने अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ मे यह शब्द मुख्य रूप मे हमारी

उस भावुकतापूर्ण मनोवृत्ति का वाचक बन गया है जो हम किसी के प्रति चयक्तिक रूप से आसक्त या उससे सलग्न रखती है। यह अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध और समीपता की सूचक है। इसका मूल हमारे आन्तरिक विश्वास में होता है। किसी बात, व्यक्ति या सिद्धान्त की श्रेष्ठता के कारण उस पर हमारा जो दृढ़ विश्वास रहता है वही उसके प्रति मन में निष्ठा उत्पन्न करता है। हम कहते हैं—(क)—अपने गुरु पर उनकी पूरी निष्ठा थी। और (ख)—उन्होंने अपना सारा जीवन निष्ठापूर्वक देश (या समाज) की सेवा मे बिता दिया। आशय यही होता है (क) अपने गुरु पर उनका पूरा विश्वास था, और (ख) वे देश (या समाज) की सेवा बहुत ही ईमानदारी और सचाई से करते थे। इसमें अपने निश्चय, पथ आदि से विचलित न होने का भाव बहुत प्रबल होता है।

'श्रद्धा' स० 'श्रत् या श्रद्' धातु से व्युत्पन्न है जिसका मूल सत्य या सत्यता है। श्रद्धा मुख्यत धार्मिक क्षेत्र का शब्द है। किसी व्यक्ति या वस्तु को बिलकुल ठीक और सच या सच्चा समझकर उसकी पवित्रता, श्रेष्ठता आदि पर पूरा पूरा भरोसा या विश्वास रखना ही उस पर श्रद्धा रखना है। जिसके प्रति मन म श्रद्धा होती है, उसके उपदेशों शिक्षाओं आदि का प्राय पूरा पूरा पालन किया जाता है और उसके विरुद्ध कोई काम करना या कोई बात सुनना अनुचित समझा जाता है। यह निष्ठा भक्ति और विश्वास तीनो से उत्पन्न तथा युक्त है। अपने धर्म या देवी देवताओं आदि पर तो लोगो की श्रद्धा होती ही है प्राय परम योग्य तथा श्रेष्ठ व्यक्तियों और गुरु जनों के प्रति भी श्रद्धा होती है। यह सदा बहुत अधिक आदर और सम्मान के भाव की सूचक होती है। यह मुख्यत बड़ों के प्रति मन म होने वाले बहुत अधिक आदर और पूज्य बुद्धि की वाचक है। आप्त पुरुषो, धर्म ग्रन्थो, शास्त्रों आदि पर हमारा जो दृढ विश्वास होता है उसका मूल कारण यही श्रद्धा है।*

'भक्ति' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—किसी वस्तु के अनेक खड या टुकडे करना, अथवा उसे अलग अलग भागो म बाँटना। पर इसका एक अर्थ

* हिन्दुओ मे पितरो आदि के उद्देश्य से दान, ब्राह्मण भोजन आदि कृत्य इसी लिए 'श्राद्ध" कहलाते हैं कि वे धार्मिक दृष्टि से उनके प्रति हमारे आदर और पूज्य भाव के सूचक होते हैं—इन से उनके प्रति हमारी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त होती है।

किसी वस्तु का अंग या अंश होना भी है और कदाचित् इसी आधार पर यह अपने उस विशिष्ट अर्थ मे प्रचलित और प्रसिद्ध है, जिसमें हम लोग धार्मिक और व्यावहारिक क्षेत्रो में उसका प्रयोग करते हैं। धार्मिक क्षेत्र मे भक्ति जिस अर्थ में सबसे अधिक प्रचलित है, उसमे ईश्वर, देवता अथवा पूज्य व्यक्ति के प्रति विश्वास और श्रद्धा रखने और स्नेहपूर्वक तथा आदर भाव से उसकी सेवा कर उसे प्रसन्न तथा संतुष्ट रखने के सभी तत्त्व आ जाते हैं। भक्ति हमे अपने पूज्य या इष्ट (देवता अथवा व्यक्ति) के प्रति सदा निष्ठ रखती है, उसके लिए हमसे सब तरह के त्याग कराती है, सब प्रकार की सेवाओ से उसे अनुकूल तथा कृपालु बनाने के प्रयत्न कराती है और हमे सदा उसके पास पहुँचाने और साथ रहने के लिए परम उत्सुक रखती है। ईश्वर देवता आदि की भक्ति सदा इसी रूप मे होती है*। प्रजा अपने राजा के प्रति, पत्नी अपने पति के प्रति, देशसेवी अपने देश के प्रति अथवा शिष्य अपने गुरु के प्रति जो भक्ति रखता है उसमे भी प्राय: यही स बातें होती हैं।

इन्तजार—पु० [अ० इन्तिज़ार] दे० 'आशा, प्रतीक्षा और प्रत्याशा'।

इच्छा कामना अभिलाषा आकांक्षा और स्पृहा

इच्छा	कामना	अभिलाषा
1. Will 2. Wish	Desire	Aspiration
आकांक्षा	और	स्पृहा
Ambition		Desire

इस वर्ग के शब्द मन की ऐसी वृत्तियो के वाचक हैं जो हमे अपना कोई उद्देश्य सिद्ध करने के लिए प्रयत्नशील या प्रवृत्त करती हैं।

'इच्छा' स्त्री० [स०] 'इष्' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—कुछ प्राप्त करने के लिए प्रयत्न या प्रयास करना। इसी लिए इसमे उस काम चीज या बात के लिए प्रयत्न करने का भाव प्रधान है, जो हम पूरा या प्राप्त करना चाहते हैं। इच्छा प्राय उसी बात के लिए होती है, जो हमसे पूरी हो सकती हो और जिसके लिए हम प्रयत्न कर सकते हो या करना

* हमारे यहाँ के धार्मिक ग्रथो मे नवधा (नौ प्रकार की) भक्ति कही गई है। वे नौ प्रकार ये हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद-सेवन, अर्चन, वदन, दास्य, सख्य और निवेदन।

चाहते हो। जिस प्रकार हमारे शास्त्रकारो ने वासना* को हमारे समस्त कार्य कलापो का मूल प्रवर्तक माना है उसी प्रकार पाश्चात्य दार्शनिको और मनोवैज्ञानिको ने इच्छा को मनुष्य की नही बल्कि सृष्टि के समस्त कार्यों का मूल प्रवर्तक कहा है और इसे मौलिक तत्व या शक्ति Will Power माना है। कुछ पाश्चात्य मतो के अनुसार यह भी माना जाता है कि ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा मात्र की, और इतने से ही सृष्टि रचना का कार्य आरंभ हो गया। पाश्चात्य दृष्टि से इच्छा सब प्रधान और सब श्रेष्ठ शक्ति है। हमारे यहाँ वेदात और सांख्य मे इच्छा को मन का गुण और धर्म माना है परन्तु न्याय और वैशेषिक मे इस आत्मा का धर्म और व्यापार कहा गया है। इच्छा के सम्बन्ध मे हम साधारणत यही कह सकते हैं कि यह हमारी ऐसी मनोवृत्ति है जो किसी ऐसे काम या बात की ओर हमारा ध्यान ले जाती है। जिससे हमे किसी प्रकार की तृप्ति, सतोष या सुख पाने की आशा या सभावना होती है। अभिलाषा, आकांक्षा, कामना, चाह लालसा आदि इसी की शाखा प्रशाखाएँ हैं।

'कामना' स्त्री० [स०] उस कम धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है—इच्छा करना या चाहना। इसी से आगे चलकर काम कामुक, कमनीय† आदि शब्द बने हैं। मनुष्य के मन मे वासनाएँ तो बहुत सी होती हैं, पर उनमे से कुछ ही कामना का रूप धारण करती हैं। वासनाएँ तो मन मे सदा स्वाभाविक रूप से वास करती या रहती ही हैं, पर कामनाएँ जान बूझकर या सोच समझकर अपने किसी हित के विचार से की जाती हैं। कामना प्राय ऐसी बातो के लिए की जाती है जो साधारणत हमारी पहुँच के बाहर होती है। कामना की पूर्ति के लिए शारीरिक प्रयत्न तो अपेक्षया कम होता है। हाँ ईश्वर या देवी देवताओ से उसकी पूर्ति के लिए प्रार्थना अवश्य की जाती है और मनौतें मनाई जाती हैं। यथा—की करि कोटिक कामना पूजे बहु देव। (तुलसी) कामना भी मनुष्य के लिए उसी तरह का बंधन है जिस प्रकार वासना है। इसीलिए मनुष्य को मोक्ष दिलाने के उद्देश्य से गीता मे निष्काम कर्म का अर्थात् कामना से रहित होकर सब कर्म

---

* दे० 'वासना, तृष्णा लालसा और लिप्सा'।

† कमनीय का शब्दार्थ है—जिसे प्राप्त करने की कामना हो सके, अर्थात् जो इस योग्य हो कि चाहा जा सके। नयनाभिराम प्रियदर्शी सुंदर आदि इसके परवर्ती और विकसित अर्थ हैं।

करने का उपदेश दिया गया है। इसका आविर्भाव बहुधा आसक्ति, मोह या स्वार्थ-साधन आदि भावो के कारण होता है यह प्रायः अच्छी या सद् ही होती है; पर इसकी पूर्ति हमारे वश के बहुत कुछ बाहर होती है।

'अभिलाषा' स्त्री० [स०] लष् (इच्छा करना या चाहना) धातु मे 'अभि' उपसर्ग लगने से बना है। इसे हम कामना का कुछ और बढ़ा हुआ रूप कह सकते हैं। कामना की सिद्धि के लिए हमे कोई विशेष शारीरिक प्रयास नही करना पडता, वह प्रायः हमारे मानसिक व्यापार तक ही परिमित रहती है क्योकि वह बहुत कुछ सूक्ष्म या हल्की होने के कारण हमारे उप-चेतन मे दबी हुई रहती है। पर अपनी अभिलाषा पूरी करने का मनुष्य कभी-कभी थोडा-बहुत परिश्रम या प्रयत्न भी करता है। कारण यही है कि अभिलाषा ऐसी ही चीज या बात के लिए होती है जो हमे तृप्त, प्रसन्न या सन्तुष्ट करने वाली हो। अभिलाषा का प्रयोग प्रायः ऐसे स्थलों पर होता है, जहाँ इच्छित या इष्ट कार्य या तो अपनी पहुँच के बाहर होता है जिसके लिए हम विशेष प्रयत्नशील नहीं होते या नही हो सकते; यथा—(क) सबके हृदय मदन अभिलाषा।' (तुलसी); (ख) अभिलाषा अपने यौवन मे उठती, उस सुख के स्वागत को।' (प्रसाद) इन उदाहरणो से यही सूचित होता है कि यह कामना और चाह के बीच का स्तर है। बहुत कुछ इसी प्रकार का सूक्ष्म अन्तर 'इच्छा' और 'अभिलाषा' मे भी है। हम कहते हैं कि यो तो कलकत्ता देखने की अभिलाषा हमारे मन मे बहुत दिनो से थी, पर इच्छा होती है कि इस बार दशहरे की छुट्टियाँ वही बिताएँ। पर जब हम कई बार कलकत्ते जाने का विचार करते हैं या बाँधनू बाँधते है और हर बार विफल रहकर अन्त मे एक बार कलकत्ते पहुच जाते है, तब हम कहते हैं—'कलकत्ता देखने की हमारी बहुत दिनो की इच्छा आज पूरी हुई।'

आकाक्षा स० 'काक्ष्' धातु से व्युत्पन्न है जो अर्थ की दृष्टि से बहुत कुछ वही है, जो इच्छा है, फिर भी लौकिक प्रयोग या व्यवहार मे दोनो मे कुछ अन्तर है और होना चाहिए। आकाक्षा का प्रयोग वहाँ होता है, जहाँ हमारे मन मे किसी काम या बात मे आगे बढने की प्रबल इच्छा होती है। इच्छा तो बुरा और भली दोनो बातो के लिए हो सकती है, पर आकाक्षा प्रायः भली या सद् बातो की ही होती है। इसके सिवा इच्छा तो वैयक्तिक क्षेत्र मे भी हो सकती है और सार्विक क्षेत्र मे भी, पर आकाक्षा प्राय. व्यक्तिगत ही होती है और यह धन, सम्पत्ति, प्रसिद्धि, शक्ति आदि की प्राप्ति के लिए होती है। किसी कार्यालय मे काम करते समय हमारे मन मे उसके प्रधान

अधिकारी बनने और छोटा मोटा रोजगार करने के समय बहुत बड़े व्यापारी बनने की आकांक्षा होती है। ऐसे अवसरों पर अभिलाषा, इच्छा, कामना आदि का प्रयोग समुचित न होगा। इसी आकांक्षा शब्द में उच्च विशेषण लगाकर उच्चाकांक्षा Ambition शब्द बना लिया गया है, जो किसी ऐसी बहुत ऊँची या बड़ी आकांक्षा का सूचक है, जिसकी सिद्धि हमारे लिए यदि पूर्ण रूप से असंभव नहीं, तो बहुत कुछ दुष्कर अवश्य होती है। आकांक्षा प्रायः सद् होती ही है पर उच्चाकांक्षा उससे कहीं बढ़कर सद तथा उन्नायक होती है।

यदि कोई साधारण मनुष्य बहुत बड़ा पण्डित या महात्मा बनना चाहता हो और इसके लिए प्रयत्न भी करता हो तो य० उसकी उच्चाकांक्षा कही जायगी।

'स्पृहा' स्त्री० स० 'स्पृह' से व्युत्पन्न है और व्युत्पत्ति दृष्टि से यह शब्द स्पर्धा से सम्बद्ध है। स्पृहा प्रायः औरों को कोई अच्छा या बड़ा काम करते हुए देखकर उत्पन्न होनेवाली ऐसी लालसा है जिसकी सिद्धि के लिए मनुष्य प्रायः प्रयत्न करता रहता है। स्पृहा बहुधा ऐसे कामों या बातों के लिए होती है, जो हमारी पहुँच के क्षेत्र में होती हैं अथवा जिनकी सिद्धि के लिए हमम शक्ति होती है। इसमें मुख्य भाव प्रयत्नशीलता का है और लक्ष्य वह आनन्द या सुख होना है जो तत्संबंधी प्रयत्न सफल होने पर मिलता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आगे बढ़ने और यशस्वी या सफल होने की प्रवृत्ति ही इसमें मुख्य रूप से प्रेरक होती है।

इस कोटि के अन्य य शब्दों के लिए दे० (१) 'चाह, चाहत, चाव और साध'। और (२) 'वासना, तृष्णा, लालसा और लिप्सा। × ×

इच्छा शक्ति—स्त्री० [स०] दे० 'इच्छा कामना, अभिलाषा, आकांक्षा और स्पृहा।

इत्यादि—अव्य० [स०] दे०' अथ आदि, आरम्भ और प्रारंभ।

इनाम—पु० [अ० इनआम] दे० पारितोषिक और पुरस्कार।

ईजाद—स्त्री० फा० दे० 'आविष्कार और उपज्ञा।

उगाहना—स० दे०—चंदा बेहरी और उगाही के अन्तर्गत 'उगाही'

उगाही—स्त्री० हिं० उगाना दे० 'चन्दा, बहरी और उगाही।

उच्चमान, उच्चांक और कीर्तिमान

Record

अंगरेजी का एक प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द है रिकार्ड (Record) जो कई क्षेत्रों में और कई अर्थों में प्रयुक्त होता है। भारत सरकार

की शब्दावली में इसके पहले और मुख्य अर्थ के लिए 'अभिलेख' शब्द दिया है जो प्रायः सर्वमान्य है और जिसके सम्बन्ध मे किसी को कोई आपत्ति नही हो सकती। पर इसके अर्थों का एक दूसरा क्षेत्र भी है जिसमे कोई सबसे अच्छा काम कर दिखलाने अथवा किसी कार्य का सबसे ऊँचा मान स्थिर करने के भाव आते हैं। इसका प्रयोग यह सूचित करने के लिए होता है कि अमुक काम या बात इतनी असाधारण, कुतूहलजनक अथवा विलक्षण हुई है कि उसे अभिलेखो तक मे स्थान मिला है। हिन्दी-भाषी क्षेत्रो मे और रेडियो पर यह भाव सूचित करने के लिए प्रायः 'कीर्ति-मान' शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु यह शब्द एक दृष्टि से उपयुक्त जान पड़ने पर भी दूसरी दृष्टि से अनुपयुक्त ठहरता है। यदि किसी ने कोई ऐसा बहुत बडा और विलक्षण काम कर दिखलाया हो जिसका अभिलेखो में उल्लेख हो सकता हो और जिससे कर्ता को कीर्ति या यश प्राप्त होता हो तो यह कहा जा सकता है कि उसने उस क्षेत्र में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया है। परन्तु अँगरेजी मे Record शब्द का प्रयोग कुछ ऐसे क्षेत्रो मे भी होता है जिनमे कीर्ति या यश का कोई प्रश्न ही नही होता। उदाहरणार्थ किसी चीज का मूल्य भी किसी अवस्था मे किसी बहुत बडी ऊंचाई तक पहुँच सकता है अथवा किसी स्थान पर इतना पानी बरस सकता या बरफ पड सकता है जितना पहले न बरसा हो या न पड़ा हो। अँगरेजी में तो उस स्थिति मे Record का प्रयोग होता ही है पर हिंदी मे यह नही कह सकते कि यहाँ वर्षा या हिमपात का कीर्तिमान स्थापित हुआ है क्योकि इसमे कीर्ति अथवा यश की कोई बात नही है। यहाँ बात गरमी, सरदी की अत्यधिकता सूचित करने के सम्बन्ध मे ही है।

रेडियो मराठी प्रसारणो मे इसी Record के लिए 'उच्चाक' शब्द का प्रयोग होता है, जो संस्कृत उच्च+अंक के योग से बना है। ऊपर 'कीर्ति-मान' के सम्बन्ध मे हमने जो आपत्ति की है वह आपत्ति तो 'उच्चाक' के सम्बन्ध मे नही हो सकती। परन्तु एक दूसरी दृष्टि से नई आपत्ति अवश्य हो सकती है। वह यह कि जो स्थिति सूचित करने के लिए इसका प्रयोग किया जायगा उसमें 'अक' की कोई प्रधानता नही होगी। प्रधानता तो कार्य या घटना की मात्रा और मान का होगा जो पहले की तुलना में आगे बढा हुआ होगा। हमारी समझ में यदि कीर्तिमान और उच्चाक दोनो के स्थान पर 'उच्चमान' शब्द रखा जाय तो वह अधिक भाव-व्यजक भी होगा और अधिक सार्थक भी। इसी लिए 'मानक हिन्दी कोश' के परिशिष्ट मे मैंने Record शब्द के लिए 'उच्चमान' ही को स्थान दिया है। यहाँ यह भी

ध्यान रहे कि इस प्रसग मे 'मान' का प्रयोग प्रतिष्ठा के पर्याय के रूप मे नहीं बल्कि नाप या मात्रा वाले तत्त्व के सूचक रूप म हुआ है। × ×

उत्कर्ष—पु० [स०] दे० 'उच्चमान, उत्कर्ष और कीर्तिलाभ।

उत्कंठा—स्त्री० दे० 'इच्छा कामना, अभिलाषा, आकांक्षा, और स्पृहा।

उतार चढ़ाव—पु० [हि० उतार+चढ़ना] दे० 'चढाई, चढ़ान, चढाव और घटाव (या चढ़त)।

उत्तर कल्प—दे० 'कल्प और युग।

उत्पादन, Production **निर्माण,** (1) Building (ii) Erection (iii) Making **रचना** (1) Construction (ii) Composition **और** **सरचना** Structure

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओ और प्रक्रियो के वाचक हैं जिनके द्वारा परिश्रम या प्रयत्नपूर्वक कोई वस्तु अस्तित्व म लाई जाती या बनाकर तयार की जाती हैं। कुछ अवस्थाओ मे इन शब्दों मे उन वस्तुओ का भी अन्तर्भाव होता ह, जो इनके फलस्वरूप बनकर तयार होती हैं।

'उत्पादन' पु० [स०] का पहला अर्थ ह—उत्पन्न या पैदा करना। इस प्राथमिक अर्थ म जीव जन्तुओ, प्राणियो आदि की जननेंद्रिय से उत्पन्न सन्तान का अभिप्राय प्रधान होता ह, परन्तु अपने परवर्ती अर्थ मे यह किसी प्रकार के उपकरण या साधन के द्वारा कोई चीज तयार करने या बनाने का वाचक होता ह, जसे—खेतो से होनेवाला अनाज आदि का उत्पादन, कल-कारखानो मे होनेवाला कपडो घडियो बरतनो हथियारो आदि का उत्पादन। यहा यह ध्यान रह कि इसका प्रयोग मुख्यत ऐसी चीजो के सम्बन्ध मे होता ह जो अधिक मात्रा मान या सख्या म बनाकर तयार की जाती हैं और उपभोक्ताओ के उपभोग के लिए माल की तरह खरीदी और बेची जाती हैं। इसके सिवा यह भी ध्यान रहे कि खेतों आदि मे जो वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें 'उपज' या 'पैदावार' भी कहते हैं। परन्तु कल कारखानो मे बननेवाली चीजें 'उत्पादन' ही कहलाती हैं।

'निर्माण' पु० [स०] मुख्यत ऐसी चीजें तयार करने या बनाने का सूचक है जिसमे मानसिक या शारीरिक परिश्रम करना पडता ह। इसके

सिवा इसका प्रयोग मुख्यतः ऐसी वस्तुएँ बनाने के सम्बन्ध में होता है जिनके छोटे-छोटे अंश इधर या उधर से लाकर इकट्ठे किये जाते और कुछ विशिष्ट प्रकार से आपस मे मिलाकर यथा-स्थान बैठाए, रखे या सजाए जाते हैं; जैसे—दुर्ग, भवन, सेतु आदि का निर्माण। इसमे मुख्य भाव गढ़ या ढालकर अथवा इसी प्रकार की और किसी प्रक्रिया से चीज तैयार करने का है। कुछ अवस्थाओ में यह उत्कृष्ट या प्रशंसनीय रूप देने का भाव भी सूचित करता है, जैसे—चरित्र का निर्माण, देश का निर्माण, साहित्य का निर्माण, आदि। इनके सिवा यह किसी अच्छी साहित्यिक कृति या ग्रन्थ बनाकर प्रस्तुत करने का वाचक भी होता है; जैसे—काव्य या ग्रंथ का निर्माण। परन्तु ऐसी अवस्थाओ में इसका प्रयोग सामूहिक रूप में ही होता है, आंशिक रूप में नही। 'काव्य या ग्रन्थ के निर्माण' के सही प्रयोग देखने में आते है। परन्तु 'कविता या कहानी के निर्माण' सरीखे प्रयोग न तो अच्छे ही जान पड़ते है न देखने में ही आते हैं। ऐसे प्रसगो मे अधिकतर रचना का ही प्रयोग प्रचलित है।

'रचना' स्त्री० [सं०] भी साधारणत. है तो बहुत कुछ वही जो निर्माण है; क्योकि इसका मूल अर्थ भी कोई चीज तैयार करना या बनाना है। फिर भी यह एक विशिष्ट विवक्षा से युक्त है। रचना का प्रयोग मुख्यतः ऐसी वस्तुओ के सम्बन्ध मे होता है जिन्हे प्रस्तुत करने मे विशेष कौशल या चातुरी और मनोयोग की आवश्यकता होती है; और इसी लिए जिसका रूप बहुत कुछ आकर्षक, चमत्कारपूर्ण या सुन्दर हो जाता है; जैसे—काव्य-रचना, केश-रचना, वाक्य-रचना, व्यूह-रचना आदि।

हिन्दी मे इसका प्रयोग संज्ञा के सिवा सकर्मक क्रिया के रूप में भी होता है; जैसे—इहाँ हिमालय रचेऊ विधाना। अति विचित्र नहिं जाइ बखाना।—तुलसी। इसी आधार पर हिन्दी कविताओ में 'रचि-रचि' का प्रयोग मुहावरे के रूप मे भी हुआ है; जिसका अर्थ होता है—बहुत ही कौशल और मनोयोग पूर्वक तथा सुन्दर रूप से कोई चीज तैयार करना या बनाना।

इसके सिवा संज्ञा रूप मे 'रचना' का प्रयोग दो और अर्थो में भी होता है। एक तो तैयार की या बनाई हुई चीज के अर्थ मे; जैसे—इधर हाल मे उनकी दो और नई रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं, और ऐसी वस्तु के बनाने के ढंग या प्रकार के रूप में; जैसे—इस भवन की रचना बिलकुल नए प्रकार

का निए म विवाद से सम्बन्ध रखनेवाले लोगा के लिए प्राय मान्य भी होता है। यह बात दूसरी है कि कोई दल या पक्ष स्वाथ या हठवश निष्पक्ष व्यक्ति का निए म मानने से इनकार कर दे, परन्तु निर्णायक के निर्णय होने की दशा मे किसी को यह आशका या सदेह नही रह जाता कि किसी दल या दश के साथ किसी प्रकार का अन्याय हुआ है। × ×

उदाहरण और दृष्टान्त

Example 1 Illustration, 2 Instance

जब हम किसी को कोई बात बतलाते या समझाते हैं तब उसे और अधिक ठीक सिद्ध करने अथवा उसका रूप और अधिक स्पष्ट करने के लिए उसी तरह की या उससे मिलती जुलती कोई और बात उसके सामने रखते या लाते हैं तो वह दूसरी बात उसका 'उदाहरण' कही और मानी जाती है, जसे—आकाश से होनेवाली फूलो की वर्षा का अथ या आशय बालको को समझाने के लिए उनके सामने आकाश से बरसनेवाले पानी का उदाहरण रखा जाता है। उदाहरण के सबध मे ध्यान रखने योग्य कई मुख्य बातें हैं। पहली बात तो यह है कि इसके साथ जसे यथा आदि शब्दो का प्रयोग किया जाता है। कविता मे इनके स्थान पर प्राय 'ज्यो का प्रयोग देखने मे आता है। यथा—यो रहीम जस होत हैं उपकारी के सग। बाटनवारे *क सग, ज्यो मेहदी को रग।—रहीम। यहाँ कवि कहता है कि जो दूसरो* का उपकार करता है उसे आपसे आप यश मिलता है। परन्तु साधारणत सुननेवाले की समझ म यह बात नही आ सकती कि उपकार करनेवाले को यश आप से आप कसे मिल जाता या मिल सकता है। अपने इसी कथन को ठीक सिद्ध करने अथवा स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए वह मेहदी पीसनेवाले का उदाहरण सामन रखता ह और कहता है कि जिस प्रकार मेहदी पीसने-वाले के हाथ में उसका लाल रग आप से आप लग जाता है उसी प्रकार दूसरा का उपकार करनेवाले को यश भी आप से आप मिल जाता है।

उदाहरण का प्रयोग साधारणत किसी प्रकार के नियम, परिपाटी, सिद्धात आदि का अच्छी तरह और सहज मे बोध कराने के लिए होता है। पाठ्य पुस्तको आदि मे विद्यार्थियो के सामने जो उदाहरण आते हैं उनसे मुख्यत यही उद्देश्य सिद्ध होता है। प्राय वक्ता लोग भी अपने श्रोताओ को

कोई जटिल या दुरूह विषय समझाने के लिए इस प्रकार के उदाहरणो से सहायता लेते है। उदाहरण किसी ऐसे तथ्य के रूप मे भी हो सकता है जो किसी प्रतिपादित मत या सिद्धात की सत्यता प्रमाणित करता हो; जैसे—ताप की दाहक शक्ति की व्याख्या करते हुए आग या धूप का उदाहरण देना। किसी का मार्ग प्रशस्त या सुगम करने के लिए भी इससे सहायता ली जाती है; जैसे—महाभारत और रामायण मे आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिलेगे जिनसे आपको इस विषय की कुछ और नई बाते भी मालूम हो सकेगी। कुछ अवसरो पर इसके स्थान पर फारसी के 'नमूना' और अरबी के 'मिसाल' शब्दो का प्रयोग होता है।

'दृष्टात' संस्कृत के दृष्ट+अन्त के योग से बना है। इसका शब्दार्थ होता है—अब तक जो कुछ देखा, (या सुना) हो उसकी अन्तिम या चरम सीमा। परन्तु ऐसी सीमा का विचार किसी उद्देश्य या लक्ष्य की दृष्टि मे ही होता है। यो ससार मे हम बहुत सी चीजें देखते और बाते सुनते हैं परन्तु उनमे से जिसे हम सबसे बढकर समझते है उसकी चर्चा जब हम अपने मत के पोषण अथवा दूसरो के मार्ग प्रदर्शन के लिए करते हैं तब उसकी गिनती दृष्टात मे होती हैं। साधारणत: उदाहरण और दृष्टात के अर्थो मे बहुत ही थोडा और सूक्ष्म अन्तर है और इसी लिए लोग प्राय. इन्हे समानार्थी समझकर एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं। दृष्टात बहुधा किसी पुरानी घटना विशेषत. ऐसी घटना या तथ्य के रूप मे होता हैं जो साधारणत लोक मे अनुकरणीय या आदर्श माना जाता है अथवा कुछ अवस्थाओ मे वह शिक्षाप्रद भी हो सकता है। हम कहते हैं—उन्होने भाइयो के पारस्परिक प्रेम की चर्चा करते हुए राम और लक्ष्मण के प्रेम का दृष्टात दिया। यहाँ यदि 'दृष्टात' की जगह 'उदाहरण' का प्रयोग किया जाय तो आशय यही समझा जायगा कि वक्ता ने अपने मत का स्पष्टीकरण मात्र किया है। परन्तु 'दृष्टात' के प्रयोग से यह ध्वनि निकलती है कि वक्ता राम और लक्ष्मण के प्रेम को आदर्श मानता है और चाहता है कि श्रोताओ मे भी वैसा ही प्रेम उत्पन्न हो। इसी प्रकार पर-स्त्री हरण के दुष्परिणामो की चर्चा करते हुए रावण के शोचनीय अत का भी दृष्टात दिया जा सकता है। आशय यही होता है कि श्रोता उससे शिक्षा ग्रहण करे और इस प्रकार के दुष्कर्मो से सदा दूर रहे।

कुछ अवस्थाओ मे उदाहरण का प्रयोग ऐसे प्रसंगो मे भी होता है जिनका तथ्य अनुकरणीय भी हो सकता है और शिक्षाप्रद भी ; जैसे—शास्त्री

का निर्णय या विवाद से सम्बन्ध रखनेवाले लोगों के लिए प्राय मान्य भी होता है। यह बात दूसरी है कि कोई दल या पक्ष स्वार्थ या हठवश निष्पक्ष व्यक्ति का निर्णय मानने से इनकार कर दे, परन्तु निर्णायक के निष्पक्ष होने की दशा में किसी को यह आशका या सदेह नहीं रह जाता कि किसी दल या पक्ष के साथ किसी प्रकार का अन्याय हुआ है। × ×

उदाहरण और दृष्टान्त

Example 1 Illustration 2 Instance

जब हम किसी को कोई बात बतलाते या समझाते हैं तब उसे और अधिक ठीक सिद्ध करने अथवा उसका रूप और अधिक स्पष्ट करने के लिए उसी तरह की या उससे मिलती जुलती कोई और बात उसके सामने रखते या लाते हैं तो वह दूसरी बात उसका 'उदाहरण' कही और मानी जाती है, जैसे—आकाश से होनेवाली फूलों की वर्षा का अर्थ या आशय बालकों को समझाने के लिए उनके सामने आकाश से बरसनेवाले पानी का उदाहरण रखा जाता है। उदाहरण के सबंध में ध्यान रखने योग्य कई मुख्य बातें हैं। पहली बात तो यह है कि इसके साथ जैसे यथा आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। कविता में इनके स्थान पर प्राय 'ज्यों' का प्रयोग देखने में आता है। यथा—यों रहीम जस होत है उपकारी के सग। बाटनवारे के लग, ज्यों मेहदी को रग।—रहीम। यहाँ कवि कहता है कि जो दूसरों का उपकार करता है उसे आपसे आप यश मिलता है। परन्तु साधारणत सुननेवाले की समझ में यह बात नहीं आ सकती कि उपकार करनेवाले को यश आप से आप कैसे मिल जाता या मिल सकता है। अपने इसी कथन को ठीक सिद्ध करने अथवा स्पष्ट रूप से बतलाने के लिए वह मेहदी पीसनेवाले का उदाहरण सामने रखता है और कहता है कि जिस प्रकार मेहदी पीसने-वाले के हाथ में उसका लाल रग आप से आप लग जाता है उसी प्रकार दूसरों का उपकार करनेवाले को यश भी आप से आप मिल जाता है।

'उदाहरण' का प्रयोग साधारणत किसी प्रकार के नियम, परिपाटी, सिद्धात आदि का अच्छी तरह और सहज में बोध कराने के लिए होता है। पाठ्य पुस्तकों आदि में विद्यार्थियों के सामने जो उदाहरण आते हैं उनसे मुख्यत यही उद्देश्य सिद्ध होता है। प्राय वक्ता लोग भी अपने श्रोताओं को

कोई जटिल या दुरूह विषय समझाने के लिए इस प्रकार के उदाहरणो से सहायता लेते हैं। उदाहरण किसी ऐसे तथ्य के रूप में भी हो सकता है जो किसी प्रतिपादित मत या सिद्धात की सत्यता प्रमाणित करता हो; जैसे—ताप की दाहक शक्ति की व्याख्या करते हुए आग या धूप का उदाहरण देना। किसी का मार्ग प्रशस्त या सुगम करने के लिए भी इससे सहायता ली जाती है; जैसे—महाभारत और रामायण मे आपको ऐसे अनेक उदाहरण मिलेगे जिनसे आपको इस विषय की कुछ और नई बाते भी मालूम हो सके गी। कुछ अवसरो पर इसके स्थान पर फारसी के 'नमूना' और अरबी के 'मिसाल' शब्दो का प्रयोग होता है।

'दृष्टात' सस्कृत के दृष्ट+अन्त के योग से बना है। इसका शब्दार्थ होता है—अब तक जो कुछ देखा, (या सुना) हो उसकी अन्तिम या चरम सीमा। परन्तु ऐसी सीमा का विचार किसी उद्देश्य या लक्ष्य की दृष्टि मे ही होता है। यो ससार मे हम बहुत सी चीजे देखते और बाते सुनते हैं परन्तु उनमे से जिसे हम सबसे बढकर समझते है उसकी चर्चा जब हम अपने मत के पोषण अथवा दूसरो के मार्ग प्रदर्शन के लिए करते हैं तब उसकी गिनती दृष्टात मे होती हैं। साधारणत: उदाहरण और दृष्टात के अर्थों मे बहुत ही थोडा और सूक्ष्म अन्तर है और इसी लिए लोग प्रायः इन्हे समानार्थी समझकर एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं। दृष्टात बहुधा किसी पुरानी घटना विशेषत. ऐसी घटना या तथ्य के रूप मे होता हैं जो साधारणत लोक मे अनुकरणीय या आदर्श माना जाता है अथवा कुछ अवस्थाओ मे वह शिक्षाप्रद भी हो सकता है। हम कहते हैं—उन्होने भाइयो के पारस्परिक प्रेम की चर्चा करते हुए राम और लक्ष्मण के प्रेम का दृष्टात दिया। यहाँ यदि 'दृष्टात' की जगह 'उदाहरण' का प्रयोग किया जाय तो आशय यही समझा जायगा कि वक्ता ने अपने मत का स्पष्टीकरण मात्र किया है। परन्तु 'दृष्टात' के प्रयोग से यह ध्वनि निकलती है कि वक्ता राम और लक्ष्मण के प्रेम को आदर्श मानता है और चाहता है कि श्रोताओ मे भी वैसा ही प्रेम उत्पन्न हो। इसी प्रकार पर-स्त्री हरण के दुष्परिणामो की चर्चा करते हुए रावण के शोचनीय अत का भी दृष्टात दिया जा सकता है। आशय यही होता है कि श्रोता उससे शिक्षा ग्रहण करें और इस प्रकार के दुष्कर्मों से सदा दूर रहे।

कुछ अवस्थाओ मे उदाहरण का प्रयोग ऐसे प्रसगो मे भी होता है जिनका तथ्य अनुकरणीय भी हो सकता है और शिक्षाप्रद भी; जैसे—शास्त्री

जो बातें आचरण और व्यवहार से या उदाहरण हमारे सामने रखा है वह हमारे लिए मान्य होना चाहिए। प्रायः यही होता है कि वह अनुकरणीय भी है और निदर्शन भी। ऐसे अवसरों पर यदि उदाहरण की जगह दृष्टान्त का प्रयोग किया जाय तो भी अर्थ या भाव की दृष्टि से कोई विशेष अन्तर न होगा।

फिर भी तात्त्विक दृष्टि से उदाहरण और दृष्टान्त के प्रयोगों में कुछ स्पष्ट अन्तर दिखाई भी देता है। साधारणतः उदाहरण का प्रयोग भौतिक और व्यावहारिक तथ्यों, विचारों आदि के सम्बन्ध में नियम या परिपाटी के स्पष्टीकरण के लिए होता है, परन्तु दृष्टान्त प्रायः आचरणों, कृतियों और घटनाओं के सम्बन्ध में आदर्श और प्रमाण के रूप में होता है। 'उदाहरण' का क्षेत्र अपेक्षया अधिक विस्तृत और व्यापक है; इसी लिए दृष्टान्त तो उदाहरण के अन्तर्गत आ सकता है, पर उदाहरण सदा दृष्टान्त के अन्तर्गत नहीं होता।

हिन्दी में अरबी का नजीर शब्द दृष्टान्त के बहुत कुछ समानार्थक के रूप में प्रचलित है।

उदाहरण और दृष्टान्त के अन्तर का यहीं अन्त नहीं हो जाता। भारतीय साहित्य के काव्य शास्त्र में उदाहरण और दृष्टान्त नाम के जो दो अलग अलग अलंकार हैं, वे भी दोनों के पारस्परिक सूक्ष्म अन्तरों के सूचक हैं। 'उदाहरण' और 'दृष्टान्त' अलंकारों में यह अन्तर है कि उदाहरण में तो साधारण का विशेष से और विशेष का साधारण से समर्थन होता है, पर 'दृष्टान्त' में साधारण की समता साधारण से और विशेष की समता विशेष से होती है। इसके सिवा उदाहरण में मुख्य लक्ष्य उपमेय वाक्य (वाक्य का पूर्वार्ध) होता है, पर दृष्टान्त में मुख्य लक्ष्य उपमान वाक्य (वाक्य का उत्तरार्ध) होता है। × ×

उद्घाटन—पु० [सं०] दे० 'अनावरण, उद्घाटन या समारम्भ और विमोचन'।

उद्देश्य,	ध्येय	और	लक्ष्य
1 Aim	Object		1 Targe
2 Object			2 Object

इस वर्ग के शब्द उन कामनाओं और बातों के वाचक हैं जिन्हें पूरा या प्राप्त करने के लिए हम कोई प्रयत्न या प्रयास करते हैं।

'उद्देश्य' पु० [सं०] उद्दिष्ट से बना है, जिसका अर्थ है—किसी कार्य की दिशा का निर्देश या संकेत करना। जब हम कोई अच्छा और महत्व-पूर्ण कार्य आरम्भ करके उसके लिए प्रयत्न करते और अपनी शक्ति तथा समय लगाते हैं तब उसके मूल मे कोई ऐसा परिणाम या फल भी होता ही है जो हम प्राप्त करना चाहते हैं। मुख्यतः फल-प्राप्ति की इसी इच्छा वाली भावना या विचार ही उद्देश्य कहलाता है। जीवन मे हमारा उद्देश्य धनी या विद्वान या साहित्यकार बनना हो सकता है। किसी योजना का उद्देश्य खेती-बारी की उपज बढाना, बाढो से होनेवाले विनाश का अंत करना अथवा युद्ध मे काम आनेवाली सामग्री प्रस्तुत करना हो सकता है। ऐसे सभी प्रसगो मे हमारी जो मूल धारणा, प्रवृत्ति या प्रेरक विचार होता है, वही वस्तुत उद्देश्य कहलाता है; क्योकि वही हमे कार्य की दिशा मे आगे बढाता है। अपने परवर्त्ती अर्थ मे यह उस परिणाम या फल का भी वाचक हो जाता है जिसके लिए हम परिश्रम या प्रयत्न करते हैं। जब हम कहते हैं—"उनके जीवन का उद्देश्य धन कमाना ही है", तब 'धन' की गिनती भी उद्देश्य मे हो जाती है। इसी आधार पर व्याकरण के क्षेत्र मे Object और उद्देश्य दोनों समार्थक होते हैं।

'ध्येय' का प्रयोग [सं०] विशेषण रूप मे भी होता है और सज्ञा रूप मे भी। विशेषण रूप मे इसका अर्थ होता है—जिसका ध्यान किया जा सकता हो, किये जाने योग्य हो अथवा जो ध्यान मे रखने या लाने के योग्य हो। प्रस्तुत प्रसंग मे यह बहुत कुछ उसी दूसरे और परवर्ती अर्थ का वाचक है जिसका उल्लेख ऊपर उद्देश्य के अन्तर्गत किया गया है। इसमे हमारी भावना या विचार का तत्व तो गौण रहता है; और स्वयं उस कार्य, वस्तु या विषय का भाव प्रधान होता है जिस पर हमारा मन केन्द्रित रहता है। जैसे—'राज्य का ध्येय जनता पर नियत्रण रखना नही, बल्कि उसका कल्याण करना होता है'। ध्येय मुख्यतः कुछ प्रयोजनो या सिद्धातों पर आश्रित होता है। यो भले ही हम धन और नाम कमाने के उद्दश्य से लेखक बन जाएँ पर हमारा ध्येय सदा पाठको का ज्ञान-वर्धन ही होना चाहिए।

'लक्ष्य' [सं०] का विशेषण रूप मे मुख्य अर्थ है—जिस पर कोई चिह्न या निशान हो। इसी आधार पर इसका परवर्त्ती अर्थ होता है जिस पर दृष्टि जमे या लगे। सज्ञा रूप मे इसका प्रयोग मुख्यत आखेट या शिकार के क्षेत्र मे होता रहा है। हम जिस जीव का शिकार करना चाहते हैं, उस पर पहले हमे अच्छी तरह दृष्टि जमानी पड़ती है। वही जीव हमारा लक्ष्य होता

जी । पता पापरग पौर ४२४०ार म जो उदाहरण हमार तामा रगा है वह हमारे लिए मान्य होना चाहिए । मानर नहीं होता है कि वह मनुकरणीय भी है पौर निनान्त ी । लेग मवगग पर यदि उदाहरण की जाह दृष्टान्त का प्रयाग किया जाय तो भी मथ या मानव की दृष्टि स कोई विशेष मन्तर न हा ।

फिर भी तात्त्विक दृष्टि स उदाहरण पौर दृष्टान्त के प्रयोगो म कुछ स्पष्ट मन्तर दिखायी भी देता है । साधारणत उदाहरण का प्रयोग बौद्धिक पौर व्यावहारिक तथ्यों विचारों पादि के सम्बन्ध म नियम या परिपाटी के स्पष्टीकरण के लिए होता है परन्तु दृष्टान्त प्राय घा रणो कृतियो पौर घटनाओं के सम्बन्ध म मादर्श पौर प्रमाण के रूप म होता है । उदाहरण का क्षेत्र मपेक्षया मधिक विस्तृत पौर व्यापक है इसी लिए दृष्टान्त तो उदाहरण के पन्तर्गत मा सकता है पर उदाहरण सवथा दृष्टान्त क पन्तर्गत नहा होता ।

हिन्दी म मरबी या 'नजीर शब्द दृष्टान्त क बहुत कुछ समानायक के रूप म प्रचलित है ।

उदाहरण पौर दृष्टात के मन्तर का यही मन्त नही हो जाता । भारतीय साहित्य क मन्य शास्त्र मे उदाहरण पौर दृष्टात नाम के जो दो मलग मलग मलकार है वे भी दोनो के पारस्परिक सूक्ष्म मन्तरो क सूचक है । 'उदाहरण पौर 'दृष्टात मलकारा मे यह मन्तर है कि उदाहरण मे तो साधारण का विशेष से पौर विशेष का साधारण से समथन होता है पर 'दृष्टात' से साधारण की समता साधारण से पौर विशेष की समता विशेष से होती है । इसके सिवा उदाहरण मे मुख्य लक्ष्य उपमेय वाक्य (वाक्य का पूर्वार्ध) होता है, पर दृष्टात मे मुख्य लक्ष्य उपमान वाक्य (वाक्य का उत्तरार्ध) होता है । × ×

उद्घाटन—पु० [स०] दे० 'मनावरण, उद्घाटन या समारम्भ पौर विमोचन ।

उद्देश्य, ध्येय और लक्ष्य

उद्देश्य	ध्येय	लक्ष्य
1 Aim	Object	1 Target
2 Object		2 Object

इस वग के शब्द ऐसे कामो पौर बातो के वाचक हैं जि हे पूरा या प्राप्त करने के लिए हम कोई प्रयत्न या प्रयास करते हैं ।

'उद्देश्य' पु० [सं०] उद्दिष्ट से बना है, जिसका अर्थ है—किसी कार्य की दिशा का निर्देश या सकेत करना। जब हम कोई अच्छा और महत्व-पूर्ण कार्य आरम्भ करके उसके लिए प्रयत्न करते और अपनी शक्ति तथा समय लगाते हैं तब उसके मूल मे कोई ऐसा परिणाम या फल भी होता ही है जो हम प्राप्त करना चाहते हैं। मुख्यत: फल-प्राप्ति की इसी इच्छा वाली भावना या विचार ही उद्देश्य कहलाता है। जीवन मे हमारा उद्देश्य धनी या विद्वान या साहित्यकार बनना हो सकता है। किसी योजना का उद्देश्य खेती-बारी की उपज बढाना, बाढो से होनेवाले विनाश का अत करना अथवा युद्ध मे काम आनेवाली सामग्री प्रस्तुत करना हो सकता है। ऐसे सभी प्रसगो मे हमारी जो मूल धारणा, प्रवृत्ति या प्रेरक विचार होता है, वही वस्तुत: उद्देश्य कहलाता है; क्योकि वही हमे कार्य की दिशा मे आगे बढाता है। अपने परवर्त्ती अर्थ मे यह उस परिणाम या फल का भी वाचक हो जाता है जिसके लिए हम परिश्रम या प्रयत्न करते हैं। जब हम कहते हैं—"उनके जीवन का उद्देश्य धन कमाना ही है", तब 'धन' की गिनती भी उद्देश्य मे हो जाती है। इसी आधार पर व्याकरण के क्षेत्र मे Object और उद्देश्य दोनों समार्थक होते हैं।

'ध्येय' का प्रयोग [सं०] विशेषण रूप मे भी होता है और संज्ञा रूप मे भी। विशेषण रूप मे इसका अर्थ होता है—जिसका ध्यान किया जा सकता हो, किये जाने योग्य हो अथवा जो ध्यान में रखने या लाने के योग्य हो। प्रस्तुत प्रसंग मे यह बहुत कुछ उसी दूसरे और परवर्ती अर्थ का वाचक है जिसका उल्लेख ऊपर उद्देश्य के अन्तर्गत किया गया है। इसमे हमारी भावना या विचार का तत्व तो गौण रहता है, और स्वयं उस कार्य, वस्तु या विषय का भाव प्रधान होता है जिस पर हमारा मन केन्द्रित रहता है। जैसे—'राज्य का ध्येय जनता पर नियंत्रण रखना नही, बल्कि उसका कल्याण करना होता है'। ध्येय मुख्यत: कुछ प्रयोजनो या सिद्धातो पर आश्रित होता है। यो भले ही हम धन और नाम कमाने के उद्दश्य से लेखक बन जाएँ पर हमारा ध्येय सदा पाठको का ज्ञान-वर्धन ही होना चाहिए।

'लक्ष्य' [सं०] का विशेषण रूप मे मुख्य अर्थ है—जिस पर कोई चिह्न या निशान हो। इसी आधार पर इसका परवर्त्ती अर्थ होता है जिस पर दृष्टि जमे या लगे। सज्ञा रूप मे इसका प्रयोग मुख्यत: आखेट या शिकार के क्षेत्र मे होता रहा है। हम जिस जीव का शिकार करना चाहते हैं, उस पर पहले हमे अच्छी तरह दृष्टि जमानी पडती है। वही जीव हमारा लक्ष्य होता

है। तात्त्विक दृष्टि से देखने पर ध्येय और लक्ष्य में यही सूक्ष्म अन्तर रह जाता है कि ध्येय में ध्यान की और लक्ष्य में दृष्टि की प्रधानता होती है। इसके सिवा ध्येय में उतना अधिक मनोनिवेश नहीं होता, जितना लक्ष्य में होता है। इससे और आगे बढ़ने पर साधारण प्रयोग में इसमें वह अर्थ भी आ लगता है जो उद्देश्य का दूसरा और परवर्ती अर्थ है। अर्थात् साधारणतः यह उस काम या बात का भी वाचक हो जाता है जिसके लिए हम कोई परिश्रम या प्रयत्न करते हैं पर ऐसी दशा में इसके साथ अंतिम या चरम सीमा का भाव भी आ लगता है, जैसे—इस वर्ष हमारे यहाँ रेशम के उत्पादन का लक्ष्य १ लाख मन रखा गया है। कुछ लोग इसके स्थान पर निशाना (फा० निशान) का भी प्रयोग करते हैं। × ×

उद्भावना—स्त्री० [सं०] दे० 'कल्पना, उद्भावना, उपज और सूझ।

उधार और मँगनी

1 Credit 2 Loan

हिन्दी के ये दोनों शब्द उन स्थितियों के सूचक हैं जिनमें दूसरों से कोई चीज या कुछ धन अपना काम चलाने के लिए कुछ समय के लिए लिया जाता है और अपना काम हो जाने या सुभीता होने पर वह चीज या धन उसी व्यक्ति को लौटा दिया जाता है जिससे वह लिया गया हो। परन्तु बहुत से लोग इन दोनों का सूक्ष्म अंतर न जानने के कारण प्रायः एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं।

'उधार' सं० उद्धार से बना है। उद्धार का मुख्य अर्थ है—नीचे से उठाकर ऊपर करना। परन्तु लाक्षणिक रूप में इसका प्रयोग किसी प्रकार के कष्ट या संकट से बचाकर किसी की रक्षा करना है। ऋण या कर्ज देन आदि की स्थिति में होना भी एक प्रकार के कष्ट या संकट में पड़ना ही है। इसी लिए जब लोग अपना ऋण या देन चुका देते थे तब समझते थे कि हम एक संकट से मुक्त हुए हैं, और इस संकट से होनेवाली मुक्ति को भी 'उद्धार' कहने लगे थे। आशय यह होता था कि ऋण या देन के संकट से हमारा छुटकारा हो गया।

मँगनी भी हिन्दी की माँगना क्रिया से बनी हुई भाववाचक संज्ञा है। इसका प्राथमिक अर्थ है—माँगने की क्रिया या भाव। परन्तु लाक्षणिक

रूप में इससे उस स्थिति का भी बोध होता है जिसमें हम अपना काम चलाने के लिए किसी से कोई चीज कुछ समय के लिए माँगकर लाते हैं; और अपना काम हो जाने पर वह चीज उसे लौटा देते हैं। वर और कन्या के विवाह के सम्बन्ध में जो पूर्व निश्चय होता है उसे भी इसलिए मँगनी कहते हैं कि इसमे एक पक्ष दूसरे पक्ष से अपनी कन्या के लिए वर अथवा अपने पुत्र के लिए वधू माँगता है। परन्तु इस प्रसग में वर या वधू को लौटा देने का इसलिए कोई प्रश्न नही होता कि वे दोनो पक्षो के परिवारो के समान अंग वन जाते हैं। अत: मँगनी के इस अर्थ को छोड़कर हम उसके मूल अर्थ पर आते हैं।

'उधार' और 'मँगनी' के सम्बन्ध मे मुख्य रूप से ध्यान रखने की एक वात है। उधार का प्रयोग तो ऐसी चीजो के सम्बन्ध मे होता है जो ज्यों की त्यो और अपने मूल रूप मे नही लौटाई जाती वल्कि किसी दूसरे रूप में लौटाई जाती हैं। यदि हम किसी से सौ रुपये उधार लेते है तो हम वहीं रुपये नही लौटाते वल्कि दूसरे रुपये लौटाते हैं। यदि हमे रुपये नोटो के रूप मे उधार मिलते हैं तो हम उन्हे रुपयो के रूप में भी लौटा सकते हैं और उन मूल नोटो से भिन्न दूसरे नोटो के रूप मे भी। और यदि रुपये उधार लेते हैं तो नोटो के रूप मे भी लौटा सकते हैं। यदि हम वाजार से कपड़े या दूसरी चीजे उधार लाते हैं तो हमे उनका मूल्य ही चुकाना पड़ता है। साधारण स्थिति मे हम वे कपडे या चीजें नही लौटा सकते ? परन्तु मँगनी के सम्वन्ध मे विशेषता यह है कि जो चीज जिस रूप मे हमें माँगने पर मिलती है ठीक वही चीज और अपने उसी मूल रूप मे लौटानी पड़ती है। हम किसी से जो कलम या किताव मँगनी माँगकर लेते हैं वही कलम या किताव उसे लौटाते हैं, उसके वदले मे कोई दूसरी कलम या दूसरी किताव नही लौटाते। हाँ, यदि वह हमसे खो जाय या खराव हो जाय, तो वात दूसरी है। इसी लिए यह कहना ठीक नही है कि हम महाजन से सौ रुपये मँगनी माँगकर लाये हैं, और न यही कहना ठीक है कि हमने यह कलम अपने मित्र मोहन से आज दिन भर के लिए उधार माँगकर ली है। × ×

उन्नति, प्रगति और विकास

Advancement Progress 1. Evolution, 2 Development

इस वर्ग के शब्द किसी काम वात की ऐसी स्थितियो के वाचक हैं, जिनमे वे अपनी प्राकृतिक, मूल या सामान्य दशा से आगे बढती और सुधार करती हुई कुछ या अधिक दूरी तक पहुँचती हैं।

'उन्नति' स्त्री० [सं०] मूलतः 'उन्नत' का भाववाचक रूप है। 'उन्नत' का अर्थ है—ऊँचाई तक या वस्तुतः कुछ ऊपर उठा या पहुँचा हुआ। यह शब्द ऐसी अवस्था या दशा का सूचक है जो साधारण से बहुत आगे बढ़ी हुई या ऊपर उठी हुई हो, जैसे—(क) वह था तो एक साधारण किसान का लड़का, पर उन्नति करता हुआ अपने प्रदेश का नेता (राजा या सरदार) बन गया था। (ख) इङ्गलैंड ने किसी समय इतनी उन्नति की थी कि लगभग आधे संसार पर उसका राज्य हो गया था। (ग) विज्ञान ने अब इतनी उन्नति कर ली है कि लोग चन्द्रमा तक पहुँचने का प्रयत्न करने लगे हैं।

'प्रगति' संस्कृत 'गति' में 'प्र' उपसर्ग लगा कर बनाया हुआ हाल का शब्द है जो मराठी से हिन्दी में आया है। उन्नति की क्रिया बहुत दूर व्यापी और लम्बी होती है। प्रगति यह सूचित करती है कि इस मार्ग में किसी काम या व्यक्ति की गति कितनी और कैसी हुई है और उसमें किस सीमा तक सफलता हुई है, अथवा इस बीच में उसमें कौन सी अच्छी और नई प्राप्तियाँ हुई हैं, जैसे—आज कल हमारे देश में औद्योगिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रों में अच्छी प्रगति हो रही है। आशय यह होता है कि हम इन क्षेत्रों में बहुत से नए-नए काम कर रहे हैं और अच्छी बातें समझ और सीख रहे हैं।

'विकास' पु० [सं०] का संस्कृत में 'विकाश' रूप में भी प्रयोग हुआ है, और कदाचित् यही उसका मूल और वास्तविक रूप है। इसका पहला और मुख्य अर्थ है—किसी को प्रकाश से युक्त करना अथवा अपने आप को प्रकाश में लाकर व्यक्त करना। इसमें पहली विवक्षा सामने रखकर स्पष्ट करने की है, परन्तु आगे चलकर भारतीय भाषाओं में यह शब्द दो मुख्य अभिप्रायों या आशयों का सूचक हो गया है। पहले इसका प्रयोग यह ध्वनित करने के लिए होता था कि कोई काम या बात किस प्रकार और किस रूप में सामने आई थी, और तब उसमें किस प्रकार और कौन कौन अच्छी या नई बातें या शाखाएँ निकली और वह काम या बात कैसे-कैसे रूप धारण करती हुई और फलती तथा बढ़ती हुई उन्नति तथा पूर्णता तक पहुँची। इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने यह मत या सिद्धान्त प्रस्थापित किया कि कोई वस्तु अपनी आरम्भिक और बीज रूपी अवस्था से अपनी प्रकृति के अनुसार बढ़ती तथा फूलती फलती हुई अपनी पूर्णता तक पहुँचती है। इस प्रकार यह प्रारम्भ से अब तक की हुई सारी उन्नति के क्रमिक रूप का वाचक है, जैसे—काव्य या नाटक का विकास, साहित्य का विकास, सृष्टि का विकास आदि।

विकास का यह मत या सिद्धान्त सारे संसार मे प्रचलित भी है और सर्व-मान्य भी, परन्तु आज-कल इसमे जो एक नया अर्थ लगा है, वह किसी पिछड़ी हुई जाति या देश के उन्नति की ओर अग्रसर होने का भी सूचक है, और इस क्षेत्र मे होने वाली उसकी सामूहिक प्रगति का भी। जैसे—(क) बीज का अच्छी तरह विकास होने पर उससे अच्छे पौधे या वृक्ष निकलते हैं। (ख) गर्भ मे नौ मास तक शिशु का विकास बहुत कुछ पूरा हो जाता है। (ग) हमारे देश का जिस प्रकार विकास हो रहा है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि यह जल्दी ही यथेष्ट उन्नत और पूर्ण विकसित हो जायगा। × ×

उपकरण—पु० [स०] दे० 'यत्र, उपकरण, औजार और सयत्र'।

उपज—स्त्री० [हि० उपजना] दे० 'कल्पना, उद्भावना, उपज और सूझ'।

उपज्ञा—स्त्री० [स०] दे० 'आविष्कार और उपज्ञा'।

उपनाम—पु० [स०] दे० 'नाम, उपनाम, पदनाम, संज्ञा और सुनाम'।

उपबंध—पु० [स०] दे० 'विधि, विधान, प्रविधान और सविधान' के अतर्गत 'प्रविधान'।

उपयोग Utilization और प्रयोग 1. Apprecation 2. Use व्यवहार Use

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमे हम कोई चीज या बात किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए अपने काम मे लाते हैं। कुछ अवस्थाओ और क्षेत्रो मे इनमें से एक के स्थान पर कोई दूसरा शब्द रखकर भी काम तो चला लेते हैं; फिर भी इनके अर्थो और आशयो मे कुछ सूक्ष्म अन्तर हैं।

'उपयोग' सस्कृत के 'योग' मे 'उप' उपसर्ग लगाकर बनाया गया है। किसी चीज का काम मे लाया जाना ही उसका 'उपयोग' कहलाता है।

किसी चीज का उपयोग उस चीज के गुण और विशेषता के आधार पर तथा अपने हित के विचार से होता है।* यही इसकी मुख्य विवक्षा है; जैसे—

* इसी आधार पर इसका भाववाचक रूप 'उपयोगिता' बनता है। इसका अर्थ ही है, किसी चीज का वह गुण या विशेषता जिसके फल-स्वरूप वह काम मे लाई जाती है।

खाने पीने की कोई अच्छी चीज कभी फेंकनी नही चाहिए, क्याकि किसी न किसी के लिए उसका कुछ न कुछ उपयोग हो सकता है। जब हम कहते हैं, "हमारे लिए आपकी इन बातों का कोई उपयोग नही है" तब हमारा आशय यही होता है कि हम आपकी ये बातें इस लिए नही मान सकते कि इनसे हमारा कोई लाभ या हित नहीं होगा। कुछ अवस्थाओ मे इसका प्रयोग केवल काम मे लाने के लिए ही होता है, जैसे—हमें अपने अधिकार या शक्ति का सदा समझ-बूझकर उपयोग करना चाहिए।

'प्रयोग' पु० [स०] भी बहुत कुछ वही है, जो उपयोग है परन्तु इसमे कुछ और मुख्य व्यवक्षाएँ भी मिली हुई हैं। प्रयोग का पहला और मुख्य अर्थ है, चीजो को आपस मे जोडना या मिलाना। दूसरा साधारण अर्थ है—काम मे लाना। जब हम कोई चीज किसी विशिष्ट अवसर और किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए काम मे लाते हैं, तब हमारा ऐसा करना उसका 'प्रयोग कहलाता है, जसे—(क) जब और किसी प्रकार काम न चला, तब उन्हें अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करना पडा। (ख) हमारे यहाँ ब्रह्मास्त्र का प्रयोग सब के अत म किया जाता था। (ग) आज कल हम लोग अपनी भाषा को अधिक व्यजक बनाने के लिए बहुत से नए शब्दो का प्रयोग करने लगे हैं और (घ) यदि आप को और दवाओ से कोई लाभ न हुआ हो तो एक बार इस दवा का भी प्रयोग कर देखें। उक्त अर्थ मे इसके स्थान पर उर्दू की देखा देखी कुछ लोग अरबी के इस्तमाल का भी प्रयोग करते हैं।

'प्रयोग के दूसरे आर्थी क्षेत्र म ऐसे काम चीजें या बातें आती हैं जो अपने परिणाम या फल के विचार से अच्छी और लाभदायक सिद्ध हो चुकी हो, और इसी लिए जिनकी कोई परम्परा स्थापित हो चुकी हो या परिपाटी बन गयी हो। तन्त्रशास्त्र के उच्चाटण मारण मोहन वशीकरण आदि इसी दृष्टि से प्रयोग कहे जाते हैं। हमारे यहाँ के वैद्यकशास्त्र म औषधों और परिचर्याओ के अनेक ऐसे प्रयोग प्रसिद्ध हैं जैसे—पर्पटी का प्रयोग रेचन का प्रयोग, वस्ति करण का प्रयोग आदि। भाषिक क्षेत्र म भाव व्यजन के कुछ ऐसे पद भी 'प्रयोग' कहलाते हैं जिनकी शब्द योजना निश्चित और बँधी हुई होती है। प्रत्येक भाषा मे अपने अपने और अलग प्रकार के प्रयोग होते हैं और दूसरी भाषाओं मे प्राय उनका अविकल अनुवाद नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ—(क) 'बातें करते करते गालियों पर उतर आये।' (ख)

"वे खड़े-खडे श्राये श्रौर चले गये।" श्रौर (ग) "वातो ही वातों मे सारा मामला विगड गया।" सरीखे वाक्य लीजिए। इनमे के, "गालियो पर उतर श्राए,' 'खड़े-खडे' श्रौर 'वातो ही वातो मे···' विशेष रूप से हिन्दी के प्रयोग हैं। यदि कोई कहे—'इसे चौसठ योगिनियो के मन्दिर के नाम से पुकारा जाता है या इसे श्रच्छी फसल की संज्ञा दी जा सकती है' तो कहा जायगा कि इनमे के 'नाम से पुकारा जाता है' श्रौर 'संज्ञा दी जा सकती है' प्रयोग हिन्दी के नही हैं, वल्कि अग्रेजी के हैं; श्रौर इसी लिए त्याज्य हैं श्रथवा शिष्ट-सम्मत नही हैं।

'प्रयोग' का तीसरा श्रार्थी क्षेत्र वह है जिसमे परीक्षरण, प्रशिक्षरण श्रादि से सम्बद्ध कुछ विशिष्ट काम या बातें श्राती हैं। श्राज-कल वैज्ञानिक क्षेत्र मे श्रनेक प्रकार के श्रनुसधान होते रहते हैं श्रौर नई-नई वाते ढूँढ़कर निकाली जाती हैं। इनके लिए जो क्रियाएँ या व्यापार किये जाते हैं, उन्हे भी प्रयोग ही कहते हैं*। जैसे--श्राज-कल गेहूँ श्रौर धान की श्रच्छी श्रौर श्रधिक उपजाऊ फसले तैयार करने के लिए सारे देश मे श्रनेक प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं। ऐसे प्रयोगो के सफल सिद्ध हो चुकने पर नए शिक्षार्थियो को उनकी सारी क्रियाएँ वतलाने श्रौर समझाने-सिखाने के लिए जो क्रम चलाए जाते हैं उन्हे भी प्रयोग' ही कहते हे।

कुछ श्रवस्थाश्रो मे नई चीजो या वातो का उपयोग श्रौर प्रचलन भी 'प्रयोग' कहलाता है; जैसे—श्राज-कल वहुत से कल-कारखानो मे श्रौर यहाँ तक की रेलो श्रादि मे भी भाप के इजनो के स्थान पर विजली का ही प्रयोग होने लगा है। इसका विशेषरण रूप 'प्रायोगिक' होता है। इस वर्ग मे ऊपर प्रयोग के जो दो श्रर्थ वतलाए गये है उनके लिए हिन्दी मे कभी-कभी उर्दू का तज्रुवा (श्र० तज्रिव:) शब्द का भी प्रचलन देखने मे श्राता है।

'व्यवहार' पु० [स०] का मूल श्रर्थ है—किसी निश्चय, वात या विचार को कार्य के रूप मे घटित या प्रस्तुत करना या कार्य का रूप देना। इसी श्राधार पर इसका विशेषरण रूप 'व्यावहारिक' वना है जिसका श्रर्थ होता है—जो किया जा सकता हो या किये जाने के योग्य हो, परन्तु श्रागे चलकर इसमे कुछ श्रौर विवक्षाएँ मिल गई है। जिनका विवेचन श्राचरण, श्राचार श्रौर व्यवहार की माला मे किया जा चुका है। प्रस्तुत प्रसंग में इसका श्रर्थ

* जिन कक्षो या भवनो मे इस प्रकार के प्रयोग किए जाते हैं, श्रथवा दूसरो को सिखाये जाते हैं उन्हे प्रयोगशाला (Laboratary) कहते हैं।

होता है किसी चीज को नियम, परिपाटी, प्रथा सिद्धान्त के रूप में मान कर नित्य उसे काम में लाते रहना या उससे काम लेते रहना। इसमें मुख्य भाव लोक में होनेवाली 'प्रचलन' से सम्बद्ध है, जैसे—(क) हिन्दी में अधिकतर संस्कृत शब्दों का और उर्दू में अधिकतर अरबी, फारसी शब्दों का व्यवहार होता है। (ख) जाड़े में प्राय सभी लोग गरम कपड़ों का व्यवहार करते हैं। 'व्यवहार' में आवश्यकता का भाव होता है, परन्तु उपयोगिता और प्रचलन की तुलना में यह इस लिए गौण रहता है कि यह प्रणाली या प्रथा का रूप धारण कर लेता है। विशेष दे० आचरण, 'आचार और व्यवहार' 'प्रयोग और व्यवहार' में मुख्य अंतर यह है कि प्रयोग का आरम्भिक तात्कालिक या परीक्षणात्मक होता है परन्तु व्यवहार नित्य अथवा प्राय अभ्यास, प्रथा, रीति आदि के रूप में होता चलता या होता रहता है। × ×

उपयोगिता और उपादेयता
Utility Usefullness

इस वर्ग के शब्द किसी वस्तु में होनेवाले ऐसे गुणों, विशेषताओं आदि के सूचक हैं, जिनके कारण लोग उसे काम में लाते अथवा ग्रहण करते हैं।

'उपयोगिता' स्त्री० [सं०] *उपयोग* (दे० ऊपर *उपयोग प्रयोग और व्यवहार'*) की भाववाचक संज्ञा है। इसका अर्थ है—उपयोग करने या काम में लाने की अवस्था, गुण और भाव। जब हम कोई चीज काम में लाते हैं तब यही देखते हैं कि वह हमारे लिए काम में आने के योग्य है या नहीं। साधारणत अन्न जल, भोजन-वस्त्र, वायु आदि ऐसी चीजें हैं जो सभी प्राणियों के उपयोग में आती हैं। यह इन सब चीजों की उपयोगिता है। इसमें मुख्य भाव काम में आ सकने के योग्य होना है। कुछ चीजों की उपयोगिता हमारी दृष्टि से तो हो सकती है, परन्तु औरों की दृष्टि में नहीं भी हो सकती। खालें और चमड़े जंगली, पहाड़ी और बर्फीले प्रदेशों में रहनेवालों के ओढ़ने बिछाने में काम आते हैं, और उनकी दृष्टि में यही इन चीजों की उपयोगिता है, परन्तु सभ्य समाज में इनकी *उपयोगिता* इस दृष्टि से है कि इन चीजों से जूते, गद्दे, तसमे, बक्स आदि बनते हैं। इस प्रकार उपयोगिता में आवश्यकता वाले भाव के अतिरिक्त आपेक्षिकता वाला भाव भी सम्मिलित है।

'उपादेयता' स्त्री० [सं०] उपादेय का भाववाचक संज्ञा रूप है। उपादेय का पहला अर्थ है—ग्रहण किये जा सकने या लिए जा सकने के योग्य। परन्तु इसके विकसित अर्थ हैं—(क) ग्राह्य या मान्य, (ख) चयन करने या सग्रह करने के योग्य, और (ग) उत्तम प्रशसनीय और श्रेष्ठ आदि आदि। उपयोगिता मे तो काम मे आ सकने भर का भाव है; परन्तु उपादेयता मे लाभदायक अथवा हितकर होने का भाव मुख्य है। सुन्दर काव्यो, चित्रो, मूर्तियो, साहित्यिक ग्रन्थो आदि ही उपादेयता सर्व-मान्य है ही; परन्तु इनमे जो हितकर और लाभदायक तत्व होते है, वे सब की दृष्टि मे समान नही होते। इन सब वस्तुओ के गुणियो, ज्ञाताओ और पारखियो की दृष्टि मे ही इनकी उपादेयता आती है। इस दृष्टि से इनके ये गुण भी आपेक्षिक ही है। उपादेयता की मुख्य विशेपता यही है कि वस्तु ज्ञानवर्धक, नीति-सम्मत और किसी न किसी रूप मे हमारे लिए लाभदायक और हितकर हो। × ×

उपयोगितावाद

Utilitarianism

पाश्चात्य सामाजिक दृष्टि से स्थिर किया हुआ एक आधुनिक मत या सिद्धात जिसमे प्रत्येक वस्तु का अर्थ, महत्व या मूल्य इस दृष्टि से आका और माना जाता है कि वह वस्तु हमारे लिए कितनी उपयोगी है अथवा सामाजिक दृष्टि से उसकी कितनी उपयोगिता है। अर्थात् जो वस्तु सारे जन-समाज अथवा उसके अधिकाश के लिए जितनी ही उपयोगी होती है, उसका महत्व या मूल्य भी उतना ही होता है अथवा होना चाहिए। इस सिद्धात ने नैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि गुणो या विशेपताओ का कोई विचार नही होता; और इसका मूल आधार केवल लौकिक या सासारिक होता है। × ×

उपलब्धि—स्त्री० [स०] 'प्राप्ति, लाभ, उपलब्धि, और परिलब्धि।

उपवास—पु० [स०] दे० 'अनशन, उपवास, प्रायोपवेशन, लघन और व्रत'।

उपस्थित	प्रस्तुत	वर्तमान और	विद्यमान
Present	Present	1. Existing	1. Existing
		2. Present	2 Present

ये विशेपण ऐसी चीजो, विचारो, व्यक्तियो आदि के पहले लगते हैं जो कही से चलकर हमारे सामने आए हो या इकट्ठे हुए हो।

'उपस्थित' वि० [स०] का पहला और मूल अर्थ है—जो कहीं से आकर पहुँचा और किसी के पास स्थित हुआ हो, जैसे—(क) सभा में अनेक विद्वान (या गुरुजी के सामने सभी शिष्य) उपस्थित थे। (ख) अभियुक्त को न्यायालय में उपस्थित करने की आज्ञा दी गयी। और (ग) जो सामग्री यहाँ उपस्थित है उसी से काम चलाओ। इससे और आगे बढ़ने पर इसका प्रयोग ऐसी चीजों या बातों के लिए भी होता है जो हमारे सामने विचार आदि के लिए आई हों अथवा जो हमारे इतने पास हों कि हम अनायास उनका उपयोग कर सकते हों, जैसे—सदन के सामने तीन प्रस्ताव उपस्थित किए गए थे। 'उपस्थित बुद्धि' का अर्थ होता है—ऐसी बुद्धि जो आवश्यकता होने पर तुरंत अपना काम कर सके। इसके सिवा इसका प्रयोग ऐसी चीजों या बातों के सम्बन्ध में भी होता है जो हमारी स्मृति में ठीक और पूरी तरह से अंकित हों और आवश्यकता होने पर जिनका तत्काल उपयोग हो सके, जैसे—उन्हें सारी गीता उपस्थित है। आशय यही होता है कि उन्हें गीता के सब श्लोक अच्छी तरह कंठस्थ हैं और वे जब जहाँ से चाहें तब वहाँ से आरम्भ करके गा या सुना सकते हैं।

प्रस्तुत' स० वि० का मूल अर्थ है—जो प्रस्ताव के रूप में सामने आया या रखा गया हो। इसका एक विकारी रूप प्रस्तोता (स० प्रस्तोतृ) भी होता है। जो प्रस्तावक या प्रस्ताव करनेवाले का वाचक है। परन्तु हिन्दी में इसका यह मूल अर्थ छूट गया है, और इसी छाया या विवक्षा से युक्त होकर कुछ भिन्न और विस्तृत क्षेत्र में यह शब्द व्यवहार में आने लगा है। स० में प्रस्तुत का एक और अर्थ होता है—जिसका उल्लेख चर्चा या विचार हो रहा हो अथवा होने को हो।* अर्थ की छाया या विवक्षा इसमें मुख्य रूप से दिखाई देती है, जैसे—आप जो कुछ कहें वह प्रस्तुत विषय से ही सबद्ध हो, इधर उधर की बातों में न आ जाय। अर्थात् इसका सम्बन्ध ऐसी बातों या विषयों से है जो हमारे सामने निर्णय विचार, विवेचन आदि के लिए आए हों। इसी आधार पर साहित्य में इसका प्रयोग संज्ञा रूप में भी

---

* इसके सिवा स० में प्रस्तुत के और भी कई अर्थ होते हैं जैसे—(क) जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गयी हो। (ख) जो काम में आने के योग्य हो गया हो। (ग) जो कोई काम करने के लिए सब तरह से तैयार हो। आदि आदि। परन्तु ये सब अर्थ यहाँ हमारे क्षेत्र या प्रसंग से बाहर के पड़ते हैं।

होता है। यहाँ प्रस्तुत ऐसी बात, वस्तु या विषय को कहते हैं जिसकी चर्चा प्रत्यक्ष रूप से हो रही हो; और प्रसंगवश जिसके साथ दूसरी बात, वस्तु या विषय का भी (उपमा, तुलना आदि के विचार से) उल्लेख या चर्चा हो जाती या हो सकती हो। जिस वस्तु या विषय की प्रत्यक्ष रूप से चर्चा होती है उसे 'प्रस्तुत' कहते हैं। पर यदि उसके साथ (उपमा, तुलना आदि के रूप में) कुछ वस्तु या विषयो की चर्चा हो तो ऐसी वस्तुएँ या विषय अप्रस्तुत कहलाते हैं। यदि कहा जाय—'उसका मुख चन्द्रमा के समान है' तो 'मुख' प्रस्तुत माना जाएगा और 'चन्द्रमा' अप्रस्तुत। इसी आधार पर साहित्य मे विशेषण रूप में एक विशिष्ट अर्थ मे इसका प्रयोग होने लगा है। वह अर्थ है—नियमित, प्रत्यक्ष और साधारण रूप मे कहा हुआ। प्रस्तुत प्रशंसा उसे कहते हैं जो सीधी तरह से और स्पष्ट रूप से की जाय, जैसे—आपकी गणना काशी के प्रसिद्ध विद्वानो मे होती है। इसके विपरीत जो बात अप्रत्यक्ष रूप से कुछ घुमा-फिराकर या हेर-फेर से कही जाय, तो उसे अप्रस्तुत कहते हैं। यदि किसी दुष्ट या धूर्त व्यक्ति के सम्बन्ध मे व्यग्य पूर्वक कहा जाय—'अजी वह बहुत बडे महात्मा हैं' तो इसे अप्रस्तुत निंदा कहेगे।

'वर्तमान' वि० पु० [सं०] के मूल अर्थ हैं चलता हुआ, घूमता या चक्कर खाता हुआ आदि। पर इसका प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ है—जो इस समय हो, चल रहा हो, या बीत रहा हो। इसी आधार पर यह काल या समय के तीन मुख्य विभागो मे से दूसरा और बीच का विभाग है। जो कुछ भूत और भविष्य के बीच मे हो और इस समय चल या बीत रहा हो वही वर्तमान हैं, जैसे—वर्तमान युग, वर्तमान साहित्य आदि। यह पुराने और बीते हुए युग या साहित्य से अलग है और आनेवाले उस युग या साहित्य से भी इसका कोई सम्बन्ध नही है। हाँ, यह आज-कल या इस समय चल या बीत रहा है अथवा बनता चलता है। इसका प्रयोग मुख्य रूप से अस्तित्व का सूचक होता है; जैसे—यह प्रथा हमारे यहाँ अभी तक वर्तमान है। इसी बीते हुए उद्दिष्ट या निश्चित काल, पदार्थ आदि के सम्बन्ध मे भी इसका प्रयोग होता है; जैसे—उन दिनो यह नगर बहुत ही अच्छी दशा मे वर्तमान था, अर्थात् उसका अस्तित्व बना हुआ था, नष्ट नही हुआ था।

'विद्यमान' वि० [सं०] मुख्य रूप से अस्तित्व का ही सूचक है जिसमें चलते रहने या व्यतीत होनेवाला वह भाव सम्मिलित नही है जो 'वर्तमान' मे आरम्भिक और मुख्य रूप से विवक्षित है। यदि कहा जाय—'उन दिनों

उनके पिता जी भी विद्यमान थे तो इसका अर्थ यही होगा कि उनका अस्तित्व था और वे जीवित थ। इसमें अस्तित्व का भाव ही प्रधान है। प्राय अनेक अवसरों पर नए तारों नामों के स्थान पर अ० के मौजूद' का भी प्रयोग होता है। यह शब्द अ० के वजूद (=अस्तित्व) का विकारी रूप है। × ×

उपहास, खिल्ली, और ठठ्ठा ठठोली
Reidicule Derision Banter

इस वर्ग मे कुछ ऐसी बातो के वाचक हैं जो लोगो के हँसने हँसाने के लिए दूसरो के सबध मे कही जाती हैं। यद्यपि इनका मुख्य उद्देश्य हँसना हँसाना ही होता है, फिर भी गौण रूप से इन बातो मे कुछ ऐसे तत्व रहते है जो किसी उद्दिष्ट व्यक्ति को कुछ तुच्छ मूर्ख या हीन भी सिद्ध करते हैं।

'उपहास' पु० [स०] का प्रयोग उस समय होता है, जब किसी व्यक्ति या व्यक्तियो को ऐसे ढग से तुच्छ सिद्ध किया जाता है कि लोगो को अनायास हँसी आ जाय*। साधारण बोल चाल मे इसी को हँसी या मजाक उडाना कहते हैं। हम कभी अपने मित्र की भद्दी भूल का उपहास करते या हसी उडाते हैं, कभी किसी की बे तुकी कविता या बातो की। उद्देश्य यही होता है कि लोग उसकी तुच्छता या भद्दापन समझकर हँस पडें। सावजनिक रूप से इस प्रकार की जो बातें कही या लिखी जाती हैं। उनका एक गौण उद्देश्य लोगो की दृष्टि मे भूल करनेवाले को कुछ नीचा दिखाना भी होता है।

'खिल्ली स्त्री० [हि०] खिल खिलाना या खिल खिलाकर हसना वाले प्रयोग के अनुकरणात्मक रूप मे बना है। खिल्ली भी है तो बहुत कुछ वही जो उपहास है, फिर भी दोनो मे कुछ सूक्ष्म अतर हैं। उपहास तो शिष्ट और सभ्य लोगो का तथा साहित्यिक क्षेत्र का शब्द है, परन्तु खिल्ली साधारण व्यक्तियो की बोल चाल का शब्द है। दूसरे, खिल्ली मे किसी को बहुत

* जिस कृति या उसके कर्त्ता मे कोई ऐसी बेढगी या भद्दी बात हो जिसे देखकर लोगो को आप ही आप हसी आती हो उसे उपहासास्पद कहते हैं। कुछ लोग इसके स्थान पर हास्यास्पद का भी प्रयोग करते है, पर तु मेरी दृष्टि मे विशुद्ध शब्दार्थ के विचार से यह उपयुक्त और युक्त सगत नही है।

तुच्छ या हीन सिद्ध करने का ही प्रयत्न होता है; उसकी त्रुटियाँ दोष या भूले दूर कराने का भाव प्राय. नही के समान होता है। कुछ अवस्थाओ में खिल्ली के लिए यह आवश्यक नही हैं कि वह किसी की त्रुटि दोप या भूल पर ही आश्रित हो; वह निराधार भी हो सकती है। किसी के सम्वन्ध मे यह कहना—'इनकी नाक क्या है, वासी रोटी पर रखा हुआ करेला है'; उसकी खिल्ली उड़ाना है। इसके साथ सदा "उड़ाना" क्रिया का प्रयोग होता है।

'ठट्ठा' पु० (हिं) के "ठठाकर हँसना" वाले प्रयोग से अनुकरणात्मक रूप से वना है। यह उपहास और खिल्ली दोनो की अपेक्षा प्राय: अधिक निर्दोप होता है; और इसमे केवल कुतूहलजनक या विलक्षण वातो के द्वारा हँसना-हँसाना ही उद्दिष्ट होता है। यदि कही वीच मे कोई ताना या व्यग्य आ भी जाय तो वह गौण ही रहता है। उसकी कटुता या तीव्रता की ओर जल्दी किसी का ध्यान ही नही जाता। इसी लिए इसके योग से हँसी-ठठ्ठा पद वन गया है जो विशुद्ध परिहास का वाचक है।

'ठठोली' स्त्री० भी प्रभाव और व्युत्पत्ति की दृष्टि से वहुत कुछ वही है जो "ठट्ठा" है; यदि कोई अन्तर है तो यही कि ठठोली का प्रयोग दो-चार व्यक्तियो की आपस की वात-चीत के प्रसग मे ही होता है। इसके सिवा पुरानी शृंगारिक कविताओ और गीतो मे इसके अनेक प्रयोग मिलते हैं, परन्तु आधुनिक गद्य मे यह शव्द वहुत कम आता हुआ और मरता सा जान पड़ता है। कही-कही इसे "ठठोरी" भी कहते हैं यथा—काहे पिया मोसे तुम करत ठिठोरी रे।—ठुमरी।

इस कोटि के अन्यान्य शव्दो के लिए देखें—(१) हँसी, दिल्लगी परिहास चुहल और फवती। और (२) व्यग्य, कटाक्ष, चुटकी, ताना और वोली। × ×

उपादेयता—स्त्री० [सं०] दे० 'उपयोगिता और उपादेयता'।

उभय सकट—पु० [स०] दे० 'असमजस, उभय-संकट, दुविधा और हिचक'।

उमर—स्त्री० [अ० उम्र] दे० 'आयु, अवस्था और वय'।

उम्मैद—स्त्री० [फा० उम्मीद] दे० 'आशा, प्रत्याशा और प्रतीक्षा'।

ऊपर और पर
(i) About (ii) Upon (i) At (ii) On

'ऊपर' और 'पर' दोनों हिन्दी के सम्बन्ध-सूचक अव्यय हैं जो कुछ अवस्थाओं में तो एक दूसरे के पर्याय रूप में ही चलते हैं, और कुछ अवस्थाओं में जिनके अर्थ या आशय में बहुत कुछ अन्तर भी होता है।

ऊपर (सं० उपरि) सम्बन्धसूचक अव्यय होने पर भी प्रायः क्रिया विशेषण की तरह और कभी कभी विशेषण की तरह (और फलतः संज्ञा की तरह) भी प्रयुक्त होता है। यों तो यह 'तले' या 'नीचे' का विपर्याय है और किसी तल, बिन्दु या विस्तार की तुलना में ऊँचाईवाली दिशा या विस्तार अर्थात् उत्सेध की ओर संकेत करता है, और इसका अर्थ होता है—आकाश या ऊर्ध्व की ओर, जैसे—नीचे धरती और ऊपर आकाश है। पर विस्तृत अर्थ में यह और भी कई प्रकार के आशय या भाव प्रकट करता है, जैसे—

१—ऊँचाई पर या ऊँचे स्थान पर, जैसे—अब तो वे ऊपर (मकान के दूसरे या तीसरे खंड में) चले गये हैं।

२—किसी विस्तार के पूरे तल पर, जैसे—वह कमीज के ऊपर कोट पहनता है।

३—आधार या सहारे पर, जैसे—मेज के नीचे की किताबें भी उठाकर उसके ऊपर रख दो।

४—बहुत ही पास के स्थान में या सटा हुआ, जैसे—उसका नया मकान गंगा के ठीक ऊपर है।

५—किसी प्रकार के क्रम, कोटि, वर्ग या श्रेणी के विचार से आगे बढ़ा हुआ, जैसे—वह ऊपर के दरजे में चला गया है।

६—किसी क्रम के विचार से पहले आया हुआ, जैसे—ऊपर की सब रकमों का जोड़ लगा दो।

७—पद, मर्यादा आदि के विचार से आधिकारिक, उच्च या श्रेष्ठ स्थिति में, जैसे—ऊपर की अदालत, ऊपर के हाकिम आदि।

८—किसी प्रकार के कार्य के निर्वाह या भार-वहन के विचार से, उत्तरदायित्व के रूप में, जैसे—तुम तो सभी काम हमारे ऊपर लादते चलते हो।

९—उपयोगिता, गुण, विशेषता आदि के विचार से किसी की तुलना में आगे बढा हुआ या श्रेष्ठ; जैसे—आपकी सम्मति सबके ऊपर है।

१०—जिसके आगे सभी दबे रहें या हीन ठहरें; जैसे—तुम तो सदा अपनी ही बात ऊपर रखते हो।

११—किसी अंकित, नियत या निर्धारित मात्रा, मान, सख्या आदि से अधिक या ज्यादा; जैसे—(क) यह महीने भर से ऊपर की बात है। (ख) इसमे सौ रुपये से ऊपर खर्च होंगे।

१२—नियत, नियमित आदि के अतिरिक्त या उससे भिन्न; जैसे—उन्हें ऊपर की आमदनी भी हो जाती है।

१३—अन्दर या भीतर की तुलना मे, प्रत्यक्ष, बाहर या सामने; जैसे—इस दवा से अन्दर का बुखार ऊपर आ जएगा।

इस अव्यय की पुनरुक्ति से जो 'ऊपर-ऊपर' पद बनता है, उसके भी कुछ विशिष्ट अर्थ होते हैं जो उक्त सभी अर्थों से प्राय: बहुत कुछ भिन्न होते हैं; यथा—

१—किसी क्षेत्र से अलग या बाहर रहकर; जैसे—वे ऊपर-ऊपर आये और चले गए, हमसे मिले तक नही।

२—ऐसे रूप मे कि जल्दी किसी को पता न लगने पाए, चुपचाप या चोरी से; जैसे—उसने ऊपर-ऊपर सारी कार्रवाई कर ली और किसी को पता भी न चलने दिया।

इससे 'ऊपर-ऊपर से' पद भी बनता है, जिसका अर्थ होता है—बिना गहराई में या तह तक पहुँचे, अथवा बिना गम्भीर विचार किये; जैसे—ऊपर-ऊपर से तो यही जान पड़ता है कि उसका कोई दोष नही है। इसके सिवा इससे एक और पद बनता है—'ऊपर से' जिसका एक अर्थ तो वही होता है जो 'ऊपर-ऊपर से' का बतलाया गया है। इसके सिवा एक और अर्थ भी होता है—केवल औपचारिक रूप से या देखने-दिखाने भर को; जैसे-ऊपर से तो वे बहुत मिलनसार जान पड़ते हैं, अन्दर की बात राम जाने।

'पर' भी इसी 'ऊपर' का 'ऊ' लुप्त होने से बना है। परन्तु 'पर' का प्रयोग सदा अव्यय या विभक्ति के रूप में ही होता है, 'ऊपर' की तरह क्रियाविशेषण या विशेषण के रूप मे नही होता। कुछ अवस्थाओ में तो इसका प्रयोग भी 'ऊपर' की तरह ही होता है; जैसे—कमीज पर कोट भी

पढ़न लो, पुस्तकें मेज पर रख दो, हम पर इतना भार मत रखो, तालाब पर एक मन्दिर भी है आदि। पर कुछ अवस्थाओं में 'पर' के कुछ अतिरिक्त आशय या भाव भी होते हैं।

व्याकरण की दृष्टि से 'पर' सप्तमी या अधिकरण कारक का चिह्न है, जैसे—(क) जमीन पर मत बठो। (ख) वह घर पर नहीं है। परन्तु अव्यय के रूप में कुछ ऐसे अर्थ या आशय भी होते हैं जो 'ऊपर के अर्थों से भिन्न हैं, यथा—

१—किसी काय या घटना के तुरन्त उपरान्त, पश्चात्, पीछे या बाद, जैसे—इस पर मैं और क्या कहता।

२—किसी काम या बात को आधार बना या मान कर, जसे—(क) इसी बात पर तो वे नाराज होकर चले गये। (ख) तुम उनकी बातों पर मत जाओ।

३—किसी नियत धन या रकम के बदले म, अथवा किसी पदाथ या वस्तु के बदले म, जसे—(क) उन्होंने किराये पर शहर मे एक मकान ल लिया। (ख) उन्होंने सौ रुपये पर अपनी जेब घडी रेहन रख दी है। (ग) अब इनके स्थान पर नये अधिकारी आ गये हैं।

४—किसी अवसर, व्यक्ति आदि के निमित्त, जसे—(क) ब्याह पर हजारों रुपये व्यय उड गये। (ख) इस लडके पर २० रुपया महीना खच पडता है। (ग) वह नौकरी या लडाई पर गया है।

५—द्वारा या से, जसे—(क) फोन पर बातें करना। (ख) रेडियो पर गाना।

६—एक के बाद एक, निरन्तर या लगातार, जसे—(क) आदमी पर आदमी आते गये। (ख) दिन पर दिन बीतते गये।

७—किसी को आधार या पात्र बना या मान कर उसके प्रति, जसे—(क) किसी पर बिगडना। (ख) किसी पर जान देना या मरना।*

---

* यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि 'किसी पर जान देना या मरना' और 'किसी के लिए जान देना या मरना' म बहुत अन्तर है। साधारणत 'किसी पर जान देना या मरना' का तो शृंगारिक क्षेत्र है ही जो बहुत अधिक अनुराग का सूचक है। पर 'किसी के लिए जान देना या मरना' कई प्रकार के भिन्न भावों का सूचक है। पहला भाव तो प्राप्ति का सूचक है, जसे—वे रुपये के लिए मरते हैं, अर्थात् रुपये पाने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न

उक्त सभी अवसरो पर सदा 'पर' का ही प्रयोग होता है, 'ऊपर' का नही। इसी आधार पर यह कहना ठीक नही है—(क) उनका (या उन्हे) हमारे ऊपर सन्देह है। और (ख) उनके ऊपर से हमारा विश्वास हट गया है। क्रमात् होना चाहिए—(क) उन्हे हम पर सन्देह है। और (ख) उन पर से हमारा विश्वास हट गया है।

'ऊपर' 'पर' और के प्रयोगो के सम्बन्ध मे विचार करने पर पता चलता है कि कुछ अवस्थाओ मे इनमे बहुत सूक्ष्म अन्तर भी होते है। प्रस्तुत प्रसंग मे 'पर' मे यह भाव होता है—ऐसे रूप मे कि एक चीज के ऊपरी तल के साथ दूसरी चीज का नीचेवाला तल सटा रहे; जैसे—पुस्तक मेज पर रखी है। परन्तु 'ऊपर' मे दोनो चीजो के तलो का सटा रहना न तो अनिवार्य या आवश्यक ही है और न प्रधान ही। 'ऊपर' मे मुख्य भाव उत्सेध या ऊँचाई पर आश्रित या स्थित रहने का है। 'बन्दर' पेड़ पर बैठा है' और 'बन्दर उछलकर पेड के ऊपर जा पहुँचा' सरीखे प्रयोगो मे ऊपर बतलाया हुआ अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार के कुछ और उदाहरण लीजिए—

१—टोपी सिर 'पर' पहनी जाती है और पगड़ी उस (टोपी) के 'ऊपर' बाँधी जाती है।

२—रेल की पटरी या लाइन तो पुल 'पर' बिछी रहती है, परन्तु दोतल्ले पुलों मे (जैसे—राजघाट वाले पुल मे) पुल के 'ऊपर' (अर्थात् पटरी वाले विस्तार के ऊपरी भाग मे या और अधिक ऊँचाई पर) वह सडक होती है जिस पर पैदल यात्री, बैल-गाड़ियाँ, मोटरें आदि चलती हैं।

३—नावें पानी 'पर' चलती या तैरती हैं, परन्तु मछलियाँ कभी-कभी उछल कर पानी के 'ऊपर' भी आ जाती हैं।

करते हैं। पर जब हम कहते हैं—'वे अपनी इज्जत (या बात) के लिए मरते हैं' तो इसका आशय होता है कि वे अपनी इज्जत नष्ट नही होने देना चाहते या अपनी बात की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता नष्ट नही होने देना चाहते। इसी प्रकार 'देश पर मरते हैं' और 'देश के लिए मरते हैं' मे भी उक्त अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। 'देश पर मरते हैं' तो देश के प्रति उत्कट अनुराग का सूचक है परन्तु 'देश के लिए मरते हैं' का आशय होता है—स्वय देश की रक्षा या सम्मान के विचार से प्राण तक दे देते या देना चाहते हैं।

इसके सिवा एक और बात है। ऐसी अवस्थाओं में जहां अन्दर की अपेक्षा, तुलना या विपरीतता का प्रसंग होता है वहाँ 'पर' के स्थान पर भी 'ऊपर' का ही प्रयोग होता है, जैसे—(क) तुम इतना भी नहीं जानते कि गाड़ी पुल के 'ऊपर' चलती है, नीचे नहीं चलती। (ख) साधारण नावें या जहाज तो पानी के 'ऊपर' ही चलते हैं परन्तु पनडुब्बी नावें पानी के ऊपर भी चलती हैं और नीचे (या अन्दर) भी।● × ×

ऊर्जा—स्त्री॰ [स॰] दे॰ 'शक्ति, 'बल, सामर्थ्य, ऊर्जा'।

ऋणक—वि॰, पु॰ [स॰ ऋण से] दे॰ 'धनक और ऋणक'।

ऋणात्मक—वि॰ [स॰] दे॰ 'धनक और ऋणक'।

एकार्थक, Equivalent पर्याय, Synonyms समानक Equivalent और समार्थक Synonymous

इस वर्ग के शब्द हिन्दी में ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में विशेषण और संज्ञा रूप में चलने लगे हैं जिनके अर्थ एक से होते हैं, और जो आपस में एक दूसरे

● यहाँ 'पर' के सम्बन्ध में एक और बात भी बतला देना आवश्यक जान पड़ता है। इसका एक दूसरा अर्थ 'उपरान्त' या 'बाद' भी होता है। परन्तु जब यह किसी संज्ञा की पुनरावृत्ति होने पर बीच में आता है तब क्रमिकता या निरन्तरता का सूचक हो जाता है, जैसे—(क) काम पर काम लदते चले गये। परन्तु कुछ लोग कभी कभी भूल से पहलेवाली संज्ञा को बहुवचन कर देते हैं, जो अनेक अवसरों पर अर्थ की दृष्टि से बहुत भ्रामक हो जाता है, जैसे—(क) उधर से गाड़ियों पर गाड़ियाँ आती रहती हैं। (ख) यहाँ से नावों पर नावें चली जा रही हैं। आदि आदि। ऐसे अवसरों पर होना चाहिए—(क) उधर से गाड़ियाँ पर गाड़ियाँ चली आ रही हैं। (ख) यहाँ से नावें पर नावें चली जा रही हैं। अर्थात् एक के बाद एक गाड़ियाँ या नावें आ या जा रही हैं। 'गाड़ियों पर गाड़ियाँ' या 'नावों पर नावें' का आशय यह भी हो सकता है कि बड़ी गाड़ियों पर लद कर छोटी गाड़ियाँ या बड़ी नावों पर छोटी नावें लदकर आ और जा रही हैं।

के स्थान पर प्रयुक्त होते अथवा हो सकते हैं। परन्तु इनमे के एकार्थक और समानक कुछ कारणो से ठीक नही हैं, और पर्याय तथा समार्थक मे कुछ सूक्ष्म अन्तर है अथवा होना चाहिए। 'एकार्थक' के दो अर्थ होते है। एक तो यह कि ऐसा शब्द जिसका एक ही अर्थ होता हो, और दूसरा यह कि ऐसे दो या अधिक शब्द जो एक ही अर्थ के सूचक होते हो। इस दृष्टि से यह शब्द भ्रामक सिद्ध होता है। समानक का अर्थ तो होता है—ऐसी चीजें जो गुण, धर्म, महत्व, मूल्य आदि के विचार से समान या वरावर हों। इसमे शब्द या अर्थ का सूचक कोई तत्त्व नही है। इसलिए यह अग्रेजी के 'इक्विवेलेन्ट' (Equivalent) का भाव तो अवश्य सूचित करता है, परन्तु 'सिनॉनिम' (Synonym) के स्थान पर इसका प्रयोग ठीक नही ठहरता।

पर्याय और समार्थक दोनो ही 'सिनॉनिम' का भाव ठीक तरह से सूचित करनेवाले शब्द हैं। अर्थात् जो शब्द समान अर्थवाले हों और एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हो, उन्हे हम पर्याय या समार्थक कहते हैं। इनमे से पर्याय हमारे यहाँ का पुराना शब्द है, और समार्थक इधर हाल मे गढा गया है। परन्तु हमारी समझ मे एक विशिष्ट दृष्टि से इन दोनो के प्रयोग में एक महत्वपूर्ण अन्तर होना आवश्यक है। पर्याय तो वहुत पहले से ऐसे शब्दो का वाचक चला आ रहा है, जो एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो सकते हो। परन्तु पह स्पष्ट है कि ऐसे शब्द किसी विशिष्ट भाषा के ही होने चाहिए, किसी अन्य भाषा के नही। हम अपनी भाषा मे चन्द्रमा के स्थान पर सुधाकर का प्रयोग तो कर सकते है, परन्तु अगरेजी के 'मून' (moon) या फारसी के 'माहताव' का प्रयोग नही कर सकते। इसलिए पर्याय का प्रयोग एक ही भाषा के उन अनेक शब्दो के लिए हो सकता हैं जिनके अर्थ समान हो। इसी आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि चन्द्रमा 'मून' और 'माहताव' एक दूसरे के समार्थक तो अवश्य है; परन्तु पर्याय नही है क्योकि इन तीनों का किसी एक भाषा मे एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग नही हो सकता। हमारे यहाँ कुछ लोग 'समार्थक' की जगह 'समानार्थक' का भी प्रयोग करते हैं, परन्तु 'समार्थक' छोटा और हलका शब्द है, इसलिए इसी का प्रचलन ठीक होगा। × ×

एहसास—पुं० [अ०] दे० 'अनुभव और अनुभूति'।

ऐच्छिक—वि० [सं०] दे० 'अनुकल्प और विकल्प'।

औजार—पुं० [फा०] दे० 'यंत्र, उपकरण, औजार और संयत्र'।

और

हिन्दी का एक बहुत ही छोटा, परम प्रचलित और बिलकुल साधारण शब्द है—और। कोशकारों और वैयाकरणों को छोड़कर कदाचित् ही कभी किसी हिन्दी भाषी ने इसके अर्थों, आशयों तथा प्रयोगों पर विचार करने की कोई आवश्यकता समझी हो। आइये देखें कि इस छोटे से शब्द में कितनी अधिक अर्थों और व्यंजनात्मक शक्तियां निहित हैं।

पण्डित कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण में इसे समुच्चयबोधक अव्यय कहा है और इसके दो तीन साधारण प्रयोग बतलाये हैं। हिन्दी शब्द सागर में इसे संयोजक अव्यय कहा है और उदाहरण स्वरूप यह प्रयोग बतलाया है—घोड़े और गदहे चर रहे हैं आदि। उक्त कोश में इसके विशेषण रूप के अन्तर्गत अर्थ दिये हैं—१ अन्य, दूसरा और २ अधिक ज्यादा।

प्रायः आठ दस वर्ष पूर्व मानक कोश के सम्पादन के प्रारम्भिक काल में मैंने इसके सम्बन्ध में लिखा था कि इसका प्रयोग क्रिया विशेषण और विशेषण रूप में भी होता है और क्रिया विशेषण रूप का स्वतंत्र विवरण देते हुए उदाहरण दिये थे—और चिल्लाओ, और मारो, और रोओ।

परन्तु इधर हाल में इस शब्द के कई ऐसे नए प्रयोग मेरे देखने में आये जिनके कारण मुझे अपने समस्त विवेचन पर फिर से तथा अधिक गम्भीरता पूर्वक विचार करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, और मानक कोश के अगले संशोधित संस्करण के लिए सारा विवेचन नए सांचे में ढालना पड़ा। इस लेख में उस नये विवेचन के आधार पर ही कुछ बातें लिखी जा रही हैं।

पदों, शब्दों, वाक्यों, वाक्यांशों आदि को जोड़नेवाला यह संयोजक अव्यय तो है ही पर कुछ अवस्थाओं में इसके प्रयोगों में मेल या तो वह संयोजक-तत्त्व बिलकुल निकल ही जाता है या बहुत दूर जा पड़ता है। हम कहते हैं—काम बिगाड़ते चलो और झिड़कियाँ सुनते चलो, अथवा खूब दूध पीओ और तन्दुरुस्त रहो। ऐसे अवसरों पर यह पहले कही हुई बात के परिणाम या फल का सूचक हो जाता है। झिड़कियाँ काम बिगाड़ने के फलस्वरूप सुननी पड़ती हैं, और तन्दुरुस्ती दूध पीने के फलस्वरूप आती है। फिर हम यह भी कहते हैं—मैं, और चुपचाप बैठा रहूँ, अथवा वह, और आपका सामना करे।

ऐसे अवसरों पर यह किसी प्रकार की विपरीतता, विरोध अथवा विलक्षणता का सूचक होता है।

यह तो हुई ऐसे प्रयोगो की बात जिनमे इसका प्रयोग वाक्यो के बीच मे होता है। पर कुछ ऐसे प्रयोग भी हैं जिनमे यह वाक्यो के आरम्भ में आता है; जैसे—और क्या तुम उसे हाथी-घोड़ा दे देते। अथवा और क्या मैं उसकी खुशामद करने बैठता। ऐसे अवसरो पर इसमे संयोजक-तत्त्व तो अवश्य वर्तमान रहता है, पर इसका सम्बन्ध कुछ दूरान्वयवाले तत्त्व से युक्त होता है। अर्थात् यह किसी ऐसी बात या व्यापार की ओर सकेत करता है जो पहले हो चुका है; और इसका अर्थ या आशय होता है—जो कुछ किया जा चुका है अथवा हो चुका है उसके अतिरिक्त या उससे अधिक। फिर हम यह भी कहते है—और अनजाने आदमी को नौकर रखो; अथवा और पढी-लिखी औरत से व्याह करो। ऐसे वाक्यो का प्रयोग तभी होता है जब कोई किसी अनजाने आदमी को नौकर रखने का अथवा किसी पढी-लिखी स्त्री से विवाह करने का कोई दुष्परिणाम भोग चुका होता है। ऐसे अवसरो पर यह 'और' इस दुष्परिणाम की ओर व्यंग्यात्मक संकेत भी करता है, उस पर कटाक्ष भी करता है, और एक प्रकार से भविष्य के लिए सचेत या सावधान भी करता है। ऐसे प्रयोगो मे उसका यह दूरान्वयी सम्बन्ध इतना अधिक दूर जा पड़ता है कि वह लुप्तप्राय हो जाता है। आशय यही होता है कि जो कुछ तुमने किया, वह तो किया ही; पर आगे कभी ऐसी भूल मत करना।

विशेषण रूप मे इसका एक अर्थ अन्य या दूसरा तो है ही; जैसे—इस पर कोई और रग होता तो अच्छा होता। एक और अर्थ होता है—प्रस्तुत से अधिक या जितना हो उससे ज्यादा; जैसे—अगर कुछ रुपये और हो तो काम मजे मे चल जाय। फिर एक तीसरा अर्थ भी होता है—गैर, पराया या बेगाना; जैसे—और कोई इस झगड़े मे क्यो पड़ने लगा?

क्रिया-विशेषण रूप मे भी इसका प्रयोग होता है; जैसे—जरा और जल्दी-जल्दी चलो; जिसका आशय होता है—चाल ज्यादा तेज करो। कुछ अवस्थाओ मे इसका प्रयोग विशुद्ध सर्वनाम के रूप मे भी होता है; जैसे—तुम औरो की बात छोडो, अपना विचार बताओ। अथवा, यह छाता मेरा नही, किसी और का है।

हो सकता है कि कुछ और प्रसगो मे कुछ भिन्न अर्थो मे भी इसका प्रयोग होता हो, पर वे अभी तक मेरे ध्यान मे नही आये है। यदि कोई विचारशील

सज्जन इस सम्बन्ध में कुछ और सुझाव देने की कृपा करेंगे तो मैं उनका विशेष रूप से अनुगृहीत होऊँगा।

× ×

औसत—पु० [अ०]=माध्य, दे० 'मध्यक, माध्य, माध्य और माध्यिका'।

कटाक्ष—पु० [सं०] दे० 'व्यंग्य, कटाक्ष (छींटा) चुटकी ताना और बोली'।

कदाचार—पु० [सं०] दे० 'अनाचार, कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार।

कबीला, गण, जन और जन-जाति

Tribe Tribe

'कबीला' अरबी कबील या क्बील से बना हुआ पु० शब्द है, जिसका अर्थ है—मनुष्यों का दल या समूह। पर यह दल या समूह ऐसे लोगों का होता है जो एक ही पूर्वज से उत्पन्न हो और साथ मिलकर एक परिवार के रूप में रहते हो।* गण और जन दोनों संस्कृत के पुंलिंग शब्द हैं। 'गण' का प्रयोग तो वस्तुओं के वर्गों के सम्बन्ध में भी होता है और प्राणियों या व्यक्तियों के वर्ग या समूह के सम्बन्ध में भी, जैसे—देवगण, पितृगण आदि। परन्तु 'जन' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल में ऐसे लोगों के सम्बन्ध में होता था जो या तो एक ही जनक या पूर्वज से उत्पन्न होते अथवा जिनके आचार-व्यवहार, रीति रिवाज धार्मिक विश्वास आदि एक ही प्रकार के होते थे और जो एक विशिष्ट प्रकार की बोली बोलते थे। इस दृष्टि से यह अ० के कबील या क्बील का पूर्णत समानार्थक ही है। इसी लिए जहाँ ऐसे लोग स्थायी रूप से बस जाते थे उसे जनपद कहते थे।

यहाँ इन सब बातों के एक मूल तत्व का उल्लेख कर देना भी आवश्यक जान पड़ता है। बहुत प्राचीन काल में और सभ्यता के आरम्भिक युग में अधिकतर लोग खानाबदोश या यायावर होते थे। इन्हें जब जहाँ खान पान आदि का यथेष्ट सुभीता दिखाई देता था तब वे वहाँ चले जाते थे। किसी समय मध्य एशिया, भारत के उत्तर पूर्वी अचल और दक्षिण पूर्वी यूरोप में

* इसी आधार पर हिन्दी में कबीला शब्द ऐसे परिवार का वाचक हो गया है जिसके सब लोग साथ साथ एक ही घर में रहते और खाते पीते हों। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में तो यह शब्द स्त्रीलिंग बनकर जोरू या पत्नी तक का वाचक हो गया है।

ऐसे हजारो दल घूमा करते थे और किसी प्रकार की बाधा या विरोध दिखाई देने पर एक दल के लोग दूसरे दलवालो से लड़-भिड़ भी जाते थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इनमे कोई वशानुक्रमिक राजा नही होता था। हां, समय-समय पर ये लोग मिलकर अपने दल का एक नेता या सरदार अवश्य चुन लेते थे और यदि आवश्यक समझते थे तो उसे हटा कर उसका स्थान किसी दूसरे को भी दे देते थे। यह नेता या सरदार ही उनका प्रधान शासक होता था। अपनी राजनीतिक, सामाजिक आदि विधियाँ निश्चित करने मे ये लोग पूर्ण स्वतन्त्र होते थे और उनमे दूसरो का हस्तक्षेप सहन नही करते थे। इन्ही की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्थाओ के आधार पर आगे चलकर अनेक स्थानों मे गणराज्य भी स्थापित हुए थे ! (दे० गणतन्त्र, प्रजातन्त्र और लोकतन्त्र)

अकेला 'जन' शब्द बहुत से अर्थों मे प्रयुक्त होने के कारण बहुत कुछ भ्रामक भी हो सकता था। इसलिए आज-कल ऐसे दलों को 'जन-जाति' कहने लगे हैं, जो ठीक उसी अर्थ मे प्रयुक्त होता है जिस अर्थ मे अफगानिस्तान, बलोचिस्तान आदि मे कबीला शब्द प्रयुक्त होता है। हिमालय के खस आदि लोग ऐसी ही आर्य जन-जातियो के अवशिष्ट हैं और असम के कूकी, गारो, नागा आदि लोग मगोल जन-जातियो के। बिहार मे मुन्डा, सथाल आदि भी इन्ही जन-जातियो मे गिने जाते हैं और यह माना जाता है कि इनके पूर्वज आस्ट्रेलिया के आदिम निवासी थे जो बहुत प्रचीन काल मे वहाँ से चलकर भारत आये थे और यही बस गये थे। × ×

कब्जा—पु० [अ० कब्ज] दे० 'अधिकार और स्वत्व'।

करतब, करनी और करतूत

इस वर्ग के शब्द हिन्दी की 'करना' क्रिया के भिन्न-भिन्न विकारी रूप हैं और उनके कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्यो के वाचक हैं।

'करतब' पु० [हिं० 'करना'] से उसी प्रकार बना है, जिस प्रकार 'होना' क्रिया से होत और होतब रूप बने हैं। करतब मुख्यतः ऐसे कार्यो का वाचक है जिनमे कर्ता के असाधारण कौशल और दक्षता स्पष्ट रूप से दिखायी देती है। करतब प्रायः अनोखा कुतूहलजनक या विशेष श्रमसाध्य कार्य होता है। यो करतब का अर्थ काम या कृत्य भी होता है; जैसे—करतब वायस वेस मराला—तुलसी। परन्तु इसका अधिकतर प्रयोग किसी

अच्छे और प्रशसनीय काम के लिए होता है, जसे—घुडसवारी के करतब,
तीर चलाने के करतव, पहलवानो के तरतब आदि। कुछ अवस्थाओ म
इसका प्रयोग व्यग्यात्मक रूप म अनुचित या बुरे कामो के सम्ब ध म
भी होता है, जसे—अब तो कठिन का ह के करतब, तुम हो हँसति, कहा
कर लीवो—तुलसी।

'करनी स्त्री० भी अपने मूल अर्थ मे किसी के किये हुए काय का ही
बोध कराती है। इसमे मुख्यत उस काम पर जोर होता है जिसकी ओर
यह सकेत करता है, जसे—(क) असि सब भाँति अलौकिक करनी। (ख)
मुनि सुसीलता आपन करनी। (ग) को कहि सक सचेतन करनी-तुलसी।
और (घ) देखहु करनी कमल की, की हो जल सो हेतु—सूर। यो भी
बोलचाल मे कहा जाता है—(क) अब तुम अपनी करनी का बखान रहने
दो। (ख) जसी करनी करोगे वसा फल भोगोगे आदि। परतु कुछ अवस्थाओ
मे व्यग्यात्मक रूप मे भी इसका प्रयोग होता है, जसे—यह तुम्हारी ही
करनी का ही फल है। यहाँ भी विशिष्ट रूप से काय के स्वरूप पर ही जोर
है, भले ही अनुचित या बुरा होता हो।

'करतूत' स्त्री० भी मूलत किसी के किये हुए काम का ही वाचक है,
जसे—(क) ऊँच निवास नीच करतूती—तुलसी। इसम का 'नीच विशेषण
ही यह सूचित करता है कि करतूत अच्छा भी हो सकती है। फिर भी लोक-
व्यवहार में करतव और करनी की अपेक्षा करतूत का प्रयोग प्राय अनुचित,
दूषित या निन्दनीय कामो के लिए ही हाता है। जब कोई आदमी कुछ
काम बिगाड देता है तब कहा जाता है—'यह सब आप की ही करतूत है।
यह प्राय कुत्सित या हेय ही होती है यथा—'तुम्ह गलानि जिम जनि करहु
समुझि मातु करतूतति। —तुलसी। × ×

करतूत—स्त्री० दे० 'करतब, करनी और करतूत।

करनी—स्त्री० दे० 'करतब करनी और करतूत

कल—स्त्री० [स० कला=यत्र] दे० 'यत्र, उपकरण, औजार और यत्र।'

कलियुग—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग।'

कल्प और युग

Era (i) Age (ii) Period

ये शब्द काल या समय के कुछ बहुत बडे बडे विभागो के वाचक हैं। हैं
तो ये हमारे यहाँ के प्राचीन पौराणिक और शास्त्रीय शब्द, परन्तु आज-कल
कुछ नई विवक्षाओ से युक्त हो गये हैं।

'कल्प' सस्कृत मे विशेषण और सज्ञा दोनो रूपो मे प्रयुक्त होता है; और इन दोनो रूपो में इसके वहुत से अर्थ होते हैं। विशेषण रूप में इसके अर्थ निरोग, स्वस्थ, हृष्ट पुष्ट, कुशल, चतुर और दक्ष, मागलिक या शुभ आदि-आदि होते हैं, और सज्ञा रूप में उप.काल या प्रभात, शुभ कामना, परम कर्तव्य और मुख्य नियम या विधान आदि आदि अर्थ होते हैं। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे यह पौराणिक पारिभाषिक शब्द हैं।

पौराणिक दृष्टि से ब्रह्मा का एक दिन कल्प कहलाता है। यह एक हजार युगो अर्थात् ८ अरव ३२ करोड़ वर्षों का होता है। ऐसे तीस दिनो का ब्रह्मा का एक महीना होता है, और ऐसे १२ महीनो का एक वर्ष। कहते हैं कि ब्रह्मा के ऐसे ५० वर्ष बीत चुके है; और आज-कल ५१ वे वर्ष के पहले महीने का पहला दिन चल रहा है, जिसका नाम श्वेत वाराह कल्प हैं। प्रत्येक कल्प के अन्त मे जगत का पूरा विनाश हो जाता है, और तव फिर से नई सृष्टि का आरम्भ होता है। आज-कल पाश्चात्य धारणाओ के अनुसार कल्प का कुछ और ही अर्थ लिया जाने लगा है। अब पुरा-शास्त्र और भू-शास्त्र में इसका प्रयोग वडे-वडे वैज्ञानिक काल-विभागो के सम्बन्ध मे होने लगा है, जैसे—'आदि कल्प', 'उत्तर ल्प', 'पुरा कल्प', 'मध्य कल्प', और 'नव कल्प'*। ऐसे प्रसगो मे कल्प का प्रयोग सृष्टि की कुछ अलग-अलग प्रकार की विकासात्मक स्थितियो का वाचक होता है।

'युग' पु० के सं० मे तो वहुत से अर्थ हैं; जैसे—दो चीजो का जोड़ा, बैलों को जोतने का जूआ, मनुष्यो की जाति या वर्ग आदि आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे कल्प के चार भागो में से प्रत्येक भाग 'युग' कहलाता है। ये चारो विभाग सत्य युग, द्वापर, त्रेता और कलियुग कहलाते है। पुराणो के अनुसार इन युगों की वर्ष सख्या इस प्रकार—

सत्ययुग या कृत युग	१७,२८,००० वर्ष
त्रेता	१,२९,६०० वर्ष
द्वापर	८,६४,००० वर्ष
कलियुग	४,३२,००० वर्ष

यह भी कहा गया है कि सत्ययुग मे सत्य और धर्म की पूरी प्रधानता रहती है और इसी लिए यह सर्वोत्तम माना जाता है। त्रेता मे सत्य और धर्म

* Archeozoic, Proterozoic, Paleozoic, Mesozoic और Cenozoic या Neozoic

तीन चौथाई रह जाते हैं और पाप का एक चरण या चौथाई अंश आ जाता है। द्वापर मे सत्य और धर्म आधे रह जाते हैं और अधर्म तथा पाप का आधा अंश सामने आ जाता है। कलियुग में सत्य और धर्म एक चौथाई रह जाते हैं, अधर्म और असत्य तीन चौथाई हो जाते हैं। यह भी कहा गया है कि कलियुग में पाप दिन पर दिन बढ़ता जाता है, इसी से इस युग के अन्त में सृष्टि का पूर्ण विनाश या प्रलय होता है।

प्रत्येक युग के भी चार अलग अलग चरण माने गये हैं। आज-कल कलियुग का पहला चरण ही चल रहा है।

जिस प्रकार पौराणिक क्षेत्रों में युग को कल्प का अंश या भाग माना गया है उसी प्रकार आधुनिक प्रयोगो और व्यवहारो मे भी कल्प की नवीन परिभाषा के अतर्गत युग को भी उसका कुछ छोटा और परिमित अंश या भाग ही माना जाता है।

साधारणत युग भी ऐसे काल विभाग का सूचक हो गया है, जिसमें कुछ विशिष्ट प्रकार की घटनाओ, रीतियो, रूढ़िया व्यवहारो अथवा व्यक्तियो की प्रधानता रही हो अथवा रहती हो, जसे—उपनिषदों का युग, शृङ्गारिक कविताओ का युग, भारतेंदु युग, गाधी युग आदि। हम यह भी कहते हैं—'आज-कल चोरी और बेईमानी का युग है अथवा 'अब तो परमाणु युग आ रहा है।' इसी दृष्टि से कहीं तो इसके काल मान का विस्तार कुछ अधिक होता ह और कहीं कुछ कम। ऐसे अवसरो पर युग का प्रयोग अपेक्षया बहुत थोड़ी अवधि या कालमान सूचित करने के लिए होता है। कुछ लोग इस अर्थ मे ज़माना (अ० ज़मान) का भी प्रयोग करते हैं। × ×

कल्पना उद्भावना उपज
Imagination Fancy
और सूझ

इस वर्ग के शब्द ऐसी चिंतन और मनन-शक्ति के वाचक हैं, जो कला, उद्योग, विज्ञान आदि के क्षेत्रों में कोई बिलकुल नई चीज या बात का मूर्तिमान चित्र या स्वरूप हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न करती है और हमें वह चित्र या स्वरूप चर्मनेत्र में प्रत्यक्ष रूप से लाने के लिए प्रवृत्त करती है। इसके फलस्वरूप जो चित्र या रूप प्रत्यक्ष होने पर लोगों के देखने सुनने में आते हैं, ---का भी इसी में अन्तर्भाव होता है।

'कल्पना' स्त्री० [स०] कल्पन का विकारी रूप है जिसका मुख्य अर्थ है—प्रस्तुत करना, बनाना या रचना। कल्पना वस्तुतः हमारे मन की वह क्रिया और शक्ति है जिससे हम अपनी मानस दृष्टि के सामने अनेक प्रकार के नए रूप और विचार बनाकर खड़े करते हैं। ये रूप और विचार पुराने या देखे-सुने रूपो और विचारो के पुनरावर्त्तन भी हो सकते हैं और हमारी उक्त शक्ति के नये गढ़े हुए भी। जो रूप और विचार हमने कभी देखे-सुने न हो या जिनका कभी अस्तित्व न रहा हो, उनके चित्र भी यह कल्पना हमारे सामने लाकर रख सकती है। हम अपनी बीती हुई बाल्यावस्था की भी कल्पना कर सकते हैं और आनेवाली वृद्धावस्था की भी। अपने पुराने अनुभव, ज्ञान, स्मृति आदि की सहायता से बहुत-सी बातो के अनेक खण्डों को एक मे जोड़ या मिलाकर हम बहुत सी नई चीजों, बातों या विचारों की भी कल्पना कर सकते हैं। चित्रकार और मूर्त्तिकार अपनी कल्पना से ही नए-नए चित्र और मूर्त्तियाँ बनाते हैं; और कवि की सुन्दर रचनाएँ प्रायः उसकी कल्पना से ही प्रसूत होती हैं। औद्योगिक तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में जो नए-नए आविष्कार होते हैं और यन्त्र आदि बनते हैं, उन सबका मूल रूप कल्पना पर ही आश्रित होता है। विद्वान् कल्पना के सहारे ही यह स्थिर करते हैं कि विश्व की उत्पत्ति तथा विकास किस प्रकार हुआ होगा; अथवा पृथ्वी पर मनुष्य तथा अन्य प्राणी और वनस्पतियाँ कैसे उत्पन्न हुई और फैली या बढी होगी और आगे चलकर वे कैसे-कैसे नए रूप धारण करती हुई विकसित होगी। कल्पना मे या तो वास्तविकता का बहुत कुछ अंश होता है या उसके बहुत कुछ ठीक होने का आभास होता है। यह बहुत कुछ सर्वांगपूर्ण होती ही है; प्रायः अनुकरणीय आदर्श या मान्य भी होती है। बोल-चाल में इसका प्रयोग कुछ ऐसी अवास्तविक निराधार अथवा संभावित बातों के सम्बन्ध मे भी होता है, जो केवल तर्क के लिए मान ली जाती हैं: जैसे—कल्पना कीजिए कि आप घोर जंगल में अकेले खडे हैं; और अचानक आपको सामने से शेर आता हुआ दिखाई देता है। 'कल्पना' का वि० रूप 'काल्पनिक' होता है।

'उद्भावना' स्त्री० [सं०] उद्भू से व्युत्पन्न है। जिसके प्रारंभिक अर्थ हैं—अस्तित्व मे आना, जन्म लेना, प्रकट होना आदि। इसे हम 'कल्पना' का कुछ सक्षिप्त और हलका रूप कह सकते हैं। हमारे यहां इसका प्रयोग साहित्यिक क्षेत्र मे और मुख्यतः काव्यो की अनोखी और चमत्कारिक उक्तियों के सम्बन्ध मे होता है। इसमे वास्तविकता का तो बहुत कुछ अभाव होता है, परन्तु अनेक पुरानी बातो अथवा वास्तविकताओं के आधार पर

ऐसा नया वचन या विचार प्रस्तुत किया जाता है, जो बहुत ही आकर्षक, मधुर या सुन्दर होता है और जिसे देख या सुनकर उसकी नवीनता पर मन मुग्ध हो जाता है। इस पर परिवेशों और परिस्थितियों अथवा उनकी छाया दिखाई देती है।

'उपज' स्त्री० मूलतः हिं० उपजना [सं० उपजन=उपजना] का भाववाचक संज्ञा रूप है। साधारणतः उपज उन सभी चीजों को कहते हैं, जो पैदा करके या बनाकर तैयार की गयी हों, जैसे—कल-कारखानों या खेतों की उपज। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में तथा बोल-चाल में यह ऐसी नई और विलक्षण बात को कहते हैं जो किसी के मस्तिष्क से अचानक निकली या सामने आई हो। इसमें उद्भावना का कुछ अंश तो रहता ही है, पर यह मुख्यतः क्षणिक या तात्कालिक होती है और उतनी प्रभावक नहीं होती, जितनी उद्भावना होती है।

'सूझ' स्त्री० मूलतः हिं० सूझना [=दिखाई देना] का भाववाचक संज्ञा रूप है। 'उपज' की तुलना में यह और भी क्षणिक या तात्कालिक होती है, और इसका प्रयोग मुख्यतः उपायों युक्तियों आदि के प्रसंग में होता है। यह अनोखी होने के सिवा कुछ असाधारण भी होती है, और इसमें कुछ चमत्कार रहता ही है, जैसे—उनकी भी सलाह ले लो, उनकी सूझ कभी-कभी बहुत काम कर जाती है। इसका प्रयोग कवियों की नई और सुन्दर उक्तियों के सम्बन्ध में भी होता है, जैसे—अच्छे कवियों की सूझ भी प्रायः अनोखी होती है। × ×

कष्ट और क्लेश
Distress, Trouble Torment

ये दोनों शब्द कई प्रकार के दुःखों पीड़ाओं और विपत्तियों के भिन्न भिन्न रूपों के वाचक हैं। इनमें से 'कष्ट' मुख्यतः शारीरिक होने पर भी मानसिक दुःखों का सूचक है परन्तु क्लेश मूलतः मानसिक ही है। कष्ट संस्कृत कष धातु से बना है जिसके अर्थ होते हैं—कसना, दबाना, रगड़ना आदि। संस्कृत में यह दुरवस्था, दोष, दरिद्रता, विपत्ति आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हिन्दी में यह मुख्यतः नीचे लिखे अर्थों में प्रयुक्त होता है—

१ मन में होनेवाला वह अप्रिय तथा दुःखद अनुभव जो किसी प्रकार के अभाव, असमर्थता, रोग, विपत्ति, संकट आदि के कारण होता है, जैसे—अन्न या धन का कष्ट, आँखों या पेट का कष्ट आदि।

२. किसी प्रकार का बहुत अधिक शारीरिक श्रम करने पर होनेवाली थकावट की अनुभूति, जैसे—मैने यह काम बहुत कष्ट सहकर पूरा किया है।

३ व्यावहारिक क्षेत्र मे, कुछ अवसरो पर केवल औपचारिक रूप से भी दूसरो के प्रति आदर-भाव सूचित करने तथा अपनी शिष्टता या सौजन्य दिखाने के लिए भी इसका प्रयोग होता है; जैसे—यदि आप आज सध्या को मेरे यहाँ पधारने का कष्ट करे तो मैं आपका बहुत अनुगृहीत होऊँगा। साराश यह कि कष्ट का प्रयोग ऐसी कठिन या विकट परिस्थितियो और प्रसगो मे होता है जो भौतिक, मानसिक और शारीरिक क्षेत्रो से सम्बन्ध रखते हैं। हिंदी में इसके स्थान पर 'तकलीफ़' (अ० तक्लीफ) का भी प्रयोग होता है।

'क्लेश' सर्वा श मे मानसिक है। यह उस मानसिक स्थिति का सूचक है जिसमे मनुष्य चिंताओ, विपत्तियो आदि के कारण बहुत अधिक विकल तथा सतप्त रहता है। बोल-चाल मे यह घर-गृहस्थी या आपस मे होनेवाली कलह और लडाई-झगडो का भी वाचक हो गया है; जैसे—(क) इधर कई दिन से उनके घर मे बहुत क्लेश मचा हुआ है; और (ख) आपस मे नित्य का क्लेश अच्छा नही होता। परन्तु ऐसे प्रसगो मे यह वस्तुत: कलह या लड़ाई-झगडे से होनेवाली मानसिक विकलता या सताप का ही सूचक होता है। × ×

कसम—स्त्री० [अ०] दे० 'संकल्प, निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ'।

कानून—पु ० [अ०]=विधान; दे० 'विधि, विधान और सविधान'।

काफी—वि० [अ०] दे० 'पर्याप्त और यथेष्ट'।

कामना—स्त्री० [स०] दे० 'इच्छा, कामना, अभिलापा, आकाक्षा और स्पृहा'।

कायर भीरु और डरपोक

Coward Fearful Timid

इस वर्ग के शब्द ऐसे प्राणियो, व्यक्तियो आदि के विशेपण हैं जो अवसर पड़ने पर किसी न किसी कारण से सकुचित हो जाते और पीछे हट जाते हैं।

'कायर' वि० स० कातर का विगडा हुआ हिन्दी रूप है। यो तो संस्कृत मे कातर के अनेक अर्थ हैं, जैसे—कष्ट, सकट आदि के कारण घबड़ाया हुआ, दीन और याचना की भावना से युक्त आदि। परन्तु इसका एक अर्थ पराक्रम, साहस आदि से रहित भी है। इसी अन्तिम अर्थ के आधार

पर हिंदी में इसका मुख्य रूप है—जो साहस के ग्रभाव के कारण किसी बड़े या श्रम साध्य कार्य से घबराता और दूर रहना या बचना चाहता हो जैसे—जो स्वभाव से कायर हो वह भला सेना में क्यों भरती होने लगा, ग्रथवा जगली जानवरों का शिकार करना कायरो का काम नहीं है। इसमे मुख्य भाव साहस न होने का ही है।

'भीरु' वि० [स०] भी उसी धातु से व्युत्पन्न है जिससे भय बना है। इसका ग्राशय है—जिसके मन म भय ग्रधिक हो, जो *बहुत डरता हो। जिस* प्रकार कायर म साहस का ग्रभाव होता है, उसी प्रकार भीरु म भय की प्रधानता होती है। यह बात दूसरी है कि काम के परिणाम या फल के विचार से कायरता और भीरुता म कोई विशेष ग्रन्तर देखने में न ग्राता हो, फिर भी दोनो मे मौलिक भेद तो है ही। कुछ ग्रवसरों पर भीरु बिना समझे बूझे या ग्रपना काय सिद्ध करने के उद्देश्य से ग्रागे बढ़ जाता है, पर ज्यों ही उसे ग्रपने सामने भय का कोई लक्षण या सकट की कोई सम्भावना दिखाई देती है, त्यों ही वह पीछे हट जाता या भाग खड़ा होता है। गीदड़ों, बन्दरों ग्रादि को हम कायर तो नही कह सकते पर वे भीरु ग्रवश्य होते हैं। जब कोई डटकर उनके सामने खड़ा हो जाय तब तो वे भागते ही दिखाई देते है। पर जब तक उन्हें भय उत्पन्न करनेवाली कोई परिस्थिति न दिखाई दे, *तब तक वे ग्रपने झूठे साहस का प्रदर्शन करते हुए ग्रागे* बढ़ सकते हैं।

'डरपोक' वि० हि० डर (भय) ग्रथवा डरना (क्रिया) का विकारी रूप है। यो हिंदी म लोग भले ही 'डरपोक' का प्रयोग कायर और भीरु के पर्याय के रूप मे करते हो, फिर भी डरपोक मे मूल ग्राशय उक्त दोनो शब्दों के ग्राशयों स बहुत कुछ भिन्न है डरपोक वास्तव मे वही कहा जायेगा जो ग्रपनी ग्रसमर्थता, दुर्बलता ग्रादि के कारण सदा मन मे डरता ही रहता हो। *उसमे साहस तो प्राय होता ही नहीं,* और इसी लिए ग्रागे बढने की प्रवृत्ति भी नहीं होती। खरगोश, हिरन ग्रादि जानवर वस्तुत डरपोक ही होते हैं उन्हें कायर या भीरु नहीं कहा जा सकता। कारण यही है कि ऐसे जानवर (या ग्रादमी) सदा यही समझते रहते हैं कि हमे डराने वाली कोई चीज या बात हर जगह खड़ी हो सकती या सामने ग्रा सकती है। इसीलिए वे सदा चौकन्ने और सचेत रहते हैं और जरा सी ग्राहट पाते ही ग्रथवा खटका सुनते ही ग्रपनी रक्षा के लिए ग्राश्रय ढूंढने लगते हैं। × ×

कारण और हेतु

Cause (i) Motive (ii) Reason

इस वर्ग के शब्द ऐसी आधारिक और मौलिक बातो के वाचक हैं जिनके परिणाम या फल के रूप मे कोई कार्य या घटना होती है अथवा जिनसे प्रेरित होकर मनुष्य किसी कार्य मे प्रवृत्त होता अथवा कोई कार्य सम्पन्न करता है। यद्यपि लोक-व्यवहार मे दोनो एक दूसरे के पर्याय समझे जाते हैं, फिर भी दोनो के अर्थों और आशयो मे कुछ सूक्ष्म भेद हैं।

'कारण' स० 'कृ' धातु से बना है और यह उस बात का वाचक है, जिससे किसी कार्य की सृष्टि या फल का प्रादुर्भाव होता है; और इसी लिए इसका 'कार्य' से पहले होना अनिवार्य और अवश्यम्भावी है। यह हमारे तात्विक, दार्शनिक तथा नैयायिक क्षेत्रो का बहुत पुराना पारिभाषिक शब्द है और भिन्न-भिन्न शास्त्रो मे अनेक दृष्टियो से और कई अर्थों मे प्रयुक्त होता है। अपने आप होनेवाली जिस क्रिया, बननेवाली जिस परिस्थिति या उत्पन्न होनेवाली जिस शक्ति के फलस्वरूप कोई कार्य या परिणाम होता है वही क्रिया, परिस्थिति या शक्ति उस कार्य या परिणाम का कारण कहलाती है; जैसे—(क) सृष्टि का कारण ब्रह्म है। (ख) धूप का कारण सूर्य का तीव्र प्रकाश है, (ग) धूएँ का कारण आग है आदि। हमारे यहाँ न्याय दर्शन मे कारण के तीन मुख्य भेद किए गए हैं—(१) समवायि कारण अर्थात् वह चीज जिससे कोई दूसरी चीज बनती है; जैसे—कपडे का समवायि कारण डोरा या सूत है और घडे का समवायि कारण मिट्टी है। इसे उपादान कारण भी कहते हैं। (२) असमवायि कारण अर्थात् वह तत्व या बात जो औपचारिक, क्रियात्मक अथवा रचनात्मक रूप मे उक्त दोनो मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करती हो। खाली डोरे या सूत और कपड़े के ताने-बाने या बुनावट का जो मध्यवर्ती सम्बन्ध होता है, वही कपडे का असमवायि कारण है। और (३) निमित्त कारण, अर्थात् वह तत्त्व बात या व्यक्ति जो समवायि कारण में किसी प्रकार की क्रिया या गति उत्पन्न करके कोई कार्य सिद्ध करता अथवा अभीष्ट परिणाम उपस्थित करता है, जैसे—चरखा, करघा और जुलाहा सभी कपडे के निमित्त कारण हैं, और चाक, आँवाँ, कुम्हार आदि घडे के निमित्त कारण हैं। मल्लाह तो नाव के चलने का निमित्त कारण होता ही है, तेज हवा और पाल भी उस के निमित्त करण ही हैं।

साधारण बोल चाल में हम प्रायः कहते हैं (क) मन ही मनुष्य के मोक्ष और बन्धन का कारण है। (ख) रोग के फिर से उभरने का कारण कुपथ्य अथवा औषध-सेवन न करना है। और (ग) क्रान्ति की राज्यक्रांति का कारण बादशाही की कुव्यवस्था और देश की दुरवस्था थी। किसी बात का कारण कोई विशिष्ट घटना, दशा, शक्ति या स्थिति भी हो सकती है। इसके स्थान पर प्रायः अरबी के 'वजह' शब्द का भी प्रयोग होता है।

'हेतु' संस्कृत की 'हि' धातु से बना है जिसके अनेक अर्थों में से आरम्भिक अर्थ हैं—आगे बढ़ाना, चलाना, प्रवृत्त करना आदि। इसी आधार पर हम हेतु को भी कारण का एक प्रकार कह सकते हैं। अन्तर यही है कि 'कारण' तो प्राकृतिक या स्वाभाविक भी होता या हो सकता है परन्तु हेतु सदा किसी प्रकार के अभिप्राय, इच्छा अथवा मनोविकार के फलस्वरूप होता है, और इसी लिए इसमें 'कारण' के साथ साथ उद्देश्य का भी कुछ भाव सम्मिलित रहता है। हेतु भी है तो एक प्रकार का कारण ही, परन्तु इसका आविर्भाव सदा किसी प्रकार की इच्छा या मनोविकार से होता है। जब हम अनुराग, उत्तेजना, क्रोध, मोह, लोभ आदि के वश में होकर और जान बूझकर किसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए कोई काम करते हैं, तब उसके मूल में रहनेवाला और हमें प्रवृत्त या प्रेरित करनेवाला हमारा विचार ही उस काम का हेतु कहलाता है। यह हमारी इच्छा शक्ति और क्रियाशीलता का परिचायक और प्रेरक होता है। विद्या पढ़ने में ज्ञानवान या विद्वान् बनना अथवा धन संपत्ति प्राप्त करना हमारा हेतु होता है। यदि कोई हमें कष्ट पहुँचाये और हम उससे बदला चुकाना चाहें तब हम भी उसे कष्ट पहुँचाते हैं। हमारे उसे कष्ट पहुँचाने का हेतु हमारे मन में रहनेवाला प्रतिकार का भाव ही होता है। हिंदू लोग अपने पितरों का जो श्राद्ध करते हैं उसका कारण पितरों के प्रति उनके मन में रहनेवाली श्रद्धा होती है। श्राद्ध करनेवालों का हेतु होता है, पितरों को तृप्त, प्रसन्न तथा संतुष्ट करना। हिंदी में इसके स्थान पर प्रायः अरबी के 'सबब'* का भी प्रयोग होता है। × ×

कार्य विधि—स्त्री० [सं०] क्रिया विधि, दे० 'विधि, क्रिया विधि प्रयम और प्रविधि।

* उर्दू का एक शेर है —

सबब किसी ने जो पूछा तो हँसके फरमाया।
वह इत्तदा के लिए था यह इत्तहा के लिए॥

काल, वेला और समय

इस वर्ग के शब्द ऐसी विशिष्ट अवधि या विस्तार के वाचक है, जिसके अन्दर कुछ काम, घटनाएँ, व्यापार आदि घटित या सम्पन्न होते हैं। यद्यपि कुछ अवसरो पर ये तीनो शब्द एक दूसरे के पर्याय का भी काम दे जाते हैं, फिर भी कुछ विशिष्ट दृष्टियो, प्रसंगो आदि के विचार से इनकी मात्रा, मान, विस्तार आदि मे थोड़ा वहुत अन्तर होता है, जो प्रयोगो आदि के आधार पर ही निरूपित हो सकता है।

'काल' पु० [स०] उस 'कल्' धातु से वना है, जिसका अर्थ है—गिनना, हिसाव लगाना आदि और जिससे गणनावाचक 'कलन' शब्द वना है। इसका यह नाम कदाचित् इसी लिए पड़ा है कि गणना के विना इसकी कल्पना या ज्ञान हो ही नही सकता। यह शब्द अर्थ और मान दोनो के विचार से वहुत विस्तृत और व्यापक है। तात्विक दृष्टि से यह अनादि और अनन्त तो है ही, नित्य भी है। इसकी इन विशेपताओं का ध्यान रखते हुए यदि किसी से इसकी तुलना की जा सकती है, तो ब्रह्म से ही की जा सकती है।* समस्त ब्रह्माड या सृष्टि का आरम्भ, स्थिति और प्रलय सभी इसके अन्तर्गत होते हैं और इनके समस्त कार्यों की आवृत्तियाँ भी इसी के अन्तर्गत होती रहती हैं। भूत, वर्तमान और भविष्य सव इसी के अग और खड है। जो कुछ वीत चुका है, वह सव भूतकाल है और जो अभी आने को है, वह भविष्य काल। इन दोनो के बीच का विंदु या विभाजक रेखा वर्तमान काल है। आनेवाला प्रत्येक क्षण, वीतते ही भूतकाल मे चला जाता है। इसका परिमाण स्थिर करने के लिए क्षण, घडी, पहर, दिन, रात, मास, वर्ष आदि के मान निश्चित

* काल के इसी विराट् और सर्व-व्यापक रूप के आधार पर हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषियो और विद्वानों ने इसके 'महाकाल' रूप की कल्पना की थी। प्राचीन भारतीय ज्योतिष मे उज्जयिनी नगरी ही केन्द्र मानी गई थी और अक्षाश तथा देशातर का भी और दिन-मान का भी विचार इसी के आधार पर होता था। इसी लिए आगे चलकर शिव के 'महाकालेश्वर' रूप की कल्पना की गई थी; और उज्जयिनी मे उनका मन्दिर वना था जो अभी तक वर्तमान है और जिसके कारण उज्जयिनी की गणना भी भारत के मुख्य तीर्थों मे होती है। दार्शनिक दृष्टि से यह 'महाकाल' The time कहा जाता है।

किए गए हैं। ये सब काल की अनन्त शृंखला की छोटी मोटी कड़ियाँ मात्र हैं। शाब्दी दृष्टि से इसके किसी बिंदु से दूसरे बिंदु तक सारा अंश काल कहलाता है। परन्तु इसकी व्याप्ति एक ओर तो सैकड़ों, हजारों वर्षों तक और दूसरी ओर किसी क्षण या पल तक भी परिमित हो सकती है, यथा—

१—वैदिक काल, ब्राह्मण काल, उपनिषद् काल आदि।

२—महाभारत काल रामायण काल, बौद्ध काल मुस्लिम काल आदि।

३—जीवन काल राज्य काल, वैधव्य काल सेवा काल आदि।

४—ग्रीष्म काल, वर्षा काल, शीत काल आदि।

५—प्रात काल, साय काल पर्व काल, आदि।

६—जन्म-काल मृत्यु काल, नक्षत्र काल, संक्रांति काल आदि।

व्यवहार की दृष्टि से काल को हम दार्शनिक और पारिभाषिक शब्द कह सकते हैं परन्तु आगे चलकर यह मृत्यु या यमराज का भी वाचक हो जाता है। कारण यही है कि सभी वस्तुओं का अन्त या विनाश इसी के पेटे में होता है। जब हम कहते हैं—'उसका काल आ गया' तो आशय यही होता है कि उसके अन्त या विनाश का क्षण आ गया। हम यह भी कहते हैं—काल परम बलवान या महाबली है। ऐसे अवसरों पर हमारा आशय यही होता है कि ससार मे जितने अच्छे और बुरे उलट फेर होते रहते हैं वे सब इसी के अतर्गत होने के अतिरिक्त इसी के प्रभाव या फल के रूप मे होते हैं।

वेला स्त्री० [स०] का पहला अर्थ है—समुद्र और स्थल के बीच की सीमा रेखा, और दूसरा अर्थ है—समुद्र की लहर। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में दिन अथवा रात का कोई विशिष्ट अंश ही 'वेला' कहलाता है, जैसे—सवेरे की वेला सध्या की वेला आदि। इसके सिवा किसी नियत और निश्चित क्षण अथवा बहुत ही परिमित काल विभाग को भी 'वेला' कहते हैं, जैसे—मिलन की वेला, विदाह की वेला आदि। कुछ अवस्थाओं में इसका प्रयोग कोई विशिष्ट अवसर सूचित करने के लिए ही होता है जैसे—(क) वेला आने पर सब कुछ आप ही हो जाएगा, और (ख) वेला आने पर वृक्ष स्वय फल देने लगते हैं।

समय पु० [स०] के बहुत से अर्थ हैं परन्तु हमारे यहाँ इसका प्रयोग लौकिक और सात्विक क्षेत्रों में बहुत कुछ काल और वेला के पर्याय के रूप मे ही होता है। काल की अपेक्षा समय कुछ अधिक अनिश्चय के भाव से युक्त है और साधारण रूप में इसकी व्याप्ति भी काल की तुलना में कुछ अल्प या परिमित ही होती है, जैसे—इस समय, उस समय किसी समय आदि। फिर

हम यह भी कहते हैं—'किसी का समय सदा एक-सा नही रहता।' ऐसे प्रसंगों मे यह दशा, स्थिति आदि का भी वाचक वन जाता है और तव इसकी जगह काल का प्रयोग नही होता। हाँ, जव इसमे दशा, स्थिति आदि का भव नही रहता और यह अपने विशुद्ध मूल अर्थ में प्रयुक्त होता है, तव इसके स्थान पर काल का भी प्रयोग हो सकता है। 'काल-यापन' का भी वही अर्थ है जो 'समय विताना' का है।

जव हम कहते है—'समय आने पर सारी व्यवस्था हो जाएगी' तव इसका अर्थ उपयुक्त अवसर अथवा नियत काल होता है। कुछ अवसरो पर यह अवकाश के काल का भी वाचक होता है; जैसे—अव तुम्हारे काम के लिए भी मुझे समय निकालना पडेगा। इससे 'समय-कुसमय' पद भी वनता है। जिसका प्रयोग मुख्यत: दो अर्थों मे होता है। एक तो यह पद किसी के अच्छे दिनो और वुरे दिनो का वाचक होता है; जैसे—उन्होने अपने जीवन-काल में अनेक समय-कुसमय देखे हैं, और दूसरे यह उपयुक्त अवसर और अनुपयुक्त अवसर अर्थात् मौके-वेमौके का कभी सूचक होता है; जैसे—वह समय-कुसमय अपना ही राग अलापता (या रोना रोता) रहता है। अर्थात् वह इस वात का विचार नही करता कि यह अवसर या समय इसके लिए उपयुक्त है या नही। अनेक अवसरो पर काल, वेला और समय तीनो के स्थान पर कुछ लोग अरवी के 'वक्त' का भी प्रयोग करते हैं। × ×

किताव—स्त्री० [फा०] दे० 'ग्रन्थ, पुस्तक और किताव'।
किनारा—पु० [फा० कनार:] दे० 'तट और तीर'।

कीर्ति यश और श्रेय

कीर्ति	यश	श्रेय
(i) Glory	(i) Renown, Repute	Credit
(ii) Memento	(ii) Credit	

इस वर्ग के शव्द ऐसी कौशलपूर्ण प्रसिद्धि और सुनाम के वाचक हैं जो कोई वहुत महत्वपूर्ण तथा श्रेष्ठ कार्य पूरा करने पर प्राप्त होते हैं।

'कीर्ति' स्त्री० [स०] का मुख्य अर्थ है—अच्छे कामो का उल्लेख या चर्चा करना। 'कीर्तन' इसी से सवद्ध शव्द है जिसमे परमात्मा के उपकारो और गुणो की वार-वार चर्चा होती है। पुराणो मे इसे दक्ष प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी कहा गया है। इसका आशय यह हो सकता है कि जो लोग धर्म या पुण्य का अर्थात् लोक-कल्याण करनेवाले सत्कर्म करते हैं,

उन्ही की ससार मे कीति होती है। लोग उत्साह, कृतज्ञता और प्रसन्नता पूर्वक उसकी चर्चा करते हैं। ऐसे व्यक्ति के प्रति लोगो के मन मे बहुत अधिक श्रद्धा और सम्मान का भाव होता है, जैसे—भगवान रामचन्द्र ने राक्षसो का विनाश करके यथेष्ट कीति सपादित की थी। उक्त प्रकार का बहुत बडा और महत्वपूर्ण काय भी कीति के अन्तगत ही आता है, जैसे—भागीरथ की कीति गगा के रूप मे वतमान है। इससे कुछ और आगे बढ़ा पर किसी बडे और महत्वपूर्ण काय का स्मारक चिह्न या रचना भी कीति कहलाती है, जैसे—चित्तौड का कीर्ति स्तम्भ।

'यश' पु० [स०] का मुख्य अथ है—सु दर आकृति या रूप। पर आगे चलकर यह किसी बहुत बडे और गौरव पूर्ण काय करनेवाले की चारो ओर फैली हुई ख्याति या प्रसिद्ध का वाचक हो गया। कीर्ति और यश म मुख्य अंतर यह है कि कीर्ति तो मुख्यत किसी महत्वपूर्ण काय की ओर सकेत करती है, और यश उसके फलस्वरूप लोक म फैली हुइ सुख्याति या सुनाम की ओर। इसके सिवा गौरव और महत्त्व की दृष्टि से कीति का क्षेत्र बहुत विस्तृत या व्यापक है और यश का क्षेत्र अपेक्षया सकुचित और सीमित। कीति तो की जाती और फलती है, पर यश अर्जित किया या कमाया जाता है। इससे 'यश लूटना मुहावरा भी बनता है जिसका अथ होता है—बिना कोई बहुत बडा काम या परिश्रम किये ही और बहुत सहज म यश प्राप्त करना। इसके सिवा इसका एक और मुहावरा होता है—'किसी का यश गाना।' इसका अथ होता है—चारो ओर या प्राय किसी की उदारता, परोपकार आदि की चर्चा करते फिरना।

'श्रेय' वि० पु० [स०] के विशेषण रूप म अथ होते हैं—उत्तम श्रेष्ठ, मगलकारक, शुभ आदि। सज्ञा रूप म इसके अथ होते हैं—उत्तमता, कल्याण, मगल शुभ आचरण आदि। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक क्षेत्र म इसका अथ होता है—ऐसा धार्मिक, कृत्य या साधना जिससे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सके और जीवन मरण के बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो जाय।*
परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे अथ के विचार से यह यश का कुछ छोटा या हलका रूप है, और इसकी व्यापकता बहुत कुछ मर्यादित है। यश तो बहुत बडे काम के कारण होनेवाले सुनाम का वाचक है, पर श्रेय किसी कम महत्व

* इसका विपर्याय 'प्रेय' कहा गया है जिसम मनुष्य केवल इस आशय से धार्मिक कृत्य करता है कि मैं स्वग में पहुँचकर वहाँ के सुखो का उपभोग करूँ। इसी लिए 'प्रेय' की अपेक्षा यह निम्नकोटि या हलके दर्जे का माना जाता है।

के कार्य से सबध मे समाज मे सीमित सुनाम का सूचक है। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे इसका अर्थ होता है--वह स्थिति जिसमे किसी बडे काम मे सफलता प्राप्त करने पर उसके कर्त्ता के प्रति आस-पास के लोगों मे आदर और कृतज्ञता का भाव उत्पन्न होता है; जैसे--इस काम के लिए प्रयत्न तो बहुत से लोग किए पर इसे पूरा करने का श्रेय आपको ही है। अर्थात यह कार्य सिद्ध करने मे आप ही सफल हुए हैं। कुछ लोग ऐसे अवसरो पर श्रेय के बदले यश का भी प्रयोग कर जाते हैं; पर उक्त विवेचन को देखते हुए ऐसा करना ठीक नही है। × ×

कीर्तिमान--पु० [स०] दे० 'उच्चमान, उच्चाक और कीर्तिमान'।

कुतूहल--पु० [स०] दे० 'आश्चर्य, अचभा, विस्मय और कुतूहल'।

कूटनीति--स्त्री० [स०] दे० 'राजतंत्र, राजनय और राजनीति'।

कूत--स्त्री० [स० आकूत=आशय, उद्देश्य] दे० 'गणन अनुगणन, आकलन, पारिकलन, परिगणन, सख्यापन या सख्याकन'।

कूतना=सकर्मक [हि० कूत] दे० 'गणन, अनुगणन, आकलन, परिकलन, परिगणन, सख्यापन या सख्याकन'।

कृत-युग=पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

केन्द्र और नाभि

Centre	1. Navel
	2. Nucleus

इस वर्ग के शब्द किसी गोल या वर्तुल क्षेत्र अथवा वस्तु के बीच मे अथवा बीचो-बीच मे पड़नेवाले अश, बिन्दु या स्थान के वाचक है।

'केन्द्र' पु० [सं०] का मुख्य अर्थ है--किसी चीज के ठीक बीच मे या बीचो-बीच पड़नेवाला बिन्दु या स्थान। पर आगे चलकर यह शब्द ज्यामिति का एक प्रसिद्ध पारिभाषिक शब्द बन गया था। वहाँ केन्द्र किसी गोल या वर्तुलाकार वस्तु के ठीक बीच में पडने वाला वह बिन्दु कहलाता है जिससे उसकी परिधि के सभी बिन्दु समान दूरी पर पड़ते हो। वहाँ जब कोई वृत्त बनाना पडता है, तब परकार से इसी बिन्दु के चारो ओर ऐसी रेखा खींची जाती है जिसका प्रत्येक बिन्दु उस केन्द्र बिन्दु से समान अन्तर या दूरी पर पडता है। इससे और आगे बढने पर यह शब्द किसी वस्तु के बीच या मध्य में पड़नेवाले अंश या स्थान का वाचक हो गया (मध्य से सम्बन्ध रखनेवाले अन्यान्य शब्दो के लिए दे०--'मध्यक, माध्य, माध्यम और माध्यिका')

और इसम से ऊपरी या बाहरी सिर पर पड़नेवाले बिन्दुओं के समान अन्तर या दूरी पर होने का भाव प्राय निकल सा गया। इसी आधार पर आज कल यह अपने बहुत विस्तृत अर्थ में प्रचलित है। आज कल केन्द्र किसी क्षेत्र के ऐसे स्थान का वाचक हो गया है जहाँ से आस पास के अथवा इधर उधर दूर तक फले हुए अंशो, कार्यों, विभागों आदि का प्रबन्ध या सचालन होता है। दिल्ली सारे भारत के ठीक बीचो बीच म नहीं है, बल्कि उत्तर पश्चिमी अचल म है। फिर भी इसी लिए उसे केन्द्र कहते हैं कि वहाँ से भारत के सभी क्षेत्रो, प्रदेशो, राज्यो आदि की व्यवस्था होती है। किसी व्यापारिक सस्था की अनेक शाखाएँ देश मे चारो ओर फैली हुई हो सकती है, परन्तु उसका केन्द्र वही कहलाता है जहाँ उसका मुख्य और सब प्रधान कार्यालय होता है। यत्रो आदि मे वह बिन्दु केन्द्र कहलाता है जिसके चारों ओर अनेक कल पुर्जे घूमते या चक्कर लगाते हो। सामाजिक क्षेत्र मे वह बीच का स्थान केन्द्र कहलाता है जहाँ एक ही प्रकार के बहुत से लोग आकर इकट्ठे होते या रहते हों, जसे—गुण्डों, जुआड़ियो डाकुओं आदि का केन्द्र। जिस स्थान पर एक ही प्रकार का कोई बहुत बड़ा या महत्वपूर्ण काम होता है और जहाँ से चारो ओर उस काम का प्रसार या विस्तार होता है, वह भी केन्द्र कहलाता है, जसे—विद्या, साहित्य आदि का केंद्र।

'नाभि' स्त्री० [स०] भी मूलत केन्द्र या मध्य भाग का वाचक है पर आगे चलकर इसमें कुछ नई विवक्षाएँ लग गयी हैं। अपने परम प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ मे यह जरायुज जन्तुओ के पेट के बीच में पड़नेवाले उस गड्ढे का वाचक है जो गर्भ काल मे भी और जन्म के समय मे भी जरायुज नाल से जुड़ा रहता है। गर्भावस्था मे माता के शरीर से सभी पोषक पदार्थ इसी नाल के द्वारा गर्भस्थ जीव के शरीर म पहुँचते और उसका पोषण करते हैं। जन्म के समय यह नली या तो आप से आप कटकर अलग हो जाती है या मनुष्यो, गौओ भसों आदि में काटकर अलग कर दी जाती है। शरीर शास्त्र के अनुसार जरायुज प्राणियो के इसी गड्ढे पर स्नायविक तत्र का केन्द्र होता है। इससे और आगे बढ़ने पर इसका प्रयोग किसी पदार्थ के ठीक बीच मे पड़नेवाले उस भौतिक तत्व या ठोस अश के लिए होता है जिसके चारो ओर उसके सब अग या अश बने या लगे हुए होते है, जसे—गुठलीदार फलो के बीच में पड़नेवाली गुठली ही उनकी नाभि होती है। गणित ज्योतिष म किसी धूमकेतु या पुच्छल तारे के अगले भाग या सिरे के बाचोबीच जो अधिक चमकीला बिन्दु होता है, उसे भी उसकी नाभि

कहते हैं। भौतिक और रसायन शास्त्रो मे परमाणु के ठीक मध्यवाला अंश भी नाभि कहलाता है। इसी अंग के चारो ओर मूल तत्व का सारा विस्तार होता है। यह अश बहुत अधिक शक्तिशाली होता है और परमाणु वमो आदि का सारा संहारक परिणाम इसी अंश के विस्फोट पर आश्रित होता है। इसके सिवा आज-कल और भी अनेक ऐसे अस्त्र-शस्त्र तथा यत्र आदि वनने लगे हैं जो इसकी शक्ति से वहुत वडे-वडे और महत्वपूर्ण कार्य बिलकुल नए और विलक्षण ढङ्ग से करते हैं। इसी लिए ऐसे यंत्रो को नाभिक यत्र या शस्त्र (Nuclear arms) कहते हैं। × ×

कोटि, वर्ग और श्रेणी
Category Class Grade

यह माला ऐसी समूहवाचक सज्ञाओ की है जो किसी विशिष्ट दृष्टि से किये हुए विभाजनो के प्रकार और रूप सूचित करती हैं। यो तो सस्कृत मे 'कोटि' के कई अर्थ है, परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे उसका एक विशिष्ट अर्थ है—किसी विचारणीय या विवादग्रस्त वात के पक्ष या विपक्ष में कही जानेवाली हर तरह की वातें या विचार, जैसे—इन सभी कोटियों मे एक वात समान रूप से पाई जाती है। इसी आधार पर आज-कल इस शब्द मे एक नया अर्थ भी जुड़ गया है जो एक विशिष्ट प्रकार के विभाग का सूचक है। जव हम किसी समान गुण, धर्म या रूप के आधार पर चीजों या वातो का कोई अलग विभाग वनाते या मानते हैं तव उस विभाग को कोटि कहते हैं; जैसे—हिन्दी मे अभी तक इस कोटि के दो ही चार ग्रन्थ लिखे गये हैं। यहाँ कोटि शब्द एक अलग प्रकार के ऐसे विभाग का सूचक है जो औरो से स्पष्टतया पृथक् दिखाई देता हो।

'वर्ग' को हम कोटि का विस्तृत और व्यापक रूप कह सकते है। कोटि मे तो प्राय. थोडी सी ही और वहुत ही विशिष्ट प्रकार की चीजो, आदि का अन्तर्भाव होता है, परन्तु वर्ग मे ऐसी सभी चीजे, वातें और व्यक्ति आ जाते हैं जो साधारण रूप से देखने पर वहुत कुछ एक ही तरह के जान पड़ते हैं। अर्थात् इस विभाग में विशिष्ट गुणों, धर्मो आदि के स्थान पर सामान्य गुणो, धर्मो आदि का ही विचार होता है। साधारणतः एक ही प्रकार की अथवा वहुत कुछ मिलती-जुलती या सामान्य धर्मवाली वस्तुओ का समूह वर्ग कहलाता है; जैसे—औषधि वर्ग, धातु वर्ग, पशु वर्ग आदि। इसी आधार पर व्याकरण

में स्वर नलिका या मुख के एक ही स्थान से उत्पन्न होनेवाले स्पर्श व्यंजन वर्णों का समूह भी वर्ग कहलाता है, जैसे—क-वर्ग, च-वर्ग, प-वर्ग आदि। सामाजिक क्षेत्र में ऐसे लोगों के समूह को भी वर्ग कहते हैं जो आर्थिक, व्यावसायिक आदि दृष्टियों से स्वतंत्र इकाई के रूप में माने जाते हैं जैसे—धनिक वर्ग, मध्यम वर्ग, श्रमिक वर्ग आदि। छोटी और बड़ी जातियों आदि के विचार से समाज के लोगों का जो विभाजन होता है वह भी वर्ग कहलाता है जैसे—ब्राह्मण वर्ग, अन्य वर्ग आदि। विद्यालयों आदि में पढ़ाई के स्तर के विचार से विद्यार्थियों के जो विभाग होते हैं वे भी वर्ग कहलाते हैं, जैसे—विद्यालय का पाँचवाँ वर्ग सातवाँ वर्ग आदि।

'श्रेणी' का एक अर्थ है—अवली या पंक्ति। दूसरा अर्थ है—लगातार चलता रहनेवाला क्रम या शृंखला और तीसरा अर्थ है—ऊपर चढ़ने की सीढ़ी। इसी आधार पर प्रस्तुत प्रसंग में श्रेणी से ऐसा विभाजन सूचित होता है जिसमें थोड़े थोड़े अन्तर पर आगे बढ़ते चलने या ऊपर उठते रहने का भाव प्रधान है। आज कल कार्यालयों में कार्यों की प्रधानता गौणता आदि के विचार से कार्यकर्ताओं के जो छोटे बड़े विभाग होते हैं उन्हें प्रायः श्रेणी ही कहते हैं, जैसे—प्रथम श्रेणी के कर्मचारी चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी आदि। कई दृष्टियों से यह वर्ग का पर्याय भी है। विद्यालयों आदि के वर्गों को श्रेणी भी कहते हैं, जैसे—चौथी श्रेणी का विद्यार्थी, पाँचवीं श्रेणी का विद्यार्थी। वर्ग और श्रेणी के इन अर्थों में उर्दू का दरजा (अ० दरज भी प्रचलित है।

प्राचीन भारत में, एक ही प्रकार के व्यवसाय करनेवाले व्यापारियों का संघटन भी श्रेणी कहलाता था, परन्तु आज कल इस अर्थ में इसका प्रयोग बिलकुल उठ गया है।

सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर पता चलता है कि वर्ग की तुलना में कोटि का विस्तार बहुत ही संकुचित और सीमित होता है। कोटि को हम वर्ग का कोई छोटा विभाग या शाखा ही कह सकते हैं। पुस्तकों के वर्ग में तो सभी प्रकार की पुस्तकें आ जाती हैं परन्तु जब हम उच्च कोटि अथवा मध्यम कोटि की पुस्तकों की चर्चा करते हैं तो हम उनका क्षेत्र बहुत ही सीमित कर देते हैं। यही बात 'देव वर्ग' के सम्बन्ध में भी है। देवताओं के वर्ग में तो संसार भर की जातियों, देशों और धर्मों के देवता आ जाते हैं परन्तु पौराणिक अथवा वैदिक देवताओं की कोटि ही होती है। प्रायः लोग कोटि और वर्ग दोनों के स्थान पर 'श्रेणी' का प्रयोग करते हुए भी देखे जाते हैं। × ×

कोशिस—स्त्री० [फा०] दे० 'चेष्टा, प्रयत्न और प्रयास'।
कौतूहल—पु० [स०] दे० 'आश्चर्य, अचम्भा, विस्मय और कुतूहल'।

क्या

'क्या' हिन्दी के उन बहुत ही छोटे और सामान्य शब्दो मे है, जिनका प्रयोग सभी लोग नित्य दिन मे पचीसो-पचासो बार करते हैं। इसके साथ अनेक प्रयोग भी लगे है, जैसे—हम तुम्हे क्या समझते हैं, तुम उनके सामने क्या चीज हो, तुम क्या खाकर उ.से लड़ोगे, हम समझते हैं कि तुम्हारे मन मे क्या है, क्या बात है, हमे क्या, हमारा क्या, क्या से क्या हो गया, आदि-आदि। इस प्रकार के बहुत से प्रयोग और उनके अर्थ हिन्दी शब्द-सागर मे आये हैं। परन्तु मानक हिन्दी कोश का सम्पादन करने के समय मुझे 'क्या' के कई नये प्रयोग और अर्थ मिले हैं, जिनका अब तक हिन्दी के किसी कोश मे समावेश नही हुआ है। शब्द-सागर मे भी जो प्रयोग आये हैं, उनका वर्गीकरण भी उतना ठीक नही है, जितना होना चाहिए, और उनके अर्थो या व्याख्याओ मे भी बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है। इसी दृष्टि तथा नए सिरे से विवेचन करने पर मुझे इसके सम्बन्ध मे बहुत-सी बाते मिली हैं, जिनकी जानकारी भाषा-प्रेमियो के लिए मनोरंजक हो सकती हैं।

'क्या' के सम्बन्ध मे पहली बात तो यह है कि पडित कामताप्रसाद गुरु ने अपने हिन्दी व्याकरण मे लिखा है कि इसकी कारक-रचना नही होती, और कदाचित् इसी आधार पर शब्द-सागर मे लिखा है कि इसके साथ विभक्ति नही लगती। पर शब्द-सागर मे ही 'क्या का क्या हो जाना' अथवा 'क्या से क्या हो जाना', मुहावरा आया है जिसमे 'क्या' के आगे 'का' और 'से' विभक्तियाँ भी दिखायी गई हैं। वास्तव मे बात यह है कि 'क्या' सर्वनाम तो है ही, विशेषण भी है, और जब विशेषण का प्रयोग सज्ञा के रूप मे अथवा सज्ञा के स्थान पर होता है, तब उसमे विभक्ति लगती है; जैसे—बडे से बडा, सबके सब आदि प्रयोगो में देखने मे आता है। इसी लिए 'क्या' भी जब सज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होता है, तब उसमे विभक्ति लगती है। 'क्या से क्या हो गया' मे दोनो 'क्या' कुछ विशिष्ट स्थितियो के वाचक हैं। 'क्या से क्या हो गया' का अर्थ या आशय होता है—पहले जो स्थिति थी, वह बदल कर बिलकुल भिन्न या विपरीत हो गई, अर्थात् एक रूप के स्थान पर दूसरा रूप हो गया। यहाँ 'क्या' स्थिति या रूप का वाचक है, अत: उसके साथ विभक्ति लगी है।

व्याकरण की दृष्टि से 'क्या' मूलत प्रश्न वाचक सर्वनाम है, पर यह विशेषण की तरह भी प्रयुक्त होता है, क्रिया विशेषण की तरह भी और अव्यय की तरह भी। तुम क्या खाओगे? वहाँ क्या हुआ? तुम्हें क्या मिला? क्या खर्च लगा? सरीखे प्रयोगों म यह सर्वनाम रहता है। 'वाह!' क्या बात कही है! तुम्हारा वहाँ क्या हाल हो गया! क्या पिद्दी और क्या पिद्दी का शोरबा! सरीखे प्रयोगों मे 'क्या' विशेषण तो हो ही गया है, उसका प्रातिपदिक रूप भी लुप्त हो गया है, और वह आश्चर्य, तुच्छता आदि का सूचक हो गया है। हम क्या! तुम्हारा क्या! सरीखे प्रयोगों म भी क्या है तो विशेषण ही पर, ऐसे अवसरों पर इसके आगे संज्ञा शब्द इसलिए नहीं है कि उसका अध्याहार हो गया है। इसम 'क्या' वस्तुत 'हमे क्या आवश्यकता या गरज है' का संक्षिप्त रूप है। और 'तुम्हारा क्या' वस्तुत 'तुम्हारा क्या जाता या बिगडता है।' का संक्षिप्त रूप है। तुम ये सब बातें क्या जानो! क्या कहना है! हम क्या जायँ! सरीखे प्रयोगों मे भी यही 'क्या' और आगे बढ़कर क्रिया विशेषण बन जाता है। और जब हम कहते हैं—क्या हम भी तुम्हारे साथ चलें? तो यहाँ 'क्या' अव्यय हो जाता है।

पर ये सब तो 'क्या' के सम्बन्ध की बिलकुल सामान्य बातें हुईं। अब 'क्या' के कुछ ऐसे अर्थ तथा प्रयोग लीजिए जो मुझे नये मिले हैं। कुछ अवस्थाओं म 'क्या' का आशय नहीं ता होता ही है, जैसे—'अब वह क्या आयेगा' फिर भी ऐसे अवसरों पर इसका आशय यह नहीं होता कि वह निश्चित रूप से नहीं आयेगा। इसमे कुछ सन्देह या सम्भावना का तत्त्व भी मिला रहता है। जब हम कहते हैं—'अब वह क्या आयेगा', अथवा 'वह क्या बचेगा' तो इसका आशय यही होता है कि उसके आने या बचने की बहुत ही कम आशा या सम्भावना है। अर्थात् हो सकता है कि किसी अवस्था मे वह आ या बच भी जाय। फिर हम यह भी कहते हैं—दो क्या बल्कि चार आदमी भेज दो। यहाँ भी 'क्या' का अर्थ प्राय 'नहीं' के समान होता है, पर यह 'नहीं' भी कुछ अलग प्रकार का होता है। इसमे आपेक्षिक आवश्यकता, उपयोगिता आदि के तत्त्व निहित रहते हैं। और 'यह खाकी क्या हरा है।' म 'क्या' आपेक्षिक अनिश्चय और वरीयता के भाव का सूचक है। पर जब हम कहते हैं—'म या इसे क्या देखेगा।' अथवा 'मूर्ख इसे क्या समझेगा' तब हमारा आशय उक्त आशय से कुछ और आगे बढ़कर निश्चायक रूप धारण कर लेता है। जब कहते हैं—'तुम ये सब बातें क्या

जानो' तब हमारा यह कथन उतना दृढ तथा निश्चायक नही होता, जितना 'अन्धा इसे क्या देखेगा', कहने में होता। और अर्थ-विवेचन की दृष्टि से यह अन्तर या भेद बहुत बडा और विशेष महत्व का है।

'क्या' के सम्बन्ध मे विलकुल नयी और सबसे अधिक महत्व की बात मेरे देखने में आयी, वह यह कि कुछ अवसरो पर इसका प्रयोग बिलकुल अकेले और विना किसी दूसरे शब्द के योग के भी होता है और व्याकरण की दृष्टि से ऐसे अवसरो पर 'क्या' न तो सर्वनाम रह जाता है, न विशेषण, अव्यय आदि, बल्कि वह एक स्वतन्त्र वाक्य बन जाता है। इस सम्बन्ध में व्याकरण का सिद्धान्त स्पष्ट है। जब हम अपने मन का कोई भाव प्रकट करने के लिए कुछ शब्द अपने व्याकरण के नियम के अनुसार किसी विशिष्ट क्रम मे लगाकर कहते या लिखते हैं, तब उन शब्दो का समूह वाक्य कहलाता है। पर पहली और सबसे बड़ी शर्त यह होती है कि हमारे मन का कोई पूरा भाव उससे प्रकट हो। यदि भाव या विचार पूरा न हो, तो शब्द-समूह पद ही बनकर रह जाता है, वाक्य नही बनता। पर कुछ अवसरों पह हम एक ही शब्द से अपने मन का कोई एक पूरा भाव या विचार प्रकट करते हैं, और ऐसी अवस्था में हमारा वह एक शब्द ही तात्त्विक दृष्टि से वाक्य बन जाता है। हमसे कोई पूछता है—आप कहा गये थे ? हम कहते है—घर। यहाँ यह अकेला 'घर' शब्द ही वाक्य बन गया है, क्योकि इससे हम अपना यह भाव या विचार प्रकट करते है कि हम घर गये थे। 'क्या' का भी कुछ अवसरो पर वाक्य के रूप मे ऐसा ही प्रयोग होता है। आपस मे बात-चीत करने के समय किसी कारण से या कभी-कभी आपकी कोई बात, उसका कोई अंश या शब्द हम नही समझ या सुन पाते। उस समय हमे आप से पूछना पड़ता है—क्या ? अतः यह क्या भी यहाँ वाक्य हो जाता है। आप कह सकते हैं कि इस तरह तो व्याकरण की दृष्टि से ऊपर उदाहरण मे का 'घर' भी संज्ञा न रह कर वाक्य बन गया है। पर नही; 'क्या' का यह अन्तिम उदाहरण तो हमने केवल विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए दिया हैं। कुछ विशिष्ट अवसर ऐसे भी होते हैं, जिनमे 'क्या' मे कुछ और भाव भी निहित रहते हैं, जिनका उल्लेख शब्द-कोशों मे होना आवश्यक है। जब अचानक कोई अनहोनी, अनिष्ट अप्रत्याशित या विकट घटना घटित होने की बात हम सुनते हैं' और हम प्रायः अवाक् से हो जाते हैं, तब हमारे मुँह से केवल 'क्या' निकल कर रह जाता है। यदि कोई आकर कहे—'आज सड़क पर दिन-दहाड़े गोलियाँ चल गयी या डाका पढ़ गया' तब प्रायः मुँह से उसी

प्रकार 'क्या' निकल जाता है, जसे अरे हैं आदि शब्द निकलते हैं। ऐसे अवसरों पर यह विकट आघातजन्य विस्मय मात्र का सूचक होता है, और इसका आशय होता है कि क्या ऐसा भी कभी हो सकता है। एक और उदाहरण लीजिए। दो आदमियो म आपस म बहुत अधिक कहा सुनी या लडाई झगडा होता है। एक आदमी दूसरे से बिगडकर कहता है— मैं तुम्हारे घर मे आग लगा दूँगा या 'मैं तुम्हे जान से मार डालूँगा'। उस समय दूसरा आदमी क्रोध से भरकर कहता है—क्या! अब यह होता है कि क्या तुम मेरे रहते हुए ऐसा साहस कर सकते हो? और आशय यही होता है कि मैं तुम्हे कदापि ऐसा न करने दूँ। अथवा तुम कभी ऐसा न करने पाओगे।

साराश यह कि बहुत से शब्दो का कुछ विशिष्ट अवसरो पर कुछ अलग अर्थ तथा कुछ स्वतन्त्र आशय होता है और आगे चलकर हमारे जो नये और अच्छे शब्दकोश बनें, उनम शब्दो पर ऐसी ही गम्भीर दृष्टि से विचार करके उनके अर्थों, प्रयोगो आदि का निरूपण और निवेचन होना चाहिए। कोई शब्द छोटा या सामान्य समझकर उपेक्षापूवक छोड नही दिया जाना चाहिए।

× ×

क्रियाविधि—स्त्री० [स०] दे० 'विधि, क्रियाविधि, प्रक्रम और प्रविधि।
क्लेश—पु० [स०] दे० 'कष्ट और क्लेश।'
क्षेप्यास्त्र—पु० [स०] दे० 'अस्त्र आयुध और शस्त्र।
खलबली—स्त्री० अनु० दे० 'हलचल, खलबली, सनसनी और हडकम।
खिलाफ—वि० [फारसी]=विरुद्ध दे० प्रतिकूल, विपरीत और विरुद्ध'।
खिल्ली—स्त्री० [स०] दे० उपहास, खिल्ली, ठठ्ठा और ठठोली।
खेद—पु० [स०] 'दुख, खेद, विषाद और शोक।'
खर—अ प० [अ०] दे० अच्छा और खर।'
खैरात—स्त्री० [अ०]=दान, दे० दान अनुदान अधिदान, अनुदान, परिदान और प्रदान।'

खोज	अनुसधान	अन्वेषण
Search	1 Investigation 2 Inquery	Exploration
और		शोध Researct

इस वग के शब्द कोई आदमी या चीज ढूँढने या तलाश करने के अथवा किसी बात का पता लगाने के वाचक है।

'खोज' स्त्री० हि० 'खोजना' क्रिया से बनी हुई भाववाचक संज्ञा है। खोजना का मूल सम्बन्ध स० खुज् धातु से है, जिसके अर्थ हैं चुराना, छीनना और लूटना। इसी आधार पर खोजना का अर्थ होता है—खोई या चोरी गयी हुई चीज ढूँढना या तलाश करना। खोज इसी का भाववाचक रूप है। अर्थ की दृष्टि से यह इतना व्यापक है कि इस वर्ग के प्रायः और सभी शब्दो के अर्थ इसके अन्तर्गत आ जाते हैं; और इस प्रकार के प्रायः सभी दूसरे शब्दो के स्थान पर इसका प्रयोग होता या हो सकता है। आदमियो और चीजो को ढूँढने का काम तो खोज है ही; अधिक विस्तृत क्षेत्र मे यह भागे हुए ऐसे पशुओ और व्यक्तियो के पैरो के निशानों का भी वाचक हो गया है जिन्हे देखकर कोई उन्हे ढूँढने या उनका पता लगाने के लिए आगे वढता है। इससे भी और आगे विकसित होने पर इसका अर्थ होता है—किसी प्रकार के चिह्नो या निशानो के आधार पर कुछ ढूँढने या किसी वात का पता लगाने का काम; जैसे—(क) पुलिस चोरो (या डाकुओ) की खोज मे लगी है। (ख) वहुत खोज करने पर भी चोरी गयी हुई चीजो का पता नही लग सका। उर्दू के अनुकरण पर हिन्दी में इसके स्थान पर 'तलाश' का प्रयोग होता है जो मूलतः तुर्की भाषा का शब्द है। साधारणतः चुराई-छिपाई हुई चीजो का पता लगाने के लिए किसी के घर की सव चीजो की अच्छी तरह छान-वीन की जाती है। उसे 'तलाशी' कहते हैं। इसके साथ प्रायः लेना क्रिया का प्रयोग होता है। एक दूसरे प्रसग मे खोज का जो अर्थ होता है, उसके लिए दे० 'आविष्कार और उपज्ञा (या खोज)'।

'अनुसंधान' पु० [सं० अनु+संधान] का मूल अर्थ है—किसी वात पर ध्यान या लक्ष्य रखकर उसके सम्वन्ध मे ज्ञान प्राप्त करने के लिए पीछे पीछे चलना या आगे वढना। परन्तु आज-कल हिन्दी में इसका विशिष्ट अर्थ होता है—किसी वात या विपय के मूल कारण, तथ्य, रूप या स्थित का ठीक और पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्योरे की सभी वातो पर ध्यानपूर्वक और व्यवस्थित रूप में छान-वीन और जाँच-पडताल करना। यह मुख्यत. आधिकारिक या प्रशासनिक होता है, जैसे—पुलिस इस रहस्यमय हत्या-काड का अनुसधान कर रही है। आशय यही होता है कि वह सभी परिस्थितियो की व्यवस्थित रूप से जाँच करके वास्तविकता का पता लगाने मे लगी हुई है।

'अन्वेपण' पु० [स० अनु+ऐपण] का शब्दार्थ है पीछे या वाद मे अच्छी तरह देखना या ढूँढना। इसके आरम्भिक अर्थ तो वहुत कुछ वही है, जो ऊपर खोज और अनुसधान के वतलाये गये हैं, परन्तु आज-कल इसका विशिष्ट अर्थ होता है—किसी ऐसी पुरानी या वीती हुई घटना, वस्तु, विपय

आदि का पता लगाना जो या तो लोगों के ध्यान से उतर गयी हो या जिसकी ओर अभी तक किसी का ध्यान ही न गया हो। इसके सिवा इसका प्रयोग ऐसी वस्तुओं, स्थानों आदि का नये सिर से पता लगाने का प्रयत्न करना है, जिन्हें लोग या तो जानते ही न हों, या बहुत कम जानते हों, जैसे (क)-मिट्टी के तेल या लोहे की खान का पता लगाने के लिए होनेवाला अन्वेषण। (ख) अफ्रीका के घने जंगलों में रहनेवाली आदिम जातियों अथवा उत्तरी ध्रुव के सम्बन्ध में होनेवाला अन्वेषण। और (ग) किसीकी आय और व्यापार बढ़ाने के उपायों और साधनों को बढ़ाने के लिए होनेवाला अन्वेषण।

'शोध' पु० [सं०] के आरम्भिक और मूल अर्थ हैं—किसी वस्तु के दोष या विकार दूर करके उसे शुद्ध करना, कमी, त्रुटि या भूल दूर करके अच्छा, ठीक या पूर्ण बनाना, ऋण या देन चुकाकर उसके भार से मुक्त होना आदि। इसके सिवा इसका एक और अर्थ छान बीन या जाँच पड़ताल करना भी है। प्रस्तुत प्रसंग में यह अपने इसी अन्तिम अर्थ के कुछ विकसित रूप में प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग मुख्यतः ऐतिहासिक, वैज्ञानिक साहित्यिक आदि क्षेत्रों में किसी नई बात का पता लगाने के सम्बन्ध में होता है। प्रायः ऐसे कामों या बातों की खोज में अनेक विचारशील विद्वान् लगे रहते हैं, और अपने अपने ज्ञान तथा दृष्टिकोण के अनुसार अलग-अलग निष्कर्ष निकालते और अपना मत निरूपित करते हैं। मुख्य रूप से इसी प्रकार के काम शोध कहलाते हैं। फिर ऐसा भी होता है कि कुछ नए विद्वान् पुराने लोगों के निकाले हुए निष्कर्षों या स्थिर किए हुए मतों की भी छान-बीन करके कुछ नये निष्कर्ष निकालते अथवा मत स्थिर करते हैं। इस प्रकार के सभी कामों का अन्तर्भाव शोध में होता है। × ×

खोज—स्त्री० [हिं० खोजना] दे० 'आविष्कार और उपज्ञा'।

गंध	बू	महक
Smell	1 Smell, Scent 2 Odour 3 Scent	Scent
और	वास	
	Odour	

इस वर्ग के शब्द वस्तुओं के उस गुण या विशेषता के वाचक हैं जिसका ज्ञान हमें नाक के द्वारा अर्थात् हमारी घ्राण-शक्ति से होता है। अनेक अवसरों

पर कुछ वस्तुओ के दूर रहने पर भी उनके संसर्ग से युक्त वायु के द्वारा ही हमे उनके इस गुण या विशेषता का ध्यान घ्राणेन्द्रिय के द्वारा होता है। 'गन्ध' इस वर्ग का वहुत अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द है। हमारे यहाँ इसके कटु, मधुर, रुक्ष, स्निग्ध आदि नव प्रकार कहे गए हैं। परन्तु लोक में साधारणत: इसके अप्रिय या प्रिय होने के आधार पर दुर्गन्ध और सुगन्ध नाम के दो भेद ही अधिक प्रचलित हैं। अनेक अवसरो पर अच्छी और प्रिय अर्थात् सुगन्ध के लिए ही गन्ध का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ देवताओं पर सुगन्धित द्रव्य चढाने के समय कहा जाता है; 'गन्धाः पान्तु', परन्तु परियों आदि की कहानियों मे वच्चो को सुनाया जाता है कि जव उनके आस-पास मृत्यु-लोक का कोई आदमी पहुँच जाता हैं, तव वे आपस मे 'मानस-गन्ध, मानस-गन्ध' कहकर नाक-भौं सिकोड़ने लगती हैं, अर्थात् ऐसे अवसरों पर यह अप्रिय दुर्गन्ध का भी वाचक हो जाता है। शिकारी कुत्ते शिकार की गन्ध के आधार पर ही उसका पीछा करते हैं; और यह गन्ध अप्रिय भी हो सकती है और प्रिय भी। जंगल मे जव गौओ-भैंसो आदि को अपने आस-पास से चीते या वाघ की गन्ध (दुर्गन्ध) आती है, तव वे घवराकर इधर-उधर भागने लगती हैं। हमारे यहाँ जड़ायध, सड़ायंध आदि जो अनेक शव्द प्रचलित हैं, उनमे का 'ऍंध' प्रत्यय इसी गन्ध से वना है।

'वू' स्त्री० [फा०] भी वहुत कुछ वही है जो गन्ध है। उर्दू वालों ने इसका प्रयोग अच्छे और वुरे दोनो अर्थों मे किया है। अच्छे अर्थ के प्रयोग का उदाहरण है—

गुलिस्ताँ मे जा के हर एक गुल को देखा।
न तेरी सी रंगत, न तेरी सी वू है॥

इसके विपरीत वुरे अर्थ के प्रयोग का उदाहरण है—

रुकाव ठीक नही तवऽ की रवानी में।
कि वू फसाद की आती है वन्द पानी मे॥

दुर्गंध और सुगन्ध की तरह 'वू' के भी दो रूप होते हैं—वदवू और खुशवू।

'महक' स्त्री० [स० महक्क] मूलत: सुगन्ध या खुशवू का ही वाचक है।* कभी-कभी कुछ लोग भूल से कह जाते हैं—न जाने कहाँ से यह वुरी

* इसी महक से 'महकना' क्रिया वनती है जिसका अर्थ होना है—सुगन्ध देना या फैलाना। ऐसे ही अर्थ से युक्त उर्दू का एक शेर है—

हम व' कमजर्फ नही हैं जो वहकते जाएँ।
मिस्ले गुल जाएँ, जिधर जाएँ, महकते जाएँ॥

महक आ रही है। परन्तु हमारी समझ में ऐसे प्रयोग ठीक नहीं माने जाते चाहिए, और 'महक' का प्रयोग सदा खूशबू या सुगंध के अर्थ में ही होना चाहिए।

'वास' स्त्री० [स०] भी बहुत कुछ वही है जो महक (खूशबू या सुगंध) है। फिर भी कुछ अवसरों पर इसके पहले 'सु' उपसर्ग लगाकर लोग इसका रूप 'सुवास' बना लेते हैं। परन्तु इसके पहले 'कु' उपसर्ग का प्रयोग अथवा 'कुवास' रूप कहीं देखने में नहीं आता। वास शब्द के अर्थ में एक और भाव भी लग गया है और वह है किसी चीज को किसी दूसरी चीज की गंध या महक से युक्त करने का। इसी आधार पर 'वास' से हिंदी में 'बसाना' या 'वासना' क्रिया बनी है, जिसका अर्थ है—किसी अच्छी चीज की सुवास या सुगंध से युक्त करना जैसे—अतरों या फूलों में कपड़े बसाना या वासना।

प्राचीन काल में रानी महारानियाँ अपने सिर के बाल अगर आदि के धुएँ से सुवासित ही करती थीं, सुगंधित नहीं। आशय यही है कि सुगंध तो पदार्थों में स्वयं ही होती है परन्तु सुवास उनमें हो सकती है और बाहर से लाकर युक्त भी की जा सकती है।

इस कोटि के और शब्दों के लिए दे० 'परिमल सुरभि, और सौरभ'। × ×

गगन—पु० [स०] दे० अंतरिक्ष, आकाश व्योम और महाव्योम'।

गजबाग—स्त्री० [स० गज+हि० बाग]=लगाम, दे० 'अंकुश और नियंत्रण'।

गण—पु० [स०] दे० 'कबीला, गण जन और जन जाति'।

गणतंत्र और प्रजातंत्र या लोकतंत्र
Republic Democracy Democracy

संसार में आरम्भ से अब तक जो अनेक प्रकार की प्रणालियाँ स्थापित हुई हैं उन्हीं में गणतंत्र और प्रजातन्त्र या लोकतन्त्र भी हैं। प्राचीन काल में अनेक देशों में कबीलों या गणों* के जो बहुत से छोटे-छोटे राज बन गए

* कबीले या गण की विस्तृत व्याख्या के लिए दे०— कबीला, गण जन-जाति गोत्र, आदि'।

थे वही गणराज्य कहलाते थे। पंजाब, सिन्ध, अफगानिस्तान, यूनान आदि मे ऐसे अनेक गणराज्य थे। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यही होती थी कि इनमे कोई वशानुक्रमिक राजा या बादशाह नही होता था और ये अपना नेता, प्रधान या सरदार स्वयं चुनते थे और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बदल भी देते थे। ऐसे ही राज्यो की शासन-प्रणाली को गण-तन्त्र कहते थे। आधुनिक राजनीति मे भी अनेक ऐसे देश और महादेश हैं जिनमे बहुत-कुछ इसी प्रकार की शासन-प्रणाली प्रचलित है। उनमे कुछ नियत या निश्चित समय पर प्रधान शासक बदलते रहते हैं जो साधारणतः राष्ट्रपति कहलाते हैं। इनकी गिनती गणतन्त्र मे इसी लिए होती है कि इनके अन्तर्गत बहुत से ऐसे छोटे-छोटे देश या राज्य होते हैं जो बहुत सी आन्तरिक बातो मे तो बहुत-कुछ स्वतन्त्र या स्वाधीन होते हैं परन्तु कुछ अन्तर्देशीय विषयो मे एक केन्द्रीय शासन या सर्वोपरि सत्ता के अधीन होते हैं। इन्हीं देशो या राज्यो के प्रतिनिधि राष्ट्रपति का चुनाव करते हैं। परन्तु राष्ट्रपतियो के अधिकार भी बहुत कुछ परिमित तथा मर्यादित ही होते हैं। अमेरिका, भारत आदि महादेशो का शासन इसलिए गणतन्त्र कहलाता है।

'लोकतन्त्र' एक आधुनिक प्रकार की शासन-प्रणाली है जिसमे सभी वयस्क, पुरुषो और स्त्रियो को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। इन्ही प्रतिनिधियो की सभा (जिसे संसद कहते हैं) देश या राज्य के लिए सब प्रकार के कानून या विधान बनाती है; आवश्यकता होने पर उनमे परिवर्तन सशोधन करती है और शासन के सभी अगो या विभागो की देख-भाल और व्यवस्था करती है। आज-कल अधिकतर लोकतत्रीय शासनो मे कई ऐसी विशेषताएँ होती हैं, जो साधारणतः ऐसे देशो या राज्यो मे नही होती जिनमे किसी स्वच्छन्द राजा, बादशाह अथवा अधिनायक का शासन होता है। लोक-तन्त्र शासन-प्रणाली मे साधारणतः बहुमत का निर्णय ही सर्व-मान्य होता है। अल्पमतो मे तथा अल्पसख्यको के हितों की रक्षा का पूरा ध्यान रखा जाता है। सभी लोगो को समान नागरिकता के अधिकार प्राप्त होते हैं। अपने विश्वास के अनुसार धर्म का पालन करने और भाषणो, लेखों आदि के द्वारा अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता होती है। गणतन्त्र से इसमे एक ही अन्तर है। इसका प्रधान शासक या सर्वोपरि सत्ताधारी किसी वशानुक्रम का राजा, महाराजा या बादशाह भी हो सकता है और उसके हटा दिये जाने पर जनता अथवा उसके प्रतिनिधियो को अपना

प्रधान शासक या राष्ट्रपति चुनने का अधिकार भी हो सकता है। इंगलैंड में ऐसा लोकतन्त्र है जिसमें वंशानुक्रमिक महाराजा या बादशाह होते हैं परन्तु उनके अधिकार बहुत ही परिमित होते हैं। और फ्रांस में ऐसा लोकतन्त्र है, जिसमें समय-समय पर राष्ट्रपति का चुनाव होता रहता है। उक्त दोनों प्रकार के और भी अनेक राज्य संसार में वर्तमान हैं।

आज कल जिसे लोकतन्त्र कहते हैं वही कुछ दिन पहले तक 'प्रजातन्त्र' कहलाता था। परन्तु प्रजा शब्द में किसी राजा के अधीनस्थ होने का भाव निहित है, इसलिए जहाँ कोई राजा, महाराजा या बादशाह नहीं होता वहाँ के लोग अपने आपको किसी की 'प्रजा' भी नहीं समझते और न प्रजा कहलाना ही पसन्द करते हैं। इसीलिए आज कल प्रजातन्त्र का प्रयोग प्राय उठ सा गया है और उसके स्थान पर लोकतन्त्र ही चल पड़ा है। अर्थ आशय और भाव की दृष्टि से 'जनतन्त्र' भी ठीक वही है जो लोकतन्त्र है। परन्तु 'जन' शब्द में और भी कई प्रकार के अर्थ तथा भाव लगे हुए हैं और अनेक क्षेत्रों में उसके स्थान पर 'लोक' का व्यवहार होने लगा है जैसे—लोक कथा लोक गीत लोक नृत्य आदि। और सम्भवतः इसी आधार पर लोकतन्त्र अधिक प्रचलित तथा प्रसिद्ध है।

× ×

गणन
Counting

अनुगणन
Reckoning

अभिकलन या संगणन
Computation

आकलन
1 Estimation
2. Estimate

परिकलन
Calculation

परिगणन
Enumeration

संख्यापन या संख्याकन
Numbering

और

इस वर्ग के शब्द गणित की कुछ विशिष्ट प्रकार की क्रियाओं और प्रक्रियाओं के वाचक हैं।

गणन पु० [सं०] यह जानने की क्रिया है कि हमारे सामने जो चीजें हैं वे संख्या के विचार से कितनी हैं—दो हैं, चार हैं, दस हैं या सौ हैं। यह काम १, २, ३, ४ की गिनती अथवा साधारण और सीधी गिनती से होता है। मान या महत्त्व जानने के लिए गिनती करना या गिनना ही 'गणन' है।

घडी देखने पर घण्टे, मिनट आदि गिनकर ही ठीक समय जाना जाता है। और महीने की तिथियाँ या तारीखें भी 'गणन से या गिनकर ही निश्चित की जाती हैं। इसी 'गणन' से हम बतलाते हैं कि आज हमारे पास चार चिट्ठियाँ आईं या हमारी मेज पर दो कलमें और पाच पुस्तकें पड़ी हैं।

'अनुगणन' पुं० [सं०] भी है तो गणन का ही एक प्रकार, परन्तु इसमें साधारण गिनती गिनने से काम नही चलता, मन ही मनजोड, बाकी, गुणा और भाग की भी कुछ छोटी और साधारण क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। छोटे बालको को पाठशालाओं में मौखिक गणित के नाम से जो बाते सिखाई जाती हैं या नित्य-प्रति के लौकिक और सामाजिक व्यवहारो का जो बहुत सा हिसाब, बिना कागज़ पर लिखे, यो ही जबानी लगाया जाता है, वही 'अनुगणन' है। बहुत से छोटे-मोटे काम ऐसे भी होते हैं जिनके सम्बन्ध मे हिसाब से हमें मन ही मन कुछ साधारण 'परिकलन' भी करना पड़ता है। जैसे—धोबी को देने के लिए कपड़ों की धुलाई या ग्वाले को देने के लिए महीने भर के दूध का दाम या खरीदी हुई तरकारियो और मिठाइयो के दाम। ऐसी साधारण बातो का हिसाब जबानी या मन ही मन लगा लिया जाता है। 'गणन' और 'परिकलन' के ऐसे छोटे-मोटे और मन ही मन किए जानेवाले काम अनुगणन कहलाते हैं। आज-कल के बढते और बदलते हुए आर्थिक तथा व्यापारिक व्यवहारों और लेन-देन की प्रणालियो के कारण अनुगणन के बहुत-से काम भी इतने श्रम-साध्य और जटिल हो गये हैं कि वे तुरन्त जबानी या मन ही मन नही लगाये जा सकते और उनमें विशेष 'परिकलन' से सहायता लेनी पड़ती है। इसीलिए अब यंत्रों के रूप में प्रस्तुत अनुगणक (Ready Reckoners) बनने लगे हैं, जिनमे कठिन अनुगणनो के फल दिये रहते हैं; जैसे—यदि हम जानना चाहे कि ॥।≡)॥ सैकड़े के हिसाब ये १६५) का ४२ दिनो का कितना सूद होगा* या १७०) मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारी का २३ दिनो का वेतन उन दशाओं मे अलग-अलग कितना होगा, जब कि महीना २८ दिनों का हो, २९ दिनों का हो, ३० दिनों का हो और ३१ दिनो का हो, तो परिकलन की सहायता से ऐसे प्रश्नों का निकाला हुआ ठीक फल हमें ऐसे अनुगणको मे सहज मे मिल जायगा। यद्यपि ऐसे जटिल प्रश्नों के उत्तर बहुत पेचीले परिकलनो के द्वारा ही निकाले जाते हैं, तो भी चली आई हुई प्रथा के अनुसार इनकी गणना अनुगणन मे ही होती है *।

---

* भारतीय महाजनी प्रणाली से बही-खाते का काम करने वाले मुनीम सूद या व्याज के ऐसे पेचीले हिसाब अब भी जबानी लगाते हैं।

'अभिकलन' पु० [सं०] हमारे यहाँ के ज्योतिष शास्त्र का पुराना पारिभाषिक शब्द है। प्राय ग्रहों आदि की स्थिति का ध्यान रखकर और पहले के निश्चित किये हुए मतों और सिद्धांतों के आधार पर यह भविष्यद् वाणी की जाती है कि अमुक समय पर आँधियाँ आवेंगी या भूकम्प होगा अथवा इस वर्ष अधिक वर्षा होगी या कम। मुख्यत यही अभिकलन है। अब इसके स्थान पर 'सगणन' का भी प्रयोग होने लगा है। परन्तु आज कल इसके अर्थ का कुछ ऐसा विकास हुआ है कि वह परिकलन के अर्थ से बहुत कुछ मिलता जुलता हो गया है*। देखें नीचे 'परिकलन'।

'आकलन' पु० [सं०] भी है तो बहुत कुछ वही जो अभिकलन है फिर भी इसमें अपेक्षया कुछ विशेषता है। कुछ अवस्थाओं में सम्भावनाओं आदि का ध्यान रखते हुए और प्राय अनुमानों के आधार पर किसी भावी काम या बात के सम्बन्ध में पहले से ही जो आनुमानिक गणना करनी पडती है, उसे आकलन कहते हैं। यदि नया घर बनवाने से पहले हम यह जानना चाहें कि इतना लम्बा, इतना चौडा और इतना ऊँचा घर बनवाने में कितनी ईंटें कितने पत्थर और कितनी कडियाँ या धरनें लगेंगी, कितने राज मजदूर रखने पडेंगे, और इन सब कामों में कितनी कितनी लागत आवेगी या घर में लडके या लडकी का ब्याह निश्चित होने पर यदि हम यह जानना चाहें कि हमें कितने रुपयों के कपडे और गहने बनवाने पडेंगे और मित्रों तथा बिरादरी वालों के भोज में कितना व्यय करना पडेगा तो इसके लिए भी हमें परिकलन तो करना पडेगा, पर वह बहुत कुछ अनुमान से ही होगा। इसी आनुमानिक परिकलन का पारिभाषिक नाम आकलन है। इसके स्थान पर हिं० अटकल अन्दाजा (फा० अन्दाज) कूत तथा तखमीना (अ० तख्मीन) का भी कुछ लोग प्रयोग करते हैं।

---

* आज कल के वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे यंत्र बनाए हैं जो गणना के सभी प्रकार के बडे बडे काम कुछ ही क्षणों में पूरा कर देते हैं। इनमें लाखों, करोडों संख्याओं के जोड, बाकी गुणा और भाग के फल तो तुरन्त निकल ही जाते हैं, वर्ग मूल घन मूल आदि भी सहज में निकल आते हैं। ऐसे यन्त्रों को सगणक (Computor) कहते हैं। इनके सिवा बहुत दिनों से भू मापक विभाग में जो कर्मचारी खेतों, जंगलों पहाडों आदि की नाप जोख करके उनके नक्शे बनाने में सहायक होते हैं, उन्हें भी (Computor) कहा जाता है। अब ऐसे कर्मचारियों के लिए भी 'सगणक' का प्रयोग हो सकता है और होना चाहिए।

'परिकलन' पु० [स०] को हम अभिकलन का ही अधिक विकसित रूप कह सकते हैं। अभिकलन तो ज्योतिप शास्त्र की वह क्रिया है जिसमे गणना के सिवा प्राचीन आचार्यों के अनुमानो और उनके निरूपित मतो तथा सिद्धातों की भी सहायता ली जाती है, और इसी लिए उनके निकाले हुए निष्कर्षो अथवा भावी फलो का निर्देश होता है। परन्तु ऐसे निष्कर्षो या फलो के घटित होने में थोड़ा बहुत अन्तर भी हो सकता है। अथवा कोई त्रुटि भी हो सकती है। परन्तु परिकलन की मुख्य विशेषता यह है कि उसमे केवल विशुद्ध गणित का ही सहारा लिया जाता है। अनुमान, कल्पना अथवा रूढिगत मतो का कभी आश्रय नही लिया जाता।

'परिगणन' पु० [सं०] गणन की बिलकुल सीधी-सादी क्रिया है। जितनी चीजे सामने हो, उन सबको अलग अलग और एक-एक करके गिनना-गिनाना या लिखना-लिखाना परिगणन कहलाता है। पुस्तकालयो मे पुस्तको का परिगणन होता है, और देश की जन-सख्या जानने के लिए स्त्रियो, पुरुपो, बच्चो, बूढो आदि का और पशु-सख्या जानने के लिए गौओ, घोडो, बैलो आदि का परिगणन कराते हैं। जन-सख्या के परिगणन मे लोगो की अवस्था जाति, भाषा, व्यवसाय आदि का भी ब्योरा रहता है। इस प्रकार का परिगणन करने के लिए जो लोग नियुक्त होते हैं, उन्हे परिगणक (Enumerator) कहते हैं।

'सख्यापन' पु० [स०] मेरी समझ मे अंग्रेजी के (Numbring) का सबसे अच्छा समार्थक होगा।*

वस्तुओ पर उनकी क्रम-सख्या अंकित करना सख्यापन कहलाता है। अकबर के समय सेना के घोडो का ऐसा सख्यापन हुआ था। बडे बडे विद्यालयो की मेज-कुरसियो और अलमारियो का भी सख्यापन होता है— उनपर १,२, गिन कर क्रमात् अंक लगाये जाते हैं। इस क्रिया से पता

* कोई पन्द्रह वर्ष पहले 'शब्द-साधना' प्रस्तुत करने के समय (Numbering) के लिए 'सख्यान' शब्द रखा था, पर बाद मे विचार करने पर यह शब्द मुझे कई दृष्टियो से ठीक नही जँचा। इसी लिए मानक हिन्दी कोश मे मैंने इसके स्थान पर 'संख्यापन' रखा था। पर अब मेरी समझ मे यह आ रहा है कि अर्थापन सत्यापन, आदि के अनुकरण पर इसके लिए 'सख्यापन' ही अधिक उपयुक्त और सार्थक होगा जिसपर यह 'सख्यान' की तुलना मे उच्चारण की दृष्टि से सुगम और हलका भी है।

मलग मलग कितनी हैं मथवा

चलता है कि कौन-कौन सी चीजें गिनती मे

कहाँ हैं।

अंग्रेजो के Counting, calculation, computation और Reckon

ing का गणित के क्षेत्र के सिवा लाक्षणिक रूप में साधारण लौकिक

व्यवहारों और नित्य की बोलचाल में भी प्राय प्रयोग होता है, जैसे—

To count a person for nothing To calculate on an under-

taking or enter prise. To compute the amount of any mischief

done To Reckon on a promised pleasure आदि। हिन्दी में भी

आकलन, अभिकलन, परिकलन, अनुगणन आदि का ऐसा ही प्रयोग हो

सकता है। हम यह तो कहते ही हैं—वह किसी को कुछ नहीं गिनता

(अर्थात् किसी का महत्त्व नही मानता) पर हम यह भी कह सकते हैं—इस

दुर्घटना से होनेवाली हानि का अभिकलन नहीं हो सकता, जीवन की नश्वरता

पर विश्वास रखनेवाले कभी यह परिकलन नहीं करते कि कल या महीने भर

बाद क्या होगा, ना समझ लोग ऐसे लाभो का भी अनुगणन करने लगते हैं

जिनका घटित होना बहुत कुछ अनिश्चित होना है आदि। और इस प्रकार

हम हिन्दी को भी अंगरेजी की भाव-व्यंजन प्रणाली के बहुत कुछ पास

पहुँचा सकते हैं। × ×

गण संख्या—स्त्री० [सं०] दे० 'अंक, आँकड़े और संख्या'।

गत्यवरोध—पु० [सं० गति+अवरोध] दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध

निरोध, प्रतिरोध और विरोध।

गरिमा—स्त्री० [सं०] दे० 'गुरुता, गुरुत्व, गौरव और गरिमा'।

गरिष्ठ—वि० [सं०] दे० 'गुरुता, गुरुत्व, गौरव और गरिमा'।

गरूर—पु० [अ० गुरूर]=घमंड, दे० 'अभिमान, गर्व, घमंड

और शेखी।'

गर्भ-निरोध,
Birth-control
गर्भ-स्राव
Miscarriage

गर्भ-पात,
Abortion
और भ्रूण-हत्या
Abortion

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओं के वाचक हैं जिनके द्वारा या तो स्त्रियो को सन्तान उत्पन्न करने के योग्य ही नहीं रहने दिया जाता और या उनके

गर्भवती होने पर नियमित रूप से संतान प्रसव करने में असमर्थ कर दिया जाता है।

'गर्भ-निरोध' पु० [सं०] का शब्दार्थ है—ऐसी क्रिया करना जिससे स्त्री का गर्भ धारण करना बन्द हो जाय या रुक जाय।* हमारे यहाँ प्राचीन काल मे भी कुछ स्त्रियाँ (जैसे—विधवाएं, वेश्याएं आदि) कई प्रकार के उपचार और चिकित्साएँ करके अपनी शारीरिक स्थित ऐसी बना लेती थी, जिनसे वे भविष्य मे संतान उत्पन्न करने के योग्य नही रह जाती थी।† परन्तु आज-कल की बदली हुई परिस्थितियों मे, जब कि ससार की आबादी बहुत ही असाधारण और विकट रूप से बढती जा रही है, अनेक विचार-शीलो ने आबादी की इस बाढ को यथा-साध्य रोकने के अनेक नए उपाय ढूँढ निकाले हैं; और उन उपायो के अनुसार अनेक देशो में बहुत से प्रयत्न भी होने लगे हैं। ऐसे प्रयत्नो ने परिवार-नियोजन (Family Planing) नाम का एक नया आदोलन ही जोरों से चलाया है। इसके लिए खाने की अनेक प्रकार की दवाएँ तो बनाई ही हैं इसके सिवा नसबन्दी Vasectomy की क्रिया भी चलाई है जिससे पुरुष की एक विशिष्ट नस शल्य क्रिया से काट दी जाती है जिससे पुरुष की गर्भ-धारण कराने की शक्ति ही सदा के लिए नष्ट हो जाती है, परन्तु अब नसबन्दी की एक ऐसी विधि भी निकली है जिससे इच्छानुसार उसका प्रभाव अकृत किया जा सकता है, और पुरुष फिर से सतान उत्पन्न करने के योग्य हो जाता है। इसका सिवा स्त्रियो के लिए

* कुछ लोग इसके स्थान पर संतान-निरोध का प्रयोग करते हैं जो ठीक नही है। बच्चो को सतान की सज्ञा तभी मिलती है, जब वे प्रसव के उपरात माता के गर्भ से निकलकर धरती पर आ जाते हैं। अतः सतान-निरोध का अर्थ होता है—जो बच्चे जन्म ले चुके हो उनका निरोध या रुकावट और यह स्थिति प्रस्तुत प्रसंग से बिल्कुल भिन्न है।

† इसके सिवा अनेक देशो मे घोडो, बैलो, नर-भैंसों आदि के अंडकोश काटकर ऐसा बना देते हैं कि वे न तो सतान ही उत्पन्न कर सकें और न अपने वर्ग के मादा पशुओ को देखकर विचलित हो और न गाडियो, सवारियो, हलों आदि से अपना बन्धन छुडाकर उछलने-कूदने लगे। मध्य युग में, विशेषत: मुसलमान शासको के समय में कुछ पुरुषो की भी ऐसी क्रिया की जाती थी, और तब उन्हे अन्त.पुर मे पहरे, सेवा आदि के कामो पर नियुक्त किया जाता था। इस क्रिया को अंडोच्छेद (न) या बधिया करना (Castration) कहते हैं।

एक प्रकार का छल्ला (Loop) भी बना है जो स्त्री के गर्भाशय के अगले भाग मे पहना दिया जाता है। यह छल्ला जब तक अपने स्थान पर रहता है तब तक स्त्री गभ नही धारण कर सकती। गभ धारण करने की आवश्यकता या इच्छा हान पर यह छल्ला निकलवाया भी जा सकता है। आधुनिक गभ निरोध का यही मुख्य रूप है।

'गभपात' पु० [स०] का अथ है—स्वाभाविक रूप से गभ (माँ के पेट म स्थित बच्चे) का ज म लेने से पहले ही बिना परिपक्व हुए गर्भाशय मे से गिरकर या निकलकर बाहर आ जाना, अर्थात् उसका स्वतत्र रूप से जीवित रहने के योग्य न रह जाना। यह क्रिया माता के शारीरिक दोष अथवा सयमपूवक न रहने के कारण भी हाती है और कुछ अवस्थाओ मे मुख्यत दुष्ट उद्देश्यो से जान बूझकर विरुद्ध उपचारो अथवा औषधियो से कराई जाती है। पर तु विधिक क्षेत्रों मे गभपात वही कहलाता है जो जान-बूझकर और किसी दुष्ट उद्देश्य से कराया जाता है और इसी लिए यह दडनीय अपराध माना जाता है।

'गभ स्राव पु० [सं०] कुछ लोग गभस्राव से इसका अतर न जानने के कारण उसके स्थान पर गभ पात का ही प्रयोग करते हैं। इसका शब्दाथ ह—गभ का बह जाना। यह क्रिया प्राय प्राकृतिक रूप से ही हाती है पर कभी-कभी गभपात की तरह जान बूझकर भी की या कराई जाती है और इसी लिए विधिक दृष्टि से दडनीय होती है। चिकित्सा शास्त्र के क्षेत्र मे गभ स्राव वह कहलाता है जो उस आरम्भिक अवस्था मे होता है जब कि गभ कलल के रूप मे रहता है, पिंड का रूप धारण नही करता। कलल मे विशेष घनता नही होती और कभी कभी वह गलकर पानी की तरह बह जाता ह। इसी लिए इसे गभ स्राव कहते हैं। गभपात और गभ स्राव मे एक और अतर यह भी है कि गभ धारण करने के १५ व १६ सप्ताह के अदर गभ का गिर जाना गभ स्राव कहलाता है। इसके उपरात जब वह घनपिंड का रूप धारण कर लेता ह और उसमे प्राणो का सचार हो जाता है तब उसका गिरना गभपात कहलाता है। यह क्रिया भी यदि जान बूझकर और औषधो आदि के द्वारा की या कराई गयी हो ता यह भी विधिक दृष्टि से दडनीय होती है।

'भ्रूण-हत्या' स्त्री० [स०] हमारे यहाँ का बहुत पुराना शब्द है, और इसम गभ पात तथा गभ स्राव दोना का अतभाव होता है। इसी लिए हमारे प्राचीन शास्त्रकारो ने इसकी गिनती महापातका म की है। यह भी

विधिक दृष्टि से है तो वस्तुतः दडनीय ही फिर भी आज-कल की वदली हुई परिस्थितियो तथा कुछ विशिष्ट विधिक क्षेत्रो मे यह क्षम्य मान लिया गया है। जैसे—यदि स्त्री का स्वास्थ्य वहुत ही गिर गया हो और प्रसव के समय उसके प्राणो पर संकट होने की सम्भावना हो तो गर्भ पात कराया भी जा सकता है। भारत मे भी आज-कल कुछ लोग प्रयत्न कर रहे हैं कि उक्त प्रकार की विशिष्ट परिस्थितियों मे गर्भ-पात करना-कराना क्षम्य मान लिया जाय। परन्तु भ्रूण-हत्या में उत्तर पद 'हत्या' है अतः इसका प्रयोग दुष्ट उद्देश्यो से और जान-बूझकर किये या कराए हुए गर्भ-पात का ही सूचक है, प्राकृतिक रूप से होनेवाले गर्भ-पात या गर्भ-स्राव का इसमें अंतर्भाव नही हो सकता। × ×

गर्भपात—पु० [स०] दे० 'गर्भ-निरोध, गर्भपात, गर्भ-स्राव और भ्रूण-हत्या'।

गर्भस्राव—पु० [सं०] दे० 'गर्भ-निरोध, गर्भपात, गर्भस्राव और भ्रूण-हत्या'।

गर्व—पु० [सं०] दे० 'अभिमान, गर्व, घमड और शेखी'।

गलना घुलना और पिघलना
Melt Dissolve Melt

इश वर्ग के शब्द किसी ठोस पदार्थ के कारणवश तरल रूप धारण करने के वाचक हैं। 'गलना' सस्कृत गलन का हिन्दी रूप है। इसका मुख्य अर्थ है—किसी ठोस पदार्थ का किसी प्रकार के ताप के प्रभाव के कारण तरल रूप धारण करना; जैसे—चाँदी या सोना गलना। रसोई वनाने के समय आग पर चढाया हुआ चावल या दाल भी गलती तो है, परन्तु वह तरल रूप धारण नही करती, वल्कि अपनी कठोरता या ठोसपन छोडकर वहुत मुलायम अवश्य हो जाती है। कुछ अवस्थाओं मे ताप के अभाव मे केवल वातावरण के हल्के तापक्रम के फलस्वरूप भी कुछ चीजें (जैसे—नमक, वरफ मक्खन आदि) गलते हैं। कुछ अवस्थाओ कई कई प्रकार की चीजे अधिक समय तक पड़ी या रखी रहने के कारण वहुत कुछ जीर्ण-शीर्ण हो जाती हैं, उन्हे भी उन चीजो का गलना ही कहते हैं, जैसे—(कागज-पत्र) वहुत दिनो तक पडे रहने के कारण विलकुल गल गये हैं। कुष्ठ आदि रोगो के कारण शरीर के कुछ अंग जव परम विपाक्त होकर धीरे-धीरे नष्ट होने

लगते हैं, तब भी कहा जाता है—उनके परों (या हाथो) की कई उँगलियाँ गल गई हैं। कुछ अवस्थाओं मे इस क्रिया का प्रयोग केवल लाक्षणिक रूप में बहुत बढी हुई क्षीणता, निश्चेष्टता आदि सूचित करने के लिए भी होता है, जसे—(क) चिन्ता करते करते (या दु ख भोगते-भोगते) उनका सारा शरीर गल गया है, और (ख) आज तो इतनी अधिक सर्दी है कि हाथ-पर गल रहे हैं।

'घुलना' का सम्बन्ध स० घूर्णन से जान पडता है जिसका प्राकृत रूप घुलन होता है। इसका प्रयोग ऐसी ठोस चीजो के सम्बन्ध में होता है जो किसी तरल पदाथ में पडकर अपना ठोसपन खो देती और उसी तरल पदाथ में मिलकर एक हो जाती हैं जसे—दूध या पानी में गुड या चीनी घुलना। इसमे ठोस पदार्थ के सयोजक कण बिलकुल अलग अलग होकर तरल पदाथ में इस प्रकार अच्छी तरह मिल जाते हैं कि उन्हें सहज मे देखा या निकाला नहीं जा सकता। इसके सिवा दो प्रसगों मे इसका लाक्षणिक अर्थों में भी प्रयोग होता है। एक तो सामाजिक प्रसग मे जहाँ इसके साथ 'मिलना' का सयुक्त क्रिया के रूप मे योग होता है, और घुलना मिलना, घुल मिलकर आदि रूप बनते हैं। जब कोई दल या व्यक्ति किसी दूसरे दल या व्यक्ति के साथ बहुत अधिक आत्मीयता या मित्रता स्थापित करके प्राय सभी बातों मे दोनों मिलकर बहुत कुछ साथ रहते लगते हैं तब कहा जाता है—वे लोग आपस मे खूब घुल मिल गये हैं। दूसरे कष्ट, चिंता, रोग आदि के प्रसग में 'घुलना' का प्रयोग बहुत कुछ उसी प्रकार होता है जिस प्रकार उक्त प्रसग में 'गलना' का होता है, जैसे—वे दरिद्रता और बाल बच्चों की चिंता में ही घुल घुल कर मरे जाते हैं।

'पिघलना' स० प्रगलन से बना है और इसी लिए इसका प्राथमिक अर्थ भी बहुत कुछ वही है जो गलना का है। चाँदी, सोना आदि धातुएँ और बरफ, मक्खन आदि पदाथ ताप के सयोग से गलते हैं, और पिघलते भी हैं। परन्तु नमक आदि के सम्बन्ध में गलना का ही प्रयोग होता है, पिघलना का नहीं। कारण शायद यही है कि ताप के अभाव में भी और केवल जलीय वातावरण के प्रभाव से भी वह वस्तुत पसीजता ही है। हाँ, लाक्षणिक क्षेत्र मे इसका स्वतन्त्र प्रयोग अवश्य होता है। जब हम किसी बहुत कठोर हृदय वाले व्यक्ति को भी किसी कारणवश उदारता, कोमलता, सौजन्य आदि का व्यवहार करते हुए देखते हैं, तब कहते हैं—उस गरीब के रोने धोने से उनका हृदय भी पिघल गया। ऐसे अवसरों पर पिघलना का अर्थ होता है—हृदय का द्रवित होना या दया आदि से युक्त होना।

गुरुता, 1. Heaviness 2. Weight **गुरुत्व,** Gravity

गौरव Eminence **और** **गरिमा**

ये चारो शब्द सस्कृत 'गुरु' के भाववाचक संज्ञा रूप हैं; जो सस्कृत व्याकरण के भिन्न-भिन्न नियमों के अनुसार बने हैं,* परन्तु इनके प्रचलित अर्थों और मुख्य विवक्षाओ मे कुछ विशिष्ट अन्तर हैं, जिन्हे ध्यान मे रखना आवश्यक है।

संस्कृत मे 'गुरु' के अनेक अर्थ हैं जिनमे से कुछ विशेषण हैं कुछ सज्ञा वाचक विशेषण रूप में इसके अर्थ होते हैं—भारी या वजनी, दीर्घ या बड़ा, लम्बा-चौड़ा, या विस्तृत; कठिन-कठोर; कठिनता से या देर मे पचनेवाला; पूज्य, प्रतिष्ठित या मान्य आदि आदि। संज्ञा रूप मे आध्यात्मिक विषयो का ज्ञान करानेवाले, मत्रो आदि की दीक्षा देनेवाले, लौकिक विधाओ या विषयों की शिक्षा-दीक्षा देनेवाले, कला-कौशल सिखानेवाले तथा इसी प्रकार के और काम करनेवाले लोग भी गुरु कहे गए हैं। गुरुता इन सभी अर्थों के विचार से गुरु का भाववाचक शब्द है। इसके अर्थ होते हैं—भारीपन, बड़प्पन आदि और गुरु का कार्य पद या स्थिति। इस दृष्टि से यह विशुद्ध साधारण भाववाचक संज्ञा है। अर्थ की दृष्टि से इसमे कोई विशिष्ट छटा या रगत नही है।

'गुरुत्व' भी प्रायः बहुत कुछ वही है जो 'गुरुता' है; परन्तु आज-कल आधुनिक भौतिक विज्ञान के एक प्रसिद्ध सिद्धात के आधार पर गुरुत्व के 'भारीपन' वाले अर्थ मे एक विशिष्ट आशय या विवक्षा सम्मिलित हो गई है। भौतिक शास्त्र का सिद्धात यह है कि गुरुत्व में आकर्षण की शक्ति होती है जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं; और जो सारे विश्व मे व्याप्त है। सभी प्रकार के पिण्डो यहाँ तक कि कणो आदि मे भी एक दूसरे को अपनी ओर आकृष्ट करने की प्राकृतिक शक्ति होती है। इसके अनुसार अधिक गुरुत्ववाला पिण्ड या

---

* इसी गुरु से बना हुआ एक और विकारी विशेषण रूप 'गरिष्ठ' होता है, जिसका अर्थ है—बहुत अधिक या सबसे अधिक भारी। इसका व्यवहार मुख्यत. ऐसे खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध मे होता है, जो बहुत ही कठिनता से और देर मे पचते हैं।

'घात' स्त्री० [हिं०] में ठेठ शब्द की भाँति प्रयुक्त होने पर भी है मूलतः संस्कृत का घात ही, परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इसका प्रयोग पुं० रूप में नहीं, बल्कि स्त्री० में होता है। घात वस्तुतः वह स्थिति है जिसमें अपना कोई दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करने के अवसर की प्रतीक्षा की जाती है। ऐसे दुष्ट उद्देश्य में किसी पर आघात या प्रहार करना अथवा किसी को बहुत कुछ क्षति या हानि पहुँचाने का भाव प्रधान होता है। चोर और डाकू चोरी करने या डाका डालने की घात में लगे रहते हैं, बाघ भालू और शेर मसों हिरनों आदि का घर दबोचने की घात में रहते हैं, और लोग अपने विरोधी या शत्रु को अपमानित करने, नीचा दिखाने अथवा और अनेक प्रकार से उसे हानि पहुँचाने की घात में रहते हैं। इसमें दूसरों को हानि पहुँचाने का भाव तो प्रधान है ही, गौण रूप से आड़ में या छिपकर रहने का भाव भी सम्मिलित है।

'ताक' स्त्री० *[हिं० ताकना=ध्यानपूर्वक देखना]* है तो वस्तुतः ताकने की क्रिया, ढंग या भाव ही, परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह कार्य-साधन के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में रहने का वाचक है। 'घात' में तो मुख्य आशय चोट करना या हानि पहुँचाना होता है परन्तु ताक में तात्त्विक दृष्टि से इस प्रकार के उद्देश्य का प्रायः अभाव ही होता है। इसमें मुख्य भाव अपना उद्देश्य या काम सिद्ध करना होता है—फिर वह काम नैतिक, सामाजिक आदि दृष्टियों से चाहे अच्छा हो या बुरा। अपना काम निकालने के लिए उपयुक्त अवसर या सुयोग की प्रतीक्षा में रहना ही ताक में रहना है। खुशामदी, दरबारी अमीरों और रईसों को खुश करके इनाम पाने या वाह-वाही लूटने की ताक में रहते हैं, अधीनस्थ कर्मचारी अपने पद वेतन आदि की वृद्धि के लिए उच्च अधिकारियों को प्रसन्न और सन्तुष्ट करने की ताक में रहते हैं और छोटे बालक माता पिता अथवा शिक्षक के नियन्त्रण से किसी न किसी बहाने निकल भागने की ताक में रहते हैं। यों साधारणतः लोक व्यवहार में घात और ताक में कोई विशेष अन्तर नहीं समझा जाता, फिर भी अच्छी तरह विचार करने पर दोनों का वह सूक्ष्म अन्तर स्पष्ट हो जाता है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है। × ×

घुसना—अ० [प्रा० घुसन] दे० धसना, घुसना और छिपना।

घूरना—स० [हिं०] दे० देखना, घूरना, झाँकना, ताकना, निरखना और निहारना।'

घेरा और घेराव

Enclosure Siege

ये दोनो शब्द हैं तो हिन्दी 'घेरना' क्रिया के भाव-वाचक संज्ञा रूप ही: परन्तु इनमे का घेराव शब्द अभी हाल मे एक विशिष्ट प्रकार का आशय व्यक्त करने लगा है।

'घेरा' किसी चीज जगह या व्यक्ति को चारो ओर से घेरने की अवस्था, क्रिया और भाव का सूचक बहुत पुराना शब्द है। चारो ओर से घेरी हुई जगह भी घेरा कहलाती है और वह जगह जिस चीज या जिन चीजो से घेरी जाती है, उसे भी 'घेरा' कहते हैं, जैसे—दीवार, बाँसो या लट्ठो का घेरा। कुछ अवस्थाओ मे जब लोग मण्डलाकार रूप मे गाते-नाचते है; तब उसे भी घेरा ही कहते हैं, जैसे—गोपियो और गोपो के घेरे मे कृष्ण बाँसुरी बजाते थे। ऐसे अवसरो पर इसके साथ 'बाँधना' क्रिया का प्रयोग होता है। युद्ध आदि के समय प्राय: ऐसा होता है कि शत्रु के किले, नगर या शिविर को आक्रमणकारी सैनिक इस प्रकार चारो ओर से घेर लेते हैं कि न तो अन्दर से कोई निकलकर भागने पाए और न बाहर से उस तक किसी प्रकार की सहायता ही पहुँच सके। ऐसे प्रसंगो मे इसके साथ 'डालना' क्रिया का प्रयोग होता है; जैसे—मुगलो की सेना कई दिनो तक राजपूतो के गढ के चारों ओर घेरा डाले पड़ी रही।

'घेराव' आज-कल के औद्योगिक और श्रमिक क्षेत्रो मे प्रचलित बहुत कुछ नया शब्द है। आज-कल कुछ उग्र समाजवादी श्रमिक अपनी मांगे पूरी कराने अथवा अपने मित्र कुछ नये सुभीते प्राप्त करने के लिए किसी कल-कारखाने या कार्यालय को अथवा उसके वरिष्ट अधिकारियो को चारो ओर से घेर लेते हैं, और न किसी को अन्दर से बाहर निकलने देते हैं और न किसी को बाहर से अन्दर जाने देते हैं। इस प्रकार वे लोग बलपूर्वक अधिकारियो को सब प्रकार से विवश करके उनसे अपनी बातें मनवाना चाहते है और प्राय: मनवा भी लेते हैं। यह नई स्थिति ही 'घेराव' कहलाती है। × ×

घोड़ा-नस—स्त्री० [हि०] दे० 'धमनी, नाडी, शिरा और स्नायु।'
घोष—पु० [स०] दे० 'नाद, घोष, ध्वनि और लय।'

घोषणा Proclamation — ख्यापन Anouncement — परिज्ञापन Declaration और प्रवर्तन Promulgation

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातों के वाचक हैं जो जन साधारण के सामने खुलेआम और स्पष्ट रूप से अपना कोई निर्णय, निश्चय या मत व्यक्त करने के लिए कही जाती हैं।

'घोषणा' स्त्री० [स०] घोष का विकारी रूप है इसका प्रारम्भिक अर्थ है—कोई बात सब लोगों को सुनाने के लिए चिल्लाकर या जोर जोर से कहना। आगे चलकर इसका प्रयोग राजा या राज्य की ऐसी आज्ञाओं के सम्बन्ध में होने लगा था जो ढिंढोरा या ढोल पीटकर जन साधारण को नगरों की चौमुहानियों और राजमार्गों पर इसलिए सुनाई जाती थी कि वे इनसे परिचित होकर उचित रूप में इनका पालन करें—कोई इनके विरुद्ध आचरण न करे। इसी आधार पर इसका प्रयोग इधर बहुत दिनों से शासन अथवा शासकों के द्वारा आधिकारिक रूप में जनता को सूचित की जानेवाली बातों के सम्बन्ध में होता है। यह शब्द इस अर्थ में बहुत अधिक प्रचलित भी है और प्रसिद्ध भी, और मेरी समझ में इसे इसी रूप में चलने देना ठीक होगा। भारत सरकार की विधि शब्दावली में इसके स्थान पर 'उद्घोषणा' शब्द रखा गया है जो कुछ उपयुक्त नहीं जान पड़ता। घोषणा को उक्त शब्दावली में Declaration का समानक माना गया है। परन्तु मेरी समझ में अर्थ के विचार से परिज्ञापन अधिक उपयुक्त होगा। इसी प्रकार मैं Anouncement के लिए ख्यापन और Promulgation के लिए प्रवर्तन का प्रयोग अधिक उचित समझता हूँ। नीचे इन शब्दों का जो विवेचन किया गया है, उनसे मेरे सुझाए हुए नए शब्दों की सार्थकता अधिक स्पष्ट हो जाएगी।

ख्यापन पु० [स०] का मुख्य अर्थ है—लोगों को जतलाने के लिए कोई बात औपचारिक, निश्चित और स्पष्ट रूप में कहना। इस दृष्टि से यह भी बहुत कुछ वैसा ही है जैसा 'घोषणा' है, पर हाँ इसमें जोर से या चिल्लाकर कहलवाने का भाव नहीं है। अतः महत्त्व के विचार से इसे घोषणा के बाद दूसरा स्थान दिया जा सकता है। इसमें मुख्य भाव सम्बद्ध लोगों को जतलाने या बतलाने भर का है। प्रायः कोई राज्य या शासन जो नये नियम, विधान

आदि बनाता है, उसका प्रख्यापन इसी विचार से किया जाता है कि सम्बद्ध लोग ठीक तरह से उसका पालन करें, उसके विरुद्ध आचरण या व्यवहार न करे, जैसे—.क) राष्ट्रपति के कार्य-क्रम (या विदेश-यात्रा) का प्रख्यापन। (ख) संसद के अधिवेशन को स्थगित करने का प्रख्यापन।

'परिज्ञापन' पु० [स०] का मुख्य अर्थ है कोई बात या स्थिति पूरी और स्पष्ट रीति से बतलाना। इसमे मुख्य भाव सम्बद्ध व्यक्ति या व्यक्तियों को जतलाने या बतलाने भर का है। इसे हम वक्तव्य का ऐसा रूप कह सकते हैं जो मूलत' निश्चयात्मक भी होता है और जिसकी प्रामाणिकता का उत्तर-दायित्व भी अपने ऊपर लिया जाता है। जब शासन अपने किसी निर्णय, नीति, मत या सिद्धान्त का परिज्ञापन करता है, तब आशय यही होता है कि इस सम्बन्ध मे किसी को कोई भ्रम या सन्देह न रह जाय। आयकर से बचने के लिए बहुत से लोग अपनी वास्तविक आय बही खातो मे नही दिखलाते और चोर-बाजारी करनेवाले व्यापारी अपने अनाज, सोने, चाँदी आदि की पूरी सूची अधिकारियो को नही देते। कुछ अवस्थाओ मे शासन को जब इस तरह की दबी-दबाई चीजो या धन का किसी तरह पता नही चलता तब वह कहता है कि यदि लोग अमुक अवधि के अन्दर सब चीजो का ठीक-ठीक परिज्ञापन कर देंगे तो उनसे उचित कर या शुल्क ही लिया जाएगा और किसी प्रकार का दड नही दिया जाएगा। प्राय: अधिकारियो और न्यायालयों के समक्ष भी लोगो को कुछ अवस्थाओ मे परिज्ञापन उपस्थित करने पड़ते हैं। उस दशा मे यही माना और समझा जाता है कि कोई बात इस परिज्ञापन से अन्यथा या भिन्न नही है, और यदि होगी तो परिज्ञापन करनेवाला उचित दड का भागी होगा।

'प्रवर्तन' पु० [सं०] का मूल अर्थ है—कोई नया काम या बात निकालकर उसका आरम्भ और प्रचलन करना; अर्थात् उसके सम्बन्ध में ऐसी क्रिया करना कि वह प्रयोग या व्यवहार मे आने लग जाए। महात्मा गौतम बुद्ध ने धर्म-चक्र का जो प्रवर्तन किया था उसका आशय यही है कि उन्होंने एक नए धर्म की स्थापना करके लोगो को उसके अनुसार आचरण करने के लिए प्रवृत्त और प्रोत्साहित किया था। इसमे मूल भाव यही है कि लोग ऐसी नई बातो से अपने आपको बँधा हुआ समझे और उनके अनुगामी या अनुयायी बनें। इससे और आगे बढने पर प्राचीन और मध्ययुगो मे ही इसमे एक और विवक्षा लग गई थी। जब जनता के लिए कोई नया नियम या विधान बनाया जाता था तब उसके साथ यह भी निश्चित कर दिया

उपयोगी सार्वजनिक कार्यो के लिए प्राय: लोग कुछ मासिक या वार्षिक चन्दा बाँध देते हैं। इसे नियत-कालीन या आवर्तक-चन्दा कहते हैं। सभा-संस्थाएँ प्राय: अपने सदस्यो से इसी प्रकार का चन्दा लेती है। इससे और आगे बढने पर चन्दे मे उस मूल्य का भी समावेश हो गया है जो सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ अपने स्थायी ग्राहको से प्राय: प्रति वर्ष लिया करती हैं।

'बेहरी' हमारे यहाँ का बहुत पुराना शब्द है जो पूर्वी उत्तर प्रदेश और पश्चिमी बिहार के देहातों मे अब तक बोला जाता है। यह स० 'विहृत' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है—किसी से जबरदस्ती कुछ ले लेना। ऊपर चन्दा का जो पहला अर्थ बतलाया गया है उसी अर्थ मे यह अब तक प्रयुक्त होता है। होली आदि के अवसरो पर अथवा किसी गरीब के यहाँ मृत्यु, विवाह आदि के समय बहुत से लोगो से माँगकर जो थोड़ा-थोड़ा धन एकत्र किया जाता है उसे भी और धन माँगने की इस प्रकार की क्रिया को भी बेहरी कहते हैं। चन्दे मे जो नए अर्थ या विवक्षाएँ लगी है, उनका बेहरी मे अन्तर्भाव नही होता।

उगाही' हि० की उगाहना क्रिया का भाववाचक सज्ञा रूप है। उगाहना संस्कृत उद्ग्रहण, प्रा० उगाहन से व्युत्पन्न है। उगाहना और उगाही दोनो हमारे यहाँ के व्यापारिक क्षेत्रो के बहुत पुराने शब्द है। बडे व्यापारी छोटे व्यापारियो के हाथ जो माल उधार बेचते है उसका दाम थोडा-थोडा करके वसूल करने को उगाहना या उगाही कहते हैं। मध्ययुग मे बडे जमीदारो के कर्मचारी छोटे किसानो से कर या मालगुजारी उगाहने जाया करते थे। प्राय. चन्दे या बेहरी की रकम घर-घर घूमकर वसूल करने को भी 'उगाहना' ही कहते थे। कुछ पुराने कवियो ने इसका प्रयोग कही से कुछ माँगकर प्राप्त करने के अर्थ मे भी किया है; यथा—कोउ वेद वेदात मथत रस सात उगाहत—रत्नाकर। कुछ स्थानो मे भूमि कर को भी उगाही कहते थे।

परन्तु आज-कल 'उगाही' का प्रयोग एक नए और विशिष्ट अर्थ में होने लगा है। कभी-कभी आवश्यकता पडने पर राज्य को यह निर्धारित करना पडता है कि सब लोगो से अथवा अमुक क्षेत्र के निवासियो से कुछ धन या वस्तुएँ विशेष कर के रूप मे ली जायँगी। इस प्रकार का धन या वस्तुएँ एकत्र करने की क्रिया को भी अब उगाही कहने लगे है। इधर (सन् १९६७ मे) भारत मे निरन्तर अवर्षा के कारण अन्न का जो भीषण संकट उपस्थित हुआ था, उसे देखते हुए केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने भविष्य के लिए अन्न का सुरक्षित भण्डार बनाने के उद्देश्य से यह निश्चय किया था कि

अधिक अनाज उत्पन्न करने वाले किसानों से कुछ निश्चित मात्रा में मूल्य देकर अनाज लिया जाय और किसानों के लिए इस प्रकार सरकार के हाथ अनाज बेचना अनिवार्य कर दिया था। अब इस प्रकार के निश्चय के लिए और इसके अनुसार अनाज एकत्र करने की क्रिया को भी 'उगाही' कहने लगे हैं। इसके पर्याय के रूप में उर्दू का वसूली (अ० वुसूल से) शब्द भी प्रयुक्त होता है। × ×

चढ़ऊरी—स्त्री० [हि०] दे० 'अव पगए और अन्नारी'।

चढ़त—स्त्री० [हि० चढ़ना] दे० 'चढ़ाई, चढ़ान, चढ़ाव और चढ़ावा (या चढ़त)'।

चढ़ाई, चढान, चढाव और चढावा (या चढत)

यद्यपि इस वर्ग के सभी शब्द हिन्दी चढ़ना और चढ़ाना से भाववाचक संज्ञा रूप हैं फिर भी इनके आशयों और विवक्षाओं में परस्पर कुछ सूक्ष्म अन्तर है।

'चढ़ाई' शब्द हिन्दी 'चढ़ना' से बना है और यह चढ़ने की अवस्था, क्रिया, ढंग और भाव का सूचक है। मूलतः ऊपर को ओर चढ़ने या बढ़ने अर्थात् क्रमशः ऊँचाई पर पहुँचने की अवस्था या क्रिया ही चढ़ाई है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इससे किसी प्रकार के उत्कर्ष या उन्नति का भाव सूचित होता है। इसका सम्बन्ध किसी प्रकार के तल या भौतिक विस्तार से ही है। पहाड़ों आदि पर जब लोग ऊपर की ओर चढ़ते हैं तब चढ़ने की वह क्रिया 'चढ़ाई' कहलाती है। जिस तल या विस्तार पर से होकर लोग ऊपर की ओर चढते या जाते हैं उसे भी चढाई कहते हैं। नदियों आदि का बहाव सदा निम्न तल की ओर होता है, इसलिए जिधर से बहाव आ रहा हो, उस ऊँचे तल की ओर नावें आदि ले जाने के सम्बन्ध में भी कहा जाता है कि नाव चढ़ान की ओर या चढाई पर जा रही है।

चढना के अनेक अर्थों में एक अर्थ किसी के ऊपर सवार होना और दूसरा अर्थ किसी को दबाकर उसे अपने वश में करना भी है। इसी आधार पर 'चढ दौड़ना' मुहावरा बना है, जिसका अर्थ है—किसी को दबाने, मारने आदि के लिए आगे बढ़ना। इसी आधार पर चढ़ाई का एक और अर्थ होता है—शत्रु के देश या सेना पर आक्रमण करने के लिए तेजी से आगे बढना। इसमें आगे बढकर किसी को दबाने का भाव प्रधान है।

इसके सिवाय चढाना क्रिया से सम्बद्ध इसका एक और अर्थ भी होता है; जिसका अर्थ होता है—चढाने की क्रिया भाव या मजदूरी; जैसे—(क) वह धातुओ पर मुलम्मे की चढ़ाई का काम सिखाता है। और (ख) चाँदी की सिकड़ी पर सोने की चढाई १०) मे होगी।

'चढ़ान' मुख्यत: चढ़ने की उसी अवस्था या क्रिया की सूचक है जिसका उल्लेख ऊपर 'चढाई' के अन्तर्गत पहाडो और नदियो के सम्बन्ध में हुआ है। इसके सिवाय 'चढाई' का और कोई अर्थ या विवक्षा 'चढ़ान' मे नही है।

'चढाव' अपने आरम्भिक अर्थो मे बिलकुल वही है जो 'चढान' है, पर इसमे कई और आशय या विवक्षाएँ भी सम्मिलित हैं। इसमे एक ओर तो उत्कर्ष या उन्नति वाला भाव सम्मिलित है; और दूसरी ओर साधारण स्थिति से उस ऊँचे या बढे हुए होने की विवक्षा भी लगी है।

इसी आधार पर एक तो यह नदियो मे आनेवाली 'बाढ' का भी वाचक हो गया हैं; और दूसरे इससे चढाव-उतार (या उतार-चढाव) पद भी बना है जिसके अनेक अर्थो मे कुछ मुख्य अर्थ ये है—

(क) ऐसा तल या विस्तार जो बीच-बीच मे ऊँचा और नीचा होता गया हो, जैसे—केदारनाथ और बदरीनाथ के यात्रियो को पहाड़ो पर अनेक चढ़ाव-उतार मिलते हैं।

(ख) बीच-बीच मे या रह-रह कर होती रहने वाली उन्नति और अवनति अथवा सम्पन्नता और दरिद्रता आदि; जैसे—जातियो और राष्ट्रो के जीवन मे प्राय: चढाव-उतार होते रहते हैं।

(ग) चीजो की दरो या भावों मे होती रहनेवाली तेजी और मन्दी; जैसे—बाजारो मे चीजो के दामो मे बराबर चढाव-उतार तो होता ही रहता है।

(घ) मनुष्य के जीवन मे बराबर आते रहने वाले सुख-दु.ख आदि; जैसे—उन्होने अपने जीवन मे बहुत से चढ़ाव-उतार देखे हैं।

इनके सिवाय संगीत के अन्तर्गत स्वरो के आरोह और अवरोह तथा वर्तुलाकार लम्बी चीजों के किसी ओर मोटे और पतले होने का भाव भी सम्मिलित है।

'चढावा' मुख्यत: सकर्मक क्रिया 'चढाना' से सम्बद्ध है। देवी-देवताओ पर भक्ति और श्रद्धापूर्वक जो चीजे चढाई अर्थात् उन्हे अर्पित की जाती है वे सब चढावा कहलाती हैं, जैसे—उन्होने विश्वनाथ जी पर १००) का चढ़ावा

चढाया था। आशय यही होता है कि या तो उनकी चढाई हुई सारी सामग्री का मूल्य १००) था, अथवा उन्होंने १००) नगद चढाये थे।

'चढत' भी है तो बहुत कुछ वही जो 'चढावा' है, फिर भी दोनों में पहली बात तो यह है 'चढत' सकमक क्रिया 'चढाना' से नहीं, बल्कि अकमक क्रिया 'चढ़ना' से बनी है। दूसरे यह कि 'चढावा' मुख्यत पूर्वी क्षेत्रों म और 'चढत' पश्चिमी क्षेत्रो म प्रचलित है। और तीसरे, यह —त पण्डो पुजारियों आदि के दृष्टिकोण मे होती है। वे प्राय —हते हैं आज दिन भर मे चढत बहुत कम हुई है। परन्तु पश्चिम मे भक्त कहते हैं—हम १०) से अधिक की चढत न—ी च—ा सकते। × ×

चढान—स्त्री० [हि० 'चढना] दे० 'चढाई, चढान, चढाव और चढावा (या चढत)।

चढ़ाव—पु० (हि० चढ़ना) दे० चढाई, चढान, चढाव और चढावा (या चढत')

चढ़ाव उतार—पु० (हि० चढना+उतरना) दे० 'चढाई चढान चढ़ाव और चढावा (या चढत)।

चढ़ावा—पु० (हि० चढना+उतरना) दे० 'चढाई, चढान, चढ़ाव और च—ावा (या चढ़त)।

चाल चलन—पु० (हि०) दे० आचरण आचार और व्यवहार।

चाह चाहत चाव और साध

Wish Longing

इस वग के —ब— —्द तो इच्छा या कामना के वग के ही परन्तु इनके अर्थों मे कुछ विशेषताए हैं जिनके कारण —नका स्वत— विवरण आवश्यक है।

'चाह स्त्री० स० इच्छा से व्युत्पन्न है और हि० की 'चाहना * क्रिया का भाववाचक —ज्ञा रूप है। चाह मूलत वह मनोवृत्ति है जो मनुष्य को कोई ऐसा वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रेरित करती है जिसम उसे स—तोष या

---

* 'चाहना हि—्दी की सकमक क्रिया तो है ही, पर कभी कभी इसका प्रयोग स्त्रीलिंग —ज्ञा रूप म भी होता है जैसे—'हमारी बहुत —िनो की चाहना आज पूरी हुई। किसी कवि ने कहा भी है—'जाकी यहाँ चाहना है वाकी वहाँ चाहना है।'

सुख मिल सकता हो। यह साधारण इच्छा से कुछ और आगे बढी हुई आकाक्षा या उत्सुकता के भाव से युक्त है, जैसे—मुझे आप के दर्शनो की वहुत दिनों से चाह थी, जो आज पूरी हुई। कुछ अवस्थाओ मे इसमे अनुराग, प्रेम या स्नेह की प्रवलता का भाव भी सम्मिलित रहता है; जैसे—मुझे तो बस तुम्हारी ही चाह है। कुछ प्राचीन कवियो ने इसका प्रयोग विशेप आवश्यकता सूचित करने के लिए भी किया है। यथा—सवकी चाह लेइ दिन राती।—जायसी। ऐसी अवस्था मे यह वहुत कुछ 'चाव' या 'साध' का भी समार्थक हो जाता है, परन्तु इस अर्थ मे इसका प्रयोग अव कम होने लगा हे।

'चाहत' स्त्री० हिं० 'चाह' मे त प्रत्यय लगने से वना है। यह विशेप रूप से किसी विशिष्ट व्यक्ति से मिलने की ऐसी इच्छा का वाचक है जो मूलत· अनुराग प्रेम या स्नेह से उद्भूत हं अर्थात् यह मुख्य रूप से शृगारिक क्षेत्र का ही शब्द है; लौकिक या सामाजिक क्षेत्रो का नही, यथा—खीच लायी मुझे तेरी चाहत सँवलिया।—कोई गीतकार।

'चाव' पु० भी है तो हिं० 'चाह' का ही विकृत रूप; परन्तु इसका अर्थ कुछ और ही हो गया है। चाह तो साधारणतः भौतिक या सामाजिक ही होती है, परन्तु चाव विशिष्ट रूप से हार्दिक होता है। यह ऐसी प्रवल अभिलापा और लालसा के भावो से युक्त है, जो यथेष्ट आतुरता और उत्सुकता से युक्त होती है। चाव प्राय· ऐसी वातो का ही होता है जिनके हो जाने से मनुष्य वहुत कुछ निश्चित होने के सिवा परम प्रसन्न होकर अपने आपको कृत-कृत्य समझने लगता है। इसके सिवा इसका प्रयोग प्राय: अपने से छोटों के प्रति उनकी सुख कामना के लिए और मागलिक कार्यो के सम्वन्ध मे होता है; जैसे—वृद्धा माता के मन मे वहुत दिनो से यह चाव था कि उसके पुत्र का विवाह जल्दी हो जाय और वहू आकर घर की शोभा वढावे। सूरदास ने भी कहा है—चित्र केतु पृथ्वी पति राव। सुत हित भयो तासु हिय चाव।

'साध' स्त्री० [स०] साधन (सज्ञा) और हिं० साधना (सकर्मक क्रिया) से व्युत्पन्न है। यह भी है तो वहुत कुछ चाव के समान; फिर भी इसमें अपनी एक नई रगत है। इसमे मुख्य भाव कार्य की सिद्धि का है। इसे हम ऐसी उत्कट ललासा कह सकते है, जो तव तक पूरी नही होती जब तक कार्य पूरा न हो जाय। यह मनुष्य को उत्सुक रखने के सिवा कुछ वेचैन या विकल भी रहती है। जब हम कहते हैं—'आज हमारी वहुत दिनो की साध

चूक — **छूट** — **और** — **भूल**

Slip — 1 Omission 2 Exemption — 1 Mistake 2 Error

ये तीनों भाव-वाचक स्त्री० संज्ञाएँ हैं और क्रमात् चूकना, छूटना और भूलना क्रियाओं से सम्बद्ध हैं। 'चूकना' मुख्यतः निशानेबाजी या लक्ष्य संधान के क्षेत्र का शब्द है। हम निशाने पर गोली या तीर चलाते हैं पर जब लक्ष्य पर वार नहीं होता तब कहते हैं कि निशाना चूक गया। यह ठीक और सीधे मार्ग पर चलते समय बहुत ही थोड़ा इधर या उधर हो जाने का परिणाम होता है। चूक के अधिकतर अर्थों में विचलित हो जाने का भाव पाया जाता है और यह विचलन बहुत अनजान में ही होता है। कभी कभी हमारी कुछ असावधानी भी हमसे चूक करा देती है पर वह इतनी सूक्ष्म होती है कि हमें सहसा उसका पता भी नहीं चलता। इसलिए हम कहते हैं—न जाने हमसे कौन सी ऐसी चूक हुई कि वे हमसे रुष्ट हो गये। प्रायः यही होता है कि हम तो अपनी समझ से बराबर ठीक व्यवहार करते रहे, न जाने कब कहाँ और कैसे हमसे कोई त्रुटि हो गई। कोई काम करते समय बीच में जो बात रह जाती है उसी को हम 'छूट' कहते हैं। यह मुख्यतः हमारे अनवधान या असावधानी के कारण होती है। पत्र की प्रतिलिपि करने में किसी पद या वाक्य की छूट हो सकती है और जोड़ लगाने में किसी रकम की छूट हो सकती है। इसकी गणना साधारण त्रुटियों या दोषों में होती है। छूट का प्रयोग कुछ ऐसे क्षेत्रों में भी होता है जिनमें उसका सम्बन्ध अकर्मक 'छूटना' क्रिया से नहीं बल्कि सकर्मक 'छोड़ना' क्रिया से होता है। जब हम किसी को काम करने की छूट देते हैं तब मानो किसी बन्धन से मुक्त करके स्वतन्त्र रूप से आचरण करने के लिए छोड़ देते हैं। कोई चीज बेचने के समय या किसी से प्राप्य धन लेने के समय हम उसे जो छूट देते हैं उसमें भी कुछ अंश छोड़ देने का भाव ही प्रधान है। 'भूल' का मुख्य और मूल सम्बन्ध स्मरण शक्ति के ठीक तरह से काम न करने वाली बात से है। जब हम कोई काम करना भूल जाते हैं तब यही माना और समझा जाता है कि हमारी स्मरण-शक्ति ने ठीक या पूरा काम नहीं किया। यों तो यह बात बहुत ही सामान्य कही जा सकती है पर लोक व्यवहार में भूल प्रायः अक्षम्य अथवा दण्डनीय ही मानी जाती है। कारण कदाचित् यही है कि छोटी सी भूल का भी हमारे लिए अथवा औरों के लिए आपद्‌जनक अथवा विकट परिणाम हो सकता है। चूक और छूट की गिनती तो साधारण त्रुटियों या दोषों में

होकर रह जाती है; पर भूल कुछ अवस्थाओं मे अपराध या पाप तक के क्षेत्र मे जा पहुँचती है। × ×

चेष्टा, प्रयत्न और प्रयास

1. Try 2. Attempt Effort Endeavour

ये तीनो शब्द हमारी उन बौद्धिक, मानसिक अथवा शारीरिक क्रियाओ के सूचक है जो हमे कोई कार्य आरम्भ करके उसे सफलतापूर्वक समाप्ति तक पहुँचाने के उद्देश्य से करनी पड़ती हैं। हिन्दी मे इन तीनो शब्दो के प्रयोगो मे किसी प्रकार के अन्तर या भेदभाव का विचार नही होता, परन्तु यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इन शब्दो के मूल मे कुछ ऐसी विवक्षाएं दिखाई देती हैं जिनके आधार पर हम उनके अर्थो का अन्तर समझ या स्थिर कर सकते हैं। 'चेष्टा' का मूल अर्थ है—शारीरिक अगों का सञ्चालन। इसीलिए 'निचेष्ट' उसे कहते हैं जो हाथ-पैर बिलकुल न हिला रहा हो। हमारे मन मे जब कोई भाव, विकार या विचार उत्पन्न होता है तब हमारी आकृति या शारीरिक अगो मे कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इसी आधार पर कहा जाता है—उनकी चेष्टा ही इस बात की सूचक थी कि वे हमारे प्रस्ताव से सहमत नही थे। मरणासन्न व्यक्ति की आकृति आदि मे होनेवाले विकार देखकर ही कहा जाता है—इसकी चेष्टा बिगड़ती जा रही है। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि जब कोई काम करते समय शारीरिक अगो, उपागो आदि का आवश्यकता से अधिक अथवा असाधारण रूप से सञ्चालन किया जाय तो उसकी गिनती हमारी 'चेष्टा' मे होगी। यदि हम कहे—उसने वह भारी पत्थर उठाने के लिए अपनी ओर से बहुत चेष्टा की पर उसे सफलता नही हुई तो यह मानो चेष्टा का ठीक प्रयोग होगा।

'प्रयत्न' सं० के 'यत्न' शब्द मे प्र उपसर्ग लगने से बना है। 'यत्न' का मूल अर्थ है—इच्छा शक्ति का क्रियाशील होना। इसी लिए प्रयत्न हमारी आकाक्षा या इच्छा का सूचक तो है ही, पर उसमे हमारी बौद्धिक या मानसिक क्रियाशीलता का भाव भी सम्मिलित है। 'प्रयत्न' का प्रयोग मुख्यत. ऐसे अवसरो पर और ऐसे क्षेत्रो मे देखने मे आता है जहाँ हम अपनी इच्छा पूरी करने के लिए अपनी बुद्धि अथवा मनोबल से काम लेते हो। हम कहते हैं—मैं यथासाध्य इस बात का प्रयत्न करूँगा कि अपना काम पूरा हो जाय।

अपने प्रयत्न म सफल हाने के लिए अनेक प्रकार के उपाय करने पड़ते हैं और युक्तियाँ साचनी पड़ती हैं और ये सब बातें मुख्यत हमारे बौद्धिक और मानसिक क्षेत्र की हाती हैं।

प्रयास शब्द सस्कृत की यस् धातु से बना है जिसका मुख्य अर्थ है—परिश्रम अथवा श्रम करना। इसी से 'आयास' शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है—शारीरिक श्रम। इसी म अन उपसग लगने से अनायास शब्द बनता है, जिसका अर्थ हाता है—बिना कुछ भी परिश्रम या श्रम किये। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि प्रयास साधारण चेष्टा या प्रयत्न का ऐसा बढ़ा हुआ रूप है, जिसम हम विशेष रूप से श्रम करना पड़ता हो अर्थात् हम निरन्तर ऐसे उद्योग या कार्य करने पड़ते हैं जा थका देने या थका सकने हा। इसी लिए कहा जाता है—इस सामाजिक सुधार के लिए उन्हें जीवन भर प्रयास करना पड़ता था।

हिन्दी मे इन तीनो शब्दों के लिए 'कोशिश' शब्द का प्रयाग देखने मे आता है।

छतरी सैनिक और छापामार

Pa atrooper Guerrilla

इसकी योजना भी बना दी है। छत्रपति महाराज शिवाजी के समय मे उनके सैनिको की टुकडियाँ जगलो और पहाडो मे छिपी रहा करती थी। जब उस ओर से शत्रु सेना जाने लगती थी, तब ये टुकड़ियाँ उपयुक्त अवसर देखकर उन पर छापा मारती थी और सैनिको की हत्या करके उनका गोला, बारूद और रसद छीन लेती या नष्ट कर देती थी। ऐसा ससार के अन्य कालो या देशो मे भी प्राय: होता था। यही बात आजकल नए और व्यवस्थित रूप मे होने लगी है।*

× ×

छल्ला—पु० [हिं०] दे० 'गर्भ-निरोध, गर्भ-पात, गर्भ-स्राव और भ्रूणहत्या'।

छापामार=पु० [हिं०] दे० 'छतरी-सैनिक और छापामार'।

छायावाद और रहस्यवाद
Romanticism Mysticism

आधुनिक साहित्य के दो प्रमुख मत जिनके स्पष्ट स्वरूप कुछ दिनो पहले तक लोगो के ध्यान मे पूरी तरह से नही आये थे और इसी लिए जिन्हे कुछ लोग एक दूसरे का पर्याय समझते थे। परन्तु इधर हाल के विवेचनो मे इनके स्पष्ट स्वरूप बहुत कुछ निर्धारित हो चुके है। इन दोनों का प्रयोग मुख्यत: आधुनिक कविताओ के क्षेत्र मे होता है। साहित्यिक क्षेत्र मे 'छायावाद' आत्माभिव्यक्ति का वह ढग या प्रकार माना जाता है जिसके अनुसार किसी शुभ और सौन्दर्यमय प्रतीक की कल्पना करके लक्षणा, व्यंजना आदि के द्वारा उस प्रतीक के सम्बन्ध मे अपनी अनुभूति या आतरिक भाव प्रकट किये जाते है। यद्यपि हिन्दी काव्य साहित्य मे इसका प्रवर्तन कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की 'गीताजलि' से माना जाता है, फिर भी इसका मूल स्रोत प्राचीन भारतीय साहित्य मे भी और कबीर-साहित्य तथा सूफी मत की रचनाओ मे भी बहुत दिनो से चला आ रहा था। अब पाश्चात्य साहित्य से संपर्क होने के उपरात उसका यह नया नाम और नया रूप स्थिर हुआ है। श्री मुकुटधर पाडेय हिन्दी के पहले छायावादी कवि माने जाते है। 'रहस्यवाद' ईश्वर तथा सृष्टि के

* कुछ लोग इसके अंग्रेजी रूप Guerrilla को देखकर भ्रम से इसे गोरिल्ला (Gorilla) नामक वन-मानुप से सम्बद्ध समझते हैं। परन्तु वास्तव मे ये दोनो शब्द एक दूसरे से बिलकुल अलग है, और इनका आपस मे कोई सम्बन्ध नही है।

परम तत्त्व या सत्य पर आश्रित और सात्त्विक आत्मानुभूति से सम्बन्ध रखनेवाला एक वाद या सिद्धांत है। यह आध्यात्मिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में जीवात्मा के उस अनुराग या प्रेम का सूचक है जो परमात्मा के प्रति उत्पन्न होता है। मनुष्य के मन में परम सत्य या परमात्मा का साक्षात् करने के लिए जो आंतरिक अनुभूति या स्फूर्ति होती है वही रहस्यवाद का मूल है। आत्मा में होनेवाली यह अनुभूति या प्रवृत्ति बिलकुल प्राकृतिक और स्वाभाविक मानी गई है, और सभी कालों, सभी जातियों और सभी देशों में बराबर पाई जाती है। परन्तु इसका विकास या सिद्धि लौकिक या सांसारिक आचार व्यवहारों के द्वारा नहीं बल्कि अंतःकरण में स्थित आत्मा की शक्ति से ही होती है। इसकी साधना करनेवाले लोग संसार से विरक्त और विमुख होकर जिस प्रकार अथवा जिस सिद्धांत के आश्रित होकर परम सत्य का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करते अथवा उससे तादात्म्य स्थापित करते और लोक में उसकी अभिव्यंजना करते हैं, वही साहित्य में रहस्यवाद कहलाता है। × ×

छींटा—[हि०] १=अभिक्षेप दे० आक्षेप, अभिक्षेप और आवाजा। और २=कटाक्ष, दे० व्यंग्य, कटाक्ष (छींटा) चुटकी ताना और बोली।

छूट—स्त्री० [हि०] दे० चूक, छूट और भूल।

छेड़ और पहल

Initiative

हिंदी की ये दोनों स्त्रीलिंग संज्ञाएँ मूलतः इस बात की सूचक होती हैं कि किसी काम का नए रूप में या नए सिरे से आरम्भ हुआ है। इसलिए 'आरम्भ और प्रारम्भ' शीर्षक विवेचन में हमने हिंदी की इन दोनों संज्ञाओं को भी माना तो उसी वर्ग में है, परन्तु इनके अर्थों में जो कुछ नई छटाएँ बढ़ी हैं या विशेषताएँ आती हैं उन्हीं के विचार से यहाँ इनका स्वतंत्र विवेचन करना आवश्यक समझा गया है।

'छेड़' शब्द हिंदी की छेड़ना क्रिया का भाववाचक संज्ञा रूप है। हिंदी शब्द सागर में 'छेड़' और 'छाना' का 'छे' और 'छेना' से व्युत्पन्न माना गया है, और मानक हिंदी कोश में भी बहुत कुछ इसी के आधार पर इसका सम्बन्ध सं० छिद् से स्थापित किया गया है। परन्तु इन शब्दों के अर्थों का ध्यान रखते हुए यह व्युत्पत्ति कुछ ठीक नहीं जान पड़ती। हो सकता है कि आगे चलकर इसकी कोई और अच्छी व्युत्पत्ति सामने आवे। 'छेड़ना' का शाब्दिक अर्थ है—किसी काम का आरम्भ करना, जैसे—इमारत का

काम छेडना, गाने-बजाने मे कोई धुन या राग छेड़ना आदि। परन्तु आगे चलकर इसमे कुछ और नए अर्थ लग जाते हैं; यथा—

१—किसी को चिढाने या तग करने के उद्देश्य से कोई ऐसा काम करना जिससे वह क्षुब्ध होकर बिगडे और प्रतिकार या लड़ाई-झगड़ा करने के लिए तैयार हो, जैसे—विरोधी या शत्रु को छेड़ना।

२—किसी चीज को इस प्रकार खीचना, छूना या दबाना कि उसमें किसी प्रकार का विकारात्मक परिवर्तन उत्पन्न हो; जैसे—फोडे या बुखार को छेडना।

३—केवल परिहास या हँसी-मजाक के लिए किसी के प्रति कोई तीखी और लगती हुई बात कहना, जैसे—प्रियतमा को छेडना।

'छेड' इन्ही सब बातो की ओर सकेत करनेवाली भाववाचक सज्ञा है। इसका मुख्य उद्देश्य किसी को चिढाना या तग करना होता है। इसी आधार पर इससे छेडखानी और छेडछाड आदि यौगिक पद बने हैं और आगे चलकर यह शब्द ऐसी बात का वाचक भी बन गया है जो किसी को क्षुब्ध करने के उद्देश्य से कही या की जाती हो।

हिंदी मे विशेषण 'पहला' तो है ही और उससे बना हुआ क्रिया-विशेषण 'पहले' भी प्रचलित है। इन्ही दोनो के आधार पर हिंदी मे भाववाचक स्त्री-लिंग सज्ञा 'पहल' प्रचलित है। यो साधारणतः इसका प्राथमिक अर्थ है तो बहुत कुछ वही जो 'आरभ' या 'प्रारभ' का है; परन्तु यह अर्थ मानो छूट गया है या छूटता जा रहा है। अब इसका बहुत कुछ मुख्य अर्थ हो गया है—औरो से आगे बढकर या पहले-पहल कोई नया काम करना या नई बात कहना या निकालना अर्थात् अग्रसर होकर किसी काम या बात का सूत्रपात करना। प्राय. इसके साथ एक और आशय या भाव भी विवक्षित रहता है। पहल का प्रयोग प्रायः ऐसे-प्रसगो मे होता है जिनमे कोई दूसरा पक्ष भी (चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल) सामने, उपस्थित या वर्तमान हो और उस दूसरे पक्ष से किसी प्रकार की प्रतिक्रिया या तो अपेक्षित हो या सभाव्य। इस दृष्टि से इसमे होनेवाले काम के लिए उत्तरदायी ठहराए जाने अथवा अपने आप पर उसका भार लेने का भाव मुख्य है; जैसे—(क) भारत और पाकिस्तान मे जो कई बार छोटी या बडी लडाइयाँ हुई हैं उनकी पहल सदा पाकिस्तान ने ही की है। (ख) वियतनाम के युद्ध का अन्त तो सभी पक्ष करना चाहते हैं, पर उनमे से कोई पक्ष शाति वार्ता के लिए पहल करने को तैयार नहीं है। (ग)

यदि तुम्हारे भाई ने तुमसे बोलना और तुम्हारे यहाँ आना छोड़ दिया है तो तुम्हीं पहल करके उनके यहाँ चले जाओ और उनसे बातचीत करो।

जिस प्रकार 'आरम्भ' और 'प्रारम्भ' के साथ 'अन्त' और 'समाप्ति' का भाव भी लगा हुआ है उस प्रकार छुड़ या पहल' के साथ 'अन्त' या 'समाप्ति' वाला कोई भाव नहीं लगा है। × ×

जतु—पु० [स०] दे० 'प्राणी, जीव और जतु'।

जन—पु० [स०] दे० 'कबीला गण, जन और जन जाति'।

जन जाति—स्त्री० [स०] दे० 'कबीला, गण जन और जन जाति'।

जन तंत्र—पु० [स०] दे० 'गण तंत्र, प्रजा तंत्र और लोकतन्त्र'।

जन-निर्देश और जन-मत गणना (या संग्रह)

Referendum Plebiscite

इस वर्ग के शब्द ऐसी कार्य विधि के वाचक हैं, जो किसी विधान या महत्वपूर्ण राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध मे चुनाव नेत्रों और मत दाताओं का मत या विचार जानने के लिए की जाती है।

जन निर्देश पु० (स०) ऐसी व्यवस्था है जिसमें विधान सभा या संसद के निर्णयों, निश्चयों प्रस्तावों आदि के सम्बन्ध मे मतभेद या विवाद उपस्थित होने पर यह जाना जाता है कि मत दाता इसके सम्बन्ध मे क्या कहते अथवा क्या चाहते हैं। इस व्यवस्था के अनुसार मत दाताओं का विचार जान लेने पर ही विधानों विधेयकों आदि के सम्बन्ध मे अनुरूप कारवाई की जाती है। 'जन निर्देश' म का 'जन' शब्द कुछ अनुपयुक्त और भ्रामक है, क्योंकि यह निर्देश सारी जनता से नहीं बल्कि केवल मतदाताओं से प्राप्त किया जाता है।

'जन मत गणना (या संग्रह) भी है तो उक्त प्रकार की व्यवस्था, परन्तु इसका उद्देश्य कुछ भिन्न होता है। जब दो राष्ट्रों में किसी प्रदेश के सम्बन्ध में कोई विवाद होता है तब वहाँ के सभी वयस्क मत-दाताओं का विचार जानने की जो व्यवस्था की जाती है, वही जन मत गणना (या संग्रह) कहलाती है। इस व्यवस्था के अनुसार यह जाना जाता है कि विवादग्रस्त प्रदेश के निवासी अपने यहाँ कैसी शासन व्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं अथवा दोनो विवादी राष्ट्रों मे से किस राष्ट्र के अन्तर्गत या अधीन रहना चाहते हैं। मत दाताओं का ऐसा निर्णय ही दोनो पक्षों के लिए मान्य होता है। × ×

जन मत गणना (या संग्रह)—दे० 'जन निर्देश, और जन मत गणना (या संग्रह)।

जमाना—पु० [अ० जमान.] दे० 'कल्प और युग'।

जरूरत—स्त्री० [अ० जरूरत] दे० 'अपेक्षा और आवश्यकता' के अन्तर्गत 'आवश्यकता'।

जाँच, पड़ताल और परख

Test Scrutiny

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओ के वाचक है जो यह जानने या देखने के लिए की जाती हैं कि सामने आयी हुई चीज या बात जैसी कही जाती है या जैसी होनी चाहिए वैसी है या नही।

'जाँच' हि० जाँचना* क्रिया का भाव वाचक रूप है। जब हमारे सामने कोई चीज आती है, तब हम अनुभव, तुलना, प्रयोग, व्यवहार आदि के द्वारा यह जानना चाहते है कि (क) यह चीज कैसी है अथवा (ख) ऊपर से देखने मे यह जैसी जान पड़ती है, वास्तव मे वैसी ही है या नही। यह मानो एक प्रकार का परीक्षण ही है। जाँच मे यही देखा जाता है कि जो कुछ सामने है, वह अच्छा उपयुक्त, ठीक या पूरा है अथवा उसमे कोई कमी दोष या भूल है। पदार्थो के सिवा, व्यक्तियो के गुण, योग्यता आदि की भी जाँच की जाती है; और कुछ अवस्थाओ में यह भी देखा जाता है कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध मे जो अच्छी या बुरी बाते कही गयी हैं, वे ठीक हैं या नही। कोई चीज खरीदने के पहले इस बात की जाँच कर ली जाती है कि वह अच्छी है या नही और उसका दाम ठीक है या नही। किसी को नौकर रखने से पहले इस बात की जाँच की जाती है कि वह काम कर सकने के योग्य है या नही, अथवा उसका चरित्र ठीक है या नही। जब किसी व्यक्ति पर कोई अभियोग या दोष लगाया जाता है, तब इस बात की जाँच की जाती है कि उस अभियोग या दोषारोपण मे सत्यता है या नही।

---

* जाँचना स० याचना से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—किसी से प्रार्थनापूर्वक कुछ माँगना। पुरानी हिन्दी मे जाँचना का प्रयोग इसी अर्थ मे हुआ है। प्रस्तुत प्रसग मे इसका जो अर्थ है, वह इसी मूल अर्थ का विकसित रूप है। आशय यह है कि देख, पूछ या माँगकर यह परीक्षा करना कि यह खरा है या खोटा।

'पडताल' स्त्री० की व्युत्पत्ति अनिश्चित और संदिग्ध है*। यह हमारे यहाँ का महाजनी शब्द है। पडताल में मुख्य भाव लेखे, विवरण आदि को फिर से इसलिए दोहराकर देखने का है कि उसमें कोई छूट, दोष या भूल तो नहीं है। पुराना हिसाब फिर से देखने लिखे हुए बही खाता को जाँचने और पटवारी की पंजियों की शुद्धता जानने के लिए उनकी पडताल की जाती है। कुछ अवसरों पर इसका प्रयोग जाँच के साथ यौगिक पद 'जाँच पडताल' के रूप में भी होता है, ऐसी अवस्था में इसमें दोनों शब्दों का आशय या भाव आ जाता है।

'परख' हिं० परखना† क्रिया का भाव वाचक संज्ञा रूप है—किसी चीज को अच्छी तरह ठोक बजाकर उनके गुण दोषों की जाँच पडताल करके अथवा अन्य प्रकार की परीक्षाएँ करके देखना ही उस चीज का 'परखना' कहलाता है, और इस सम्बन्ध में की जानेवाली क्रियाएँ 'परख' कहलाती हैं। इस प्रकार किसी पदार्थ के खरे-खोटे की पहचान करना अथवा किसी व्यक्ति के काय व्यवहार आदि देखकर उसकी वास्तविकता का पता लगाना ही परख है। इससे और आगे बढने पर परख का प्रयोग किसी व्यक्ति की उस योग्यता शक्ति या सूक्ष्म दृष्टि की भी सूचक होती है जिसके द्वारा मनुष्य किसी पदार्थ के गुण दोष या किसी व्यक्ति की योग्यता अयोग्यता आदि सहज में जान या समझ लेने में समर्थ होता है। × ×

जान—स्त्री० (फा०) दे० जीवन प्राण जान और जिन्दगी।

जानकारी—स्त्री० (हिं० जानना=फा० कारी) दे० 'प्रविधि और परिज्ञान।

जानवर—पु० (फा०) दे० 'प्राणी, जीव और जन्तु'।

जायदाद—स्त्री० (फा० जाएदाद)=सम्पत्ति, दे० 'धन, वित्त, सपत्ति और परिसम्पत्ति'।

जिन्दगी—स्त्री० (फा०जिन्दगी) दे० 'जीवन प्राण जान और जिन्दगी।

* हिन्दी कोशो में इसे परितोलन (अच्छी तरह तोलना) से व्युत्पन्न बतलाया गया है। सम्भव है इस शब्द का सम्बन्ध उस पडता शब्द से हो जिसका एक अर्थ है—लागत, व्यय आदि का लगाया जानेवाला वह हिसाब जिसके आधार पर किसी वस्तु का मूल्य स्थिर किया जाता है।

† परखना स० परीक्षण से व्युत्पन्न है जिसका एक अर्थ है गुण, दोष आदि जानने के लिए किसी चीज या बात की जाँच या छान-बीन करना।

जिच—स्त्री० (फा० जिच्च)=गत्यवरोध; दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध, निरोध, प्रतिरोध और विरोध'।

जीव—पु० (सं०) दे० 'प्राणी, जीव और जन्तु'।

जीवन प्राण जान और जिंदगी

Life Life Life

ये शब्द उन तत्वो और स्थितियो के वाचक हैं जिनके आधार पर और जिनमे जीव, जन्तु या प्राणी चलते-फिरते, खाते-पीते, जन्म लेते, बढ़ते और अपना परिवार, वश या वर्ग बढाते रहते हैं। इनमे का पहला शब्द 'जीवन' प्रयोग और व्यवहार की दृष्टि से सबसे अधिक व्यापक है। मुख्य रूप से जीते रहने की अवस्था या भाव ही जीवन है। तात्त्विक दृष्टि से जीवन वह प्राकृतिक शक्ति है, जो प्राणियो, वनस्पतियो आदि को अंगो और उपागों से युक्त करके अथवा उन्हे सेन्द्रिय बनाकर सक्रिय और सचेष्ट रखती है। और जिसके फलस्वरूप वे परिस्थितियो के अनुकूल रहकर और कुछ खा-पीकर या कुछ पकाकर अपना अस्तित्व बनाये रखते और अपने वश या वर्ग की वृद्धि करते रहते हैं। साराश यह कि जीवित रूप मे अस्तित्व बने रहने की अवस्था या भाव ही जीवन है। वैज्ञानिको ने गतिशीलता, अनुभूति (या सवेदन), आत्म-पोषण, आत्म-वर्धन और प्रजनन यही पाँच इसके मुख्य लक्षण माने हैं। ये सब काम करने-करवानेवाली शक्ति का अन्त या नाश ही मृत्यु है। इसी लिए जीवन का विपर्याय मृत्यु है।

परन्तु भाव-व्यजन तथा लोक-व्यवहार की दृष्टि से जीवन का प्रयोग अनेक विकसित तथा विवर्धित अर्थों मे होता है, जिनमे से कुछ इस प्रकार हैं—

१—शरीर मे किसी विशिष्ट रूप या स्थिति मे आत्मा के अस्तित्व की सारी अवधि या काल; जैसे (क) पार्थिव या भौतिक जीवन; (ख) अमर या शाश्वत जीवन।

२—किसी आधार अथवा शरीर मे उक्त शक्ति या प्राणो के बने रहने की अवधि, अवस्था या भाव; जैसे—पशु-पक्षियो, मनुष्यो या वृक्षो का जीवन।

३—मनुष्यो मे उक्त अवधि का किसी विशिष्ट प्रकार, रूप या स्थिति का कोई अंग, अश या पक्ष; जैसे—आध्यात्मिक, एकान्तिक या वैवाहिक जीवन।

४—उक्त अवधि या समय के किसी विशिष्ट प्रकार से या किसी विशिष्ट रूप में बिताये जाने या बीतने की दशा या स्थिति, जैसे—(क) दरिद्रता या पराधीनता का जीवन, (ख) ग्राम्य नागरिक या सभ्य जीवन।

५—किसी विशिष्ट प्रकार के कर्तृत्व या क्रिया-कलाप के विचार से बिताई जानेवाली उक्त अवधि या उसका कोई अंश, जैसे—(क) आमोद-प्रमोद या भोग-विलास का जीवन, (ख) बनियों, लोहारों या सैनिकों का जीवन।

यह तो हुआ काल और दशा के विचार से जीवन का विवेचन। इसके सिवा स्वयं उस तत्त्व या शक्ति के विचार से भी इसके कुछ विशिष्ट अर्थ, आशय या भाव होते हैं, यथा—

१—वह (तत्त्व या व्यक्ति) जिससे किसी को कुछ करने की पूरी प्रेरणा, योग्यता या शक्ति प्राप्त होती है, जैसे—आप ही इस संस्था के जीवन हैं।

२—वह तत्त्व जिससे कोई चीज या बात यथेष्ट ऊर्जा, ओज, प्राण आदि से युक्त जान पड़ता है, जैसे—(क) किसी कविता, चित्र या मूर्ति में दिखाई पड़नेवाला जीवन।

३—वह तत्त्व या बात जो किसी वस्तु या व्यक्ति का अस्तित्व बनाये रखने के लिए अनिवार्य या परम आवश्यक होती है, जैसे—जल (या वायु) ही सब प्राणियों का जीवन है।

४—उक्त के आधार पर कोई ऐसी परम प्रिय वस्तु या व्यक्ति जिसके बिना रह सकना बहुत ही कठिन या दुष्कर हो, जैसे—(क) हमारे आराध्य देव ही हमारे जीवन हैं, (ख) साहित्य-सेवा ही उसका जीवन है।

'प्राण' (सं०) का पहला अर्थ है—साँस लेने में नथनों के द्वारा आने-जाने वाली वायु। मुख्य रूप से यह हमारी जीवनी-शक्ति का ही वाचक है। हमारे शास्त्रों ने इसके दस भेद या रूप कहे हैं यथा—प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय। शरीर में इनके निवास के भिन्न-भिन्न स्थान माने गये हैं और इनके कुछ विशिष्ट शारीरिक व्यापार भी स्थिर किये गये हैं। इनमें से पहलेवाले ५ प्रधान कहे गये हैं, और उनके समाहार को पंच-प्राण कहते हैं। इसी आधार पर संस्कृत व्याकरण में प्राण के बहुवचनात्मक प्रयोग का विधान है। इसलिए पुराने हिंदी लेखक भी प्रायः बहुवचन में ही इसका प्रयोग करते थे, जैसे—उनके प्राण निकल गये। पर आज-कल के बहुतेरे लेखक इस तत्त्व से अनभिज्ञ होने के कारण प्रायः एक वचन में ही इसका प्रयोग करने लगे हैं। अरविन्द

दर्शन के अनुसार प्राण ही चेतना की वह भूमि है जिससे उर्जा या शक्ति भी उत्पन्न होती है और इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ, क्रोध, मद, मत्सर आदि मनोविकार भी उद्भूत होते हैं। प्राण ही जीवन का मुख्य आधार है, इसी लिए जीवो को प्राणी कहते हैं। प्राणो का अन्त ही मृत्यु है। आर्थी क्षेत्र मे कुछ अवस्थाओ में प्राण का प्रयोग भी जीवन तत्ववाले अर्थो में जीवन की तरह ही होता है; जैसे—वही इस सस्था के प्राण (यह जीवन) हैं। हाँ, जीवन के लौकिक क्रिया-कलाप या व्यवहार वाले तत्व का प्राण मे अभाव है। इसी लिए देवी-देवताओ की मूर्ति मे प्राण-प्रतिष्ठा तो की जाती है, पर जीवन प्रतिष्ठा नही की जाती या नही की जा सकती। हम उन्हे जीवन तत्व से युक्त तो कर और मान सकते है, पर जीवन-क्रिया से युक्त कर या मान नही सकते। परन्तु डूबे हुए, वेहोश या मृतप्राय आदमी को जल से निकालने पर उसमे जीवन का सचार करना भी कहा जाता है और प्राणो का सचार करना भी क्योकि ऐसे अवसरो पर जीवन का तत्व ही अभिप्रेत होता है, क्रिया-कलाप का नही।

'जान' फारसी का शब्द होने पर भी मूलतः संस्कृत 'ज्ञान' से व्युत्पन्न है। अपने मूल अर्थ के विचार से जान और प्राण दोनो समानक ही है। परन्तु अपने परवर्ती और विवर्धित अर्थो मे यह बल-बूते या शक्ति और मूल तत्व या सार भाग के लिए भी प्रयुक्त होता है, जैसे—(क) यह वैल हल में क्या चलेगा, इसमे जान तो है ही नही; और (ख) अब यह मकान बहुत पुराना हो गया है, इसकी दीवारो मे जान नही रह गयी है। किसी चीज की उत्कृष्टता, उपयोगिता, सौन्दर्य आदि बढानेवाला तत्व भी जान कहलाता है; जैसे—यही शब्द तो इस चरण (पद या शेर) की जान है। कुछ अवस्थाओं मे यह कई ऐसे अर्थो से भी युक्त रहता है जो ऊपर जीवन के अन्तर्गत बतलाये गये हैं; जैसे—वही तो इस मजलिस की जान है। जीवन की ही तरह यह परम प्रिय पदार्थ या व्यक्ति के सम्बन्ध मे भी प्रयुक्त होता है। मुसलमानो मे इसका प्रयोग बडे या पूज्य व्यक्तियो के सम्बन्धवाचक शब्दो के साथ भी होता है, जैसे—अम्मा जान और भाई जान आदि। उर्दू कविताओ मे यह प्रियतम या प्रियतमा के लिए बहुत अधिकता से प्रयुक्त होता है। इसके सिवा उर्दू वालो ने इसके योग से अनेक पद और मुहावरे भी बना लिये हैं, जैसे—जान जोखिम, जान का जजाल, जान खोना, जान चुराना, जान हलकान करना आदि। ऐसे प्रयोगो मे जान के स्थान पर जीवन या प्राण का प्रयोग नही हो सकता।

'जि दगी फारसी 'जिन्द का भाववाचक रूप है और 'जिन्द' का व्युत्पत्तिक सम्बन्ध संस्कृत जीवत (जीवित) से जान पड़ता है। कई बातों में यह बहुत कुछ जीवन का भी समानक है। ऊपर काल क्रिया, दशा आदि के विचार से जीवन के जो विशिष्ट अर्थ और प्रयोग बतलाये गये हैं, बहुत कुछ वही और उसी प्रकार के अर्थ और प्रयोग जिन्दगी के भी होते हैं, जैसे—गरीबी या फकीरी की जि दगी, ऐश आराम की जिन्दगी आदि। हाँ, जीवन तत्व और जीवन शक्तिवाले क्षेत्र में जीवन के जो अर्थ बतलाये गये हैं उन अर्थों में बहुधा जान का ही प्रयोग होता है जिन्दगी का नहीं और इसके कुछ उदाहरण ऊपर जान के प्रसंग में दिये जा चुके हैं। × ×

जुटना और जुतना

प्रस्तुत प्रसंग में ये दोनों शब्द किसी काम में लगने के वाचक हैं—परन्तु दोनों के अर्थों में कुछ सूक्ष्म अन्तर है।

जुटना' अ० उसी संस्कृत जुट से बना है जिससे हि दी 'जुड़ना बना है। जुट का अर्थ है—बँधना या बाँधना। इसीलिए यह कई अर्थों में 'जुड़ना का पर्याय है। परन्तु इसका एक विशेष अर्थ है जो 'जुड़ना का नहीं है। वह अर्थ है—किसी काम में अध्यवसाय और परिश्रमपूर्वक लगना। जब लोग अपनी इच्छा और उत्साह से किसी काम को पूरा करने के लिए बराबर कुछ समय तक उसमें लगे रहते हैं तब कहा जाता है—सभी लोग अपने अपने काम में जुटे हैं। भले ही ऐसे लोग पारिश्रमिक या वेतन लेकर काम करते हों। फिर भी जब उनके सम्बन्ध में 'जुटना' का प्रयोग होता है तब यही माना और समझा जाता है कि वे उस काम को आवश्यक अथवा कर्तव्य समझकर करते हैं, उसे भार समझकर या विवश होकर नहीं।

'जुतना स० युज से बना है जिसके अनेक अर्थों में से एक अर्थ 'काम में लगना' भी है। यह उसी जोतना का अकर्मक रूप है, जिसका प्रयोग गाड़ियों आदि में घोड़े या बैल जोतने के प्रसंग में होता है। जुतना भी है तो परिश्रमपूर्वक काम में लगना परन्तु इसका प्रयोग ऐसे ही अवसरों पर होता है जब लोग काम का भार समझकर और विवशतापूर्वक करते हैं जैसे—बड़े-बड़े अधिकारी तो कार्यालयों में प्रायः सुख से बैठे रहते हैं परन्तु हमारे जैसे छोटे कर्मचारियों को दिन भर काम में जुते रहना पड़ता है। × ×

जुड़ना चिपकना मिलना लगना और सटना

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमे दो या अधिक चीजे आपस मे एक दूसरी से सम्बद्ध या सलग्न होती हैं; और देखने मे बहुत कुछ या तो एक जान पडती है या उनके अन्तर अथवा भेद का जल्दी पता नही लगता है।

'जुडना' भी उसी संस्कृत जुट् से बना है जिससे जुटना (दे० ऊपर 'जुट । और जुतना' की माला) बना है। जुडना का मुख्य अर्थ है दो या अधिक वस्तुओ का इस रूप मे एक साथ और दृढतापूर्वक एक होना कि वे सहसा अलग न हो सकें। यह क्रिया काटे, मेख आदि जडने, रस्सियों आदि से बँधने, सिलने अथवा ऐसी ही और बातों के फल-स्वरूप होती है। कुछ अवस्थाओ में यह क्रिया गोंद, लेई आदि रसीले पदार्थो के योग से भी होती है; और ऐसी अवस्था मे उसे चिपकना और सटना भी कहते हैं। जैसे कील या काँटे से दो लकड़ियो का आपस मे जुड़ना आदि। अपने परवर्ती अर्थो मे यह क्रिया कई और भागों की भी वाचक होती है, यथा—

(क) बहुत कठिनता से या कष्टपूर्वक प्राप्त होना; जैसे—दिन भर बैलो की तरह काम करो तब कही जाकर रोटी कपडा जुडता है।

(ख) इकट्ठा या एकत्र होना; जैसे—देखते-देखते वहाँ सैकड़ो आदमियो की भीड जुड़ गई। इस अर्थ मे इसका प्रयोग धन या रुपए-पैसे के सम्बन्ध मे भी होता है; जैसे—जब आदमी कंजूसी भी करे और मेहनत भी करे तभी धन जुडता है।

(ग) लाक्षणिक रूप मे इसका प्रयोग औचित्य, समानता आदि के विचार से अनुकूलता, सम्बन्ध आदि स्थापित होने के प्रसगों मे भी होता है; जैसे—किसी के साथ प्रीति जुडना अथवा विवाह के समान वर और कन्या की जन्म-पत्तिया जुडना।

कुछ क्षेत्रो मे इसका प्रयोग 'जुतना' के अर्थ मे होता है; जैसे गाडियाँ घोडे या बैल जुडना।

'चिपकना' हिंदी 'चिपचिप' या 'चेप' से बना है। जब कोई लसीला पदार्थ अगुलियो मे लग जाता है तब उस पर बार-बार अंगूठा रखने और उठाने से चिपचिप का-सा शब्द होता है। इसी से यह क्रिया बनी है। इसका

मुख्य अर्थ है—किसी लसीले पदार्थ के योग से दो वस्तुओं के तलों का आपस में एक दूसरे के साथ इस तरह मिल या लग जाना कि उन्हें सहसा एक दूसरी से अलग न किया जा सके, जैसे—पुस्तक की जिल्द में दफ्ती के ऊपर कपड़ा चिपकाना। कुछ अवस्थाओं में लसदार वस्तुओं के अभाव में भी और केवल नमी आदि के कारण पतली चीजें प्रायः एक दूसरी से अथवा किसी बड़ी चीज के साथ चिपकती हैं, जैसे—पसीने के कारण कपड़े का बदन से चिपकना, या सीड़ में पड़ी रहने के कारण किताब के पन्नों का आपस में चिपकना। इन अर्थों में इसके स्थान पर प्रायः 'सटना' का भी प्रयोग होता है, परन्तु जो कई दृष्टियों से ठीक नहीं है।

लाक्षणिक रूप में कुछ अवस्थाओं में इसका प्रयोग जबरदस्ती या हठपूर्वक किसी ऐसे काम में लगे रहने के सम्बन्ध में भी होता है, जिसमें धन, प्रतिष्ठा, महत्त्व आदि की विशेष रूप से प्राप्ति होती हो, जैसे—आज-कल *बहुत से अधिकारी अपनी कुर्सी (या पद) से चिपके रहना चाहते हैं।* आशय यही होता है कि वे जल्दी अपनी कुर्सी (या पद) छोड़ना नहीं चाहते, और उसके मोह में उचित अनुचित आदि का ध्यान नहीं रखते।

पदार्थ के सामने आने की स्थिति को भी मिलना कहते हैं; जैसे—रास्ते में नदी, पहाड़ या शेर मिलना, किसी से नजर मिलना। किसी प्रकार की अनुभूति, प्राप्ति आदि होने को भी मिलना कहते हैं, जैसे—अनुमति, आज्ञा, कष्ट, धन या सम्मान मिलना आदि। नए होनेवाले ज्ञान या परिचय के सम्बन्ध मे भी मिलना ही कहते है, जैसे—अनुसंधान करने पर कोई नया तत्व या धातु मिलना। किसी प्रकार की अनुरूपता, एकरूपता या सामजस्य स्थापित होने की स्थिति भी 'मिलना' कहलाती है; जैसे—दो व्यक्तियो की आकृति आपस मे मिलना; सगीत के समय बाजो के स्वर मिलना आदि।

'लगना' (स० लग्न) भी 'मिलना' की ही तरह हिन्दी की बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध क्रिया है। इसका पहला और मुख्य अर्थ है—एक पदार्थ के तल या पार्श्व का दूसरे पदार्थ के तल या पार्श्व के साथ आशिक या पूर्णरूप से मिलना या सटना; जैसे—पुस्तक के ऊपर कपडा या कागज लगाना, दीवार पर घड़ी लगाना आदि। इसका दूसरा अर्थ है—एक चीज का दूसरी चीज पर (या मे) जड़ा, जोड़ा, टाँका, बैठाया, रखा या सटाया जाना; जैसे—खिडकियो मे जँगला या पल्ला लगना, नाव मे पाल लगना। धोती या साड़ी मे गोट या झालर लगना आदि। किसी पदार्थ के तल पर किसी गाढ़े या तरल पदार्थ के द्वारा किसी प्रकार का अकन, लेप आदि लगना। जैसे—सूची मे नामो पर निशान लगना, दीवार पर चूना या रग लगना, हाथ-पैर मे मेंहदी लगना आदि। कुछ अवस्थाओ मे एक पदार्थ के तल के दूसरे पदार्थ के तल के साथ रगड होने को भी 'लगना' कहते हैं, जैसे—यत्र के पहिए का किसी दूसरे पुरजे से लगना, चलने मे घोडे या बैल का पैर लगना आदि। किसी को पकडने अथवा उसका भेद व रहस्य जानने अथवा ऐसे ही किसी और कार्य के लिए किसी का पीछा करना भी लगना ही कहलाता है; जैसे—अब तो प्राय: उनके साथ पुलिस लगी रहती है। कुछ विशिष्ट प्रकार की आपत्तियो, कष्टो, रोगो आदि का कुछ अधिक समय तक बना रहना अथवा उनका आकस्मिक आक्रमण अथवा प्रभाव होना भी लगना कहलाता है, जैसे—भूत-प्रेत या रोग लगना, कोई झझट या बखेडा लगना आदि। अभीष्ट या उद्दिष्ट रूप में किसी स्थान पर पहुँचना अथवा सार्थक रूप से उपयोग मे आना भी लगना कहलाता है, जैसे—जहाज या नाव किनारे लगना; खाई हुई चीज अग लगना आदि। इसके सिवा अनेक विशेषणो और सज्ञाओ के साथ लगकर यह शब्द उसकी अनुभूति, पूर्णता, सार्थकता, सिद्धि आदि का

भी सूचक होता है, जैसे—अच्छा या बुरा लगना कड़ुआ या मीठा लगना, गर्मी या सर्दी लगना, रिश्ते में चाचा या भाई लगना, दरबार, दुकान, प्रदर्शनी या बाजार लगना, रोजगार या ब्याह शादी में रुपए लगना, किसी काम में चित्त, ध्यान या मन लगना, नौकरी लगना चौकी या पहरा लगना, तलवार, थप्पड़ या मुक्का लगना ग्रहण लगना, दर लगना, सेंध लगना, समाधि लगना, बाजी या दाव लगना, किसी वाक्य या श्लोक का अर्थ लगना, हिसाब लगना, कर, महसूल या घुस लगना । आदि आदि । मन या शरीर पर किसी प्रकार का प्रभाव उत्पन्न होना या पड़ना भी लगना कहलाता है जैसे—किसी की बात लगना । किसी कार्य के प्रारम्भ अथवा किसी किसी बात के आरोप के सम्बन्ध में भी लगना शब्द का प्रयोग होता है—काम में हाथ लगना, किसी पर अपराध, दोष या पाप लगना । इसी प्रकार के और भी अनेक अवसरों पर इस क्रिया का प्रयोग या व्यवहार होता है ।

लगना' की व्युत्पत्ति अभी तक निश्चित नहीं हुई है । परंतु अर्थ की

'ज्ञान' पु० (सं०) मुख्यतः वह जानकारी परिचय या बोध है जो चेतन अवस्था मे इन्द्रियों के द्वारा हमे प्राप्त होता है। यह मन में होने वाली वह धारणा या भावना है जो चीजो को देखने और वातो को समझने पर उत्पन्न होती है इसके सिवा अनुभव, अध्ययन, छान-बीन, निरीक्षण प्रयोग आदि से भी हम जितनी नई वाते जानते हैं, उनसे हमारे ज्ञान-भण्डार की वृद्धि होती है। आगे चलकर इसका अर्थ और भी कई क्षेत्रो तथा प्रसंगो में पल्लवित और विकसित हुआ है। लोक-व्यवहार मे शरीर की उस चेतना-शक्ति को भी ज्ञान कहते हैं, जिसके अनुसार जीवो या प्राणियो का अपनी आवश्यकताओ और परिस्थितियो के अनुसार अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ होती हैं; जैसे—वनस्पतियो और पशु-पक्षियो को भी इतना ज्ञान होता है कि वे गरमी, सरदी और दिन-रात का ज्ञान करते हैं। इस प्रकार का ज्ञान सारे शरीर मे फैले हुए उस स्नायु-तन्त्र के द्वारा होता है जिसका केन्द्र मस्तिष्क या सिर में होता है। आध्यात्मिक और धार्मिक क्षेत्रो मे आत्मा और ईश्वर के स्वरूप और दोनो के पारस्परिक सम्वन्धो की ऐसी जानकारी या वोध को भी ज्ञान कहते हैं जिनसे हमारी दृष्टि मे सभी भौतिक और सासारिक चीजे या बातें विलकुल असार, तुच्छ और नश्वर जँचने लगती हैं। इस प्रकार का ज्ञान मनुष्य को आवागमन के वन्धनो से छुडाकर मुक्ति या मोक्ष दिलानेवाला माना जाता है। ऐसे ज्ञान को तत्व-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान भी कहते हैं।

'परिज्ञान' (पु०) स० का मुख्य अर्थ है—किसी वात का अच्छा, ठीक और पूरा ज्ञान। परन्तु आज-कल इसका अर्थ कुछ और विस्तृत हो गया है। किसी वात के सभी अंगो और पक्षो की वहुत सी वातो की जानकारी को भी 'परिज्ञान' कहते हैं; और वहुत सी वातो या विषयो की अच्छी जानकारी भी इसके अन्तर्गत आ जाती है। ऐसी जानकारी को लोक मे 'वहुज्ञता' भी कहते हैं।

'प्रज्ञान' पु० (स०) एक प्रकार से विलकुल नया शब्द कहा जा सकता है क्योकि मैंने यह रूप अंग्रेजी Know-how का भाव सूचित करने के लिए स्थिर किया है। यह मुख्य रूप से उस अच्छी और पूरी जानकारी या परिचय के लिए प्रयुक्त होना चाहिए जो हमे किसी प्रकार के प्राविधिक कार्य मे दक्ष होने पर प्राप्त होता है। इस प्रकार का ज्ञान किसी प्रविधि के सव अंगों और कामो को वहुत दिनो तक करते रहने और उनकी सभी क्रिया-विधियां तथा सचालन आदि का यथेष्ट अनुभव होने पर ही प्राप्त होता है। जिन्हे किसी प्रविधि का पूरा ज्ञान होता है वही दूसरो को उसकी शिक्षा देने के योग्य समझे जाते हैं; जैसे—भारत के अनेक प्राविधिज्ञ लोहे की ढलाई आदि का

सूचक होता है कि मनुष्य व्यय की झंझट नहीं बढाना चाहता, मन की शांति नष्ट नहीं होने देना चाहता, अथवा जान बूझकर किसी बात की उपेक्षा करता है, जैसे—अभी तक तो मैं उनके व्यवहार चुपचाप सहता चलता था, पर अब मुझसे नहीं सहा जाता। आशय यही होता है कि मैं जैसे तैसे दुर्व्यवहारों की उपेक्षा करता था, पर अब मुझसे और अधिक उपेक्षा करने की शक्ति नहीं रह गई है अथवा मैं किसी कारण से और अधिक सहना नहीं चाहता। इस प्रकार सहना कभी तो अपनी इच्छा पर और कभी अपने सामर्थ्य पर आश्रित होता है। अथवा कुछ अवस्थाओं में सहने के ऐसे ही कुछ और कारण भी होते या हो सकते हैं।

यदि हम उक्त सारे विवेचन का साराश थोड़े से शब्दों में बतलाना चाहें तो हम कह सकते हैं कि (क) मनुष्य कष्ट झेलता है तो अपने अध्यवसाय तथा धर्य के बल से, (ख) दुःख भोगता है तो अपनी असमर्थता या विवशता के कारण और (ग) अत्याचार या कष्ट सहता है तो अपनी उदारता, उपेक्षा, धीरता और शक्ति के आधार पर। यही इन तीनों के पारस्परिक अन्तरों का स्पष्ट रूप है। × ×

टाँग—स्त्री० [हिं०] दे० पाँव पर और टाँग।

टाँगना और लटकाना

Hang Suspend

ये दोनों क्रियाएँ ऐसे व्यापार की सूचक हैं जिसके द्वारा कोई चीज किसी ऊँची जगह पर ठहराकर रखने के लिए जड़ी, अटाई या लगाई जाती है। 'टाँगना' हिन्दी के 'टाँगना' और संस्कृत के 'टङ्कण' का ही विकृत रूप जान पड़ता है। जब हम कोई चीज किसी ऊँची जगह पर इस प्रकार अटकाते, फँसाते या बाँधते हैं कि उसका ऊपरी भाग तो वहीं टिका या ठहरा रहे और शेष भाग नीचे की ओर स्थिर रहे तो उसे 'टाँगना' कहते हैं, जैसे—खूँटी पर कपड़े टाँगना, दीवाल पर तस्वीरें टाँगना आदि। 'लटकाना' संस्कृत की लड़ धातु से सम्बद्ध है जिसके अर्थ हैं—निकालना फेंकना आदि। 'लटकाना' भी है तो बहुत कुछ वही क्रिया जो टाँगना' है फिर भी परिणाम या स्थिति के विचार से दोनों में कुछ सूक्ष्म अंतर है। 'टाँगना' में मुख्य भाव यह है कि टाँगी जानेवाली चीज किसी आधार पर स्थिर भाव से जमी या टिकी रहे। उस चीज के नीचेवाले अंश या भाग से इस क्रिया का कोई विशेष लगाव ध्यान में नहीं रखा जाता। परन्तु 'लटकाना' में मुख्य भाव यह होता है कि

लटकाई जानेवाली चीज का वहुत-सा निचला अंश या भाग कुछ या वहुत दूर तक अधर मे झूलता रहे। जहाँ 'टाँगना' मे टाँगी जानेवाली चीज का अधिकाश अपने आधार पर स्थिर रहता है, वहाँ 'लटकाना' मे उस चीज का केवल ऊपरी सिरा आधार से सम्बद्ध रहता है, और शेप अश उस आधार पर टिका या ठहरा हुआ नही रहता, वल्कि उसके सहारे पर रहकर भी उससे अलग या दूर हटा हुआ होता है; जैसे—कुएँ मे घड़ा या छत मे झाड और फानूस लटकाना। प्राचीन काल मे प्राण दंड पानेवाले अपराधी सूली पर टाँगे जाते थे, और आज-कल फाँसी पर लटकाए जाते है। इस प्रकार 'टाँगना' की तुलना मे 'लटकाना' ऐसे भाव का सूचक है जिसमे नीचेवाले विस्तार का अधिक ध्यान रहता है।

× ×

टिकना, ठहरना, थमना और रुकना

Stay Stop

हिन्दी की ये चारो क्रियाएँ किसी चलते या होते हुए काम या वात के क्रम, गति, प्रवाह आदि के थोडे या वहुत समय के लिए वद अथवा स्थगित हो जाने की वाचक हैं। इनमे से कुछ क्रियाओ का कुछ विशिष्ट अर्थो मे और कुछ विशिष्ट अवसरो पर एक दूसरो के स्थान पर प्रयोग होता हुआ भी देखा जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर टिकना और ठहरना तो एक वर्ग की क्रियाएँ हैं क्योकि ये किसी आधार या स्थान पर स्थित होने की सूचक हैं, और थमना तथा रुकना क्रियाएँ इस दृष्टि से दूसरे वर्ग मे आती हैं कि इनमे गति या प्रवाह के अस्थायी अथवा स्थायी रूप से वन्द होने या आगे न वढने का भाव प्रधान है।

व्युत्पत्तिक दृष्टि से टिकना का सम्वद्ध हिं० टेक से है जो किसी ऐसे आधार की सूचक है जिस पर कोई चीज स्थित रहती है और नीचे गिरने नही पाती। इसी टेक से स० क्रि० टेकना वनी है जिसका अ० रूप टिकना है। इसका प्राथमिक अर्थ है किसी चीज का ऐसे आधार पर स्थित रहना जो उसे नीचे आने या गिरने से रोकता हो; जैसे—यह दीवार इसी चाँड पर टिकी है, चाँड़ न हो तो दीवार गिर जाय। इससे और आगे वढने पर इसका दूसरा अर्थ होता है—कोई आधार या आश्रय मिल जाने पर आगे न वढना या न वढ सकना। नदी मे चलते समय जव पानी के नीचे कही रेत का कोई टीला आ जाता है और नाव की गति मे वाधक होता है तव कहा जाता है—नाव टिक गई। आशय यही होता है कि इसे कोई ऐसा आधार या आश्रय मिल

गया है जो इसे आगे नहीं बढ़ने देता। इससे भी और आगे बढ़ने पर इसका तीसरा अर्थ होता है—कोई सुभीते का स्थान मिलने पर थोड़े-बहुत समय के लिए वहीं निवास अथवा विश्राम करना। इसी लिए कहते है—(क) गाड़ी रात को बहुत देर से आई थी इस लिए हम सवेरे तक वहीं टिक गए, और (ख) आपका नया मकान मुझे नहीं मालूम था इस लिए कल धर्मशाला में ही मुझे टिक जाना पड़ा। *आज मकान का पता लगाकर आपके यहाँ आ गया हूँ।* प्रायः बच्चों से कहा जाता है—तुम टिक कर बैठना जानते ही नहीं। *आशय यही होता है कि तुम चंचलतापूर्वक इधर उधर घूमते रहते हो।* 'कहीं टिक कर रहना' का अर्थ होता है—कुछ समय तक कहीं निवास करना, यथा—इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत पथिक का टिक रहना। —प्रसाद।

'ठहरना' का मौलिक सम्बन्ध सं० स्था स्थिर आदि से है जिसका अर्थ है—कुछ समय तक एक ही अवस्था में बने या स्थिर रहना। यों तो हिंदी में ठहरना के अनेक अर्थ हैं पर इसका पहला और मूल अर्थ है—चलते चलते बीच में गति से रहित होकर किसी स्थान पर स्थित होना, जैसे—(क) यात्री का विश्राम करने के लिए मार्ग में कहीं ठहरना। (ख) गाड़ी (या सवारी) का कहीं ठहरना। यह क्रिया मुख्यतः किसी आशय या उद्देश्य से अथवा नियत या नियमित रूप से कुछ समय के लिए किसी स्थान पर स्थिर या स्थित होने और आगे न बढ़ने की सूचक होती है। आगे चलकर यह विश्राम की इच्छा से स्थित होने की भी सूचक होती है जैसे—पैदल यात्री दूर की यात्रा के समय बीच में कुछ स्थानों पर ठहर जाते हैं। इस अर्थ में यह क्रिया बहुत कुछ 'टिकना' की समानार्थक होती है। कुछ अवसरों पर किसी प्रकार की प्रतीक्षा में भी हमें *ठहरना पड़ता है, जैसे—उनके आने तक मुझे यहीं* ठहरना पड़ेगा। यह किसी गिरती हुई चीज के बीच में ही स्थित हो जाने की भी सूचक है। इसके सिवा इसके कुछ और अर्थ भी हैं परंतु उनका सम्बन्ध हमारे प्रस्तुत प्रसंग से प्रायः नहीं के समान है।

थमना' सं० स्तंभन से व्युत्पन्न है, और इसी लिए इसमें मुख्यतः किसी गति या प्रवाह के या तो कुछ समय तक बंद होने अथवा मंद पड़ने का भाव प्रधान है। हम कहते हैं—पानी अब थम गया है। वर्षा के प्रसंग में इसका अर्थ होता है—बूँदों या धीमा पड़ना या बन्द हो जाना, और नदियों के प्रवाह आदि के सम्बन्ध में इसका अर्थ होता है—प्रस्तुत स्थान पर स्थिर हो जाना और अग्रसर बन्द हो जाना। उर्दू का एक प्रसिद्ध शेर है—

थमते थमते थमेंगे आँसू
रोना है, कुछ हँसी नही है

यहाँ भी प्रवाह वन्द होने या मन्द पड़ने का भाव प्रधान है। इस अर्थ के विचार से यह वहुत कुछ 'ठहरना' के समान है। अपने एक परवर्ती अर्थ मे यह वहुत-कुछ टिकना की तरह भी प्रयुक्त होता है; जैसे—यह दीवार इसी चाँड पर थमी है, अर्थात् यह चाँड़ ही दीवार को गिरने से रोके हुए है। दूसरे परवर्ती अर्थ मे इसका प्रयोग वहुत कुछ ठहरना की तरह भी होता है; जैसे—अभी जरा थमे रहो, वह आ जायँ तव जाना।

'रुकना' का व्युत्पत्तिक सम्वन्ध स० रोध से है, और इससे रुकावट, रोक आदि भाव वाचक सज्ञाएँ भी वनती हैं। यह क्रिया मुख्यतः इस वात की सूचक है कि किसी चलते या होते हुए काम के रास्ते मे कोई ऐसी अड़चन या वाधा आ पडी है जिससे वह काम थोडे या वहुत समय के लिए वन्द या स्थगित हो गया है। आती हुई रेलगाडी सिकन्दरे के पास इसलिए रुक जाती है कि उसे रास्ता साफ होने का संकेत नही मिलता। फिर ऐसा सकेत मिलने पर वह आगे वढकर स्टेशन पर ठहरती है जो उसके ठहरने का नियत और नियमित स्थान है। हम कहते हैं—हम तो कलकत्ते से सीधे यहाँ आना चाहते थे पर पटने मे हमे एक दिन के लिए रुकना पडा। आशय यही होता है कि वीच मे कोई ऐसी वाधक वात आ गई जिसने हमे आगे नही वढने दिया।

यो साधारण वोल-चाल मे ये चारो क्रियाएँ एक दूसरी की जगह प्रयुक्त होती हुई देखी जाती हैं परन्तु हमारे मत से इनका ठीक-ठीक प्रयोग ऐसे ही अर्थों मे होना चाहिए, जिन्हे पुष्ट व्युत्पत्तिक आधार प्राप्त हो। × ×

टोह—स्त्री० [हिं० टोहना] दे० 'थाह और टोह'।

ठंढ और ठंढक*
Cold Cool

'हिन्दी शव्द-सागर' मे ठढा को सस्कृत स्तव्ध, प्राकृत वद्ध और टढ्ढ से उत्पन्न माना है जो वहुत कुछ विचारणीय है। जो हो 'ठंढ' मे उसी प्रकार

* स्वामी निगमानन्द जी का मत यह है कि जव किसी वर्ग का पहला अक्षर महाप्राण हो तव उसके तुरन्त वाद उसी वर्ग का दूसरा महाप्राण वर्ण नह आना चाहिए, क्योकि ऐसा होने पर उच्चारण मे कठिनता होती है। उन्होने कई कोशो के वहुत से शव्दो का अच्छी तरह निरीक्षण करके यह भी

अल्पार्थक प्रत्यय 'क' लगने से ठढक शब्द बना है, जिस प्रकार मानव म 'क' प्रत्यय लगने से माणवक शब्द बना है। अर्थात् ठढ का कम तीव्र और हल्का रूप ही ठढक है। जाडे के दिनो म शीतल वायु के सयोग से ठढ पडती है जो अप्रिय भी होती है और कष्टदायक भी। जहाँ तक हो सकता है मनुष्य ठढक से बचना चाहता है। सध्या समय खुली जगह में बैठ रहने पर यदि अधिक ठढ लगे तो मनुष्य कमरे म या किसी छायादार जगह जा बैठता है अथवा कपडे ओढ़ या पहन लेता है। परन्तु इसके विपरीत 'ठढक' हल्की तो होती ही है प्रिय और सुखद भी होती है। जब बहुत अधिक गरमी पडने के बाद कुछ वर्षा हो जाती है तो कहा जाता है– चलो, कुछ ठढक तो आई। बद कमरे म जब अधिक गरमी लगन लगती है तब कहा जाता है–'चलो, बाहर चलकर बैठें, वहाँ ठढक होगी। शरीर मे किसी प्रकार की जलन होने पर जब कोई उचित उपचार किया जाता है तो जलन कम हो जाती है। तब भी कहा जाता है—'अब कुछ ठढक पडी है।' साराश यह कि ठढ प्राय अनिष्ट और ठढक, प्राय इष्ट होती है। × ×

बतलाया है कि हिन्दी मे ऐसे और शब्द हैं ही नही। इसीलिए उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि एक ही वग के पहले महाप्राण के बाद उसी वग का दूसरा महाप्राण वण नही रखना चाहिए और इसी आधार पर उनका यह भी कहना है कि हिन्दी म 'ठड 'ठडक और 'ठडा' सरीखे रूप ही ठीक हैं। 'ठढ', ठढक और ठढा रूप ठीक नही है। परन्तु मेरी समझ में इस सम्बन्ध म दो बातें आती हैं। एक तो यह कि हम म प्रातीय उच्चारण का तत्व निहित है और दूसरे यह कि ठढ और ठढक को अपवाद भी मान सकते हैं। पश्चिम म लोग साधारणत 'ठड, 'ठडक और ठडा' ही बोलते हैं और उदू वाले भी ऐसा ही लिखते हैं। बल्कि वे तो धोखा' को 'धोका' और 'भूख को भूक बोलते और लिखते हैं। उनके लिए एक कारण यह भी हो सकता है कि उदू लिपि मे महाप्राण का उच्चारण सूचित करन के लिए 'दो चश्मी हे लगाती पडती है जो उक्त शब्दों के लेखन में बाधक होती है। परतु पूरब म किसी वग के पहले महाप्राण के बाद दूसरे महाप्राण का प्रयोग प्राय देखने और सुनन में आता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार म सब जगह ठढ ठढक' और 'ठढा तो बोलते ही हैं 'ढोढ़ी भी बोलते हैं। इधर मैंने किसी को 'ठोडी' बोलते नहा सुना। इसी लिए मानक कोश मे मैंने विवरण ठढ, ठढक, ठढा, ठढाई आदि रूपो के अतगत ही दिये हैं। और यों देखा जाए तो ठढाई की तुलना मे 'ठडाई का उच्चारण अधिक कठिन और दुष्कर है।

ठंढक—स्त्री० दे० 'ठंढ और ठढक' ।

ठट्ठा—पु० [हिं०] दे० 'उपहास, खिल्ली, ठट्ठा और ठठोली' ।

ठठोली—स्त्री० [हिं०] दे० 'उपहास, खिल्ली, ठट्ठा और ठठोली' ।

ठहरना—अ० [हिं०] दे० 'टिकना, ठहरना, थमना और रुकना' ।

ठिठोली—स्त्री० [हिं०] दे० 'उपहास, खिल्ली, ठट्ठा और ठिठोली' ।

ठीक

विशेषण, क्रिया-विशेषण और सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त होनेवाला हिन्दी का यह छोटा सा शब्द बहुत अधिक प्रचलित है । सभी लोग बोलचाल मे नित्य इसका बहुत अधिक प्रयोग तो करते हैं परन्तु वह प्रयोग केवल अभ्यासवश और देखादेखी होता है और कभी कोई उसके आर्थी भेदो, वर्गों या विवक्षाओं पर कोई विचार नही करता । इसकी व्युत्पत्ति भी अनुमान से 'ठिकाना' शब्द से मानी गई है जो सभवतः हिन्दी के 'टिकना' या 'टिकान' से और सस्कृत के 'स्था' से सम्बद्ध है ।

'हिन्दी शब्द सागर' मे इसके विशेषण रूप की इतनी ही व्याख्या की गई है :—(क) जैसा हो वैसा; (ख) जैसा होना चाहिए वैसा; (ग) जिसमे भूल या अशुद्धि न हो; और (घ) जो बिगड़ा न हो, अच्छी दशा में हो। बाकी सारा काम यथार्थ, सच, प्रामाणिक, उपयुक्त, अच्छा, भला, उचित, मुनासिब योग्य, शुद्ध, सही, दुरुस्त आदि सरीखे पर्यायो से ही चलाया गया है और इन पर्यायो का वर्गीकरण भी युक्तिसगत नही है ।

जब तक इसकी और कोई व्युत्पत्ति निश्चित न हो और इसे 'ठिकाना' से ही व्युत्पन्न माना जाय तब तक इसकी पहली व्याख्या इस रूप मे होनी चाहिए ।—जो अपने ठिकाने अर्थात् उचित या उपयुक्त स्थान पर हो; जैसे—यह तस्वीर अपनी ठीक जगह पर है ।

परन्तु आगे चलकर यह शब्द अनेक प्रकार की दशाएँ, स्थितियाँ आदि सूचित करने लगता है और अनेक अवसरो पर अनेक प्रकार से प्रयुक्त होने लगता है । हमारी समझ मे उन सब प्रयोगो का ध्यान रखते हुए इसके अर्थों का विभाजन और व्याख्या निम्नलिखित क्रम तथा प्रकार से होनी चाहिए :—

१. जो अपने नियत स्थान पर अच्छी या पूरी तरह से आता, बैठता या लगता हो; जैसे—यह जूता तुम्हारे पैर मे ठीक होगा ।

२ जो क्रम, परम्परा, व्यवस्था आदि के विचार से वैसा ही हो जैसा होना चाहिए, जैसे—यह पुस्तक पाँचवें दरजे के लडकों के लिए ठीक है।

३ जो नियम, नीति, न्याय, प्रकृति, प्रथा आदि की दृष्टि से उचित, उपयुक्त या संगत हो, जैसा साधारणत होता हो वैसा हो, जैसे—ठीक आचरण या व्यवहार।

४ जो तर्क की दृष्टि से यथार्थ अथवा वास्तविकता की दृष्टि से यथा-तथ्य हो, जो मिथ्या न हो, जैसे—वहाँ से अभी तक ठीक विवरण (या समाचार) नहीं आया है।

५ जो बहुत कुछ या सब तरह से अनुकूल, सुगम अथवा सुभीते का हो, जैसे—(क) काम करने का यही ठीक ढंग है। (ख) शहर जाने का यही ठीक रास्ता है।

६ जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धि, चूक या भूल न हो, शुद्ध, सही, जैसे—(क) इन प्रश्नों के हमें ठीक उत्तर मिलने चाहिए। (ख) यह हिसाब गलत है, इसे ठीक करो।

७ जिसमें गुण, प्रयोग योग्यता आदि के विचार से कोई कोर कसर, बुराई या विकार न हो जैसे—(क) अब यह मशीन बिलकुल ठीक हो गई है। (ख) देखने में तो यह आदमी हर तरह से ठीक जान पडता है। (ग) इतनी ठोकरें खाने के बाद तो अब उसे ठीक हो जाना चाहिए।

८ जो स्वास्थ्य के विचार से अच्छी तथा प्रसम अवस्था में हो जैसे—यही दवा खाते चलो इससे तुम बिलकुल ठीक हो जाओगे।

९ जो औचित्य निश्चय, मानक आदि के बिलकुल अनुरूप हो कुछ भी आगे-पीछे या घट-बढ़कर न हो, जैसे—(क) गाड़ी ठीक चार बजे जाती है। (ख) इस आलमारी का ठीक दाम ५०) रु० है।

१० नियत, निश्चित या स्थिर किया हुआ, ठहराया या पक्का किया हुआ जैसे—(क) वे लड़की का ब्याह ठीक करने गये हैं। (ख) किराए के लिए एक मोटर ठीक कर लो। (ग) इस काम के लिए हमने एक आदमी ठीक कर लिया है।

उक्त अर्थों में उर्दू का दखादखी अरबी का 'सही' विशेषण भी प्राय प्रयुक्त होता है।

क्रिया-विशेषण रूप मे यह शब्द मुख्यतः दो अर्थों मे प्रयुक्त होता है। पहला अर्थ होता है—उचित अथवा संतोषजनक प्रकार या रूप से; जैसे—अभी तक तो यह घडी ठीक ही चल रही है। इसका दूसरा अर्थ होता है—अवधि, सीमा आदि के विचार से नियत अवकाश, समय आदि पर; जैसे—(क) ठीक साल भर वाद वह वापस आया। (ख) यह कपड़ा नाप मे ठीक दस गज है। कुछ अवसरों पर इसके साथ 'से' विभक्ति भी लगा देते हैं; जैसे—ठीक से सब काम करो। आशय होता है-ठीक ढग, तरह या प्रकार से।

संज्ञा रूप मे बोलचाल मे इसका प्रयोग मुख्यतः दो अर्थो में देखने मे आता है। एक तो-किसी काम या वात के सम्बन्ध मे होनेवाला निर्णय, निश्चय या स्थिरता; जैसे-(क) पहले यहाँ रहने न रहने का ठीक कर लो, तव और वातें सोचना, (ख) उनके यहाँ आने न आने का कोई ठीक नही है। इसका दूसरा अर्थ होता है-किसी कारण या वात के सम्वन्ध मे होनेवाली प्रामाणिकता या विश्वासनीयता, जैसे-उसकी वातो का कोई ठीक नही है। इसके सिवा महाजनी वोलचाल मे तीसरा अर्थ भी होता है-अंको, सख्याओ आदि का जोड़ या योग; जैसे-इन सब रकमो का ठीक लगा दो। × ×

डर—पु० [सं० दर] दे० 'भय (भीति), डर, भीषिका और आतक'।

डरपोक—वि० [हि० डरना] दे० 'कायर, भीरू और डरपोक'।

ढारस—पुं० [पु०]=दे० 'आश्वासन, ढारस, तसल्ली, दिलासा और सात्वना'।

तन्त्रिका—स्त्री० [सं०]=स्नायु, दे० 'धमनी, नाडी, शिरा और स्नायु'।

तकनीक—स्त्री० दे० 'प्रविधि और परिज्ञान'।

तकनीकी—वि० दे० 'प्रविधि और परिज्ञान'।

तकलीफ—स्त्री० [अ० तकलीफ] दे० 'कष्ट और क्लेश'।

तजरुबा—पुं० [अ०] दे० 'अनुभव और अनुभूति'।

तखमीना—पु० [अ० तख्मीनः] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन'।

तट और तीर

Shore — Bank

ये दोनो शब्द झीलो, नदियो, समुद्रो आदि के छोर या सिरे पर की भूमि और उसके विस्तार के वाचक हैं। साधारणतः लोक मे ये दोनों शब्द समा-

नायक ही माने जाते हैं, परन्तु दोनों म उसी प्रकार का सूक्ष्म अन्तर है जिस प्रकार का अन्तर अंग्रेजी के 'शोर' (Shore) और 'बक' (Bank) म है। तट' ठीक वह स्थान है जहाँ जल के विस्तार का छोर या सिरा समाप्त होता है और जहाँ स भूमि का विस्तार आरम्भ होता है। अर्थात् स्थल का जो अश किसी जलीय विस्तार के बहुत पास होता है वही तट है। परन्तु 'तीर' का अथ तट की अपेक्षा कुछ और अधिक विस्तृत या व्यापक होता है। तट की तुलना मे तीर कुछ अधिक चोडा और लम्बा होता है। तुलसी ने रामचरितमानस म कहा है कि हनुमान जी जब सीता को ढूढने चले, तब एक गुफा मे एक तपस्विनी नारी मिली। उसकी कृपा से—

नयन मूँदि पुनि देखहि बीरा।
ठाढे सकल सिंधु के तीरा॥

वहाँ पहुँचने पर जब वानरों को चिन्ता हुई, तब थोड़ी सी बातचीत के बाद ही—

अस कहि लवन सिंधु तट जाई।
बठे कपि सब दरभ डसाई॥

इन उद्धरणों से तट' और 'तीर' का उक्त अतर स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दी मे 'तट' और 'तीर' दोनों के लिए अ० का किनारा शब्द प्राय समान रूप से देखने म आता है। × ×

तटस्थ—वि० [स०] दे० उदासीन तटस्थ और निष्पक्ष'।
तत्व ज्ञान—पु० [स०] दे० ज्ञान परिज्ञान और प्रज्ञान'।
तबीयत—स्त्री० [अ०] दे० 'प्रकृति, शील, स्वभाव और मिजाज'।

तरग, लहर और वीचि
Wave Billow Ripple

ये तीनो शब्द ऐसे विक्षोभो के सूचक हैं जो हवा चलने पर बडे जलाशयो, विशेषत नदिया, खाडियों, समुद्रो आदि के जल के ऊपरी तल पर उत्पन्न होते हैं। साधारणत लोक व्यवहार मे तरग और लहर (स० लहरि, लहरी) मे कोई विशेष अन्तर नही माना जाता। परन्तु कुछ कोशकारो और साहित्यकारो का मत है कि बहुत तेज हवा चलने पर समुद्रो के ऊपरी पानी के जो अश बहुत ऊँचे ऊचे उठकर आगे बढते, किनारो चट्टानों पहाडो आदि से टकराते और उन्हें तोडते फोडते हैं उन्ही को लहरें कहते हैं। तरगें वे हैं

जो साधारण हवा चलने पर उक्त रूप में नदियो, वडी झीलो आदि मे उठती हैं। आज-कल तरग का प्रयोग जल के सिवा इसी प्रकार की कुछ और वस्तुओ की लहराती हुई गति के सम्वन्ध मे होने लगा है; जैसे—ध्वनि-तरग, प्रकाश-तरग, वायु-तरग आदि। 'वीचि' इस तरग का भी वह वहुत छोटा, धीमा और हलका रूप है जो वायु के वहुत ही मद प्रवाह के कारण तालावों; नदियों आदि के ऊपरी तल मे दिखाई पडता है।* × ×

तर्कणावाद—पु० [सं०] दे० 'तर्क सगतिवाद'।

तर्क-संगत और युक्ति-संगत

Rational Resonable

इस वर्ग के विशेपण ऐसे व्यक्तियो, कार्गों, मतो, विचारों आदि के संवध मे प्रयुक्त होते हैं जो या तो तर्क-वितर्क करने पर ठीक सिद्ध होते या हो सकते हो अथवा जो वुद्धि या युक्ति के आधार पर ठीक और मान्य सिद्ध होते हैं अथवा सिद्ध किए जा सकते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि तर्क करने और युक्ति लगाने की योग्यता या शक्ति मनुष्यो मे ही होती है; अन्यान्य जीव-जन्तुओ, पशु-पक्षियो आदि मे नही होती।

'तर्क-संगत' वि० (सं०) ऐसी वातें कहलाती हैं जो तर्क-वितर्क के उपरात ठीक और सर्वमान्य निष्कर्ष के रूप मे निकलती हैं और या तो मनुष्य का ज्ञान वढ़ाती हैं या अपने पुराने और भ्रामक विचार छोड़ने के लिए विवश करती हैं। ऐसी वातो से कोरी काल्पनिक अथवा भावुकतापूर्ण वातो और विचारो का पूरी तरह से खडन और परिहार होता है। ऐसी वातें न्याय, वुद्धि, समता आदि के विचार से खरी भी होती हैं और सवके लिए सन्तोष-प्रद भी। जव इस विशेपण का प्रयोग व्यक्तियो के सम्वन्ध मे होता है, तव आशग यही होता है कि उसमे आचरण, व्यवहार आदि ऐसे होते हैं

---

* जिस प्रकार हमारे यहाँ उक्त प्रकार के तीनो जलीय विक्षोभो मे कोई विशेष अन्तर नही माना जाता उसी प्रकार अग्रेजी में प्राय: वेव (Wave) शब्द का उक्त तीनो अर्थो मे प्रचलन देखने में आता है। फिर भी आप्टे और मानियर विलियम्स के सस्कृत-अग्रेजी कोशो में इन तीनो शब्दो का अंग्रेजी समानार्थक Wave तो दिया ही है; परन्तु लहरि के आगे उसके साथ 'विल्लो' (Billow) भी दिया गया है ; और 'वीचि' के आगे 'रिप्पल' (Ripple) भी मिलता है। इससे भी उक्त विश्लेपण का समर्थन होता है।

जिनके सम्बन्ध में न तो कभी कोई आपत्ति ही की जा सकती है और न उंगली ही उठाई जा सकती है।

'युक्ति संगत' वि० [सं०] वस्तुतः तर्क संगत की तुलना में विवक्षा के विचार से बहुत कुछ हल्का जान पड़ता है। इसका प्रयोग प्रायः ऐसी ही बातों और व्यक्तियों के सम्बन्ध में होता है जिनके पक्ष या समर्थन में कोई अच्छी युक्ति उपस्थित की जा सकती है, अर्थात् यह कहा जा सकता है कि अमुक कारणों या हेतुओं अथवा अमुक युक्तियों के आधार पर इस प्रकार *का आचरण या व्यवहार करना ठीक और समयानुकूल होगा।* इस प्रकार की बातों का उपयोग भावी मार्ग दर्शन सुरक्षा आदि के विचार से किए जाने वाले कामों और बातों के सम्बन्ध में होता है। बच्चों को नैतिक शिक्षाएं देने के लिए प्रायः कल्पित कथाएं या कहानियाँ सुनाई जाती हैं, परन्तु वे वस्तुतः युक्ति संगत नहीं होती क्योंकि अधिक समझदार बच्चे उसके सम्बन्ध में यह युक्ति लगाते हैं कि एक पशु या पक्षी न तो दूसरे पशु या पक्षी को कोई बात बतला या समझा सकता है और न दूसरे पशु या पक्षी उसे समझकर उसके अनुसार आचरण या व्यवहार ही कर सकता है। हाँ जब कोई व्यक्ति कोई बात कहता या व्यवहार करता है तब दूसरा समझदार आदमी यह अवश्य जान या समझ सकता है कि वह बात या व्यवहार कहाँ तक युक्ति-संगत अर्थात् कहाँ तक उचित और ग्राह्य है।

इसी लिए कहा जाता है—सभा समाजों आदि में समझदार आदमियों को सदा युक्ति-संगत बातें ही कहनी चाहिए कभी कोई ऊट पटांग या बे-सिर पैर की बात नहीं कहनी चाहिए। × ×

तर्क-संगतिवाद

Rationalism

'तर्क-संगतिवाद' पुं० [सं०] मेरी समझ में अंग्रेजी के (Rationalism) के लिए सबसे अधिक उपयुक्त और ठीक बैठनेवाला पद जान पड़ता है। मेरे देखने में अब तक इसके लिए तर्कवाद, तर्कणावाद, बुद्धिवाद, युक्तिवाद आदि कई पद इधर उधर में आए हैं परन्तु आशय और विवक्षा के विचार से तर्क-संगतिवाद इनके स्थान पर सबसे अच्छा होगा।

वस्तुतः यह आधुनिक और पाश्चात्य दर्शन शास्त्र का एक प्रचलित और प्रसिद्ध सिद्धान्त है। इसमें यह माना जाता है कि ज्ञान की प्राप्ति मुख्यतः तर्क और विचार के द्वारा ही होती है। केवल इंद्रियों के द्वारा जानी या

देखी हुई बाते सदा ठीक नही होती और हमे भ्रम मे रख सकती हैं। अपने और विकसित अर्थ मे इसका प्रयोग धार्मिक, पौराणिक आदि मतो और स्थापनाओं तथा परपरागत उपाख्यानो, दन्त-कथाओ, रीति रिवाजो आदि के त्याग के भी सम्बन्ध भी मे होता है। प्रायः सभी जातियो और देशो के प्राचीन ग्रन्थो आदि मे बहुत सी ऐसी बाते मिलती हैं जो हमे विशुद्ध कल्पित और मन-गढन्त जान पड़ती है। फिर भी बहुत से अन्ध-विश्वासी लोग इन्हे परम मान्य समझते ही है। इस वाद मे यह प्रतिपादित किया जाता है कि ऐसी बाते बिना अच्छी तरह सोचे-समझे और तर्क की कसौटी पर बिना कसे कभी ग्राह्य या मान्य नही होनी चाहिएँ। मनुष्य को सदा ऐसी बाते ही ठीक माननी चाहिएँ जो हर तरह से तर्क-संगत और वास्तविक जान पड़े।

कोई बात अलौकिक और दैवी शक्ति के प्रभाव से युक्त समझकर ही नही मान ली जानी चाहिए। इस वाद का सारा आधार भौतिक या लौकिक ही होता है, लोकोत्तरिक नही। × ×

तलाश—स्त्री० दे० 'खोज, अनुसन्धान, अन्वेषण और शोध'।

तलाशी—स्त्री० [स०] दे० 'खोज, अनुसन्धान, अन्वेषण और शोध'।

तसल्ली—स्त्री० [फा०] दे० 'आश्वासना, ढारस, तसल्ली दिलासा और सात्वना'।

तहलका—[अ० तहल्लकः] दे० 'हलचल, खलबली, तहलका, सनसनी और हडकंप'।

ताक—स्त्री० [दि० ताकना] दे० 'घात और ताक'।

ताकत—स्त्री० [अ० तांकत]=शक्ति, दे० 'बल, शक्ति और उर्जा'।

ताकना—स० [हि०] दे० 'देखना, घूरना, झाँकना, ताकना, निरखना और निहारना'।

ताज्जुब—पु० [अ० तअज्जुब] दे० 'आश्चर्य, अचम्भा, विस्मय और कुतूहल'।

ताना—पु० [अ०] दे० 'व्यग्य, कटाक्ष (छीटा), चुटकी, ताना और चोली'।

ताप, परिताप, पश्चात्ताप, मनस्ताप और संताप

Sorrow Remorse Repentance Anguish

'ताप' का प्राथमिक अर्थ है—गरमी; और परवर्ती अर्थ है—गरमी के कारण होनेवाली कष्टप्रद अनुभूति या जलन। इसी आधार पर यह ज्वर या बुखार का भी वाचक हो गया है। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे ताप सभी प्रकार

के मानसिक तथा शारीरिक कष्टों, दु खो, वेदनाओ आदि का सूचक और समूह-वाचक शब्द है। हमारे यहाँ आध्यात्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्रो मे ताप के ये तीन प्रकार या भेद कहे गये है—आध्यात्मिक आधिदविक और आधिभौतिक। आध्यात्मिक ताप के अ तगत सभी प्रकार क मानसिक और शारीरिक कष्ट तथा दु ख आते हैं। क्रोध, लोभ आदि मानसिक कष्ट भी और रोग, व्याधि आदि शारीरिक कष्ट भी आध्यात्मिक ताप क अ तगत कहे गये हैं। आधिदविक ताप के अ तगत वे कष्ट आते हैं जो हमे दविक अथवा प्राकृतिक शक्तियो के द्वारा प्राप्त होते हैं जसे—अग्नि काड, अति वृष्टि अनावृष्टि, आँधी, भूकम्प, वज्रपात आदि के कारण होनेवाले कष्ट या दु ख। आधिभौतिक ताप मे उन कष्टो या दु खो की गणना होती है जो हमे चीतो शेरो साँपो आदि पशुओं अथवा अन्य प्रकार के कीडो आदि के द्वारा प्राप्त होते हैं। इन्हे लोक मे क्रमात् दहिक, दविक और भौतिक ताप भी कहते हैं, यथा—दहिक, दविक भौतिक तापा। रामराज काहुहि नहिं व्यापा ॥—तुलसी।

परिताप' का प्राथमिक अथ भी है तो बहुत कुछ वही जो ऊपर 'ताप' का बतलाया गया है, पर तु लोक व्यवहार म यह प्राय ऐसे साधारण या हल्के दु ख का वाचक है जो मनुष्य को चिंतित करता है। इस दृष्टि से यह साधारण खेद का कुछ बढा हुआ रूप है यथा—उठहु राम भजहु शिव चापू। मेटहु तात जनक परितापू ॥—तुलसी।

'पश्चात्ताप का शब्दाथ है—पीछे से होनेवाला ताप या दु ख। परन्तु व्यवहारिक क्षेत्र मे इसका अथ कुछ और विकसित हो गया है। जब हम कोई अनुचित या अनुपयुक्त काम कर बठते हैं अथवा किसी अच्छे अवसर से लाभ उठाने मे चूक जाते हैं तब बाद मे सोचने या समझने पर हमार मन म जो कष्टप्रद या दु खद अनुभूति होती है, वही हमारा पश्चात्ताप कहलाता है। सस्कृत का 'अनुताप इसका पर्याय और हिंदी का पछतावा इसी का विकृत रूप है।

'मनस्ताप' इसी 'पश्चात्ताप का वह बहुत तीव्र और बढा हुआ रूप है जिसकी हमारे मन पर बहुत गहरी और कुछ स्थायी छाप पडती है। अपने साधारण दोषो या भूलों के कारण तो हमे पश्चात्ताप ही होता है, परन्तु बहुत बडे दोषो या भूलों के फलस्वरूप हमे मनस्ताप होता है। जब हम कोई एसा बहुत बडा अपकम या अपराध करत हैं अथवा धार्मिक, नतिक आदि दृष्टियों से अपने आपको बहुत नीचे गिरा हुआ समझते हैं, अथवा ऐसे ही किसी और कारण से बहुत अधिक दु खी होते हैं तब हमारा वह दु ख मनस्ताप

कहलाता है। इसके फलस्वरूप हमारे आचरण, विचार या हृदय में बहुत कुछ शुभ परिवर्तन भी होता या हो सकता है। इसे हम मन को तपा कर उसका कलुष दूर करनेवाला ताप कह सकते हैं।*

'संताप' का मूल अर्थ है—बहुत अधिक ताप, और इसी आधार पर प्रस्तुत प्रसग मे यह मन मे होनेवाले बहुत अधिक कष्ट या दु:ख का वाचक है। इसका प्रयोग मुख्यत: लौकिक क्षेत्रो में ऐसे बहुत अधिक मानसिक दु:ख की अवस्था मे होता है जिसमे मनुष्य बराबर बहुत चिन्तित और विकल रहता है, और जिससे छुटकारा पाने का उसे कोई रास्ता नही मिलता। मान लीजिए कि किसी वृद्ध के घर मे कमानेवाले तो नही रह गए पर खानेवाले कई छोटे-छोटे बच्चे हैं। वह जैसे-तैसे स्वय तो सब कष्ट सह सकता है, पर उन छोटे-छोटे बच्चो का कष्ट न तो वह देख ही सकता है, और न दूर ही कर सकता है। इसी लिए वह कहता है—मैं तो इन बच्चों की दशा देखकर ही सताप से मरा जा रहा हूँ। किसी परम प्रिय वस्तु या व्यक्ति का सदा के लिए होनेवाला वियोग भी मनुष्य के सताप का कारण होता है। × ×

तारीफ—स्त्री० [अ० तअरीफ] दे० 'आशासा, अनुशसा, अभिशंसा और प्रशसा'।

ताल-मेल—पुं० (i) समन्वय, (ii) सामञ्जस्य, दे० 'सतुलन, समन्वय, और सामञ्जस्य'।

तालिका सारणी सूची और सूची-पत्र

तालिका	सारणी	सूची	सूची-पत्र
1. List	Table	1 Inventory	Catelogue
2. Inventory		2. List	

इस वर्ग के शब्द बहुत-सी चीजो, बातो, विषयो आदि की ऐसी नामावली के सूचक हैं जो किसी नियत या व्यवस्थित क्रम से जन-साधारण के उपयोग के लिए प्रस्तुत की जाती है। 'तालिका' और 'सूची' बहुत कुछ एक ही अर्थ या आशय व्यक्त करती है। तालिका चीजो की ऐसी नामावली को कहते हैं जिसमे मुख्यत: केवल नामो का उल्लेख होता है, उनके विषय मे कोई विशिष्ट विवरण या सूचना नही होती; जैसे—घर के कपडो,

* अंगरेजी मे इस वर्ग के दो मुख्य शब्द हैं—Remorse और Repentance. इनमें से Remorse तो निश्चित रूप से अनुताप या पश्चाताप है ही, इसी लिए मैंने 'मनस्ताप' को Repentance का समार्थक माना है।

वरतनो आदि की तालिका। इसम मुख्यत चीजो के नाम और उनकी सख्याएँ हा रहती हैं।

'सूची भी है तो वहुत कुछ वही जो तालिका है पर इसम वस्तुओ, व्यक्तियो आदि के नामो के साथ उनके सम्ब ध म थोडा वहुत परिचयात्मक विवरण भी होना या हो सकता है, जसे—पुस्तको की सूची म उनके कर्ताओ, प्रकाशको आदि के नाम और पत प्रकाशन का काल और मूल्य आदि भी दिये रहते हैं। इसी प्रकार व्यक्तियो के नामो के साथ उनकी जाति, वय व्यवसाय निवास स्थान आदि का भी उल्लेख होता है।

'सूची पत्र इसी सूची का कुछ विशद और विस्तृत रूप होता है। व्यावसायिक क्षेत्र मे इसे पुस्तक या पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित करके जन साधारण मे अपना विज्ञापन, करने के लिए बाँटा जाता है। सूची की अपेक्षा इसमे रहनेवाला विवरण कुछ अधिक विस्तृत भी होता या हो सकता है। उदाहरण के लिए पुस्तको के सूची पत्र म प्रत्येक पुस्तक के लेखक या सम्पादक का नाम पुस्तक के विषय का थोडा वहुत परिचय पृष्ठ सख्या सस्करण मूल्य आदि का भी उल्लेख रहता है। उक्त तीनो शब्दो के लिए अरबी का फेहरिस्त श द भी प्राय समार्थक के रूप म चलता है।

'सारणी भी है ता एक प्रकार की सूची ही पर उसका रूप अपेक्षया अधिक वज्ञानिक और व्यवस्थित होता है। इसमे प्राय कई छोटे छोटे स्तभ एक साथ रहते हैं जिनमे तुलनात्मक दृष्टि से अनेक प्रकार की उपयागी और ज्ञात य बाते आमने सामने इस लिए रहती हैं कि उनका साथ साथ अध्ययन और विवेचन हो सके। इसके स्तम्भो मे अक पद शब्द आदि भी होते या हो सकते हैं। यह ऐसे लागो के उपयोग के लिए होती है जो किसी विषय के मुख्य मुख्य तत्त्व या तथ्य सहज म और थोडे समय म जानना चाहते हो या बिना स्वय गणना, विश्लेषण आदि किये दूसरो के निकाले हुए निष्कर्ष पर पहुँचना चाहते हो। × ×

तालीम—स्त्री० [अ० तअलीम] दे० 'शिक्षण, शिक्षा और प्रशिक्षा।

तीर—पु० [स०] दे० 'तट और तीर।

तावान—पु० [फ़ा०]=प्रतिपूर्ति, दे० 'पूर्ति, अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति'।

तासीर—स्त्री० [अ०] दे० प्रकृति, शील स्वभाव और मिजाज।

तृष्णा—स्त्री० [स०] दे० वासना तृष्णा, लालसा और लिप्सा।

त्रेता—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

थमना—अ० [स० स्तम्भन] दे० टिकना, ठहराना, थमना और रुकना।

थाह और टोह

इस वर्ग के शब्दो का प्रयोग किसी अज्ञात, अदृश्य, गुप्त अथवा रहस्यमय बात या स्थिति का पता लगाने के लिए होता है। 'थाह' स० स्था से व्युत्पन्न जान पडता है। इसका पहला और मुख्य अर्थ है—जलाशय (झील, नदी, समुद्र आदि) मे पानी के नीचे की जमीन या तल। इसी आधार पर इसका विकसित अर्थ होता है—किसी चीज या बात की ऐसी अधिकता, गहराई, ज्ञान, महत्व आदि की चरम सीमा जिसका पता लगाने के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ता हो; जैसे—उनके धन (मन या विद्या) का थाह पाना सहज नही है। आशय यही होता है कि उसकी अधिकता या गहनता इतनी बढी चढी है कि पूरा ज्ञान प्राप्त करना बहुत कठिन है। इसके सिवा उक्त के आधार पर इसका एक और अर्थ है—वह ज्ञान या परिचय जो किसी चीज या बात की अधिकता, महत्व, रहस्य आदि के सम्बन्ध मे होता है; जैसे—वह कई बार मेरे मन की थाह लेने आये थे। अर्थात् वे यह जानने के लिए आए थे कि इस सम्बन्ध मे मेरे विचार क्या हैं। इसके साथ साधारणतः पाना, लगाना और लेना क्रियाओ का प्रयोग होता है।

'टोह' हिन्दी की टोहना क्रिया का भाव वाचक संज्ञा रूप है। टोहना का मुख्य अर्थ है—अन्धकार मे टटोलकर यह पता लगाना कि यहाँ क्या है, अथवा कौन-सी चीज कहाँ है। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे टोह का प्रयोग विरोधी या शत्रु की गुप्त और रहस्यमयी बातो का पता लगाने के सम्बन्ध मे होता है। उदाहरणार्थ—शत्रु देश की राजनीतिक, सैनिक आदि स्थितियो का पता लगाने के लिए वहाँ जासूस भेजे जाते हैं। जहाँ तक हो सकता है टोह या तो बहुत छिपकर या शत्रुओ की दृष्टि बचाकर ही ली जाती है। आज-कल जो हवाई-जहाज दूसरे देशो की सैनिक स्थिति की टोह लेने के लिए जाते हैं वे दूसरो की दृष्टि से बच तो सकते नही; फिर भी यदि शत्रुओं की दृष्टि उन पर पड़ ही जाय तो वे चटपट भाग निकलने का प्रयत्न करते हैं। इसके साथ मुख्यतः 'लेना' क्रिया का ही प्रयोग होता है। × ×

दबाव और दाब

Pressure Impression

साधारणतः यही समझा जाता है कि ये दोनों शब्द पूरी तरह से समानार्थक हैं। कदाचित् इसी लिए भारत सरकार की शब्दावली मे अं० के प्रेशर (Pressure) के लिए ये दोनो शब्द साथ-साथ दिए गए हैं। यों मूलतः

पर नियुक्त किया जाता है। ऐसे लोगों को भी अंगरेजी म 'विजिटर' ही कहते हैं। हमारी समझ मे दर्शाधिकारी का प्रयोग ऐसे ही मान्य व्यक्तियो के लिए होना चाहिए। × ×

दशक पजी—स्त्री० [स०] दे० 'दशक, दर्शपति और दर्शाधिकारी'।

दर्शन, विज्ञान और शास्त्र
Philosophy Science Science

हमारे यहाँ ये तीनों प्राचीन शब्द अनेक अर्थों मे प्रयुक्त होते आए हैं, जिनम से कुछ अर्थ बहुत अधिक प्रचलित रह चुके हैं और हमारी आध्यात्मिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक दृष्टियो से बहुत महत्व के हैं। परन्तु आज-कल ये तीनो शब्द कुछ नए अर्थों म प्रचलित होने लगे हैं। अत यहाँ इनके वास्तविक आशयो और स्वरूपो का स्पष्टीकरण किया जा रहा है।

'दर्शन' स० दृश धातु से बना है जिसका मूल अर्थ है—दिखाई देना या देखना। पर लोक व्यवहार मे दर्शन उस ज्ञान या बोध का वाचक है जो हमे आँखो से देखने पर प्राप्त होता है। परन्तु हिन्दी म इसका प्रयोग देवी देवताओ और आदरणीय तथा माननीय व्यक्तियों के सामने जाकर श्रद्धापूर्वक उनका साक्षात्कार करने के अर्थ म और बहुवचन रूप मे होता है जसे—(क) तीर्थों और देव मन्दरो मे लाग देवताओ के दर्शनो के लिए जाते हैं। और (ख) मैं कई दिना से आपके दर्शनो के लिए आने का विचार कर रहा था। परन्तु हमारे यहाँ इसका प्रयोग मुख्य रूप से ऐसे व्यवस्थित और शास्त्रीय विचारो के लिए होता है जिनमे आत्मा, परमात्मा और सृष्टि के पदार्थों आदि के सम्बन्ध मे तात्त्विक दृष्टि से और गहन विवेचन हुआ हो। इसमे किसी विशिष्ट और महत्वपूर्ण तत्व की वास्तविकता प्रकृति और स्वरूप जानने का प्रयत्न होता है। हमारे यहाँ वदिक काल से ही इस बात का विचार होने लगा था कि इस सृष्टि का मूल कारण क्या है, और इसकी रचना किन कारणो और तत्वो से किस प्रकार हुई है। उपनिषद् काल मे इस प्रकार का विवेचन और भी अधिक विकसित हुआ। फिर आगे चलकर हमारे यहाँ साख्य, योग, वशेषिक, न्याय, मीमासा और वेदात नामक ६ प्रसिद्ध दर्शनों की प्रस्थापना और रचना हुई। इसम से साख्य मे सृष्टि की उत्पत्ति और विकास पर विचार किया गया है और उसका मूल कारण ईश्वर को नहीं बल्कि प्रकृति को माना गया है। योग म ईश्वर या परमात्मा की सत्ता मानकर अपनी आत्मा को उसके साथ मिलाने या उसम लीन करने के उपाय या विधान बतलाये गये हैं। न्याय दर्शन मुख्यत तर्कशास्त्र का मूल आधार है। वशेषिक म द्रव्यो या पदार्थों के

गुणो का विवेचन है। न्याय और वैशेषिक दोनों मे सृष्टि की उत्पत्ति परमाणुओ के योग्य से मानी गई है। मीमासा मे मुख्यत: वैदिक कर्म-काड का विवेचन है। वेदांत मे ब्रह्म को ही इस सृष्टि का सर्वस्व माना गया है और सब कुछ उसी का अश तथा रूपांतर मात्र सिद्ध किया गया है। इनके सिवा हमारे यहाँ चारवाक, जैन, बौद्ध, पाशुपत, शैव आदि अनेक दर्शनो की भी रचना हुई है।

साराश यह कि दर्शन वह विज्ञान या शास्त्र है जिसमे मनुष्यो को होनेवाले ज्ञान या बोध, सब तत्वो या पदार्थो के मूल, आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, विश्व, सृष्टि आदि से सम्बन्ध रखने वाले नियमो, विधानों, सिद्धांतों आदि का गम्भीर अध्ययन, निरूपण तथा विवेचन होता है। सभी जातियो, देशों, धर्मों और मान्यताओं वाले लोग अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार सब बातों के मौलिक नियम ढूँढनेवाले जो शास्त्र बनाते हैं वे सभी दर्शन कहलाते हैं। पाश्चात्य देशो मे इसका आरम्भ प्राय: ढाई हजार वर्ष पहले यूनान मे हुआ था और वर्तमान युग मे यूरोप और अमेरिका के अनेक विद्वानो ने इस विषय का बहुत अधिक तथा सूक्ष्म विवेचन करके इसे बहुत अधिक आगे बढा दिया है।

अपने परिवर्तित और विकसित अर्थ मे यह शब्द कई और प्रकार के ऐसे लौकिक विवेचनो के सम्बन्ध मे भी प्रयुक्त होने लगा है जिनका आधार कोई विशिष्ट कार्य-क्षेत्र, विचार धारा या विचारवान् व्यक्ति के कार्य, विचार तथा सिद्धान्त होते हैं; जीवन दर्शन, मनोविज्ञान दर्शन, राजनीति दर्शन, गान्धी दर्शन आदि आदि।

'विज्ञान' का पहला अर्थ है—किसी चीज का स्वरूप जानना या उसे पहचानना। परन्तु अपने विस्तृत अर्थ मे यह किसी गूढ विषय के सब अंगों के उत्कृष्ट ठीक और पूरे ज्ञान का वाचक है। हिन्दुओ मे मुख्य रूप से यह ऐसे लौकिक या सासारिक ज्ञान का वाचक है जो आध्यात्मिक और पारमार्थिक ज्ञान से बिलकुल भिन्न हो। बौद्धो मे यह पाँच स्कन्धो मे से एक है और वे इसे चिंतन या मनन की शक्ति और चेतना का लक्षण मानते हैं। पर आज-कल इसके ये सभी अर्थ लुप्त-प्राय. हो चुके हैं; और अब यह अंग्रेजी के सायन्स (Science) के पर्याय के रूप मे प्रचलित है। अर्थात् यह ब्रह्म जगत् की बातो या विषयो से सम्बद्ध ऐसे विशिष्ट ज्ञान का वाचक हो गया है जो घटनाओ, तथ्यो, नियमो आदि के अध्ययन और विवेचन पर आश्रित होता है। इस प्रकार की सकलित और सगृहीत सभी बातो का सामूहिक

रूप भी विज्ञान ही कहलाता है, जैसे—भूगर्भ विज्ञान, भौतिक विज्ञान शिल्प विज्ञान आदि।

'शास्त्र' का पहला और शाब्दिक अर्थ है—आज्ञा या आदेश, और दूसरा अर्थ है—अच्छे आचरण और व्यवहार के सम्बन्ध में दिया जानेवाला हितावह उपदेश या शिक्षा। इस प्रकार के उपदेशों और शिक्षाओं का संगृहीत रूप भी शास्त्र कहलाता था। परन्तु आगे चलकर हमारे धार्मिक क्षेत्र में इसका एक विशिष्ट स्वरूप निश्चित कर दिया गया, और उसके लक्षण आदि भी स्थिर कर दिये गये। अभी तक हिन्दुओं में यह शब्द अपने इसी अन्तिम अर्थ में प्रचलित और प्रसिद्ध है। हमारे यहाँ ऋषियों और मुनियों के बनाये हुए ऐसे सभी प्राचीन धर्म ग्रन्थों को शास्त्र कहते हैं जिनमें भारतीय आर्यों के वैदिक आदर्शों और सिद्धान्तों के अनुसार लौकिक आचार व्यवहार आदि के नियम निरूपित हों। ऐसे ग्रन्थों में लोक हित के विचार से धार्मिक कर्तव्य आदि बतलाये गये हैं और अनुचित तथा दूषित कामों और बातों का निषेध किया गया है। आगे चलकर इनकी संख्या भी स्थिर कर दी गई थी और चारों वेदों उनके उपवेदों तथा शिक्षा, कल्प व्याकरण, निरुक्त, मीमांसा, न्याय आदि का शास्त्रों के वर्ग में समावेश हो गया था। इनके सिवा धर्म शास्त्र, पुराण आदि की भी शास्त्रों में गिनती होने लगी थी। परन्तु इधर हाल में यह भी अंग्रेजी के सायन्स (Science) के पर्याय के रूप में प्रचलित हो गया है। इसका कारण कदाचित् यह है कि हमारे यहाँ के शास्त्रों में अर्थ शास्त्र, छन्द शास्त्र, ज्योतिष आदि की भी गणना होने लगी थी। इसके सिवा हमारे यहाँ काम शास्त्र, नीति शास्त्र, साहित्य शास्त्र आदि भी ऐसे ही जिनसे इसे विज्ञान का पर्याय मानने का औचित्य सिद्ध होता है। फिर भी आधुनिक विवेचन की दृष्टि से विज्ञान और शास्त्र में कुछ सूक्ष्म अन्तर या भेद हैं। विज्ञान मुख्यतः ऐसे तथ्यों पर आश्रित होता है जो हम अपने अनुभवों, निरीक्षणों, प्रयोगों आदि के द्वारा प्राप्त होते हैं। परन्तु शास्त्र मुख्यतः ऐसे शास्त्रात्मक तथ्यों का विवेचनात्मक स्वरूप है जो हम उक्त प्रकार के अनुभवों, निरीक्षणों, प्रयोगों आदि का अध्ययन, अनुशीलन और मनन करने पर निश्चित होता है। विज्ञान का क्षेत्र तो वहीं तक परिमित रहता है जहाँ तक वस्तुओं का सम्बन्ध जड़ प्रकृति से होता है। परन्तु शास्त्र का क्षेत्र इसके उपरान्त और आगे चलकर उस सीमा को पार करता है जहाँ उसका सम्बन्ध हमारी आत्मा और मनोभावों से स्थापित होता है। अर्थात् विज्ञान तो विशुद्ध पार्थिव होता है परन्तु शास्त्र पार्थिव होने के साथ ही साथ आध्यात्म और धर्म की भावना से भी युक्त होता है और इसी लिए शास्त्र के प्रति

हमारे यहाँ जो पूज्य बुद्धि और श्रद्धा का भाव देखने मे आता है वह साधारण विज्ञान के प्रति नही होता। × ×

दर्शपति—पु० [सं०] दे० 'दर्शक, दर्शपति और दर्शाधिकारी'।

दर्शाधिकारी—पु० [सं०] दे० 'दर्शक, दर्शपति और दर्शाधिकारी'।

दशा—स्त्री० [सं०] दे० 'अवस्था, दशा और स्थिति'।

दान अंशदान अधिदान अनुदान
1. Giving 2. Charity Contribution Bounty Grant

परिदान और प्रदान
Subsidy Bestowing

इस वर्ग के शब्द ऐसे धन (या पदार्थों) के वाचक हैं जो प्रायः बडे लोग प्रसन्न होकर उदारतापूर्वक दूसरो को प्रोत्साहन, सहायता आदि के रूप मे देते हैं। इनमें से दान और प्रदान तो हमारे यहाँ के बहुत पुराने प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द हैं, परन्तु शेप चारों शब्द आधुनिक नई परिस्थितियों के कारण और अँगरेजी शब्दो के भाव सूचित करने के लिए गढे गये हैं।

'दान' (सं०) का पहला और मुख्य अर्थ है किसी को कुछ देना। परन्तु आगे चलकर इसमे उदारता, प्रसन्नता आदि सूचित करनेवाले भाव भी सम्मिलित हो गये हैं, जैसे—अभय-दान, वर-दान, विद्या-दान आदि। बहुत प्राचीन काल से ही यह शब्द विशेप रूप से धार्मिक क्षेत्र मे प्रयुक्त होने लगा था। बड़े-बडे राजा-महाराजा यज्ञो के समय तथा अन्य अवसरों पर याज्ञिक ब्राह्मणो तथा दीन-दुखियो को अन्न-वस्त्र, सोने-चाँदी आदि के सिक्के दान के रूप मे दिया करते थे। आज-कल भी आस्तिक हिन्दू ब्राह्मणो और दरिद्रों को अनेक प्रकार के दान देते हैं। आज-कल लोकोपकारी कार्यों के लिए सार्वजनिक सस्थाओ आदि को अनेक प्रकार के दान दिये जाते हैं। विधिक दृष्टि से दान वह धन या पदार्थ है, जो उदारतापूर्वक और धर्म या सेवा-सहायता के विचार से स्वेच्छापूर्वक तथा किसी प्रतिफल की आशा से दिया जाय। आज-कल जीवन-दान, भू-दान, श्रम-दान आदि अनेक प्रकार के दान प्रचलित तथा प्रसिद्ध हो गये हैं। ऐसे अवसरो पर दान का अर्थ होता है—दूसरो के भले के लिए उदारतापूर्वक कुछ देना या कोई काम कर देना। विशुद्ध धार्मिक दृष्टि मे गरीबो को उनके भरण-पोपण आदि के लिए दया-पूर्वक जो कुछ दिया जाता है उसे उर्दू के अनुकरण पर खैरात (अ०) भी कहते हैं।

'अशदान' का प्रयोग ऐसे अवसरों पर होता है जब किसी बड़े काम के लिए बहुत से लोग मिलकर अपनी इच्छा अथवा स्थिति के अनुसार थोडा या बहुत दान देते हैं। यदि सौ आदमी मिलकर दस बीस हजार रुपए इकट्ठे करके किसी काम के लिए देते हैं तब उनमे से प्रत्येक व्यक्ति का दिया हुआ धन उसका अशदान कहलाता है। इसके सिवा यदि किसी महत्वपूर्ण मानसिक या शारीरिक बड़े काम मे बहुत से लोग मिलकर कुछ सहायता करते हैं तो उनमे से प्रत्येक का किया हुआ काम भी उसका अशदान ही कहलाता है।

अधिदान मुख्यत वह धन है जो राज्य या शासन की ओर से कुछ लोगो को किसी कठिन या नये काम म लगाने से पहले उन्हे प्रोत्साहित करने के लिए दिया जाता है। मध्य युग म कुछ पाश्चात्य देश जब नो सेना अथवा सेना में नय सनिक भरती करना चाहते थे अथवा किसी दूर देश मे कोई नया उपनिवेश बसाने के लिए लोगो को भेजना चाहते थे तब प्रलोभन के रूप म पहले उन्ह कुछ दिया करते थे। आज-कल अनेक विकासशील देश अपने यहाँ कोई नया उद्योग या कल कारखाना स्थापित करने के लिए अथवा नई तरह के माल तयार करने के लिए प्राय उद्योगपतियो आदि को इन नये कार्यों मे प्रवृत्त करने के लिए पहले कुछ देते हैं। इस प्रकार का दिया जानेवाला धन ही अधिदान कहलाता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि अधिदान सदा काम आरम्भ कराने के लिए और पहले ही दिया जाता है।

'अनुदान वह धन है जो किसी राजकीय विभाग या बड़ी सस्था की ओर से किसी व्यक्ति अथवा छोटी सस्था को विशिष्ट आवश्यक तथा उपयोगी काम आगे बढाने या चलता रखने क लिए प्रोत्साहन के विचार से और सहायता के रूप में दिया जाता है। इसमें धन राशि के कुछ अधिक होने का भाव प्रधान है, जैसे—(क) इस वष सरकार ने अमुक पुस्तकालय को नई पुस्तकें खरीदने के लिए दस हजार रुपयों का अनुदान दिया है। मध्ययुग म राजा महाराजाओ की ओर स पुरस्कार आदि क रूप म अथवा भरण पोषण आदि के लिए जो भूमि दी जाती थी उसका अन्तर्भाव भी इसी अनुदान मे होता है जैसे—मुगलो क समय म उनके पूवजो को गाव गाँव अनुदान के रूप म मिले थ।

'परिदान' वह आर्थिक सहायता है जो राज्य की ओर से याय म चलने वाले किसी उद्योग धन्धे या व्यापार की देखभाल करने के लिए मिलती है। कभी कभी ऐसा होता है कि कुछ उद्योग धन्धे या व्यवसाय आर्थिक दृष्टि से

देश के लिए आवश्यक और उपयोगी तो होते हैं; परन्तु आरम्भ में उनमे आर्थिक लाभ होता हुआ नहीं दिखाई देता फिर भी यह आशा अवश्य होती है कि आगे चलकर जब वे पुष्ट हो जायँगे तब उनसे बहुत कुछ आर्थिक लाभ होने लगेगा। ऐसी अवस्था में उसे तब तक समय-समय पर राज्य की ओर से कुछ धन दिया जाता है। इसका उद्देश्य यहीं होता है कि केवल घाटे के डर से वह उद्योग या व्यापार बन्द न हो जाय। आगे चलकर जब वह आत्म-निर्भर हो जाता और आर्थिक लाभ करने लगता है तब उसे मिलनेवाला परिदान भी बन्द हो जाता है।

'प्रदान' भी है तो बहुत कुछ दान ही ; फिर भी आशय, उद्देश्य, स्थिति आदि के विचार से दोनो के अर्थो मे कुछ सूक्ष्म अन्तर हैं। पहली बात तो यह है कि प्रदान में वह धर्मवाली भावना नही है जो दान में है। दूसरे यह कि प्रदान सदा दाता के अनुग्रह या प्रसन्नता का सूचक होता है; दान की तरह उसमे दया का भाव नहीं होता। तीसरे यह कि प्रदान का उद्देश्य प्रोत्साहित अथवा सम्मानित करना भी हो सकता है। इसमे एक और मुख्य भाव दाता के बडप्पन, महत्त्व या श्रेष्ठ स्थिति का भी निहित रहता है। बडो की ओर से छोटो को मिलनेवाले धन या वस्तुओ के सम्बन्ध मे ही इसका प्रयोग होता है। हम यह तो कहते हैं—(क) सरकार अच्छे कलाकारो और साहित्यकारो को पुरस्कार, प्रमाण-पत्र आदि प्रदान करती है; और (ख) बड़े अधिकारी अपने किसी अधीनस्थ कर्मचारी को किसी विशिष्ट कार्य के लिए अनुज्ञा प्रदान करते हैं। परन्तु यह कहना ठीक नही होगा कि—(क) हमारी सस्था ने राज्यपाल महोदय को मान-पत्र प्रदान किया, अथवा (ख) आज मैंने एक नई पुस्तक अपने बड़े भाई साहब को प्रदान की। ऐसे अवसरो पर प्रदान के स्थान पर अर्पण, भेंट आदि ऐसे शब्दो का ही प्रयोग होना चाहिए जो अधीनता या नम्रता के सूचक हो। × ×

दाव—स्त्री० (हिं०) दे० 'दवाव और दाव'।

दायाँ—वि० = दाहिना। दे० 'दाहिना और वायाँ'।

दावा—पु० [अ०] दे० 'अधिकार और स्वत्व'।

दाहिना और बायाँ

ये दोनो विशेषण दो विशिष्ट और परस्पर विपरीत दिशाओ और उन दिशाओ मे पडनेवाले अगो, पदार्थों आदि के सूचक तो हैं ही, परन्तु लाक्षणिक रूप मे ये कुछ विशिष्ट पक्षो स्थितियो आदि के भी वाचक हो गए हैं।

प्राय बहुत अधिक उद्विग्न रहते हैं और घबराकर जैसे-तैसे उनसे बचने के लिए दूर हो जाते या भाग निकलते हैं मुख्यत यही पलायन है। प्राय लोग कारागार, सैनिक सेवा अथवा घर गृहस्थी की झंझटों से बचने के लिए सब कुछ छोड़ छाड़कर किसी ऐसी जगह चले जाते हैं जहाँ वे अपने आपको निरापद और लोगों की पहुँच के बाहर समझते हैं। उनका इस प्रकार निकल भागना भी पलायन कहलाता है। × ×

दौलत—स्त्री० [अ०]=धन, दे० 'धन, वित्त, वैभव सम्पत्ति और परिसपत्ति'।

द्वापर—पु० [स०] दे० कल्प और युग'।

द्विविधा—स्त्री० [स०] दे० 'असमजस उभयसकट, दुविधा और स्थिति'।

धन	वित्त	वैभव
Wealth	*Finance*	*Grandeur, Splendour*
सपत्ति	और	परिसपत्ति
Proper y		*Asset*

'धन' के सस्कृत म या तो कई अर्थ हैं परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे उसका मुख्य अर्थ है—मूल्यवान पदार्थ या ऐसी चीज जिसका अच्छा दाम (रुपये पैसे आदि के रूप म) मिल सकता हो। तुलसीदास ने निम्नलिखित दोहे म धन का इसी अर्थ म इस प्रकार प्रयोग किया है—

गो धन गज धन, बाजि धन और रतन धन खान।

जब आवै सतोष धन सब धन धूरि समान॥

यहाँ गौओ, घोडो हाथियों को तो धन माना ही है सतोष तक को इसलिए धन कहा है कि वह मनुष्य की मानसिक शान्ति और सुख के लिए सबसे अधिक मूल्यवान् है।

यो बोलचाल म भी लोग कहते हैं—इस गई बीती हालत म यह मकान दस हजार का धन है। आशय यही होता है कि आज भी इस मकान पर दस हजार रुपए मिल सकते हैं। परन्तु आज-कल बोल-चाल में यह शब्द मुख्य रूप से रुपयों या सिक्कों का ही, बल्कि यों कहना चाहिए कि उनकी बहुतायत का वाचक हो गया है। जब हम कहते हैं कि उसके पास बहुत धन है, तो आशय यही होता है कि उसके पास हजारों लाखों रुपए हैं। हिन्दी मे इसके स्थान पर अरबी के दौलत' शब्द का भी प्रयोग होता है और धन दौलत रूप भी प्रचलित है।

'वित्त' का मूल अर्थ है—ऐसी मूल्यवान् वस्तु जो किसी प्रकार प्राप्त की गई हो या हाथ लगी हो। परन्तु साधारण बोल-चाल मे यह धन, मूल्यवान् पदार्थ और सम्पत्ति का वाचक है। परन्तु आज-कल आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रो मे यह शब्द कुछ नया अर्थ या आशय व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होने लगा है। आज-कल वित्त का अर्थ माना जाने लगा है—वह साधन या स्रोत जिससे किसी राष्ट्र, व्यक्ति या सस्था को धन प्राप्त होता हो। अर्थात् यह शब्द उन सभी साधनो का सामूहिक रूप से वाचक हो गया है जिनसे आमदनी या आय होती है। इसी के साथ-साथ इसमे आय और व्यय दोनो की उचित व्यवस्था का भाव भी सम्मिलित हो गया है। किसी राज्य या शासन मे जिस मन्त्री के हाथ मे आय-व्यय आदि के सब विभाग और व्यवस्थाएँ होती हैं उन्हे इसी आधार पर वित्त मन्त्री कहते हैं। जब हम कहते है, 'अमुक संस्था की वित्तीय अवस्था ठीक नही है', तो हमारा आशय यही होता है कि उसमे या तो आय और व्यय की उचित व्यवस्था नही होती और या यह कि उसकी स्थिति बहुत डॉवाडोल है और फलतः उसके बन्द हो जाने या बैठ जाने की सम्भावना है।

'वैभव' सं० विभू से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है—उदित या प्रकट होना अथवा सामने आना। इसी विभू से विभव बना है जिसके अनेक अर्थो मे से कुछ मुख्य अर्थ इस प्रकार हैं—बल या शक्ति, महत्ता, उच्च पद या मर्यादा धन, संपत्ति, सुख-सौभाग्य आदि। इसी विभव का भाववाचक सज्ञा रूप वैभव है। वैभव के भी बहुत कुछ वही अर्थ हैं जो विभव के हैं, और इसी लिए हिन्दी मे विभव और वैभव एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं। परन्तु हिन्दी मे इन शब्दो मे एक विशिष्ट आशय या भाव भी लग गया है। हमारे यहाँ यह मुख्य रूप से व्यक्ति की ऐसी स्थिति का सूचक हो गया है जिसमें उसके पास यथेष्ट धन और सम्पत्ति दोनो हो, और साथ ही उन दोनो के उपयुक्त उसका ठाट-बाट या शान-शौकत भी स्पष्ट रूप से सबको दिखाई देती हो। अर्थात् इसमे मुख्य भाव ठाट-बाट का ही है। इसलिए इसका प्रयोग धनी-मानी व्यक्तियो और राजा महाराजाओ के ठाट-बाट का सूचक होता है; जैसे—महाराज का वैभव देखकर लोग दग रह जाते थे। व्यक्तियो के सिवा इसका प्रयोग वस्तुओ के सम्बन्ध मे भी होता है। ऐसे प्रसगों मे यह वस्तु की ऐसी उच्च और सम्मानित स्थिति सूचित करता है जिसका देखने-सुननेवालो पर बहुत अच्छा और अधिक प्रभाव पडता है और जिसके फलस्वरूप वे उसे आदरणीय, आदर्श अथवा मान्य समझते हैं; जैसे—भाषा या साहित्य का वैभव।

३—(कथन या मत) जो निश्चित स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया हो। ठीक मानकर और साफ साफ कहा हुआ।

४—दृढ़तापूर्वक माना या स्वीकृत किया हुआ। सकारात्मक।

५—गणित में शून्य की अपेक्षा अधिक जो 'धन' कहलाता है।

६—क्रमशः आगे की ओर बढ़ता या ऊपर की ओर उठता हुआ। अनुलोम।

७—जो सद्भावपूर्वक या सुधार आदि के विचार से अथवा उन्नति करने की दृष्टि से किया गया हो। रचनात्मक।

८—जो और सब बातों से अलग और पृथक या स्वतन्त्र हो। जिसमें किसी प्रकार के तारतम्य अथवा तुलना आदि का विचार न हो।

९—(प्रतिकृति या मूर्ति) जिसमें मूल के समान ही छाया या प्रकाश हो। जो उलटा न जान पड़े। आदि, आदि।

संज्ञा रूप में 'धनक' मुख्यतः नीचे लिखे अर्थों का सूचक होगा —

१—ऐसा कथन या बात जिसमें किसी तत्व, मत या सिद्धांत का निश्चित रूप से निरूपण या प्रस्थापन किया गया हो। ठीक मानकर दृढ़तापूर्वक कही हुई बात।

२—किसी विषय, निश्चय आदि का वह अंश या पक्ष जिसमें उक्त प्रकार का निरूपण या प्रस्थापन हो।

३—ऐसी प्रतिकृति या मूर्ति जिसमें मूल की छाया के स्थान पर छाया और प्रकाश के स्थान पर प्रकाश हो। ऐसी नकल जो देखने में सीधी जान पड़े, उल्टी नहीं।

४—छाया चित्र में, ऋणक शीशे पर कागज पर छापी हुई वह प्रति जो मूल से ठीक अनुरूप होती है। ऋणक का विपर्याय।

ऋणक, विशेषण और संज्ञा दोनों रूपों में 'धनक' का विपर्याय है। विशेषण रूप में यह नीचे लिखी अवस्थाओं का सूचक होता है—

१—जिसमें किसी अपेक्षित या विशेष वस्तु का अभाव हो। किसी विशिष्ट तत्व या बात से रहित। अभावात्मक।

२—जो आधार या प्रमाण से रहित हो। जो ठीक या तथ्य न माना जा सकता हो। अनिश्चयात्मक।

३—(कथन या मत) जो निश्चित रूप से प्रतिपादित या प्रस्थापित न हो सकता हो।

४—जो दृढतापूर्वक माना या स्वीकृत किया हुआ न हो। जिसमे 'नही' का भाव हो। नकारात्मक।

५—गणित मे, शून्य की अपेक्षा कम, जो 'ऋण' कहलाता है।

६—जो क्रमशः पीछे की ओर हटता या नीचे की ओर गिरता या चलता हो। उसकी गति सीधी न होकर उलटी हो। विलोम।

७—जो केवल खंडन या तोड-फोड़ आदि के विचार से कहा या किया गया हो। ध्वसात्मक।

८—(प्रतिकृति या मूर्ति) जिसमे मूल की छाया के स्थान पर प्रकाश और प्रकाश के स्थान पर छाया हो।

सज्ञा रूप मे 'ऋणक' नीचे लिखे अर्थो का वाचक होगा—

१—ऐसा कथन जिसमे दूसरे की वात न मानी गई हो या उससे इनकार किया गया हो।

२—किसी विपय, निश्चय आदि का वह अश, अग या पक्ष जिसमे उसके धनक या सकारात्मक पक्ष का खंडन या विरोध किया गया हो।

३—ऐसी प्रतिकृति या मूर्ति जिसमे मूल की छाया के स्थान पर प्रकाश और प्रकाश के स्थान पर छाया हो।

४—छाया-चित्र मे, वह शीशा जिस पर किसी वस्तु का उलटा प्रतिविम्ब या आकृति अकित होती है और जिससे कागज पर उसकी सही प्रतियाँ छापी जाती हैं। 'धनक' का विपर्याय। आदि, आदि। × ×

धमनी नाड़ी शिरा और स्नायु

Artery Pulse Vein Nerve

सस्कृत की ये चारो सज्ञाएँ प्राणियो के सारे शरीर मे फैली हुई उन छोटी-वडी नलियो या नालियो के जाल की वाचक हैं जिनके द्वारा रक्त का सचार होता है। 'धमनी' मुख्यतः ऐसी नलियों या नालियों की वा क हैं जो अपेक्षया कुछ मोटी होती हैं और जिनमे से फूटकर निकली हुई दूसरी छोटी और पतली नलियाँ या नालियाँ इधर-उधर फैली हुई होती हैं। हृदय की गति के फलस्वरूप शुद्ध होनेवाला रक्त इन्ही धमनियो से शरीर के सब अंगो में पहुँचता है। पारिभापिक दृष्टि से 'नाडी' भी है तो वहुत कुछ वही जो धमनी है। परन्तु लोक-व्यवहार मे नाडी के साथ कई और अर्थ तथा कुछ मुहावरे

भी लग गये हैं। वैद्यक में मुख्य रूप से नाड़ी उन नलियों की वाचक मानी जाती है जिनका एक सिरा दोनों कलाइयों पर और दूसरा सिरा विपरीत दिशाओं की एड़ियों के ऊपर और पैरों के पिछले भाग में होता है। वैद्यक में, कलाई पर की नाड़ी देखकर रोगों का निदान करने का विधान है। परन्तु पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली में इसकी गति से होनेवाले स्पंदनों की संख्या मात्र गिनी जाती है और इन्हीं के आधार पर रोगी की शारीरिक शक्ति का पता लगाया जाता है। एड़ी के ऊपर जो मोटी नाड़ी होती है उसकी गति से भी वैद्य लोग यह पता लगाते हैं कि प्राण शक्ति कितनी घट रही है। एड़ी के ऊपर की इन दोनों नाड़ियों को 'घोड़ा नस' भी कहते हैं। मध्य युग में भागते हुए शत्रुओं के ऊँटों, घोड़ों आदि की यह नस किसी धारदार हथियार से काट देते थे जिससे उनके शरीर का सारा रक्त बहकर निकल जाता था और वे कुछ ही देर में मर जाते थे।

अब नाड़ी के मुहावरे लीजिए। 'नाड़ी चलना' का अर्थ होता है—शरीर में प्राणशक्ति का वर्तमान रहना। 'नाड़ी छूटना' का अर्थ होता है शरीर से प्राण निकल जाना। 'नाड़ी देखना' का अर्थ होता है—नाड़ी की गति या स्पंदन देखकर रोगों का निदान करना।

हिंदी में धमनी और नाड़ी दोनों के लिए 'रग' शब्द भी प्रचलित है। (दे० 'नस और रग')

धमनी या नाड़ी तो हृदय से शुद्ध रक्त लेकर शरीर के भिन्न भिन्न भागों में पहुँचाती है परन्तु रक्त के इस प्रचार के कारण जब रक्त दूषित हो जाता है तब जिन नलियों या नालियों के द्वारा वह दूषित रक्त शुद्ध होने के लिए फिर हृदय तक पहुँचता है उन्हें 'शिरा' कहते हैं। इस अर्थ में भारत सरकार ने इसके लिए नया शब्द 'रुधिर-वाहिका' स्थिर किया है।

इसके सिवा हमारे सारे शरीर में [illegible] और महीन तंतुओं का एक बड़ा जाल बिछा हुआ है जो एक ओर तो हमारे मस्तिष्क और मेरुरज्जु* से संबद्ध है—और दूसरी ओर हमारे शरीर के भिन्न भिन्न अंगों से। इन्हीं तंतुओं को स्नायु कहते हैं। आधुनिक शरीर शास्त्र में इन तंतुओं के [illegible] भेद [illegible] हैं—ज्ञानेन्द्रिय स्नायु और [illegible] स्नायु। [illegible]

---

* [illegible]

वाले सवेदनो का ज्ञान इन्ही तन्तुओ के सहारे हमारे शरीर तक पहुँचता है। फिर उस ज्ञान की प्रतिक्रियाओ के रूप मे मस्तिष्क जो कुछ करने का आदेश देता है वह आदेश जिन ततुओ के द्वारा हमारी मासपेशियो और कर्मेन्द्रियो तक पहुँचता है उन्हे 'प्रेरक स्नायु' कहते हे। हम जितने शारीरिक व्यापार करते हैं उनकी प्रेरणा हमे इन्ही ततुओ से मिलती हैं। भारत सरकार ने इसके लिए नया शब्द 'तन्त्रिका' स्थिर किया है। स्नायु के लिए हिन्दी में फ़ारसी का 'रग' शब्द भी प्रचलित है। (दे० 'नस और रग') × ×

धावा—पु० [हिं० धाना=तेज चलना या दौडना] दे० 'अभियान, आक्रमण, धावा, लाम और लामबन्दी'।

धोखा—पु० [स० द्रोध:] दे० 'भ्रम, भ्राति, मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका'।

ध्येय—पु० [स०] दे० 'उद्देश्य, ध्येय और लक्ष्य'।

ध्येय-पत्र—पु० [स०] दे० 'विज्ञप्ति, अधिसूचना, ज्ञापन, ध्येय-पत्र और श्वेत-पत्र'।

ध्वनि—स्त्री० [स०] १. दे० 'अर्थ आशय, ध्वनि और विवक्षा'। २. दे० 'नाद, घोष, ध्वनि और लय'।

नजीर—स्त्री० [अ०] दे० 'उदाहरण और दृष्टात'।

नतीजा—पु० [अ० नतीज] दे० 'परिणाम और फल'।

नफा—पु० [अ० नफ्अ]=लाभ, दे० 'प्राप्ति, लाभ और उपलब्धि'।

नभ—पु० [स०] दे० 'अन्तरिक्ष, आकाश, व्योम और महाव्योम'।

नमूना और बानगी

यद्यपि हमारे यहाँ नमूना और बानगी मे अर्थ के विचार से कोई विशेष अन्तर नही माना जाता, पर प्रयोग के विचार से इतना ही अन्तर कहा जा सकता है कि 'नमूना' तो लोक-व्यवहार का बहुत प्रचलित और इधर हाल का शब्द है; और बानगी हमारे यहाँ का पुराना और महाजनी बोल-चाल का शब्द है, जो बहुत कुछ मरता हुआ सा जान पडता है। अँगरेजी मे इस वर्ग के दो मुख्य शब्द है—स्पेसिमेन (Specimen) और सैम्प्ल (Sample) जिनके अर्थो और प्रयोगो मे कुछ सूक्ष्म अन्तर है। उन्ही अन्तरो के अनुरूप अन्तर क्रमानुसार नमूना और बानगी मे भी देखने मे आते है।

'नमूना' फा० नमून: का हिन्दी रूप है। फारसी का नमून: 'नमू' शब्द से बना है; जिसका अर्थ है—उठ या उभरकर सामने आना। इसी नमू से फारसी

से नमूद (उठान, उभार) और नमूदार (उदित, दृष्टिगत, प्रकट) शब्द बने हैं। नमूना प्राय एक ही प्रकार की बहुत सी चीजो म से निकाला हुआ एक पूरी इकाई के रूप मे होता है और यह जिस राशि या वग म स निकाला हुआ होता है उसके गुण, रूप रग विशेषता आदि का पूरा परिचायक और प्रतिनिधि होता है। हम बक म अपने हस्ताक्षर का जो नमूना भेजते हैं, वह हमारे हस्ताक्षर का कोई अश या खड नही होता। उसके प्रकार मात्र का सूचक एक रूप होता है। प्रकाशक लोग पुस्तक विक्रेताओ के पास अपने नए प्रकाशन की नमूने की जो प्रति भेजते हैं उसके सम्ब ध म भी यही बात है। 'नमना' के अन्यान्य अर्थों के लिए दे० आदश प्रतिमान प्रतिरूप और मानक'।

'बानगी' हिन्दी के उस बाना (स० वाण) से बना है जिसके अथ हैं—(क) कुछ विशिष्ट प्रकार का पहनावा, (ख) पद मर्यादा आदि के अनुरूप अवस्था या स्थिति, और (ग) रग ढग रीति आदि। हमारे यहाँ महाजनी बोलचाल मे बानगी वह थोडी सी चीज कहलाती है जो किसी बडी राशि म से निकालकर ग्राहको को दिखाई जाती है। अनाज बेचनेवाले गेहू, चावल आदि के बोरो मे से थोडा-सा गेहू या चावल निकालकर उसकी बानगी दिखाते हैं, और घी तेल आदि बेचनेवाले कनस्तरो मे से इन चीजो की बानगी दिखाते हैं। हम कहते हैं— अब जरा उनकी कविताओ की बानगी देखिए।' आशय यह होता है कि जो अश बानगी के रूप मे आप सामने देखते हैं उस अश के अनुरूप ही उनकी और सब कविताए भी हैं। इसी आधार पर हम तरह तरह के कपडो के उन छोटे टुकडो को भी बानगी ही कहेंगे जो कपडो के कल कारखानेवाले अपने बडे बडे ग्राहक व्यापारियो के पास उन्ह अपने यहाँ तयार माल का रूप रग आदि दिखाने के लिए भेजते हैं। भले ही बोलचाल मे ऐसे टुकडो को नमूना कह लेते हो, परन्तु आर्थी स्पष्टता और पाथक्य के विचार से उन्ह बानगी कहना ही ठीक होगा।

बानगी तो सदा किसी राशि का अश या खड होती है, इसलिए बानगी और मल राशि म किसी प्रकार के अन्तर की सम्भावना नही होती, और इसी लिए बानगी देखकर चीज खरीदने म साधारणत धोखे की गुजाइश नही होती क्योकि यह बात प्राय निश्चित होती है कि किसी चीज की जसी बानगी होगी, वसी ही वह चीज भी होगी। परन्तु नमून के सम्बन्ध मे कभी कभी धोखे की गुन्जाइश हो सकती है। व्यापारी जो नमूना दिखलाता है

हो सकता है कि वाकी सब या कुछ चीजें उस नमूने के अनुरूप न हो।

× ×

नव-कल्प—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

नस और रग

'नस' हिन्दी की स्त्री० संज्ञा है जिसकी व्युत्पत्ति हिन्दी शब्द सागर मे स० 'स्नायु' से मानी गई है और जव तक कोई दूसरी समीचन व्युत्पत्ति सामने न हो तव तक इसी को मानकर काम चलाना पडेगा। अर्थ की दृष्टि से यह बहुत कुछ वही है जो हमारे शरीर की धमनी या नाड़ी है। दे० 'धमनी, नाडी, शिरा और स्नायु' हिन्दी मे नस चढना, नस फडकना, नस नस भड़कना आदि जो मुहावरे प्रचलित हैं वे 'नस' के इसी अर्थ से सम्बद्ध हैं।

परन्तु लोक-व्यवहार मे यह शब्द कुछ अवस्थाओ मे हमारी क्रियात्मक और शारीरिक शक्तियो का भी वाचक वन जाता है। जव हम कहते हैं—(क) हम तुम्हारी नस ढीली कर देंगे; अथवा (ख) दिन भर दौड़ते-दौड़ते इसकी नस ढीली हो गई, ऐसी अवस्थाओ मे नस ढीली होने का आशय यही होता है कि मन का सारा आवेग या आवेश कम हो गया; अथवा कार्य करने-वाली सारी शारीरिक शक्ति मन्द पड़ गई अथवा शिथिल हो गई। इसके सिवा हम यह भी कहते है—हम तुम्हारी नस खूब पहचानते हैं। ऐसे प्रयोगो मे यह शब्द मनुष्य की प्रकृति, प्रवृत्ति, मनोवृत्ति आदि का सूचक होता है।

पत्तो, पत्तियो आदि मे जो कुछ मोटी, लम्बी धारियाँ या रेशे उभरे हुए दिखाई देते हैं उन्हे भी नस ही कहते हैं। इसका मूल कारण यही है कि वनस्पतियो आदि मे ऐसी धारियाँ या रेशे भी वहुत कुछ उसी प्रकार के काम करते हैं जिस प्रकार के काम हमारी नाडियाँ आदि करती हैं।

'रग' फारसी का स्त्री० शब्द है जो हिन्दी मे मुख्यतः स्नायु के अर्थ मे वहुत प्रचलित है। उर्दू-फारसी के कोशो मे इसे धमनी या नाडी का भी पर्याय माना गया है। (दे० 'धमनी, नाडी, शिरा और स्नायु')

'नस' की तरह रग मे भी कई मुहावरे लग गए हैं। जिन अवसरो पर हम 'नस-नस फडकना' या 'नस-नस मे' सरीखे प्रयोग करते हैं उन अवसरो पर नस के स्थान पर रग का भी प्रयोग होता है। परन्तु जिस प्रकार के अर्थ 'नस ढीली होना' और 'नस पहचानना' सरीखे मुहावरो मे लगे हैं वहुत

नरसिंघे आदि का नाद होता है, मृदंग आदि का घोष और मुरली, वीणा आदि की ध्वनि। साहित्यिक क्षेत्र में ध्वनि का जो विशिष्ट अर्थ है, उसके लिए दे०—'अर्थ, आशय, ध्वनि, और विवक्षा'।

'लय' पु० [सं०] का मूल अर्थ है—किसी पदार्थ का अपनी सत्ता पूरी तरह से मिटाकर दूसरे पदार्थ में अच्छी तरह मिल जाना या विलीन होना। इसी आधार पर दार्शनिक क्षेत्र में 'लय सृष्टि की उस अन्तिम स्थिति को कहते हैं जिसमें वह पूरी तरह से नष्ट होकर प्रकृति में मिल जाती है। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इसका प्रयोग स्त्रीलिंग में और एक नए अर्थ में होता है। यह मुख्यतः वह मूल तत्त्व है जो अपने सुयोजित उतार चढ़ाव के योग से नाद, घोष और ध्वनि तीनों में श्रुति माधुर्य उत्पन्न करता और उन्हें संगीतात्मक तथा सुस्वर बनाता है। कविता भाषण, संगीत आदि में गति या प्रवाह और यति या विराम पर आश्रित रहने वाला यह तत्त्व उनमें आकर्षक, कोमलता और लावण्य का संचार करता है। इससे और आगे बढ़ने पर यह तत्त्व चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला आदि में निहित रहता है। किसी पदार्थ के सब अंगों में जो पारस्परिक सुडौलपन और सुघड़ई दिखाई देती है तथा किसी समूचे पदार्थ के सब अंगों की स्थापना में जो औचित्य और सामंजस्य रहता है वह भी इसी का परिणाम या फल होता है। चित्रकला में इसका आविर्भाव रेखाओं आदि की ठीक तरह से होनेवाली गति या प्रवाह और भिन्न भिन्न रंगों की उपयुक्त स्थान पर स्थापना से होता है। मूर्तिकला और वास्तुकला में इस तत्त्व का जितना ही अधिक उपयोग किया या ध्यान रखा जाता है, उतना ही उसका आकर्षण और सौंदर्य बढ़ता है। संगीत का तो सारा सौंदर्य उसकी लयदारी पर ही आश्रित होता है। × ×

नाभि—स्त्री० [सं०] दे० 'केन्द्र और नाभि'।
नाभिक अक्ष—पु० [सं०] दे० केन्द्र और नाभि'।

नाम उपनाम पदनाम संज्ञा और सुनाम

Name 1 Alias Designation 1 Appelation Goodwill
2 Pen name 2 Noun

यद्यपि 'नाम' और 'संज्ञा' दोनों एक दूसरे के बहुत कुछ पर्याय माने जाते हैं और अभिप्राय की दृष्टि से हैं भी प्रायः समान ही, फिर भी दोनों में कई सूक्ष्म अन्तर हैं। नाम (सं० नामन्) बहुत ही सीधा-सादा और हलका

शब्द होने के कारण भारत की सभी बोलियो और भापाओ मे बहुत कुछ एक ही अर्थ मे प्रचलित तथा प्रसिद्ध तो है ही, फा० तक मे यह इसी रूप और अर्थ मे चलता है। 'सज्ञा' मुख्यतः व्याकरण तथा कुछ विशिष्ट शास्त्रो का पारिभाषिक शब्द है; और इसी लिए इसका प्रचलन तथा व्यवहार शिक्षित तथा सभ्य वर्गो तक ही सीमित है। नाम का प्रयोग मुख्यत. दो उद्देश्यो से होता है, एक तो विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति का अभिज्ञान या पहचान कराने के लिए और दूसरा पुकारने या बुलाने अथवा बातचीत के समय किसी अप्रस्तुत वस्तु या व्यक्ति की ओर संकेत करने के लिए। इसके विपरीत सज्ञा का मुख्य उद्देश्य होता है किसी गुण, धर्म, वर्ग, वस्तु, व्यष्टि या समूह का सज्ञान अर्थात ठीक और पूरा ज्ञान कराने अथवा उसका स्वरूप बतलाने के लिए। एक और अन्तर यह भी है कि लोक-व्यवहार मे बहुत प्रचलित होने के कारण नाम के अर्थों और प्रयोगो का बहुत कुछ पल्लवन या विकास हुआ है और उसमे कई प्रकार के मुहावरे आदि भी लग गये हैं परन्तु सज्ञा के अर्थों का केवल शास्त्रीय वर्गीकरण या विवेचन होकर ही रह गया है।

अब हम कुछ उदाहरण देकर दोनो के अर्थो का अन्तर स्पष्ट करना चाहते हैं। धातु, पुस्तक, वृक्ष आदि तो सज्ञाएँ हैं परन्तु ताँबा, पीतल और लोहा धातुओ के नाम हैं। गीता, रामायण, महाभारत आदि पुस्तको के नाम है और आम, पीपल, महुआ आदि वृक्षो के नाम। हम कहते हैं—योगेश्वर कृष्ण, धर्मराज युधिष्ठिर और मर्यादा-पुरुपोत्तम राम इनमे कृष्ण, युधिष्ठिर और राम तो नाम हैं, क्योकि वे विशिष्ट व्यक्तियो का अभिज्ञान या पहचान कराते हैं परन्तु योगेश्वर, धर्मराज और मर्यादा-पुरुपोत्तम उनकी सज्ञाएँ हैं क्योकि इनसे उनके गुणो का सज्ञान होता है—परिचय मिलता या स्वरूप स्पष्ट प्राप्त होता है। कभी-कभी ऐसी संज्ञाएँ नाम का ही काम देने लगती हैं; जैसे—आज-कल देशबन्धु कहने से स्वर्गीय चितरञ्जन दास का और लोकमान्य कहने से स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक का सहज मे बोध होता है। नाम बहुत ही सार्विक शब्द है और उसका प्रयोग सभी प्रकार की कल्पित और वास्तविक वस्तुओ, व्यक्तियो आदि की विशिष्ट तथा स्वतंत्र सत्ता सूचित करने के लिए होता है। अर्थात् इसमे मुख्य भाव औरो से पार्थक्य सूचित करने का है। क्रोध, धैर्य, साहस आदि व्याकरण की दृष्टि से हैं तो भाववाचक सज्ञाएँ ही, फिर भी जब हम किसी व्यक्ति को बहुत बड़ी वीरता (या साहस) का काम करते हुए देखते हैं तब हम कहते हैं—इसका नाम वीरता (या साहस) है। ऐसे अवसरों पर बात यही होती है कि हम उस वीरता (या साहस) को एक

विशिष्ट व्यक्तित्व का रूप लेते हैं—मानों उसका मानवीकरण करते हैं। क्रिया प्रयोग के विचार से नाम और संज्ञा में एक अन्तर यह भी है कि नाम तो पड़ता या रखा जाता है, और संज्ञा दी और मानी जाती है।

'नाम' मुख्यतः वह पद या शब्द है जिससे कोई भाव, वस्तु या व्यक्ति लोक में प्रसिद्ध होता है। हर आदमी या चीज का नाम इसी लिए रखा जाता है कि उसकी ठीक पहचान हो सके। साधारणतः नाम सुनते ही उस आदमी या चीज का सारा स्वरूप या उसके सम्बन्ध की और बातें ध्यान में आ जाती हैं। प्रयोगों तथा मुहावरों के विचार से यह कई विशिष्ट बातों और स्थितियों का वाचक होता है। लोग अच्छे और बुरे सभी तरह के काम करते हैं और उन कामों की चर्चा वर्तावों में नाम के साथ ही होती है। इसलिए यह ख्याति और प्रसिद्धि अथवा कुख्याति या कुप्रसिद्धि का भी प्रतीक या वाचक हो गया है। बड़ों का नाम उछालना, स्वयं नाम कमाना, नाम गँवाना, नाम पाना आदि मुहावरे इसी ख्याति या प्रसिद्धि से सम्बद्ध हैं। अपने नाम के लिए कोई काम करना, नाम के लिए मरना, नाम चमकना, नाम जगना या जगाना, नाम तक मिट जाना या न रह जाना आदि मुहावरे तो कीर्ति या यश और ख्याति या प्रसिद्धि से सम्बद्ध हैं, और किसी का नाम धरना, अपना नाम धराना आदि मुहावरे कुख्याति, कुयश आदि के सूचक हैं। अपराध, दोष आदि के अभियोग के संबंध में किसी का नाम लगना और किसी का नाम लगाना आदि मुहावरे भी लोक प्रचलित हैं।

प्रायः आस्तिक लोग ईश्वर या अपने उपास्य देवता के नाम का जप करते हैं। इसलिए कुछ अवस्थाओं में यह ईश्वर या देवी देवता के रूप में भी प्रयुक्त होता है, जैसे—नाम की महिमा अपरंपार है। ऐसे अवसरों पर यह ईश्वर या देवी देवताओं का सूचक होता है। हम कहते हैं—भगवान का नाम लेकर चल पड़ो। आशय यही होता है कि भगवान पर विश्वास और श्रद्धा रखकर काम आरम्भ कर दो। इसी आधार पर एक और मुहावरा बन गया है—किसी का नाम जपना। इसका आशय यही होता है कि श्रद्धा-भक्तिपूर्वक बराबर स्मरण करते रहना। परन्तु लोक व्यवहार में कभी कभी शृङ्गारिक क्षेत्र में भी इसका प्रयोग देखने में आता है, जैसे—जब देखो तब वह अपनी प्रेमिका का नाम जपता ही दिखाई देता है। आशय यह होता है कि वह प्रायः अपनी प्रेमिका की ही चर्चा और ध्यान करता रहता है।

नाम किसी वस्तु या व्यक्ति का वाचक मात्र होता है, स्वयं उस वस्तु या व्यक्ति से उसका कोई तात्त्विक सम्बन्ध नहीं होता। वह उस वस्तु या व्यक्ति

की केवल सत्ता का सूचक होता है अथवा यह सूचित करता है कि उसे जो कुछ कहा या दिया गया है, वह नाम-धारी के उद्देश्य या हेतु मात्र से है। इसी लिए व्यापारिक क्षेत्रों में यह उस अश या पक्ष का भी वाचक हो गया है, जिसमे किसी को दी हुई या किसी के जिम्मे लगाई हुई कोई चीज या रकम लिखी जाती है ; जैसे—(क) ये चारो साडियाँ नारायणदास के नाम लिख लो; (ख) पुरुषोत्तमदास के नाम अभी हजार रुपए बाकी पडे हैं; और (ग) उन्होने वह मकान अपने भतीजे के नाम कर (या लिख) दिया है। किसी के नाम से खाता खोलना या किसी के नाम से जमीन खरीदना अथवा पितरो के नाम पर दान देना आदि प्रयोग भी इसी अर्थ के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ अवस्थाओ मे यह किसी तत्त्व या बात की बहुत ही अल्पता अथवा पूरे अभाव का भी सूचक होता है ; जैसे—(क) इस तरकारी (या दाल) मे नमक का तो नाम ही है; अर्थात् नमक बहुत ही कम है, (ख) मन्दिरो और मस्जिदो मे तो ईश्वर का या खुदा का नाम ही होता है, अर्थात् उनमे ईश्वर या खुदा का वास्तविक निवास नही होता; और (ग) वह तो नाम करने के लिए ही हमारे यहाँ आ गये थे, अर्थात् न तो उन्होने यहाँ आकर काम की कोई बात की और न कुछ देर तक यहाँ ठहरे ही।

हम प्राय कहते है—अजी नाम मे क्या रखा है ? आशय यही होता है कि नाम और नामी मे कोई अटूट या अभेद्य सम्बन्ध नही होता; जो सम्बन्ध होता है वह साकेतिक मात्र है। उदाहरण के लिए गुलाब मे जो रग-रूप और सुगन्ध है वह तो बराबर चली आ रही है, और आगे भी चलती ही रहेगी, अब आप चाहे उसे गुलाब कहा करे, और चाहे कबाब। हाँ, यदि किसी के नाम के अनुरूप उसका कोई अच्छा या बडा काम दिखाई पडे तो इसे लोग अवश्य एक नई और विलक्षण बात मानते हैं, और उसकी प्रशसा करते हुए कहते है—वह तो यथा नाम तथा गुण है। अथवा यदि सयोग से कोई अपने नाम के अनुरूप कुछ बडा काम कर दिखलावे तब कहते हैं—वाह, उसने अपने नाम की लज्जा रख ली, अथवा अपना नाम सार्थक कर दिखाया।

'उपनाम' का साधारण अर्थ है—ऐसा छोटा या सक्षिप्त नाम जिसका व्यवहार पूरे नाम के स्थान पर होता हो। यह मुख्यत. व्यक्तियो का ही होता है; गुणो, तथ्यो, वस्तुओ आदि का नही। लोक मे यह दो प्रकार का देखने मे आता है। प्राय' लोग अपने बच्चो का पूरा नाम तो कुछ और रखते हैं, परन्तु उन्हें बुलाने आदि के लिए उनका कोई छोटा नाम भी रख लेते हैं; जैसे—यदि किसी का नाम मनोहरलाल हो, तो बाल्यावस्था मे घर के लोग

उसे मुन्नू कहकर पुकारते हैं। वही व्यक्ति बड़ा होने पर भी कभी तो मुन्नू ही बना रहता है, और कभी मुन्नू बाबू बन जाता है। यही उपनाम का पहला प्रकार है। दूसरा प्रकार वह है जिसमें अधिकतर कवि लोग और कभी कुछ लेखक भी अपने वास्तविक नाम के स्थान पर अपने काव्यों, लेखों आदि में किसी दूसरे कल्पित छोटे या नये नाम का व्यवहार करते हैं, जैसे—स्वर्गीय पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय का उपनाम 'हरिऔध' था। आज कल भी कुछ नये लेखक अपने नाम के स्थान पर चाणक्य, चार्वाक, दुर्वासा, भारतीय आत्मा सरीखे अनेक उपनामों का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।

पद नाम का अभिधार्थ ही है—किसी पद या ओहदे का नाम। आज कल प्रशासनिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों और सार्वजनिक संस्थाओं में कुछ पद या ओहदे होते हैं जिनके कुछ विशिष्ट नाम होते हैं, जैसे—प्रशासक, राजदूत, राज्यपाल, राष्ट्रपति आदि। ये सब पदों या ओहदों के ही नाम हैं और इसी लिए इन्हें 'पदनाम' कहते हैं। मंत्री, सभापति, सचिव आदि भी इसी प्रकार के पदनाम हैं। जो लोग इन पदों पर आसीन या नियुक्त होते हैं वे प्रायः इन्हीं पद नामों से अभिहित होते हैं।

संज्ञा के सम्बन्ध में प्रायः सभी मुख्य बातें ऊपर बतलाई जा चुकी हैं। यहाँ इतना ही बतला देना आवश्यक है कि संज्ञा में नाम का अन्तर्भाव तो हो जाता है, परन्तु साधारण प्रयोग या व्यवहार की दृष्टि से उपनाम और पदनाम का उसमें अन्तर्भाव नहीं होता। व्याकरण में संज्ञा और उसके भेदों का जो विचार होता है उसका उल्लेख यहाँ इसलिए अनावश्यक है कि साधारण शिक्षित वर्ग पहले से ही उससे परिचित है।

'सुनाम' पु० [सं०] का शब्दार्थ है—अच्छा नाम, अर्थात् ऐसा नाम, ख्याति या प्रसिद्धि जिसके साथ अच्छी कीर्ति या यश लगा हो, जैसे—उन्होंने देश सेवा में सुनाम प्राप्त किया था। परन्तु अब व्यापारिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में इसका प्रयोग अँग्रेजी के (Goodwill)* का आशय प्रकट करने के

* एक और क्षेत्र में (Good will) का अर्थ होता है—सद्भाव। यह दो या अधिक दलों, पक्षों, व्यक्तियों आदि में परस्पर होनेवाली मित्रता और सौजन्यपूर्ण आचरण तथा व्यवहार का सूचक होता है। इसमें यह भी सूचित होता है कि हम लोग एक दूसरे का भला चाहते हैं और उनकी उन्नति तथा प्रगति में सहायक होने के लिए उत्सुक हैं। इसी आधार पर कहा जाता है—भारत का एक शिष्ट मंडल अफ्रीका के अनेक देशों में सद्भाव यात्रा पर जा रहा है।

लिए होने लगा है, और यह उक्त अँग्रेजी शब्द का समार्थक बन गया है। प्रायः ऐसा होता है कि कुछ लोग अपना कल-कारखाना, कोठी, दुकान या ऐसी ही कोई व्यावसायिक सस्था किसी दूसरे के हाथ बेच देते हैं। इस प्रकार बेची जानेवाली चीजो में दो बाते अलग-अलग मानी जाती हैं। एक तो उसका सारा सामान; और दूसरी कीर्ति, प्रसिद्धि और साख जो उसके प्रसिद्ध नाम के साथ लगी होती है और जिसके फलस्वरूप उसे जन साधारण मे लोक-प्रियता, विश्वास तथा संरक्षण प्राप्त होता है। यही दूसरा तत्व उस अधिष्ठाता या संस्था का सुनाम कहलाता है। बेचनेवाला कभी तो खाली सारा सामान बेचता है; और कभी उसके साथ उसका सुनाम भी बेच देता है, कभी-कभी सारा सामान अपने पास रखकर केवल 'सुनाम' बेचा जाता या बेचा जा सकता है। खरीदनेवाले को सामान का दाम तो देना ही पडता है परन्तु यदि वह उसके साथ सस्था का 'सुनाम' भी खरीदना हो तो इसके लिए उसे कुछ अलग धन भी देना पडता है और विधिक दृष्टि से उसके 'सुनाम' का अधिकार भी प्राप्त करना पडता है। × ×

नारा—पुं० [अ० नऽरः] दे० 'नाद, घोष, ध्वनि और लय'।

निगम—पुं० [सं०] दे० 'संस्था, सस्थान, प्रतिष्ठान और निगम'

निदेश—पुं० [सं०] दे० 'आज्ञा, आदेश, निदेश और निर्देश'

निधि न्यास और गोलक
Fund Trust Pool

इस वर्ग के शब्द ऐसी धन-राशि के वाचक हैं, जो किसी विशिष्ट उद्देश्य से या निश्चित कार्य के लिए एकत्र की जाती अथवा सुरक्षित रखी जाती है।

'निधि' स्त्री० सं० निधान से सम्बद्ध है जिसके अर्थ हैं; रखना, इकट्ठा जमा करना और सुरक्षित रखना आदि। इसी आधार पर प्रस्तुत प्रसंग में निधि का अर्थ है—ऐसी धन राशि जो किसी विशेष उद्देश्य से इकट्ठी करके एक जगह इसलिए रखी गई हो कि आवश्यकता पडने पर उसमे से धन निकाल कर दिया या व्यय किया जा सके; जैसे—गाधी स्मारक निधि=वह निधि जो गाधी जी का स्मारक बनाने के लिए इकट्ठी करके एक जगह रखी हुई हो। इसी प्रकार राज्यो और बडी-बड़ी सस्थाओ के कर्मचारियो के लिए 'निर्वाह-निधि' होती है जिसमे कुछ अश तो कर्मचारियो के वेतन मे से समय-समय पर काट कर अलग रखा जाता है और कुछ अश राजकीय विभाग या सस्थाएँ भी अपनी

ओर से मिला रहती है। जब कर्मचारी अस्वस्थता या वृद्ध होने के कारण काम करने के योग्य नहीं रह जाते अथवा उन पर कोई विपत्ति या संकट आता है तब इस निधि में से ही उन्हें धन दिया जाता है।

अपने परवर्ती और विकसित अर्थ में यह शब्द ऐसे आधान, आधार या पात्र का भी वाचक है जिसमें कोई गुण या द्रव्य यथेष्ट मात्रा में वर्तमान हो, जैसे—गुण निधि, जल निधि, दया निधि आदि। और आगे चलने पर यह जमीन में गाड़ कर रखी हुई बहुत बड़ी धनराशि का भी सूचक होता है।

"न्यास पु० [सं०] का पहला और मौलिक अर्थ है—कोई चीज किसी जगह अच्छी तरह रखना या सभालकर रखना या स्थापित करना। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह उस स्थिति का वाचक है जिसमें कोई व्यक्ति अपना कुछ धन या संपत्ति किसी एक या कई व्यक्तियों को इसलिए सौंप देता है कि वे आगे चलकर दाता की इच्छा के अनुसार उसका उपयोग व्यय और व्यवस्था करें। ऐसा इसी उद्देश्य से किया जाता है कि धन या संपत्ति व्यय नष्ट न होने पावे और उचित कार्यों में लगे। इस प्रकार की व्यवस्था अपने उत्तराधिकारियों के भरण-पोषण, दान धर्म, लोकोपकारी कार्यों आदि की सहायता के विचार से की जाती है। विधिक दृष्टि से जिस व्यक्ति या जिन व्यक्तियों को इस रूप में धन संपत्ति सौंपी जाती है उसकी व्यवस्था का तो उन्हें पूरा अधिकार होता है, पर साथ ही उनका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे उसे नष्ट न होने दें और उसका उपयोग दाता की इच्छा के अनुरूप ही करें।

गोलक पु० [सं०] का प्रारम्भिक अर्थ है किसी प्रकार का गोल अथवा गोलाकार पिंड। इसी आधार पर इसके कई अर्थ हो गए हैं, जैसे—आँख का डेला या पुतली, मिट्टी का घड़ा आदि। आगे चलकर यह शब्द उस थैली या सदूक का भी वाचक हो गया जिसमें—(क) दुकानदार लोग रोज की बिक्री के रुपए आदि रखते हैं, और (ख) देहातों आदि में लोकोपकारी अथवा सार्वजनिक कामों के लिए चंदा इकट्ठा करके रखते हैं। इस अर्थ में अधिकतर स्थानों में इसका स्थानिक रूप गुल्लक प्रचलित है।

परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में गोलक ऐसी धन राशि या निधि का वाचक है जिसमें बहुत से लोग अपनी इच्छा से अथवा अपने हिस्से के अनुसार कुछ रकम जमा करते हैं, और तब निश्चित नियमों के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर अथवा दूसरों को देने के लिए उसमें से धन निकालते हैं। धन के सिवाय 'गोलक' में अन्न आदि या ऐसे ही और कुछ पदार्थ इकट्ठा करके रखे जाते हैं। उदाहरणार्थ—यदि हमारे यहाँ सभी देशों या राज्यों से थोड़ा थोड़ा गेहूँ या

चीनी इकट्ठी करके इस लिए रखी जाय की जब जिस देश या राज्य को विशेष आवश्यकता हो तब उसमे से कुछ अश उसे दे दिया जाय, तो ऐसे भण्डार को 'गोलक' कहेगे।

यह शब्द है तो वस्तुत: पु० ही, परन्तु लोक-व्यवहार मे इसका प्रयोग प्राय: स्त्री० रूप मे ही देखने मे आता है। × ×

निमित्त कारण—पुं० [सं०] दे० 'कारण और हेतु' के अन्तर्गत 'कारण'।

नियत्रण—पु॑ [स०] दे० 'अकुश और नियंत्रण'।

नियति—स्त्री० [स०]=विधि, दे० 'विधि, विधान और सविधान'।

निरंकुश—वि० [स०] दे० 'अकुश और नियन्त्रण'।

निरखना—स० [स० निरीक्षण] दे० 'देखना, घूरना, झाँकना, ताकना, निरखना और निहारना'।

निराला—वि० [हिं०] दे० 'अनूठा, अनोखा और निराला'।

निराशावाद—पुं० [स०] दे० 'आशावाद और निराशावाद'।

निरीक्षक—पुं० [सं०] दे० 'निरीक्षण, अधीक्षण, पुनरीक्षण और सर्वेक्षण'।

निरीक्षण (Inspection), अधीक्षण (Superintendence), पर्यवेक्षण (Supervision), पुनरीक्षण (Review), संप्रेक्षण (Observation) और सर्वेक्षण (Survey)

इस वर्ग के शब्द स० ईक्षण मे अलग-अलग उपसर्गो के योग से बने हैं और कुछ विशिष्ट क्षेत्रो मे कामो या बातो को ध्यानपूर्वक अथवा कुछ विशिष्ट उद्देश्य या दृष्टि से देखने के वाचक हैं।

'निरीक्षण' पु० [स०] का साधारण अर्थ देखना है। इसी से हिंदी की निरखना क्रिया बनी है जिसका अर्थ है चकित या मुग्ध होकर देखना।* परन्तु आज-कल पारिभाषिक क्षेत्रो मे इसके साथ कुछ विशिष्ट अर्थ लग गए हैं। प्रशासनिक क्षेत्र मे उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियो के कामो का इस दृष्टि से निरीक्षण करते हैं कि कर्मचारी लोग अपने कर्तव्यो का ठीक तरह से पालन करते हैं या नही और उनके काम ठीक या पूरी तरह से हो रहे हैं या नही। इस प्रकार का निरीक्षण करनेवाला अधिकारी 'निरीक्षक'

* दे० 'देखना, घूरना, झाँकना, ताकना, निरखना और निहारना'।

कहलाता है। इसके सिवाय कुछ बड़े-बड़े बाहरी लोग भी कभी-कभी किसी कार्यालय या विभाग का इस दृष्टि से निरीक्षण करने जाते हैं कि वहाँ किस तरह और कैसे-कैसे काम होते हैं। इस प्रकार के निरीक्षण करनेवाले लोग साधारण दर्शकों के ही रूप में होते हैं और उन्हें कामों की विशेष रूप से जानकारी ही कराई जाती है।

'अधीक्षण' पु० भी प्रशासनिक क्षेत्र का शब्द है, और यह निरीक्षण के कार्य से ऊँचा और बड़ा होता है। अधीक्षण करनेवाला अधिकारी (अधीक्षक) कार्यालय या विभाग के कामों की देख-भाल तो करता ही है, साथ ही वह उसका प्रबन्ध या व्यवस्था भी करता है और सब प्रकार के कार्यों का उचित रूप से संचालन भी करता है।

'पर्यवेक्षण' पु० (स०) कार्य और व्यवहार की दृष्टि से है तो अधीक्षण और निरीक्षण की तरह का ही शब्द परन्तु अधिकार, क्षेत्र और मर्यादा के विचार से इसका स्थान दोनों से कुछ नीचे पड़ता है। इसमें अधीनस्थ और निम्न वर्ग के कार्यकर्ताओं के कामों की दैनिक देख भाल, साधारण व्यवस्था और संचालन का ही अन्तर्भाव होता है।

'पुनरीक्षण' पु० का शब्दार्थ है फिर से या दोबारा। देखना परन्तु पारिभाषिक क्षेत्र में यह किसी काम को जाँचने के लिए फिर से देखने के अर्थ में प्रचलित है। परन्तु विधिक क्षेत्र में इसका एक विशिष्ट अर्थ होता है। जब एक बार किसी मुकदमे का न्यायालय में कोई निर्णय हो चुकता है तब उससे असन्तुष्ट वादी या प्रतिवादी को यदि उसमें कोई त्रुटि दिखाई पड़ती है, तब वह न्यायालय में उसके पुनरीक्षण की प्रार्थना करता है। आशय यही होता है कि न्यायालय फिर से ध्यानपूर्वक इस विषय पर विचार करे और निर्णय की त्रुटि दूर करे।

'सम्प्रेक्षण पु० (सं०) का शब्दार्थ होता है—अच्छी तरह और ध्यानपूर्वक देखना। पर तु प्रस्तुत प्रसग में यह कुछ और अधिक विस्तृत अर्थ का सूचक होता है। हमारे सामने अनेक प्रकार की कार्य घटनाएँ प्रक्रियाएँ, वाद विवाद विचार विमर्श आदि होते रहते हैं। कभी तो हम अपना ज्ञान बढ़ाने कभी उनमें रुचि रखने और कभी उनसे अपना हित साधन करने के लिए उन्हें अच्छी तरह और ध्यानपूर्वक देखते समझते और घूरते रहते हैं, और उनमें की जो बातें हमारे लिए काम की होती हैं उन्हें हम टाँकते या लिखते भी चलते हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक देखते रहने और काम की बातों का संग्रह करते रहने का सामूहिक रूप ही सम्प्रेक्षण कहलाता है। उदाहरणार्थ—(क)

किसी देश के जासूस शत्रुओं की सैनिक गति-विधियो का सप्रेक्षण करते हैं। (ख) ज्योतिषी लोग अपने अध्ययन और नये तथ्यो की जानकारी के लिए आकाश के ग्रहो, नक्षत्रों और पिण्डो की गतिविधियो का सप्रेक्षण करते रहते हैं। (ग) न्यायालयो आदि मे कुछ वकील किसी की ओर से किसी मुकदमे में सारे प्रक्रम का सप्रेक्षण करते हैं। और (घ) आलोचक, कवि, लेखक आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक, लौकिक, सामाजिक आदि क्षेत्रो की कुछ विशिष्ट प्रकार की घटनाओं का सप्रेक्षण करते रहते है। इसमे दो बातें मुख्य होती हैं। एक तो यह कि सप्रेक्षक सब बाते पहले तो अलग रहकर या दूर से ध्यानपूर्वक देखता और अच्छी तरह समझता रहता है; और दूसरे यह कि वह सब बातो का निष्कर्ष या परिणाम निकालकर बाद मे अपनी आवश्यकता और सुभीते के अनुसार उनका उपयोग करता है।

'सर्वेक्षण' का शब्दार्थ है—सब या सब कुछ देखना। परन्तु पारिभाषिक क्षेत्र मे इसका अर्थ होता है—किसी कार्य-क्षेत्र की सब बातो को इस दृष्टि से ध्यानपूर्वक देखना कि उसमें अब तक क्या-क्या काम हो चुके हैं और आगे क्या-क्या काम हो सकते है या होने चाहिएँ। इसमे सभी अगो और तत्त्वो का ध्यानपूर्वक निरीक्षण होता है, जैसे—बिहार मे खनिज पदार्थों का पता लगाने के लिए वहाँ फिर से सर्वेक्षण होने वाला है। इसके सिवाय इसमे किसी विषय का वह सारा विवेचन भी आ जाता है जिसमे पहले के किए हुए सब कामो का विस्तृत उल्लेख या चर्चा हो; जैसे—इस पुस्तक मे व्रज-भाषा के समस्त काव्यो का अच्छा सर्वेक्षण हुआ है। × ×

निरोध—पु० [स०] दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध, निरोध, प्रतिरोध और विरोध'।

निर्देश—पुं० [स०] दे० 'आज्ञा, आदेश, निदेश और निर्देश'।

निर्माण—पुं० [स०] दे० 'उत्पादन, निर्माण, रचना और सरचना'।

निर्वाह-निधि—स्त्री० [स०] दे० 'निधि, न्यास और गोलक'।

निवारण—पु० [स०] दे० 'वारण, निवारण, निषेध और प्रतिषेध'।

निवृत्तिका—स्त्री० [सं०] दे० 'पारितोषिक, पारिश्रमिक, पुरस्कार और आनुतोषिक'।

निशाना—पुं० [फा० निशान] दे० 'उद्देश्य, ध्येय और लक्ष्य'।

निश्चय—पु० [स०] दे० 'सकल्प, निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ'।

निषेध—पुं० [स०] दे० 'वारण, निवारण, वर्जन, निषेध और प्रतिषेध'।

निष्ठा—स्त्री० [स०] दे० 'आस्था, निष्ठा और श्रद्धा'।

निष्पक्ष—वि० [स०] दे० 'उदासीन, तटस्थ और निष्पक्ष'।

प्रस्तुत प्रसग को छोड़कर प्राणियों के व्यवहारों के क्षेत्र म इसके कुछ और अथ भी होते हैं जिनके लिए दे० 'प्रकृति, शील, स्वभाव और मिजाज'।

× ×

निहारना—स० [स० निभालन] दे० 'देखना घूरना, झाँकना, ताकना निरखना और निहारना।

नीतिशास्त्र

Ethics

यह हमारे यहाँ का एक बहुत प्राचीन शास्त्र है। जिसका अध्ययन और विवेचन पाश्चात्य देशों म भी प्राय दो हजार वष पहले से ही होता आया है। यह शास्त्र मनुष्यों को मुख्यत यह बतलाता है कि समाज मे रहकर उसे किस प्रकार के आचरण करने चाहिए अथवा उसकी आचार विधि कसी होनी चाहिए। समाज मे रहकर सबके साथ अच्छी और ठीक तरह से व्यवहार करने की उचित शिक्षा देनेवाला शास्त्र ही वस्तुत नीति शास्त्र कहलाता है। हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से विदुर नीति, शुक्रनीति आदि बहुत स ऐसे ग्र थ चले आ रहे हैं जिनकी गणना नीतिशास्त्र म होती है। होता तो यह मूलत बुद्धि परक ही है, और इसका उद्देश्य भी सामाजिक रहन सहन का आदश स्थापित करना होता है, पर तु देश काल आदि के विचार से इसका प्रकार या स्वरूप एक दूसरे से कुछ भिन्न भी होता है, और आवश्यकतानुसार उसम कुछ परिवतन भी होते रहते हैं। यह मुख्यत हमारे आचार व्यवहार को नियत्रित और सचालित करता है इसलिए प्राचीन काल म हमारे यहाँ इसका एक और नाम व्यवहार दशन' भी था जो विशेष प्रचलित नही हुआ। पर तु आज कल बहुत से लोग अंग्रेजी के Ethics का सूचक मानकर इसे आचार शास्त्र कहने लगे हैं।

× ×

न्यायाधिकरण—पु० [स०] दे० 'आयोग, अधिकरण, न्यायाधिकरण, परिषद् और मडल।

न्यास—पु० [स०] दे० निधि, न्यास और गोलक'।

पचायत मध्यस्थता और सराधन

Arbitration Mediation Conciliation

इस वग क शब्द एसी क्रियाओ और उनके साधनो के वाचक हैं जो दो या अधिक विरोधी दलो या पक्षो के पारस्परिक मत भेद या विरोध दूर करके उनम मेल या समझौता कराने म सहायक होते हैं।

'पंचायत' स्त्री० [सं० पचायतन या स० पंच+हिन्दी आयत प्रत्य०] हमारे यहाँ की वहुत पुरानी सस्था है। पहले जव समाज का इतना विकास नही हुआ था और जगह-जगह सरकारी न्यायालय नही होते थे तव गाँव, बस्ती, मुहल्ले-टोले मे पाँच भले आदमी चुन लिए जाते थे जो लोगो के सव तरह के आपसी झगडे निपटाते थे और मानो न्यायालय का काम करते थे। यही लोग पच कहलाते थे। इनके सिवा पेशेवरो या विरादरियो की भी अलग-अलग पचायतें हुआ करती थी जो आचार-व्यवहार के नियम वनाती और उनका उल्लघन करनेवालो को दड देती थी। इनके प्रमुख या पंच प्राय: चौवरी कहलाते थे। अव भी इसी आधार पर जव दो आदमियो मे झगडा होता है और वे न्यायालय मे नही जाना चाहते तव आपसी झगड़े के निपटारे के लिए पच चुन लिए जाते हैं। पर अव यह आवश्यक नही रह गया है कि पंच संख्या मे पाँच ही हो। वे पाँच से कम भी हो सकते हैं और अधिक भी। हाँ, इतना अवश्य है कि पचो या पचायत का निर्णय दोनो पक्ष मानते हैं और उन्हे मानना पड़ता है। यदि कभी झगड़ा वढकर न्यायालय मे जाता तो पंचायत का निर्णय वहाँ भी तव तक ठीक माना जाता है जव तक यह सिद्ध न हो कि पंचो ने जानवूझकर अन्याय या पक्षपात किया है।

अव स्वतत्र भारत मे राज्य की ओर से ग्राम-पंचायतें वनाने की व्यवस्था हो गई है। इनके पंचो या सदस्यो का समय-समय पर निर्वाचन होता रहता है। ये पचायतें गाँव के झगडे निपटाने के सिवा खेती-वारी की उन्नति, वालको की शिक्षा, गाँव की सफाई और स्वास्थ्य रक्षा आदि लोकपयोगी कार्यो की देख-रेख और व्यवस्था करती हैं।

'मध्यस्थता' स्त्री० [सं०] मध्यस्थ का भाववाचक रूप है। मध्यस्थ का कार्य और पद दोनो इसके अंतर्गत आते हैं मध्यस्थ का अर्थ है—वह जो वीच मे हो अथवा वीच मे पड़कर दोनो पक्षो का झगडा निपटाने मे सहायता दे। मध्यस्थ का काम निर्णय करना नही होता और न किसी पक्ष को दोपी ठहराकर दड देना ही होता है। केवल दोनो पक्षो को समझा वुझाकर ठीक रास्ते पर लाना होता है। पंच तो न्याय और अन्याय का विचार करके निर्णय करते हैं। पर मध्यस्थ का काम झगडे की जड़ दूर करके दोनों पक्षो को आपस मे मिलाना होता है। उत्तर प्रदेश और विहार के गाँवो मे 'मध्यस्थ' को लोग प्राय: 'विचवई' कहते हैं।

'सराधन' पुं० स० राधन मे सं उपसर्ग लगाकर हाल मे वनाया हुआ नया शब्द है। सं० में राधन का अर्थ है—किसी को प्रसन्न और सतुष्ट करना।

शब्द पर पूरे ८ दिन लगाये थे, पर इतना सब कुछ करने पर भी मुझे यही समझकर रुक जाना पड़ा कि अभी इस पर महीनों लगाए जा सकते हैं। पर प्रश्न तो यह है कि इतना समय कहाँ से आए और इसके लिए आवश्यक व्यय तथा साधन कौन जुटाए।

ऊपर 'पड़ना' के जो प्रयोग बतलाए गए हैं, व एक प्रकार से बहुत ही साधारण और नित्य की बोलचाल मे आनेवाले हैं। इनके सिवा इसके विलक्षण प्रयोगो के सम्बन्ध म कुछ ऐसी बातें भी हैं जो या तो व्याकरण के क्षेत्र मे आती हैं या शोध के क्षेत्र मे।

'पड़ना' के मुख्य अथ वही दो हैं जिनके दो उदाहरण ऊपर आरम्भ मे दिए गए हैं। शेष अथ और प्रयोग किसी न किसी रूप मे इन्ही दोनो से परिवर्द्धित, विकसित या विकृत हुए हैं। सद्धान्तिक दृष्टि से यह क्रिया हिन्दी की सकमक क्रिया 'डालना' का अकमक रूप है जसे—किसी चीज म कोई दूसरी चीज डालना और किसी चीज मे कोई दूसरी चीज पडना, कही डेरा डालना और कही डेरा पडना, किसी के नाम कोई रकम डालना और किसी के नाम कोई रकम पडना आदि आदि। अनेक अकमक क्रियाओ के साथ 'पडना का प्रयोग सयोज्य क्रिया के रूप में भी होता है। कही तो इससे किसी क्रिया का आकस्मिक आरभ सूचित होता है, जसे—कुछ देख या सुन कर चौंक या हस पडना, बिना सोचे समझे घर से चल या निकल पडना। और कही इससे किसी क्रिया या व्यापार का घटित, पूण या समाप्त होना सूचित होता है, जसे—कूद पडना, घूम पडना, फट पडना आदि। कुछ अवस्थाओ मे यह क्रिया किसी प्रकार की बाध्यता या विवशता की भी सूचक होती है, जसे—मुझे रोज उनके घर जाना (या जाकर बैठना) पडता है। परन्तु ऐसा मुख्यत क्रियाथक सज्ञाओ के प्रसग म ही होता है। अवधारण-बोधक क्रियाओ के साथ लगकर यह क्रिया बहुत कुछ 'जाना' या होना' की तरह का अथ देती है और उन सकमक क्रियाओ को अकमक क्रियाओ का सा रूप दे देती है, जसे—जान पडना, दिखाई पडना, समझ पडना आदि। कुछ अवस्थाओ मे यह क्रिया जाना' से कुछ भिन्न भाव भी सूचित करती है, जसे— वह कूद जायगा' मे तो बहुत कुछ योग्यता, शक्ति सामथ्य आदि का भाव है, पर 'वह कूद पडेगा मे अधिकतर सम्भावना का भाव ही प्रधान है। कुछ सज्ञाओं के साथ लगकर यह क्रिया साधारण आना' या 'होना की तरह का भी अथ देती है जसे—खयाल पडना याद पडना आदि। कभी कभी इस क्रिया के योग से कुछ पदों मे मुहावरे का तत्व भी आ लगता

है; जैसे--(१) ऐसी समझ पर पत्थर पड़े। (२) दौलत तो मानो उनके घर फटी पड़ती है। (३) बहुत बोलने (या सरदी लगने) से गला पड (अर्थात् बैठ) जाता है। (४) वह अकेला ही दो आदमियो पर भारी पडता है। (५) इस तरह हाथ धोकर किसी के पीछे पडना ठीक नही है। (६) राणा की सेना रातोंरात शत्रुओ पर जा पडी, या टूट पड़ी आदि आदि। कुछ अवस्थाओ मे यह विशुद्ध शक्यता या सभावना की भी सूचक होती है; जैसे-बन पडा तो मैं किसी दिन वहाँ जाऊँगा। कभी-कभी यह किसी क्रिया की तुल्यता या समकक्षता भी प्रकट करती है; जैसे--(क) तुम तो आस-पास बैठे हुए लोगो पर गिरे पडते हो। (ख) वह खाने-पीने की चीजो पर गिरा पड़ता है, आदि आदि। × ×

पद्धति परिपाटी और प्रणाली

पद्धति	परिपाटी	प्रणाली
1. System	1 Ways	Channal
2. Method	2 Mode	

इस वर्ग के शब्द ऐसे ढगो या प्रकारो के वाचक हैं जिनका उपयोग कोई उद्देश्य या कार्य पूरा करने के समय करना पडता या किया जाता है।

'पद्धति' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है चलने के समय पैरो के आघात से बना हुआ चिह्न या निशान। इसी लिए आगे चलकर इसका प्रयोग पगडडी, पथ, मार्ग आदि सूचित करने के लिए होने लगा था। पर आज-कल इसका मुख्य अर्थ हो गया है—कोई काम करने का ऐसा ढग या प्रकार जो बहुत दिनो से प्राय: एक ही रूप मे चला आ रहा हो; और जिसमे सहसा किसी प्रकार का परिवर्तन करने के लिए विशेष अवकाश न हो। इसके प्रयोग के आधार पर हम कह सकते हैं इसके मूल मे किसी प्रकार की कला, विधान शास्त्र आदि का कोई ऐसा मूल सिद्धान्त होता है जो लोक मे पूर्णत: प्रचलित भी हो और मान्य भी; जैसे—वेद-पाठ की पद्धति, शिक्षा पद्धति आदि। इसी आधार पर ऐसी पुस्तक को भी पद्धति कहने लगे थे जिसमे उक्त प्रकार के मार्ग-दर्शक नियमो, विधानो आदि का निरूपण होता था; जैसे—विवाह पद्धति आदि।

'परिपाटी' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—अच्छी तरह खिची हुई और स्पष्ट रेखा। आगे चलकर यह शब्द क्रम, असला आदि का भी वाचक हो गया था। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे यह पद्धति का बहुत कुछ समार्थक बन गया है। फिर भी एक बात मे यह उससे कुछ भिन्न है। इसमे कला, विधान, शास्त्र

आदि के नियमों और सिद्धान्तों वाला तत्त्व नहीं है, जो पद्धति में है। इसके सिवा इसका प्रयोग जातियों वर्गों आदि में प्रचलित कुछ विशिष्ट प्रकार की प्रथाओं रीतियों, आदि के सम्बन्ध में भी देखने में आता है। इसी लिए कहा जाता है कि बड़ों ने जो परिपाटी चलाई है हम भी उसी का अनुसरण (या पालन) करेंगे।

'प्रणाली' स्त्री० [सं०] का मूल अर्थ है—पानी बहने की नाली। इसी लिए आगे चलकर यह शब्द जल की धारा, बहाव, स्रोत आदि के सम्बन्ध में होने लगा था। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह शब्द भी कोई काम करने के विशिष्ट ढंग या प्रकार का सूचक हो गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसके मूल में उपयुक्तता औचित्य और परम्परागत नियम या विधान का भाव मुख्य है।*

इस कोटि के और शब्दों के विवेचन के लिए दे० 'रीति, प्रथा, और रूढि।
× ×

परख—स्त्री० दे० 'जाँच, पड़ताल और परख'।

परादेश—पु० [सं०] दे० 'अध्यादेश, परादेश और समादेश'।

परामर्श—पु० [सं०] विचार, विमर्श और परामर्श'।

परिकलन—पु० [सं०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन'।

परिगणन—पु० [सं०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन'।

परिचर्चा, परिसवाद और विचारगोष्ठी (या सगोष्ठी)

Seminar Symposium

इस वर्ग के शब्द ऐसी सभा-समितियों और उनके कार्यों के वाचक हैं जिनका आवाहन किसी विशिष्ट विषय पर विचार करने के लिए होता है।

'परिचर्चा' स० चर्चा में 'परि' उपसर्ग लगाकर अभी हाल में बनाया हुआ नया शब्द है। साधारणतः जब कोई विशेष विचारणीय विषय उपस्थित

---

* अ० में Channal का एक और अर्थ होता है—द्वार, मार्ग या रास्ता। कहते हैं कि यह आवेदन proper channal से अर्थात् आना चाहिए। यह उस विशिष्ट अधिकारी या विभाग के द्वारा आना चाहिए जिससे इसका मुख्य सम्बन्ध है। हिन्दी में यह प्रयोग अभी तक नहीं आया है। परन्तु आगे चलकर यदि आवश्यकता हो तो उक्त अर्थ में प्रणाली का प्रयोग हो सकता है।

होता है, तब उस पर चर्चा या बात-चीत करने के लिए छोटी सभा या समिति बुलाई जाती है जिसमें उस विषय पर लोग आपस मे बात-चीत करते और अपना मत व्यक्त करते हैं। यही बात-चीत परिचर्चा कहलाती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमे जो लोग उपस्थित होते हैं, वे सभी प्रस्तुत विषय पर अपना-अपना मत या विचार सबको बतलाते हैं।

'परिसंवाद' को हम उक्त परिचर्चा का छोटा और संक्षिप्त रूप ही कह सकते हैं। इसका प्रचलन इधर कुछ दिनो से रेडियो पर होने लगा है। इसमे दो-चार आदमी मिलकर किसी साधारण और हलके विषय पर आपस में कुछ बात-चीत करते और अपने विचार प्रकट करते हैं। इसका प्रयोग किसी विषय मे निष्कर्ष तक पहुँचने की अपेक्षा प्रायः श्रोताओ का मनोरंजन करने के लिए ही होता है।

'विचार गोष्ठी' भी है तो बहुत कुछ इसी प्रकार की बात-चीत परन्तु कुछ बातो मे वह कुछ और आगे बढ़ी होती है। इसका विचारणीय विषय अपेक्षतया अधिक गम्भीर और गहन होता है और इस सम्बन्ध मे कुछ विशिष्ट विचारशील विद्वान् ही अपना अनुसंधानात्मक मत या विचार प्रकट करते हैं; और शेष उपस्थित लोग दर्शक तथा श्रोता मात्र होते हैं।

'संगोष्ठी' उक्त विचार-गोष्ठी का ही पर्याय है और संक्षिप्त तथा सुगम होने के कारण उसके स्थान पर हाल ही मे प्रयुक्त होने लगा है। × ×

परिज्ञान—पुं० [सं०] दे० 'ज्ञान, परिज्ञान और प्रज्ञान'।

परिज्ञापन—पुं० [सं०] दे० 'घोषणा, प्रख्यापन, परिज्ञापन और प्रवर्तन'।

परिताप—पुं० [सं०] दे० 'ताप, परिताप, पश्चात्ताप, मनस्ताप और संताप'।

परिदान—पुं० [सं०] दे० 'दान, अंशदान, अधिदान, अनुदान, परिदान और प्रदान'।

परिणाम और फल

Consquence Result

ये शब्द ऐसी घटना या स्थिति के वाचक हैं जो किसी कारण और कार्य के अंत मे उत्पन्न होती या सामने आती है। दार्शनिक दृष्टि से 'परिणाम' प्रकृति का स्वभाव माना गया है। हर चीज धीरे-धीरे अपना रूप छोडकर जो दूसरा रूप धारण करती है। मूलत. उसी को 'परिणाम' कहते है। अवस्था या रूप मे समयानुसार होनेवाला परिवर्तन ही परिणाम है; जैसे—

दही जमे हुए दूध का अथवा राख जलती हुई लकड़ी का परिणाम है। परन्तु लौकिक क्षेत्र मे इसका अर्थ कुछ और विकसित हो गया है। जब कोई काम या घटना क्रमानुसार किसी कारणवश आगे बढती चलती है तब तक उसका रूप मे अंत मे उसकी जो स्थिति सामने आती है उसी को परिणाम कहते हैं। यह घटनाओं आदि का क्रम विकास मात्र है जैसे—इस वाद विवाद का परिणाम यह हुआ कि काम अच्छे ढग से होने लगा है। इसका सम्बन्ध मूल कारण से होता है।

'फल' भी तो बहुत कुछ वही है जो 'परिणाम' है फिर भी फल एक बात मे 'परिणाम' से कुछ आगे बढा हुआ होता है। परिणाम तो क्रमिक रूप से घटित होनेवाली स्थिति मात्र है, परन्तु फल उस स्थिति के कारण उत्पन्न होनेवाले भोग का सूचक है। वृक्षों मे जो फल लगते हैं लोगों के भोग के लिए ही होते हैं। उसी प्रकार फल भी उस भोग का सूचक है जो मनुष्यों को कोई काम करने पर अथवा कोई घटना घटित होने पर भोगना पड़ता है। परिणाम तो अच्छा या बुरा ही है, परन्तु मनुष्य को उस परिणाम का जो अच्छा या बुरा भोग भोगना पड़ता है वही फल है, जैसे—महायुद्ध का परिणाम तो जनसंहार और व्यापक विनाश होता है परन्तु उसका फल आनेवाली पीढियों को भोगना पडता है। हिन्दी मे इन दोनो शब्दों के स्थान पर उर्दू का 'नतीजा' (फा० नतीज) भी प्राय प्रयुक्त होता है। × ×

परिपक्व पुष्ट और प्रौढ

Ripened Mature

इस वर्ग के विशेषण प्राणियो के अतिरिक्त कुछ और विशिष्ट पदार्थों तथा बातों के सम्बन्ध मे यह सूचित करने के लिए होते हैं कि वे अपनी आरम्भिक अवस्था से बढकर इस योग्य हो गए हैं कि ठीक तरह से अपना पूरा काम कर सकें या उपयोग मे आ सकें।

'परिपक्व' [स०] का पहला अर्थ है—अच्छी तरह पका हुआ, जैसे—परिपक्व अन्न, परिपक्व फल आदि। परन्तु लाक्षणिक रूप मे यह अभिवृद्धि और विकास की उपस्थिति का सूचक है जिसमे कोई चीज या बात अपना काम कर सकने के योग्य हो जाती है। परिपक्व बुद्धि का अर्थ होता है—ऐसी बुद्धि जो लड़कपन पार कर चुकने पर मनुष्य मे आती है और जो उसका समझदार होना सूचित करती है। परिपक्व विचार का आशय होता है—ऐसा

विचार जो अच्छी तरह समझ-बूझ कर स्थिर किया गया हो और जिसमें किसी प्रकार के भ्रम और भ्रान्ति के लिए विशेष अवकाश न रह गया हो।

'पुष्ट' [सं०] का पहला और मूल अर्थ है—जिसका अच्छी तरह पोषण हुआ हो; और फलतः जिसमे यथेष्ट वल या शक्ति आ गई हो। इसी लिए मोटे-ताजे पशुओ और मनुष्यो को हृष्ट-पुष्ट कहते हैं; परन्तु इससे आगे चल कर लाक्षणिक रूप मे यह और भी कई प्रकार के अर्थ सूचित करता है। जिस काम या वात मे कोई कचाई या कोर-कसर न हो और इसी लिए जिसे हम दृढ़ आधार मान कर कुछ कर या कह सकते हों उसे भी पुष्ट कहते हैं; जैसे—पुष्ट आधार, पुष्ट प्रमाण आदि। जो कथन प्रमाणों आदि से सिद्ध हो सकता हो अथवा हो चुका हो उसे भी पुष्ट कहते हैं; और जो उपयुक्त अधिकारी की ओर से मान्य या समर्थित हो चुका हो, वह भी पुष्ट कहलाता है; जैसे—दोनो पक्षो के द्वारा मान्य तथा हस्ताक्षरित होने पर ही कोई सन्धि पुष्ट होती है।

'प्रौढ़' संस्कृत 'ऊढ' मे उपसर्ग लगने से वना है। ऊढ का मुख्य अर्थ है—विवाहित पुरुष, इसी का स्त्रीलिङ्ग रूप ऊढा विवाहिता स्त्री होता है। इसी ऊढा से साहित्य की ऊढा, अनूढा नायिकाओ का नामकरण हुआ है। विशेषण रूप मे प्रौढ़ का अर्थ होता है—जो अच्छी तरह वढकर पुष्ट हो गया हो, या अपनी पूरी वाढ़ तक पहुँच गया हो। इसीलिए यह दृढ़, पक्का, मजवूत, सशक्त आदि के भी अर्थ देता है। परन्तु इसका मुख्य आशय किसी वस्तु या व्यक्ति की उस स्थिति से है जिसमे वह अपने सव काम ठीक तरह से करने मे समर्थ हो जाय। इसी आधार पर कहा जाता है—(क) अभी इस वृक्ष के प्रौढ होने मे एक वर्ष और लगेगा; अर्थात् यह एक वर्ष में फूलने-फलने योग्य हो जाएगा; (ख) वुद्धि के प्रौढ होने मे प्रायः वय का विचार नही होता अर्थात् कुछ लोगो की वुद्धि तो युवावस्था के आरम्भ मे प्रौढ हो जाती है और कुछ लोगों की वुद्धि अधेड़ होने तक भी प्रौढ नही होती; और (ग) गरम देशों के निवासी अपेक्षया जल्दी प्रौढ हो जाते हैं और ठण्ढे देशो के निवासियों को प्रौढ होने मे कुछ देर लगती है; अर्थात् गरम देश के निवासी जल्दी पूर्ण युवक हो जाते हैं और ठण्ढे देशो के निवासियो को पूर्ण युवक होने मे कुछ अधिक समय लगता है। × ×

परिपाटी—स्त्री० [स०] दे० 'पद्धति, परिपाटी और प्रणाली'।

परिमल	सुरभि	और	सौरभ
1 Perfume 2 Fragrance	Perfume		Fragrance

इस वर्ग के शब्द हैं जो सुगन्ध के वाचक हो, पर उनके अर्थों में साधारण सुगंध की तुलना म कुछ अन्तर और विशेषताएँ हैं। सुगंध के विवेचन के लिए देख 'गंध, बू, महक और वास'।

'परिमल' इसका पहला और मूल अर्थ है—अच्छी तरह मलना। इसी आधार पर इसका प्रयोग पहले तो शरीर पर होनेवाली मालिश के सम्बन्ध मे और तब उन उबटनों और सुगन्धित पदार्थों के लिए होने लगा था जो प्राचीन भारत में शरीर पर मले जाते थे। इसी स उन सुगंधि के सम्बन्ध मे भी इसका प्रयोग होने लगा जो उन सुगंधित पदार्थों से निकलती थी और आग बढने पर यह वनो, उपवनों आदि के फूलों और वनस्पतियो से निकलकर चारों ओर या दूर दूर तक फलनेवाली प्राकृतिक सुगंध का वाचक हो गया।

सुरभि स्त्री० [स०] का मूल अर्थ तो गौ और विशेषत गौओ की अधिष्ठात्री देवी और जननी है, परन्तु उसके अन्य अनेक अर्थों म एक अर्थ खुशबू या सुगन्ध भी है। इस अर्थ के विचार से इस शब्द मे कोई खास रगत नही है, हाँ कुछ सुगंधित पदार्थों और पौधो के नाम अवश्य 'सुरभि' हैं।

'सौरभ' पु० [स०] मौलिक और व्युत्पत्तिक दृष्टि से है तो बहुत कुछ वही जो 'सुरभि' है, फिर भी कई बातो म कुछ भिन्न है। मूलत यह विशेषण है जिसके अर्थ हैं—(क) सुरभि सम्बन्धी, (ख) सुरभि से उत्पन्न, (ग) जो सुरभि से प्राप्त हुआ या मिला हो आदि। सज्ञा रूप म यह भी 'सुरभि की तरह खुशबू या सुगन्ध का ही वाचक है। परन्तु अपने परवर्ती और विकसित अर्थ म यह वनस्पतियों और वृक्षो से निकलकर चारो ओर दूर तक फलनेवाली हलकी खुशबू या सुगन्ध का वाचक हो गया है। इसके सिवाय लाक्षणिक रूप मे इसका प्रयोग कीर्ति यश आदि के सम्बन्ध म भी होने लगा है, और अपनी इसी विशेषता के कारण यह 'परिमल से कुछ बढ़ा हुआ है। × ×

परियोजना—स्त्री० [स०] दे० योजना परियोजना और प्रायोजना।

परिरक्षा—स्त्री० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा परिरक्षा, प्रतिरक्षा, संरक्षा और सुरक्षा'।

परिरक्षित राज्य—पुं [सं०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, संरक्षा और सुरक्षा'।

परिलब्धि—स्त्री० [सं०] दे० 'प्राप्ति, लाभ, उपलब्धि और परिलब्धि'।

परिवहन यातायात संचार

परिवहन	यातायात	संचार
1. Transport 2. Traffic	Traffic	Communication

दूर-संचार और भू-संचार

Tele-communication — International-Communication

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओ के वाचक हैं, जिनके फलस्वरूप व्यक्ति, सामग्री, समाचार आदि एक स्थान से दूसरे स्थानो पर आते-जाते या पहुँचाए जाते हैं।

'परिवहन' पुं० [स०] का मुख्य अर्थ है—लोगो को या उनका सामान ढोकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना या पहुँचाना। यह काम नावों रेलों, हवाई जहाजों आदि के द्वारा सारे संसार मे होता है। इसी आधार पर इसके नदी-परिवहन, वायु-परिवहन, सड़क-परिवहन, समुद्र-परिवहन आदि अनेक प्रकार या विभाग हो गए हैं।

'यातायात' पुं० [स०] का अर्थ है—जाना और आना। मनुष्य तो एक स्थान से दूसरे स्थान पर आते जाते रहते ही हैं पर नावों, रेलो, जहाजों आदि का भी यही क्रम चलता है। इसके सिवा सब तरह का माल या सामान भी रेलो, सडको आदि से एक जगह से दूसरी जगह आता-जाता रहता ही है। इस दृष्टि से परिवहन और यातायात मे यदि कोई मुख्य अन्तर है तो यही कि परिवहन मे तो कुछ विशिष्ट साधनो से ढोकर ले जाने का तत्व काम करता है; परन्तु यातायात मे इस तत्त्व का अभाव है। अकाल, भूकंप, युद्ध आदि आपातिक परिस्थितियों मे इस प्रकार के जो काम होते है, उनकी गिनती परिवहन मे ही होती है। कारण यह है कि ऐसी अवस्थाओ मे आदमियो और चीजो को प्राय: विवश होकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना या ले जाना पडता है। जहाँ इस प्रकार की कोई अनिवार्य विवशता नही होती वहाँ साधारणत यातायात का ही प्रयोग होता है।*

---

* यहाँ यह भी ध्यान रहे कि अंग्रेजी के Traffic शब्द मे तो उन विभागो तथा उनके कार्य-कर्ताओं का भी अन्तर्भाव होता है जो ऐसे कार्यो की व्यवस्था और सचालन करते हैं। परन्तु हिन्दी मे 'यातायात' मे इसका

'सचार' पु० [स०] का पहला अर्थ चलना और दूसरा अर्थ चलाना है। परन्तु मुख्य रूप से इसका प्रयोग किसी तत्व या वस्तु का दूसरी वस्तुओं आदि मे प्रविष्ट होकर एक सिरे से दूसरे सिरे तक अथवा दूर दूर तक फलता है, जैसे—(क) मृत शरीर मे प्राणो का फिर से होनेवाला सचार। या (ख) द्वार आदि खुलने पर घर के अन्दर होनेवाला प्रकाश या वायु का सचार। परन्तु आज कल इसका प्रयोग एक नए और विशिष्ट अर्थ म होने लगा है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जो चिट्ठियाँ, पामल, सकेत सादेश, समाचार आदि आते-जाते रहते हैं, उन्ही का यह शब्द विशेष रूप से वाचक हो गया है।

'दूर सचार' पु० [स०] उक्त सचार का वह अंश है, जिसम दूर भाष Telephone तार आदि के द्वारा उक्त काम होते हैं। इनके सिवा एक और पद्धति भी है जिसे लोग साधारणत 'बिना तार का तार' कहते हैं, परन्तु तात्विक दृष्टि से जो निरर्थक है। इस पद मे तार भी है और बिना तार का तार भी है। यह तो वसा ही है जसा बिना आदमी का आदमी या बिना पानी का पानी। इसके स्थान पर तार हीन पद्धति का प्रयोग हो तो कही अच्छा हो। आधुनिक विज्ञान ने सारे आकाश म फली हुई ऐसी सूक्ष्म तरगो Microwaves का पता लगाया है जो बिना किसी दृश्य या प्रत्यक्ष साधन के सकेत, समाचार आदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाती हैं। लोक मे सबसे अधिक प्रचलित रेडियो के सब काम तो ऐसी तरगो से होते ही हैं, पर अब इनके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर चित्र आदि भेजने और एक स्थान के दृश्य हू बहू दूसरे स्थान पर दिखाने के यत्र और साधन भी प्रस्तुत हो गए हैं। तार द्वारा भेजे जाने वाले समाचारों आदि म तो उस दशा म बाधा भी होती है जब बीच के तार टूट जाते हैं अथवा उनका सयोजक सम्बन्ध किसी प्रकार विच्छिन्न भी हो जाता है। परन्तु एक तो सूक्ष्म तरगो द्वारा भेजे जानेवाले समाचारो मे ऐसी कोई बाधा नही होती, और दूसरे काम भी बहुत जल्दी होता है और समय की बचत भी। आज-कल दूर-दूर के देशो और स्थानों मे उसी प्रकार के सचार सम्बन्ध स्थापित होने लगे हैं।

अन्तर्भाव नही होता है। हाँ परिवहन म अवश्य हो सकता है और होना चाहिए जसे—परिवहन विभाग और उसके अधिकारी। इसके सिवा चोरी से अफीम अथवा त्रिया बच्चो के क्रय विक्रय का जो अनतिक और विधि विरुद्ध कार बार होता है वह भी अग्रेजी के Traffic के क्षेत्र म आ जाता है, परन्तु हमारे यहाँ परिवहन अथवा यातायात म ऐसी कोई विवक्षा नही है। हमारे यहाँ ऐसे कामो की गिनती तस्कर व्यापार' म ही होगी।

'भू-सचार' पु॑० [सं०] को हम उक्त दूर सचार का और भी विकसित तथा विस्तृत रूप कह सकते हैं। उसके द्वारा उक्त प्रकार के सव काम संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक और प्रायः तत्काल होने लगे हैं। अव वैज्ञानिको ने ऐसे कृत्रिम उपग्रह वना लिए हैं जो वरावर पृथ्वी से वहुत ऊँचाई पर पहुँचकर दिन रात उसके चक्कर लगाते रहते हैं। इन उपग्रहो मे ऐसे यंत्र लगे रहते हैं जो पृथ्वी से आए हुए समाचार ग्रहण भी कर लेते हैं और दूसरे स्थानो पर भेज भी देते हैं। यही क्रिया अव भू-संचार के नाम से प्रसिद्ध है।

परिवार नियोजन—पु० [सं०] दे० 'गर्भ-निरोध, गर्भ-पात, गर्भ स्राव और भ्रूण-हत्या।

परिवेश	परिस्थिति	पर्यावरण
1. Environment	Circumstances	Atmosphere
2. Surrounding		

पृष्ठ-भूमि	और	भूमिका
Background		1. Ground, 2. Background, 3. Role

इस वर्ग के शब्द ऐसे स्थानो, स्थितियो आदि के वाचक हैं, जिनमे व्यक्ति रहकर जीवन-यापन करते हैं, और जिनसे प्रभावित होकर वे अनेक प्रकार के आचरण, कार्य और व्यवहार करते हैं।

'परिवेश' [सं०] का पहला अर्थ है घेरा या परिधि; और दूसरा अर्थ है—वह भा-मण्डल या प्रभा-मण्डल जो उज्वल पदार्थों के चारो ओर और वड़े वड़े महापुरुषो के मुख-मण्डल के चारो ओर या तो दिखाई देता है या कल्पित कर लिया जाता है; परन्तु प्रस्तुत प्रसंग से इसका अर्थ होता है—आस पास की वे अवस्थाएँ आदि जिनका मनुष्य के कार्यों और व्यवहारो पर परिचालक प्रभाव होता है। इसमे आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक स्थितियो का भी अन्तर्भाव माना जाता है; जैसे—जिस देहाती परिवेश मे उनकी वाल्यावस्था और युवावस्था वीती थी, उसमे उनके लिए किसी प्रकार का औद्योगिक, वैज्ञानिक या शैक्षणिक उन्नति के लिए कोई अवकाश नही था। अर्थात् वे वहाँ रहकर अच्छी या विशेष उन्नति नही कर सकते थे। जीव-जन्तुओ वनस्पतियो आदि के प्रसंग मे इस शब्द के अन्तर्गत उन जलाशयो, पर्वतों वनो आदि का भी अन्तर्भाव हो जाता है। जिनके आस-पास या वीच मे रहकर वे जीवन विताते या विचरण करते हैं।

'परिस्थिति' संस्कृत के 'स्थिति' शब्द में 'परि' उपसर्ग लगाकर बनाया गया है। इसे हम परिवेश का कुछ संकीर्ण या संकुचित रूप कह सकते हैं। यह व्यक्ति की उस विशिष्ट अवस्था का वाचक है जिसमें वह काल चक्र, घटना-चक्र आदि के प्रभाव में पड़कर कोई काम करता है। 'परिस्थिति' सदा बाहरी बातों के संयोग से बनती है। हमारे आस-पास जो घटनाएँ, चीजें आदि होती हैं, उन्हीं का समन्वित रूप हमारी 'परिस्थिति' है। हमारी स्थिति' अच्छी होने पर भी सम्भव है कि प्रतिकूल 'परिस्थितियों' के कारण हम कोई अच्छा काम आरम्भ न कर सकें, या उसे आरम्भ करने पर भी उसमें सफल न हो सकें। आरम्भ में फसल अच्छी होने पर भी, हो सकता है कि बाद में 'परिस्थितियों' (उपयुक्त वर्षा के अभाव, असामयिक वर्षा अथवा रोग आदि) के कारण खराब हो जाय या बिलकुल नष्ट हो जाय। अपराध करने पर भी कोई अपराधी केवल 'परिस्थितियों' (किसी बहुत बड़े अधिकारी का सम्बन्धी होने, विकट और घातक रोग से पीड़ित होने अथवा बड़े लोगों के बीच बचाव करने आदि) के कारण दंड से बच सकता है। युद्ध आदि की 'परिस्थितियों' के कारण ही किसी साधारण समाचार-पत्र का प्रचार भी बढ़ सकता है, और आयात, उपज आदि की प्रतिकूल 'परिस्थितियों' के कारण अनाज या कपड़े का भाव गिर भी सकता है। हम कह सकते हैं कि इधर कई वर्षों से भारत को अनेक विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है। आशय यही है कि इधर कुछ वर्षों से कुछ ऐसी नई और विलक्षण घटनाएँ हो रही हैं जो भारत के सामने अनेक विकट समस्याएँ उपस्थित कर रही हैं। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि अनुकूल परिस्थिति हमारे कार्य साधन में सहायक होती है और प्रतिकूल परिस्थिति उसमें बाधक होती है।

'पर्यावरण' संस्कृत के 'आवरण' में परि उपसर्ग लगने से बना है। इसका पुराना अर्थ तो आवरण या पर्दा ही है परन्तु आज-कल इसमें एक नई स्थिति का आशय सूचित करनेवाला अर्थ भी लग गया है।*

---

* पहले यह नया आशय या भाव सूचित करने के लिए वातावरण और वायु मण्डल शब्दों का प्रयोग होता था। परन्तु वातावरण और वायु मण्डल दोनों वस्तुतः उस वाष्पीय गोलाकार आवरण को कहते हैं, जो हमारी सारी पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है, अथवा अन्यान्य आकाशस्थ ग्रहों पिंडों को घेरे रहता है। ये दोनों शब्द अंग्रेजी के Atmosphere के समानक हैं परन्तु Atmosphere का उक्त अर्थ के सिवा एक दूसरा अर्थ भी होता है, और वही दूसरा अर्थ या भाव सूचित करने के लिए इधर हाल में 'पर्यावरण' शब्द बनाया गया है।

यह 'परिस्थिति' की तुलना मे कुछ अधिक विस्तृत क्षेत्र का और परिवेश की तुलना मे कुछ परिमित या सीमित क्षेत्र का सूचक है। इसमे किसी ऐसी विशिष्ट कालावधि, घटना-चक्र, जन-समाज, स्थल आदि का भाव भी निहित है, जिसकी कोई पृथक् और स्वतंत्र सत्ता होती है और जिसका मनुष्य की जीवन चर्चा और मन पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है, जैसे कवि पर किसी एक समाज के पर्यावरण का विशेष प्रभाव पडता है।—डा० सम्पूर्णानन्द का आशय यही है कि कवि जिस काल देश और समाज मे जन्म लेता और रहता है, उसका प्रभाव उसके मन पर भी और फलतः उसकी कविता आदि पर भी अवश्य पड़ता है।

'पृष्ठभूमि' (स०) का पुराना अर्थ तो मकान के सबसे ऊपर का खण्ड था; परन्तु आज-कल अंग्रेजी के Background के अनुकरण पर इसमे कुछ नया अर्थ या आशय लग गया है। इसका शब्दार्थ है—पीछे या पीठ की ओर की भूमि; साधारणत. चित्रो, रंगमंचो आदि मे पीछे की ओर का जो तल या भाग होता है और जिसपर पर्वतो, वनो आदि के दृश्य अंकित होते हैं उसी को पृष्ठ-भूमि कहते हैं। इसका एक पुराना पर्याय 'पृष्ठिका' भी है। लाक्षणिक रूप मे इसका परवर्ती अर्थ होता है—पहले की वे सब बातें और परिस्थितियाँ जिनके आगे या सामने कोई नई बात या विशेष घटना हो और जिनके साथ मिलान करने पर उस बात या घटना का रूप स्पष्ट होता हो। चित्रो, मूर्तियो आदि मे जो पीछे वाला तल होता है वह आधार मात्र होता और शोभा या सौन्दर्य बढाने के लिए ही प्रस्तुत किया जाता है। आगे चलकर यह शब्द उस अवस्था या स्थिति का भी वाचक हो जाता है जो कुछ पहले की या पुरानी हो; और स्वभावतः जो लोगों की दृष्टि या ध्यान से कुछ ओझल-सी हो गई हो और इसी लिए कुछ बातों का पूर्व-वृत्त भी देना या बतलाना भी आवश्यक हो; जैसे—हिन्दी भाषा या साहित्य की पृष्ठ-भूमि का आशय होगा—भारतीय भाषाओ या साहित्यो की वह पुरानी स्थिति जिससे आगे चलकर वर्तमान हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास हुआ है। जब हम कहते हैं—अंग्रेजो की वे सब पुरानी बाते पृष्ठ-भूमि मे चली गई हैं; तब हमारी आशय यही होता है कि उनकी पुरानी बर्बरता, उनके मध्ययुगीन अत्याचार और इस शती के आरम्भ के प्रताप और वैभव की बहुत सी बातें जन-साधारण की आंखो से ओझल हो गई हैं और लोग उन्हे भूल-से चुके हैं।

'भूमिका' पु० [स०] हमारे यहाँ का बहुत पुराना शब्द है और इसके अनेक अर्थ हैं। इसका पहला और मुख्य अर्थ है—भूमि का कोई ऐसा विशिष्ट

खण्ड या भाग जिसके ऊपर कोई क्रिया, रचना या ऐसी ही कोई और बात हुई या होनी हो। इसे हम आधार भूमि भी कहते हैं। इससे और आगे चलने पर इसका अर्थ होता है ऐसी बातें जो कोई महत्वपूर्ण बात कहने से पहले इसलिए संक्षेप में कही या बतलाई जाती हैं कि वे आधार भूमि का काम दे सकें और जिनके फलस्वरूप आगे चलकर कही जानेवाली महत्वपूर्ण बात का यथेष्ट परिणाम या प्रभाव हो सके। पुस्तकों आदि में जो आमुख, प्रस्तावनाएँ वक्तव्य आदि आरम्भ में दिए जाते हैं, उन्हें भी इसी दृष्टि से 'भूमिका' कहते हैं। ऐसी स्थितियों में भूमिका का अर्थ होता है—वे प्रारम्भिक और मूलभूत बातें जो पुस्तक का उद्देश्य, महत्त्व और विचार क्षेत्र का स्वरूप स्पष्ट कर सकें और जिनमें पुस्तक की आवश्यकता, या उपयोगिता सिद्ध हो सके। आज-कल यह शब्द उन अर्थों और भावों का भी सूचक हो गया है जो ऊपर पृष्ठ भूमि के विवेचन में बतलाए गए हैं। अब तो कुछ लोग इसका प्रयोग उन मूल पात्रों के अर्थ में भी करने लगे हैं, जिनका रूप धारण करके अभिनेता अभिनय करते हैं, जैसे—इस अभिनय में श्री प्रेमशंकर ने महाराज शिवाजी की भूमिका का अच्छी तरह निर्वाह किया था।

× ×

परिषद्—स्त्री० [सं०] दे० 'आयोग अधिकरण, न्यायाधिकरण, परिषद् और मंडल।'

परिसंघ—पुं० [सं०] दे० संघ, परिसंघ और राष्ट्र मंडल'।

परिसंपत्ति—स्त्री० [सं०] दे० 'धन, वित्त, वैभव, सम्पत्ति और परिसम्पत्ति'।

परिसंवाद—पुं० [सं०] दे० 'परिचर्चा, परिसंवाद और विचार गोष्ठी या (संगोष्ठी)।

परिस्थिति—स्त्री० दे० 'परिवेश, परिस्थिति, पर्यावरण, पृष्ठभूमि और भूमिका'।

परिहास—पुं० [सं०] दे० 'हँसी दिल्लगी, परिहास, चुहल और फबती'।

पर्यवेक्षण—पुं० [सं०] दे० 'निरीक्षण अधीक्षण, पर्यवेक्षण, पुनरीक्षण सप्रेक्षण और सर्वेक्षण।

पर्याय—पुं० [सं०] दे० 'एकार्थक, पर्याय, समानक और समार्थक'।

पर्यावरण—पुं० [सं०] 'दे० परिवेश, परिस्थित, पर्यावरण, पृष्ठ भूमि और भूमिका।

'पर्याप्त' और 'यथेष्ट'
Sufficient Enough

कुछ दिन हुए, मुझे अपने एक परम आदरणीय और सुयोग्य मित्र का एक पत्र मिला था, जिसमे लिखा था—'इससे मुझे पर्याप्त चिन्ता हो गई है।' पढते ही मुझे इसमे का 'पर्याप्त' शब्द कुछ खटका। मैं सोचने लगा कि इसमे खटक क्यो है और कहाँ से या कैसे आई। मेरा ध्यान इसी से मिलते-जुलते शब्द 'यथेष्ट' की ओर गया। मैं सोचने लगा कि क्या यहाँ 'पर्याप्त' की जगह 'यथेष्ट' का प्रयोग ठीक होगा। पर वह भी मुझे ठीक नही जान पड़ा। मैं दोनो की खटक का कारण ढूँढने लगा। मेरे ध्यान मे आया कि इस खटक का कारण इन शब्दों के मूल व्युत्पत्तिक अर्थो तथा मुख्य विवक्षाओं मे होना चाहिए। इसी चिंतन के फलस्वरूप मेरे ध्यान मे कुछ और बातें भी आईं।

'पर्याप्त' शब्द वस्तुतः परि+आप्तः से बना है, जिसका शब्दार्थ है—जो अच्छी या पूरी तरह से प्राप्त हुआ हो। इसी लिए हम कहते हैं—भगवान् ने उन्हे पर्याप्त बुद्धि और विद्या (अथवा सम्पत्ति) भी दी थी। यहाँ तक तो ठीक है, पर आगे चलकर हिंदी में इस शब्द के साथ एक दूसरी विवक्षा भी लग गई, जिसके कारण ऊपर बतलाई हुई पहली विवक्षा गौण हो जाती है। हिंदी मे 'पर्याप्त' का प्रयोग प्रायः ऐसी मात्रा या मान सूचित करने के लिए होता है जिससे हमारी आवश्यकता की अच्छी तरह पूर्ति हो सकती हो, और उस पूर्ति के उपरान्त भी जिसमे से कुछ अश बच रहने की सम्भावना हो। अर्थात् इसमे किसी वस्तु की अधिकतावाले भाव के साथ आवश्यकता या उपयोगितावाला तत्त्व भी आकर सम्मिलित हो जाता है। इसी लिए हम कहते हैं—(क) इस काम के लिए आपने जितना धन भेजा है, उतना पर्याप्त है; अथवा (ख) जाड़ा बिताने के लिए इतने गरम कपड़े पर्याप्त होगे। सस्कृत और हिंदी कोशों मे इसका एक और तीसरा अर्थ 'बहुत अधिक' भी मिलता है। परन्तु यह तीसरा अर्थ ऐसा नही है जो हर जगह ठीक और पूरा काम दे सके। उदाहरणार्थ, हम कभी यह नही कहते—वह पर्याप्त दुष्ट (या मूर्ख) है। कारण यही है कि 'पर्याप्त' में मुख्य विवक्षा आवश्यकता, उपयोगिता, औचित्य आदि से सम्बद्ध है, और दुष्टता (या मूर्खता) ऐसी चीज या बात नही है जो आवश्यक, उपयोगी या उचित कही अथवा मानी जा सकती हो। अर्थ-बोध के सम्बन्ध मे साधारण नियम यही है कि शब्द की जो विवक्षा प्रधान तथा प्रसिद्ध होती है, उसी की ओर पाठक या श्रोता का ध्यान पहले जाता है। अतः जब हमें 'पर्याप्त चिन्ता' सरीखे प्रयोग

दिखाई देते है, तब हम उनमे कुछ खटक जान पडती है। 'पर्याप्त' शब्द सामने आते ही स्वभावत हमारा ध्यान आवश्यकता या उपयोगिता आदि वाली विवक्षा से प्रभावित रहता है। और इसी लिए हमें 'चिन्ता' के साथ 'पर्याप्त' का प्रयोग खटकता है।

अब जरा 'यथेष्ट' के अर्थ का भी विचार कर लीजिए। 'यथेष्ट' का मूल रूप है—यथा+इष्ट जिसका आशय है—जितना या जैसा इष्ट हो। इसी लिए इसमें इच्छा या कामना वाली विवक्षा प्रधान है। मुख्यत 'यथेष्ट' का प्रयोग ऐसे ही प्रसगो में होना चाहिए जो हमें इष्ट या वाछनीय हो अथवा जिनकी हम कामना करते हो। इसी लिए कहा जाता है—(क) उनके पास यथेष्ट धन था, अथवा (ख) वहाँ हम यथेष्ट सुख मिला। इसी दृष्टि से यह कहना ठीक नही होगा—आज-कल वह यथेष्ट कष्ट (या विपत्ति) मे है। कारण यही है कि कष्ट या विपत्ति कभी किसी को इष्ट नही होती। हम यह अवश्य कहते हैं—अपराधी को यथेष्ट दण्ड मिलना चाहिए। पर दण्ड वाली बात कष्ट वाली बात से इसलिए बिलकुल भिन्न है कि अपराधी को दण्ड मिलना नीति और न्याय दोनो की दृष्टि से इष्ट या वाछनीय होता है। साधारणत विस्तृत रूप में 'यथेष्ट' का दूसरा या परवर्ती अर्थ होता है—बहुत अधिक। इसी लिए हम कहते हैं—आप मेरे साथ यथेष्ट अन्याय कर चुके हैं। ऐसे अवसरो पर 'यथेष्ट' की दोनो विवक्षाएँ काम करती हैं। कहने वाले के दोनो आशय हो सकते हैं। उसका एक आशय तो यह होगा कि आप मेरे साथ जितना अन्याय करना चाहते थे वह सब कर चुके। पर साधारण बोलचाल की दृष्टि से दूसरा आशय यह भी हो सकता है कि आप मेरे साथ बहुत अन्याय कर चुके।

अर्थ-बोध के सम्बन्ध का पहला और साधारण नियम तो हम ऊपर बतला ही चुके हैं। उसका दूसरा नियम यह है कि जहाँ दो या अधिक विवक्षाएँ बहुत कुछ समान रूप से प्रचलित या प्रसिद्ध होती हैं वहाँ या तो अर्थ ग्रहण में कठिनता होती है या खटक। ऐसी कठिनता या खटक ही जिज्ञासु को शब्द के मूल या व्युत्पत्तिक अर्थ की ओर प्रवृत्त करती है और उस मूल शब्द से जो तथ्य प्रधान या मुख्य रूप में प्राप्त होता है उसी के आधार पर प्रस्तुत प्रयोग का आशय ग्रहण किया जाता है। इसी प्रकार के तात्त्विक विवेचन से पता चलता है कि पर्याप्त चिन्ता' और 'अदम्य मूर्खता' सरीखे प्रयोगो में क्यो खटक होती है। पर जब हम यह कहते हैं—'उनके पास जीवन निर्वाह के लिए तो यथेष्ट धन था, परन्तु वे दान-दक्षिणा या सत्

सम्वन्धियो की जितनी सहायता करना चाहते थे, उनके लिए धन पर्याप्त नही था, तो इसमे कुछ भी खटक नही होती।

अरवी का 'काफी' उक्त दोनो शब्दो का समार्थक है। × ×

पलायन—पुं० [स०] दे० 'दौडना, भागना और पलायन'।

पलायनवाद

Escapism

पलायनवाद पु० [स०] कायर और भीरू व्यक्तियो की ऐसी मनोवृत्ति का वाचक शब्द है, जिसके कारण वे जीवन की वास्तविक स्थितियों से वचकर दूर भागने का प्रयत्न और विचार करते हैं। अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह और कर्तव्य के पालन से डर और वचकर कुछ लोग दूर हटना चाहते हैं; और यह सोचते-समझते हैं कि इन सव झंझटो से निकलकर ही निरापद भाव से और सुखपूर्वक रह सकते है। उनकी ऐसी ही प्रवृत्तियों और मनोवृत्तियों का सूचक विचार ही आज-कल पलायनवाद कहलाता है। अपने परवर्ती और विकसित अर्थ मे इसका प्रयोग कला, साहित्य आदि की ऐसी कृतियो और रचनाओ के सम्वन्ध मे भी होने लगा है, जो इस प्रकार की मनोवृत्ति को वढावा देती है; अथवा उनकी तृप्ति के लिए साधन और सुयोग उत्पन्न करती हैं। × ×

पश्चात्ताप—पुं० [स०] दे० 'ताप, परिताप, पश्चाताप, मनस्ताप और सताप'।

पहल—स्त्री० [हिं० पहले] दे० 'छेड़ और पहल'।

पांडुलिपि—स्त्री० [स०] दे० 'पाण्डु-लेख और हस्त-लेख'।

पांडु-लेख और हस्त-लेख

Draft Manuscript

कुछ लोग भूल से उक्त दोनो शब्दो को एक दूसरे का पर्याय समझते हैं; परन्तु इनमे वहुत अन्तर है जो ध्यान मे रखना आवश्यक है।

'पाण्डु' [सं०] विशेषण भी है और सज्ञा भी। विशेषण रूप मे इसका एक अर्थ 'पीला' तो है ही, पर दूसरा अर्थ 'सफेद' भी है। इसी आधार पर पाण्डु का एक अर्थ खडिया (मिट्टी) भी है, जिससे लडके पटिया पर लिखने का अभ्यास करते हैं और जो अव पेंसिल के रूप मे वनने लगी है।

पाण्डु लेख का हमारे यहाँ का पुराना अर्थ है—खड़िया से लिखा हुआ लेख। प्राचीन काल में जब लोगों को कोई महत्त्वपूर्ण लेख लिखना होता था। तब वे पहले खड़िया से जमीन पर या लकड़ी की पटिया पर उसे लिखते थे, और तब उसमें जो घटाना बढ़ाना होता था वह सब घटा बढ़ाकर उसका शुद्ध और सयोजित रूप प्रस्तुत करते थे* और तब उसे ताड़-पत्र अथवा ताम्र पत्र, शिला-खण्ड आदि पर उत्कीर्ण कराते थे। लेख का यही पूर्व रूप पाण्डु लेख कहलाता था। आज कल इसके स्थान पर मसौदा (अ० मस्वद) विशेष प्रचलित है। कुछ दिन पहले भारतीय संविधान के हिंदी अनुवादकों ने इसके स्थान पर 'प्रारूप' चलाना चाहा था पर वह चल नहीं सका। मेरी समझ में यह 'प्रारूप' व्याकरण की दृष्टि से ठीक सिद्ध भी नहीं होता क्योंकि संस्कृत प्र कोई उपसर्ग नहीं है जो इस शब्द में 'रूप' के पहले लगा है। मेरी समझ में इसके स्थान पर प्रालेख (प्र+आलेख) चलाया जा सकता है। कुछ लोग पाडु लेख के स्थान पर 'पाडु लिपि' का भी प्रयोग करते हैं जो अर्थ की दृष्टि से ठीक नहीं है।

'हस्त लेख' पु० [स०] का साधारण अर्थ है—हाथ का लिखा हुआ लेख। परन्तु इसका प्रयोग मुख्यतः दो अर्थों में होता है। प्राचीन काल में जब छापे की कला नहीं चली थी तब ग्रन्थ, लेख्य आदि हाथ से ही लिखकर सुरक्षित रखे जाते थे। इसलिए आज भी इस प्रकार के हाथ से लिखे गये ग्रन्थ, लेख्य आदि हस्त लेख कहे जाते हैं। इसके सिवा आज कल कवि, लेखक आदि स्वयं लिखकर अथवा मुद्र लेखन के द्वारा अपनी कृति का जो रूप प्रस्तुत करके प्रकाशकों, संपादकों आदि के पास छपने के लिए भेजते हैं, उसकी गिनती भी हस्तलेख में ही होती है। इस दूसरे अर्थ में आज-कल 'आलेख' का प्रयोग होने लगा है जो सब तरह से ठीक भी है और हल्का भी है।

λ ×

पाँव, पैर और टाँग
Leg Foot Leg

प्रामाणिक हिन्दी कोश का सम्पादन करते समय मेरा ध्यान इस ओर गया था कि टाँग और पाँव के मुहावरों में कई अन्तर हैं और इनका उल्लेख

* यथा—

पाण्डुलेखेन फलके भूमौ वा प्रथम लिखेत्।
न्यूनाधिक तु सशोध्य पश्चात् पत्रे निवेशयेत् ॥
—आप्टे कृत स० अ० कोश, दूसरा खण्ड, पृष्ठ १००५।

मैंने प्रामाणिक हिन्दी कोश की भूमिका मे इस प्रकार किया था—'शब्द सागर मे टाँग और पाँव से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से मुहावरे अवश्य आये है; पर उन मुहावरो का वर्गीकरण उतना युक्ति-सगत नही हुआ है, जितना होना चाहिए; और इसी लिए बहुत से मुहावरे टाँग और पाँव दोनो के अन्तर्गत आ गये हैं। इस कोश का सम्पादन करते समय मेरे ध्यान मे यह बात आई कि कुछ मुहावरे केवल 'टाँग' के है और कुछ 'पाँव' के। उदाहरणार्थ 'किसी के काम मे टाँग अडाना' तो मुहावरा है, पर 'किसी के काम मे पाँव (या पैर) अडाना' मुहावरा नही है।

प्रयोगो तथा मुहावरो के इसी प्रकार के कई और अन्तर देखकर प्रामाणिक हिन्दी कोश मे मैंने 'टाँग' के मुहावरे 'टाँग' के अन्तर्गत और 'पाँव' के मुहावरे 'पाँव' के अन्तर्गत दिये थे। पर कुछ मुहावरे ऐसे भी थे जो दोनो शब्दो के साथ समान रूप से चलते हैं। ऐसे मुहावरे मैंने इसलिए 'पाँव' के अन्तर्गत रखे थे कि आज-कल 'पाँव' शब्द ही मानक और शिष्ट-सम्मत माना जाता है। 'टाँग' शब्द तो पुराना हो चला है, और कुछ स्थानिक भी है। इसके सिवा अपने कई मुहावरो के कारण वह कुछ ग्राम्य सा भी हो गया है। मुहावरो के क्षेत्र मे कुछ-कुछ इसी प्रकार का अन्तर 'पाँव' और 'पैर' मे भी है, पर उतना नही जितना 'टाँग' और 'पाँव' में है। प्रामाणिक हिन्दी कोश मे भी और मानक हिन्दी कोश मे भी ऐसे सूक्ष्म अन्तरो का यथासाध्य बहुत कुछ ध्यान रखा गया है।*

इस संबध मे एक विलक्षण विचारणीय बात यह है कि टाँग, पाँव और पैर के अर्थो तथा विवक्षाओ का ठीक-ठीक क्षेत्र या मर्यादा ही अभी तक निरूपित नही हो पाई है। तो भी एक प्रकार से कहा जा सकता है कि 'टाँग' तो कमर के नीचे का वह सारा अग है जिसे अँगरेजी मे 'लेग' कहते हैं; और 'पाँव' या 'पैर' मुख्यत: टखने के नीचे का वह अग हैं जिनमे एडी, तलुवा और उँगलियाँ होती है और जिसे अँगरेजी मे 'फुट' कहते हैं। पाँव के सम्बन्ध मे ध्यान रखने योग्य एक और मुख्य बात यह है कि व्यापक अर्थ मे पाँव उस अग को कहते है जिसके आधार पर कोई चीज खडी या

* खेद है कि लिपिक के दृष्टि-दोष के कारण प्रामाणिक हिन्दी कोश के पहले सस्करण मे 'पाँव' और उसके आगे-पीछे के १८-२० शब्द छपने से रह गये थे। इस त्रुटि की पूर्ति उसके दूसरे सस्करण मे कर दी गई थी। यहाँ यह बतला देना भी आवश्यक जान पडता है कि उक्त त्रुटि की ओर मेरा ध्यान माननीय श्रीयुक्त श्रीप्रकाश जी ने आकृष्ट किया था जो उन दिनो असम मे राज्यपाल थे।

ठहरी रहती है। एक प्रसिद्ध कहावत है—मूठ के पाँव नहीं होते। इस प्रसग म किसी को पाँव' के स्थान पर पर' का प्रयोग करते हुए न तो कहीं देखा है, न सुना है। जिस प्रकार अगरेजी म कभी कभी लोग अज्ञान या भूल से एक की जगह दूसरे का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार हिन्दी में भी कर जाते हैं, बल्कि यों कहना चाहिए कि अगरेजी की अपेक्षा हिन्दी म इस प्रय मर्यादा का और भी कम ध्यान रखा जाता है और इसी लिए इसके अर्थों और मुहावरो का ठीक ठीक पार्थक्य तथा विश्लेषण करना और भी कठिन हो जाता है। हिन्दी शब्द सागर म तो सब मुहावरे 'पाँव' के अतगत रखे गए हैं और 'पर' शब्द मे 'पाँव' शब्द का निर्देश मात्र कर दिया गया है, उसका भी मुख्य कारण कदाचित् उक्त कठिनता ही रही है। वास्तव मे हुआ यह है कि पहले तो 'पाँव' शब्द का पूरा विवचन कर दिया गया और इस बात पर सोचा विचारा नही गया कि दोनो के अर्थों और मुहावरो मे कोई अन्तर है या नही, और तब पर' शब्द के सम्पादन के समय 'पाँव का ही निर्देश कर दिया गया। इस प्रकार सारा जोर 'पाँव' शब्द पर आ पडा और 'पर' का भार बिलकुल हलका हो गया। पर राष्ट्र भाषा की प्रस्तुत मर्यादा का ध्यान रखते हुए अब इन दोनो का विश्लेषण इसलिए आवश्यक हो गया कि इससे कुछ भ्रम फल सकता है। हो सकता है कि शब्द सागर मे पाँव शब्द की प्रधानता और 'पर की गौणता देखकर हिन्दी की प्रवत्ति और स्वरूप से अनभिज्ञ अथवा अन्य भाषा भाषी यह निश्चय निकाल बठे कि हिन्दी मे पाँव ही मुख्य और मान्य रूप है 'पर' उसकी अपेक्षा गौण है। पाँव और 'पर' के सम्बन्ध मे ध्यान रखने की मुख्य और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि पाँव अधिकतर पूर्वी क्षेत्रों में चलता है और पर' की चाल प्राय पश्चिम म दिखाई देती है, जसे—'पाँव धरना या धारना' (जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा—तुलसी) पूर्वी बोलचाल है और पर पकडना या रखना, पश्चिमी है। पूरब मे पाँव पखारते और पलोटते हैं पश्चिम म 'पर धोते और दबाते हैं। धरती पाँव' तले से निकलती है, और जमीन परो' तले से। यह ठीक है कि ब्रजभाषा म भी 'पाँव' के प्रयोग मिलते हैं (अब यह बात कहो जनि ऊधो परत ति पाँव तिहारे।—सूर) फिर भी दोनो के सम्बन्ध म मुख्य क्षत्रीय अन्तर पूर्वी और पश्चिमी का ही है। एक बात और है। पाँव वाले क्षेत्र मे पाँव के और पर वाले क्षेत्र म पर के मुहावरे बने और तब दोनो क्षेत्रो के मुहावरों म आदान प्रदान भी हुआ, विशेषत दोनो क्षेत्रो के मध्य म या सीमा पर रहनेवाले लोगो ने दोनो के प्रयोगों और मुहावरो का खूब घाल मेल किया। समानार्थी शब्दो के मुहावरो म इस प्रकार हर-फेर भाषा म प्राय देखने म आता है। उर्दू वालो ने

आसमान' के साथ जो अनेक प्रयोग और मुहावरे जोडे थे उनमे से अनेक अब 'आकाश' के साथ भी चलने लगे हैं। इन्ही सब कारणो से 'पाँव' और पैर' के प्रयोगो के सम्बन्ध मे एक ऐसी जटिल समस्या खडी हो गयी है, जिसके निराकरण के लिए विशेष अध्ययन, छान-बीन और विचार की अपेक्षा है।

'पाँव' और 'पैर' के सम्बन्ध मे ध्यान रखने की एक और बात है। हिन्दी जगत् के अपने पचास-साठ वर्षो के अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि हिन्दी के अनेक मरणोन्मुख शब्दो मे 'पाँव' भी एक है। आज-कल 'पॉव' को छोडकर 'पैर' के प्रयोग की प्रवृत्ति बराबर बढ रही है। इसके कई कारण हैं। 'पैर' कुछ तो पश्चिमी हिन्दी का होने के कारण, कुछ उर्दू वालो की फसाहत के प्रभाव से और कुछ उच्चारण तथा लिखने के सुभीते के विचार से बराबर अधिक प्रचलित होता जा रहा है; और इसके विपरीत 'पॉव' का प्रयोग घटता जा रहा है। यही कारण है कि अब 'पाँव' के के भी अनेक मुहावरो का प्रयोग या तो अविकल रूप मे या परिष्कृत रूप मे 'पैर' के साथ होने लगा है और प्रायः वही शिष्टसम्मत माना जाता है। ऊपर 'पॉव' और 'पैर' के पूर्वी तथा पश्चिमी प्रयोगो के जो कई उदाहरण दिये गये हैं, वही मेरे इस कथन की पुष्टि के लिए यथेष्ट हैं। आगे बढने से पहले मैं 'पॉव' शब्द के रूप के सम्बन्ध मे भी एक बात बतला देना चाहता हूँ। हिन्दी शब्द सागर मे यह शब्द 'पॉव' रूप मे नही, बल्कि 'पावँ' रूप मे आया है। अर्थात् उसमे बीच वाली आकार की मात्रा पर चन्द्रबिंदु नही है, बल्कि अन्तिम 'व' पर है। ऐसा क्यो हुआ, इसकी एक लम्बी कहानी है। मैंने उसी समय इस रूप का विरोध किया था और कहा था कि जब 'आँव', 'काँव', 'गॉव', 'छाँव', 'ठाँव' आदि शब्दो मे आ की मात्रा पर चन्द्रबिन्दु है, तब 'पाँव' मे इसका अपवाद होना ठीक नही है। परन्तु मेरी यह सीधी-सादी युक्ति शिक्षा और निरुक्त के बडे-बडे ढोके लुढकाकर कुचल दी गयी थी, और 'व' पर ही चन्द्रबिंदु लगाया गया था। पर यह रूप हिन्दी में चला नही। चला वही सीधा-सादा रूप जिसका मैंने समर्थन किया था। प्रामाणिक हिन्दी कोश मे भी और मानक हिन्दी कोश मे भी मैंने यही रूप रखा है। बृहत् हिन्दी कोश तथा दूसरे कई कोशो मे भी यही रूप ठीक माना गया है, और इसी के अन्तर्गत सब अर्थ और मुहावरे आये हैं। यहाँ प्रसगवश यह बतला देना भी उचित जान पडता है कि ऐसे शब्दो के अक्षरो के सम्बन्ध मे उर्दूवाले हमारी अपेक्षा अधिक सावधान रहते है। वे ऐसे सभी शब्दो मे अलिफ या आकार की मात्रा के बाद भी 'नून गुन्ना' (चन्द्र-बिन्दु का सूचक वर्ण) रखते है और अन्त मे भी। अर्थात् उर्दू मे लिखे हुए ऐसे शब्द उच्चारण की दृष्टि मे 'गाँवँ' 'पाँवँ' आदि के रूप में लिखे जाते

हैं। परन्तु हिन्दी में कई कारणों से, ऐसा नहीं होता और उन कारणों में एक मुख्य कारण छापे के अक्षरों की कठिनाई भी है।

अब 'पाँव' और 'पर' के मुहावरों की बात लीजिए। धरना, धारना, पसारना, पलटना आदि क्रियाओं का 'पाँव' से जो सम्बन्ध है उसकी चर्चा ऊपर हो चुकी है। बच्चे प्रायः पाँव पाँव ही चलते हैं पर पर नहीं चलते। 'टिकना' और 'ठहरना' के साथ भी प्रायः पाँव का प्रयोग ही देखने में आता है। वहाँ उनके पर नहीं टिके सरीखे प्रयोग अब भले ही होने लगे हों, पर आज कल 'पर नहीं ठहरते' सरीखे प्रयोग कम होते हैं, और प्रायः पाँव नहीं ठहरते का ही अधिक प्रयोग देखा जाता है। प्राचीन काल में पाँव ही रोपा जाता था, पर तो आज भी नहीं रोपा जाता। पाँव निकालना, पाँव फैलाना, पाँव धोकर पीना आदि प्रयोग बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। पर अब ऐसे प्रयोगों में 'पाँव' की जगह 'पर' भी आने लगा है। लाक्षणिक रूप में और 'आधार' के अर्थ में हम अब भी यही कहते हैं—उसके पाँव नहीं हैं। यह नहीं कहते—उसके पर नहीं हैं। इन सब प्रयोगों पर विचार करने से दो और बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह कि 'पाँव' में मुख्य भाव खड़े होने, चलने और शरीर का भार वहन करने का है और दूसरे यह कि 'पाँव' शब्द पूर्वी होने के अतिरिक्त अपेक्षाकृत अधिक पुराना भी है। इसके विपरीत 'पर' में घुटने के नीचे का सारा भाग आ जाता है (यह बात 'पाँव' के सम्बन्ध में भी है) और इसी लिए उसकी सब बातें भी इस शब्द में समाविष्ट हैं। दोनों के प्रयोगों आदि पर विचार करने से एक तीसरी बात यह भी जान पड़ती है कि पाँव का प्रचलन कम हो रहा है और 'पर' का प्रचलन बढ़ रहा है और यही कारण है कि 'पाँव' के बहुत से पुराने मुहावरे भी अब आकर 'पर' में ही लगने लगे हैं। जहाँ पहले 'आह पाँव परी आयी' चलता था वहाँ अब लोग अपना काम निकालने के लिए दूसरों के पैरों पड़ने लगे हैं। पाँव पसारिये की जगह अब लोग मौका देखकर पर ही पसारते हैं। मेंहदी जहाँ पहले पाँवों में लगती थी* वहाँ अब परों में भी लगने लगी है। उखाड़ना, काँपना, डगमगाना, थरथराना, दबाना, पकड़ना, पूजना, घिसना, फैलाना, रखना आदि क्रियाओं के साथ 'पाँव और पर' दोनों का प्रयोग प्रायः समान रूप से देखने में आता है, पर पाँव का कुछ कम और 'पर' का कुछ अधिक। इन सब बातों से इसी निश्चय पर पहुँचना पड़ता है

* आहट पै कान, दर पै नजर थी कि नागहाँ।
आई खबर कि पाँव में मेंहदी लगा चुके।

—कोई शायर

कि अब अपेक्षाकृत 'पैर' ही अधिक प्रचलित हो रहा है और इसी लिए, अधिकतर मुहावरे भी पैर के साथ ही सम्बद्ध हो गये हैं। फिर भी 'पाँव' का अब तक कुछ प्राधान्य बना है और कुछ मुहावरे ऐसे भी है जो विशिष्ट रूप से 'पाँव' से ही सम्बद्ध दिखाई देते है। यदि 'पाँव' और 'पैर' के सम्बन्ध मे मेरे उक्त विचारो मे किसी सुविज्ञ सज्जन को कोई भूल दिखाई दे तो वे मुझे अवश्य सूचित करने की कृपा करें। मैं उनका विशेप रूप से कृतज्ञ होऊँगा।

ऊपर 'पाँव' और 'पैर' के साथ ही एक जगह 'टाँग' की भी चर्चा आयी है। उसके सम्बन्ध मे भी एक-दो बातें यहा बतला देना अप्रासगिक न होगा। 'टाँग' भी 'पाँव' की तरह पुराना (कम से कम 'पैर' से तो अवश्य अधिक पुराना) शब्द है। मुख्य, पुराना और प्रशस्त मुहावरा '(किसी के काम मे) टाँग अडाना' ही है। बाद मे कही कही उसकी जगह 'पाँव अडाना' का भी प्रयोग होने लगा, परन्तु 'पैर अडाना' अभी तक कम से कम मेरे देखने मे तो नही आया। साधारण अर्थ मे (लाक्षणिक अर्थ या मुहावरे के रूप मे नही) हम 'टाँग तोडना' की जगह 'पाँव तोड़ना' भी कह जाते है और 'पैर तोडना' भी, जैसे—अब तुम वहाँ जाओगे तो मैं तुम्हारी टाँग (पाँव या पैर) तोड दूँगा। लेकिन जहाँ हमें कहना होता है—अब आप अँगरेजी की भी टाँग तोडने लगे हैं, वहाँ 'टाँग' की जगह कभी कोई 'पाँव' या 'पैर' का प्रयोग नही करता अर्थात् मुहावरे का यह रूप 'टाँग' से ही सम्बद्ध है। यहाँ 'पाँव' या 'पैर' की दाल नही गलती। एक पुराना मुहावरा है—किसी की टाँग के तले से निकल जाना, जिसका आशय है—हर तरह से अपनी हार या हीनता मान लेना। पर ऐसे अवसर पर कभी 'टाँग' की जगह 'पाँव' या 'पैर' का प्रयोग कोई नही करता। छोटे लड़के को डाँटने-डपटने के समय यही कहा जाता है—टाँग बराबर लडका है पर कैसा बढ-बढकर बोलता है। ऐसे प्रयोगो मे 'टाँग' की जगह 'पाँव' या 'पैर' का प्रयोग कोई नही करता। परन्तु स्वय 'टाँग' शब्द भी और उससे सम्बद्ध विशिष्ट मुहावरे भी अलग हैं।

× ×

पारितोषिक, पारिश्रमिक, पुरस्कार, आनुतोषिक और अनुवृत्ति

Prize — Remuneration — Reward — Gratuity — Pension

इस वर्ग के शब्द ऐसी धन-राशि के वाचक है जो किसी व्यक्ति को कोई काम या परिश्रम करने पर अथवा बहुत अधिक कुशलता या दक्षतापूर्वक

कोई अच्छा और बड़ा काम करने पर उसके प्रतिफल के रूप में या तो अपनी प्रसन्नता प्रकट करने के लिए या उसे प्रोत्साहित और सन्तुष्ट करने के लिए दी जाती है।

'पारितोषिक' सं० परितोष से बनाया हुआ उसका विकारी रूप है, जिसका आशय है—अच्छी तरह होनेवाली तृप्ति, तोष या प्रसन्नता। इसका प्रयोग मुख्यतः प्रतियोगिता आदि के क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाले काम या बात से है। साधारणतः योग्यता, सामर्थ्य आदि की परीक्षा या प्रतियोगिता होने पर जब कोई या अनेक व्यक्ति अधिक सक्षम और सुयोग्य पाये जाते हैं तब उन्हें प्रसन्न अथवा सन्तुष्ट करने के लिए जो धन या वस्तु दी जाती है वही पारितोषिक कहलाती है, जैसे—हमारे विद्यालय में अपनी कक्षा में प्रथम आनेवाले हर विद्यार्थी को प्रति वर्ष कुछ न कुछ पारितोषिक अवश्य दिया जाता है।

'पारिश्रमिक' भी परिश्रम का वैसा ही विकारी रूप है, जैसा परितोष का पारितोषिक है। इसका आशय है परिश्रम करने पर उसके बदले में दिया या लिया जानेवाला धन। यह समय के हिसाब से नहीं बल्कि उस काम या उसके लिए किए जानेवाले परिश्रम के आधार पर निश्चित होता है। जब किसी को कोई काम सौंपा जाता है, तब उससे पहले यह निश्चित कर लिया जाता है कि इतना काम हो जाने पर तुम्हें इतनी धन राशि या पारिश्रमिक दिया जाएगा। लेखक कोई पुस्तक लिखकर प्रकाशक को प्रकाशित करने के लिए देता है और प्रकाशक उस लेखक को परिश्रम के फलस्वरूप हजार रुपए पारिश्रमिक देता है। यदि हमारा साल भर का बही-खाता या हिसाब लिख देता या उसे जाँच देता है, और उसके इस परिश्रम के अन्त में हम पाँच सौ रुपए पारिश्रमिक देते हैं।*

---

*अंग्रेजी में Remuneration का भाव हमारे पारिश्रमिक के भाव से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। उसमें कार्य की उत्कृष्टता का भाव भी है और उसके कर्ता के आदर सम्मान का भी। पर हमारे यहाँ [illegible] 'पारिश्रमिक' पर पड़ता है जो परिश्रम से बना है और इसी दृष्टि से यहाँ 'पारिश्रमिक' का [illegible] है। [illegible]—Remuneration पुरस्कार के ही [illegible] की बात है। [illegible] मजदूरी [illegible] जो धन दिया जाता है वह भी [illegible] इस लिए पारिश्रमिक कहा जाने लगा है कि अब मजदूर और मजदूरी [illegible], [illegible] और [illegible] के सूचक माने जाते हैं।

'पुरस्कार' स० पुरस्करण से सम्बद्ध है। पुरस्करण का पहला अर्थ है—कोई अच्छी चीज सबसे आगे या सबसे पहले लाकर सामने रखना। साधारणतः पुरस्कार किसी व्यक्ति के बहुत अच्छे काम या गुण से प्रसन्न होकर इस उद्देश्य से दिया जाता है कि उसकी कार्य-कुशलता अथवा योग्यता सब लोगो के सामने आवे, और लोग उसका आदर तथा प्रशंसा करे। इसमे स्वयं कार्य की उत्कृष्टता या श्रेष्ठता के अतिरिक्त दाता की प्रसन्नता और रुचि का भाव भी सम्मिलित रहता है। सौ आदमी सौ तरह के काम करते हैं। दाता को उनमे से जिन लोगो के काम अच्छे जान पड़ते हैं, उन्हे वह पुरस्कार देता है; जैसे—भारत सरकार ने इस बार हिन्दी के तीन लेखको को दो-दो हजार रुपए के पुरस्कार प्रदान किए हैं।

'पारितोषिक' का मुख्य उद्देश्य तो उत्साहित करना होता ही है; परन्तु 'पुरस्कार' का उद्देश्य प्रोत्साहित करने के अतिरिक्त सम्मानित करना भी होता है। हिन्दी मे इन दोनो शब्दो के स्थान पर उर्दू के इनाम (अ० इन्आम) का भी प्रयोग देखने मे आता है।

'आनुतोषिक' इधर हाल का और 'पारितोषिक' के अनुकरण पर बनाया हुआ नया शब्द है। यह अनुतोष से सम्बद्ध है, जिसका अर्थ है—किसी काम से अथवा किसी के काम से होनेवाला संतोष या प्रसन्नता। उक्त प्रकार से होनेवाले संतोष या प्रसन्नता के फलस्वरूप जब किसी को कुछ धन दिया जाता है तो वह आनुतोषिक कहलाता है। परन्तु यह शब्द अंग्रेजी के ग्रैचुइटि (Gratuity) का भाव प्रकट करने के लिए बनाया गया है और इसलिए इसका प्रयोग कार्यकर्ताओ या नौकरो को दिए जानेवाले उस पुरस्कार का वाचक है जो वेतन, भत्ते आदि से अतिरिक्त होता है।

यह अपने कार्यकर्ताओ या नौकरो के सिवा दूसरो के कार्यकर्त्ताओ या नौकरो को भी उनके कार्यो से प्रसन्न होने पर दिया जाता है। यदि आप परदेश मे किसी मित्र के यहाँ जाकर ठहरे अथवा किसी भोजनालय मे भोजन करने जाएँ और चलते समय वहाँ के नौकरो को कुछ धन दे तो वह भी आनुतोषिक ही कहा जाएगा।

'अनुवृत्ति' [स० अनु+वृत्ति] मेरी समझ मे अँग्रेजी के पेन्शन (Pension) के लिए अब तक के बने हुए शब्दो की अपेक्षा अधिक अच्छा और उपयुक्त शब्द है। पहले इसके लिए कुछ लोगो ने, 'अनुवेतन' रखा था; पर बाद मे भारत सरकार ने 'निवृत्तिका' रखा है। परन्तु जैसा कि इसकी परिभाषा और व्याख्या से पता चलेगा इसमे न तो वेतन का भाव ही प्रधान है और न निवृत्ति का ही। यह ठीक है कि पेन्शन अधिकतर ऐसे ही लोगो को दी

जाती है, जो बहुत दिनों तक वही वेतन पर काम कर चुके होते हैं, और अधिक वृद्ध हो जाने पर काम करने में असमर्थ हो जाते या मान लिए जाते हैं। इसकी धन राशि मुख्यतः इसी दृष्टि से दी जाती है कि कार्यकर्ता वृद्धावस्था में साधारण रूप से अपना और अपने परिवार के लोगों का भरण पोषण कर सके। अनुवेतन तो सम्भवतः यह सोचकर रखा गया होगा कि यह काम से छुट्टी पा जाने पर भी वेतन ही की तरह (आधे के लग भग) मिलता है, और निवृत्तिका शायद यह सोचकर रखा गया है की इसकी धन राशि कार्यकर्त्ता को सेवा से निवृत्त हो जाने पर मिलती है परन्तु ऐसी धन राशि कुछ और प्रकार की विशिष्ट परिस्थितियों में भी कुछ लोगों को भरण पोषण या सहायता के रूप में दी जाती है। उदाहरणार्थ—कलाकारों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं, साहित्य सेवियों आदि को भी या तो उनकी पुरानी सेवाओं के विचार से दी जाती है या उनके काम रत रहने की दशा में सहायतार्थ दी जाती है। ब्रिटिश शासन-काल में जब भारत सरकार किसी राजा महाराज से अप्रसन्न या असन्तुष्ट होकर उसे गद्दी से हटा देती थी तब उसे भी निर्वाह के लिए कुछ नियत कालिक धन राशि दिया करती थी। इन्हीं सब बातों का ध्यान रखते हुए मेरी समझ में अंग्रेजी के 'पेन्शन' शब्द के लिए हिन्दी में अनुवृत्ति का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा।

< ×

पारिश्रमिक—पु [सं०] दे० पारितोषिक पारिश्रमिक पुरस्कार आनुतोषिक और अनुवृत्ति'।

पार्थिव—वि० [सं०] दे० 'भौतिक, पार्थिव, लौकिक और सासारिक'।

पिघलना—अ० [सं० प्रगलन] दे० 'गलना, घुलना और पिघलना'।

पीडा यन्त्रणा और यातना

Pain Torture Torment

इस वर्ग के शब्द मुख्यतः ऐसे शारीरिक कष्टों के वाचक हैं जो प्राणियों को या तो बहुत विकल करते हैं और या उनकी सहन शक्ति के बहुत कुछ बाहर होते हैं परन्तु परवर्ती और विभिन्न अर्थों में ये शारीरिक के अतिरिक्त मानसिक कष्टों और यंत्रणाओं के भी सूचक होते हैं।

पीडा सं० पीडन से सम्बद्ध है जिसका मुख्य अर्थ है—जोर से दबाना। जब शरीर का कोई अंग किसी प्रकार के बाह्य प्रभाव अथवा आन्तरिक विकार आदि के कारण चोट खाता या दबता है तब उससे फलस्वरूप होनेवाला शारीरिक कष्ट या विकलता ही मुख्य पीडा है। हाथ यदि भारी चीज के नीचे दब जाता है तो हाथ में पीडा होती है। यदि शरीर में कोई विष

त्पन्न होने के कारण कोई अग पकने या फूलने लगता है तो उस अग मे
ड़ा होती है। ज्वर होने पर प्राय: सारे शरीर मे और बहुत अधिक चलने-
रने या परिश्रम करने से हाथ, पैर आदि मे पीड़ा होती है। शरीर के
सी एक अग मे पीडा होने पर प्राय: सारा शरीर और मन विकल रहता
। हिन्दी मे इसके स्थान पर फारसी के 'दर्द' शब्द का भी प्रयोग होता है।

कष्ट या दु ख देनेवाली किसी घटना से मन मे उत्पन्न होनेवाली विकलता
ो लाक्षणिक रूप मे पीडा ही कहलाती है। यह प्राय: वियोग, हानि आदि
' फलस्वरूप होती है। 'हरि तुम हरो जन की पीर' (पीड़ा) वस्तुतः
ानसिक कष्टो और दु खो का ही वाचक है।

'यन्त्रणा' मुख्यत: बहुत अधिक शारीरिक तथा मानसिक कष्ट या पीड़ा
ी सूचक है। जान पडता है कि इसका मूल बहुत प्राचीन काल की उस
ण्ड-प्रणाली मे होगा जिसमे अपराधियो, युद्ध-वन्दियो आदि को अनेक प्रकार
 यन्त्रो मे जकड या दबाकर बहुत अधिक तथा प्राय. असह्य शारीरिक कष्ट
दये जाते थे और जिनके कारण अपराधी युद्ध-वन्दी आदि या तो मर ही
ाते थे या अध-मरे हो जाते थे। अपने परवर्ती अर्थ मे यह बहुत तीव्र
ारीरिक तथा मानसिक कष्टो का वाचक हो गई है। शारीरिक यंत्रणा सदा
ूसरे व्यक्तियो के अत्याचार आदि के द्वारा पहुँचायी हुई होती है और मान-
सिक यत्रणा बहुत ही दु:खद और विकट दुर्घटनाओ आदि के कारण
होती है।

'यातना' स० यातन से सम्बद्ध है जिसका मुख्य अर्थ है— किसी के
दुर्व्यवहार, दोष आदि का बदला लेना अथवा किसी के पहुँचाये हुए कष्ट के
बदले मे उसे वैसा ही अथवा उससे और अधिक कष्ट पहुँचाना। हमारे यहाँ
यम के दूतो की यातना बहुत प्रसिद्ध है। कहते है कि मनुष्य इस जीवन मे
जो अनेक प्रकार के दुष्कर्ष और पाप करते हैं उन्ही का बदला चुकाने के
लिए यम के दूत उनकी आत्मा को अनेक प्रकार के भीषण कष्ट देते है।
परन्तु साधारणत. लोक-व्यवहार मे यह बहुत कुछ यन्त्रणा के समान ही
अर्थ देता और व्यवहृत होता है। परन्तु यन्त्रणा की तुलना मे यातना
मुख्यत: मानसिक ही अधिक होती है। यम के दूत प्राणियो को जो यातना
देते हैं वे उनके शरीर-त्याग के बाद ही देते हैं। यो हम यह भी कहते है—
कारागार मे उन्हे अनेक प्रकार की यातनाएँ दी जाती थी। ऐसे अवसरों
पर यातना की जगह यन्त्रणा का भी प्रयोग देखा जाता है। परन्तु जब
हम कहते हैं—'उन्होने सारा जीवन घोर दरिद्रता और सतान-वियोग की

यातनाएँ भोगने मे ही बिताया' तब ऐसे अवसरो पर मानना की जगह यत्रणा का प्रयोग कुछ ठीक नही जान पडता। इस कोटि के अन्यान्य शब्दो के लिए दे० 'वेदना और व्यथा'। × ×

पुनरीक्षण—पु० [स०] दे० 'निरीक्षण, अधीक्षण, पर्यवेक्षण, पुनरीक्षण सप्रेक्षण और सर्वेक्षण।

पुरस्कार—पु० [स०] दे० 'पारितोषिक, पारिश्रमिक, पुरस्कार अनुतोषिक और अनुवृत्ति'।

पुराकल्प—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

पुरुष—पु० [स०] दे० 'लिंग, पुरुष और प्रकृति।

पुरुषत्व, पुरुषार्थ और पौरुष

Manliness Manhood

ये तीनो शब्द स० पुरुष के विकारी रूप है और इनके अर्थों के अतरो का स्पष्ट ज्ञान न होने के कारण प्राय लोग इनमे से एक दूसरे या तीसरे का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं। सस्कृत मे पुरुष का पहला मुख्य अर्थ है—मानव जाति का प्राणी या मनुष्य। परन्तु यह विशिष्ट रूप से नर जाति के प्राणी का वाचक है और इसका स्त्रीलिंग रूप होता है—स्त्री। इसी आधार पर अपने परवर्ती और विकसित अर्थ मे पुरुष ऐसे व्यक्ति का वाचक माना जाता है जिसमें धैर्य, वीरता, साहस आदि गुण यथेष्ट मात्रा मे देखने मे आते हो।* यद्यपि 'पुरुषत्व और 'पौरुष' दोनो 'पुरुष' के भाववाचक सज्ञा रूप है फिर भी दोनो के अर्थों मे कुछ सूक्ष्म अन्तर है। पुरुषत्व मुख्यत पुसत्व वाले तत्व का सूचक है और इसमे वीरता साहस आदि वाले तत्वो का विशेष अतर्भाव नही है। परन्तु पौरुष मे मुख्यत वीरता, साहस आदि गुणो का तत्व प्रधान है और पुसत्व वाला भाव गौण अथवा नगण्य सा है। इसी लिए हम कहते हैं—उसने युद्ध मे अद्वितीय पौरुष अर्थात् पराक्रम या विक्रम दिखलाया था। ऐसे अवसरो पर पुरुषत्व का प्रयोग समुचित नही जान पडता।

---

* हमारे यहाँ दार्शनिक क्षेत्र मे परमात्मा या विश्वात्मा को पुरुष की सज्ञा दी गई है और उसे अकर्त्ता अपरिणामी तथा अविकारी माना गया है। यह भी कहा गया है कि प्रकृति इसी के सान्निध्य से सृष्टि की रचना करती है।

'पुरुपार्थ' (स० पुरुप+अर्थ) का मुख्य अर्थ है—वह अर्थ, उद्देश्य या प्रयोजन जिसकी सिद्धि या प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना पुरुष या मनुष्य के लिए आवश्यक या कर्तव्य हो। अर्थात् पुरुपार्थ ऐसे उत्तम कार्यों, गुणो, लक्ष्यो आदि का सूचक है जिसकी प्राप्ति के लिए सदा तत्पर और प्रयत्नशील रहना चाहिए; जैसे—युद्ध या सघर्ष मे पुरुष को आगे वढकर सदा विजयी और यशस्वी होने का प्रयत्न करना चाहिए क्योकि इसी मे उसका पुरुपार्थ है। आशय यही होता है—ऐसी वातो मे ही पुरुष होने की सार्थकता है। कुछ अवस्थाओं में इसका प्रयोग 'पौरुप' वाले अर्थ मे भी देखने मे आता है, परन्तु है यह 'पौरुष' से कुछ अलग और आगे वढा हुआ ही। × ×

पुरुषार्थ—पुं० [सं०] दे० 'पुरुषत्व, पुरुषार्थ और पौरुष'।

पुष्ट—वि० [स०] दे० 'परिपक्व, पुष्ट और प्रौढ'।

पुस्तक—स्त्री० [स०] दे० 'ग्रन्थ, पुस्तक और किताव'।

पूँजी, लग्गत और लागत

Capital Investment Cost

पूँजी [स० पुंज=ढेर या राशि] से व्युत्पन्न है। यह मुख्यतः आर्थिक क्षेत्र का शब्द है, और इसका पहला अर्थ है—वह धन और मूल्यवान् वस्तुएँ जो किसी प्रकार अर्जित या प्राप्त करके अपने अधिकार मे रखी या लायी गई हों; जैसे—उस गरीव ने सारी उमर कमाकर कोई हजार रुपए की पूँजी वना ली थी। आशय यह होता है कि उसके पास कपडे, गहने, वर्तन, रुपए आदि सव मिलाकर कोई हजार रुपए के मूल्य के हो गए थे। जव हम कहते है—'उस चोरी मे उसके घर की सारी पूँजी निकल गई' तो आशय यही होता है कि चोर उसकी सभी मूल्यवान् वस्तुएँ उठा ले गये। परन्तु आज-कल की आर्थिक व्यवस्था मे पूँजी का विशिष्ट अर्थ हो गया है—वह सारा धन जो और अधिक धन कमाने के उद्देश्य से किसी रोजगार या व्यापार मे लगाया गया हो या लगाया जा सकता हो अथवा लगाया जाने को हो। इसी आधार पर कहा जाता है—आज-कल वडे-वडे पूँजीपति कल-कारखाने खोलकर मजदूरो से काम कराते हैं, और उनकी कमाई का वहुत-सा अश स्वयं हडपकर और भी अधिक धनवान् वनते जाते हैं। लाक्षणिक रूप मे पूँजी किसी व्यक्ति की उस सारी योग्यता, शक्ति और साधनो की

भी वाचक होती है जिससे उसके सब काम चलते हैं, जैसे—उस बेचारे के पास ज्ञान (या विद्या) की थोडी सी ही पूंजी ठहरी, इसलिए उससे और अधिक आशा रखना व्यर्थ है।

'लग्गत' हिं० लगना क्रिया से बना है, और हमारे यहाँ के महाजनी क्षेत्र का बहुत पुराना और बहु प्रचलित शब्द है। यह किसी व्यक्ति की पूँजी के उस अंश या मान का वाचक है जो उसने किसी एक कारबार या विशिष्ट व्यापार मे लगाया हो। यदि कोई व्यक्ति दस हजार रुपए लगाकर कपडे की दुकान खोलता है, तो कहा जाएगा—इस दुकान मे उसकी दस हजार रुपया की लग्गत लगी है। अब यदि वही व्यक्ति बीस हजार रुपए लगाकर कोई नया कारबार करता है, तो कहा जायगा—इसमे उसकी बीस हजार रुपए की लग्गत लगी है। ध्यान रहे कि इस शब्द का प्रयोग मुख्यत किसी एक और विशिष्ट व्यवसाय, व्यापार आदि मे लगाए गए रुपयो के सम्बन्ध मे ही होता है।

'लागत' भी हिन्दी लगना से ही बना है परन्तु लग्गत और लागत म एक विशेष अन्तर है जिसकी ओर सहज मे लोगो का ध्यान नही जाता, कारण यही है कि दोनो एक ही लगना क्रिया से बने हैं और दोनो के उच्चारण म बहुत ही थोडा अन्तर है। वास्तव मे लागत उस धन का वाचक है जो कोई चीज बनाकर तयार करने मे लगता है। इसमे उस सामग्री का मूल्य भी सम्मिलित रहता है जो वह चीज बनाने म लगती है और उस परिश्रम तथा समय का मूल्य भी जुडा रहता है जो वह चीज बनाने म लगता है। कारीगर या कारखाने आदि बिक्री के लिए जो चीजें बनाकर तयार करते हैं उनके सम्बन्ध म वे हिसाब लगाकर यह देख लेते हैं कि यह चीज बनाकर तयार करने म सब मिलाकर हमारा कितना व्यय हुआ है, और तब उसी पर अपना मुनाफा जोडकर उसकी बिक्री का मूल्य निश्चित करते हैं। यो बिक्री के सिवा स्वय अपने व्यवहार के लिए जो चीजें बनाई या बनवाई जाती हैं उनके सबध म भी यह हिसाब लगाया जा सकता है कि इस पर हमारा कितनी लागत लगी है। कोई मकान बनवाने म हमारी लागत बीस हजार रुपए हो सकती है। यहाँ मकान की लागत म उसकी जमीन, ईंट-पत्थर, लकडी आदि का दाम और मजदूरों को दी हुई मजदूरी आदि सभी व्यय सम्मिलित रहते हैं। इसके साथ आना, जोडना, बठना और लगना क्रियाओ का प्रयोग होता है।

पूर्ति, अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति

पूर्ति, 1 Filling, 2 Compilation; अनुपूर्ति, Supplementing; आपूर्ति, Supply; और प्रतिपूर्ति, Compensation

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओ, वस्तुओ आदि के वाचक है जिनसे किसी प्रकार का अभाव, त्रुटि या रिक्तता दूर होती है।

'पूर्ति' स्त्री० [स०] का मुख्य अर्थ है—पूरा करना। यह पूरा करना कई प्रकार का होता है, जैसे—(क) घडे मे पानी भरकर उसे पूरा करना। (ख) जो कार्य आरम्भ हुआ हो उसे अन्त या समाप्ति तक पहुँचना। (ग) अपेक्षित या आवश्यक वस्तु लाकर ऐसा रूप देना जिसमे और कुछ करने को वाकी न रह जाय। आदि आदि। इसी पूर्ति शब्द मे उपसर्ग लगाकर इस वर्ग के शब्द कुछ विशिष्ट अर्थ सूचित करने के लिए बनाए गए है।

'अनुपूर्ति' स्त्री० [स०] का मुख्य अर्थ है—पीछे से या वाद मे की जाने-वाली पूर्ति। हम पहले कोई काम पूरा कर चुकते है, पर वाद मे हमे यह पता चलता है कि इसमे कुछ वातें छूट या रह गई हैं; अथवा कुछ ऐसी नई वाते या नई सामग्री हमारे सामने आती हैं जिसे हम वाद मे अलग से जोड देते हैं। वस्तुत वाद मे जोडने की यह क्रिया ही अनुपूर्ति है। इसी अनुपूर्ति से अनुपूरक वनता है जिसका प्रयोग विशेषण रूप मे भी और सज्ञा रूप मे भी होता है, जैसे—(क) राजकीय कोश की अनुपूरक शब्दावली और (ख) किसी दैनिक या साप्ताहिक पत्र का अनुपूरक (अक या अश)।

'आपूर्ति' स्त्री० [स०] का अर्थ होता है—उचित मात्रा मे या ठीक तरह से पूरा करना * यह पूर्ति वस्तुत आवश्यकताओ की होती है। किसी के

*भारत सरकार ने Supply के लिए 'सभरण' रखा है जिसका अर्थ है—अच्छी या पूरी तरह से भरना। सं० के भरण-पोषण का अर्थ होता है किसी को जीवित रखने के लिए आवश्यक वस्तुएँ देते या पहुँचाते रहना। परन्तु आज-कल घरो मे प्रकाश के लिए या समाचार-पत्रो मे छपने के लिए विजली अथवा समाचार भी पहुँचाए जाते हैं, जिनका अन्तर्भाव 'सम्भरण', मे ठीक तरह से होना उपयुक्त नही जान पडता। रेडियो पर और समाचार पत्रो मे Supply के समार्थक के रूप मे 'आपूर्ति' का ही अधिक प्रयोग देखने मे आता है और मेरी समझ मे यही शब्द अधिक उपयुक्त और सार्थक सिद्ध होता है।

उपभोग या सेवा के लिए उसकी आवश्यक वस्तुएँ उचित अथवा उपयुक्त मात्रा में और ठीक समय पर उसके पास पहुँचाना ही 'आपूर्ति' है। दूकानदार अपने ग्राहकों के लिए उनकी आवश्यकताओं की वस्तुओं की आपूर्ति करते हैं, अर्थात् कहीं से ढूँढ़ या मँगाकर वे चीजें उन्हें देते या उनके पास तक पहुँचाते हैं, जब देश में किसी आवश्यक और उपयोगी वस्तु की कुछ कमी हो जाती है तब शासन ऐसी व्यवस्था करता है कि लोगों को वह वस्तु उचित मूल्य और ठीक समय पर मिलती रहे, ऐसा न हो कि कुछ लोग तो आवश्यकता से अधिक वह वस्तु ले जाएँ और कुछ लोगों को वह वस्तु मिलने ही न पावे। ऐसी व्यवस्था का अन्तर्भाव भी इसी 'आपूर्ति' में होना है।

'प्रतिपूर्ति' स्त्री० [स०] का मुख्य अर्थ है—किसी वस्तु का अभाव दूर करने के लिए उसके बदले में या उस जगह पर उसी तरह की या उससे मिलती जुलती वस्तु रखना। भारत सरकार ने Compensation के लिए ये शब्द दिये हैं—क्षतिपूर्ति और प्रतिकार। परन्तु मेरी समझ में इसके लिए सबसे अच्छा शब्द 'प्रतिपूर्ति' होगा। क्योंकि अँग्रेजी के मूल शब्द की प्राय सभी विवक्षाओं का इसमें अतंभाव हो जाता है। *मुख्यत इसका प्रयोग नीचे लिखे प्रसगों में होता है*

१—हम किसी की कोई चीज ले लेते हैं और उसके बदले में लगभग उतने ही मूल्य की कोई और वस्तु या धन उसे देकर उसके अभाव की पूर्ति करते हैं, जैसे—सरकार ने नया कारखाना बनाने के लिए किसानों की जो बहुत-सी जमीन ले ली थी उसके बदले में उसने उन्हें उचित धन भी दे दिया था। इसके स्थान पर कुछ लोग मुआवजा (पु० अ० मुआवज) का भी प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ होता है—एवज या बदले में दिया जाने वाला धन।

२—हमारे किसी काम से किसी को कोई क्षति पहुँचती या उसकी हानि होती है, ऐसी क्षति या हानि के बदले में दिया जानेवाला धन भी 'प्रतिपूर्ति' ही कहा जाएगा। इसके स्थान पर क्षतिपूर्ति या हानिपूर्ति का भी प्रयोग हो सकता है। कुछ लोग इसके स्थान पर हरजाना (पु० फा० हर्जान) का भी प्रयोग करते हैं जिसका अर्थ होता है—किसी का हर्ज या हानि होने पर उसकी पूर्ति के लिए दिया जानेवाला धन। जब इस प्रकार का धन न्यायालय की आज्ञा से देना पड़ता है, तब विधिक क्षेत्रों में इसे तावान (पु० अ०) कहते हैं।

३—प्राय: शारीरिक रचना आदि मे प्राकृतिक रूप से कोई त्रुटि हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उसका कोई अग ठीक या पूरी तरह से अपना काम करने मे असमर्थ होता है। कुछ अवस्थाओ मे प्रकृति ऐसी त्रुटि का परिमार्जन या सुधार करने के लिए कोई दूसरा अग अधिक प्रबल या सक्रिय कर देती है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति जन्म से ही अन्धा, गूँगा या बहरा हो तो प्राय: ऐसे व्यक्ति की बोध-शक्ति या स्मरण-शक्ति अपेक्षया अधिक सबल होती है। यह भी 'प्रतिपूर्ति' ही है जिसे कुछ लोग 'त्रुटि-पूर्ति' भी कहते हैं। × ×

पृष्ठभूमि—स्त्री० [स०] दे० 'परिवेश, परिस्थिति, पर्यावरण, पृष्ठ-भूमि और भूमिका'।

पृष्ठिका—स्त्री० [स०]=पृष्ठभूमि; दे० 'परिवेश, परिस्थिति, पर्यावरण, पृष्ठ-भूमि और भूमिका।'

पेखना—स० [स० प्रेक्षण] दे० 'चाहना, चितवना, जोवना, जोहना और पेखना'।

पेशा—पु० [फा० पेश.]=व्यवसाय, दे० 'व्यापार, व्यवसाय और वाणिज्य'।

पैर—पु० [हि०] दे० 'पाँव और टाँग पैर'।

पौरुष—पु० [स०] दे० 'पुरुषत्व, पुरुषार्थ और पौरुष'।

प्यार—पु० [हि०]=प्रेम, दे० 'अनुराग, प्रीति, प्रेम और स्नेह'।

प्रकरण—पु० [स०] दे० 'विषय, प्रकरण, प्रसंग और सदर्भ'।

प्रकृति, शील, स्वभाव और मिजाज

1. Nature Modesty Temperament Disposition
2. Disposition

इस माला के शब्द ऐसे गुणो या बातों के वाचक हैं जिनसे किसी व्यक्ति या वर्ग का विशिष्ट पार्थक्य अथवा स्वरूप सूचित होता है।

'प्रकृति' के सबध की कुछ मुख्य बातें पहले 'निसर्ग, पुरुष और प्रकृति' (दे०) की माला मे दी जा चुकी हैं। उसमे प्रकृति का एक साधारण लोक-प्रचलित अर्थ इस प्रकार दिया गया है—किसी पदार्थ या प्राणी का वह विशिष्ट भौतिक सारभूत तथा सहज और स्वाभाविक गुण या तत्त्व जो उसके स्वरूप के मूल मे होता है और जिसमे कभी कोई अतर, परिवर्तन या विकार नही होता। इस अर्थ मे अरबी का 'मिजाज' शब्द भी हिन्दी मे प्रचलित है।

जीवों और प्राणियों के संबंध में उक्त अर्थ के आधार पर यह शब्द कुछ और विकसित रूप में प्रयुक्त होता है। जब हम किसी व्यक्ति की चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'वह प्रकृति से ही उदार (अथवा पापी) है' तब हमारा आशय यह होता है कि चारित्रिक दृष्टि से उसमें अमुक जन्म-जात और मूल-भूत गुण, तत्त्व या विशेषता है जिसमें साधारणतः कोई परिवर्तन नहीं होता और जो अधिकतर अवसरों पर बहुत कुछ एक ही सी दशा में पाई जाती है। यह उन सब गुणों और विशेषताओं का सामूहिक रूप है जो मनुष्य में मूलतः जन्म से ही उसके साथ आती और प्रायः एक-सी बनी रहती हैं। यह गुण या विशेषता मनुष्यों के सिवा पशुओं में भी बहुत कुछ इसी रूप में देखने में आती है। कोई कुत्ता प्रकृति से ही बहुत उग्र होता है और कोई घोड़ा प्रकृति से ही बहुत सीधा और सुशील होता है। ऐसे अवसरों पर 'प्रकृति' की जगह प्रायः सं० 'स्वभाव' और अ० 'तबियत' का भी प्रयोग होता है।

'शील' के अनेक अर्थों में एक अर्थ है—आचरण या व्यवहार करने का वह ढङ्ग या प्रकार जो या तो प्राकृतिक या स्वाभाविक हो या लोक में रहकर अर्जित या प्राप्त किया गया हो। परन्तु यह मुख्य रूप से अच्छे आचरण, व्यवहार और स्वभाव का ही सूचक है। यह वस्तुतः मनुष्य के व्यक्तित्व और स्वभाव से सम्बद्ध होता है और बहुधा उसकी कुलीनता या श्रेष्ठ वंश-परम्परा का भी परिणाम या परिचायक होता है। अच्छे शील में अच्छे स्वभाव के सिवा और भी अच्छी बातों का अन्तर्भाव होता है, इसी लिए यह मनुष्य की सभी प्रकार की सद्वृत्तियों का सूचक और सत्कार्यों तथा सद्भावनाओं का प्रवर्तक होता है। अच्छे शीलवाला मनुष्य सदा सब तरह के अच्छे कामों और अच्छी बातों की ओर प्रवृत्त होता है, और इसी लिए उसका सब जगह आदर भी होता है। यह सुनिश्चित और स्थायी भी होता है।

कुछ अवस्थाओं में यह यौगिक पदों के अन्त में विशेषण रूप में भी लगता और नीचे लिखे अर्थ देता है

(क) किसी प्रकार के गुण या विशेषता से युक्त, जैसे रूपशील, लज्जाशील आदि।

(ख) प्रकृति या स्वभाव से प्रायः कोई काम या बात करता रहनेवाला, जैसे—दानशील, विचारशील सहनशील आदि।

(ग) किसी दिशा में निरंतर या प्रायः अग्रसर या प्रवृत्त होता रहनेवाला; जैसे—उन्नतिशील जाति, विकासशील आदि।

'स्वभाव' का शब्दार्थ है—अपना या निज का भाव। यह सत्ता की उस निजी और मूल अवस्था और गुण का सूचक है जो उसे प्राकृतिक रूप से ही जन्म से प्राप्त होता और प्राय एक-रस रहता है। कहावत है—(क) नीम न मीठी होय सिंचो गुड़-घी से, जाकर जौन सुभाव छुटै नहिं जी से; और (ख) मन, मोती औ दूध रस इनको यही सुभाव, फाटे पीछे ना मिलें, कोटिन करो उपाय। इस दृष्टि से यह कुछ अवस्थाओ मे प्रकृति का भी वहुत कुछ पर्याय है।* जब हम कहते हैं—'अग्नि की प्रकृति जलाना है' तब हम प्रकृति की जगह स० 'स्वभाव' या अ० 'तासीर' का भी प्रयोग कर सकते हैं। यह जीवो अथवा प्राणियो के उस मानसिक रूप या स्थिति का वाचक है जो उनकी समस्त जाति मे जन्मजात होती और सदा प्राय: एक ही तरह से काम करती हुई दिखाई देती है; जैसे—चीते, भालू और शेर स्वभाव से ही हिंसक होते हैं। मनुष्यो मे भी यह स्वभाव प्राय: जन्म-जात तो होता ही है और उसके कार्यो तथा व्यवहारो का परिचालन करता है; परन्तु कुछ अवस्थाओ मे इसमे थोड़ा-वहुत परिवर्तन भी होता रहता या हो सकता है; जैसे—रोग या वृद्धावस्था मे मनुष्य स्वभाव से ही कुछ चिडचिडा हो जाता है। आगे चलकर यह किसी तरह की पड़ी हुई आदत या अभ्यास का भी वाचक होता है; जैसे—पहले तो तुम ऐसे नही थे, पर अब मैं देखता हूँ कि तुम्हारा सबसे लड़ने का स्वभाव ही पड गया है। उक्त दोनो अर्थो मे इसकी जगह मिजाज (अ०) का भी प्रयोग होता है। शील और स्वभाव मे एक मुख्य अन्तर यह है कि अच्छे शीलवाला मनुष्य तो समाज मे परम आदरणीय होता है, पर अच्छे स्वभाववाले मनुष्य के लिए सदा ऐसा होना अनिवार्य नही है। फिर भी अच्छे स्वभाववाला मनुष्य इसलिए सब जगह मान्य हो सकता है कि वह किसी से लड़ाई-झगडा करना पसन्द नही करता। स्वभाव वहुत कुछ अर्जित भी होता है और प्राय: परिस्थितियो से प्रभावित भी। सामने आये हुए कार्य मनुष्य साधारणत: अपने स्वभाव के अनुसार ही अच्छे या बुरे ढग से करता है। इसके सिवा अच्छे शीलवाला मनुष्य कुछ उग्र या कठोर स्वभाववाला भी हो सकता है, और दुःशील व्यक्ति अच्छे या कोमल स्वभाव वाला भी हो सकता है।

'मिजाज' (अ० मिज़ाज) उर्दू से लिया हुआ हिन्दी मे वहु-प्रचलित शब्द है। यह कुछ अर्थो मे 'प्रकृति' का और प्राय: सभी अर्थो मे 'स्वभाव'

---

* हमारे यहाँ के शास्त्रो मे उक्त प्रकृत रूप ही 'स्वभाव' कहा गया है। परन्तु मनुष्य के चरित्र और व्यवहार मे इसका जो स्वरूप देखने मे आता है उसे 'देह-स्वभाव' कहा गया है।

का समाथक है। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि स्वभाव की अपेक्षा इसके अथ भी कुछ अधिक हैं और उन अर्थों म कइ मुहावरे भी लग गये हैं। मिजाज का पहला अथ है—किसी वस्तु या व्यक्ति का कोई जन्मजात और मौलिक गुण या विशेषता जो सदा उसमे देखी या पाई जाती है। यही उसकी प्रकृति या स्वभाव है। यह साधारणत प्राणियो की प्रकृत और साधारण मानसिक स्थिति का भी वाचक है, जसे—उनका मिजाज बहुत तीखा है। कुछ अवस्थाओ मे यह शारीरिक स्वास्थ्य का भी सूचक होता है। जब हम कहते हैं—'आज उनका मिजाज कुछ खराब है' तब इसका पहला अथ तो यह होता है कि आज वे कुछ क्रुद्ध या चिढ़े हुए हैं, और दूसरा अथ यह होता है कि आज वे कुछ अस्वस्थ हैं। इसी प्रकार 'किसी का मिजाज पाना' मुहावरे के भी दो अथ होते हैं। एक तो यह कि किसी के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित होना, और दूसरा यह कि किसी को अपने अनुकूल या अनुरक्त स्थिति म देखना। मिजाज पूछना का अथ होता है—तबीअत या स्वास्थ्य का हाल पूछना। 'मिजाज बिगडना' के भी दो अथ होते हैं। एक तो मन मे क्रोध उत्पन्न होना, और दूसरा, कुछ अस्वस्थ सा जान पडना।

इससे कुछ और आग बढने पर यह शब्द किसी के अभिमान या घमण्ड का भी सूचक हो जाता है। इसी आधार पर इससे बने हुए यौगिक पद 'मिजाजदार का अथ—अभिमानी या घमण्डी होता है। आज हम कहते हैं—'आज कल उन्हे बहुत मिजाज हो गया है' या आज कल वे बहुत मिजाज दिखाने लगे हैं' तब ऐसे अवसरो पर 'मिजाज का अथ—अभिमान या घमण्ड ही होता है। 'किसी का मिजाज न मिलना' का अथ होता है—घमण्ड के कारण सीधी तरह से बात न करना। × ×

प्रक्रम—पु० [स०] दे० विधि क्रिया विधि, प्रक्रम और प्रविधि।

प्रख्यापन—पु० [स०] दे० 'घोषणा, प्रख्यापन, परिज्ञापन और प्रवतन।

प्रगति—स्त्री० [स० प्र+गति] दे० उन्नति प्रगति और विकास'।

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद

ये दोनो आधुनिक साहित्य क्षेत्र की दो नई विचार धाराएँ हैं जिन्हे हम एक दूसरी की पूरक भी मान सकते हैं। प्रगतिवाद हमारे यहाँ पाश्चात्य

साहित्य से आया है। इसका मूल समाजवाद के प्रवर्तक मार्क्स के उपदेशों मे माना जाता है। मार्क्स ने अपने समय मे योरप की आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रो मे जन-साधारण और विशेषतः किसानो, मजदूरो आदि की जो दुर्दशा और हीनता देखी थी उसी से चिढकर और उसके प्रति अपना रोष प्रकट करने के लिए इस मत का प्रतिपादन किया था कि समाज के दलित और पीड़ित लोगो को चुपचाप सब अत्याचार नही सहने चाहिए और आगे बढकर अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। उसका मत था कि समाज मे जिन थोडे से लोगो ने सारी प्रभुता और सारी सत्ता अपने हाथ मे कर रखी है उनके विरुद्ध जनता को विद्रोह करना चाहिए। इसी लिए प्रगतिवाद के समर्थक यह कहते हैं कि हमारे साहित्य का उद्देश्य और स्वरूप ऐसा होना चाहिए जो जन-साधारण को संघटित करके समाजवाद की ओर अग्रसर कर सके।

'प्रयोगवाद' को हम प्रगतिवाद की एक ऐसी नई शाखा कह सकते हैं जिसमे वर्तमान साहित्य के प्रति विद्रोह की भावना भरी हुई है। भले ही इसका लक्ष्य ज्यो का त्यो वह न हो जो समाजवाद का है, फिर भी इसे प्रेरणा सभवत समाजवाद से ही प्राप्त हुई है। इस मत के प्रतिपादक कहते हैं कि अब तक जो साहित्यिक परम्पराएँ और रूढियाँ चली आ रही हैं वे बिलकुल पुरानी पड गई हैं और अपनी उपयोगिता बहुत कुछ गँवा चुकी हैं। इसलिए हमे चाहिए कि प्रयोगात्मक परीक्षणो के द्वारा हम उन सबकी अच्छी तरह जाँच-पडताल करें, और उनके दूषित तथा निरर्थक अंशो का परित्याग करके अपने साहित्य को ऐसा रूप दें जो हमारी नवीन अनुभूतियों, धारणाओ और स्थितियो के अनुरूप हो, और समाज को अग्रसर तथा उन्नत होने मे सहायता दे सकें। इस वाद के अनुयायी कवि या लेखक ससार मे छाये हुए अधकार, अनाचर और विषाद मे अपने आपको नये उचित मार्ग का अन्वेषक तथा अपनी कृतियो या रचनाओ को प्रयोग मात्र मानते हैं। हिन्दी काव्य-क्षेत्र में ऐसा विचारधारा के प्रवर्तक श्री अज्ञेय माने जाते हैं। × ×

प्रजातंत्र—पु० [सं०] दे० 'गण-तत्र, प्रजा-तंत्र और लोक-तंत्र।

प्रज्ञा और प्रतिभा
Wisdom Genius

ये दोनो बुद्धि (दे० बुद्धि और समझ) के बहुत ही असाधारण और उत्कृष्ट रूप हैं। 'प्रज्ञा' का साधारण अर्थ है—अच्छा और विशिष्ट ज्ञान। यह

मुख्यत हमारे यहाँ के आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षेत्रों म व्यवहृत शब्द है। यह बुद्धि का वह बहुत ही परिष्कृत और विकसित रूप है जो अध्ययन, अभ्यास, निरीक्षण आदि के द्वारा उत्पन्न होता है, इसके सिवा यह बहु विध अनुभव, ज्ञान पाडित्य और विचारशीलता के फलस्वरूप प्राप्त होनेवाला गुण है। इससे मनुष्य बहुत ही चतुर और दूरदर्शी होता है हर बात का ऊँच नीच बहुत अच्छी तरह और जल्दी समझ लेता है और प्रत्येक विषय का बहुत गम्भीर चिन्तन और मनन करने म समर्थ होता है। इसी आधार पर प्राय नत्रहीन पडितो और विद्वानो को प्रज्ञाचक्षु कहने की प्रथा चल पडी है क्योंकि उनके सबध म यह माना और समझा जाता है कि वे देखने और पढने मे साधारण लोगो की अपेक्षा कहीं अधिक योग्य और विचारशील होते हैं।*

'प्रतिभा इससे भी कहीं अधिक आगे बढा हुआ गुण है और इसी लिए लोग इसे ईश्वरदत्त मानते हैं। हमारे यहाँ प्रतिभा की व्याख्या म कहा गया है—नवनवो मेष शालिनी प्रज्ञा प्रतिभा। अर्थात् जिस प्रज्ञा के फल स्वरूप मन म नित्य नई-नई और अद्भुत कल्पनाएं उत्पन्न होती हों, वही प्रतिभा है। प्रतिभाशाली व्यक्ति म अनेक एसे अद्भुत और विलक्षण गुणों का मिश्रण देखने मे मिलता है जो साधारण व्यक्तियो म दुलभ होता है।

---

* इधर हाल मे अग्रेजी के Cogniz ble का भाव सूचित करने के लिए इसी 'प्रज्ञा स वि० प्रज्ञेय' बना लिया गया है और इसका विपर्याय 'अप्रज्ञेय होता है। ऐसे अवसरो पर 'प्रज्ञेय का अर्थ होता है—(कोई बात या विषय) जिसका (क) अधिकारियो को आधिकारिक रूप से ज्ञान या परिचय हो और (ख) (अपराध या दोष) जिसकी ओर ध्यान या जिसकी छानबीन करना और अपराधी या दोषी को न्यायालय के सम्मुख उपस्थित करना अधिकारियो का कर्त्तव्य हो, जसे—चोरी जुआ, डाका हत्या आदि प्रज्ञेय अपराध हैं। एसे अपराधो की कहीं से कोई सूचना पाते ही अधि कारियों का यह कर्तव्य होता है कि वे उन पर पूरा पूरा ध्यान दें और अपराधी या दोषी का पता लगाकर उसे दण्ड दिलाने की व्यवस्था करें। इसके विपरीत उचित से अधिक मुनाफा लेकर माल बचना आपस म छोटी मोटी कहा सुनी करना आदि एसे अपराध या दोष माने जाते हैं जिनके सम्बन्ध मे अधिकारी तभी कोई कारवाई करते हैं जब कोई व्यक्ति सामने आकर इस प्रकार का अभियोग उपस्थित करे। ऐसे अपराध या दोष 'अप्रज्ञेय कहलाते हैं।

ऐसे व्यक्तियो की मानसिक शक्तियाँ भी बहुत चढी-बढी होती है। उनमे सौन्दर्य की परख भी बिलकुल निराली होती है और अन्वेषण तथा पर्यालोचन की शक्ति भी अद्‌भुत होती है। प्रतिभा का सबसे बडा गुण अछूती नवीनता और स्वतत्र मौलिकता है। वह न तो किसी का अनुकरण पसन्द करती है और न किसी की छाया ही ग्रहण करती है। इसमे रचनात्मक शक्ति भी कुछ ऐसी अनोखी होती है जो नियम, मर्यादा, विधान आदि की साधारणत: कोई परवाह नही करती। इसमे कुछ ऐसी आन्तरिक प्रेरणा होती है जिससे मनुष्य बहुत ऊँचे दरजे की बाते कहता या काम करता है। जिन कवियो या लेखको मे प्रतिभा होती है वे प्राय अज्ञेय और असीम का चिन्तन करते हुए अपनी कृतियो या रचनाओ को ऐसा रूप देते हैं जो परम आकर्षक और मनोहर होने के अतिरिक्त बहुत अधिक आनन्ददायक और सुखद भी होता है। कभी कभी जो यह सुनने मे आता है कि अमुक व्यक्ति लाखो, करोड़ो और अरबो की सख्याओ का जोड, बाकी, गुणा और भाग बात की बात मे कर दिखलाते है वह उनकी प्रतिभा का ही प्रमाण माना जाता है। प्रतिभा मे कल्पना-शक्ति भी और क्रिया-शक्ति भी कुछ ऐसी असाधारण और विलक्षण होती है कि कभी-कभी बहुत-कुछ पागलपन की सीमा तक जा पहुँचती है। इसी लिए अनेक मनोविज्ञानवेत्ताओ का मत है कि प्रतिभा और पागलपन की विशेषताएँ बहुत-कुछ मिलती-जुलती होती हैं। × ×

प्रज्ञान—पु० [स०] दे० 'ज्ञान, परिज्ञान और प्रज्ञान'।

प्रज्ञेय—वि० दे० 'प्रज्ञा और प्रतिभा'।

प्रण—पु० [?] दे० 'सकल्प, निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ'।

प्रणय—पु० [स०] दे० 'अनुराग, प्रीत, प्रेम और स्नेह'।

प्रणाली—स्त्री० [स०] दे० 'पद्धति, परिपाटी और प्रणाली'।

प्रतिकूल, विपरीत और विरुद्ध

प्रतिकूल,	विपरीत	और विरुद्ध
1. Adverse	Contrary	Against
2. Opposite		

इस वर्ग के शब्द ऐसे कामो, बातो, व्यक्तियो, स्थितियो आदि के विशेषण हैं; जो या तो मार्ग मे पडकर हमारी प्रगति मे बाधक होती हैं, या उससे मेल नही खाती।

'प्रतिकूल' [स०] का पहला और मुख्य अर्थ है—जो सामने वाले किनारे या तट पर स्थित हो, इस दृष्टि से यह 'अनुकूल' का विपर्याय है। (दे० 'अनुकूल, अनुरूप और अनुसार')। जो बात हमारी इच्छा, प्रवृत्ति या रुचि से मेल नही खाती अथवा कथनों, गुणों, विशेषताओं आदि की दृष्टि से बाधक होती है वही हमारी दृष्टि मे प्रतिकूल ठहरती है। जो हमारी ओर अथवा हमारे पक्ष में न हो, बल्कि सामने वाले पक्ष में रहकर हमारे कामों मे अड़चन डालता हो, वह हमारे प्रतिकूल ही होता है। इसका प्रयोग ऐसे कार्यों, बातो, स्थितियो आदि के सम्बन्ध में भी होता है जो किसी अन्य काम बात या स्थिति को आगे बढ़ने से रोकती हो और ऐसी प्रवृत्ति रुचि, स्वभाव आदि के सम्बन्ध मे भी होता है, जो या तो हमारे अनुकूल न हो और या जो हम ठीक या युक्तिसगत न जान पड़ती हो जैसे—(क) उन्होने जो नीति या पक्ष ग्रहण किया है, वह हमारे बिलकुल प्रतिकूल है। (ख) यह औषधि भी और यहा का जलवायु भी हमारी प्रकृति के प्रतिकूल है। मुख्य आशय या भाव यही होता है कि दोनो मे मेल या सगति नही बैठती।

विपरीत [स०] का पहला और मुख्य अर्थ है—जो उल्टी दिशा में जा रहा हो या पीछे की ओर घूम या मुड़कर बढ़ने वाला हो। इस दृष्टि से यह विलोम के आशय या भाव से बहुत कुछ युक्त है (दे० 'अनुलोम और विलोम')। इसमे मुख्य आशय या भाव आवश्यक उचित उपयुक्त आदि से बिलकुल उलटे होने का है 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' का आशय यही है कि जब विनाश का समय आता है तब बुद्धि वैसी नही रह जाती जैसी साधारणत होनी या रहनी चाहिए बल्कि उससे बिलकुल उलटी हो जाती है 'अब वायु विपरीत दिशा में बहने लगी है' का अर्थ होता है—पहले जिस दिशा मे वह बह रही थी, अब उससे उलटी दिशा में वह बहने लगी है। ऐसे अवसरो पर यह प्रश्न गौण हो रह जाता है कि पहले उसका बहाव हमारी दृष्टि से अनुकूल दिशा में था या प्रतिकूल दिशा में। कुछ अवस्थाओं में इसमे क्रम नियम, विधान आदि के उल्लघन का भाव निहित रहता है। जो चीजें या बातें एक दूसरी के विपरीत होती हैं वे आपस में इस प्रकार आमने-सामने और इतनी दूर होती हैं कि उनमें परस्पर कभी मेल या सगति नही होती—समझौते के लिए कोई अवकाश नही होता।

'विरुद्ध [स०] वस्तुत 'विरोध' का भाव या स्थिति सूचित करने वाला विशेषण है (दे० रोध, अवरोध, गत्यवरोध, प्रतिरोध और विरोध) परन्तु लोक-व्यवहार में हम उन सब कामो या बातो को अपने विरुद्ध कहते और समझते है, जो हमारी प्रगति में रुकावट डालती हैं और हमें सहज में

आगे नही बढने देती। जो हमारे सामने आकर हमारा विरोध करता हो, हमारे कार्यो या प्रयत्नो आदि को विफल करना चाहता हो, उसे भी हम अपने 'विरुद्ध' समझते हैं। जो साधारण नियमो आदि से उलटा और विभिन्न हो, वह भी 'विरुद्ध' कहलाता है; जैसे—नियम, विधान, शास्त्र आदि के विरुद्ध आचरण या व्यवहार। कुछ अवस्थाओ मे इसका प्रयोग अव्यय या क्रिया-विशेषण के रूप मे भी होता है। उस दशा मे नीचे लिखे अर्थ सूचित करता है—

१. प्रतिकूल स्थिति मे होकर; जैसे—(क) किसी के विरुद्ध कुछ कहना, बोलना, या लिखना, (ख) किसी के विरुद्ध कोई मुकदमा दायर करना आदि।

२. किसी के मुकाबले मे या सामने; जैसे—चुनाव मे किसी के विरुद्ध खडा होना। ऐसे अवसरो पर इसमे प्रतियोगिता का भाव निहित होता है।

इस अर्थ मे इसके स्थान पर कभी-कभी फारसी के 'खिलाफ' का भी प्रयोग होता है। × ×

प्रतिज्ञा—स्त्री० [स०] दे० 'सकल्प, निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ'।

प्रतिनिधि प्रतीक और प्रवक्ता

प्रतिनिधि	प्रतीक	प्रवक्ता
1. Representative	1. Emblem	Spokesman
2. Delegate	2 Symbol	

इस वर्ग के शब्द ऐसी वस्तुओ, व्यक्तियो आदि के वाचक हैं जो किसी अप्रस्तुत वस्तु या व्यक्ति के स्थान पर अथवा उसके अभाव मे उसका काम दे सके और उसके अभाव की पूर्ति कर सकें।

'प्रतिनिधि' पु० [सं०] का मुख्य अर्थ है—प्रतिमा या मूर्ति जिसे लोग देवी-देवताओ का प्रतिमान मान कर या प्रतिरूप समझकर पूजते हैं। परन्तु आज-कल प्रतिनिधि का प्रयोग कई नये और विशिष्ट अर्थो मे होने लगा है। किसी व्यक्ति के स्वय उपस्थित न होने अथवा न हो सकने की दशा मे जो व्यक्ति उसका काम चलाता अथवा उसके स्थान की पूर्ति करता है, वही प्रतिनिधि कहलाता है। उदाहरण के लिए जब राज्य का कोई बड़ा अधिकारी स्वय कही नही पहुँच सकता, तब वह उस काम के लिए अपना प्रतिनिधि वहाँ भेजता है। आज-कल बड़े-बड़े राजाओ के राज्याभिषेक के अवसर पर

अथवा राष्ट्रपतियो के राज्यारोहण के उत्सव पर अनेक देशो के प्रधान शासक वहाँ अपना प्रतिनिधि भेजते हैं। लोकतन्त्रीय व्यवस्थाओ म मत दाता लोग विधान सभाओ मे अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजते हैं। राज्य का कोई विशेष काय पूरा करने के लिए प्रतिनिधियो का दल दूसरे देशो म भेजा जाता है, और बडी बडी महासभाओ के अधिवेशन के लिए उसके अनुयायी और समथक लोग अपने प्रतिनिधि चुनकर वहाँ भेजते हैं इसके सिवा लाक्षणिक रूप म प्रतिनिधि का एक और अथ भी होता है। जिस वस्तु या व्यक्ति को देखकर उसकी जाति वग या समूह की अन्यान्य सभी वस्तुओ या व्यक्तियों के आकार प्रकार, रूप रग आदि का अनुमान या कल्पना की जा सकती हो उसे भी उस जाति वग या समूह का प्रतिनिधि कहा जाता है। परन्तु इस अथ म प्रतिनिधि का प्रयोग कुछ कम ही देखने मे आता है।

'प्रतीक' पु० [स०] का वि० रूप म अथ है—जो किसी ओर चलाया बढाया या लगाया गया हो अथवा प्रेरित किया गया हो। इसके सिवा उल्टा प्रतिकूल विरुद्ध आदि इसके और भी कुछ अथ हैं। सज्ञा रूप मे प्रतीक के अथ अग, अश आकार मुख आदि और भी कई गौण अथ हैं। इसके सिवा प्रतिनिधि की तरह यह प्रतिमा या मूर्ति का भी वाचक होता है। परन्तु इससे आगे बढने पर प्रतीक कुछ दूसरे प्रकार के अर्थों का वाचक हो गया है। प्राय हमारे ध्यान म ऐसी बहुत सी बातें या वस्तुएँ आती हैं जो हमारे लिए अगोचर अदृश्य या अप्रस्तुत होती हैं और तब उनके आकार काय व्यवहार, व्यापार आदि की कल्पना करके चित्रण रेखन आदि के द्वारा उसका कोई सक्षिप्त रूप प्रस्तुत करते हैं और उसी को मूल वस्तु का प्रतीक कहते हैं। भारतीय हिन्दुओ के आध्यात्मिक क्षेत्र मे ॐ निराकार परमात्मा या परब्रह्म का प्रतीक माना जाता है। इसी प्रकार बहुत प्राचीन काल स स्वस्तिक एक बहुत मागलिक और शुभ प्रतीक माना जाता है और ईश्वर अथवा प्रकृति के कल्याणकारी रूप को सूचित करता है। भारत मे तो प्राय लोग इस आकृति को गणेश का रूप मानकर पूजते ही हैं और मागलिक अवसरो पर दीवारो पर जगह-जगह उसकी आकृतियाँ अकित करते ही हैं। इसके सिवा जरमनी, जापान फारस तथा अमेरिका की कुछ पुरानी जातियो मे भी इसके प्रचलन के कुछ अवशिष्ट रूप देखने म आते हैं। साराश यह कि जो चीज या बात और किसी प्रकार अप्रत्यक्ष न हो सकती हो उसे प्रत्यक्ष करने के लिए सक्षेप म उसका जो कल्पित रूप प्रस्तुत किया जाता है वही प्रतीक कहलाता है। इसी आधार पर आरम्भिक जातियो और मनुष्यो के सभी प्रकार के आचरणो, व्यवहारो आदि का अच्छी तरह विचार करके

'प्रतीक वाद' (Symbolism) नाम का एक नया सिद्धात ही निरूपित किया गया है। इसके अनुसार यह माना जाता है कि ससार मे मनुष्य की वनाई हुई सब चीजे वास्तव मे मूलतः प्रतीक ही हैं। पहले मनुष्य के मन मे कोई धारणा या विचार उत्पन्न होता है, और तब उसी के प्रतीक के रूप मे कोई नई चीज वनाकर तैयार करता और काम मे लाता है। इस प्रकार इसी को समस्त मानव समाज के सभी कामो या वातो का मूल आधार वतलाया गया है। कला; सगीत और साहित्य आदि के अतिरिक्त लोक-व्यवहार मे भी इसकी प्रधानता देखने मे आती है। कमल, मोर, हाथी आदि भारतवर्ष के प्रतीक माने जाते हैं। कुत्ता स्वामि-निष्ठा का, गीदड़ कायरता का, लोमडी चातुर्य और धूर्तता का तथा सिंह वल और पराक्रम का प्रतीक माना जाता है। कवूतर को लोग शान्ति का, तुला को निष्पक्ष न्याय का, लाल रग को खून खरावी का और सफेद रग को पवित्रता तथा शान्ति का प्रतीक मानते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियो को आशीर्वाद देते हैं—कोख और माँग से भरी पूरी रहो। यहाँ 'कोख' का प्रयोग उनकी सन्तान के प्रतीक रूप मे और माँग उनके सुहाग के प्रतीक के रूप मे प्रयुक्त होती है।

यहाँ यह भी ध्यान रहे कि प्रतिनिधि तो मुख्यतः पदार्थ या व्यक्ति ही होता है, परन्तु प्रतीक के अतर्गत वहुत सी दूसरी चीजे या वाते भी आ जाती हैं; जैसे—आज-कल कहा जाता है—(क) हरद्वार मे विजली के वड़े-वडे इजन वनाने का जो वहुत वडा कारखाना रूसियो की सहायता से वना है, वह भारत और रूस की घनिष्ट मित्रता का प्रतीक है; और (ख) उनका यह अनुग्रह (या दान) उनके सद्भाव और सौजन्य का प्रतीक है।

'प्रवक्ता' पुं० [सं०] का पहला अर्थ है प्रवचन करने अथवा कोई वात अच्छी तरह समझा कर वतलानेवाला। प्राचीन भारत मे प्रवक्ता उस आचार्य को कहते थे जो प्राचीन ऋषियो की कही हुई वातो को अच्छी तरह समझा कर विद्यार्थियो को उनकी शिक्षा देता था। परन्तु आज कल किसी ऐसे अधिकारी व्यक्ति को प्रवक्ता कहा जाता है जो किसी वडे राजनीतिक दल, शासन मंडल, सस्था आदि की ओर किसी निर्णय या विचार का जन-साधारण के सामने स्पष्टीकरण करता या उसके मत की व्याख्या करके लोगो का भ्रम या सदेह दूर करता हो। ऐसा व्यक्ति भी होता तो एक प्रकार का प्रतिनिधि ही है; परन्तु उसका यह प्रतिनिधित्व उसी वात तक सीमित रहता हैं जो वह दल, शासन, मडल या सस्था की ओर से सार्वजनिक रूप से कहता है। × ×

प्रतिपूर्ति—स्त्री० [सं०] दे० 'पूर्ति, अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति'।

प्रतिमा—स्त्री० [सं०] दे० 'प्रज्ञा और प्रतिभा'।
प्रतिमान—पुं० [सं०] दे० 'आदर्श, प्रतिमान, प्रतिरूप और मानक'।
प्रतिरक्षा—स्त्री० [सं०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, संरक्षा और सुरक्षा'।
प्रतिरूप—पुं० [सं०] दे० 'आदर्श, प्रतिमान, प्रतिरूप और मानक'।
प्रतिरोध—पुं० [सं०] दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध, निरोध, प्रतिरोध और विरोध'।
प्रतिषेध—पुं० [सं०] दे० 'वारण, निवारण, वर्जन, निषेध और प्रतिषेध'।
प्रतिष्ठान—पुं० [सं०] दे० 'संस्था, संस्थान, प्रतिष्ठा और निगम'।
प्रतिसंतुलन—पुं० [सं०] दे० 'संतुलन, समन्वय और सामञ्जस्य'।
प्रतीक—पुं० [सं०] दे० 'प्रतिनिधि प्रतीक'।
प्रतीकवाद—पुं० [सं०] दे० 'प्रतिनिधि प्रतीक और प्रवक्ता'।
प्रतीक्षा—स्त्री० [सं०] दे० 'आशा, प्रतीक्षा और प्रत्याशा'।
प्रतीति—स्त्री० [सं०] दे० 'विश्वास, प्रतीति, प्रत्यय, भरोसा और मान्यता'।
प्रत्यय—पुं० [सं०] दे० 'विश्वास, प्रतीति, प्रत्यय और भरोसा'।
प्रत्याशा—स्त्री० [सं०] दे० 'आशा, प्रतीक्षा और प्रत्याशा'।
प्रथा—स्त्री० [सं०] दे० 'रीति, प्रथा और रूढ़ि'।
प्रदान—पुं० [सं०] दे० 'दान, अनुदान, परिदान और प्रदान'।
प्रयत्न—पुं० [सं०] दे० 'चेष्टा, प्रयत्न और प्रयास'।
प्रयास—पुं० [सं०] दे० 'चेष्टा, प्रयत्न और प्रयास'।
प्रयोग—पुं० [सं०] दे० 'उपयोग और व्यवहार'।
प्रयोगवाद—पुं० [सं०] दे० 'प्रगतिवाद और प्रयोगवाद'।
प्रयोगशाला—स्त्री० [सं०] दे० 'उपचार, प्रयोग और व्यवहार'।
प्रवक्ता—पुं० [सं०] दे० 'प्रतिनिधि, प्रतीक और प्रवक्ता'।

प्रवचन, भाषण, वक्तृता और व्याख्यान
Discourse Lecture Oration Speech

ये चारों शब्द ऐसी बहुत सी बातों के सामूहिक रूप के सूचक हैं जो श्रोताओं के सामने अथवा सार्वजनिक सभाओं में कही जाती हैं। संस्कृत में 'प्रवचन' के यों तो कई अर्थ हैं, जैसे—बातचीत करना, शिक्षा देना, समझाना, घोषित करना आदि। हमारे यहाँ के प्राचीन साहित्य में इसका प्रयोग कुछ

विशिष्ट प्रकार के धार्मिक ग्रन्थ विशेषत: ब्राह्मणों और वेदागो के लिए होता था। परन्तु आज-कल इसका प्रयोग मुख्यत: ऐसे शिक्षाप्रद धार्मिक उपदेशो के सम्बन्ध मे होता है जो पवित्र ग्रन्थो मे आई हुई बातो के आधार पर और उनकी व्याख्या के रूप मे होते हैं। तात्त्विक दृष्टि से महापुरुषो अथवा धार्मिक ग्रन्थो के वचनो का स्पष्टीकरण करते हुए लोगो को उनका महत्त्व समझाना ही प्रवचन है; जैसे—गीता या रामायण का प्रवचन।

'भाषण' का साधारण अर्थ तो है—बातचीत करना या बोलना, जैसे—अब तो मैंने उनसे भाषण करना भी छोड दिया है। परन्तु आज-कल भाषण का प्रयोग ऐसी बातो के सम्बन्ध मे होने लगा है जो कुछ या बहुत से लोगों के सामने सार्वजनिक रूप से कही जाती हैं। इसके कई उद्देश्य हो सकते हैं; यथा—उन्हे अपना मत या विचार बतलाना, उन्हे कुछ नई और ज्ञातव्य बातें बतलाना, उन्हें प्रभावित करके अपने अनुकूल या पक्ष मे करना आदि आदि। साधारण भाषण प्राय मौखिक ही होते हैं, परन्तु कुछ अवस्थाओ मे वे लिखित भी होते या हो सकते हैं। भाषण मे साधारणत. सभी तरह के लोगो के लिए और प्राय लोक-व्यवहार की ही बातें होती हैं। आज-कल की सार्वजनिक सभाओ मे राजनीतिक, सामाजिक साहित्यिक आदि विषयो की चलती हुई जैसी और जो बातें सुनने मे आती हैं उनकी गणना भाषणो मे ही होती है। अंग्रेजी के Address का भाव सूचित करने के लिए इसी भाषण मे अभि उपसर्ग लगाकर आज-कल 'अभिभाषण' शब्द चलाया गया है। 'अभिभाषण' भी है तो एक प्रकार का भाषण ही, परन्तु इस मे एक तो औपचारिकता का भाव प्रधान होता है और दूसरे किसी बड़ अधिकारी अथवा विशिष्ट रूप से मान्य वर्ग या समूह को सबोधित करके कुछ महत्वपूर्ण बाते बतलाने का भाव सम्मिलित रहता है, जैसे—(क) न्यायालय मे वकील ने जो अभिभाषण किया था, उसमे उसने अपने पक्ष का बहुत ही कुशलता से और योग्यतापूर्वक समर्थन किया था। (ख) राष्ट्रपति ने ससद् मे जो अभिभाषण किया था उसमे देश की वर्तमान स्थिति और भावी आवश्यकताओ का बहुत ही विचारपूर्ण विवेचन था। और (ग) विद्यार्थियो के उपद्रव के कारण कुलपति को बीच मे ही अपना अभिभाषण बन्द कर देना पड़ा।

'वक्तृता' का मूल अर्थ है—बोलने की क्षमता या योग्यता। परन्तु आज-कल विस्तृत और व्यापक अर्थ मे इसका प्रयोग ऐसे भाषणो के सम्बन्ध मे होता है जिनका विषय अपेक्षया गम्भीर और विवेचन बहुत कुछ पाण्डित्यपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक हो। वक्तृता के लिए मुख्य आवश्यकता वाग्मिता की

होती है। भाषण वही समझा जाता है जो सब बातें बहुत अच्छी तरह प्रभावशाली रूप से और मनोरंजक ढंग से कहना जानता हो। इसकी शैली भी बहुत कुछ परिमार्जित और साहित्यिक होती है। इसी लिए इसके श्रोता भी अधिक योग्य शिक्षित तथा समझदार होते हैं या होने चाहिए।

'व्याख्यान' का व्युत्पत्तिक अर्थ है मूलतः व्याख्या ही है। इसी लिए जिस भाषण में किसी एक विषय के विशिष्ट अंग या अंगों का सूक्ष्म दृष्टि से विस्तारपूर्वक और व्याख्यात्मक रूप में विवेचन होता है वही व्याख्यान कहलाता है। यों लोक-व्यवहार में भाषण और व्याख्यान में कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता, फिर भी अपने वास्तविक अर्थ में व्याख्यान ऐसा उत्कृष्ट तथा ज्ञानप्रद भाषण है जो विद्याप्रेमी श्रोताओं के लिए ही उपयोगी होता है। व्याख्यान के लिये व्याख्याता को पहले से कुछ तयारी भी करनी पड़ती है क्यों कि उसमें विशिष्ट विषय की ज्ञातव्य बातों का अच्छा विवेचन होना चाहिए। इस दृष्टि से साधारण भाषण की तुलना में व्याख्यान अधिक उच्च कोटि का ठहरता है। इस लिए कहा जाता है– (क) आजकल विद्वत्परिषद् में वेदांत संबंधी व्याख्यान माला चल रही है, और (ख) हमारे विश्व विद्यालय में इस वर्ष वायु विज्ञान (अथवा समाज विज्ञान) के संबंध में एक व्याख्यान माला का आयोजन हुआ है। × ×

प्रवर्तन—पुं० [सं०] दे० घोषणा, प्रख्यापन, परिज्ञापन और प्रवर्तन।

प्रविधान—पुं० [सं०] दे० विधा, विधान प्रविधान और संविधान।

प्रविधि—स्त्री० [सं०] दे० 'विधि क्रिया विधि, प्रक्रम और प्रविधि।

प्रविधिज्ञ—पुं० [सं०] दे० विधि, क्रिया विधि, प्रक्रम और प्रविधि।

प्रवृत्ति—स्त्री० [सं०] दे० 'वृत्ति, अभिवृत्ति, प्रवृत्ति मनोवृत्ति और रुचि।

प्रशंसा—स्त्री० [सं०] दे० 'आशंसा, अनुशंसा, अभिशंसा और प्रशंसा।

प्रशासन—पुं० [सं०] दे० 'शासन, प्रशासन, अनुशासन।

प्रशिक्षण—पुं० [सं०] दे० 'शिक्षण, शिक्षा और प्रशिक्षा'।

प्रसंग—पुं० [सं०] दे० 'विषय, प्रकरण प्रसंग और संदर्भ'।

प्रसम—वि० [सं० प्र+सम] दे० साधारण, सामान्य, प्रसम, प्रायिक और सार्विक'।

प्रस्तुत—वि० [सं०] दे० 'उपस्थित, प्रस्तुत, वर्तमान और विद्यमान।

प्राण—पुं० [सं०] दे० जीवन, प्राण, जान और जिंदगी।

प्राणी जीव और जंतु

'प्राणी' उसे कहते हैं जिसमे प्राण-वायु हो और जो साँस लेता हो। 'जीव' उसे कहते हैं जिसमे जीवन हो, अर्थात् जो खाता-पीता, चलता-फिरता और सतान उत्पन्न करता हो। (प्राण और जीवन की विस्तृत व्याख्या के लिए दे० 'जीवन और प्राण'।) 'जतु' सस्कृत की जन् धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है जनन की क्रिया करना या जन्म देना। इस आधार पर जंतु का पहला और मुख्य अर्थ है—वह जिसे (माता-पिता से) जीवन या जन्म प्राप्त हुआ हो। यद्यपि तात्त्विक और वैज्ञानिक दृष्टि से इन तीनो शब्दो के अर्थों मे कोई विशेष अतर नही है, फिर भी प्रयोग और व्यवहार की दृष्टि से इनमे कुछ सूक्ष्म अतर अवश्य है।

'प्राणी' मुख्यत: उसे कहते हैं जिसमे भारतीय दर्शन के अनुसार पाँचों प्रकार की प्राण-वायुओ का निवास हो, और इसी लिए प्राणी मुख्यत: आदमी या मनुष्य की सज्ञा के रूप मे प्रयुक्त होता है; जैसे—उनके घर में दस प्राणी हैं, अर्थात् स्त्री-पुरुष, लडके-लडकियाँ आदि सब मिलाकर दस आदमी हैं। इससे और आगे बढने पर पति की दृष्टि मे उसकी पत्नी और पत्नी की दृष्टि मे उसका पति 'उसका प्राणी' कहा जाता है। कदाचित् प्राचीन भारतीय दार्शनिक कीडो-मकोड़ो और इसी प्रकार के दूसरे छोटे-मोटे जानवरो मे प्राण-वायु का निवास उस रूप मे या उस सीमा तक नही मानते थे जिस रूप मे और जिस सीमा तक मनुष्यो मे मानते थे; और इसी लिए उन्होने 'प्राणी' को मनुष्यो के क्षेत्र तक ही परिमित रखा था।

'जीव' मुख्यत: उसे कहते हैं जिसमे जीवन अर्थात् किसी न किसी प्रकार की चेतना-शक्ति वर्तमान हो। इस दृष्टि से इसके अर्थ की व्यापकता बहुत बढ़ गई है। मनुष्य भी जीव हैं, पशु-पक्षी भी जीव हैं, और कीडे-मकोड़ भी जीव हैं। यहाँ तक कि अणु के सामान जो बहुत ही छोटे-छोटे पिड या शरीर किसी प्रकार की चेतना से युक्त हैं, उन्हे भी जीवाणु ही कहते हैं। उक्त सभी प्रकार के शरीरो मे चेतना-शक्ति का मूल आधार या तत्त्व होता है वह भी जीवात्मा कहलाता है।

'जतु' मूलत: है तो वही जिसने किसी रूप मे इस ससार मे जन्म ग्रहण किया हो, परन्तु लोक-व्यवहार मे इसका प्रयोग ऐसे जीवो के सबध मे होता है जो आकार-प्रकार की दृष्टि से बहुत छोटे न हो, या तो बड़े हो या मँझले आकार के। यो गौ, भैंस आदि भी और चूहे, छिपकलियाँ, साँप आदि भी जतुओ मे ही गिने जाते है। जब हम कहते हैं—'पृथ्वी के आरम्भिक युगो में

विशिष्ट रूप से सम्मानित करने के समय प्राय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि किसी क्षेत्र में उनकी कितनी, कैसी अथवा क्या उपलब्धियाँ हैं।

'परिलब्धि' स्त्री० [सं०] लब्धि मे परि उपसर्ग लगने से बनता है। मैंने यह शब्द अंग्रेजी के Achievement का भाव सूचित करने के लिए सोचा और चुना है।* यों तो और बातो मे 'परिलब्धि' वही है जो उपलब्धि है, परन्तु परिलब्धि का प्रयोग ऐसी सफलताओं और सिद्धियों के सम्बन्ध में होना चाहिए जो हमने अपनी अभिलाषा, आकांक्षा और इच्छा के अनुसार प्रयत्नपूर्वक प्राप्त की हो। यों तो सफलता या सिद्धि प्राप्त करने के लिए सदा प्रयत्न और प्रयास की आवश्यकता होती ही है और इसी लिए परिलब्धि भी प्रयत्न और प्रयास से ही होती है। उपलब्धि के मूल में हमारी अभिलाषा, आकांक्षा और इच्छा ही प्रधान होती है परन्तु 'परिलब्धि' में इनके बदले हमारे मानसिक और शारीरिक अध्यवसाय, परिश्रम, प्रयत्न आदि का भाव प्रधान होता है और उसी पर असल जोर होता है। × ×

प्राय और बहुधा

Frequently — 1 Often 2 Multifariously

इन अव्ययों का प्रयोग ऐसी क्रियाओं, घटनाओं, बातों आदि के प्रसंग में होता है, जो थोड़े थोड़े अन्तरों पर या बीच बीच में अनियमित और अनिश्चित समय पर एक दूसरी के बाद होती चलती हैं।

प्राय' अव्य० [सं०] उसे कहते हैं जो अधिकतर अवसरों या प्रसंगों में अथवा अधिकतर स्थानों पर बीच बीच में रह रहकर घटित होता या सामने आता रहता हो। इसमें मुख्यत कार्य या घटना के होने पर ही जोर रहता है, उसकी आवृत्तियों या पुनरावृत्तियों पर नहीं, जैसे—(क) वे प्राय मेरे

* अंग्रेजी में Attainment और Achievement दो अलग-अलग शब्द हैं, और इनके आशयों तथा विवक्षाओं में कुछ सूक्ष्म अन्तर है। अब तक हमारे यहाँ अंग्रेजी के उक्त दोनों शब्दों के लिए 'उपलब्धि' का ही प्रयोग होता आया है, जो उक्त सूक्ष्म अन्तर की दृष्टि से ठीक नहीं है। ऊपर उपलब्धि और परिलब्धि में जो अन्तर बतलाया गया है वह अंग्रेजी के उक्त दोनों शब्दों के आशयों के आधार पर ही निरूपित हुआ है।

यहाँ आया करते हैं। (ख) गर्मियो के दिनो में वे प्रायः पहाड़ पर चले जाते हैं। 'प्रायः' के अन्य अर्थों के लिए देखें—'लगभग, प्रायः और आस-पास'।

'बहुधा' अव्यय [स०] के मुख्यतः दो अर्थ हैं। एक तो बहुत तरह या प्रकार से, और दूसरा बहुत बार। 'प्रायः' की तुलना मे इसमे किसी कार्य या घटना की बार-बार होनेवाली आवृत्तियो पर जोर होता है, स्वय घटना के घटित होने पर नही। दूसरा अन्तर यह भी है कि 'प्राय.' मे तो आवृत्तियाँ अपेक्षाकृत कम होती हैं; पर बहुधा मे अधिक; जैसे—सावन और भादो मे वर्षा बहुधा होती ही है अर्थात् इन महीनो मे पानी बहुत कुछ नियमित और निश्चित रूप से बरसता ही है। यदि उक्त वाक्य मे 'बहुधा' की जगह प्रायः का प्रयोग किया जाय, तो वर्षा की निश्चयात्मकता और संभावना के लिए उतना अवकाश नही रह जायगा जितना वस्तुतः होना चाहिए।

उक्त दोनो अव्ययो के स्थान पर कुछ लोग उर्दू के अनुकरण पर अ० के 'अक्सर' का भी प्रयोग करते हैं। × ×

प्रायिक—वि० [सं० प्राय. से] दे० 'साधारण, सामान्य, प्रसम, प्रायिक और सार्विक'।

प्रायोजना—स्त्री० [स०] दे० 'योजना, परियोजना, प्रायोजना और सयोजना'।

प्रायोगिक—वि० [स०] दे० 'उपयोग, प्रयोग और व्यवहार'।

प्रारम्भ—पुं० [स०] दे० 'अग्र, आदि, आरम्भ और प्रारम्भ'।

प्रारूप—पुं० दे० 'पाडु-लेख, और हस्त-लेख'।

प्रार्थना—स्त्री० [स०] दे० 'विनती, प्रार्थना, निवेदन, आवेदन और प्रतिवेदन'।

प्रालेख—पु० [स०] दे० 'पाडु-लेख और हस्त-लेख'।

प्राविधान—पु० दे० 'विधि, विधान, प्राविधान, संविधान और सहिता'।

प्राविधिक—वि० दे० 'प्रविधि और परिज्ञान'।

प्रीति—स्त्री० [स०] दे० 'अनुराग, प्रीति, प्रेम और स्नेह'।

प्रेम—पु० [स०] दे० 'अनुराग, प्रीति, प्रेम और स्नेह'।

प्रेय—पुं० [स०] दे० 'कीर्ति, यश और श्रेय'।

प्रौढ़—वि० [स०] दे० 'परिपक्व, पुष्ट और प्रौढ'।

फबती—स्त्री० [हि० फबना] दे० 'हँसी, दिल्लगी, परिहास, चुहल और फबती'।

फल—पुं० [स०] दे० 'परिणाम और फल'।

फाका—पु० [अ० फाक़] दे० 'अनशन उपवास, लंघन और व्रत'।
फायदा—पु० [अ० फाइद], १=प्रति, २=लाभ, दे० 'प्राप्ति लाभ, उपलब्धि और परिलब्धि'।
फूलन—स्त्री० [हि० फूलना]=शोफ, दे० 'शोथ और शाफ'।
फेहरिस्त—स्त्री० [अ०]=सूची, दे० 'तालिका, सारणी सूची और सूचीपत्र।
बड़प्पन—पु० [हि०] दे० महत्ता, महत्त्व और महिमा'।

बद्ध बाध्य और विवश

Bound 1 Compelled 2 Obliged Helpless

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियों के वाचक हैं जिनमें किसी प्रकार की अड़चन या बाधा के कारण इच्छा होने पर भी मनुष्य या तो कोई काम कर नहीं सकता या इच्छा न होने पर भी उसे कोई काम करना पड़ता है।

'बद्ध' वि० [सं०] का अर्थ है—बंधन से युक्त या बंधा हुआ। जब कोई वस्तु या व्यक्ति किसी प्रकार या रूप में बाँध लिया जाता है अथवा बँधा हुआ हुआ होता है तब उसे बद्ध कहते हैं। आशय यही होता है कि मनमाने ढंग से कुछ कर सकने की स्वतंत्रता उसे नहीं रह गयी है। प्रतिज्ञा-बद्ध और वचन बद्ध का आशय है—प्रतिज्ञा या वचन से बँधा हुआ अर्थात् जो प्रतिज्ञा वह कर चुकता है या वचन दे देता है उसके विपरीत आचरण करने की स्वतंत्रता उसे नहीं रह जाती। वह अपनी प्रतिज्ञा या वचन से बंध जाता है। इसका प्रयोग अमूर्त और जड़ पदार्थों के सम्बन्ध में भी होता है, जैसे—छन्दोबद्ध लेख बद्ध सीमा बद्ध आदि। ऐसी अवस्थाओं में बद्ध का अर्थ होता है—मर्यादा आदि से घिरा हुआ।

'बाध्य सं० बाध का विकारी रूप है। इसका पहला अर्थ है—जिसके साथ कोई बाधक तत्व या रुकावट डालने वाली बात लगी हो। परन्तु लौकिक व्यवहार में यह मुख्यतः दो अर्थों में प्रचलित है। एक तो बाध्य ऐसा व्यक्ति कहलाता है जो परिस्थितियों, मनोवेगों आदि के कारण ठीक तरह से अपना काम न कर पाता हो अथवा उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध कोई काम करना पड़ता हो, जैसे—पारिवारिक (अथवा शारीरिक) परिस्थितियों ने उसे नौकरी छोड़ने के लिए बाध्य किया। दूसरे ऐसा व्यक्ति भी 'बाध्य होता है जिसे किसी प्रबल विरोधी तत्व या शक्ति ने कोई काम करने से रोक रखा हो। इस तत्वों में आज्ञा आदेश, नियम आदि भी आ जाते हैं। ऐसी

व्यापक शब्द है। कभी तो स्वयं काम का स्वरूप ही कठि। और जटिल होने के कारण वाधामय होता है और कभी परिस्थितियाँ, वाह्य वाते अथवा दूसरे लोग हमारे मार्ग मे वाधाएँ खडी करते हैं। हिन्दी मे इसके स्थान पर प्राय. अडचन का भी प्रयोग होता है।

'अडचन' स्त्री० [हि० अड़ना=रुकना+चलना[से वना है, जिसका मूल अर्थ है—वाधा, विरोध आदि के कारण ठीक तरह से न चल पाना और वीच-वीच मे ठहरने या रुकने के लिए विवश होना। इसका पुराना और स्थानिक रूप अडचल है जो अव भी कही कही चलता है। आज-कल अधिकतर अड़चन ही वोला और (कदाचित् उर्दू के प्रभाव से) मानक रूप माना जाता है। किसी वस्तु की क्रिया या व्यक्ति के काम मे अथवा उसकी प्रगति आदि मे रह-रहकर जो छोटी-छोटी कठिनाइयाँ, वाधाएँ या रुकावटे सामने आती हैं, उन्ही को अडचन कहते हैं*। अड़चन के कारण कार्य आरम्भ या समाप्त करने मे प्राय: देर होती है, और उसके कर्त्ता को चिंतित होकर अधिक प्रयत्न करना पड़ता है।

'विघ्न' पु० [स०] का विशेपण रूप मे अर्थ होता है घात, प्रहार या विनाश करनेवाला। इसके अन्त का 'घ्न' प्रत्यय ही उक्त सव अर्थ देता है; और इसके उदाहरण स्वरूप कृतघ्न, शत्रुघ्न आदि अनेक शब्द हिन्दी मे प्रचलित हैं। इसी दृष्टि से हम कह सकते हैं कि यह वाधा का वहुत ही आगे वढा हुआ जोरदार और तीव्र रूप है। परन्तु आज-कल प्रयोग की दृष्टि से इसका यह जोर या तीव्रता वहुत कुछ घट गई है और यह वाधा की तरह और कुछ अवस्थाओ मे उसके साथ ही वोला और लिखा जाता है। हम कहते हैं—'भारत ने सभी विघ्न-वाधाएँ पार करके अत मे स्वतत्रता प्राप्त कर ही ली।' ऐसे अवसरो पर विघ्न ऐसी वातो का सूचक होता है जो हमे अपने तीव्र और नाशक प्रभाव के कारण विफल और हतोत्साह करना चाहती हैं और वाधा उन तत्त्वो की सूचक होती है, जो हमारा रास्ता रोकना चाहते हैं। × ×

वाधा—स्त्री० [स०] दे० 'वाध, वाधा और विघ्न'।
वाध्य—वि० [स०] दे० 'वद्ध, वाध्य और विवश'।
वानगी—स्त्री० [हि०] दे० 'नमूना और वानगी'।
वायाँ—वि० [स० वाम] दे० 'दाहिना और वायाँ'।

* अग्रेजी मे 'इम्पेडिमेन्ट' का भी व्युत्पत्तिक अर्थ वहुत कुछ वही है जो हमारे यहाँ अडचन का है। 'इम्पेडिमेन्ट' वस्तुत: पैरो का इस तरह उलझ, फँस या वँध जाना है कि जिससे चलने या आगे वढने मे रुकावट हो।

हैं —इस कपड़े (या कुरसी) की बनावट अच्छी है, परन्तु जब हम कहते हैं—आपके मित्र में 'बनावट' बहुत अधिक है, तो ऐसे अवसरों पर बनावट एक बिलकुल नए अर्थ या आशय की सूचक होती है। हिन्दी में बनाना के अनेक अर्थों में एक अर्थ 'कृत्रिम और दिखौआ रूप धारण करना' भी है। जब कोई व्यक्ति अपनी दुर्बलता, दोष आदि छिपाने के लिए या वास्तविक हीनता पर परदा डालने के लिए कुछ और रूप धारण करता है, तब हम कहते हैं—आज कल वह बहुत बनने लगा है। इसी आधार पर 'बनावट' का एक और अर्थ होता है—केवल दूसरों को दिखाने के लिए बनाया हुआ ऐसा आचरण, रूप या व्यवहार जिसमें तथ्य, दृढ़ता, वास्तविकता, सत्यता आदि का बहुत कुछ या सर्वथा अभाव हो, अर्थात् केवल दिखावटी, आकार प्रकार, आचार व्यवहार रूप-रंग आदि, जैसे—उनकी इन बातों में मुझे बहुत कुछ बनावट ही जान पड़ती है। इससे भी कुछ और आगे बढ़कर 'बनावट' ऐसी दम्भपूर्ण मानसिक स्थिति सूचित करती है जिसमें मनुष्य अपने आपको वास्तविकता से अधिक योग्य, सदाचारी आदि सिद्ध करने का प्रयत्न करता है जैसे—वे विद्वान् ही हैं फिर भी उनमें बहुत कुछ बनावट है। आशय यही होता है कि उनमें बहुत कुछ आडंबर भी है।* × ×

बनावट—स्त्री० [हिं० बनाना] दे० 'बनाव और बनावट'।
बरताव—पु० [सं० वर्तन हिं० बरतना] १ दे० 'आचरण, आचार और व्यवहार। २ दे० 'उपयोग, प्रयोग और व्यवहार'।
बल—पु० [सं०] दे० शक्ति, बल, सामर्थ्य और ऊर्जा।
बहाना—पु०[फ़ा० बहान] दे० ब्याज, मिस, बहाना और हीला'।
बहिरावर्त—पु० [सं०] दे० 'अंतरावर्त और बहिरावर्त'।
बहुज्ञता—स्त्री० [सं०] दे० 'ज्ञान परिज्ञान और प्रज्ञान।
बहुधा—अव्य० [सं०] दे० 'प्राय और बहुधा।

बाध बाधा अड़चन और विघ्न
Bar Obstacle Impediment Obstruction

इस वर्ग के शब्द ऐसे कामों, चीजों आदि के वाचक हैं जो हमारे कामों में रुकावट डालती या हमें आगे बढ़ने से रोकती हैं, और जिन्हें दूर करने के लिए हमें प्रायः विशेष प्रयास करना पड़ता है।

* इस बनावट से विशेषण बनावटी भी बनता है जिसका मुख्य अर्थ होता है—कृत्रिम, दिखौआ या नकली।

'वाध' पुं० [सं०] के मूल अर्थ हैं—दूर करना, पीछे ढकेलना, हटाना आदि। पर आगे चलकर इस शब्द ने हमारे साहित्यिक क्षेत्र मे कुछ पारिभाषिक रूप ग्रहण कर लिया। इसकी व्याख्या करने के लिए हम कह सकते हैं कि किसी कथन या प्रतिपादन मे आनेवाली वह असंगति या कठिनता 'वाध' कहलाती है, जो उसके अर्थ, आशय या वाक्य-रचना में तर्क-संगत सम्बन्ध के अभाव के कारण स्पष्ट दिखाई देती है। हम कहते हैं—जहाँ वाच्यार्थ ग्रहण करने मे अभिधार्थ का वाध हो, वहाँ लक्ष्यार्थ ग्रहण करना चाहिए। तर्क और न्याय में वह पक्ष भी 'वाध' कहलाता है जिसमे साध्य का वहुत कुछ अभाव जान पड़ता हो। आज-कल प्रशासनिक आदि क्षेत्रों में अं० के Bar का भाव सूचित करने के लिए इसका अर्थ कुछ और विस्तृत हो गया है। वाध वह तत्त्व या वस्तु है जो किसी के आगे वढने से अस्थायी अथवा स्थायी रूप से रोकने के लिए या किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए खडी की या लगाई जाती है। इसका उपयोग किसी क्षेत्र या घेरे के अंदर किसी को रोक रखने के लिए भी और वाहर से किसी को अंदर न आने देने के लिए भी होता है। इसमें मुख्य भाव किसी न किसी प्रकार के निषेध या मनाही का है। सरकारें प्रायः विदेशियो को अपने यहाँ आने से रोकने के लिए या अपने देश की सपत्ति देश मे ही रोक रखने के लिए अनेक प्रकार के वाध लगाती हैं। यदि भारत सरकार कह दे कि हम दूसरे देशो के कोढियों, दिवालियो या विक्षिप्तो को यहाँ नही आने देंगे, तो ऐसे निषेधों की गिनती (विदेश से आनेवालो की दृष्टि मे) वाधो मे होगी। राजकीय सेवा करनेवालो के लिए भी कई प्रकार के विभागीय वाध होते हैं; जैसे—यह निश्चित हो सकता है कि जब तक कोई कर्मचारी पाँच वर्षो की सेवा पूरी न कर ले अथवा अमुक परीक्षा में उत्तीर्ण न हो ले, तव तक उसकी पद-वृद्धि या वेतन-वृद्धि नही होगी। यह भी वाध ही है।

'वाधा' स्त्री० [सं०] भी अपने मूल और व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्रायः वही है जो वाध है परन्तु अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से यह उससे वहुत कुछ भिन्न है। इसके आरम्भिक अर्थ हैं—कसना, दवाना, वाँधना आदि। इसी लिए इन क्रियाओ के फलस्वरूप होनेवाले कष्ट, रुकावट, विरोध आदि के सूचक भाव भी इस शब्द के साथ सम्वद्ध हो गए हैं। पर मुख्यतः यह उस अवस्था, तत्त्व, वात या स्थिति की वाचक है जो काम करते समय हमारे मार्ग मे अथवा सामने आकर हमें वह काम करने से कुछ समय के लिए रोकती है और जव तक हम उसे दूर नही कर लेते, तव तक हम आगे नहीं वढ सकते और हमारा काम पूरा नही होता। अर्थ की दृष्टि से यह बहुत

अवस्थाओं में भी मनुष्य युद्ध करने अथवा न करने के लिए बाध्य होता है, जैसे—नए प्रशासनिक नियमों ने उसे अपनी दूसरी स्त्री से सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए बाध्य किया। इसके स्थान पर फारसी का 'मजबूर' भी प्रयुक्त होता है।

'विवश' वि० [सं०] का अर्थ है—जो वश या शक्ति से रहित हो अर्थात् जिसका वश न चलता हो या शक्ति काम न करती हो। जिसमें हम कुछ करना तो चाहते हों पर वह काम हमारे वश के बाहर होता है—हमारी शक्ति उतनी नहीं होती। ऐसी अवस्था में हम अपने आप को विवश समझते हैं। इसी लिए कहा जाता है कि मैं उनकी सहायता तो करना चाहता हूँ पर पास में धन (या शरीर में शक्ति) न होने के कारण विवश हूँ। कोई दूसरा प्रबल या शक्तिशाली व्यक्ति भी हम कोई काम करने या न करने के लिए विवश कर सकता है और ऐसे अवसरों पर आशय की दृष्टि से, बाध्य और विवश में कुछ विशेष अन्तर नहीं रह जाता, फिर भी विवश में अपना वश न चल सकने का भाव ही प्रधान है। इसके स्थान पर फारसी 'लाचार' का भी प्रयोग होता है। × ×

बनाव और बनावट

Structure Affectation

ये दोनों संज्ञाएं 'बनाना' क्रिया से बने हुए उनके भाववाचक रूप हैं। इनमें से 'बनाव' पुंलिंग और 'बनावट' स्त्रीलिंग है। कुछ अर्थों में तो ये एक दूसरे के पर्याय हैं और कुछ अर्थों में बिलकुल भिन्न अर्थ सूचित करते हैं।

'बनाव' हिन्दी बनाना से व्युत्पन्न है। इसका मुख्य अर्थ है—बनने या बनाने की क्रिया, ढंग या भाव। इसी आधार पर यह उस स्थिति या स्वरूप का भी वाचक हो गया है जो बनने या बनाए जाने के उपरान्त प्रस्तुत होता या सामने आता है। कुछ अवस्थाओं में यह बने या बनाए हुए सुन्दर आकार प्रकार का भी सूचक है, और शृंगार या सजावट का भाव सूचित करता है। इसी आधार पर इससे यौगिक पद 'बनाव सिंगार' बना है जिसका प्रयोग प्रायः सुन्दर रूप रचना या सजावट सूचित करने के लिए होता है।

'बनावट' में ऊपर दिए हुए बनाव के पहले दो अर्थ तो प्रायः ज्यों के त्यों हैं, परन्तु तीसरा या अन्तिम अर्थ बिलकुल नहीं है। हम यह तो कहते

विचवई—पुं० [हिं०]=मध्यस्थता। दे० 'पचायत, मध्यस्थता; और सराथन'।

विसात—स्त्री० [अ०] दे० 'सामर्थ्य, समाई और विसात'।

बुद्धि समझ और अक्ल

Intellect - Intelligence

स्त्री० 'बुद्धि' सस्कृत का शब्द तो है ही; हमारे यहाँ के दार्शनिको ने इसे अंतःकरण की चार वृत्तियो मे से एक माना है और कहा है कि इसी के द्वारा हमे अच्छी और बुरी बातो का ज्ञान होता है और इसी से हम अपने कर्त्तव्यो के निश्चय, पालन आदि मे समर्थ होते हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिको ने इसे मन का ही एक ऐसा गुण, धर्म या शक्ति माना है जो विशिष्ट रूप से मनुष्यो आदि को प्राप्त है और इसका अधिष्ठान मस्तिष्क माना है। परन्तु भारतीय दार्शनिको ने इसे 'मन' से भिन्न तत्व और अतःकरण की चार वृत्तियो मे से एक अलग वृत्ति माना है। जो हो यही वह शक्ति है जिससे मनुष्य ज्ञान भी प्राप्त करता है और सब प्रकार के तर्क-वितर्क और विचार करके ठीक तरह से काम भी करता है। बुद्धि की सहायता से ही मनुष्य सब तरह के काम और बातें सहज मे ही सीख लेता है और नई-नई बाते ढूँढ या निकाल भी लेता है।

'प्रज्ञा' और 'प्रतिभा' (दे०) इसी के उत्कृष्ट और विकसित रूप माने गये हैं। अरबी का 'अक्ल' इसी का पर्याय है जो स्त्री० है।

'समझ' हिन्दी का स्त्री० शब्द है जो सम्भवत· स० सबुद्धि, प्रा० समुज्झ से बना है। तात्त्विक दृष्टि से इसे बुद्धि का एक अंग या पक्ष ही मानना चाहिए, क्योकि इसका सम्बन्ध मुख्यत· ज्ञान प्राप्त करने से ही है। बुद्धि से इसमे एक और अतर यह भी है कि बुद्धि तो विशिष्ट रूप से मनुष्यो मे ही मानी जाती है, पर समझ चाहे अल्प मात्रा मे ही क्यो न हो पशु-पक्षियो तक मे बल्कि यो कहना चाहिए कि सभी प्राणियो मे किसी न किसी रूप मे देखने मे आती है। इसका कार्य-क्षेत्र ज्ञान प्राप्त करने और सोच-विचार कर कोई काम करने तक ही परिमित है। मनुष्य मे जो समझ होती है वह इस बात की सूचक मानी जाती है कि वह जो कुछ देखता, पढता या सुनता है उसका ठीक तरह से ज्ञान प्राप्त कर लेता है और फिर उस ज्ञान तथा पुराने अनुभवो की सहायता से सब बातो का आगा-पीछा सोच सकता है और अपना कर्त्तव्य या मार्ग ठीक तरह से निश्चित कर सकता है। जिन लोगो में अच्छी

समझ होती है उनके आचार-विचार और व्यवहार भी साधारणतः कम समझवाले अथवा नासमझ लोगों की तुलना में यहीं अच्छे और बहुत कुछ ठिकाने के होते हैं। मनुष्य में समझ अनुभव से तो आती ही है, पठन पाठन आदि से भी आती है और इसी के फलस्वरूप वह किसी बात पर विचार करने के समय बहुत कुछ गहराई तक भी पहुँच सकता है। × ×

बू—स्त्री० [फा०] दे० 'गंध, बू, महक और वास'।

बे-परवाह और ला-परवाह
Heedless Careless

इस वर्ग के विशेषण ऐसे व्यक्तियों के वाचक हैं जो कोई कार्य या व्यवहार करते समय या तो असावधानी से या उपेक्षापूर्वक उचित रूप से ध्यान नहीं देते अथवा सचेत नहीं रहते। 'परवाह' फा० पर्वा का उर्दू और हिंदी रूप है। पर्वा के मूल अर्थ हैं—ख्याल, ध्यान, चिन्ता, फिक्र आदि। इसी परवाह में फारसी बे उपसर्ग लगाकर बे-परवाह और अरबी ला उपसर्ग लगाकर ला-परवाह रूप बनाया गया है। यद्यपि मूलतः बे और ला उपसर्गों के अर्थ में कोई विशेष अन्तर नहीं है फिर भी उर्दू और हिंदी में बे परवाह और ला परवाह के अर्थ या आशय में बहुत अधिक अन्तर है।

'बे-परवाह' ऐसा व्यक्ति कहा जाता है जो अपनी स्वाभाविक उदासीनता के कारण (निकम्मापन, सुस्ती आदि के कारण नहीं) अपने कार्यों, कर्त्तव्यों आदि पर कुछ भी ध्यान नहीं देता और उनके परिणाम आदि का कुछ भी विचार नहीं करता। अर्थात् जब उसके जी में जो कुछ आता है, वही मन माने ढंग से कर जाता है, लाभ-हानि आदि की ओर उसका ध्यान ही नहीं जाता। प्रायः ईश्वर के सम्बन्ध में कहा जाता है—वह बड़ा बे परवाह है। आशय यही होता है कि वह जनता या संसार के दुःख-सुख, हानि लाभ आदि की कुछ भी चिन्ता नहीं करता। इसमें मनवमानता और मन मौजी-पन का भाव प्रधान है।

'ला-परवाह' ऐसा व्यक्ति कहलाता है जो चिन्ताओं, झंझटों आदि से बचने के लिए अपने कर्त्तव्यों का उस रूप में उचित पालन नहीं करता जिस रूप में उसे करना चाहिए। यह व्यक्ति की अयोग्यता, आलस्य, निकम्मापन आदि का सूचक होता है। इसमें प्रायः मूर्खतापन का भी कुछ भाव सम्मिलित होता है। हम कहते हैं कि उसे अपना छाता (या पुस्तक) मत दो, वह लापरवाह आदमी है कहीं गँवा आवेगा। आशय यही होता है कि

किसी चीज की रक्षा आदि के लिए जिस सावधानी की आवश्यकता होती है, उसका उसमे वहुत अभाव है। × ×

बेहरी—स्त्री० [म०] दे० 'चदा, वेहरी और उगाही'।
बोली—पु० [हि०] दे० 'व्यग्य, कटाक्ष (छीटा), चुटकी, ताना और बोली'।
बौछार—स्त्री० = आक्षेप; दे० 'आक्षेप, अभिक्षेप और भर्त्सना'।
ब्रह्मज्ञान—पु० [स०] दे० 'ज्ञान, परिज्ञान और प्रज्ञान'।
भक्ति—स्त्री० [स०] दे० 'आस्था, निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति'।

भय भीति डर भीषिका और आतंक

Fear Fear Horror Terror

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमे या तो कोई भीषण और विकट सकट उपस्थित होता है अथवा उसके उपस्थित होने के वहुत कुछ सभावना जान पडती है। ये सभी स्थितियाँ लोगो को इतना अधिक चिन्तित और विकल कर देती हैं जिससे जल्दी उसकी समझ मे यही नही आता कि अव आगे क्या होगा अथवा मुझे क्या करना चाहिए।

'भय' पु० [स०] अर्थ और प्रयोग दोनो के विचार से वहुत व्यापक है। कोई अनिष्टकारी वात या सकट आने पर अथवा उसकी सम्भावना होने पर मन मे जो चंचलता और विकलता होती है और उसके फलस्वरूप अनिष्ट अथवा सकट से वचने की जो इच्छा या प्रवृत्ति होती है, उन सवका वाचक भय है। इसमे मनुष्य का साहस छूट जाता है और वह कुछ अधीर या कायर-सा हो जाता है, अथवा कुछ अवस्थाओ मे वह अपनी जान पर खेलकर भय उत्पन्न करनेवाले संकट का सामना करने के लिए भी तैयार हो जाता है। भीति स्त्री० सं० इसी भय का दूसरा रूप कहा जा सकता है; और इस दृष्टि से ये दोनो शब्द समार्थक ही है।

'डर' पु० [स० दर] भी वहुत कुछ वही है, जो 'भय' है; फिर भी प्रयोग की दृष्टि से यह कुछ हलका समझा जाता है; और चलती हुई या वाजारू वोलचाल मे यह उतनी गंभीरता और विकटता का सूचक नही माना जाता। हम साधारण अवसरो पर भी कह जाते हैं—तुम तो जरा सी वात से डर जाते हो। इसकी तुलना मे भयभीत का प्रयोग अधिक कठोर तथा तीव्र प्रतीत होता है। कारण यही है कि नित्य की **बोल-चाल में**

आने रहने से 'डर' की भीषणता और विकटता घिस घिस कर बहुत कम हो गयी है। परन्तु कुछ अवस्थाओं में भय और डर दोनों का प्रयोग आशंका के अर्थ में भी प्रायः समान रूप से होता है, और उस अवस्था में इनमें कोई तारतम्य नहीं रह जाता। दे० 'शंका, आशंका, संदेह और संशय'। फिर भी यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो जान पड़ेगा कि भीति में आशंका की अर्थात् संकट की सम्भावना की छाया ही प्रधान है। निम्नलिखित उदाहरणों से यह अन्तर बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

(क) *'भय-बस सिव सन कीन्ह दुराऊ।'*

(ख) 'रुद्रहिं देखि मदन भय माना।'

(ग) 'ईति भीति जनु प्रजा दुखारी।' (तुलसी कृत रामचरितमानस)

पहले दोनों उदाहरणों में भय का प्रयोग इसलिए हुआ है कि (क) शिवजी का भय पार्वती के मन में सदा बना रहता है, और (ख) शिव को सामने देखकर कामदेव डर गया था। पर तीसरे उदाहरण में भीति का प्रयोग इसलिए हुआ है कि ईति अभी उपस्थित नहीं है, फिर भी मानों उसकी आशंका या सम्भावना से प्रजा दुःखी होकर भाग रही हो।

'भीषिका स्त्री० [सं०] वस्तुतः विशेषण रूप में भीषिक का स्त्री० है। भीषिक का अर्थ है—डरावना, भयावना या भीषण। परन्तु भीषिका का प्रयोग भाववाचक संज्ञा के रूप में होता है। इसी आधार पर हमारे यहाँ भीषिका नाम की एक देवी भी है। प्रस्तुत प्रसंग में भीषिका वह स्थिति है जो भय से बहुत उग्र या तीव्र तो होती ही है पर साथ ही घृणित या वीभत्स होने के कारण हमें [illegible] दूर भागने या मुँह फेर लेने के लिए विवश करती है। यदि कमरे में पैर रखते ही हमें [illegible] सब तरफ साँप दिखाई दे या हमें किसी शव पर कालिका को नाचते हुए दिखाई दे तो हमारे मन में भीषिका उत्पन्न होगी। [illegible] देखकर भी हमारे मन में भीषिका उत्पन्न होती है। इसी भीषिका में [illegible] इसका विशेषण रूप बना लिया जाता है जो [illegible] विचार से [illegible] होता है।

[illegible] पुं० [सं०] [illegible] बना है। [illegible] अर्थ है—[illegible] [illegible] है। [illegible]

सामने आता है और हम डर के मारे कुछ भी करने-धरने या सोचने-समझने मे प्राय: असमर्थ हो जाते हैं, तब हमे मानसिक और शारीरिक दृष्टि से अक्रिय और असमर्थ करनेवाली वाह्य स्थिति ही आतंक कहलाती है। इससे लोग वहुत डर जाते और हर तरह से सचेत रहने लगते हैं। यदि भारी उपद्रव होने पर शहर मे दो-चार जगह गोलियाँ चल जाएँ या भारी उपद्रव की आशका होने पर शहर मे पलटन लाकर खड़ी कर दी जाएँ, अथवा यदि किसी गाँव के पास-पडोस मे दो-चार डाके पड़ जाएँ तो लोगो पर आतंक छा जाएगा। भय पर तो हम अपनी इच्छा-शक्ति और साहस से विजय पा सकते हैं। पर आतंक और विभीपिका हमारी इच्छा-शक्ति को अभिभूत कर लेते हैं। आतंक तो हमे पगु वना देता है, पर भीपिका या विभीपिका मे पडकर या तो हम अपनी जान वचाने के लिए दूर भागना चाहते हैं या वैठकर रोने-कलपने लगते हैं। भय का प्रभाव हमारी कल्पना-शक्ति और बुद्धि पर, भीषिका या विभीपिका का हमारे स्नायु तत्र पर और आतक का हमारी मानसिक तथा शारीरिक सभी प्रकार की शक्तियो पर पडता है। × ×

भरोसा—पु० [स० भा=भार] दे० 'विश्वास, प्रतीति, प्रत्यय, भरोसा और मान्यता'।

भर्त्सना—स्त्री० [स०] दे० 'आक्षेप, अ० अभिक्षेप और भर्त्सना'।

भलमनसत—स्त्री० [हिं० भला+मानुस=मनुष्य] दे० 'सज्जनता और सौजन्य'।

भागना—अ० दे० 'दौडना और भागना'।

भाव—पु० [स०] दे० १. 'भाव और भावना'। २. दे० 'भाव और दर'।

भाव और दर

Market-rate Rate

'भाव' पु० [स०] का प्रयोग प्रस्तुत प्रसग मे चीजो के उस दाम या मूल्य का सूचक है जिस पर वह वाजारो में खरीदी और वेची जाती हैं। यो वाजारो मे चीजो के दाम या मूल्य वहुत कुछ एक से होते हैं; फिर भी कुछ विशिष्ट परिस्थितियो तथा स्थानो मे घटते-वढते भी रहते हैं। दाम या मूल्य किसी चीज की इकाई का होता है; परन्तु भाव उस चीज के समूचे वर्ग

का होता है, जैसे—(क) इस टोपी (या दीने) का मूल्य ५) रु० है। और (ख) थोक खरीददारों को यह टोपी (या दीया) ४) रु० दर्जन के भाव से मिलती है। गेहूँ, चावल, दाल जैसी चीजों का भाव ही होता है, क्योंकि उनकी अलग अलग इकाइयाँ नहीं बिकती हैं। एक मन गेहूँ या दाल का मूल्य तो ४०) रु० हो सकता है क्योंकि उसकी एक स्वतन्त्र इकाई बन जाती है। परन्तु यदि सारे शहर मे गेहूँ, चावल या दाल का प्रति मन मूल्य ४०) रु० ही हो तब कहा जाएगा कि बाजार मे आज कल इन चीजो का भाव ४०) रु० है। तात्पर्य यह है कि भाव का मुख्य सम्बन्ध किसी चीज के सम्पूर्ण वर्ग से होता है, उसकी पृथक इकाई से नही। यदि नाप तौल आदि के विचार से उसकी पृथक् इकाई बन या मान ली जाय, तो उसके बदले मे दिया जानेवाला धन दाम या मूल्य ही कहा जाएगा, भाव नही। भाव के प्रमुख अर्थ और विवक्षाएँ जानने के लिए दे० नीचे—'भाव और भावना'।

'दर' स्त्री० की व्युत्पत्ति अनिश्चित ही है। मराठी मे 'दर' का प्रयोग प्रति (या प्रत्येक) के अर्थ मे होता है, जैसे—दर रोज=प्रतिदिन। हो सकता है कि इस मराठी दर और हिं० दर का मूल एक ही हो।* हमारे यहाँ दर का प्रयोग बहुत कुछ उन्ही अर्थों मे होता आया है जो ऊपर भाव के अन्तर्गत बताए गए हैं। परन्तु मुख्य रूप से इसका प्रयोग भाव के दूसरे अर्थ मे ही अर्थात् किसी वस्तु के समूचे वर्ग के सम्बन्ध मे ही होता रहा है, जैसे—सोने की दर बढ़ने से बाजार मे और सब चीजों की दर भी बढ़ने लगी थी।

परन्तु आज-कल अ० 'रेट' के अनुकरण पर दर का अर्थ कुछ और विकसित तथा विस्तृत हो गया है। हम प्राय पढ़ते और सुनते हैं कि आज कल हमारे देश मे मृत्यु की दर तो बहुत कुछ घट चुकी है पर जन्म की दर बराबर बढ़ रही है। ऐसे अवसरो पर दर से किसी वस्तु के ऐसे आनुपातिक अंश या मान का आशय सूचित होता है जो गणित की क्रिया से निश्चित और स्थिर किया जाता है। उदाहरणार्थ—हम सारे देश की जन्म संख्या या मृत्यु संख्या जोड़ लेते हैं और तब हिसाब लगाकर यह पढ़ता बढ़ाते हैं कि सारे देश की जन संख्या के विचार से प्रति सैकड़े, प्रति हजार अथवा प्रति लाख कितने आदमी

---

* फा० 'दर' का भी इस हिन्दी दर से अर्थ सम्बन्धी कोई मेल नही बैठता। संज्ञा रूप मे फा० दर का अर्थ दरवाजा या द्वार होता है, और अव्यय रूप में वह बीच या मे का सूचक होता है। इसके सिवा कुछ और प्रसगों मे उसका प्रयोग कुछ और अर्थों में भी होता है, जैसे—सूद दर सूद=सूद या ब्याज पर भी लगने का सूद या ब्याज।

जन्म लेते और मरते हैं। इसी आनुपातिक गणना के फल को 'दर' कहते हैं। इसके सिवा आर्थिक क्षेत्र में इसका बहुत कुछ उसी प्रकार का दूसरा अर्थ भी हो जाता है जैसा ऊपर भाव का बतलाया गया है; जैसे—कार्यों और पदों के अनुसार वेतन की दरें और जान-बीमे की रकम के अनुपात से उसकी किस्तो की दरें निश्चित की जाती हैं। ऐसे अवसरो पर भाव का प्रयोग कदाचित् इसी लिए नही होता कि इस प्रकार की चीजें खरीदी और बेची नही जाती; हाँ इनके बदले मे कोई कार्य या सेवा अवश्य होती है। हम यह भी कहते हैं—जब रेल-गाड़ी किसी स्टेशन से चलने लगती है तो कुछ दूरी (या समय) तक उसकी गति की दर बराबर बढती रहती है। ऐसे अवसरों पर भी 'दर' से वही आंशिक अनुपात सूचित होता है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

× ×

भाव और भावना

1 Exis ence, 2 Sense, 3. Abstract

ये दोनो शब्द मुख्यतः ऐसी बातो, विचारों आदि के सूचक हैं जो कई प्रकारो और रूपो मे अपनी अभिव्यक्ति या कार्य करते हैं।

'भाव' पु० [सं०] का मूल अर्थ है—किसी वस्तु के अस्तित्व मे आने, प्रस्तुत या वर्तमान होने आदि की अवस्था या दशा। इसी अर्थ के विचार से इसका विपर्याय 'अभाव' है। इसी आधार पर इसका परवर्ती अर्थ होता है—ऐसी बात या वस्तु जो अस्तित्व मे आकर कुछ समय तक वर्तमान रहती और अंत मे नष्ट या लुप्त हो जाती है। तात्विक दृष्टि से भाव मन मे उत्पन्न होनेवाले विचार का वह अपरिपक्व, आरम्भिक और मूल रूप है जिसके साथ उसका कोई आशय या उद्देश्य भी लगा रहता है। दार्शनिक दृष्टि से निर्विकार मन मे उत्पन्न होनेवाले प्रथम विकार को ही भाव कहते हैं। यह निस्तरंग मन मे उठनेवाली पहली तरंग है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जो उद्भावना परिवर्धित और विकसित होकर जो विचार धारण करती है वही वस्तुतः भाव है; आश्चर्य, क्रोध, दुःख, प्रेम, लालसा, सहानुभूति, हर्ष आदि ऐसे ही मनोविकार हैं जो मूल भावो के विकसित रूप हैं; जैसे—उस समय मेरे मन मे अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न हो रहे थे। कुछ अवस्थाओ में ऐसे भाव प्रायः अनजान मे ही हमारी आकृति अथवा चेष्टाओ से व्यक्त होते हैं; जैसे—उस समय उसके चेहरे पर एक भाव जाता था और दूसरा आता था।

साख्यकार ने बुद्धितत्व के कार्य, धम या विकार को भाव कहा है। भरत मुनि का मत है कि हमारी मानसिक अवस्थाओ का व्यजक प्रदशन ही भाव है। इसी आधार पर हमारे प्राचीन साहित्यकारो ने कहा है कि भावो या मानसिक स्थितियो के व्यजक प्रदशन से ही रस की उत्पत्ति या सृष्टि होती है और वह अनेक प्रकार के शारीरिक क्रिया कलापो से व्यक्त होती है। उन्होन इसके अनुभाव, विभाव, व्यभिचारी, सात्विक स्थायी आदि प्रकार या भेद किए हैं, जिनका विवेचन साहित्य ग्रथो म दखा जा सकता है

साधारण बोलचाल मे मन मे उत्पन्न होनेवाले और भाषण या लेखो के द्वारा प्रकट किए हुए गूढ अथवा जटिल विचारो का वास्तविक अभिप्राय या आशय भी 'भाव कहलाता है। इसके सिवा किसी काम, चीज या बात का वह गुणात्मक अथवा धर्मात्मक तत्व भी भाव कहलाता है जो उसकी मूल प्रकृति या विशेषता का आधार या सूचक होता है, और जिसकी सत्ता निहित होन पर भी पृथक् या स्वतत्र मानी जाती है। व्याकरण म कुशल से कुशलता, वीर से वीरता, शीतल से शीतलता आदि जो भाववाचक सज्ञाए बनती हैं वह मूलत इसी तत्व पर आश्रित होती हैं। फलित ज्योतिष मे ग्रहो की उस परिणामकारी शक्ति या स्थिति को भी भाव कहते हैं जिसके विचार म उनके फलाफल कहे जाते हैं जसे—धन भाव, धनु भाव, सतान भाव आदि।

'भावना' स्त्री० [स०] व्युत्पत्तिक दृष्टि से बहुत कुछ वही है जो 'भाव' है, और इसी लिए आरम्भिक अथ के विचार से दोनो एक दूसरे के पर्याय कहे जा सकते हैं। फिर भी तात्विक तथा दाशनिक दृष्टि से भावना वह मूल भूमि है जिस पर भाव अकुरित होते हैं। भाव की तुलना म भावना अधिक आतरिक और गहरी होती है। इसी लिए भाव की अपेक्षा भावना अधिक प्रबल या सशक्त होती है पर साथ ही अपनी गहराई के कारण वह अपेक्षया कम व्यक्त और कम स्पष्ट होती है। जिस प्रकार वासना को हम आत्मा के साथ सदा लगा रहनवाला गुण या धम मानते हैं,* उसी प्रकार हम भावना को मन के साथ लगा हुआ गुण या धम कह सकते हैं। हम कहते हैं—(क) उस समय मेरे मन म अनेक प्रकार की भावनाएँ उठ रही थी। और (ख) उस समय मेरे मन म अनेक प्रकार के भाव उठ रहे थे। ऐसे अवसरो पर यही माना और समझा जाएगा कि भावनाएँ तो बिलकुल आरम्भिक और मौलिक अवस्था की सूचक हैं और भाव उनके परवर्ती तथा विकसित रूप के सूचक हैं। इसी आधार पर हमारे शास्त्रकारों का मत है कि भावना म बल

* दे० 'वासना, तृष्णा, लालसा और लिप्सा'।

वान् बनने की भी और बल प्रदान करने की भी शक्ति होती है। वैद्य लोग औषधो मे रसो का थोडा सा जो अश मिलाते या पुट देते हैं, उसका उद्देश्य भी औषधो की क्रियात्मक शक्ति बढाना ही होता है। खाद्य पदार्थो मे सुगंधित अथवा स्वादिष्ट वस्तुओ की भावना इसी लिए दी जाती है कि उनकी सुगन्ध या स्वाद बढ जाय।

× ×

भावना—स्त्री० [स०] दे० 'भाव और भावना'।

भाषण—पु० [स०] दे० 'प्रवचन, भाषण, वक्तृता और व्याख्यान'।

भीति—स्त्री० [स०] दे० 'भय, डर, भीषिका और आतक'।

भीरु—वि० [सं०] दे० 'कायर, भीरु और डरपोक'।

भीषिका—स्त्री० [स०] दे० 'भय, डर, भीषिका और आतक'।

भूख-हड़ताल—स्त्री० [हिं०] दे० 'अनशन, उपवास, लघन और व्रत'।

भूमिका—स्त्री० [स०] दे० 'परिवेश, परिस्थिति, पर्यावरण, पृष्ठभूमि और भूमिका'।

भूल—स्त्री० [हिं० भूलना] दे० 'चूक, छूट और भूल।'

भू-संचार—पु० [स०] दे० 'परिवहन, यातायात, सचार, दूर-सचार और भू-सचार'।

भेद, रहस्य और समस्या
Secret Mystery Problem

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातो, स्थितियो आदि के वाचक हैं, जिनके सामने आने पर हम सहज मे यह नही समझ पाते कि इसकी तह मे वास्तविकता क्या है और उससे पार पाने के लिए हमे क्या उपाय करना चाहिए अथवा क्या मार्ग ग्रहण करना चाहिए।

'भेद' पु० [स०] भिद् धातु से उत्पन्न है जिसका अर्थ है छेदना या भेदना; अर्थात् ऊपरी अश या आवरण काट, चीर या छेद कर अन्दर अथवा आगे बढना। प्राचीन भारत मे सैनिक व्यूहो का भेद करके ही उनके अन्दर घुसा जाता था और उन्हे छिन्न-भिन्न किया जाता था। इसका परवर्ती अर्थ किसी चीज के दो या अधिक टुकडे करके उन्हें अलग-अलग करना भी होता था। शत्रु पक्ष मे भेद उत्पन्न करके ही उनका कोई दल या वर्ग अपनी ओर मिलाया जाता था; और उसकी सहायता से या तो अपना काम निकाला जाता था या शत्रु का नाश किया जाता था। और आगे बढने पर इसके कुछ

अर्थ होते हैं, (क) अन्तर या फरक, (ख) तरह, प्रकार भाँति आदि, जैसे—(क) पहले दोनों का भेद समझ लो तब आगे बढ़ो, (ख) चिकित्सा शास्त्र में इस रोग के चार भेद कहे गए हैं आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में भेद किसी ऐसी गूढ़ बात को कहते हैं जो या तो (क)—दूसरों की जानकारी या दृष्टि से बचाकर बिलकुल अलग, एकांत में या दूर रखी गयी हो अथवा (ख) जिस तक पहुँचना अथवा जिसकी वास्तविकता समझना साधारण लोगों की बुद्धि, योग्यता और शक्ति के बाहर हो। ऐसी बात कुछ थोड़े से लोग ही जानते हैं बाकी सब लोग न तो जानते ही हैं और न बिना विशेष अध्यवसाय और प्रयत्न के जान ही सकते हैं। ऐसी बातों के चारों ओर कुछ ऐसा कड़ा आवरण रहता है। जो काट, छेद या भेदकर ही हटाया जा सकता है और तभी अन्दर की सच बात जानी जा सकती है। बहुत ही कुशल चोर डाकू और हत्यारे ऐसे ढंग से बड़े बड़े अपराध करते हैं जिनका पता लगाना बहुत ही कठिन होता है। पुलिस को बहुत ही छान बीन और ढूँढ खोज करके ही उनके भेद का पता लगाना पड़ता है। इसका एक और अर्थ हृदय के अन्दर छिपा हुआ आशय या भाव भी होता है, क्योंकि ऊपर से देखने पर कोई उसका पता नहीं पा सकता, जैसे (क) हम किसी के मन का भेद क्या जानें अथवा वह कई बार मेरे पास भेद लेने आया था पर मैंने उससे सीधे मुँह कह दिया।

'रहस्य' पु० [सं०] भी साधारणतः है तो बहुत कुछ वही जो भेद है, और इसी लिए लोक व्यवहार में ये दोनों पर्याय के रूप में ही प्रयुक्त होते हुए देखे जाते हैं। फिर भी अपने परवर्ती और विकसित अर्थों में यह भेद की तुलना में बहुत अधिक गम्भीरता, गहनता या जटिलता की छाया से युक्त हो गया है बल्कि यों कहना चाहिए कि इस पर गहनता या जटिलता की बहुत गहरी रंगत चढ़ गई है। रहस्य ऐसी बहुत ही गुप्त या छिपी हुई बात या स्थिति को कहते हैं जिस तक पहुँचने या जानने समझने के लिए कुछ असाधारण पात्रता, बुद्धिमत्ता, योग्यता आदि की आवश्यकता होती है। इसके ऊपर जान बूझकर ऐसा आवरण रखा जाता है जिसमें जन साधारण की दृष्टि उस पर न पड़ने पावे और वह लोगों का ध्यान आकृष्ट न कर सके। इस छिपाव का उद्देश्य असद् भी हो सकता है और सद् भी, जैसे—(क) चोर-बाजारी या तस्कर व्यापार का रहस्य, (ख) तिलिस्म अथवा भोग विलास करनेवालों के अड्डों का रहस्य, (ग) कुछ विशिष्ट प्रकार के धार्मिक सम्प्रदायों• अथवा प्रकृति का रहस्य आदि।

• हमारे यहाँ का उक्त या वाम मार्गी तथा तांत्रिक साधकों के सम्प्रदाय, राधा स्वामी सम्प्रदाय, योरप का फ्री मेसन (Free mason) आदि

इसके सिवा आध्यात्मिक क्षेत्र मे रहस्य का प्रयोग ईश्वर या सृष्टि के उन गुप्त या गूढ तत्वो के सम्बन्ध मे भी होता है, जिन्हे सब लोग न तो जानते ही है न तो जान ही सकते हैं। ऐसे रहस्य के सम्बन्ध मे ससार के सभी भागों के बहुत बडे विचारशील लोगो का यही मत रहा है कि केवल सात्विक विचारों और वृत्तियोवाले महानुभावो के हृदय मे ही इनकी मौलिक अनुभूति होती है। इसी आधार पर अब रहस्यवाद नाम के एक नए मत या वाद की स्थापना हुई है। दे० 'छायावाद और रहस्यवाद'।

'समस्या' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है मिलने या मिलाने की क्रिया। इसके सिवा मिश्रण, सघटन आदि भी इसके कई अर्थ है, परन्तु अब ऐसे अर्थ पुराने हो गए हैं और छूट गए है। हाँ इनके आधार पर* आज-कल इसमें कुछ नए विशिष्ट अर्थ लग गये हैं।

सम्प्रदाय इसी वर्ग मे आते हैं। कारण यह है कि इनके मत या सिद्धात तथा उपासना या साधना की प्रणालियाँ जान-बूझकर जन-साधारण की दृष्टि से ओझल रखी जा सकती है। जो लोग इनमे सम्मिलित होना चाहते हैं उन्हें पहले अनेक प्रकार की परीक्षाएँ देकर अपनी पात्रता और योग्यता सिद्ध करनी पडती है, तब कही जाकर कुछ औपचारिक और धार्मिक कृत्यो के उपरात उन्हे दीक्षा दी जाती है और तब अपने सम्प्रदाय मे उन्हे सम्मिलित किया जाता है। ऐसे सम्प्रदाय को प्राय: रहस्य सम्प्रदाय कहते हैं।

* हमारे यहाँ काव्य रचना के क्षेत्र मे 'समस्या-पूर्ति' वाली जो प्रणाली चली आ रही है, उसके मूल मे वही पुराना मिलानेवाला तत्व निहित है। पहले कोई ऐसा उलझनवाला अथवा विषमताओ से युक्त पद बनाकर लोगो के सामने रख दिया जाता था जिसका ठीक तरह से निराकरण और मिलान करके उसी के अनुरूप और उसकी पूर्ति करनेवाला कवित्व, श्लोक अथवा ऐसा ही कोई छद कवियो को बनाना पड़ता था। इसी प्रकार के मौलिक पद को 'समस्या' कहते थे और कवि लोग उसके अनुरूप जो छद बनाते थे उसकी क्रिया को 'समस्या-पूर्ति' कहते थे। परन्तु अब काव्य रचना की यह प्रणाली दिन पर दिन दबती चली जा रही है; और अब कवि लोग ऐसे बन्धनो मे न पडकर बिलकुल स्वच्छद और स्वतत्र रूप से ही रचनाएं करते हैं। आज-कल इसका पहला या मुख्य अर्थ है—कोई काम करते या चलाते समय बीच मे उत्पन्न होनेवाली ऐसी जटिल और विकट परिस्थिति जिसमें बहुत विचारपूर्वक यह सोचना-समझना पडे कि इसकी कठिनता किस प्रकार दूर की जाय और काम कैसे आगे बढाया जाय। जैसे—देश को स्वतत्रता तो मिल गई, पर उसके साथ ही आतरिक सुरक्षा,

उन्नति, विकास, शिक्षा प्रचार आदि की अनेक समस्याएँ सामने आकर खड़ी हो गई। भेद और रहस्य तो साधारणत दूसरो के आचरण, भाव, व्यवहार आदि के परिणाम होने और देखनेवालो के मन म प्राय कुतूहल मात्र उत्पन्न करके रह जाते हैं। परन्तु समस्याए प्राय हमारे अपने कार्यों म आकस्मिक कारणो, घटनाओं, अप्रत्याशित तथा नवीन परिस्थितियो के परिणाम स्वरूप हमारे सामने आ उपस्थित होती हैं और उनका निराकरण हमे स्वय करना पडता है। अपने परवर्ती और विकसित अर्थ मे इसका प्रयोग और भी अनेक क्षेत्रो मे होता है, जसे—गणित की समस्या, भूगर्भ शास्त्र की समस्या, समाज सुधार की समस्या आदि। इससे भी और आगे बढने पर कुछ अब व्यक्तियो म इसका प्रयोग ऐसे व्यक्तियो के सम्बन्ध म भी होन लगा है जिनके आचरण व्यवहार, पालन पोषण, रक्षण शिक्षण आदि का प्रश्न हमारे सामने होता है, जसे—यह नया नौकर (या लडका) हमारे लिए एक समस्या बन गया है। आशय यही होता है कि इसे किस प्रकार ठीक तरह से काम करने के योग्य बनाया जाय, अथवा किस तरह छुटकारा पाया जाय। × ×

' भोगना—स्त्री० [हि०] दे० 'झेलना, भोगना और सहना'।

भौतिक, पार्थिव, लौकिक और सासारिक

Physical Eearthly 1 Temporal 2 Secular Worldly

इस वग के विशेषण ऐसे कामो चीजो बातो आदि के लिए प्रयुक्त होते हैं जो कि जगत् या दुनियाँ म नित्य दिखाई देती या होती रहती हैं।

भौतिक वि० [स०] 'भूत से बना हुआ' वि० है। स० मे भूत के विशेषण रूप के कई अर्थ हैं, जैसे—जो अस्तित्व मे आ चुका हो, जो घटित हो चुका हो, जो बीत चुका हो आदि। सज्ञा रूप म भूत उसे कहते हैं जिसकी कोई पृथक या स्वतन्त्र सत्ता हो। परन्तु दार्शनिक क्षेत्र म भूत उन मूल तत्वो को कहते हैं जिनसे इस सारी सृष्टि की और इसमे पाए जानेवाले पदार्थों प्राणियो आदि की भी उत्पत्ति या रचना मानी गई है। हमारे यहाँ इनकी सख्या ५ कही गई है, यथा—पृथ्वी जल, तेज, वायु और आकाश। इसी लिए

इन्हें पंच तत्व, पंचभूत और पंच महाभूत कहते हैं।* प्राचीन पाश्चात्य दार्शनिको ने पृथ्वी, जल, आकाश और वायु यही चार मूल तत्व या भूत माने थे। परन्तु आधुनिक वैज्ञानिको ने तत्व या भूत का विचार और व्याख्या रासायनिक आधार पर की है, और तत्व ऐसे पदार्थ को कहा है जिसमे किसी दूसरे पदार्थ का कुछ भी अश या मिश्रण न हो—वह पूर्णतः विशुद्ध हो। उन्होने अब तक १०० से अधिक ऐसे तत्व ढूँढ निकाले हैं जो पूर्णतः अमिश्र तथा विशुद्ध हैं; और नई-नई खोजो के आधार पर इनकी सख्या बढती ही जा रही है। विशेषण भौतिक मुख्यतः इन्ही तत्वो या भूतो के विचार से बना है और इसका आरम्भिक अर्थ है—भूतो से बना हुआ अथवा उनसे सम्बन्ध रखनेवाला। इसी लिए इस ससार मे जितने पदार्थ हमे दिखाई देते हैं उन सबको हम भौतिक कहते हैं; क्योकि वे प्राकृतिक तत्वो या भूतो से बने हुए होते हैं। इसी आधार पर आधुनिक विज्ञान की 'भौतिक विज्ञान' (Physics) नाम की प्रसिद्ध शाखा विकसित हुई है, जिसमे अजैव सृष्टि विशेषतः ताप, प्रकाश, ध्वनि, पदार्थो आदि का विवेचन होता है। इसमे नैतिक, मानसिक, सामाजिक आदि बातो का अन्तर्भाव नही होता।

'पार्थिव' वि० [सं०] पृथ्वी से बना है। ऊपर पाँच तत्वो या भूतो के उल्लेख मे पृथ्वी का भी जो नाम आया है वह मुख्यतः मिट्टी का ही वाचक है।† परन्तु पृथ्वी का प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ यह भूतल है जिस पर हम सब लोग रहते हैं, नदियाँ, पहाड आदि स्थित हैं और जिस पर सब प्रकार के पेड-पौधे उगते और जीव-जन्तु रहते हैं। अतः इस पृथ्वी पर होनेवाली सब चीजें और बातें पार्थिव कहलाती हैं, जैसे—खनिज आदि पार्थिव पदार्थ, पार्थिव धन-सपत्ति आदि।

'लौकिक' वि० [स०] 'लोक' से बना हुआ विशेषण है। लोक के मुख्य अर्थ दो हैं—जन-समाज या लोक और उनके रहने का स्थान। इसी आधार पर 'लौकिक' का प्रयोग दो मुख्य विवक्षाओ से युक्त होता है। एक तो लोगो मे प्रचलित आचार, व्यवहार और कार्य या व्यापार लौकिक कहलाते हैं। दूसरे यह आध्यात्मिक और पारलौकिक बातों या विचारो से भिन्नता या भेद सूचित करता है।

---

* इसी आधार पर हमारे यहाँ पचत्व को प्राप्त होना, मुहावरा बना है, जिसका अर्थ है—देहावसान या मृत्यु होना।

† इसी आधार पर हमारे यहाँ के कुछ शैव पार्थिव पूजन करते हैं। वे मिट्टी का शिवलिंग बनाकर और छाती तक पानी मे खडे होकर मिट्टी के उस लिंग की विधिवत् पूजा करते हैं। इसी को पार्थिव पूजन कहते हैं।

'सांसारिक' वि० [सं०] संसार का विशेषण रूप है। यह भी है तो बहुत कुछ वही जो लौकिक है, फिर भी इसमें कुछ विशेषता है। इसमें पार्थिव और भौतिक क्षेत्र की भी बहुत सी बातें आ जाती हैं। लौकिक में तो मुख्यत उन्ही बातो का अन्तर्भाव होता है जो किसी विशिष्ट काल, देश या समाज में प्रचलित होती हैं, परन्तु सांसारिक में वे सभी काम और बातें आ जाती हैं जो सार्वजनिक और सार्वभौम होती हैं। सांसारिक प्रपंच सांसारिक बन्धन आदि ऐसे ही भावो से युक्त हैं। इस संसार में हम जितने काम करते हैं वे सब किसी निश्चित उद्देश्य से और किसी विशिष्ट परिणाम तक पहुँचने के लिए ही करते हैं। ऐसे सभी काम और बातें सांसारिक कहलाते हैं। मराठी वाले प्राय इसके स्थान पर भी और लौकिक के स्थान पर भी 'जागतिक' का प्रयोग करते हैं। × ×

भौतिक विज्ञान—पु० [सं०] दे० 'भौतिक, पार्थिव लौकिक और सांसारिक'।

भ्रम, भ्रान्ति, मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका

Mistake Illusion Hallucination Delusion Mirage

इस वर्ग के शब्द मन की ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमें वह कोई चीज या बात देखने पर भी उसका ठीक या वास्तविक रूप नहीं समझ पाता और भूल से कुछ और ही मान या समझ बैठता है।

'भ्रम' पु० [सं०] के मूल अर्थ हैं—घूमना चक्कर खाना फेरा लगाना आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में भ्रम वह है, जिसमें मनुष्य धोखे से किसी चीज को कुछ का कुछ समझ लेता है। ऐसा या तो दृष्टि-दोष के कारण होता है या धारणा अथवा विचार के दोष से। यह पहचानने या समझने में होनेवाली भूल है। मनोवैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार भ्रम वह विषमता है जो कभी कभी वास्तविकता और तत्सम्बन्धी हमारे ज्ञान में उत्पन्न हो जाती है। यदि अँधेरे में कोई मोटी रस्सी पड़ी हो तो हमें साँप का भ्रम हो सकता है। आकृति, चाल-ढाल आदि की समानता के कारण किसी अजनबी को देखकर हमें अपने किसी मित्र का धोखा हो सकता है। यही वास्तविकता और

तत्सम्बन्धी हमारे ज्ञान की विषमता है। हिंदी में इसके स्थान पर 'धोखा' और 'भूल' का भी प्रयोग होता है।

'भ्रांति' सं० का मौलिक अर्थ भी वही घूमना या चक्कर खाना है, जो भ्रम का है और इसी लिए कुछ अशो मे यह भ्रम का समानक ही है। पर इसमे एक अतिरिक्त भाव भी है। जब कोई ऐसा भ्रम होता है जो हमे चक्कर या सोच-विचार मे डाल देता या उद्विग्न कर देता है, तब ऐसी स्थिति भी भ्राति कहलाती है। यह प्राय: मन की अस्थिरता या चचलता के कारण होती है; और इसी लिए हम इसे प्रमाद या मोह का परिणाम मान सकते हैं। हमारे यहाँ साहित्य मे 'भ्राति' नाम का जो अलकार माना गया है उसके उदाहरणो से हमारे उक्त निष्कर्ष की पुष्टि होती है। प्राय: प्राचीन कविताओ मे इसके जो उदाहरण मिलते हैं उनका वहुत कुछ साराश भी यही है। जैसे—चन्द्रमुखी नायिका को अटारी पर देखकर कहना कि अरे, यह चन्द्रमा कहाँ से निकल आया ! इस प्रकार की वाते मन की अस्थिरता या मोह की दशा मे ही मुँह से निकल सकती है, साधारण अवस्था मे नही। यदि हम किसी को बहुत दिनो से अपना सच्चा मित्र या हितैषी समझते आए हो, और वह हमारे साथ कोई वहुत वडा विश्वासघात कर बैठे तो हमें यही कहना पड़ेगा कि उसके सम्बन्ध मे हमारे मन मे वहुत वडी भ्राति थी। जो आज दूर हो गयी। कुछ लोग इसके स्थान पर धोखा और भूल का भी प्रयोग कर जाते हैं; परन्तु इन शब्दो मे इतनी उत्कटता या वल नही है, जितनी 'भ्रान्ति' मे है।

'मति भ्रम' पु० [सं०] का मूल अर्थ है बुद्धि या समझ के कारण होनेवाला भ्रम। यो तो यह वहुत कुछ भ्राति का ही समार्थक है फिर भी आजकल इसका प्रयोग अंग्रेजी के (Hallucination) के स्थान पर होने लगा है; और इसी लिए यह एक नए भाव से युक्त हो गया है। कभी-कभी मानसिक अथवा स्नायविक दुर्बलता के कारण किसी अज्ञात दैवी अथवा प्राकृतिक सयोग के कारण हमे कुछ ऐसी घटनाओं या दृश्यो का भान होता है जिनका कोई वास्तविक अस्तित्व नही होता। ऐसी घटनाएँ या दृश्य कभी-कभी हमारी कल्पना से भी प्रसूत होते या हो सकते हैं। अँधेरे मे सोकर उठने पर हमे कही कोने मे खडे हुए चोर या भूत का भान हो सकता है। चोर या भूत के न होने पर भी उसका दिखाई पडना मति-भ्रम है।

'विभ्रम' पु० [स०] को हम शब्दार्थ की दृष्टि से ऐसा विशिष्ट भ्रम कह सकते हैं, जिसका रूप वहुत ही असाधारण, विकट और विकृत हो। तव हम कहते हैं—वह हमारा विभ्रम ही था जो अब दूर हो गया। साराश यह कि

विभ्रम हमारे मन की यह विकृत स्थिति है, जो हम वास्तविकता और अ वास्तविकता का अंतर समझने में भ्रममय कर देती और कुछ समय तक हम धोखे में रखती है।

'मरीचिका' स्त्री० [सं०] मूलत एक प्राकृतिक परन्तु भ्रामक घटना पर आश्रित है। प्राय गरमी के दिनों और बहुत तेज धूप में वातावरण की विशिष्ट स्थितियों के कारण कभी कभी बहुत दूरी पर कुछ उलटी प्रतिकृतियाँ दिखाई देती हैं, जो यात्रियों तथा पशु पक्षियों के मन में जलाशय, बस्ती, हरियाली आदि का भ्रम उत्पन्न करती हैं। प्राय मैदानों में बहुत दूरी पर इसी प्रकार का भ्रामक (अ वास्तविक) जलाशय का दृश्य दिखाई पड़ने पर पानी मिलने की आशा से मृग और पशु कोसों दौड़ते चले जाते हैं। पर ज्यों ज्यों वे आगे बढ़ते हैं, त्यों त्यों जलाशयवाला वह मिथ्या दृश्य और भी दूर होता जाता है और अंत में वे थक कर हताश होकर बैठ जाते हैं। यही वास्तविक मरीचिका है। इसे मृग-तृष्णा और मृग मरीचिका भी कहते हैं। परन्तु साधारण बोलचाल और लोक व्यवहार में भी इसका प्रयोग ऐसी स्थिति सूचित करने के लिए होता है जिसमें हम बिलकुल ही झूठी और व्यर्थ की आशा करते हुए कोई प्रयत्न निरन्तर करते चलते हैं, और यह नहीं समझते कि हमारी सारी आशा अंत में दुराशा ही सिद्ध होगी—इसमें कभी कभी केवल मानसिक दुर्बलता या विकार के कारण हम कुछ बहुत ही ऊट पटांग या विशेष प्रकार की घटना देखते हैं, और हम में यह समझने की भी शक्ति नहीं रह जाती कि क्या कभी वस्तुत ऐसा हो सकता है। यदि कोई व्यक्ति सड़क पर मोटर से गिर कर बेहोश हो जाय, तो अस्पताल में पहुँचकर होश आने पर उसे यह विभ्रम हो ही सकता है कि मैं अभी तक सड़क पर ही गिरा हुआ धूल में लोट रहा हूँ। कुछ अवसरों पर विभ्रम हमारी भावुकता या स्वाभाविक सरलता के कारण भी हो सकता है। नैतिक और सामाजिक दृष्टियों से देश का घोर पतन हो रहा हो और नए-नए उद्योग धंधा और ऊपरी ठाट बाट देखकर यह समझा जाय कि देश बहुत उन्नति कर रहा है, तो यह भी विभ्रम ही होगा। कुछ अवस्थाओं में चतुर या धूर्त लोग हमारे भोलेपन या सरलता से लाभ उठाकर भी हमारे मन में कोई विभ्रम उत्पन्न कर सकते हैं। हमें अपने जाल में फँसाने के लिए वे हमारे चारों ओर धोखे की टट्टी खड़ी कर सकते हैं, और हम उनके फेर में पड़कर अपनी बहुत कुछ हानि भी कर सकते हैं। परन्तु अंत में सोचने समझने पर जब हम अपनी भूल समझ लेते हैं और यह जान लेते हैं कि इसका कोई सुफल हम कभी मिल ही नहीं सकता, कहते हैं कि वह हमारा विभ्रम ही था जो अब दूर हो गया। × ×

भ्रष्टाचार—पु० [सं०] दे० 'अनाचार, कदाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार'।

भ्रांति—पु० [सं०] दे० 'भ्रम, भ्राति, मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका'।

भ्रूण हत्या—स्त्री० [सं०] 'दे० गर्भ-निरोध, गर्भ-पात, गर्भ-स्राव और भ्रूण-हत्या'।

मँगनी—स्त्री० [हिं० माँगना] दे० 'उधार और मँगनी'।

मंडल—पु० [स०] दे० 'आयोग, अधिकरण, न्यायाधिकरण, परिषद् और मडल'।

मंच, मंचशीर्ष, रंग-मंच और वाग्पीठ

Platform Rostrum Stage Forum

इस वर्ग के शब्द ऐसी वस्तुओ रचनाओ और स्थानो के वाचक हैं जहाँ एकत्र होकर लोग उपदेश प्रचार, मनोरजन आदि के कार्य जन-साधारण के सामने प्रस्तुत करते हैं।

'मच' पु० [सं०] मुख्यत: ऐसे वडे चबूतरे को कहते हैं जो ईंटो आदि के पायो, खम्भों, वाँसो आदि पर और लकडी के तख्तो आदि से पाटकर किसी विशिष्ट कार्य के लिए वनाया गया हो। आस-पास की भूमि से यह इसलिए कुछ ऊँचा वनाया जाता है कि आस-पास और सामने वैठे हुए लोग उस पर होनेवाले कार्य आदि देख सुन सकें। वडी-वड़ी सभाओं के समय सभापति, वक्ता और विशिष्ट कार्यकर्ता तथा सम्मानित अतिथि इसी पर वैठते हैं। उपदेशक, प्रचारक आदि इसी पर खडे होकर लोगो के सामने भाषण करते और ववतृता देते हैं। इसके सिवा लाक्षणिक रूप मे यह ऐसे क्षेत्र का भी वाचक होता है जिसमे कुछ विशिष्ट प्रकार के कार्य आदि होते हैं, जैसे—राजनीनिक मच, साहित्यिक मच आदि।

'मंचशीर्ष' पु० [स०] मेरी समझ मे Rostrum के लिए सवसे अधिक उपयुक्त और ठीक होगा। वहुत वडी-वडी सभाओ या महासभाओं मे मंच पर आगे की ओर एक पार्श्व मे एक दूसरा छोटा मच भी वना दिया जाता है। इसके ऊपरी भाग मे दो तीन आदमियो के खडे होने या वैठने भर का स्थान होता है। भाषण करनेवाले लोग इसी लिए इस पर आकर भाषण करते हैं कि

बहुत दूर-दूर बठे लोग भी सहज मे उन्हें और उनकी भाव भगिमा देख सकें।

'रग मच' पु० [स०] हमारे यहाँ का बहुत पुराना शब्द है। यह विशिष्ट रूप से ऐसे मच का वाचक था जिस पर नाटको के अभिनय गीत, नृत्य आदि के कार्यक्रम जन साधारण के सामने प्रस्तुत करते थे। आज भी यह शब्द मुख्य रूप से इसी अथ मे प्रचलित है। मच की तरह लाक्षणिक रूप मे इसका भी एक और विस्तृत अथ होता है। जहाँ बहुत से लोगो के अनेक प्रकार के आचरण, व्यवहार आदि देखनेवाले की दृष्टि से तमाशो या लीलाओ के रूप मे होते हो, उसे भी रग मच कहते हैं, जसे—यह ससार सदा से सभी प्रकार के लोगो का रग मच रहा है। मच से इसमे यह विशेषता है कि इस पर होनेवाले काय या तो मनोरजक होते माने जाते हैं। कुछ लोग इसके स्थान पर केवल मच का भी प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।

'वाग्पीठ पु० [स० वाक+पीठ] अ० के Forum के लिए बनाया हुआ इधर हाल का शब्द है। इसमे एक ही उद्देश्य से बनाए हुए ऐसे बहुत से मचो का अन्तर्भाव होता है जो या तो बहुत दूर दूर तक फैले हो, या आवश्यकता पडने पर जगह जगह बना लिए जाते हो। वाग्पीठ किसी ऐसे विशिष्ट दल या पक्ष के होते हैं जो सामयिक विषयो और सावजनिक सेवाओ की आलोचना और काय करते हैं, जसे—आर्या समाज का वाग्पीठ, सनातन धम का वाग्पीठ, समाज सेवको का वाग्पीठ आदि। ऐसे वाग्पीठ हर जगह होते या हो सकते हैं। हम कहते हैं—वह थे तो पक्के सनातन धर्मी, परन्तु आज कल वे प्राय राजनीतिक वाग्पीठो से भाषण करते हुए देखे जाते हैं। आशय यही होता है कि आज वे यहाँ की राजनीतिक सभाओ मे भाषण करते हैं तो कल वहाँ की ऐसी सभाओ मे और परसो किसी तीसरे स्थान की ऐसी सभाओ मे अर्थात् वे अब राजनीतिक क्षेत्र मे अधिक काय करते हुए देखे जाते हैं। यह भी कहा जाता है—यह लोक सेवी या सामाजिक वाग्पीठ है, यहाँ राजनीतिक या साम्प्रदायिक वाद विवाद की बातें नही होनी चाहिए। × ×

मचशीर्ष—पु० [स०] दे० मच, मचशीर्ष, रग मच और वाग्पीठ'।

मडल—पु० [स०] दे० 'आयोग, अधिकरण, न्यायाधिकरण, परिषद् और मडल'।

मत्रि-परिषद्—पु० [स०] दे० 'मत्रि मडल और मत्रि-परिषद्।

मंत्रि-मंडल और मंत्रि-परिषद्

Ministry   Cabinet

ये दोनो शब्द राजकीय मंत्रियो के दो ऐसे विशिष्ट वर्गों के वाचक हैं, जिनमें परस्पर कुछ सूक्ष्म अन्तर हैं।

'मंत्रि-मंडल' पु० [सं०] का शब्दार्थ है—मंत्रियों का वर्ग या समूह। आजकल राज्यो या सरकारों के अनेक बहुत बडे-बडे विभाग होते हैं; जैसे—अर्थ या वित्त विभाग, कृषि और खाद्य विभाग, पर-राष्ट्र विभाग, वाणिज्य और व्यवसाय विभाग, शिक्षा विभाग आदि। इनमे से प्रत्येक विभाग का सर्व-प्रधान अधिकारी और व्यवस्थापक मंत्री कहलाता है। कुछ अवस्थाओ मे किसी मंत्री के अधीन एक से अधिक विभाग भी होते या हो सकते हैं। इन सब मंत्रियो का एक नेता या प्रधान होता है, जो केन्द्र मे प्रधान मंत्री (Prime Minister) और स्थानिक राज्यो मे मुख्य मंत्री (Chief Minister) कहलाता है। प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करते हैं और मुख्य मंत्री की नियुक्ति राज्यपाल (Governor) करते हैं। उक्त प्रकार के सभी विभागो के जितने प्रधान अधिकारी या मंत्री होते हैं, उन सभी का सामूहिक नाम मंत्रि-मंडल है।

'मंत्रि-परिषद्' स्त्री० [सं०] का शब्दार्थ तो प्रायः वही है, जो मंत्रि-मंडल का है; परन्तु आधुनिक राज्य-तंत्र मे दोनो मे कुछ सूक्ष्म अन्तर किया गया है। यो तो सभी मंत्रियो के पद समान होते हैं; परन्तु राज्य के गूढतम विषयो पर परामर्श और विचार करने के लिए कुछ अधिक अनुभवी और योग्य मंत्री अलग चुन लिए जाते हैं जिन्हे परिषद् मंत्री या परिषद् स्तर के के मंत्री (Cabinet Minister) कहते हैं, और शेष सभी मंत्री राज्य-मंत्री (Minister for State) कहते हैं। परिषद् स्तर के मंत्री पहले किसी गहन विषय पर अच्छी तरह विचार कर लेते हैं, और तब उसका स्थूल रूप शेष सभी मंत्रियो अर्थात् मंत्रि-मंडल के सामने उपस्थित करते हैं और उनकी स्वीकृति लेते हैं। नीति सम्बन्धी सभी मुख्य बातो के लिए सारा मंत्रि-मंडल समान रूप से उत्तरदायी होता है।   × ×

मजदूरी—स्त्री० [फा०] दे० 'पारितोषिक, पारिश्रमिक, पुरस्कार, आनुतोषिक और अनुवृत्ति' के अन्तर्गत 'पारिश्रमिक'।

मजबूर—वि० [फा०]=बाध्य; दे० 'बद्ध, बाध्य और विवश'।

मनलब—पु० [अ०] दे० 'अर्थ, आशय, ध्वनि और विवक्षा'।

मतिभ्रम—पु० [हि०] दे० 'भ्रम, भ्रांति, मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका'।

मदद—स्त्री० [अ०]=सहायता, दे० 'सहायता, सहयोग और सहकारिता'।

मध्यकल्प—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

मध्यक Mean माध्य (या औसत) Average माध्यम Medium और माध्यिका Median

इस वर्ग के शब्द दो विपरीत दिशाओं, पार्श्वों, विन्दुओं, सख्याओं आदि के बीच की ऐसी सख्याओं, स्थितियो आदि के बीचवाले अको, तत्वों मानो आदि के वाचक हैं जो करण के रूप में दोनों ओर के लगाव या सम्बन्ध का स्वरूप सूचित करती हैं। ये सभी शब्द संस्कृत 'मध्य' के विकारी रूप हैं जिसका अर्थ होता है—बीच या बीचो बीच।

'मध्यक' विपरीत दिशाओं मे स्थित दो बिन्दुओं, सख्याओं आदि के ठीक बीच का बिन्दु या सख्या है। यदि २४ घण्टों में किसी स्थान का तापमान उतरकर ९५ अंश हो जाय और बढ़कर १०५ अंश तक पहुँच जाय तो तापमान का मध्यक १०० होगा। ८ और १६ का मध्यक १२ होगा २० और ४० का मध्यक ३० होगा*। बीच का बिन्दु या स्थिति ही मध्यक कहलाती है।

'माध्य' भी मुख्यत गणित के ही क्षेत्र का शब्द है और उस भाग फल के लिए प्रयुक्त होता है जो कई सख्याओं के जोड को उतने से भाग देने पर प्राप्त होता है जितनी सख्याएँ गिनती मे होती हैं। मान लीजिए कि किसी वर्ग या श्रेणी में १०, किसी मे १५ किसी में २० किसी में २५ और किसी में ३० विद्यार्थी हैं। इस प्रकार कुल ५ श्रेणियो में सब मिलाकर १०० विद्यार्थी हुए। इन पाँचो श्रेणियों के विद्यार्थियों का माध्य निकालने के लिए विद्या

---

* पाटी गणित में तो ४ और १६ का मध्यक १० होगा, पर इन्हीं ४ और १६ का ज्यामितिक मध्यक ८ होगा क्योंकि ४×१६=६४ होता है, और ६४ का वर्ग मूल ८ होता है।

र्थियो की सख्या १०० को श्रेणियो की संख्या ५ से भाग देने पर भाग-फल २० निकलेगा; और तव हम कहेगे—इस विद्यालय की पाँचों श्रेणियो में विद्यार्थियो का माध्य (या औसत) २० है। यदि किसी वस्ती के १० आदमियों की मासिक आय १००), १० की ८०), १० की ६०), और १० की ४०) हो तो इन ४० आदमियो की मासिक आय कुल मिलाकर २८००) होगी। २८०० को ४० से भाग देने पर भाग-फल ७० निकलेगा; और तव कहा जायगा—इस वस्ती के रहनेवालो की माध्य आय ७०) मासिक है अर्थात् जहाँ मान, सख्या आदि मे वहुत-सी अ-समानताएँ होती हैं, वहाँ उन सवका समान मोटा हिसाव लगाने के लिए उसका माध्य निकाल लिया जाता है। प्रायः इस प्रकार के पुराने आँकडो या माध्यो के आधार पर भावी घटनाओ या उनकी सम्भावनाओ का भी अनुमान या कल्पना की जाती है। यदि काशी की वार्षिक वर्षा का माध्य ४० इञ्च है, तो हम कह सकते हैं कि यहाँ साधारणतः हर साल ४० इञ्च पानी वरसता है। हाँ, विशेष अवस्थाओं मे कभी इससे कुछ कम और कभी कुछ अधिक पानी भी वरस सकता है। इसी वीच-वाले अक या स्थिति को माध्य कहते हैं। इसके स्थान पर अ० के 'औसत' का भी प्रयोग होता है। हमारे यहाँ की पुरानी महाजनी वोलचाल मे इसे 'पड़ता' कहते हैं। और इसके साथ निकालना तथा वैठाना क्रियाओ का प्रयोग होता है।

'माध्यम' पु० [सं०] का मूल अर्थ है—वीच या मध्य वाला अश, भाग या स्थिति। परंतु आज-कल इसका प्रयोग ऐसे काम या वात के सम्वन्ध मे होता है जो वीच मे रहकर दोनो पक्षों या पार्श्वों मे या तो उनमे सम्वन्ध स्थापित कराती हैं या उपादान, करण आदि के रूप मे परिणाम या प्रभाव उत्पन्न करती हैं; जैसे—(क) हमारे यहाँ शिक्षा का माध्यम हिन्दी है; अर्थात् विद्यार्थियो को इतिहास, गणित, भूगोल आदि की शिक्षा हिन्दी मे ही दी जाती है। (ख) समाचार पत्र ऐसे माध्यम हैं जिनसे सव स्थानो के समाचार दूर-दूर के लोगो तक पहुँचते हैं। और (ग) आधुनिक विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिखलाया है कि अधिकतर रोग कीटाणुओ के माध्यम से ही फैलते और वढ़ते हैं आदि।

'माध्यिका' ठीक वीच का वह विन्दु है जिसके ऊपर और नीचे दोनों ओर संख्या के विचार से वरावर इकाइयाँ हो। इसमे केवल क्रमिक दृष्टि से ठीक वीच वाले अक, विन्दु या स्थिति के सिवा और किसी वात का विचार नहीं होता। इसे निकालने के लिए ऊपर और नीचे की इकाइयाँ भर गिन

नी पड़ती है, गणित की और कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती। १, २, ३, ४ और ५ की माध्यिका ३ होगी, ७, ८, ६ १०, ११, १२, १३, १४ और १५ की माध्यिका ११ होगी। माध्य, म यक और माध्यिका के पारस्परिक अंतर एक और प्रकार से सहज म समझे जा सकते हैं। मान लीजिए कि किसी जगह ५ आदमी रहते हैं। उनमें से एक ३०) दूसरा ४०) तीसरा ५०), चौथा ८०) और पाचवाँ १००) मासिक वेतन पाता है। पाँचो मिलकर ३००) मासिक पाते हैं। ३०० को ५ से भाग देने पर भाग फल ६० निकलता है। अत पाँचो आदमियो की मासिक माध्य आय ६०) हुई। अब एक आदमी तो सबसे कम ३०) पाता है और एक सबसे अधिक १००) पाता है। अब यदि हम ३० और १०० का म यक निकालें तो वह ६५ होगा, क्योंकि ३० १०० के ठीक बीच मे ६५ ही पडता है। पर यदि हम इन्ही ३०, ४० ५०, ८० और १०० की माध्यिका देखेंगे तो वह ५० ही ठहरेगी, क्योंकि वही पाँचो इकाइयो या संख्याओ के ठीक मध्य म है। × ×

मध्यस्थता—स्त्री० [स०] दे० पंचायत मध्यस्थता और सराधन'।

मनन—पु० [स०] दे० अध्ययन, अनुशीलन परिशीलन और मनन ।

मनस्ताप—पु० [स०] दे० ताप परिताप, पश्चाताप मनस्ताप और सताप'।

मनोवृत्ति—स्त्री० [स०] दे० वृत्ति अभिवृत्ति, प्रवृत्ति मन वृत्ति और रुचि'।

मरीचिका—पु० [हि०] दे० 'भ्रम, भ्रान्ति मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका'।

मशीन—स्त्री० [स०]=यत्र, 'दे० यत्र उपकरण औजार और सयत्र'।

मसौदा—पु [अ० मस्वेद] दे० पाडुलेख और हस्तलेख'। -

महँगा और सस्ता

1 Dear 2 Costly Expensive — Cheap

ये दोनो विशेषण चीजो की बाजारी दरो या भावो की उन स्थितियो के वाचक हैं जिनम वे बाजारों म या तो साधारण से बहुत कुछ बढ़े हुए या बहुत कुछ कम मूल्यो पर बिकती हैं, और इसी लिए ये दोनो एक दूसरे के विपर्याय भी हैं। परन्तु आज-कल इनम लाक्षणिक रूप म कुछ नए आशय या विवक्षाएँ भी लग गई हैं।

'महँगा' [स्त्री० महँगी] सस्कृत 'महार्घ' से वना है जिसका अर्थ होता है—अधिक अथवा वहुत अधिक मूल्य पर खरीदा या वेचा जानेवाला। जव कोई चीज वाजार मे उचित और साधारण से वढे हुए मूल्य पर विकने लगती है, तव कहा जाता है कि वह महँगी हो गई है; परन्तु आज-कल अग्रेजी के अनुकरण पर इसका प्रयोग ऐसे कामो चीजो और वातो के सम्वन्ध मे भी होने लगा है जिन्हे प्राप्त करने के लिए या तो हमे वहुत अधिक कष्ट सहना या प्रयत्न करना पड़ता है अथवा वह कार्य सिद्ध हो जाने पर अथवा वस्तु प्राप्त हो जाने पर हमे वहुत कुछ कष्ट उठाना, खर्च करना और कुछ अवस्थाओ मे पछताना भी पड़ता है। जिन कामो के वाद हमारी किसी विशेष प्रकार की की वदनामी या हानि होती है, उनके सम्वन्ध मे भी इस विशेषण का प्रयोग होता है; जैसे—उन्हे अपना यह अन्तर्जातीय विवाह वहुत महँगा पडा। आशय यही होता है कि या तो नई पत्नी के कारण उनका व्यय वहुत वढ गया है अथवा समाज मे उन्हे वहुत नीचा देखना पड़ा है; या ऐसी ही कोई अप्रिय तथा कष्टदायक स्थिति मे रहना पड़ रहा है। जव हम कहते हैं—'हमे यह पुस्तक (या यात्रा) वहुत महँगी पड़ी है' तव हमारा आशय यही होता है कि पुस्तक पाने या लिखने (अथवा यात्रा करने मे) आवश्यकता से वहुत अधिक परिश्रम या व्यय करना पड़ा है अथवा उचित से वहुत अधिक समय लगाना पडा है आदि आदि।

'सस्ता' [स्त्री० सस्ती] संस्कृत स्वस्थ से वना है जिसका पहला और मुख्य अर्थ है—जो अपने उचित और प्रकृत स्थान पर हो। फलतः यह ऐसी स्थिति का भी सूचक हो गया है जिसमे कोई त्रुटि, न्यूनता या विकार न आया हो। सम्भवतः इसी न्यूनता वाले आशय के आधार पर यह 'महँगा' के ठीक विपरीत अर्थ का सूचक हो गया है। जो चीज उचित, नियत या साधारण मूल्य से कम पर विकती या मिलती हो वह सस्ती कही जाती हैं; जैसे—यदि दस हजार रुपए का मकान किसी को छः, सात या आठ हजार मे मिल जाय तो कहा जायगा—यह मकान उन्हें वहुत सस्ता मिल गया। लाक्षणिक रूप मे भी यह महँगा के लाक्षणिक अर्थवाले विवरण का विपर्याय ही माना जाता है। हमे जो कुछ वहुत थोडे परिश्रम या प्रयत्न से अथवा अपेक्षया वहुत सहज मे मिल जाय उसे भी 'सस्ता' कहते हैं; जैसे—आज-कल जिसे देखो वह सस्ता यश (या सम्मान) प्राप्त करने में लगा हुआ है। आशय यही होता है कि वह वहुत ही थोडा काम या परिश्रम करके और वहुत सहज मे यश (सम्मान) प्राप्त करना चाहता है। इसके सिवा जो काम, चीजें या वातें अपने मानव स्तर से वहुत कुछ नीचे गिरी हुई, कम महत्व की अथवा तुच्छता आदि से

युक्त मानी और समझी जाती हैं वे भी सस्ती कही जाती हैं, जैसे—आज-कल अनेक विश्वविद्यालयो की कई उपाधियाँ बहुत सस्ती हो गई हैं। आशय यही होता है कि वे उपाधियाँ बहुत ही थोडे परिश्रम या प्रयत्न से प्राप्त कर ली जाती हैं या हो सकती है। इसी प्रकार जब हम कहते हैं—'आज कल बाजारो मे अनेक परकीय (या विदेशी) भाषाओं के सस्ते अनुवादो की भर मार है।' तब हमारा आशय यही होता है कि ये अनुवाद बहुत ही निम्न कोटि के हैं और जितने अच्छे होने चाहिए उतने कदापि नही हैं। × ×

महँगाई—स्त्री० [हि०] दे० 'महँगा और महँगाई।

महँगी और महँगाई

Dearness / Dearness allowance

हिंदी की ये दोनो स्त्री० सज्ञाएँ विशेषण महँगा (स० महार्घ) से बनी हैं। इनमे से 'महँगी' तो पुराना शब्द है पर महँगाई इधर हाल मे बना और चला है। कुछ तो रूप साम्य के कारण और कुछ दोनो के अर्थों का ठीक अतर न समझने के कारण लोग प्राय एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं। महँगी' वस्तुत उस समय या स्थिति की सूचक है जिसमे चीजो के दाम बहुत अधिक बढ गए हो और खरीदने मे लोगो को बहुत महँगे जान पडते हो। अर्थात् यह बाजार मे चीजों की कमी मूल्य की वृद्धिवाली अवस्था का सूचक शब्द है, जैसे—आज कल देश मे अनाजो और कपडो की ही नही बल्कि सभी चीजो की महँगी दिखाई पडती है। यह मानो बहुत कुछ अकाल की सी दशा की सूचक मानी जाती है। महँगाई इधर हाल का प्रचलित शब्द है। सरकार और गैर सरकारी संस्थाओ के कर्मचारियो और कार्य कर्ताओ को वेतन के अतिरिक्त आज कल जो और थोडी रकम दी जाने लगी है वही वस्तुत 'महँगाई' है। यह अतिरिक्त रकम लोगो को इसी लिए दी जाती है कि नियत वेतन से महँगी के दिनो म निर्वाह करना कठिन होता है। महँगाई वही कठिनाई कम करने के लिए मिलनेवाली रकम है। इसी लिए इसे 'महँगाई भत्ता' भी कहते हैं। यह कहना ठीक नही है कि आज-कल महगाई के कारण लोगों को बहुत कष्ट हो रहा है। ऐसे अवसरो पर 'महँगी' शब्द का ही प्रयोग होना चाहिए। हाँ, कर्मचारी लोग भले ही कह सकते हैं—आज-कल महँगी जितनी अधिक बढ गई है उसे देखते हुए हम लोगो का महँगाई बहुत ही कम मिलती है। × ×

महक—स्त्री० [स० महक] दे० 'गध, बू, महक और बास'।

महत्ता महत्त्व और महिमा

Greatness Importance Glory

ये तीनो शब्द सस्कृत की मह् धातु से बने है जिसका अर्थ है—प्रतिष्ठा, मान आदि बढाकर ऊँचा उठाना, ऊपर चढाना, गौरव बढाना आदि। इसी मह् से सस्कृत का महत्* शब्द बना है जिसका अर्थ है—आकार, गुण, मान आदि के विचार से बहुत बडा अथवा औरो से बहुत अधिक बढ-चढ़ कर। इसी महत् मे 'ता' प्रत्यय लगने से 'महत्ता' और 'त्व' प्रत्यय लगने से 'महत्त्व' रूप बनता है। दोनो का पहला अर्थ है—बहुत बडे होने की अवस्था, गुण या भाव। हिन्दी मे हम इसे 'वड़प्पन' कह सकते है। परन्तु आज-कल अँगरेजी के इम्पॉर्टैन्स (Importance) शब्द के आधार पर 'महत्त्व' मे एक नया अर्थ लग गया है। जब हम अपनी समझ से किसी काम, बात या व्यक्ति को औरो से बहुत अच्छा, आदरणीय, प्रभावी या मान्य समझते हैं तब हमारा ऐसा समझना ही उस काम, बात या व्यक्ति का महत्त्व स्थापित करना होता है। ऐसा समझना मूलतः वैयक्तिक ही होता है। इसी लिए हम कहते है—और लोग आपकी कृति के सम्बन्ध मे जो चाहे सो कहे; पर मैं उसे बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। परन्तु आगे चलकर ऐसी धारणा वैयक्तिक होने के सिवा सामाजिक या सामूहिक और फलतः बहुत व्यापक भी हो सकती है; जैसे—उनके अनुसधानो या अन्वेषणो का महत्त्व सभी बडे-बडे विद्वान् और वैज्ञानिक मानते हैं।

आज-कल हिन्दी मे इन शब्दो का जिस प्रकार प्रयोग होता है उसके आधार पर एक सूक्ष्म अन्तर निरूपित किया जा सकता है। वह यह कि महत्ता तो स्वय वस्तु या व्यक्ति मे वर्तमान या स्थित रहती है; परन्तु महत्त्व इसके सिवा उस आदरात्मक भावना का भी वाचक हो गया है जो महत्ता के फलस्वरूप उसे देखने या समझनेवालो के मन मे उत्पन्न होती है। इसी लिए कहा जाता है—आज-कल लोग संगीत का सांस्कृतिक महत्त्व (अथवा हिमालय का आध्यात्मिक महत्त्व) बहुत कुछ समझने लगे है। ऐसे अवसरो पर 'महत्त्व' के स्थान पर महत्ता' का प्रयोग जल्दी कही देखने मे नही आता।

---

* इसी महत् का एक दूसरा रूप 'महान्' भी होता है जिसे कुछ लोग या तो भूल से और या सुभीते के विचार से 'महान' मान या समझ लेते हैं और इसमे सस्कृत का 'ता' प्रत्यय लगाकर भाववाचक सज्ञा 'महानता' बना लेते हैं जो ठीक नही है, फिर भी आज-कल बहुत चलने लगा है।

'महिमा' इसी महत्त्व का बहुत अधिक आदरणीय, उत्कृष्ट और सवमा य रूप होता है। महत्त्व तो लौकिक क्षेत्र का ही शब्द है, परन्तु महिमा का प्रयोग मुख्यत आध्यात्मिक धार्मिक आदि क्षेत्रो म होता है। महिमा ऐसा महत्त्व है, जो दवी गुणो से सम्पन्न अथवा लोकोत्तर हो, जस—ईश्वर की महिमा अपरम्पार है। 'महिमा' हमारे यहाँ आठ सिद्धियों में से एक कही गई है जिसके सिद्ध हो जाने पर मनुष्य अपने आपको आकार, रूप आदि की दृष्टि से बहुत बडा बना लेता था। हमारे यहाँ के प्राचीन साहित्य म कहीं कहीं बहुत बडे राजाओ, सम्राटो आदि का महत्त्व सूचित करने के लिए भी इसका प्रयोग देखने म आता है। इस प्रकार 'महिमा' एमा असाधारण महत्त्व है जिसे सब लोग बिना किसी प्रकार की आपत्ति के और सिर झुका कर मानते हो। × ×

महत्त्व—पु० [स०] दे० 'महत्ता, महत्त्व और महिमा।

महाकाल—पु० [स०] द० 'काल, वला, और समय'।

महानता—स्त्री० [असिद्ध रूप] दे० 'महत्ता, महत्त्व और महिमा'।

महाव्योम—पु० [स०] दे० 'अ तरिक्ष, आकाश, व्योम और महाव्योम।

महिमा—स्त्री० [स०] द० 'महत्ता, महत्त्व और महिमा।

मातम —पु० [फा०]=शोक, दे० दु ख, खेद, विषाद और शोक'।

माध्य—पु० [स०] दे० माध्यक, माध्य, माध्यम और माध्यिका'।

माध्यम—पु० [स०] द० 'मध्यक, माध्य माध्यम और माध्यिका'।

माध्यिका—स्त्री० [स०] दे० 'मध्यक साध्य, माध्यम और माध्यिका'।

मानक—पु० [स०] दे० आदश, प्रतिमान, प्रतिरूप और मानक।

मानकीकरण—पु० [स०] दे० आदश, प्रतिमान प्रतिरूप और मानक।

माने—पु० [अ० मानना] दे० अथ, आशय, ध्वनि और विवक्षा।

मा यता—स्त्री० [स०] द० 'विश्वास, प्रतीति, प्रत्यय, भरोसा और मा यता'।

मिजाज—पु० [अ० मिजाज] दे० 'प्रकृति, शील, स्वभाव और मिजाज'।

मिलना—अ० [स० मिलन] दे० 'जुडना, चिपकना, मिलना, सगना और सटना'।

मिली-भगत और साट-गाँठ
Collusion Collusion

इन स्त्रीलिंग पदो का प्रयोग ऐसी स्थिति सूचित करने के लिए होता है जिसमे दो अथवा अधिक दल, पक्ष या व्यक्ति अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए आपस मे मिलकर गुप्त रूप से किसी को ठगने, धोखा देने या हानि पहुँचाने का प्रयत्न करते हैं।

जब दो या अधिक व्यक्ति मिलकर कपट या छल का व्यवहार करते हुए किसी को ठगते हैं तब कहा जाता है कि यह उन दोनो की मिली-भगत थी। इसमे मुख्य बात यह है कि इसका स्वरूप ठगे जाने या धोखा खाने के बाद ही स्पष्ट होता है। उदाहरण के लिए एक आदमी बहुत ही विश्वसनीय बन आता है और कहता है कि अमुक साधु चाँदी का सोना बना देता है अथवा सोने की मात्रा दूनी कर देता है। हम उस पर विश्वास करके बहुत सी चाँदी सोना बनाने के लिए अथवा बहुत सा सोना दूना करने के लिए देते हैं और वह चाँदी या सोना लेकर चम्पत हो जाता है। तब हम कहते हैं कि यह उन दोनो की मिली-भगत थी। इस प्रकार की अथवा इससे मिलती-जुलती और कोई ठगी मिली-भगत के फलस्वरूप ही होती है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसमे का भगत शब्द विचारणीय है। यह सस्कृत भक्त का विगडा हुआ रूप इसलिए नही हो सकता कि इसके पहले 'मिली' विशेषण स्त्रीलिंग हैं। यह सस्कृत 'भक्ति, का भी विगड़ा हुआ रूप नही हो सकता क्योकि मिली भक्ति का कोई अर्थ नही होता। बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश मे उक्त प्रकार की ठगी 'भगल' कहलाती है और ऐसी ठगी करनेवालो को भगलिया कहते हैं। आज-कल इन शब्दो का प्रचलन बहुत कम रह गया है, परन्तु हमारा अनुमान है कि इसमे का भगत शब्द उसी प्रकार भगल का विगड़ा हुआ रूप है, जिस प्रकार भूमि फली, भूमफली और मूमफली से विगडता हुआ रूप हिन्दी का 'मूँगफली' बना है। प्रायः दुराचारो के अड्डो के दलाल भी इसी प्रकार के छल-कपट से बडे आदमियो के लडको को जुआ खेलने मे प्रवृत्त करके अथवा शराबी-कबाबी और अयाश बनाकर अनेक प्रकार से अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं यदि कोई किसी को धोखे से कही ले जाकर मार खिलवा दे या उसकी घड़ी और उसके रुपए-पैसे छिनवा दे तो यह भी उसकी मिली-भगत कही जाएगी।

'साट-गाँठ' भी साधारणतः है तो बहुत कुछ वही जो 'मिली भगत' है फिर भी दोनो के प्रकार और स्वरूप मे कुछ अन्तर है। इसका स्वरूप बहुत कुछ

आरम्भ या मध्य में ही प्रकट हो जाता या हो सकता है। साट-गाँठ से युक्त आचरण या व्यवहार अधिक समय तक छिपा या दबाकर नहीं रखा जा सकता। दूसरा अन्तर यह भी है कि 'मिली भगत' में तो एक पक्ष या व्यक्ति बिलकुल मौन रहकर या भोला भाला और सीधा साधा बनकर सामने आता है और दूसरे व्यक्ति को अपना दुष्ट उद्देश्य सिद्ध करने का अवसर दिलाकर ही अलग हो जाता है। परन्तु 'साट गाँठ' करनेवाले लोग एक दूसरे की थोड़ी बहुत सहायता करते हुए भी दिखाई देते हैं। अगस्त सितम्बर १९६५ में जब पाकिस्तान ने भारत के साथ छेड़ छाड़ करके युद्ध खड़ा था तब उसमें बीच बीच में या रह रहकर चीन भी कुछ ऐसी कारवाइयाँ करता चलता था जिससे पाकिस्तान को प्रोत्साहन भी मिलता था और सहायता भी। इसी लिए कहा जाता था कि भारत पर पाकिस्तान का आक्रमण चीन की साट-गाँठ से हुआ है। इस पद के पहले शब्द 'साट' की व्युत्पत्ति भी विचारणीय है। कुछ लोग इसे हिंदी की अकर्मक क्रिया सटना का भाववाचक रूप मानकर यह भ्रम करते हैं कि किसी के साथ सट कर कोई दुरभिसंधि करना ही साट-गाँठ है। परन्तु यह कल्पना ही है। वस्तुतः यह पद संस्कृत 'शाठ्यग्रंथि' का अपभ्रष्ट रूप है। जब दो या अधिक शठ मिलकर कोई आपराधिक या दुष्टतापूर्ण आचरण या व्यवहार करते हैं तब उनके संयोग को शाठ्यग्रंथि कहते हैं। × ×

मिल्कियत—स्त्री० [अ०] दे० 'अधिकार और स्वत्व'।

मिस—पु० [सं०] दे० व्याज, मिस, बहाना और हीला।

मिसाल—स्त्री० [अ०] दे० 'उदाहरण और दृष्टान्त'।

मुँह

'हाथ' के अर्थों और मुहावरों के सम्बन्ध में मेरा जो लेख आज से प्रकाशित हुआ था उसके सम्बन्ध में कई सुयोग्य मित्रों ने चर्चा करते हुए इस विषय में अच्छा रस दिखाया था और मुझसे अनुरोध किया था कि शब्दों के अर्थों और मुहावरों के विवेचन का यह क्रम बराबर चलता रहना चाहिए। यद्यपि मानक हिन्दी कोश के लिए भी और यों भी नये नये ढंग के विवेचन का काम और विचार मैं बराबर करता रहता हूँ, फिर भी नियमित रूप से पत्रों में इस प्रकार लेख लिखते रहना बराबर मेरे लिए कई कारणों से सम्भव नहीं है। हाँ शरीर के कुछ प्रमुख अंगों के अर्थों और मुहावरों का विवेचन मैं स्वयं दो कारणों से हिन्दी जगत् के सामने रखना चाहता हूँ। एक तो यह कि हिन्दी वालों की रुचि इस विषय की ओर बढ़े, और दूसरे यह कि भावी कोशकारों के

लिए शब्दों के विवेचन और अर्थ-विभाजन के विचार से अधिक तर्क-सगत, निर्भ्रान्त, परिष्कृत तथा व्यवस्थित हो। 'शब्द-सागर' से अर्थ-विवेचन की जो परिपाटी आरम्भ हुई थी, उसके परम आदरणीय और श्लाघ्य होने में कोई सन्देह नही। परन्तु अब ऐसा समय आ गया है कि उस परिपाटी मे नित्य बढ़नेवाली नयी आवश्यकताओ के विचार से परिवर्तन, सशोधन और सुधार होने चाहिएँ और उसकी सभी प्रकार की त्रुटियाँ दूर होनी चाहिएँ। हमारे आनेवाले कोशों का स्वरूप अद्यावधिक और अधिक कलात्मक होना चाहिए।

कोश के लिए मुहावरे लेते समय दो बातो का ध्यान रखना आवश्यक होता है। एक तो यह कि उनका वर्गीकरण अधिक अर्थ-परक और तर्क-सगत होना चाहिए, दूसरे उन मुहावरो की व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक ठीक, व्यापक तथा स्पष्ट होनी चाहिए। यो तो 'मुँह' शब्द के आठ-नौ अर्थ हैं, परन्तु ऐसे मुख्य अर्थ दो ही हैं, जिनके साथ अधिकतर मुहावरे सम्बद्ध हैं। इनमे पहला अर्थ तो उस अग के सम्बन्ध मे है जिससे हम खाते-पीते और बात करते हैं और दूसरा अर्थ सारे चेहरे से, जिसमे आँखे, नाक, ठोढी आदि सम्मिलित या सम्बद्ध है। इसके सिवा कुछ गौण अर्थ भी हैं और उनके साथ भी कुछ मुहावरे हैं। साधारणत: मुँह के मुहावरो का 'शब्द-सागर' मे बहुत-कुछ ठिकाने का वर्गीकरण हुआ है। फिर भी उसमे की कुछ बाते विचारणीय हैं। उसमे मुँह का दूसरा अर्थ है—मनुष्य का मुख-विवर। पर इसके पेटे मे कुछ ऐसे मुहावरे भी आ गये हैं, जो मनुष्य या उसके मुख-विवर से नही, बल्कि पशु-पक्षियो के मुख-विवर से सम्बद्ध हैं; जैसे—मुँह डालना, मुँह देना आदि मुहावरो का प्रयोग केवल पशु-पक्षियो के सम्बन्ध मे होता है। मनुष्य न तो किसी चीज मे मुँह डालता है, न देता है। वह तो मुँह मे चीज डालता या रखता है। इसी अर्थ के अन्तर्गत 'मुँह का कच्चा' और 'मुँह का कडा' ऐसे पद (मुहावरे नही) भी हैं, जिनका प्रयोग एक ओर मनुष्य के लिए भी होता है और दूसरी ओर पशुओ के लिए भी। इसके सिवा मुँह चलाना, मुँह फैलाना या बाना आदि मुहावरे भी हैं जो मनुष्यो के लिए भी और पशुओ के लिए भी समान रूप से समान अर्थ मे प्रयुक्त होते या हो सकते हैं। ऐसी दशा मे यह तो कहा ही नही जा सकता कि 'मुँह' का मनुष्यो से सम्बद्ध अर्थ और उसके मुहावरे अलग दिए जाएँ और पशु-पक्षियो से सम्बद्ध अर्थ तथा मुहावरे अलग दिए जाएँ। इसलिए ऐसी कठिनाई से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि स्वयं 'मुँह' शब्द की व्याख्या मनुष्य के मुख-विवर तक ही

परिमित न रखकर इतनी विशद और व्यापक रखी जाय कि उसके अन्तर्गत दोनो पक्षों के पद और मुहावरे आ सकें।

अब इसी बात पर एक दूसरी दृष्टि से विचार कीजिए। एक प्रसिद्ध मुहावरा है—मुँह मारना। पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में इसका भी प्राय वही अर्थ होता है जो मुँह डालना (या देना) का है। यह प्रयोग पहले अर्थ (खाने-पीने के अर्थ) से सम्बन्ध रखता है और इसलिए पहले अर्थ के साथ इसका अर्थ रहना उचित ही है। इसी प्रकार 'किसी के मुँह से दूध की बू आना' भी है तो मूलत खान पान से ही सम्बद्ध, परन्तु लाक्षणिक रूप से इसका अर्थ होता है—ऐसी किशोर अथवा आरम्भिक युवावस्था में होना कि अभी तक लडकपन पूरी तरह से दूर न हुआ हो। अर्थात् यह लडका के से आचार-व्यवहार या बात चीत के लक्षणो का सूचक है। एक और मुहावरा है—किसी का मुँह मारना। कोशो म इसके जो अर्थ मिलते हैं, वे अधूरे और अव्याप्ति दोष से युक्त हैं। लाक्षणिक रूप मे इसका वास्तविक अर्थ है या होना चाहिए—(क) किसी को दबाने नीचा दिखाने, रोकने या वशवर्ती करने के लिए कोई बलसूचक या कठोर काय करना, और (ख) स्वय ऐसी उत्कृष्ट स्थिति म होना कि सहज म किसी को परास्त या लज्जित करके हीन सिद्ध किया जा सके। इनम पहले अर्थ का उदाहरण है—हजार रुपए की थली देकर उसका भी मुह मार दो। और दूसरे अर्थ का उदाहरण है—यह कपडा गुनी होने पर भी रेशमी का मुँह मारता है। तात्त्विक दृष्टि स यह अर्थ प्रकार खान पीनवाले अर्थ स तो अलग है ही, सारे चेहरेवाले दूसरे अर्थ से भी इस लिए अलग है कि इसका प्रयोग केवल लाक्षणिक रूप म और वह भी केवल पौरुष, बल आदि सूचित करने क प्रसग म होना है। इसलिए यह मुहावरा पहले अर्थ क साथ नहीं बल्कि 'मुँह क दूसरे अर्थात् चेहरेवाले अर्थ के साथ रहना चाहिए। अब इसी वग का एक और मुहावरा देखिए। हम कहते हैं—(क) पहले अपना मुह तो देखो और (ख) यहाँ किसका मुँह है जो तुम्हारे सामने आवे। ऐसे अवसरो पर 'मुँह शब्द का प्रयोग बिना किसी विशिष्ट क्रिया क सहयोग क होता है। इसम ध्यान देने की दो बातें हैं। एक तो यह कि ऐसे प्रयोगो क अर्थ विवेचन के समय उनका स्वत त्र अर्थ विभाग भी अपेक्षित होता है और दूसरे यह कि किसी विशिष्ट क्रिया स सम्बद्ध न होने के कारण मुहावरों मे इनका अन्तर्भाव नहीं हो सकता। इसलिए मानक हिन्दी कोश में 'मुँह' शब्द के अपने नए विवेचन में मैंने इस दृष्टि से उसके दो-तीन नए अर्थ बढ़ा दिए हैं। पुरानी विवेचन-प्रणाली क अनुसार ऐसे प्रयोगों को

मैंने मुहावरों के अन्तर्गत नही माना है। एक और प्रसिद्ध मुहावरा है, जो 'शब्द-सागर' मे 'मुँह धो रखना' के रूप मे आया है। पर वास्तविक बात यह है कि इसका प्रयोग सदा विधि के रूप मे ही होता है, अर्थात् सदा दूसरे के प्रति और इस रूप मे होता है—तुम 'मुँह धो रखो' या 'आप मुँह धो रखें (रखिए)।' हम कभी यह नही कहते—हमने मुँह धो रखा या वह मुँह धो लेगा आदि। और इस दृष्टि से कोशों मे भी इस मुहावरे का रूप रहना चाहिए—मुँह धो रखो (रखिए या रख)। यदि ऐसा न करके इस मुहावरे का रूप 'मुँह धो रखना' ही रखा जाएगा तो साधारण शिक्षितों और अन्य भाषा-भाषियो मे इस रूप के कारण बहुत भ्रम फैलेगा और सम्भव है कि वे इसका प्रयोग उसी प्रकार भ्रमात्मक तथा अशुद्ध रूपो मे करने लगे, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। कोशकार की एक छोटी सी भूल के कारण दूसरे लोग बहुत बड़ी-बड़ी भूले कर सकते है और कोशकार प्रकारांतर से भाषा का रूप बिगाड़ने का दोषी ठहर सकता है। अतः कोश-रचना के क्षेत्र मे अग्रसर होने के समय शब्दो के अर्थो, प्रयोगो, मुहावरो आदि का ऐसा ही सूक्ष्म विचार और विवेचन होना चाहिए।

'हाथ' की ही तरह 'मुँह' के मुहावरे भी कई वर्गो मे विभक्त है। उसके कुछ मुहावरे खान-पान से, कुछ बोल-चाल से और कुछ केवल मनोभावों से सम्बद्ध हैं। 'मुँह जूठा करना', 'मुँह मीठा करना', आदि केवल खान-पान से सम्बद्ध हैं, और 'मुँह बन्द करना', 'मुँह बाँधकर बैठना', 'मुँह मे लगाम न होना', 'मुँह सीना', 'मुँह से फूल झड़ना', 'किसी के मुँह की बात छीनना' आदि का अन्तर्भाव बोल-चालवाले प्रसग मे होता है। 'मुँह चिढ़ाना या बनाना', 'मुँह मे लहू लगना', 'मुँह मे कीडे पडना', 'किसी के सामने मुँह फैलाना', 'मुँह मे पानी भर आना' आदि मुहावरे ऐसे हैं जिनका सम्बन्ध मुख्यतः मनोभावो से है। परन्तु कुछ मुहावरे ऐसे भी हैं जो एक ओर तो खान-पान से भी सम्बद्ध हैं और दूसरी ओर बोल-चाल से भी; जैसे—'मुँह चलना या चलाना', 'मुँह लगना या लगाना' आदि। हम कहते हैं—(क) जब देखो तब तुम्हारा मुँह चलता रहता है। और (ख) अब तो तुम बडो के सामने भी मुँह चलाने लगे। इनमे से पहला उदाहरण खान-पान से और दूसरा उद्दण्डतापूर्ण वाचालता से सम्बद्ध है। इसी प्रकार हम कहते हैं—(क) आज-कल तो बिस्कुट तुम्हारे मुँह लगा है। और (ख) नया नौकर अभी से मुँह लगने लगा है। इन उदाहरणो मे भी खान-पान और वाचालतावाला अन्तर है। अर्थों के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे अब तक मैंने जो बातें कही हैं

उनका ध्यान रखते हुए यह स्पष्ट ही है कि ऐसे मुहावरे एक जगह रखकर उनके दोनो अर्थ एक साथ देना न तो उचित ही है न तर्कसंगत ही और न वाक्यरचना की कला के विचार से निर्दोष तथा सूक्ष्म विवेचन का परिचायक ही। अत इस प्रकार के मुहावरे अपने अपने स्वतन्त्र अर्थ विभाग मे आने चाहिए।

अब मुह के कुछ मुहावरों के अर्थ या व्याख्याएँ लीजिए। अपना सा मुँह लेकर रह जाना (या लौट आना) एक प्रसिद्ध मुहावरा है। साधारण कोशो म इसका अर्थ इस प्रकार पाया जाता है—लज्जित या चुप होकर रह जाना। 'मुँह ताकना' का अर्थ प्राय कोशो मे इस प्रकार मिलता है—चकित होकर मुह देखना या कुछ न कर सकने के कारण चुपचाप बैठना आदि। परन्तु क्या इतने से ही इन मुहावरों के ठीक ठीक आशय प्रकट हो जाते हैं? शायद बिलकुल नही। इनकी व्याख्याए अर्थात् कुछ इस प्रकार होनी चाहिएँ—(क) निराश, विफल या हतोत्साह होने के कारण दीन या लज्जित भाव से चुपचाप रह जाना (या लौट आना)। और (ख) असमर्थ, असमंथ, चकित या विवश होकर अथवा आशा, प्रतीक्षा आदि म चुपचाप किसी ओर (या किसी की ओर) देखते रहना आदि। मुँह म पानी भर आना' या 'मुँह से लार टपकना' आदि के जो साधारण अर्थ कोशो मे मिलते हैं, वे स्वय व्याख्या की दृष्टि से तो अपूर्ण हैं ही इस दृष्टि से भी कुछ अपूर्ण हैं कि व्याख्याओ म इस बात का संकेत नही मिलता कि ये मुहावरे किस आधार पर अथवा कसी क्रियाओं के अनुकरण पर बने हैं। यदि पहले मुहावरे की व्याख्या के साथ चाते, भेडिये आदि की प्रवृत्ति की ओर और दूसरे मुहावरे के साथ खाने-पीने की चीज देखने पर मुँह म होनेवाली विशिष्ट शारीरिक प्रक्रिया का भी संकेत कर दिया जाय तो जिज्ञासुओं को ठीक आशय समझने म अधिक सहायता मिलेगी या अधिक सुगमता होगी। हिन्दी के भावी आदर्श तथा प्रामाणिक कोशो म इस प्रकार की नई और सूक्ष्म बातों की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। × ×

मुआवजा—पु० [अ० मुआवज़]=प्रतिपूर्ति, दे० पूर्ति अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति।

मुख्य मन्त्री—पु० [स०] दे० मन्त्रिमडल और मन्त्रिपरिषद्'।

मुनाफा—पु० [अ० मुनाफ]=लाभ, दे० प्राप्ति, लाभ और उपलब्धि।

मुसीबत—स्त्री० [अ०]=विपत्ति दे० 'विपत्ति; और सकट'।

मुहब्बत—स्त्री० [अ० महब्बत] दे० 'अनुराग, प्रीति, प्रेम और स्नेह'।

मूल्य दाम और अर्घ

1. Price 2. Value Price Worth

इस वर्ग के शब्द कार्यो, बातों, वस्तुओ, व्यक्तियो आदि के गुरुत्व, महत्व आदि के परिमाण के सूचक हैं, चाहे वह परिमाण आर्थिक क्षेत्र का हो, चाहे क्रियात्मक अथवा व्यावहारिक क्षेत्र का हो और चाहे लाक्षणिक रूप में मानसिक क्षेत्र का।

'मूल्य' पुं० [सं०] अपने आरम्भिक रूप मे विशेषण है और इसका पहला अर्थ है—मूल सम्बन्धी अर्थात् जो किसी चीज के मूल या जड मे हो अथवा मूल या जड से सम्बन्ध रखता हो। इसका दूसरा अर्थ होता है जो धन देकर (मोल) लिया जा सके। इसी दूसरे अर्थ के आधार पर इसका संज्ञावाला वह अर्थ बना है जिसमे वह आज-कल साधारणत: भारत की प्राय. सभी भाषाओ मे प्रचलित है। साधारणत: लोग मूल्य, दाम और अर्घ को एक दूसरे का पर्याय ही समझते हैं और लोक-व्यवहार मे मूल्य तथा दाम में कोई अन्तर नही माना जाता। अ० मे इस वर्ग के तीन शब्द है—Price, value और *worth*। *Price* तो मूल्य भी है और दाम भी; परन्तु आज-कल लोगो ने मूल्य मे भाववाला अर्थ भी सम्मिलित कर लिया है, अतः हमारी समझ मे वर्थ का भाव सूचित करने के लिए हमे 'अर्घ' का प्रयोग करना चाहिए। इस दृष्टि से मूल्य वह धन तो है ही जो कोई चीज खरीदने या बेचने के समय दिया या लिया जाता है, और इसी अर्थ मे दाम उसका पर्याय है। इसके सिवा कोई चीज चाहे खरीदी या बेची न जाती हो फिर भी हम अनुमान या कल्पना से उसके महत्व का जो परिमाण स्थिर करते हैं; वही उसका मूल्य भी माना जाता है। हम कहते हैं आपके लेखे इस पुस्तक का भले ही कोई मूल्य न हो पर हमारे लिए तो यह बहुमूल्य निधि है। अर्थात् हमारी दृष्टि मे पुस्तक की जो उपयोगिता और महत्व है वही हमारे लिए उसका मूल्य है। इसके सिवा हम यह भी कहते हैं—बिना पूरा मूल्य चुकाए किसी देश को स्वतत्रता नही मिलती। यहाँ मूल्य का आशय धन से नही बल्कि स्वार्थ-त्याग पूर्वक पूरा प्रयत्न करने, कष्ट सहने, आत्म-बलिदान करने आदि से है। इसके

सिवा मूल्य मे उपयोगिता, महत्ता, श्रेष्ठता आदि तत्त्वो का भी बहुत कुछ विचार होता है। हम कहते हैं—'उन्होंने हमारी सहायता या सेवा का ठीक मूल्य नही समझा।' आशय यह होता है कि उसकी ठीक ठीक उपयोगिता या महत्त्व की ओर उनका ध्यान नही गया। उर्दू वाले मूल्य के उक्त दोनो अर्थों मे अ० कीमत का प्रयोग करते है।*

'दाम' पु० को कुछ लोग फारसी का शब्द समझते हैं। पर वास्तव मे यह मूलत यूनानी 'ड्रैम' से व्युत्पन्न शब्द है। प्राचीन यूनान मे चाँदी का एक छोटा सिक्का होता था, जो ड्रम कहलाता था और उसकी तौल या भार भी ड्रैम कहलाता था। इसी से फा० दिरम† और स० मे द्रम्म बना था। यो तो दाम शब्द स० मे भी है, पर उसके अर्थ, माला या हार, रस्सी आदि हैं। प्रस्तुत प्रसग म (मूल्य के अर्थ में) दाम सभवत उक्त स० द्रम्म' से ही बना है।

हमारे यहाँ भी दाम मूलत एक छोटा सिक्का ही था, जो एक दमडी के तीसरे या एक पैसे के चौबीसवें भाग के बराबर होता था। इसी से छदाम (=६ दाम) शब्द बना था जो एक पसे का चौथाई था और टुकडा भी कहलाता था। पर अब दाम (सिक्का आदि के रूप म) वह धन कहलाता था जो कोई चीज लेने के समय बदले म उसके मालिक को दिया जाता है। पहले

---

* आज कल अ० के अनुकरण पर हमारे यहाँ मूल्य का प्रयोग एक नए और विलक्षण प्रकार से होने लगा है जो हमारी दृष्टि मे हिंदी प्रकृति के प्रतिकूल पडता है। अ० के दो मुहावरे हैं—At all costs और At any cost ऐसे मुहावरो के अनुवाद के समय लोग प्राय लिखते हैं—सभी मूल्यों पर और किसी मूल्य पर भी। जसे—(क) हम सभी मूल्यो पर उनके साथ सम्मान जनक रूप म समझौता करने को तयार हैं। और (ख) देश की रक्षा का विचार किसी मूल्य पर भी छोडा नही जा सकता। ऐसे अवसरो पर स्वार्थ त्याग या स्वार्थ साधन और हानि लाभ का भाव सूचित करने के लिए लोग मूल्य का प्रयोग कर जाते हैं। हमारी समझ हिन्दी की प्रकृति के अनुसार उक्त वाक्यो के रूप होने चाहिएँ—(क) हम सभी प्रकार से उनके साथ सम्मानजनक रूप म समझौता करने के लिए तयार हैं और (ख) देश की रक्षा का विचार किसी प्रकार छोडा नही जा सकता।

† यथा—दिरम औ दाम अपने पास कहाँ,
चील के घोंसले में माँस कहाँ।

यह वहुवचन मे बोला जाता था; जैसे—'इस चीज के कितने दाम देने पड़ेंगे' ? आशय यही होता था कि दाम नामक कितने सिक्के देने पड़ेंगे। पर अब वह एक वचन मे ही चलता है, जैसे—'इस पुस्तक का क्या दाम है ?' अथवा 'वह अपने मकान का दाम बीस हजार माँगता है,' या 'इस भैंस का दाम छः सौ रुपए लग चुका है' आदि। जहाँ खरीद-बिक्री न हो, वहाँ दाम का प्रयोग न तो जल्दी होता ही है और न होना ही चाहिए। यो लोग कह जाते हैं—'आज-कल गेहूँ का दाम चढ गया है।' पर वास्तव मे यहाँ दाम की जगह दर या भाव (दे० ये दोनो शब्द यथा-स्थान) शब्द का प्रयोग होना चाहिए, क्योंकि ऐसे अवसरों पर गेहूँ की खरीद या बिक्री की कोई बात नही होती। हाँ, अप्रत्यक्ष रूप से उसकी ओर सकेत अवश्य होता है।

'अर्घ' पु० [स०] भी साधारणतः मूल्य या दाम का पर्याय माना है। इसी अर्घ से महार्घ शब्द बनता है जिसका हिं० रूप महँगा हो गया है और जिसका अर्थ है—उचित से अधिक मूल्य वाला। परन्तु हमारी समझ मे अ० के Worth का भाव सूचित करने के लिए यह शब्द बहुत अच्छा और ठीक होगा। ऐसी अवस्था मे हमे यह मानना पडेगा कि अर्घ मुख्य रूप से स्वय वस्तु से या उसके सयोजक तत्वो से सम्बद्ध होता है। इसमे न तो क्रय-विक्रय, लेन-देन या विनिमयवाला भाव ही है, न महत्ववाला तत्व ही। यह सदा वस्तु के उन्ही गुणो या तत्वो पर आश्रित होता है जो स्वय उस वस्तु मे निहित या वर्तमान होते हैं। पर इसमे वस्तुओ की उपयोगिता या उनसे प्राप्त होनेवाली सेवा का विचार अवश्य होता है। मान लीजिए कि आपके पास गुप्तकाल का सोने का ऐसा सिक्का है जो बहुत दुष्प्राप्य है या जिस मेल के सिक्के आज तक बहुत ही थोड़े मिले हैं या मिले ही नही हैं। वह सिक्का तोले भर सोने का है। अब इस सिक्के का अर्घ उतना ही होगा, जितने मे बाजार मे एक तोला सोना मिलता है। यदि सोना बाजार मे सौ रुपए तोला मिलता है, तो उस सिक्के का अर्घ भी सौ रुपए ही होगा, इससे कम या अधिक नही। पर सिक्को का सग्रह करनेवाले लोग (या सग्रहालय) उस सिक्के के भिन्न-भिन्न मूल्य आँक सकते हैं। किसी की दृष्टि मे वह हजार रुपए मूल्य का हो सकता है और किसी की दृष्टि मे दो हजार रुपए मूल्य का। अब यदि वही सिक्का किसी जगह तीन हजार रुपयों पर बिके तो यही तीन हजार उसका मूल्य या दाम कहा जाएगा। अर्थात् अर्घ प्रायः सर्वमान्य और बहुत-कुछ स्थायी होता है और उसमे जल्दी कोई अन्तर नही पडता, किसी वस्तु का मूल्य, अपनी आवश्यकता, या वस्तु की

उपयोगिता और रुचि के अनुसार आँका या लगाया जाता है और दाम वह है जो माँगा और लिया दिया जाता है। पर मध उस उपकरण या तत्व की दृष्टि से होता है जिससे कोई वस्तु बनी होती है। × ×

मृग तृष्णा—स्त्री० [स०] दे० भ्रम, भ्रांति मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका'।

मग मरीचिका—स्त्री० [स०] दे० भ्रम, भ्रान्ति, मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका'।

मेरु रज्जु—स्त्री० [स०] दे० धमनी, नाड़ी, शिरा और स्नायु।

मौजूद—वि० [फा०] दे० 'उपस्थित, प्रस्तुत, वर्तमान और विद्यमान'।

यत्र उपकरण औजार और सयत्र
Machine Apparatus Tool Plant

इस वग क श॰॰ ऐसी रचनाओं के वाचक हैं जो मनुष्य अपने उद्योग धंधों म काम म लाने और थोड़े परिश्रम से तथा थोड़े समय म बहुत अधिक या बड़े काम करने अथवा बहुत अधिक मात्रा मान या संख्या म उपयोगी वस्तुए तयार करने के उद्देश्य स बनाता है।

'यत्र का पहला और मुख्य अथ है—(क) कोई ऐसी चीज जो दूसरी चीजों को कस, बाँध या रोककर रख सकती हो, और (ख) कोई ऐसी बात जो अनेक प्रकार के कार्यों बातों आदि को अपने अधिकार या वश म रखकर ठीक तरह से उन्हें चलाती और उनसे तरह-तरह के काम निकलती या लेती हो। प्राचीन भारत म ताले, हथकड़ी, बेड़ी आदि को तो यत्र कहते ही थे, डोरी, फीते, रस्से आदि को भी इसलिए यत्र कहते थ कि उनस चीजें बाँधकर और ठीक तरह से रखी जाती थी। हमारे यहाँ सितार, सरंगी, हथौड़ आदि तत की जितनी भी यत्रों म ही होती थी। अनेक प्रकार के बाजे आदि तो आज तक वाद्य यत्र कहलाते हैं। परन्तु आज कल इसका अथ बहुत कुछ बदल भी गया है और बहुत अधिक विस्तृत भी हो गया है। आज कल यत्र मुख्यत लोहे आदि स बनी हुई किसी ऐसी बड़ी रचना को कहते हैं जिसम छोटे बड़े कई प्रकार के चक्कर या पहिए हों, और इसी प्रकार के अनेक और पुर्जे भी लगे हों। इन यन्त्रों की सहायता स बहुत स कठिन काम सहज म और

बहुत थोडे समय मे हो जाते हैं, अथवा एक ही तरह की बहुत सी चीजे बहुत अधिक मात्रा या संख्या मे अपेक्षाकृत थोडे समय मे बनकर तैयार हो जाती हैं; जैसे—कपडे बुनने का यन्त्र, रस निकालने के लिए गन्ना पेरने का यन्त्र, पुस्तकें और समाचार-पत्र छापने का यत्र आदि आदि। हिन्दी मे इसे 'कल' तो कहते ही है; जैसे—तेल पेरने की कल, लकड़ी चीरने की कल आदि; पर कुछ अवसरो पर इसके लिए अँगरेजी का 'मशीन' शब्द भी चलता है। ऊपर यत्र का जो दूसरा अर्थ बताया गया है, उसके अनुसार और अ० के अनुकरण पर हमारे यहाँ प्रशासकीय यत्र, शासन-यंत्र सरीखे पदो का भी प्रयोग होने लगा है।

'उपकरण' स० के 'करण' मे उप (उपसर्ग) लगने से बना है। 'करण' के कई अर्थों मे एक अर्थ वह माध्यम या साधन भी है जिनके द्वारा कोई काम पूरा किया जाता हो। इसी आधार पर उपकरण मुख्यत: ऐसी चीजो को कहते हैं जो कोई वस्तु बनाने मे मुख्य रूप से तो नही फिर भी गौण रूप से आवश्यक तथा उपयोगी होती हो। परन्तु प्रस्तुत प्रसग में उपकरण कुछ विशिष्ट प्रकार की छोटी कलो या यत्रो का सूचक है; जैसे—पाटा, हल आदि खेती के और आरी, बसुला आदि बढइयो के उपकरण हैं।

'औजार' (अ०) मुख्यत. लकड़ी, लोहे आदि की बनी हुई हर ऐसी चीज को कहते हैं जिससे कोई कारीगर अपना काम करते समय सहायक रूप में काम मे लाता है। यो औजार और उपकरण मे कोई विशेष अन्तर नही है फिर भी आज-कल प्रयोग की दृष्टि से दोनो के अर्थो मे कुछ अन्तर हो गया है। औजार मुख्यत: किसी ऐसी एक चीज को कहते हैं जिसके अंग भी बहुत थोडे हो और जिसमे यांत्रिक जटिलता का भी अभाव हो, जैसे—करनी, फावडा, हथौडा आदि। परन्तु उपकरण एक तो उन सभी औजारो का सामूहिक नाम हैं जो किसी एक पेशेवाले के काम मे आते है, और दूसरे उपकरण कई प्रकार के औजारो को एक साथ मिलाकर छोटे यत्र के रूप मे तैयार किये हुए ढाँचे या रचना को भी कहते है। इसके सिवा औजार तो छोटा ही होता और एक ही काम करता है, परन्तु उपकरण कुछ बडे भी होते है और कई प्रकार के काम एक साथ भी करते है। इनके सिवा उपकरणो मे कई प्रकार के छोटे-बड़े अंग और उपाग भी होते है और उनके परिचालन के लिए कुछ कुछ विशिष्ट प्रकार के प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है। जल, विद्युत् आदि के प्रवाह के मापक तथा इसी प्रकार के और काम करने वाले छोटे-छोटे यंत्रों की गणना उपकरणो मे ही होती है, औजारो मे नही।

'सयंत्र' सं० यत्र मे सं० उपसर्ग लगाकर इधर हाल में बनाया हुआ नया शब्द है। आज कल खाद, बिजली, लोहे आदि के जो बहुत बड़े-बड़े कारखाने बनने लगे है उनमे अनेक प्रकार के बहुत से ऐसे छोटे और बड़े यत्रों की आवश्यकता होती है जो कई तरह के काम करते है। ऐसे जो बहुत से यत्र एक साथ और एक स्थान पर लगाये जाते है उन्ही का सामूहिक नाम सयत्र है। यत्रों के सिवा जिस भूमि पर और जिस भवन या जिन भवनो मे ये सब यत्र लगे होते है उनका अन्तर्भाव भी सयत्र मे ही होता है। 'सयत्र' और 'प्रतिष्ठान' का अतर जानने के लिए दे० 'सस्था सस्थान, प्रतिष्ठान और निगम' मे अतगत 'प्रतिष्ठान'।

× ×

यत्रणा—स्त्री० [सं०] दे० 'पीड़ा यत्रणा और यातना'।

यकीन—पु० [अ०] दे० 'विश्वास प्रतीति, प्रत्यय और भरोसा'।

यथार्थ और वास्तविक

Actual Real

ये दोनो विशेषण इस बात के सूचक है कि जो बात कही या बतलाई गई है अथवा जो विषय हमारे सामने उपस्थित या प्रस्तुत है, वह सचमुच किसी आधार या तथ्य पर आश्रित है। परन्तु इन दोनो के अर्थों या आशयों मे जो अतर है वह इनके व्युत्पत्तिक स्वरूप से ही प्रकट हो सकता है। यथार्थ तो यथा और अर्थ के योग से बना है, परन्तु वास्तविक का मूल वस्तु मे है। अर्थ साधारणत मतलब या माने का तो वाचक है ही, परन्तु उसके साथ अभिप्राय, आशय, उद्देश्य आदि के भाव भी निहित है। यथार्थ का शब्दार्थ है—जैसा या जो अर्थ हो ठीक उसके अनुरूप। इसी दृष्टि से इसमें किसी प्रकार की कल्पना, भावना, भावुकता, सन्देह आदि के लिए कोई अवकाश नही रहता। हम कहते है—यथार्थ बात तो यह है कि आपको इस झगड़े में नही पड़ना चाहिए। ऐसे अवसरों पर यथार्थ की जगह वास्तविक का प्रयोग ठीक नही होगा। 'यथार्थ बात' पद इस बात का सूचक है कि हम बात के शुद्ध और सच्चे रूप पर जोर देते है। 'यथार्थ दृष्टि', 'यथार्थ वीरता' आदि पद भी इसी बात के सूचक है।

अब कुछ और उदाहरण लीजिए। हम कहते हैं शेर का वास्तविक भोजन जगली पशुओं का मास ही है। यहाँ 'वास्तविक' की जगह 'यथार्थ' का प्रयोग इसलिए नहीं हो सकता कि शेर मूलत स्तनपाई जतु है। फिर हम कहते हैं—

हत्या की घटना तो वास्तविक है, परन्तु उसका जो विवरण न्यायालय मे उपस्थित किया गया है, वह यथार्थ नही है। आशय यही होता है कि हत्या तो सचमुच हुई परन्तु न्यायालय मे उसका विवरण कुछ घटा-बढाकर या तोड़-मरोड़कर उपस्थित किया गया है। यहाँ भी यथार्थ की जगह 'वास्तविक' या 'वास्तविक' की जगह 'यथार्थ' का प्रयोग नही हो सकता। फिर हम कहते हैं—(क) अब तो अपने मित्र का वास्तविक स्वरूप अच्छी तरह समझ गए होगे और (ख) हमारे यहाँ के प्राचीन ऋषि-मुनियो ने आत्मा का यथार्थ स्वरूप अच्छी तरह समझ लिया था। इन दोनो उदाहरणो मे भी 'वास्तविक' के स्थान पर 'यथार्थ' का, और 'यथार्थ' के स्थान पर 'वास्तविक' का प्रयोग ठीक नही जान पडता। अधिक ध्यानपूर्वक देखने से ऐसा जान पड़ता है कि 'यथार्थ' तो मूलतः व्यक्ति-निष्ठ (Subjective) है; और 'वास्तविक' वस्तु-निष्ठ (Objective) है। इसके सिवा यह भी पता चलता है कि 'यथार्थ' का सम्बन्ध तो बहुत-कुछ 'अमूर्त' से और 'वास्तविक' का सम्बन्ध बहुत कुछ 'मूर्त' से है। आशय के विचार से 'यथार्थ' जिस गहराई तक पहुँचता है, उस गहराई तक 'वास्तविक' की पहुँच नही दिखाई देती।

एक और उदाहरण लीजिए। हम कहते हैं—अब हमें ऐसी ही योजनाओ को कार्यान्वित करना चाहिए जो यथार्थ मे देश के लिए लाभदायक या हितकर हो। यहाँ 'यथार्थ मे' की जगह यदि 'वास्तव मे' का प्रयोग किया जाय तो वह बहुत-कुछ हल्का ही प्रतीत होगा। इस सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि 'वास्तविक' का सम्बन्ध तो ऐसी घटनाओं, स्थितियो आदि से है जो घटित होकर या और किसी प्रकार हमारे सामने आई हो, और जिनका ज्ञान हमे मोटे तौर पर अथवा स्थूल दृष्टि से होता है। परन्तु यथार्थ का सम्बन्ध ऐसे तथ्यों से है जो हमे गहन तथा सूक्ष्म विचार करने पर ही दिखाई देते हैं। अर्थात् 'वास्तविक' तो ऊपरी स्तर का शब्द है और 'यथार्थ' भीतरी स्तर का। यथार्थ का आधार सदा तात्त्विक, दार्शनिक या सैद्धातिक होता है, पर वास्तविक केवल घटना, अस्तित्व या ऐसी ही और किसी बात पर आश्रित होता है। × ×

यथार्थवाद—पुं० [सं०] दे० 'आदर्शवाद और यथार्थवाद'।

यथेष्ट—वि० [सं०] दे० 'पर्याप्त और यथेष्ट'।

यश—पुं० [स०] दे० 'कीर्ति, यश और श्रेय'।

याचना—पु० [स०] दे० 'विनति, प्रार्थना, याचना, निवेदन, आवेदन, अभिवेदन और प्रतिवेदन'।

याचिका—पु० [स०] दे० 'विनति, प्रार्थना याचना, निवेदन, आवेदन, अभिवेदन और प्रतिवेदन'।

यातना—स्त्री० [स०] दे० 'पीडा यत्रणा और यातना'।

यातायात—पु० [स०] दे० 'परिवहन, यातायात सचार दूर सचार और भू सचार'।

युक्ति सगत—वि० [स०] दे० 'तर्क सगत और युक्तिसगत'।

युग—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

युद्ध-विराम और विराम-सधि

1 Armistice, 2 Ceasefire — Truce

ये दोनो पद आपस म होनेवाली लड़ाई या वैर विरोध कुछ समय तक रोक देने या स्थगित करने के वाचक हैं। युद्ध विराम का प्रयोग राजकीय क्षेत्र मे आपस मे युद्ध करनेवाला के सबध म होता है। कुछ अवसरो पर किसी विशेष कारण वश दोनो पक्ष आपस मे बातचीत करके यह निश्चय कर लेते हैं कि अभी कुछ समय के लिए लडाई रोक देंगे और हथियार रख देंगे। ऐसा या तो त्यौहार अथवा पर्व मनाने के लिए होता है या सधि की बात चीत चलाने के लिए। इसका यह अर्थ नही होता कि युद्ध सदा के लिए समाप्त हो गया। इसकी जो अवधि पहले से निश्चित होती है उसके समाप्त हो जाने पर भी लडाई छिड सकती है और जो शर्तें पहले से निश्चित हुई थी, उनका पालन न होने पर भी युद्ध फिर से आरम्भ हो सकता है। हाँ, यदि इस बीच मे दोनो पक्षो म पक्की सधि हो जाय तो युद्ध अवश्य समाप्त हो जाता है। हमारे यहाँ महाभारत काल मे यह स्थिति सूचित करने के लिए 'अवहार' का प्रयोग होता था।

विराम-सधि' का क्षेत्र अपेक्षया अधिक विस्तृत और व्यापक होता है। इसमे युद्ध विराम का अन्तर्भाव तो होता ही है साथ ही इसका प्रयोग औद्योगिक राजनीतिक, सामाजिक आदि झगडे बखेडे के सम्बन्ध म भी होता है। 'विराम-सधि प्राय इस आशा से की जाती है कि दोनो पक्षो म निपटारे का कोई रास्ता निकल सकता है, और ऐसा रास्ता निकालने के लिए प्रयास भी किया जाता है।

× ×

योजना परियोजना प्रायोजना और संयोजना
Plan Scheme Project Measure

इस वर्ग के शब्द ऐसी कार्य-प्रणाली, रूप-रेखा आदि के सूचक है जो हम कोई उद्दिष्ट कार्य आरम्भ करने से पहले सोच-समझकर स्थिर करते हैं। इनमे से योजना तो हमारे यहाँ का प्राचीन शब्द है; पर शेष दोनो शब्द कुछ विशिष्ट अर्थ और प्रकार सूचित करने के लिए बना लिए गए हैं।

'योजना' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—मेल या योग। पर आगे चलकर इसमे बनावट या रचना, प्रबन्ध या व्यवस्था आदि कुछ और अर्थ भी लग गए हैं। परन्तु योजना का मुख्य अर्थ है—कोई बडा काम करने या बड़ी चीज बनाने से पहले उसके सभी अंगो और उपांगो का अच्छी तरह विचार करके उसकी ऐसी रूप-रेखा प्रस्तुत करना जिससे उसका सारा चित्र या दृश्य हमारे सामने स्पष्ट हो जाए। इसके अमूर्त और मूर्त दोनो रूप होते हैं। हम मन ही मन यह भी स्थिर कर लेते हैं कि हम इस यात्रा मे अमुक रास्ते से किन-किन जगहो मे जाएँगे, हर जगह कितने दिन बितावेंगे, क्या-क्या करेंगे और क्या-क्या देखेगे। पर कुछ अवस्थाओ मे हमे अपने ऐसे निश्चयो और विचारो को अधिक स्पष्ट करने के लिए कागजो आदि पर अकित भी करना पड़ता है। कोई नया नगर बसाने, नया मकान बनवाने, नए यत्रो आदि से युक्त कोई कल-कारखाना बनाने से पहले उसका जो चित्र बनाया जाता है वह भी इसी के अतर्गत आता है। आज-कल के अर्थ-प्रधान युग मे दिन पर दिन बढ़ती हुई प्रतियोगिताओ और सघर्षो को देखते हुए राष्ट्रो को अपनी उन्नति और सुरक्षा के लिए अनेक प्रकार की योजनाएँ बनानी पडती हैं। उन्हे सोचना पड़ता है कि कृषि की उन्नति किस प्रकार की जाय। अकालो, बाढो, महामारियो आदि से जनता की रक्षा कैसे की जाए। उद्योग-व्यापार बढाकर देश को किस प्रकार अग्रसर और सम्पन्न किया जाय, किन-किन शत्रुओ से अपनी रक्षा करने के लिए कौन-कौन से साधन प्रस्तुत किए जाएँ, जनता में विज्ञान और शिक्षा के प्रचार के लिए क्या-क्या उपाय किए जाएं; आदि-आदि। सारांश यह कि अपनी सभी आवश्यकताओ की पूर्ति और उद्देश्यो की सिद्धि के लिए सुनियोजित और सुव्यवस्थित रूप से सोच समझकर जितनी बातें स्थिर की जाती हैं और उनके लिए जो कार्यक्रम बनाए जाते हैं, उन सबका अन्तर्भाव इसी योजना मे होता है।

परियोजना' स्त्री० [स०] किसी बडी योजना के विशिष्ट अग या विभाग का सूचक शब्द है। योजना म तो सभी तरह के कार्यों और बातों का समावेश होता है, परन्तु परियोजना उनम से किसी एक काम या बात को कहते हैं। योजना बनती है कि अमुक स्थान पर कोई बडा बाँध बँधेगा, और उससे कई दिशाओं म नहरें निकाली जायगी, अमुक नहर से अमुक क्षेत्र म सिंचाई की व्यवस्था होगी, अमुक नहर से अमुक क्षेत्र म बिजली पदा करनेवाले इतने कारखाने बनाए जाएंगे और अमुक नहर का पानी उपर के कारखाना और उनमे काम करनेवाले लोगों के उपयोग म आएगा। इस प्रकार एक ही योजना म अनेक परियोजनाएँ होती और हो सकती हैं।

'प्रायोजना' स्त्री० [स०] इसी परियोजना की प्रत्येक स्वतत्र इकाई सूचित करने के लिए बनाया हुआ शब्द है। योजना और परियोजना के आधार बहुत कुछ काल्पनिक या मानसिक भी हो सकते हैं, परन्तु प्रायोजना मुख्यतः प्रत्यक्ष काय-क्षेत्र से सबद्ध होती है। इसी लिए इसम अध्यवसाय, प्रयास, साधन आदि का विशिष्ट विचार भी अतर्भुक्त होता है। हम कहते हैं—नहर का गदा पानी या मल मूत्र निकालने की एक नई प्रायोजना का काम आरम्भ हो चुका है अथवा अमुक स्थान पर दुग्धशाला और रासायनिक खाद तयार करने वाली प्रायोजनाएँ पूरी हो चली हैं। ऐसे सभी अवसरों पर इससे कोई स्वतत्र इकाई सूचित होती है।

परियोजना और प्रायोजना का न तो अभी तक लोगों की दृष्टि मे ठीक अतर ही आया है और न स्पष्ट रूप ही। इसी लिए इन दोनों शब्दों का काम भी लोग प्राय 'योजना' से ही चला लेते हैं।

'सयोजना' स्त्री० [स०] सयोजन का स्त्री० रूप है। सयोजन का आरम्भिक अथ है—दो या कई चीजों को आपस म जोडना, मिलाना या सयुक्त करना। इसके कई परवर्ती अर्थों मे एक अथ किसी काय का आयोजन, उपक्रम, प्रबन्ध या व्यवस्था करना भी है। इसी आधार पर आज कल इसका प्रयोग अ० के (Measure) का मुख्य भाव सूचित करने के लिए होने लगा है। हम कोई काय आरम्भ करके अन्त तक पहुँचाना या पूरा करना चाहते हैं, और उसके लिए कुछ क्रम या नीति निर्धारित करते हैं। इसके लिए हम जो उपाय या साधन सोचते हैं, उसी के किसी विशिष्ट अग या अश से सम्बन्ध रखनेवाला सारा आयोजन, कायक्रम और रूपरेखा पारिभाषिक क्षेत्र मे सयोजन कहलाती है। मान लीजिए कि कहीं भीषण अकाल पडा है वहाँ लोगों को न तो खाने के लिए अन्न मिलता है न पीने के लिए पानी, न पशुओं के लिए

चारा। ये तीनो काम पूरा करने के लिए राज्य को अलग-अलग प्रकार के कार्यक्रम और अलग-अलग प्रकार की व्यवस्थाएँ करनी पडती हैं। ऐसे प्रत्येक कार्यक्रम और व्यवस्था की गिनती अलग-अलग संयोजना मे होती है। कहा जा सकता है कि इनमे से अमुक सयोजना ठीक तरह से चलाने की सारी व्यवस्था हो चुकी है; या अमुक संयोजना ठीक तरह से कार्यान्वित होने लगी है। इस शब्द का यह आशय व्यक्त करने के लिए हिन्दी मे बहुत दिनो से कारंवाई (फा०) का प्रयोग होता आया है। यदि इस काम के लिए किसी आदेश या विधान की आवश्यकता होती है तो वह आदेश या विधान भी संयोजना कहलाता है। इसके कई प्रकार या रूप हो सकते हैं। कहा जा सकता है—हमें अमुक उद्देश्य की सिद्धि के लिए कई प्रकार की संयोजनाएँ ग्रहण करनी पडेंगी, जिनमे से कुछ राजनीतिक होगी, कुछ विधिक होगी और कुछ सामयिक। × ×

रंगमच—पु० [स०] दे० 'मच, मचशील, रग-मंच और वाग्पीठ'।

रंज—पु० [फा०] दे० 'दु:ख, खेद, विपाद और शोक'।

रक्षा आरक्षा परिरक्षा प्रतिरक्षा

रक्षा	आरक्षा	परिरक्षा	प्रतिरक्षा
1. Guarding 2. Safe-guarding	1. Preservation 2 Conservation	Protection	Defence

संरक्षा और सुरक्षा

संरक्षा	सुरक्षा
Patronage	1. Safety, 2 Security

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओं के वाचक हैं जो किसी वस्तु या व्यक्ति को बाहरी आक्रमणो, हानियो आदि से बचाकर ठीक अवस्था मे रखने के लिए की जाती हैं।

'रक्षा' स्त्री० [सं०] का मुख्य अर्थ है देख-भाल आदि करते हुए इस बात का पूरा ध्यान रखना कि किसी प्रकार की क्षति, नाश या हानि न होने पावे। यह मुख्यतः चौकस रहकर रखवाली करते रहना ही है। बच्चो के अभिभावक, शिक्षक आदि आपत्तियो से भी और उन्माद मे जाने से भी उनकी रक्षा करते हैं, सीमा के रक्षक इस बात का ध्यान रखते हैं कि शत्रु सेना का कोई आदमी इस ओर आकर कोई उपद्रव न करे, राष्ट्रपति या बडे-बडे शासको के अंगों या शरीर की रक्षा करने के लिए उनके साथ अंग-रक्षक (Body

guard) रहते हैं। अर्थ की दृष्टि से यह इतना व्यापक है कि इसमें इस वर्ग के प्राय सभी शब्दों का अन्तर्भाव होता है। कुछ लोग इसके स्थान पर हिफाजत (स्त्री० अ०) का भी प्रयोग करते हैं। आज कल इसका प्रयोग कुछ नए क्षेत्रों में और नए अर्थों में भी होने लगा है, जैसे—(क) आपको अपनी प्रतिज्ञा (या वचन) की रक्षा करनी चाहिए अर्थात् उसका पालन करना चाहिए या उसके अनुसार कार्य करना चाहिए, और (ख) मैं इस समय आपके अनुरोध (या आग्रह) की रक्षा करने में असमर्थ हूँ अर्थात् अभी मैं उसका पालन नहीं कर सकूँगा या उसके अनुसार काम न कर सकूँगा।

'आरक्षा' स्त्री० [स०] का मुख्य अर्थ है—अच्छी या पूरी तरह से और हर प्रकार से की जानेवाली रक्षा। इसमें मुख्य भाव किसी चीज को इस प्रकार बचाकर रखना है कि उसमें कोई दोष या विकार उत्पन्न न होने पावे और जहाँ तक हो सके वह ज्यों की त्यों बनी रहे और काम देती रहे। अनेक फल और वनस्पतियाँ कुछ विशिष्ट रासायनिक ढंगों से इस प्रकार आ-रक्षित (Preserved) रखी जाती हैं कि उनके गुण, स्वाद आदि महीनों और वरसों तक प्राय ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। वनों आदि में जो आरक्षक (Conservater) नियुक्त होते हैं उन्हें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि बाहरी आदमी या जानवर आकर वृक्षों को नष्ट भ्रष्ट न करें।

'परिरक्षा' स्त्री० [स०] का आरम्भिक अर्थ भी बहुत कुछ वही है जो ऊपर 'आरक्षा' में बतलाया गया है। भारत सरकार ने (Preservation) के लिए परिरक्षण (या परिरक्षा) रखा है परन्तु यह तो हमारी दृष्टि में Protection के लिए अधिक उपयुक्त है। मानियर विलियम्स ने परिरक्षा के कई अर्थों में एक अर्थ Protect (by rule or Govern) भी दिया है, और इसी आधार पर हमने भी इसे Protection का समार्थक माना है। परिरक्षा में मुख्य भाव बाहरी संकटों आदि से बचाकर रखने का है। कुछ दिन पहले तक ब्रिटिश साम्राज्य में कई ऐसे छोटे मोटे देश या राज्य थे जो Protectorate कहलाते थे, और जिन्हें हम परिरक्षित राज्य कह सकते हैं। ऐसे राज्य आर्थिक, सामाजिक आदि दृष्टियों से बहुत कुछ असमर्थ तथा दुर्बल होते थे, और इसी लिए प्रबल ब्रिटिश साम्राज्य उनकी परिरक्षा करता था—और बाहरी आक्रमणों और शत्रुओं से उन्हें बचाये रखता था।

'प्रतिरक्षा' स्त्री० [स०] बहुत ही प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द है। विरोधियों और शत्रुओं के सभी प्रकार के आक्रमणों और आघातों से अपनी रक्षा

करना ही वस्तुत: प्रतिरक्षा है। इस दृष्टि से अपने बचाव के लिए जितने कार्य अथवा व्यवहार किए जाते हैं उनका तो इसमे अन्तर्भाव होता ही है। इसके सिवा लड-भिड़कर सभी प्रकार के समुचित उपाय करना अथवा पूरी शक्ति से सामना करना और अपने ऊपर होनेवाले आक्रमणो का प्रतिकार भी इसी मे आता है। प्राय: सभी राज्यो मे किसी मंत्री के अधिकार मे प्रतिरक्षा विभाग भी होता है जिस पर बाहरी आक्रमणो से देश की रक्षा करने का उत्तरदायित्व तथा भार होता है।

'संरक्षा' स्त्री० [स०] का शब्दार्थ है—अच्छी तरह और ध्यानपूर्वक की जानेवाली रक्षा। भारत सरकार ने इसे Conservation का समार्थक माना है। परन्तु हमारे यहाँ बहुत दिनों से संरक्षण 'या संरक्षा' का प्रयोग Patronage के अर्थ मे होता आया है; और इसी आधार पर संस्थाओ आदि के Patron हमारे यहाँ सरक्षक कहे जाते हैं। इसके सिवा मानियर विलियम्स ने भी सरक्षक को Guardian कहा है, जिसका समार्थक हमारे यहाँ अभिभावक प्रचलित है। संरक्षा में मुख्य भाव किसी ऊँची स्थिति मे रहकर दूर से यह देखते रहने का है कि कही कोई खराबी या गड़बड़ी न होने पावे, और यदि हो तो वह यथा-साध्य तुरन्त और सहज मे दूर की जा सके।

'सुरक्षा' स्त्री० [स०] का मुख्य अर्थ अच्छी तरह से की जानेवाली रक्षा ही है। परन्तु हिन्दी में यह मुख्य रूप से दो विवक्षाओ से युक्त हो गया है। एक तो इसमे किसी वस्तु या व्यक्ति का क्षति, जोखिम या हानि से बचे रहकर ज्यों के त्यों बने रहने का भाव प्रधान है; और इस दृष्टि से क्षेम-कुशल की स्थिति को 'सुरक्षा' कहते हैं; जैसे—(क) इन बच्चो को सुरक्षापूर्वक घर पहुँचा दो। (ख) उन्होने अपने सब मूल्यवान् कागज-पत्र बैंक मे रख दिए हैं जहाँ वे सुरक्षापूर्वक पड़े रहेगे। और (ग) अब तो जंगली और पहाड़ी प्रदेशों के निवासियो की सुरक्षा का भी पूरा प्रबन्ध हो गया है (अर्थात् जगली जानवरों, डाकुओ आदि से भी उन्हे बचाने की व्यवस्था हो गई है।) दूसरे सुरक्षा ऐसी रक्षा-व्यवस्था की भी सूचक है जिसमे लोग यह समझकर निश्चिंत रहे कि हमारे सुख और सुभीते मे कोई बाधा नही होने पावेगी और कोई हमारा अपकार अथवा हानि नही कर सकेगा। सीमाओ पर जो सुरक्षा सेनाएँ रखी जाती हैं उनका उद्देश्य यही होता है कि देशवासी बाहरी शत्रुओं की ओर से निर्भय तथा निश्चिंत रहे। राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् भी यथा-साध्य इस बात का ध्यान रखती और प्रबन्ध करती है कि कोई राष्ट्र दूसरे

राष्ट्रों को आतंकित न कर सके अथवा संसार की सुख-शांति में बाधक न हो सके। तात्पर्य यह कि इसमें कुशल-क्षेम के सम्बन्ध में होनेवाली निश्चिंतता का भाव प्रधान है। × ×

रंग—स्त्री० [फा०] दे० 'नस और रंग'।

रचना—स्त्री० [स०] दे० 'उत्पादन, निर्माण, रचना और संरचना'।

रस

रस मूलतः किसी ठोस पदार्थ के अन्दर का वह तरल अंश है जो प्रायः किसी विशिष्ट गुण या स्वाद से युक्त होता है। कुछ अवस्थाओं में तो यह तरल अंश छोटी छोटी बूँदों के रूप में धीरे धीरे आप से आप ही बाहर निकलता रहता है, जैसे—ताड़ के वृक्ष का रस जो बाहर निकलने पर ताड़ी के रूप में प्राप्त होता है अथवा बबूल के अन्दर का रस जो बाहर निकलकर उसके तने पर ही सूखकर जम जाता और बाजार में गोंद के रूप में बिकता है। कुछ अवस्थाओं में यह रस पत्तियों, फलों, फूलों आदि को दबा या निचोड़ कर, कूट पीसकर अथवा उबाल कर या भभके से चुआकर निकाला जाता है, जैसे—गन्ने का रस, अनार, सन्तरे या सेब का रस। औषधों का जो काढ़ा या क्वाथ बनाया जाता है वह भी उनका रस निकालने के लिए ही। इससे और आगे चलकर रस का प्रयोग उन तरल पदार्थों के लिए होता है जो प्राणियों के पेट में खाद्य पदार्थ पहुँचने पर अन्दर की पाचन क्रिया की सहायता से बनते और शरीर के भिन्न भिन्न अंगों का पोषण करते हैं। इसी से और आगे चलकर यह दूध, पानी, पसीने, लासे आदि का भी अर्थ देता है। इससे और अधिक विकसित होकर यह शब्द कुछ ऐसे पदार्थों का भी वाचक हो जाता है जो या तो बिलकुल ठोस या बहुत कुछ ठोस होते हैं, जैसे—शिंगरफ, पारा आदि। फिर वैद्यक में धातुओं को फूँककर जो भस्म तैयार करते हैं उन्हें भी रस कहते हैं, जैसे—रस पर्पटी, रस सिंदूर आदि।

ये तो हुए इसके मूर्त रूप। इससे और आगे बढ़ने पर इसमें कुछ अमूर्त गुणों, विशेषताओं आदि के सूचक अर्थ भी लोक में प्रचलित हो गए हैं। खाने पीने की चीजों में हमें जो स्वाद मिलता, वह होता तो वस्तुतः उनके अन्दर के तरल अंशों के कारण ही है, पर जीभ से हमें उनका जो स्वाद मिलता है वह भी रस ही कहलाता है। इस आधार पर हमारे यहाँ वैद्यक में खाद्य पदार्थों के छः रसों का आविर्भाव हुआ है जो अलग अलग प्रकार के

स्वादो के वाचक हैं। इससे भी और आगे बढने पर यह उस आनन्द और सुख का वाचक बन जाता है जो हमे अच्छी और सुन्दर चीजे देखने या बातें सुनने पर प्राप्त होता है। इसी आधार पर हमारे यहाँ साहित्य मे अद्भुत, करुण, भयानक, रौद्र, वीभत्स, वीर, शात, शृंगार और हास्य इन नौ रसों की कल्पना हुई हैं। कथाओ, काव्यों, नाटकों के देखने-सुनने से हमारे मन मे करुणा, क्रोध, प्रीति, हर्ष आदि की जो अनुभूतियाँ होती हैं, उनका उत्पादक मूल तत्त्व यह रस ही माना गया है। यह ठीक है कि कुछ रस हमारे मन में क्रोध, घृणा के भाव भी उत्पन्न करते है; और ऐसी बातें तात्कालिक दृष्टि से अच्छी या सुन्दर नही कही जा सकती। फिर भी ऐसे दृश्य देखने अथवा वर्णन सुनने के उपरांत हमारे मन मे यह सोचकर एक प्रकार का आनन्द ही हेता है कि जो कुछ हमने देखा या सुना वह इतना वास्तविक जान पड़ता था कि अन्त मे हमे उसकी प्रशसा ही करनी पड़ी। इसी लिए दार्शनिक क्षेत्र में, रस की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि भोग-विषयों के साथ इंद्रियो का संयोग होने पर मन को जो सुख मिलता है वही रस है। इसी आधार पर लोक-व्यवहार मे हम कहते हैं—(क) उन्हे कविता सुनने में बहुत रस मिलता है; और (ख) कोई किसी रस मे मग्न है तो कोई किसी रस मे। फिर इसमें काम-क्रीडा, मन की तरंग, सुख-भोग आदि के और अनेक अर्थ आ लगते है।

कदाचित् रस की इन्ही श्रेष्ठताओ के कारण उपनिषदो में आनंदमय परम ब्रह्म को भी 'रस' कहा गया है। × ×

रहस्य—पु० [स०] 'भेद, रहस्य और समस्या'।

रहस्यवाद—पु० [स०] दे० 'छायावाद और रहस्यवाद'।

राजतंत्र राजनय और राजनीति

Polity Diplomacy Politics

'राजतंत्र' का मूल अर्थ है—राजा या राज्य का शासन। परन्तु अपने परवर्ती और विकसित अर्थ में यह भिन्न-भिन्न जातियों, देशो आदि की ऐसी शासन प्रणालियों का वाचक है जो किसी विशिष्ट प्रकार, व्यवस्था, सविधान आदि के आधार पर स्थापित हों। उदाहरणार्थ अधिनायकतत्र, कुलतंत्र, गण-तत्र, धर्मतत्र, पुरोहित तत्र, लोकतत्र, समाजवादीतंत्र आदि सभी अलग-अलग प्रकार के राजतंत्र हैं।

संस्कृत मे नय और नीति दोनो 'नी' धातु से बने हुए दो अलग अलग शब्द हैं, फिर भी दोनो के मुख्य अर्थ बहुत कुछ एक ही हैं। इनका मूल और व्युत्पत्तिक अर्थ है—किसी को किसी ओर ले चलना या ले जाना, अथवा मार्ग प्रदर्शन करना आदि। परन्तु आगे चलकर इनमे जो प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ विकसित हुआ है वह है—ठीक तरह से और समझ बूझकर आचरण या व्यवहार करना। दोनों मे मूल भाव है—उचित या ठीक रास्ते पर चलने-चलाने का। राजनीति तो हमारे यहा का बहुत पुराना शब्द है ही। यह उन नियमो, पद्धतियो, विधानो आदि का वाचक है जिनके अनुसार कोई राजा या राज्य अपने देश का शासन कार्य चलाता है। अंगरेजी मे इसका पर्याय पॉलिटिक्स (Politics) है। राजनय भी हमारे यहाँ प्रायः राजनीति के अर्थ मे ही प्रचलित था और दोनो मे कोई विशेष आर्थी अन्तर नही माना जाता था। परन्तु आज कल अंगरेजी के डिप्लोमेसी (Diplomacy) का एक नया दृष्टिकोण और नया भाव भी हमारे सामने आ गया है। इस आधार पर राजनीति मे तो ऊपर बतलाया हुआ पुराना अर्थ रहने दिया गया है, परन्तु राजनय मे एक नया अर्थ या भाव सम्मिलित कर दिया गया है। अब राजनय उन विचारो और सिद्धान्तो का वाचक हो गया है जिनके आधार पर कोई राज्य या राष्ट्र दूसरे राज्यो या राष्ट्रो के साथ अपने राजनीतिक व्यापारिक, व्यावहारिक आदि सम्बन्ध स्थिर करता, और उनके साथ मेल-जोल या समझौते करता है। सारांश यह कि राजनीति तो अपने देश मे शासन से सम्बद्ध है, और राजनय राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धो का वाचक हो गया है। प्राचीन काल में हमारे यहाँ राज्यों के पारस्परिक व्यवहार में जिस नीति का प्रयोग होता था उसे 'कूट नीति' कहते थे। इसमे का कूट शब्द बहुत कुछ छल-कपट, दाँव-पेंच आदि की छाया से युक्त है। परन्तु राज्यों के पारस्परिक व्यवहार और सम्बन्ध भले ही अन्दर से चाहे जैसे हो, परन्तु ऊपर से दिखाने के लिए उनका स्वरूप विशुद्ध और सद्भावपूर्ण ही रखा जाता है। इसी दृष्टि से इस प्रसग मे कूट नीति का प्रयोग त्याज्य समझा गया है और उसका स्थान राज-नय को मिल गया है। × ×

राजनीति—स्त्री० [स०] दे० 'राजतंत्र, राजनय और राजनीति'।

राज्य-मंत्री—पु० [स०] दे० 'मंत्रि मंडल और मंत्रि-परिषद्'।

राज्य सभा—स्त्री० [स०] दे० 'विधायिका और सदन'।

राहार—पु० दे० 'रहार'।

राष्ट्रकुल—पु० [स०] दे० 'संघ, परिसंघ और राष्ट्र मंडल'।

राष्ट्र-मंडल—पु० [स०] दे० 'संघ, परिसंघ और राष्ट्र मंडल'।

रिपुता—स्त्री० [सं०] दे० 'वैमनस्य, द्वेष, शत्रुता, वैर और रिपुता'।

रिश्ता—पु० [फा० रिश्त:]=सम्बन्ध; दे० 'सपर्क और सम्बन्ध'।

रिश्तेदारी—स्त्री० [फा० रिश्त दार]=सम्बन्ध; दे० 'सम्पर्क और सम्बन्ध'।

रीति प्रथा और रूढ़ि

Manner, Mode Custom Traditional usage

इस वर्ग के शब्द मुख्यत: आचरण, उपयोग, प्रयोग, व्यवहार आदि के ऐसे नियमित और निश्चित प्रकारो या रूपो के वाचक हैं जिनका प्रचलन लोक या समाज मे वहुत दिनो से होता आ रहा है।

'रीति' स्त्री० [सं०] का आरम्भिक अर्थ है—गमन, चलना या जाना। इसी गतिवाले अर्थ के आधार पर आगे चलकर यह पानी की धारा या वहाव का भी वाचक हो गया था और आगे वढने पर इसका अर्थ मार्ग या रास्ता भी हो गया था। आज-कल यह शब्द जिन मुख्य अर्थों मे प्रचलित है, उनमे मूल तत्व किसी कार्य या व्यवहार मे आगे वढ़ने का तो है ही; पर आगे वढ़ने के ढंग, प्रकार, रूप आदि से सम्बन्ध रखनेवाली कई विवक्षाएँ भी इसमे लग गई हैं। यह शब्द काम करने के ढग या प्रकार का सूचक तो है ही; पर वह ढग या प्रकार नियमित, परम्परागत और समाज मे प्राय: मान्य भी होता है। इसमे भावात्मक आधार पर नियमित और निश्चित नियमों और परम्पराओं का निष्ठापूर्वक अनुसरण तथा पालन होता है; जैसे—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्रान जाहि पर वचन न जाई॥

धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों मे ऐसी वहुत सी रीतियाँ देखने मे आती हैं जिनका लोग विना कोई आपत्ति या प्रश्न किए पालन करते चलते हैं। प्राचीन भारत मे वोलने, लिखने आदि की कुछ ऐसी विशिष्ट शैलियाँ प्रचलित थी, जिनमे ओज, प्रसाद आदि गुण यथेष्ट मात्रा मे होते थे; और इसी लिए वे शैलियाँ अनुकरणीय, आदर्श अथवा मान्य समझी जाती थी। ऐसी शैलियाँ गौडी, पाचाली, मागधी, लाटी आदि कहलाती थी; और ऐसी प्रत्येक शैली एक स्वतत्र रीति कहलाती थी। इससे और आगे वढने पर मध्य युग मे हिन्दी काव्य-रचना भी एक विशिष्ट प्रणाली वन गई थी। यह प्रणाली आचार्यों द्वारा निरूपित शास्त्रीय नियमो, लक्षणो, सिद्धांतो आदि पर आश्रित

थी और इसमें अलंकार, ध्वनि, नियम, रस आदि के नियमों और सिद्धांतों का पूरा-पूरा ध्यान रखा और पालन किया जाता था। इस प्रकार जिन काव्यों की रचना होती थी, उन्हें आज भी हम रीति-काव्य कहते हैं, और जिस काल म ऐसे काव्य रचे जाते थे, वह आज भी रीति काल कहलाता है।

'प्रथा' स्त्री० [सं०] का पहला अर्थ ख्याति या प्रसिद्धि है, और परवर्ती अर्थ नियम, पार्थक्य आदि हैं। किसी विशिष्ट जाति, देश, समाज आदि में कुछ ऐसी विशिष्ट परिपाटियाँ या रीतियाँ होती हैं जिनका प्रचलन प्राय उन्हीं के क्षेत्र तक सीमित रहता है। प्रथा प्राय परम्परागत होती है, और उसका उल्लंघन अनुचित तथा निन्दनीय माना जाता है, जैसे—(क) ईसाइयों और मुसलमानों में मृत शरीर गाड़ने की प्रथा है और हिन्दुओं म जलाने की, (ख) प्राय सभी जातियों और समाजों में कन्या के विवाह के समय दहेज देने की प्रथा है, पर कुछ ऐसी जातियाँ भी हैं जिनमे वर पक्ष के लोग कन्या के पिता को कुछ धन देकर उनकी कन्या लेते हैं। कुछ अवस्थाओं मे पुरानी प्रथाएँ नष्ट या समाप्त भी हो जाती हैं, और उनका स्थान नई प्रथाएँ लेती हैं। आज-कल मुसलमान और हिन्दू स्त्रियों में पर्दे की और बाल विवाह की प्रथाएँ उठती जा रही हैं, और उनका स्थान कुछ नई प्रथाएँ ले रही हैं।

'रूढ़ि स्त्री० [स०] के पुराने अर्थ हैं—उगना या उत्पन्न होना चढ़ाई या चढ़ाव, बढ़ना या विकसित होना आदि। परन्तु अब य सब अर्थ बिलकुल छूट गए हैं। प्रस्तुत प्रसग मे हम रूढ़ि को परिपाटी प्रथा या रीति का एक विशिष्ट प्रकार या रूप ही कह सकते हैं। इसकी दो मुख्य विशेषताएं हैं एक तो यह कि इसका आरम्भ ऐसे पूर्वकाल से माना जाता है जिसका इतिहास आदि मे कुछ भी पता न चलता हो और दूसरे इसके मूल म या तो कोई नियम, विधान या सिद्धात होता ही नही, और यदि हो भी तो उसकी किसी को जानकारी नही होती। इसकी मान्यता का एक मात्र आधार यही होता है कि यह बहुत प्राचीन काल से और बहुत कुछ एक रूप म चली आई हुई होती है। भाषा में कुछ ऐसे पुराने प्रयोग और शब्द भी होते हैं जो उक्त रूप में बहुत प्राचीन और परम्परागत होते हैं। ऐसे प्रयोग और शब्द तथा उनके अर्थ आदि लोक म बहुत प्राचीन और परम्परागत माने जाते हैं। इसी आधार पर व्याकरण मे वह तत्व या शब्द शक्ति भी 'रूढ़ि' कहलाती है जिससे उनके प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ या आशय का ज्ञान होता है।

इस कोटि के और शब्दो के विवेचन के लिए दे० 'पद्धति, परिपाटी और प्रणाली'। × ×

रुकना—अ० [हिं०] दे० 'टिकना, ठहरना, थमना और रुकना'।

रुकावट—स्त्री० [हिं० रुकना] दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध, निरोध, प्रतिरोध और विरोध'।

रूढ़ि—स्त्री० [सं०] दे० 'रीति, प्रथा और रूढ़ि'।

रुचि—स्त्री० [सं०] दे० 'वृत्ति, अभिवृत्ति, प्रवृत्ति, मनोवृत्ति और रुचि'।

रुधिर-वाहिका—स्त्री० [सं०]=शिरा; दे० 'धमनी, नाड़ी, शिरा और स्नायु'।

रैडार

Radar *

एक प्रकार का प्रसिद्ध आधुनिक यंत्र जिसका उपयोग आज-कल सैनिक क्षेत्रो मे प्रायः अधिकता से होता है। इसमे एक प्रकार का ऐसा यंत्र रहता है जो सैकड़ो मील की दूरी तक Radioc (रेडियो की) किरण प्रसारित करता है। ये किरणे दूर-दूर तक जाकर चीजो से टकराकर फिर लौट आती हैं; और उन किरणो के विश्लेषण से यह जाना जाता है कि वह दूरी की चीज क्या है, कैसी है और किस गति से किधर आ या जा रही है। इससे सैकड़ो मील की दूरी पर आने-जानेवाले समुद्री या हवाई जहाजो और यहाँ तक कि समुद्र के नीचे चलने वाली पनडुब्बियो तक की गति-विधियो का पूरा पता चल जाता है। यदि शत्रु के समुद्री या हवाई जहाज आक्रमण के लिए आते हुए दिखाई पड़ें तो उनका सामना करने की पूरी तैयारी पहले से ही कर ली जाती है और यदि यह पता चले कि वे अमुक स्थान पर इकट्ठे हुए अथवा ठहरे हैं तो वहाँ पहुँचकर उन पर आक्रमण भी किया जा सकता है। × ×

रोक—स्त्री० [हिं० रोकना]=रुकावट।

रोकथाम—स्त्री० [हिं० रोकना+थामना]=निवारण; दे० 'वारण, निवारण, वर्जन, निषेध और प्रतिषेध'।

रोजगार—पुं० [फा०]=व्यापार; दे० 'व्यापार, व्यवसाय और वाणिज्य'।

रोजा—पुं० [फा० रोज:] दे० 'अनशन, उपवास, लघन और व्रत'।

---

* यह शब्द अंग्रेजी के Radio Detection And Ranging पद मे के शब्दो के आरंभिक अक्षरो के योग से बना है।

रोध	अवरोध	गत्यवरोध
Bar	1 Obstacle 2 Obstruction	Deadlock
प्रतिरोध	और	विरोध
Resistance		Opposition

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओं, चीजों या बातों के वाचक हैं जो किसी होते हुए काम में किसी तरह की अड़चन या बाधा खड़ी करके उसे आगे बढ़ने से रोकते हैं या उसमें प्रगति नहीं होने देते। इस वर्ग का मुख्य शब्द 'रोध' अर्थ की दृष्टि से बहुत व्यापक है, और इसी लिए उसके अनेक अर्थों की मर्यादा या व्यापकता नियत अथवा सीमित करने के लिए कुछ प्रत्यय आदि लगाकर इस वर्ग के अन्यान्य शब्द बनाये गये हैं। 'रोध' का मुख्य अर्थ है—आगे बढ़ते हुए को रोकना। इसी आधार पर रोकने वाली चीज या बात को भी रोध कहते हैं, और चारों ओर से किसी को घेरकर या रोककर रखनेवाला घेरा भी रोध कहलाता है। प्राचीन काल में जलाशयों आदि के किनारे जो बाँध बनाये जाते थे वे भी रोध कहलाते थे। परन्तु आज-कल 'रोध' मुख्य रूप से लगाये हुए ऐसे बन्धन या शर्त का वाचक हो गया है जिसका उद्देश्य किसी प्रकार का नियन्त्रण रखना हो। इस प्रकार का रोध या तो किसी स्थान पर किसी को प्रविष्ट होने से रोकता है या किसी ऊँचे पद या वर्ग में स्थान प्राप्त करने से, जैसे—(क) आज कल अनेक देशों ने संक्रामक रोगों के रोगियों को अपने देश में आने पर (अर्थात् आने से रोकने के लिए) रोध लगा रखा है। (ख) आज-कल कई राजकीय सेवाओं में कर्मचारियों की उन्नति के मार्ग में कई प्रकार के रोध रहते हैं, अर्थात् कुछ नियत समय के उपरान्त उनकी परीक्षाएँ ली जाती हैं और उन परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर ही उनकी पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि होती है।

अवरोध' भी अर्थ के विचार से है तो बहुत कुछ वही जो रोध है, परन्तु यह मुख्य रूप से उस चीज या बात का सूचक है जो बीच में आकर बाधा के रूप में खड़ी हो जाती है और किसी काम या चीज को आगे बढ़ने से रोकती है। अवरोध आकस्मिक रूप से और आप से आप आकर भी मार्ग रोक सकता है और किसी दूसरे के द्वारा जान बूझकर खड़ा किया हुआ भी हो सकता है। रोध तो साधारण और सार्विक शब्द है। परन्तु अवरोध कुछ बातों में इससे और आगे बढ़ा हुआ है। रोध में तो किसी काम या चीज को रोक रखने भर का भाव प्रधान है, परन्तु अवरोध प्रायः आगे बढ़ कर मार्ग ही बन्द कर देता है, और उसे हटाने के लिए कुछ विशेष उपाय या प्रयत्न करना पड़ता है। इसके कारण चलता हुआ काम कुछ समय के लिए और प्रायः पूरी

तरह रुक जाता है। कुछ अवस्थाओ मे रोध केवल जाँच अथवा उसकी गति, स्वरूप आदि ठीक रखने के उद्देश्य से भी हो सकता है; पर अवरोध का उद्देश्य काम को रोक रखना भर होता है; उसमे सुधार आदि करना नही।

गत्यवरोध (स० गति+अवरोध) का सीधा अर्थ है—गति या चाल मे होनेवाली रुकावट। इसे हम गति-रोध भी कह सकते है। यह शब्द इधर हाल मे अंगरेजी के डेडलॉक (Deadlock) का भाव सूचित करने के लिए बनाया गया है, और इसी अर्थ मे प्रयुक्त भी होता है। इसका पहला और मुख्य अर्थ है—बीच मे कठिनाई या बाधा आ पडने के कारण किसी चलते हुए काम या बात का रुक जाना। परन्तु यह मुख्यतः किसी चलती हुई बात-चीत मे उत्पन्न होनेवाली उस विशिष्ट स्थिति का सूचक है जिसमे दोनो पक्ष अपनी अपनी बात पर अड गये हो और निपटारे या समझौते के लिए आगे कोई रास्ता न दिखाई देता हो या ऐसा रास्ता निकालना बहुत ही कठिन हो गया हो। मान लीजिए कि कोई दो विरोधी पक्ष आपस मे निपटारे या समझौते की बात-चीत आरम्भ करते है। इसी बात-चीत मे कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न होती हैं जिसमे कोई एक पक्ष दूसरे पक्ष की बात मानने के लिए तैयार नही होता; और बात-चीत यही आकर रुक जाती है। ऐसी ही स्थिति को गतिरोध या गत्यवरोध कहते है। हिन्दी मे इसके लिए उर्दू का पुराना शब्द जिच (स्त्री० फा० जिच) चलता था परन्तु आज-कल उसका प्रचलन बहुत कम हो गया है।*

'निरोध' का साधारण अर्थ है—चारो ओर से घिरा हुआ, बंद या रुका हुआ होना; जैसे—कारागार मे होनेवाले अपराधी का निरोध। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे और अपने बहु-प्रचलित अर्थ मे 'निरोध' ऐसे स्थिति का सूचक है जिसमे किसी काम या बात को सीमित रखने का भाव भी सम्मिलित है। 'योगश्चित्त-वृत्ति निरोधः' मे निरोध से अभिप्राय है—चित्त की वृत्तियों को इधर-उधर बहकने से रोकना। इसी प्रकार सन्तान निरोध का अर्थ है—ऐसा उपाय

* जिच मुख्यत. शतरज के खेल का पारिभाषिक शब्द है। यह खेल की ऐसी स्थिति का वाचक है जिसमे बादशाह को शह तो न लगी हो, फिर भी उसके चलने के लिए कोई घर न बचा हो। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर यह मान लिया जाता है कि खिलाडियो मे से किसी पक्ष की न जीत हुई और न हार ही। इसमे खेल यही खत्म हो जाता हैं और नई बाजी फिर से शुरू होती है।

या युक्ति करना जिससे संतान उत्पन्न न होने पावे अथवा अधिक संतानें न हों।

'प्रतिरोध' का साधारण अर्थ है—किसी प्रकार का रोध उत्पन्न होने पर उसे दूर करने के लिए किया जानेवाला उपाय या काम। यह किसी रोध के विरुद्ध किया जानेवाला रोध भी हो सकता है। जब विपक्षी या शत्रु बलपूर्वक आगे बढ़ता हुआ हमें दबाने या पीछे हटाने का प्रयत्न करता है तब उसके उस प्रयत्न को विफल करने के लिए और उसे बीच में रोक रखने के लिए हम जो कुछ करते हैं वही हमारा प्रतिरोध कहलाता है। यह प्रतिरोध अपने अधिकारों की रक्षा के लिए भी हो सकता है और किसी अनौचित्य या अन्याय को रोकने के लिए भी। किसी प्रकार के आक्रमण को रोकने के लिए किया जानेवाला काम भी प्रतिरोध ही कहलाता है।

'विरोध' सं० विरुद्ध से बना है जिसका अर्थ है—बाधक होना या रोकना। हिंदी में यह मुख्यतः दो अर्थों में प्रचलित है। जब एक आदमी कोई ऐसा काम करता या ऐसी बात कहता है जो दूसरे पक्ष की दृष्टि में ठीक नहीं होती तब दूसरे पक्ष की ओर से किए जानेवाले आक्षेप या आपत्ति को विरोध कहते हैं। यह अच्छा बुरा, उग्र कोमल (या हलका) सभी प्रकार का होता है। हम किसी बुरी बात का उचित रूप से भी विरोध कर सकते हैं, और केवल दलबंदी, राग, द्वेष आदि के कारण किसी अच्छी बात का अनुचित रूप से भी विरोध कर सकते हैं। कुछ अवस्थाओं में दो चीजों या बातों में मेल न बैठने की दशा को भी विरोध कहते हैं। प्रायः खान पीने के क्षेत्र में कहा जाता है—दूध और मांस में विरोध है। अर्थात् मांस खाने के बाद तुरंत ही दूध नहीं पीना चाहिए क्योंकि दोनों में तात्विक विरोध है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। यह तो विरोध का साधारण रूप है, पर इसका एक दूसरा रूप भी होता है जो बहुत उग्र या तीव्र होता है। जब हमारे अधिकार या सुरक्षा पर कोई आक्रमण होता है तब उसके प्रतिकार के लिए उसका प्रबल विरोध करना पड़ता है। इसके फलस्वरूप दोनों व्यक्तियों या दलों में किसी न किसी रूप में कुछ संघर्ष होता रहता है। इसमें प्रायः दो शक्तियाँ बराबर एक दूसरी से टकराती रहती और विपरीत दिशा में काम करती रहती हैं, जैसे—आज-कल चीन और रूस का पारस्परिक विरोध दिन पर दिन बराबर बढ़ता जा रहा है। × ×

लघन—पु० [सं०] दे० 'अनशन, उपवास, प्रायोपवेशन, लंघन और व्रत'।

लक्ष्य—पुं० [म०] दे० 'उद्देश्य, ध्येय और लक्ष्य'।

लगना—अ० [सं० लग्न] दे० 'जुडना, चिपकना, मिलना, लगना और सटना।

लग-भग	प्रायः और	आस-पास
1. Almost	1. About	Near-about
2. Approximately	2. Nearly	

इस वर्ग के अव्यय किसी विन्दु, सख्या, स्थान आदि के वहुत कुछ निकट या समीप होनेवाली स्थिति के वाचक हैं। परन्तु इनके अर्थों मे ऐसे सूक्ष्म भेद हैं जिनका ठीक और पूरा रूप समझना वहुत कठिन है। फिर भी इनके प्रयोगो के आधार पर जो वाते, मेरी समझ मे आई हैं, उनका उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है।

'लगभग' मे का 'लग' हि० लगना मे का धातु रूप है और 'भग' उसका अनुकरण मात्र। इसका शब्दार्थ होता है—किसी के साथ थोडा वहुत लगता हुआ अथवा किसी के पास तक वहुत कुछ पहुँचता हुआ। प्रस्तुत प्रसग मे प्रायः का अर्थ भी वहुत कुछ इसी से मिलता-जुलता है। हम कहते हैं—(क) मृत्यु के समय उनकी अवस्था प्रायः ६० वर्ष की थी। और (ख) मृत्यु के समय उनकी अवस्था ६० वर्ष के लगभग थी। वाक्य-रचना की दृष्टि से इन दोनो प्रयोगो मे अन्तर यही है कि एक मे 'प्रायः' पहले आया है और दूसरे मे 'लग-भग' वाद मे आया है और उसके पहले 'के' विभक्ति भी लगी है। अर्थ या आशय की दृष्टि से इन दोनों वाक्यों मे यो तो कोई विशेष अन्तर देखने मे नही आता, फिर भी सूक्ष्म विचार करने पर कहा जा सकता है कि 'प्रायः ६० वर्ष' का अर्थ होगा—६० से या तो दो-चार कम या दो-चार अधिक। परन्तु '६० वर्ष के लगभग' का अर्थ होगा, ६० से एक ही दो वर्ष कम या एक ही दो वर्ष अधिक। इस प्रकार प्रायः की तुलना मे 'लगभग' अधिक समीपता का सूचक है।

अव एक और उदाहरण लीजिए। हम कहते हैं—इस सग्रह मे उनकी प्रायः सभी कहानियाँ आ गयी हैं। यदि इस वाक्य में 'प्रायः' की जगह 'लगभग' कर दिया जाय तो भी अर्थ या आशय के विचार से वही सूक्ष्म अन्तर हो जायगा, जो ऊपर पहलेवाले उदाहरण के सम्वन्ध मे वताया है।

अब इनके प्रयोगो के एक दूसरे क्षेत्र म आइए। हम कहते हैं—उनका मकान बनकर लगभग तयार हो चुका है, अथवा उनकी पुस्तक लगभग छप चुकी है। ऐसे अवसरो पर 'लगभग' की जगह 'प्राय' का उपयोग जल्दी नही होता। हम यह भी कहते हैं—इस योजना का तीसरा चरण लगभग पूरा हो चुका है। यहाँ भी लगभग की जगह 'प्राय' का प्रयोग ठीक नही होगा। इन उदाहरणों से यही निष्कष निकलता है कि जहाँ एक इकाई की चर्चा होती है वहाँ तो लगभग का प्रयोग ठीक बठता है और जहाँ अनेक इकाइया की चर्चा होती है, वहाँ प्राय का प्रयोग होता है। यहाँ यह भी ध्यान रहे कि ऊपर '६० वष के लगभग' का जो उदाहरण आया है उसम ६० वष को एक इकाई माना जायगा और 'प्राय ६० वष' म इकाइयाँ ६० मानी जाएँगी।

अब कुछ ऐसे उदाहरण लीजिए जिनसे दोनो के अर्थों का अ तर और अधिक स्पष्ट हो सकता है। हम कहते हैं—उस बस्ती के लगभग सभी मकान पक्के बन गए हैं। आशय यही होगा कि बहुत थोडे से ऐसे मकान रह गए हैं, जो पक्के नही बने हैं। यदि इस वाक्य में 'लगभग' की जगह 'प्राय' कर दिया जाय तो हमारी समझ म 'लगभग' के प्रयोग से आशय यह निकलेगा कि बस्ती मे के ९० या ९५ मकान पक्के हो गए हैं, पर तु 'प्राय' का प्रयोग अपेक्षया कुछ कम मकानो के पक्के होने का भाव सूचित करेगा।

फिर हम यह भी कहते हैं—'यह पिछले सोमवार के लगभग या पिछले महीने की २० ता० के लगभग की बात है। ऐसे अवसरो पर लगभग की जगह 'प्राय' का प्रयोग नही हो सकता। हम यह भी कहते हैं—सध्या को ५ बजे के लगभग यहाँ आना। यहाँ भी 'लगभग' की जगह 'प्राय' नही हो सकता। इन सब उदाहरणो से यही निष्कष निकलता है कि जहाँ विशेष परिशुद्धता या यथाथता का भाव गौण होता है और महत्व कम समझा जाता है वहाँ प्राय का प्रयोग होता है। सीधे सादे शब्दो म हम कह सकते हैं कि 'लगभग' मे बहुत कुछ का भाव प्रधान है और प्राय मे करीब करीब का। हमारे इस कथन की पुष्टि नष्टप्राय और मृतप्राय सरीखे प्रयोगो से हो जाती है, जिनका अथ होता है—पूर्ण विनाश या मृत्यु के बहुत कुछ पास पहुँचा हुआ। इसके अतिरिक्त लगभग का प्रयोग अधिकतर सख्या-सूचक शब्दो के साथ होता है।*

---

* प्राय के अय अर्थों के लिए देखें—'प्राय और बहुधा'।

'आस-पास' में का पास (स० पार्श्व) तो निकट या समीप का वाचक है; और उसके पहलेवाला आस उसका अनुकरण मात्र है। इसका प्रयोग मुख्यतः स्थानों के ही सम्बन्ध में होता है, अवसरों, प्रसंगो, स्थितियो आदि के सम्बन्ध मे या तो होता ही नही; और यदि होता भी है तो ठीक नहीं जान पड़ता। इसका प्राथमिक अर्थ होता है—अगल-बगल, आगे-पीछे, दाहिने-बाएँ आदि अथवा इनमें से दो या तीन ओर; जैसे—नगर के आस-पास रईसों के बहुत से बगीचे हैं। आशय यही होता है कि दो या तीन ओर अथवा चारो ओर बीच-बीच मे; जैसे—शहर के आस-पास बहुत से बगीचे हैं; 'कारखाने के आस-पास मजदूरों के बहुत से मकान और कई छोटे-मोटे बाजार बन गए हैं' का भी यही आशय है। इस दृष्टि से यह कहना ठीक नहीं होगा; जैसे—(क) उनकी अवस्था ६० के आस-पास है। या (ख) उनके यहाँ १० के आस-पास नौकर हैं। ऐसे अवसरो पर अभिप्राय और प्रसग के अनुसार या तो 'प्रायः' का प्रयोग होना चाहिए या 'लग-भग' का। × ×

लगाव और लगावट

Attachment — Connection

ये दोनों शब्द हिन्दी की 'लगना' क्रिया के भाववाचक रूप हैं। इनमे से लगाव पुंलिंग और लगावट स्त्रीलिंग है। आर्थी दृष्टि से इनमें कुछ समानता होने पर भी कुछ विशिष्ट सूक्ष्म अन्तर है।

'लगाव' मुख्यतः किसी के साथ लगे या सटे हुए होने की अवस्था या भाव सूचित करता है। इस दृष्टि से हम इसे संस्कृत 'सम्बन्ध' का समार्थक कह सकते हैं; जैसे—(क) उनके साथ हमारा कोई लगाव नही है; और (ख) इस गली के सभी मकानो का एक दूसरे से लगाव है।

'लगावट' का प्रयोग कभी-कभी 'लगाव' के समान ही होता हुआ दिखाई देता है; परन्तु वह हमारी समझ में कुछ ठीक नही है। हाँ, इसका प्रयोग कुछ विशिष्ट अर्थ या भाव सूचित करने के लिए अवश्य होता है; और ऐसा होना भी चाहिए। इसका प्रयोग एक तो व्यावहारिक क्षेत्र मे और दूसरे शृंङ्गारिक क्षेत्र में विशेष रूप से देखने मे आता है। जब हम किसी विशिष्ट उद्देश्य से किसी के साथ कुछ सम्पर्क या सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं, अथवा उसके साथ आत्मीयता या मेल-जोल बढानेवाला व्यवहार करते हैं तो उसे 'लगावट' कहते है। पर ध्यान रहे कि ऐसे अवसरो पर यह

शब्द वास्तविकता या सद्भावना का उतना अधिक सूचक नहीं होता जितना-स्वार्थ साधन का सूचक होता है। उर्दू का एक प्रसिद्ध शेर है—

> बजाहिर तो लगावट हम से वो हर बार करते हैं
> खुदा जाने मगर दिल से वह किसको प्यार करते हैं।

यों साधारण बोल चाल में भी हम कहते हैं—आज कल उनके साथ तुम्हारी लगावट बहुत बढ़ चली है। आशय यही होता है कि तुम अपना कोई उद्देश्य या स्वार्थ सिद्ध करने के लिए मेल जोल बढ़ा रहे हो। × ×

लगावट—स्त्री० [हिं० लगना] दे० 'लगाव और लगावट'।

लागत—स्त्री० [हिं० लगना] दे० 'पूँजी, लगत और लागत'।

लघिमा—स्त्री० [सं०] दे० 'लघुता, लघुत्व, लाघव और लघिमा'।

लघुता लघुत्व लाघव और लघिमा

1 Smallness
2 Littleness
3 Little mindedness

1 Agility
2 Dexterity
3 Brevity

इस वर्ग के सब शब्द संस्कृत के विशेषण लघु के ऐसे भाववाचक संज्ञा रूप हैं, जो संस्कृत व्याकरण के भिन्न भिन्न नियमों के अनुसार बने हैं। लघु के अनेक अर्थों में से मुख्य अर्थ हैं—छोटा, हलका, हीन, तीव्र या तेज, जल्दी पचनेवाला, संक्षिप्त आदि। इसके सिवा मन, विचार या स्वभाव की सुदृढ़ता और तुच्छता भी इन शब्दों से सूचित होती है। पहले हम यथा स्थान गुरुता, गुरुत्व, गौरव और गरिमा की जो माला दे चुके हैं, उन्हीं के ये सब विपर्याय कहे जा सकते हैं।

'लघुता' और 'लघुत्व' में अर्थ की दृष्टि से कोई विशेष अंतर नहीं है, और दोनों बहुत कुछ समान आशयों या भावों के सूचक हैं। इसी प्रकार *'लघुता' और 'लाघव' के भी अनेक अर्थ समान हैं, परन्तु जिन अर्थों में लाघव* का ही अधिकतर प्रयोग होता है और लघुता या लघुत्व का प्रयोग या तो बहुत कम होता है या बिलकुल नहीं होता, उनका उल्लेख नीचे लाघव के अन्तर्गत ही किया गया है।

'लाघव' पु० [स०] के भी आरम्भिक अर्थ वही हैं, जो ऊपर लघुता और लघुत्व के बतलाए गए हैं। इनके सिवा लाघव का एक और अर्थ होता है—गति की क्षिप्रता, तीव्रता या वेग। कोई काम करते समय शरीर के अगो का जो जल्दी-जल्दी और ठीक तरह से परिचालन या सचालन होता है वह भी इसी के अतर्गत है। अपने मुख्य अर्थ मे लाघव हाथ के ऐसे कौशल का वाचक है जिसमे फुरती भी हो और सफाई भी; यथा—

गुरुहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा।
अति लाघव उठाय धनु लीन्हा॥
—तुलसी

आशय यही है कि रामचन्द्र जी ने वह बहुत बड़ा धनुष इस प्रकार सहज मे उठा लिया कि मानो वह बहुत ही साधारण काम हो।

इसी आधार पर इसमे चालाकीवाला भाव भी सम्मिलित हो गया है। हस्त-लाघव मे हाथ से होनेवाले काम के कौशल और फुर्ती का भाव तो है ही; पर आगे चलकर इसमे चालाकी या धूर्त्तता का भाव भी सम्मिलित हो गया है। जादूगर आदि जो विलक्षण काम बहुत सफाई से कर दिखलाते हैं, वह उनका हस्त-लाघव ही कहलाता है। परन्तु साहित्यिक क्षेत्र मे लाघव विशिष्ट रूप से सक्षिप्तता और हल्केपन के भावो से युक्त है अर्थात् रचना मे अनावश्यक और व्यर्थ के विस्तार से बचने का भाव इसमे प्रधान है। यहाँ हलकेपन से हमारा अभिप्राय है—ऐसा प्रकार या रूप जो देखने-सुनने मे अनावश्यक रूप से बोझिल या भार से लदा हुआ न हो। साहित्यिक क्षेत्र मे जो लाघव सिद्धात प्रसिद्ध है, उसका आशय यही है कि जहाँ तक हो सके, कम से कम शब्दो मे अधिक से अधिक भाव पूरी तरह से और सुन्दरतापूर्वक आ सके।

'लघिमा' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ भी है तो भार की अल्पता या हीनता अथवा हलकापन; परन्तु यह भी उसी प्रकार योग की आठ सिद्धियो मे से एक है, जिस प्रकार 'गरिमा' है। कहते हैं कि यह सिद्धि प्राप्त हो जाने पर मनुष्य मे यह योग्यता या शक्ति आ जाती है कि वह अपना भार जितना चाहे कम कर सकता है और अपने आपको इतना हलका बना सकता है कि जब जिधर चाहे तब हवा मे उड़कर जा सकता है।

इस माला के शब्दो के विपर्यायो के लिए दे० 'गुरुता, गुरुत्व, गौरव, और गरिमा' की माला। × ×

लघुत्व—पु० [सं०] दे० 'लघुता, लघुत्व, लाघव और लघिमा'।
लटकाना—स० [हिं०] दे० 'टाँगना और लटकाना।

लय प्रलय और विलय

लय	प्रलय	विलय
1 Dissolution	1 Deluge	1 Merger
2 Disappearance	2 Ravage	2 Merging
3 Rhythm		

इस वग के शब्द एसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमें कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु म पूरी तरह स घुल मिलकर अथवा और किसी प्रकार या रूप से उसमे सम्मिलित होकर अपना अस्तित्व, रूप या स्थिति बिलकुल गँवा देती है।

लय' पु० [सं०] ली धातु से बना है जिसका अथ है—गल या घुलकर किसी दूसरी वस्तु मे पूरी तरह से मिल जाना, और अपना अस्तित्व, रूप या सत्ता का अत या समाप्ति कर देना। दाशनिक क्षेत्र म 'लय उस स्थिति को कहते हैं जिसमे ससार की सभी चीज समाप्त होकर अव्यक्त प्रकृति के रूप म परिणत हो जाती हैं। आगे चलकर 'लय का प्रयाग एसी अवस्था म भी हाने लगा जब कोई वस्तु अपना स्वतत्र अस्तित्व गँवाकर किसी दूसरी वस्तु मे पूरी तरह से मिलकर उसक साथ एकाकार हा जाती है। इसी से इसका विशेषण रूप 'लीन' बना है और कहा जाता है कि अमुक पदाथ दूसर अमुक पदाथ म लीन हा गया। तत्त्वशास्त्र की दृष्टि से इसके अथ का और अधिक विस्तार करक इसकी व्याख्या कुछ और ही प्रकार से की जाती है। उसम कहा जाता है कि जब काय और आगे बढकर अपने कारण के रूप मे परिणत हो जाता है तब मानो उस कार्य का लय होता है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे चित्त की वृत्तियो को एकाग्र करके किसी एक बात मे लगाना या किसी एक काम मे अपना सारा ध्यान लगाना लय कहलाता है। लौकिक तथा व्यावहारिक क्षेत्रों म इसका प्रयोग लोप, विनाश आदि के अर्थों म भी होता है। इसके सिवा इसम किसी स्थान पर पहुँचकर टिकने ठहरने या स्थित होने का भाव भी सम्मिलित है। इसी आधार पर इससे आलय (जसे—अनाथालय, पुस्तकालय, हिमालय आदि) निलय आदि शब्द भी बनते हैं।

मूलत यह शब्द पु लिंग है और अपने उक्त सभी अर्थों म पु लिंग के रूप म ही प्रयुक्त होता है। परन्तु काव्य और सगीत क क्षेत्र म इसका एक एसा विशिष्ट अथ होता है जा उक्त सभी अर्थों से बिलकुल भिन्न है, और इस अथ

मे इसका प्रयोग स्त्रीलिंग मे होता है। कविता पाठ और गायन-वादन मे 'लय' उस तत्त्व को कहते हैं जो उनमे सागीतिक कोमलता, मधुरता और सु-स्वरता लाता है। इसके लिए शब्दो, पदो आदि के उच्चारण के समय कही अधिक जोर दिया जाता है और कही कम; कही स्वर ऊँचा किया जाता है और कही नीचा। सगीत का सारा सौंदर्य उसकी लयदारी पर ही निर्भर होता है। इस प्रकार के अन्तरो और परिवर्तनो के कुछ विशिष्ट नियम और सिद्धात हैं। काव्य के क्षेत्र मे इन नियमो और सिद्धातो का निरूपण करने के लिए छंदशास्त्र की रचना हुई है और गायन-वादन के क्षेत्र मे सगीतशास्त्र की। इन्ही नियमो और सिद्धातो का पालन करने से कविता और गायन-वादन मे प्रभावकारक और हृदयग्राही तत्त्व उत्पन्न होते हैं। कविता मे यति और विराम इसी लय के नियामक होते हैं और संगीत मे अभीष्ट गति तथा प्रवाह इसी के योग से आता है।

हमारे यहाँ तो लय का यह तत्त्व यही तक परिमित है परन्तु पाश्चात्य सौंदर्य शास्त्र मे इसका और अधिक विस्तार करके चित्र कला, नृत्य कला, मूर्ति कला, और वास्तु कला मे भी इसका आरोप किया गया है। चित्रों, मे जहाँ हमे यह दिखाई देता है कि सभी अग आपेक्षिक दृष्टि से एक दूसरे के अनुकूल और आनुपातिक है अथवा सारी कृति मे वे सब अग यथेष्ट कौशल-पूर्वक अकित करके सब अंग यथास्थान ठीक तरह से भरे गए हैं तब कहा जाता है कि इसमे लय का ठीक तरह से निर्वाह हुआ है। यह तत्त्व रेखाओ आदि के ठीक-ठीक उतार-चढाव और छाया तथा प्रकाशन के उचित समन्वय तथा सामजस्य का भी सूचक होता है। नृत्य मे जब चित्ताकर्षक और प्रभावशाली रूप मे अगो का सचालन होता है अथवा अभीष्ट और उचित भाव भगिमाएँ सुघड़पन से प्रकट की जाती हैं तब वहाँ भी यही तत्त्व विद्यमान माना जाता है। मूर्तिकला, वास्तुकला आदि मे उक्त आधार पर जो सुडौलपन दिखाई देता है वह भी इसी लय के अंतर्गत आता हैं।

'प्रलय' पु० [स०] का मूल अर्थ है—पूरी तरह से और सर्वांश मे होने-वाला लय या विनाश। परन्तु भारतीय पुराणो और सस्कृति मे इसका प्रयोग एक ऐसी परम प्राचीन घटना के सम्बन्ध मे होता आया है जो प्रत्येक कल्प के अंत मे घटित होती है। इसमे बहुत ही भयकर बाढ और भीषण वर्षा के फलस्वरूप सारी पृथ्वी पानी से भर जाती है; और सब प्रकार के जीव-जन्तुओं का पूरी तरह से विनाश हो जाता है। कहा गया है कि हर ४३,२०,००,००० वर्ष बीतने पर सारी सृष्टि का प्रलय होता है; और सृष्टि अपने मूल कारण

अर्थात् प्रकृति मे विलीन हो जाती है, और तब फिर नए सिरे से सृष्टि की रचना होने लगती है* यह माना जाता है कि पिछली बार वैवस्वत मनु के समय मे ऐसा प्रलय हुआ था। प्राचीन युनानियो तथा कुछ अन्य जातियों मे भी इस प्रकार की पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं। उन्ही के अनुकरण पर ईसाइयों और मुसलमानो मे भी यह माना जाता कि पिछली बार हजरत नूह के समय मे ऐसा प्रलय हुआ था। आज कल लाक्षणिक रूप मे बहुत ही उत्कट या विकट रूप मे और विस्तृत भू भाग मे होनेवाला भयकर नाश भी प्रलय कहलाता है जसे—कौरव पाडव युद्ध के बाद कुरुक्षेत्र म, दोनो युरोपीय महा युद्धो क उपरात युरोप के अधिकतर देशों में और परमाणु बम के प्रहार के उपरान्त हिरोशिमा मे प्रलय का दृश्य दिखाई देता था।

'विलय' पु० [स०] अपने विकसित अर्थ मे वही है जो लय और प्रलय है। इसम भी मुख्य भाव किसी चीज का गल या घुलकर अथवा भाप बनकर और अपना स्वतत्र अस्तित्व खोकर किसी दूसरी चीज म पूरी तरह से मिल जाने का ही है। इसमे और आगे बढने पर आज कल इसका प्रयोग लाक्षणिक रूप मे आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र म एक विशिष्ट भाव सूचित करने के लिए होने लगा है। जब कई छोटे बडे निगम या महत्वपूर्ण सस्थाएँ आपस म मिलकर एक हो जाती हैं और अपने सब कार बार तथा लेन-देन एक नई इकाई के रूप मे करने लगती हैं, तब उनका ऐसा सम्मिलन भी विलय ही कहा जाता है। आज कल जब कोई छोटा देश या राज्य अपनी रक्षा, सुख सुभीते के विचार से पास पडोस के किसी दूसरे बडे देश या राज्य म मिलकर उसका अविभाज्य अग बन जाता है, तब उसका यह कार्य भी विलय कहलाता है, जसे—इदौर, कश्मीर जयपुर, हैदराबाद आदि की सभी देशी रियासतो का स्वतत्र भारत म विलय हो चुका है। × ×

लहर—स्त्री० [स० लहरि] दे० 'तरग, लहर और वीचि'।
लागत—स्त्री० [हि० लगना] दे० 'पूँजी, लागत और लागत'।
लाघव—पु [स०] दे० 'लघुता, लघुत्व लाघव और लघिमा।

* पुराणानुसार तो प्रलय में सारी सृष्टि और सभी भूतों का अन्त या विनाश हो जाता है, पर इसका एक आशिक प्रकार या रूप भी माना गया है, जिसे खड प्रलय कहते हैं। इसम आकाशस्थ पिंड मात्र बच रहते हैं और सूर्य का ताप या तेज हजार गुना बढ जाता है। इस प्रकार का प्रलय एक चतुर्युगी (चारो युगो का समूह) अर्थात् ब्रह्मा का एक दिन बीत जाने पर होता है।

लाचार—वि० [फा०]=विवश; दे० 'बद्ध, बाध्य और विवश'।

ला-परवाह—वि० [अ०+फा०] दे० 'बे-परवाह और ला-परवाह'।

लाभ—पुं० [सं०] दे० 'प्राप्ति, लाभ, उपलब्धि और परिलब्धि'।

लाभ-तोषिक—पुं० [सं०] दे० 'लाभांश और लाभतोपिक'।

लाभांश और लाभतोषिक
Dividend Bonus

ये दोनो शब्द औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्रो मे होनेवाले आर्थिक लाभ के वितरण के दो नए प्रकार हैं और अंग्रेजी के डिविडेन्ट (Dividend) तथा बोनस (Bonus) के समार्थक के रूप मे बनाए गए हैं। 'लाभांश' (सं० लाभ+अंश) का सीधा-सादा शब्दार्थ है—लाभ का अंश या मुनाफे का हिस्सा। आज-कल बडे-बड़े कल-कारखाने और व्यापार बहुत से लोगों के सहयोग से चलते हैं, और उनमे अनेक लोगों की पूँजी या लागत लगती है। ऐसे सभी लोग उस कल-कारखाने या व्यापार के हिस्सेदार होते हैं। ऐसे कारखानो और व्यापारो से जो आर्थिक लाभ या बचत होती है वह सभी हिस्सेदारो मे उनकी लगाई हुई पूँजी या लागत के अनुपात से बाँटी जाती है। हिस्सेदारो को उनकी लगाई हुई पूँजी या लागत के अनुपात से लाभ का जो अंश मिलता है वही लाभांश कहलाता है।

'लाभतोपिक' अंग्रेजी के बोनस (Bonus) के लिए बनाया और सुझाया हुआ नया शब्द है। मैंने यह रूप आनुतोपिक और पारितोपिक के अनुकरण पर स्थिर किया है। भारत सरकार के 'पारिभापिक शब्द संग्रह' मे डिविडेन्ड और बोनस दोनों के लिए लाभांश ही रखा गया है। परन्तु दोनो शब्दो के अर्थों मे विशेष अन्तर होने के कारण मेरी समझ मे बोनस के लिए लाभ-तोपिक अधिक उपयुक्त और व्यावहारिक होगा।

'लाभतोपिक' कुछ विशिष्ट लोगो को और कुछ विशिष्ट अवस्थाओं मे तुष्ट या प्रसन्न करने के लिए आर्थिक लाभ के अंश के रूप मे दिया जाता है। यह पहले के नियत और निश्चित पारिश्रमिक, लाभांश, वेतन आदि के अति-रिक्त होता हैं। प्राय: हिस्सेदारो को उचित अथवा नियत लाभांश चुका देने के बाद भी कुछ धन बचाकर सुरक्षित रख लिया जाता है, और अनुकूल स्थितियो मे वह थोड़ा-थोड़ा करके हिस्सेदारों, कर्मचारियो, कार्यकर्त्ताओ आदि को प्रसन्न रखने के लिए बाँट दिया जाता है। यही अंश लाभतोपिक कहलाता

है। प्राय बीमा कपनियाँ भी बीमा करानेवाले लोगो को समय समय पर कुछ लाभतोषिक देती रहती हैं। कुछ अवस्थाओ म उन कमचारियो को भी लाभ तोषिक दिया जाता है जो नियत समय से पहले अपने काय या पद स हटा दिए जाते हैं।

× ×

लाम—स्त्री० [अ०] दे० अभियान आक्रमण, धावा, लाम और लामबन्दी'।

लामबदी—स्त्री० [अ० लाम+फा० बन्दी] दे० अभियान, आक्रमण धावा, लाम, और लामबन्दी'।

लालसा—स्त्री० [स०] दे० 'वासना, तृष्णा, लालसा और लिप्सा।

लिए और वास्ते

हिन्दी और उदू दोनो म ये अव्यय उसी अथ म प्रयुक्त होते हैं जिसमें 'के अथ' 'के निमित्त' या 'के हित' का प्रयोग होता है। हिन्दी कोशो और व्याकरणो मे यह सम्प्रदान कारक का चिह्न कहा गया है और इसके पहले सम्ब ध कारक की 'के' विभक्ति लगना आवश्यक होता है। हिन्दी म 'इसलिए और किस लिए अथवा इस वास्ते' और किस वास्ते सरीखे जो प्रयोग होते हैं उनम 'के का अध्याहार होता है। इन दोनो शब्दो के अर्थों का विवेचन करने से पहले इनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध म कुछ कह देना आवश्यक जान पड़ता है। लिए' की व्युत्पत्ति पूण रूप से निश्चित नही हुई है। हिन्दी शब्द सागर' मे इसका व्युत्पत्तिक सम्ब ध सस्कृत 'लग्न और पुरानी हिन्दी के लगि' या 'लागि से बतलाया गया है जो बहुत कुछ ठीक जान पड़ता है। बुन्देलखडी म इन दोनो अव्ययो के स्थान पर लाने का प्रयोग होता है जो सम्भवत ब्रज भाषा के 'लाना=लगाना से सम्बद्ध है, यथा—तू अलबेली अकेली डरे किन क्यो डरौं मेरी सहाय के लाने।—पद्माकर। 'वास्ते' को 'हिन्दी शब्द सागर' मे अरबी का शब्द माना गया है जो वस्तुत ठीक नही है। अरबी मे वस्त का अर्थ होता है—बीच या मध्य और इसी का एक विकारी रूप है—वासित जिसका अथ है—बीच म रहकर दो पक्षों या भागो को जोड़नेवाला अश। इसी से हिन्दी मे लगाव या सम्बन्ध का सूचक 'वास्ता' शब्द बना है। हिन्दी में इसी तद्भव सज्ञा 'वास्ता से वास्ते' अव्यय बना लिया गया है जिसका प्रयोग उदू और हिन्दी दानो म 'लिए' की तुलना मे दिन पर दिन कम होता जा रहा है।

हिन्दी के प्रायः सभी कोशो मे 'लिए' का अर्थ सूचित करने के लिए निमित्त, हेतु, कारण, सवव आदि शव्दो का प्रयोग करके काम चलता किया गया है। स्पष्ट है कि ऐसा अर्थापन तात्त्विक दृष्टि से वहुत कुछ अधूरा तो है ही, प्रायः निरर्थक और भ्रामक भी है। प्रयोगों के आधार पर हम कह सकते हैं कि इसका व्यवहार नीचे लिखे प्रसंगो मे होता है :—

१—किसी उद्देश्य की सिद्धि के प्रसंग मे; जैसे—(क) जीविका-निर्वाह के लिए सवको कुछ न कुछ करना पड़ता है।

२—आदाता या गृहीता की ओर लक्ष करने के प्रसंग मे; जैसे—ये पुस्तके मैं आपके लिए लाया हूँ।

३—किसी गन्तव्य दिशा या स्थान के सूचक प्रसंग मे; जैसे—आज वह कलकत्ते के लिए रवाना हो रहे हैं।

४—किसी काम के वदले के रूप मे; जैसे—(क) इसके लिए तो सव लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं। (ख) पाँच रुपए के लिए इतनी दूर दौड़कर कौन जाएगा ?

५—किसी की रक्षा या हित-साधन के विचार से; जैसे—(क) देश के लिए जान देनेवाले लोग अव भी कम नही हैं। (ख) स्वास्थ्य के लिए सयम से रहना चाहिए।

६—कर्त्ता की शक्ति, सामर्थ्य आदि के सूचक प्रसंगो मे; जैसे—(क) तुम्हारे लिए यह काम कुछ भी कठिन नही है। (ख) हमारे लिए इस समय वहाँ जाना किसी प्रकार सम्भव नही है।

७—समय की अवधि या विस्तार सूचित करने के प्रसग मे; जैसे—(क) महीने दो महीने के लिए कही जाकर हवा-पानी वदल आओ। (ख) अदालत ने उसे छः महीने के लिए जेल भेज दिया।

उक्त प्रसंगो में से अनेक मे 'लिए' के स्थान पर 'वास्ते' का भी प्रयोग हो सकता है। उक्त उदाहरणो मे कुछ ऐसे भी हैं जिनमे से 'के लिए' निकाल देने पर भी काम चल सकता है; जैसे—'आज वे कलकत्ते के लिए रवाना हो रहे हैं' की जगह 'आज वे कलकत्ते रवाना हो रहे हैं' कहने से भी काम चल जाता है।

एक वात और है 'आज वे कलकत्ते के लिए रवाना हो रहे हैं', इसमे 'कलकत्ते के लिए' की जगह 'कलकत्ते के वास्ते' का प्रयोग न जाने क्यो कुछ

ठीक नही जँचता । हाँ, यदि कहा जाय—'यह माल कलकत्ते के वास्ते बन रहा है' तो इसम कोई खटक नही जान पडती । उक्त दोनो प्रयोगों के आधार पर 'लिए' और वास्ते' के आशयों का एक सूक्ष्म अ तर मेरी समझ मे आता है कि माल कलकत्ते के ग्राहको के आदेश से, अथवा कलकत्तेवालों के उपयोग के लिए बन रहा है । परन्तु 'कलकत्ते के लिए रवाना हो रहे हैं' से केवल गति की दशा सूचित होती है । 'लिए और 'वास्त के प्रयोगो म ऐसे ही कुछ और सूक्ष्म अन्तर भी हो सकते हैं जिनकी छानबीन मैं भावी अर्थ-विज्ञानियो पर छोडता हू ।

ऊपर हमने एक दूसरे प्रसग मे—'देश के लिए जान देनेवाले पद का प्रयोग किया । 'किसी के लिए जान देने और किसी पर जान देने' म जो सूक्ष्म अ तर है उसकी चर्चा हम पहले 'ऊपर और पर' के प्रसग मे कर चुके हैं ।

'लिए के सम्ब ध मे ध्यान रखने की एक मुख्य बात यह भी है कि सदा ए से ही लिखा जाना चाहिए, 'ये से नही । 'लिये' तो वस्तुत 'लेना' क्रिया का भूतकालिक बहुवचन रूप होता है । 'लेना' क्रिया के इस विकारी रूप 'लिये से अव्यय 'लिए को अलग और स्पष्ट ही रखना उचित होगा । × ×

लिप्सा—स्त्री० [स०] दे० 'वासना, तृष्णा लालसा और लिप्सा' ।

लोक तन्त्र—पु० [स०] दे० 'गण तत्र, जन तत्र और लोक त त्र ।

लोक सभा—स्त्री० [स०] दे० 'विधायिका और सदन ।

लौकिक—वि० [स०] दे० भौतिक, पार्थिव, लौकिक और सासारिक ।

वक्त—पु० [अ०] दे० 'काल वेला और समय' ।

वक्तृता—स्त्री० [स०] दे० 'प्रवचन भाषण, वक्तृता और व्याख्यान' ।

वजह—स्त्री० [अ०] कारण, दे० 'कारण और हेतु' ।

वध—पु० [स०] दे० 'हत्या, हनन मारण, वध और सहार' ।

वय—पु० [स०]=वयस्, दे० 'आयु अवस्था और वय ।

वर्ग—पु० [स०] दे० 'कोटि, वग और श्रेणी' ।

वर्जन—पु० [स०] दे० 'वारण, निवारण, वर्जन, निषेध और प्रतिषेध ।

वर्ण—पु० [स०] दे० 'अक्षर और वर्ण' ।

वर्तमान—वि॰ [सं॰] दे॰ 'उपस्थित, प्रस्तुत, वर्तमान और विद्यमान'।

वसूली—स्त्री॰ [अ॰ वसूल से]=उगाही ; दे॰ 'चदा, बेहरी और उगाही'।

वाग्पीठ—पुं॰ [सं॰] दे॰ 'मच, मच-शील, रग-मच और वाग्पीठ'।

वाङ्मय—पुं॰ [सं॰] दे॰ 'साहित्य और वाङ्मय'।

वाचन—पु॰ [सं॰] दे॰ 'विधायक, विधायन और विधेयक' के अन्तर्गत विधेयक की पाद-टिप्पणी।

वाणिज्य—पु॰ [सं॰] दे॰ 'व्यापार, वाणिज्य और व्यवसाय'।

वातावरण—पु॰ [सं॰] दे॰ 'परिवेश, परिस्थिति, पर्यावरण, पृष्ठभूमि और भूमिका' के अन्तर्गत 'पर्यावरण' और उसकी पाद-टिप्पणी।

वायुमडल—पुं॰ [सं॰] दे॰ 'परिवेश, परिस्थिति, पर्यावरण, पृष्ठभूमि और भूमिका' के अन्तर्गत 'पर्यावरण' और उसकी पाद-टिप्पणी।

वारण निवारण वर्जन निषेध और प्रतिषेध

Forbidding Banning Prohibition

इस वर्ग के शब्द ऐसे आदेश, कथन, विधान आदि के वाचक हैं जो किसी विशिष्ट उद्देश्य से अथवा कारणवश लोगो को कोई काम करने से रोकने के लिए कहे या प्रचलित किए जाते हैं।

'वारण' पुं॰ [सं॰] के मूल अर्थ तो बाधा, विरोध आदि हैं, परन्तु आगे चलकर लोक-व्यवहार मे यह शब्द किसी को किसी काम मे मना करने के अर्थ में प्रचलित हो गया है। 'वारण' प्रायः किसी प्रकार के अनिष्ट या हानि से बचाने के लिए किया जाता है; जैसे—पिता जी ने मुझे मुहल्ले के लड़को के साथ खेलने के लिए वारण कर दिया है। इसका प्रयोग प्रायः ब्रजभाषा की कविता आदि मे तो देखने मे आता है, परन्तु आधुनिक गद्य मे इसका व्यवहार प्रायः नही अथवा बहुत कम होता है। प्राचीन तथा मध्ययुग में वारणिक आज्ञाएँ प्रचलित होती थी जिनका उद्देश्य लोगो को किसी काम से रोकने या मना करने के लिए होता था।

'निवारण' पु॰ [सं॰] उक्त वारण मे 'नि' उपसर्ग लगने से बना है और इसका प्रयोग कई प्रकार के अर्थ सूचित करने के लिए होता है। इसमे मुख्य भाव आये हुए किसी प्रकार के कष्ट अथवा आनेवाली विपत्ति आदि को कम या दूर करने के लिए होता है; जैसे—कष्ट, रोग आदि का निवारण। चिंता, शका, सदेह आदि दूर करने या मिटाने के सम्बन्ध में भी यह प्रयुक्त होता है।

नगर पालिकाओं आदि की ओर से महामारियों आदि से लोगों को बचाने के लिए जो उपाय या प्रयत्न किये जाते हैं उनका अन्तर्भाव भी इसी के अंतर्गत होता है। हिंदी में इसके लिए प्रायः 'रोक-थाम' का भी प्रयोग होता है।

'वर्जन' पु० [सं०] का प्रयोग भी बहुत कुछ उसी अर्थ में होता है जो ऊपर वारण का बतलाया गया है। फिर भी हमारी समझ में वारण की तुलना में वर्जन कुछ अधिक जोरदार और तीव्र भाव का सूचक है। इसमें किसी प्रकार की आज्ञा या आदेश की छाया अंतर्निहित है, हमारे यहाँ की प्राचीन कविताओं में इसका प्रयोग प्रायः 'बरजना' के रूप में हुआ है यथा—

(क) मैं बरज्यो कै बार तुम,
इत कित लेत करौट।
पँखुरी लगे गुलाब की
परिहै गात खरौट।
(ख) मैं बरज्यो कै बार कन्हैया
भली करी वँधे हाथ दिखाए।

'निषेध' पु० [सं०] का प्रयोग अपेक्षया अधिक व्यापक क्षेत्र में देखने में आता है और ऐसा जान पड़ता है कि इसमें वारण तथा वर्जन दोनों की तुलना में और भी अधिक जोर या तीव्रता है। तात्विक तथा दार्शनिक दृष्टि से निषेध के सम्बन्ध में हमारे यहां कहा गया है—प्राप्तौ सत्यां निषेधः अर्थात् साधारणतः सबको और सहज में प्राप्त होनेवाले अधिकारों, सुख-सुभीतों आदि से किसी कारणवश रोकना या वंचित करना ही 'निषेध' कहलाता है। काशी में विश्वनाथ के मंदिर के मुख्य-द्वार पर लिखा है—आर्य धर्मेतराणाम प्रवेशो निषिद्धः। अर्थात् आर्य धर्म से भिन्न धर्मों के अनुयायियों को इसमें प्रवेश करने का अधिकार नहीं है। इस शब्द का भूत कृदन्त रूप 'निषिद्ध' प्रायः ऐसी बातों तथा कामों के सम्बन्ध में होता है जो धर्म, नीति, न्याय आदि की दृष्टि से बिलकुल त्याज्य अथवा निन्दनीय माने जाते हैं। इसी लिए यह कहना ठीक नहीं है—इस कक्ष (या भवन) में बिना आज्ञा के प्रवेश निषिद्ध है। ऐसे अवसरों पर निषिद्ध की जगह 'वर्जित' का प्रयोग ही अधिक उचित और उपयुक्त होगा।

'प्रतिषेध' पु० [सं०] भी है तो बहुत कुछ वही जो निषेध है फिर भी इसका प्रयोग आज-कल कुछ परिमित क्षेत्रों और विशिष्ट अर्थों में ही होता है। धर्मशास्त्रों में तो अहित या निन्दनीय कामों या बातों का निषेध होता है,

परन्तु आज-कल विधि विधानों मे इसके स्थान पर 'प्रतिषेध' का प्रयोग कदाचित् इसी लिए होने लगा है कि हम कुछ कामो या बातों को अनुचित या बुरा तो अवश्य मानते हैं परन्तु उन्हे उतना अधिक गर्हित या निन्दनीय नही मानते जितना निषिद्ध बातो को मानते हैं। 'मद्यपान' का निषेध तो प्रायः सभी धर्मो मे किया गया है; परन्तु आज-कल जो काम या बातें समाज या स्वास्थ्य के लिए हानिकर समझी जाती हैं, उन्हे रोकने के लिए राज्य अथवा सरकार की ओर से जो आज्ञाएँ प्रचलित की अथवा विधियाँ बनाई जाती हैं उन्हे प्रायः 'प्रतिषेध' ही कहते हैं। × ×

वास—स्त्री० [सं०] दे० 'गंध, बू, महक और वास'।

वासना, तृष्णा, लालसा और लिप्सा
Yearning Avidity

इस वर्ग के शब्द मन की ऐसी वृत्तियो या स्थितियो के वाचक हैं जिनमे मनुष्य किसी काम या बात की पूर्ति या सिद्धि के लिए बहुत उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा तथा प्रयत्न करता रहता है और उनके लिए प्रायः चिंतित या कुछ विकल सा रहता है।

'वासना' स्त्री० [स०] हमारे यहाँ की आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षेत्रो का पुराना पारिभाषिक शब्द है। तात्विक दृष्टि से यही वह मूल है जिसकी विकसित शाखाओ-प्रशाखाओं के रूप मे हमारे मन मे समय-समय पर अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ, आकाक्षाएँ, इच्छाएँ, कामनाएँ, लालसाएँ आदि उत्पन्न होती रहती हैं। तृष्णा, लालसा, लिप्सा आदि भी इसी से अंकुरित होती हैं, जिनके वाचक इस वर्ग के अन्यान्य शब्द हैं। वासना स० की 'वस्' धातु से बना है, जिसका अर्थ हैं—कही ठहरना, बसना या रहना और जिससे वसन, निवास, प्रवास आदि शब्द बने है। दार्शनिक दृष्टि से समय-समय पर हमारी चेतना के भीतरी और बहुत कुछ सोये हुए भाग मे जो बहुत-सी इच्छाएँ, लालसाएँ आदि आकर जमती या बसती चलती हैं, अथवा उस पर अपनी छाप या छाया छोड़ जाती हैं, उन्ही सबका सामूहिक परिणाम वासना है। हमारी चेतना के साथ वासनाओ का वैसा ही स्वाभाविक लगाव है, जैसा हमारे मन के साथ भावनाओ का है (दे० 'भाव और भावना')। आध्यात्मिक दृष्टि से वासनाएँ हमारी पूर्व स्थितियों के संस्कार हैं जो आत्मा,

देह और बुद्धि के योग से उत्पन्न होते हैं। इनका क्रम या परम्परा जन्म-जन्मान्तर तक चलती रहती है—इनकी कभी तृप्ति या दमन नहीं होता है। हमारे उपचेतन और अचेतन मन में दबी हुई अनेक प्रकार की वासनाएँ समय-समय पर सिर उठाती रहती हैं और हम या हमारे मन को किसी न किसी ओर प्रवृत्त करती रहती हैं। भारतीय अध्यात्म तो यहाँ तक कहता है कि यही अतृप्त और अज्ञात वासनाएँ अपनी तृप्ति के लिए मनुष्य को बार-बार इस लोक में जन्म लेने के लिए बाध्य करती हैं। हिन्दू शास्त्रों का मत है कि मृत्यु के उपरांत हमारे शरीर से जो आत्मा निकलती है उसके साथ उसका लिंग शरीर भी रहता है। जो अपने साथ समस्त कर्म फल और उनसे सम्बद्ध संस्कार लिए रहता है। कहा गया है कि उस लिंग शरीर में १८ तत्व होते हैं जिनमें बुद्धि तत्व प्रधान है। गीता में भी कहा गया है कि आत्मा उसी प्रकार मन और ज्ञानेन्द्रियों को अपने साथ खींच ले जाती है, जिस प्रकार वायु। यही वासना का वास्तविक रूप है। 'आशा तृष्णा ना मरें, कह गये दास कबीर' में आशा और तृष्णा दोनों अपने मूल आधार वासना की ओर ही संकेत करती हैं।

'तृष्णा' सं० के उस तृष्' शब्द से बना है जिससे तृषा (प्यास) बना है*। इस वर्ग के प्रायः सभी दूसरे शब्दों से यह कहीं अधिक प्रबल तथा विकट भावना का सूचक है। तृष्णा सदा किसी लौकिक या सांसारिक सुख भोग के सम्बन्ध में होनेवाली ऐसी तीव्र अभिलाषा या इच्छा है जो कभी तृप्त होना जानती ही नहीं और ज्यों-ज्यों इसकी मात्रिक सिद्ध होती चलती है, त्यों त्यों यह भी आग बढ़ती चलती है। जिस बात या विषय की हमें तृष्णा होती है, उसकी प्राप्ति के लिए हम सद् असद सबका विचार छोड़कर अपनी सारी शक्ति से उसमें लगे रहते हैं और इसी लिए यह हमें सबसे अधिक विकल भी रखती है। कदाचित् इन्हीं सब विशेषताओं के कारण इसे मृग-तृष्णा में उत्तर-पद का स्थान मिला है। (दे० 'भ्रम, भ्रान्ति, मतिभ्रम, विभ्रम और मरीचिका।)

'लालसा' स्त्री० [सं०] लस् से व्युत्पन्न है। जब हम कुछ पाने के लिए बहुत अधिक इच्छुक तथा उत्सुक होते हैं और निरंतर उसकी प्राप्ति की प्रतीक्षा

---

* इसी तृष्णा से फारसी में तश्न (प्यासा) और तश्नगी (प्यास) शब्द बने हैं। हो सकता है कि अंग्रेजी (Thirst) का भी इससे कुछ मूलिक या व्युत्पत्तिक सम्बन्ध हो।

मे रहते हैं। तब हमारे मन की यह स्थित लालसा कहलाती है।* जब दशरथजी कहते हैं—'एक लालसा बड़ी उर माही।'—तुलसी। तब उसका आशय यही होता है कि किसी प्रकार हम इसकी पूर्ति कर लेना चाहते हैं।

'लिप्सा' स्त्री० [सं०] लभ् (प्राप्त करना) से व्युत्पन्न है; और कदाचित् इसी लिए लालसा की तुलना मे लिप्सा तीव्र या प्रबल लोभ के भाव से युक्त है। इसे हम लिप्सा का बहुत कुछ आगे बढा हुआ रूप कह सकते हैं। हम कहते है—'उनके मनमे बहुत दिनों से इस सभा के सभापति बनने की लालसा थी।' तो ऐसा कथन साधारण ही प्रतीत होता है परन्तु जब इसी वाक्य मे 'लालसा' के स्थान पर "लिप्सा का प्रयोग हो, तब यही कहा जाएगा कि उनके मन मे सभापति बनने का लालच या लोभ अधिक जाग्रत और बहुत कुछ स्पष्ट था।

इस कोटि के अन्यान्य शब्दो के लिए दे० (१) 'इच्छा, कामना, अभिलाषा, आकाक्षा और स्पृहा' और (२) 'चाह, चाहत, चाव और साध'। × ×

वास्तविक—वि० [स०] दे० 'यथार्थ और वास्तविक'।
वास्ते—अव्य० [अ० वासितः] दे० 'लिए और वास्ते'।
विकल्प—पु० [स०] दे० 'अनुकल्प और विकल्प'।
विकास—पु० [सं०] दे० 'उन्नति, प्रगति और विकास'।
विघ्न—पुं० [स०] दे० 'बाध, बाधा और विघ्न'।

विचार / परामर्श और विमर्श

विचार — Consideration
परामर्श — 1. Advice 2. Consultation
और
विमर्श — Deliberation

इस वर्ग के शब्द किसी गम्भीर विषय पर अच्छी तरह सोचने-समझने और तब तथ्य या निर्णय तक पहुँचने के प्रयत्न के वाचक हैं। इस प्रकार का सोचना-समझना अकेले और स्वय भी हो सकता है और दूसरो के सहयोग तथा सहायता से भी।

'विचार' पुं० [सं०] हमारे यहाँ प्रयोग की दृष्टि से जितना अधिक व्यापक है, आर्थी दृष्टि से भी उतना अधिक व्यापक है। इसका पहला और मुख्य अर्थ

* हिं० का लालच शब्द इसी लालसा से व्युत्पन्न है, परन्तु लालच मे लोभ की जो प्रबलता होती है वह लालसा मे उतनी अधिक प्रतीति नही होती।

है—इंद्रियों के द्वारा किसी चीज या बात का अनुभव या ज्ञान होने पर मन मे बननेवाला उसका चित्र या रूप। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इसका दूसरा अर्थ होता है—किसी भावी कार्य या विषय के सम्बन्ध मे तर्क वितर्क और मनन के फलस्वरूप बननेवाला वह कल्पित चित्र या रूप जो हमारे मानस क्षेत्र मे प्रस्तुत होता है। इस प्रकार का विचार अपने मन मे छिपाकर भी रखा जा सकता है और दूसरो को अवगत कराने अथवा उनका मत जानने के लिए उनके सामने उपस्थित भी किया जा सकता है जैसे—आपको निष्पक्ष होकर इस विषय मे अपना विचार प्रकट करना चाहिए। आशय यही होता है कि आप अच्छी तरह सोच समझकर बतलावें कि यह बात ठीक है या नहीं, अथवा इसका ठीक रूप क्या होना चाहिए। जब हम कहते हैं—'इस विषय पर अच्छी तरह से विचार होना चाहिए, तब भी हमारा आशय यही होता है कि इस विषय मे जितनी बातें हो सकती हैं, या होनी चाहिए, वे सब अच्छी तरह सोच और समझ ली जानी चाहिए।

'परामर्श' पु० [सं०] के यो तो कई अर्थ हैं, और उसका एक अर्थ वह भी है जो नीचे विमर्श के अतर्गत बतलाया गया है। इसी आधार पर यह अन्तिम निर्णय, निश्चय या निष्कर्ष का भी वाचक हो गया है। परन्तु हिन्दी मे यह मुख्य रूप से दो विशिष्ट अर्थों म प्रचलित हैं। जब हमारे सामने कोई जटिल या विचारणीय प्रश्न आता है, और उसके सम्बन्ध म हम स्वय कोई निर्णय या निश्चय करने म असमर्थ होते हैं, अथवा अपने निर्णय या निश्चय मे किसी प्रकार की त्रुटि, दोष या हानि की सम्भावना देखते हैं, तब हम अपने किसी मित्र या विशेषज्ञ से यह जानना चाहते हैं कि हमे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। ऐसे अवसर पर हमारा मित्र या विशेषज्ञ अपना जो मत या विचार बतलाता है, अथवा हम कार्य करने का जो मार्ग सुझाता है वही उसका परामर्श कहलाता है। इसी लिए हम कहते हैं—(क) मैं इस विषय मे आपसे परामर्श करना चाहता हूँ, और (ख) मैंने इस विषय में उनका भी परामर्श ले लिया है। इसका दूसरा अर्थ भी है तो बहुत कुछ इसी प्रकार का परन्तु उसका क्षेत्र अपेक्षया अधिक विस्तृत या व्यापक होता है।

प्राय लोक व्यवहार मे कुछ ऐसे अवसर या प्रसग भी आते हैं जिनम किसी गहन या जटिल प्रश्न या योजना के सम्बन्ध मे ठीक विचार करने के लिए अनेक जानकारों या विशेषज्ञो का सहायता लेनी पड़ती है। ऐसे लोग एकत्र होकर प्रस्तुत विषय की सब बातो पर बहुत अच्छी तरह सोच विचार

करके यह बतलाते हैं कि क्या होना चाहिए और कैसे होना चाहिए। यह क्रिया भी उन लोगो के मत या विचार जानने के लिए होती है और उनका विवेचन तथा निश्चय भी परामर्श कहलाता है।

हिन्दी में इसके स्थान पर प्रायः अरबी के 'सलाह' शब्द का भी प्रयोग होता है।

'विमर्श' पुं० [स०] का अर्थ भी है तो बहुत कुछ वही जो ऊपर विचार का बतलाया गया है; और सम्भवतः इसी लिए लोग प्रायः विचार और विमर्श का एक साथ प्रयोग करते देखे जाते हैं, परन्तु विमर्श में विचार के सिवा एक और भाव भी सम्मिलत है। किसी बात या विषय में किसी निर्णय या निश्चय पर पहुँचने से पहले जब हम कुछ लोगो के साथ बैठकर उसके सब अंगो या पक्षो का ऊँच-नीच और हानि-लाभ देखते हैं; या सब बाते अच्छी तरह सोचते-समझते हैं, तब हमारा यह कार्य विमर्श कहलाता है। विचार तो हम अकेले या स्वय कर सकते हैं, परन्तु विमर्श मे किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियो की भी अपेक्षा होती है। आपस मे मिल-जुलकर और अच्छी तरह सोच समझकर की जानेवाली चर्चा ही मुख्यत. विमर्श है। × ×

विचार-गोष्ठी—स्त्री० [स०] दे० 'परिचर्चा, परिसंवाद और विचार-गोष्ठी (या सगोष्ठी)'।

विचित्र विलक्षण और अद्भुत

Peculiar 1 Strange Wonderful
2 Queer

इस वर्ग के विशेषण ऐसी चीजो या बातो के सूचक है जो या तो साधारण से कुछ भिन्न प्रकार की होती हैं और इसी लिए बहुत कम दिखाई पड़ती हैं, अथवा जिनके अस्तित्व, घटन आदि की सहसा आशा नही की जा सकती; और इसी लिए हमे सोचना पड़ता है कि ऐसा क्यो हुआ।

'विचित्र' वि० [स०] मूलतः ऐसी चीज या बात को कहते है, जो कई प्रकार के चित्रो या रगो से युक्त हो; अर्थात् जिसमे कई प्रकार की रगते दिखाई देती हो। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे विचित्र वह है जो सहसा सब जगह न देखने मे आता हो। 'विचित्र' सदा नियमित, प्रसम या साधारण से भिन्न होता है। जो चीज या बात हमे साधारणतः प्रायः एक रूप मे दिखाई देती है, वही जब किसी नये और अलग रूप मे देखने मे आती है, तब वह

हमारे लिए विचित्र होती है। इसमे औरो की अपेक्षा कुछ ऐसी नवीनता या पार्थक्य होनी चाहिए जो हमें कुछ चकित करे और हमें यह सोचना पड़े कि ऐसा क्यो हुआ अथवा यह ऐसा क्यों है। जो सदा एक सा आचरण न करे, उसे हम विचित्र स्वभाव वाला मनुष्य कहते हैं। यदि हमारा मित्र कभी तो हमारे प्रति कठोर हो जाय और कभी कोमल, तो हम उसका व्यवहार भी विचित्र जान पड़ेगा। हम कहते हैं—आज हमने एक विचित्र प्रकार का जमाना (या पहनावा) देखा। आशय यही होता है कि ऐसा जमाना (या पहनावा) साधारणत सब जगह या सब लोगों के देखने में नही आता।

'विलक्षण' वि० [स०] का मूल अर्थ है—जो अनेक प्रकार के लक्षणो से युक्त हो, और इसी लिए जिसकी ठीक व्याख्या न हो सके। इसके सिवा इसका एक और अर्थ लक्षणो से रहित' भी होता है, और इसी लिए जिसमे कारणों का पता न चल सके। इसमे विचित्र की अपेक्षा कुछ और गहरी रगत है। विलक्षण और विचित्र में कुछ अतर अवश्य है। शब्दार्थ के विचार से विचित्र वह है जो अपने कई रगो आदि के कारण हमारा ध्यान आकृष्ट करता हो और विलक्षण वह है जो अपने किसी विशिष्ट लक्षण के कारण औरो से पहले हमारे लक्ष या ध्यान मे आवे। आशय यह होता है कि वह अपना रग छोड चुका है और उसमे कुछ ऐसी नई रगत या रगतें दिखाई पडती हैं जो हमारी आशा या कल्पना के बाहर होती हैं। पर प्रयोग के विचार से विलक्षण वह है जो अपने स्वरूप के कारण कुछ ऐसी असामान्य स्थिति म हो कि हम चकित भी कर सके। वह हमे खटकता भी है और चौंकाता भी है। विचित्र भी चकित तो करता ही है, पर उतना नही, जितना विलक्षण करता है। विचित्र की अपेक्षा विलक्षण कुछ उत्कट और ऊँचा है। वस्तुत विलक्षण वह है जो हम अप्राकृतिक अस्वाभाविक और बिलकुल नया या परकीय जान पडे और इसी लिए हम जिसका कोई आधार या कारण स्थिर न कर सकें। जब हम चीन के निवासियो को दोनो हाथो से कीलियो से उठा उठाकर भात खाते हुए देखते हैं तब हम कहते हैं—उनके खाने का ढग बहुत विलक्षण है अर्थात् हमने और किसी जाति अथवा देश के लोगो को इस प्रकार भात खाते हुए नही देखा। जब हम कहते हैं—हमे उनका उस दिन का व्यवहार बहुत ही विलक्षण जान पडा तो हमारा आशय यह होता है कि वे साधारणत हमारे साथ जैसा व्यवहार करते हैं, उससे उनका उस दिन का व्यवहार बहुत भिन्न भी था और विलक्षण भी। उसके बोलने, (या नाचने) का ढग बहुत ही विलक्षण है सरीखे प्रयोगो म भी विलक्षण का यही आशय और भाव होता है।

वि० [सं०] अदभुत वह कहलाता है जो साधारण से बहुत अधिक भिन्न होने के कारण कुछ समय के लिए हमे चकित या स्तब्ध-सा कर देता है। हम उसे देखकर प्रसन्न तो अवश्य होते हैं, पर सहसा उसकी तह या मूल तक नही पहुँच पाते। भले ही इसका कारण हमारा अज्ञान या अल्पज्ञान हो। वस्तुत: जिसका ज्ञान जितना ही अधिक होता है, उसके लिए उतनी ही कम चीजें या बातें अदभुत होती हैं। जंगलियो और देहातियो के लिए मोटरें, रेडियो और हवाई जहाज अदभुत होते हैं पर नगर-निवासियो के लिए नही होते। इसी प्रकार परमाणु या विश्व के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें नगरवासियो के लिए भी अद्भुत होती या हो सकती हैं। कुछ अवस्थाओ मे लोकोत्तर बाते भी 'अद्भुत' कही जाती हैं; जैसे—ईश्वर की माया (या प्रकृति की लीला) अद्भुत होती हैं। आशय यही होता है कि वह हमे चकित भी करती है और उसका रहस्य समझना भी हमारी शक्ति के बाहर है। तुलनात्मक दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं कि विचित्र और विलक्षण की अपेक्षा 'अद्भुत' मे बहुत अधिक गहरी रगत है। विचित्र और विलक्षण दोनो के लिए हमारे यहाँ अ० के 'अजब' और 'अजीब' का भी कुछ लोग प्रयोग करते हैं। × ×

विज्ञप्ति अधिसूचना ज्ञापन (या स्मारिका)
Communique Notification Memorandum
ध्येय-पत्र और श्वेत-पत्र
Manifesto White-paper

इस वर्ग के शब्द ऐसे मुद्रित या लिखित लेख्यो के वाचक हैं, जो अधिकारिक रूप से किसी को अपना निश्चय, मत या विचार सूचित करने के लिए प्रकाशित या प्रचलित किए जाते हैं।

'विज्ञप्ति' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—किसी को अपनी कोई बात जतलाने या परिचित कराने के लिए कहना या बतलाना। इसका एक और अर्थ विज्ञापन या इश्तहार भी होता है। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे विज्ञप्ति ऐसी सार्वजनिक सूचना को कहते हैं जो किसी अधिकारी, विभाग या शासन की ओर से लोक मे प्रकाशित की जाती है। आज-कल जब दो या अधिक देशों, राष्ट्रो आदि के प्रतिनिधि या प्रमुख अधिकारी किसी विषय पर विचार-विमर्श करने के लिए एकत्र होते हैं, तब वे अपने निश्चित किए हुए विचारो अथवा

निकाले हुए निष्कर्षों का सारांश भी इसलिए प्रकाशित कराते हैं कि लोग यह जान लें कि उन लोगों ने क्या निश्चय किया अथवा सोचा समझा है। आज कल विशेष रूप से ऐसे प्रकाशनों को ही 'विज्ञप्ति' कहते हैं।

'अधिसूचना' स्त्री० [सं०] का मुख्य अर्थ है—किसी महत्त्वपूर्ण बात के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से दी जानेवाली सूचना। आज कल प्रायः सरकारी विभागों की ओर से निम्नस्थ कर्मचारियों की जानकारी के लिए भी और कुछ अवसरों पर जन साधारण की जानकारी के लिए भी इस प्रकार की सूचनाएँ प्रायः निकलती रहती हैं। उदाहरणार्थ यदि किसी काम की अवधि कुछ घटाई या बढ़ाई जाती है अथवा कोई नया नियम या उपनियम प्रचलित किया जाता है तब उसके सम्बन्ध में निकाली जानेवाली ऐसी सूचना ही अधिसूचना कहलाती है।

'ज्ञापन' पुं० [सं०] का शब्दार्थ है—किसी को कुछ ज्ञान या विदित कराना। पहले अंग्रेजी के Memorandum के लिए स्मृति पत्र, स्मारक पत्र आदि कुछ शब्द सुझाए गए थे, परन्तु अर्थ की दृष्टि से वे बहुत ही भ्रामक थे, अतः उनके स्थान पर पहले तो स्मारिका शब्द प्रचलित किया गया, पर यह भी कुछ त्रुटिपूर्ण था, अतः इसके स्थान पर रेडियो और समाचार-पत्रों में प्रायः ज्ञापन का प्रयोग होने लगा है। अंग्रेजी में Memorandum के कई प्रकार और रूप होते हैं, जिन्हें जान लेने पर यह समझ में आता है कि इसके लिए हिन्दी में 'ज्ञापन' का प्रयोग अधिक उपयुक्त होगा। प्रायः कुछ बातें किसी को इसलिए लिखकर दे दी जाती हैं कि वह उन्हें ध्यान में रखे और यदि हो सके तो उनकी कुछ व्यवस्था भी करे। इसके अन्तर्गत पहले के कुछ अनुभवों या घटनाओं की चर्चा भी हो सकती है और भविष्य में उनके आधार पर कामों को कुछ अच्छे और नए रूप भी दिए जा सकते हैं। प्रायः विभागों के बड़े अधिकारियों के पास ऐसे ज्ञापन भेजे जाते हैं। इसमें किसी काम या बात के पक्ष और विपक्ष की बातें भी हो सकती हैं और कुछ विवरण भी हो सकता है। प्रायः व्यापारिक मंडलियाँ अपने कार्य संचालन के नियमों और प्रणालियों की कोई पुस्तिका भी प्रकाशित करके अपने ग्राहकों और हिस्सेदारों में बाँटती हैं। कार्यभार ग्रहण किसी बहुत बड़े अधिकारी या शासक की सेवा में संस्थाओं आदि की ओर से ऐसे ज्ञापन भी उपस्थित किए जाते हैं जिनमें उन संस्थाओं के अब तक के किए हुए अच्छे कामों का संक्षिप्त परिचय भी होता है और उनकी भावी आवश्यकताएँ भी बतलाई जाती हैं। उद्देश्य यही होता

है कि उच्च अधिकारी ये सब बातें अपने ध्यान मे रखें और यदि हो सके तो समय आने पर उनकी कुछ सहायता भी करें।

'ध्येय-पत्र' पु० [स०] मेरी समझ से अंग्रेजी के Manifesto के लिए सब से अधिक उपयुक्त शब्द होगा। अब तक साधारणत' लोग इसके लिए भी 'घोषणा-पत्र' का ही प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं; परन्तु वास्तव मे घोषणा का आशय तथा विवक्षा इससे बहुत कुछ दूर पड़ती है। 'घोषणा' का मुख्य अभिप्राय होता है—लोगो को कोई बात बतलाना या परिचित कराना। परन्तु Manifesto का अभिप्राय होता है—लोगो को अपना उद्देश्य और ध्येय बतलाते हुए यह समझाना कि इसकी सिद्धि के लिए हमारा क्या कार्य-क्रम और कार्य-प्रणाली होगी। ऐसे ध्येय-पत्र किसी महत्वपूर्ण कार्य या बात के लिए समय-समय पर शासन की ओर से भी और राजनीतिक दलों तथा सार्वजनिक संस्थाओ की ओर से भी प्रकाशित होते रहते हैं। आशय यह होता है कि भविष्य के सम्बन्ध मे लोग हमारा मत या विचार अच्छी तरह समझ लें और उनके साधन मे सहानुभूतिपूर्वक हमारे साथ सहयोग करें। प्राय: लोक-तांत्रिक सस्थाओ के निर्वाचन के समय भिन्न-भिन्न दल अपने स्वतत्र ध्येय-पत्र प्रकाशित करते हैं, और इसी के आधार पर उनका प्रतिनिधित्व प्राप्त करना चाहते हैं।

'श्वेत-पत्र' पु० [स०] आधुनिक राजनीति मे वह प्रतिवेदन या विज्ञप्ति है, जो किसी साधारण महत्त्व की घटना या बात के सम्बन्ध मे शासन की ओर से प्रकाशित की जाती और विधान-सभा, संसद आदि के समक्ष इस उद्देश्य से उपस्थित की जाती है कि लोगों को उसकी ठीक जानकारी हो जाय और उनके मन मे कोई भ्रम या सन्देह न रह जाए। इसका यह नामकरण पाश्चात्य देशो मे इसलिए हुआ है कि यह जैसे सफेद कागज पर छपा या लिखा हुआ होता है, वैसा ही सफेद कागज इसके आवरण-पृष्ठ के लिए भी काम मे लाया जाता है। आवरण-पृष्ठ के कागज का भी सफेद होना इस बात का सूचक माना जाता है कि इसमे प्रतिपादित विषय साधारण महत्त्व क ही है, विशेष महत्व का नही।

इस कोटि के कुछ और शब्दों के विवेचन के लिए दे० 'घोषणा, प्रख्यापन, परिज्ञापन और प्रवर्तन।'

× ×

विज्ञान—पु० [म०] दे० 'दर्शन, विज्ञान और शास्त्र'।

वित्त—पु० [म०] दे० 'धन, वित्त, वैभव, सम्पत्ति और परिसम्पत्ति'।

विद्यमान—वि० [स०] दे० उपस्थित, प्रस्तुत, वर्तमान और विद्यमान ।
विद्वेष—वि० [स०] दे० 'वमनस्य विद्वेष शत्रुता, वैर और रिपुता'।

विधा विधान (अधिनियम) विनियम प्रविधान (अनुविधान) संविधान और संहिता

विधा — 1 Method 2 Sort
विधान — Act
विनियम — Regulation
प्रविधान — Provision
संविधान — Constitution
संहिता — Code

इस वर्ग के शब्द इस बात के सूचक हैं कि कोई विशिष्ट कार्य ठीक तरह से पूरा करने के लिए कौन सा ढग या प्रकार अपनाया जाना चाहिए।

'विधा स्त्री० [स०] मूलत स० की 'धा' धातु से बना है जिसका पहला अर्थ है—कोई चीज कहीं ठीक तरह से रखना और दूसरा अर्थ है—किसी काम या बात की ओर ध्यान देना या मन लगाना। इसी आधार पर धा धातु से धारण धारणा सरीखे शब्द बने हैं। इसी 'धा' के पहले 'वि' उपसर्ग लगने से विधा शब्द बना है जिसके स० मे अनेक अर्थ हैं, जैसे—(क) अश या भाग निश्चित करना। (ख) बाँटना या विभाजन करना। (ग) आकार रूप आदि। परन्तु हिन्दी म यह मुख्यत दो अर्थों म प्रचलित है—एक तो ढग या तरीका और दूसरा—प्रकार या भेद। इसी आधार पर इससे द्विविधा सुविधा, त्रिविधि पचविधि सरीखे विकारी रूप बने हैं। प्रस्तुत प्रसग म यह है तो कोई काम करने का ढग या प्रकार ही, परन्तु यह प्रथा रीति विधि आदि से कुछ बातो मे भिन्न है। विधा न तो तर्क सगत ही होती है न परम्परागत और न सर्व मान्य ही। यह बहुधा कर्ता की प्रवृत्ति या रुचि पर ही आश्रित होती है, जैसे—आज कल हिन्दी म आलोचना (या काव्य) की कई नई नई विधाएँ प्रचलित होने लगी हैं*।

'विधान पु० [स०] उक्त विधा का ही एक विकारी रूप है। हिन्दी में यह कई अर्थों मे प्रचलित है जैसे—(क) किसी कार्य के सम्बन्ध म किया जानेवाला आयोजन और उसका प्रबन्ध या व्यवस्था। (ख) निर्माण,

*इस वर्ग के अन्यान्य शब्दों के विवेचन के लिए। दे० (१) 'विधि क्रिया विधि और प्रक्रम।' (२) 'प्रविधि और प्रधान' के अन्तर्गत प्रविधि।

रचना, और सर्जन। (ग) किसी चीज या बात का किया जाने वाला उपयोग, प्रयोजन या व्यवहार; जैसे—संस्कृत में शब्द बनाने के लिए धातु मे उपसर्ग या अव्यय का विधान। (घ) यह बतलाना या समझाना कि अमुक कार्य इस प्रकार किया जाना चाहिए; अर्थात् कोई ढंग या तरीका बताना आदि। साराश यह कि इसका मुख्य आशय है—क्रम, व्यवस्था आदि का ध्यान रखते हुए इस रूप मे कोई काम करना या चीज बनाना जिससे उसका पूरा उपयोग हो सके।

साधारणतः 'विधान' ऐसी आज्ञा या आदेश का वाचक है, जिसका निर्वाह और पालन सम्बद्ध लोगो के लिए अनिवार्य और परम कर्तव्य हो; जैसे-धर्म-शास्त्र का विधान। प्रस्तुत प्रसग मे और अपने सबसे अधिक प्रचलित तथा प्रसिद्ध अर्थ मे यह ऐसी कार्य-प्रणालियो, नियमो आदि का वाचक है जो राजा या शासन की ओर से प्रजा या शासितों के सुभीते और हित के लिए बनाये जाते हैं। आशय यही होता है कि अमुक काम होना भी चाहिए और अमुक प्रकार से या अमुक रूप मे होना चाहिए। इसका उद्देश्य सब के साथ न्याय करना और देश या समाज मे शान्ति बनाये रखना होता है। अलग-अलग कार्यों, क्षेत्रो, या व्यवहारो के लिए अलग-अलग विधान होते हैं, जिनमे विधि और निषेध दोनों का स्पष्ट रूप से और पृथक्-पृथक् धाराओ में उल्लेख और विवेचन होता है; जैसे—भूमि-कर विधान, मादक द्रव्य विधान, साक्ष्य विधान आदि।* इसका विशेषण रूप वैधानिक होता है। अरबी का 'कानून' शब्द इसका समार्थक है और इसलिए इसके पर्याय रूप मे भी प्रचलित है। भारत सरकार ने इसका नया पर्याय अधिनियय भी बनाया है।

'विनियम' पुं० [स०] का मुख्य अर्थ है विशेष प्रकार का नियम; अथवा ऐसे नियम जो किसी काम या बात को नियत्रित और सीमित रखने के लिए बनाए गए हो। इसमे मुख्य उद्देश्य कार्यों का ठीक तरह से निर्वाह और संचालन करना होता है। तात्विक दृष्टि से हम इसे नियम और विधान के स्थान दे सकते हैं। पारिभाषिक दृष्टि मे यह विधान के बहुत कुछ समान ही होता है; फिर भी इसे विधान का विधिक और स्पष्ट रूप प्राप्त नही होता। किसी प्रकार के तत्र, प्रणाली या सस्थान के सब काम ठीक तरह से चलाने और भली-भाँति नियत्रित रखने के लिए जो नियम आदि बनाए जाते हैं

* विधान से सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य शब्दो के लिए दे० (१) विधायक, विधायन और विधेयक। (२) विधायिका और सदन। **और (३)** विधि और सविधि'।

आधार पर विधायिका का प्रत्येक भाग उस दशा में सदन कहलाता है जब वह किसी विषय पर विचार कर रहा हो, जैसे—उस समय सदन में इस सम्बन्ध में तीन अलग अलग प्रस्ताव उपस्थित थे। इसके सिवाय इसका प्रयोग रंगमंच, व्याख्यान गृह आदि के दर्शकों, श्रोताओं आदि का सामूहिक वाचक होता है, जैसे—नृत्य कला देखकर या व्याख्यान सुनकर सदन बहुत ही प्रसन्न और संतुष्ट हुआ। × ×

विधि क्रिया-विधि या कार्य-विधि

Method Procedure

प्रक्रम और प्रविधि

Process Technique

इस वर्ग में शब्द ऐसी क्रियाओं और उनके प्रकारों के वाचक हैं जो कोई काम पूरा करने के लिए ठीक माने और समझे गए हों।

'विधि' स्त्री० [स०] विधा का विकारी रूप है, और हमारे यहाँ बहुत दिनों से अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता आया है। विधि का पहला अर्थ है कोई काम करने का ढंग या प्रकार। आगे चलकर बतलाए जानेवाले ऐसे ढंग या प्रकार के साथ आदेश का तत्व या भाव भी सम्मिलित हो गया था। प्राचीन काल में वेदों में जो धार्मिक कर्तव्य और कृत्य निरूपित होते थे उन्हें ठीक तरह से पूरा करने के ढंग या प्रकार को विधि कहते थे। अनेक प्रकार के कर्म काण्ड, यज्ञ आदि करने की अलग अलग विधियाँ ब्राह्मण ग्रन्थों में बतलाई गई हैं। इसी आधार पर व्याकरण में काव्य के उस रूप को भी 'विधि' कहने लगे जिसमें कोई काम करने का अनुरोध, आग्रह या आदेश होता है, जैसे—(क) सदा बड़ों का आदर किया करो। (ख) वहाँ जाकर उनसे

कार्य पालिका में वे सभी विभाग और उनके अधिकारी गिने जाते हैं जो देश के कानून या विधान के अनुसार शासन के सभी कार्यों का परिचालन और संचालन करते हैं। न्याय पालिका में छोटे से बड़े तक वे सभी न्यायालय और उनके प्रमुख अधिकारी या न्यायकर्ता होते हैं जो सभी तरह के मुकदमों और वैधानिक विवादास्पद विषयों में विधान के अनुसार निर्णय करते हैं। जब तक किसी उच्च न्यायालय के द्वारा कोई निर्णय अमान्य न हो तब तक वह निर्णय जन-साधारण और सरकार दोनों के लिए समान रूप से मान्य होता है।

-बाते करो। (ग) नित्य तडके उठा करो आदि आदि। इस अर्थ के विचार से इसका विपर्याय 'निषेध' है; जैसे—धर्म शास्त्रो मे विधि और निषेध की चर्चा प्रायः साथ-साथ होती है। इसी आधार पर धर्म-शास्त्रो आदि मे बतलाई हुई ऐसी व्यवस्थाओ की गिनती भी विधि में होने लगी जिनका पालन सबके लिए अनिवार्य और आवश्यक माना जाता था।

परन्तु प्रस्तुत प्रसग में विधि का मुख्य अर्थ है—कोई काम करने का उचित और सहज ढंग या प्रकार। ऐसा ढग या प्रकार सदा तर्क-सगत प्रभावशाली और व्यवस्थित होता है; जैसे—(क) भोजन बनाने की विधि, (ख) औषध बनाने या विद्यार्थियो को शिक्षा देने की विधि, और (ग) जीवन यापन या लोक-व्यवहार की विधि। इससे और आगे बढने पर हर काम करने के ढग, तरीके या प्रकार को भी विधि कहने लगे थे; जैसे—जब हम किसी की गति-विधि की चर्चा करते हैं तब हमारा आशय उसके रंग-ढग और क्रियाशीलता के प्रकार और स्वरूप से होता है। इसी से मिलता-जुलता एक और अर्थ होता है—मेल या सगति; जैसे—उन लोगो की आपस मे विधि मिलती है अर्थात् विचारो आदि की अनुरूपता होने के कारण उन लोगो मे आपस मे मेल-जोल चल रहा है। फलित ज्योतिष के अनुसार विवाह के समय वर कन्या की जन्म कुण्डली मिलाकर यह देखा जाता है कि दोनों की विधि मिलती है या नही अर्थात् दोनो के जीवन-यापन के रंग-ढग एक ही प्रकार के और परस्पर अनुकूल हैं या नही। कुछ अवसरो पर इसका प्रयोग उपाय, युक्ति आदि का भाव सूचित करने के लिए भी होता है; जैसे—मैं प्रयत्न तो कर रहा हूँ, पर देखूँ कि विधि बैठती है या नही अर्थात् उपाय या युक्ति सफल और सार्थक होती है या नही। इसका प्रयोग साधारणतः प्रकार के अन्तर्गत भी होता है; जैसे—यहि विधि राम सबहि समुझावा।—तुलसी। प्रशासनिक और विधिक क्षेत्रो मे यह विधान या कानून के सामूहिक रूप का भी वाचक है। दे० नीचे 'विधि और संविधि'।

'क्रिया-विधि' स्त्री० [सं०] का शब्दार्थ है—काम करने की विधि या ढंग। परन्तु अपने आधुनिक पारिभाषिक रूप मे यह ऐसे ढंग या प्रकार का वाचक है जो नियमित परम्परागत और व्यवस्थित हो और जिसका अनुसरण आवश्यक समझा जाता हो। न्यायालयो, विधान-सभाओं आदि मे जो अनेक प्रकार के विशिष्ट कार्य होते हैं, उनके सम्पादन के लिए कुछ विशिष्ट प्रकार की विधियाँ निरूपित और निर्धारित होती है। जब तक उन विधियो का ठीक तरह से पालन न हो तब तक कार्य अनियमित या नियम-विरुद्ध माना जाता है। इस प्रकार की प्रत्येक विधि क्रिया-विधि कहलाती है। अब कुछ लोग इसके

स्थान पर 'कार्य विधि' का भी प्रयोग करने लगे हैं जो अधिक सुबोध और हलका है।

'प्रक्रम' पु० [स०] का मूल अर्थ है—चलते मे क्रम क्रम से पैर आगे बढाना या रखना। इसके परवर्ती अर्थों मे मार्ग या रास्ता, ढग या प्रकार आदि भी कई अर्थ हैं। पर तु आज-कल यह एक ऐसे नए अर्थ मे प्रचलित हो गया है जो 'कार्य विधि' के अर्थ से बहुत मिलता-जुलता है। यह भी है तो कार्य को आगे बढ़ाने का प्रकार ही फिर भी इसमे अपेक्षया एक विशेषता है। यह ऐसी कार्य विधि का सूचक है जिसमे क्रम क्रम से कई क्रियाएँ करते हुए आगे बढना पडता है। औद्योगिक प्रायोगिक, रासायनिक आदि क्षेत्रो मे कोई चीज बनाकर तैयार करने या निष्कर्ष तक पहुँचाने के लिए, क्रमिक रूप से जो अनेक प्रकार की क्रियाएँ करनी पडती हैं उन्ही के सामूहिक रूप का नाम प्रक्रम है, जैसे—(क) इस्पात बनाने चमडा सिझाने या रग रोगन का प्रक्रम। और (ख) भोजन करने पर शरीर के अदर उसके पाचन का प्रक्रम।

'प्रविधि' स्त्री० [स०] का शब्दार्थ है अच्छी और प्रशस्त विधि, परन्तु आज-कल यह अग्रेजी के Tehnique का समार्थक बन गया है। कला, उद्योग, यत्र, निर्माण आदि के क्षेत्रो म कोई चीज बनाने या तयार करने मे जो अनेक प्रकार की कार्य विधियाँ और प्रक्रम करने पडते हैं उन सबका सामूहिक नाम और रूप प्रविधि है अर्थात् कोई चीज बनाकर तयार करने म आदि से अत तक जो अनेक प्रकार की क्रियाएँ करनी पडती हैं, वही उस कार्य की प्रविधि कहलाती हैं। यह मुख्यत अनुभव और प्रयोग पर आश्रित होती है और इसका पूरा ज्ञान या जानकारी होने पर ही कोई चीज उपयोगी और सुदर रूप मे बनाकर तैयार की जा सकती है। इसम सभी क्रियाओं और प्रक्रमो के अगों और उपांगो का पूरा-पूरा ज्ञान सम्मिलित है। यह प्रविधि उचित प्रशिक्षण के द्वारा ही जानी जाती है और इसमें सभी प्रकार के सम्बद्ध प्रक्रमो का समावेश होता है। लाक्षणिक रूप मे इसका प्रयोग ललित कला और साहित्य के क्षेत्र में भी होता है, जसे—चित्र अकित करने की प्रविधि उपन्यास, कहानी या नाटक लिखने की प्रविधि आदि। इसका विशेषण रूप प्राविधिक होता है। उर्दू वाले मूल अरबी शब्दों के उच्चारण के अनुकरण पर इसके लिए सज्ञा में 'तकनीक' और वि० रूप में 'तकनीकी' का प्रयोग करते हैं। प्रविधि का अच्छा और पूरा जानकार प्रविधिज्ञ कहलाता है। × ×

विधि और संविधि
Law of Statute

'विधि' के सम्बन्ध की प्राय: सभी मुख्य बातें ऊपर 'विधि, क्रिया-विधि, प्रक्रम और प्रविधि' वाली माला में बतलाई जा चुकी हैं। प्राचीन भारत में धर्म-शास्त्रों में लोगो के आचार, व्यवहार, रहन-सहन आदि के सम्बन्ध मे जो नियम और व्यवस्थाएँ होती थी, उन्हे विधि कहते थे। इसी आधार पर आधुनिक राजनीति और शासन के क्षेत्र मे 'विधि' का प्रचलन एक नये अर्थ में होने लगा है। राज्य या शासन की ओर से लोक के कल्याण या हित के लिए जितने विधान या कानून बनते हैं उन सबके सामूहिक रूप और सिद्धातों का अन्तर्भाव 'विधि' में होता है। न्याय, प्रशासन आदि के कार्य भी विधि मे बतलाये हुए नियमो आदि के अनुसार ही होते हैं। कुछ अवस्थाओ में इसका प्रयोग किसी विशिष्ट विधान या कानून के लिए भी होता है। इसका अरबी समार्थक (आईन) भी कभी-कभी हिन्दी में प्रयुक्त होता हुआ देखा जाता है।

'संविधि स्त्री० [सं०] के दस्तूर, रीति, प्रबन्ध, व्यवस्था आदि कई अर्थ है। परन्तु आज-कल 'संविधि' किसी विधान या कानून के उस रूप या स्थिति के सम्बन्ध में चलने लगा है जो किसी विधान-सभा या विधायिका मे पारित या स्वीकृत हो चुका हो और जिसका व्यवहार कार्य रूप मे होने लग गया हो। आज-कल सभी राष्ट्रो और राज्यो मे एक ऐसी पंजी होती है जिसमे सभी विधान या कानून पारित और स्वीकृत हो चुकने के पश्चात तुरन्त अभि-लिखित हो जाते हैं; और उसी पंजी मे लिखे रूप प्रामाणिक माने जाते हैं।

× ×

विधिक और वैध
Legol (1) Lawful (2) Legitimate

'विधिक' सं० विधि का विशेषण रूप है। इसका साधारण अर्थ है विधि का, विधि के क्षेत्र का अथवा विधि सम्बन्धी। परन्तु पारिभाषिक दृष्टि से विधिक ऐसे काम या बात को कहते हैं जो विधि (आईन) पर आश्रित हो अथवा उसके अनुरूप हो; जैसे—विधिक अधिकार, विधिक लिखा-पढ़ी। ऐसी बातो के सम्बन्ध मे कोई झगड़ा या विवाद खड़ा होने पर उन्हे न्यायालय मे निर्णय के लिए उपस्थित किया जा सकता है। जिसका विधि से किसी प्रकार

का लगाव या सम्ब ध हो, उसे भी विधिक कहते हैं, जसे—विधिक क्षेत्र, विधिक यायालय, विधिक सिद्धा त आदि। जो बात विधि की दृष्टि या विचार से देखी, मानी या समझी जाती हो, वह भी विधिक कहलाती है, जसे—विधिक अपराध, विधिक निर्णय आदि।

'वध' भी है तो विधि का ही विशेषण वाला विकारी रूप, पर तु यह सस्कृत याकरण के किसी और नियम से बना है। हि दी मे यह विशेषण आज कल मुख्य रूप से दो अर्थों म प्रचलित है। एक तो वध उसे कहते हैं जो विधि के सिद्धा तो के अनुकूल या अनुरूप हो अथवा जिसकी विधि मे अनुमति हो, जसे—वध आचरण या व्यवहार। जिसे विधि की दृष्टि से मा यता प्राप्त हो उस भी वध कहते हैं, जसे—वध आ दोलन। विधि और वध म मुख्य अ तर यह है कि विधिक का सम्ब ध अक्षरश उ ही बातो से होता है जो विधि म लिखित रूप स वतमान हो, पर तु वध का सम्ब ध विधि शास्त्र के तत्वो और सिद्धातो से होता है। इसके सिवाय जो काम या बातें धार्मिक सामाजिक आदि दृष्टियो से किसी निश्चित मर्यादा या व्यवस्था के अनुसार हो और इसी लिए लोक तथा शासन म मा य हो, वह भी वध कहलाती है, जसे—वध आचरण, वैध विवाह वध सतान आदि। × ×

विनति	प्रार्थना	याचना
1 Prayer	1 Prayer	1 Begging
2 Supplication	2 Request	2 Soliciting

निवेदन आवेदन अभिवेदन और प्रतिवेदन

निवेदन	आवेदन	अभिवेदन	प्रतिवेदन
1 Offering	Application	Repres ntation	Report
2 Submisson			

इस वग के शब्द ऐसी बातो के वाचक हैं जो बडो के प्रति आदर तथा नम्रतापूवक अथवा औपचारिक रूप से या तो कुछ प्राप्त करने की कामना से अथवा उ हें किसी प्रकार की स्थिति से अवगत कराने के लिए कही जाती हैं।

'विनति स्त्री० (स०) का मूल अथ है—अच्छी तरह या पूर्ण रूप स झुकना पर तु प्रस्तुत प्रसग म यह ऐसी बातो का वाचक है जो बडो से उनकी अनुग्रह या कृपा प्राप्त करने के लिए आदर और नम्रतापूवक कही जाती हैं। विनति मुख्यत उच्च अधिकारियो, ईश्वर या दवी दवताओ अथवा समाज के महान् और श्रेष्ठ व्यक्तियों से की जाती है। इसम कुछ तो अपनी दीन हीन अवस्था का उल्लेख होता है और कुछ अपने कष्टो आदि का निवारण अभीष्ट

होता है। हिन्दी मे इसका रूप 'विनती' भी हो जाता है; जैसे--विनती करुणा-निधान सुनिए श्री रघुनन्दन। यो बड़ो से कहा जाता है--आशा है आप भी मेरी विनति पर ध्यान देने की कृपा करेगे। इन अर्थो की दृष्टि से स० 'विनय' इसका पर्याय है।*

'प्रार्थना' स्त्री० [सं०] अर्थना मे प्र उपसर्ग लगने से बना है। अर्थना का पहला और मुख्य अर्थ है—अपने लिए कुछ माँगना या याचना करना। इस लिए अपने हित-साधन के उद्देश्य से बड़ो से जो कुछ कहा जाता है वही अर्थना या प्रार्थना है।

ऊपर विनति के जो अर्थ बतलाए गये है, वही प्रार्थना के भी अर्थ हैं। यदि कुछ अन्तर है तो यह कि विनति का प्रयोग धीरे-धीरे कम होता जा रहा है, और प्रार्थना का प्रयोग बढता जा रहा है। प्रार्थना की विशेषता यह है कि इसमे अपने लाभ के लिए कुछ माँगने या याचना करने का भा भाव प्रधान है; और विनति मे अपनी स्थिति बतलाने का भाव मुख्य है। जिस पत्र पर कोई प्रार्थना लिखी होती है उसे प्रार्थना-पत्र कहते हैं। इसके स्थान पर दरखास्त (फा० दरख्वास्त) का बहुत दिनो से प्रयोग होता आ रहा है।

'याचना' स्त्री० [सं०] का पहला अर्थ है—किसी से कुछ माँगना। पर इस माँगने मे अपनी अशक्तता, आश्रयहीनता, दीनता आदि भी सूचित की जाती है। इसी से 'याचक' बना है, जिसका अर्थ भिक्षुक या भिखमगा होता है। परन्तु अपने परवर्त्ती और विस्तृत अर्थ मे यह ऐसी प्रार्थना का सूचक है जिसमे अपनी विवशता दिखलाते हुए किसी अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति या कार्य की साधना के सम्बन्ध मे अनुरोध किया जाता है। इसी आधार पर अ० Petition का भाव सूचित करने के लिए याचिका शब्द बनाया गया है। यह मुख्यतः प्रशासनिक और विधिक क्षेत्रो का शब्द है। इसमे किसी परम उच्च अधिकारी (राज्यपाल, राष्ट्रपति आदि) अथवा उच्च न्यायालय से कोई विशिष्ट आदेश या निर्णय प्राप्त करने की प्रार्थना की जाती है; जैसे—चुनाव याचिका (Electition Petition) अर्थात् किसी का चुनाव या निर्वाचन रद करने के लिए दी जानेवाली याचिका या समादेश याचिका (Writ of mandamus) अर्थात् कोई राजकीय या विधिक कार्रवाई तुरन्त

---

* एक और क्षेत्र मे विनय का प्रचलित अर्थ जानने के लिए दे० 'शासन, प्रशासन और अनुशासन'।

करते हैं, तब ऐसा विवरण अभिवेदन कहा जाता है। इसके द्वारा हम किसी को सब बातो का स्वरूप स्पष्ट करके तो बतलाते ही हैं, परन्तु परोक्ष रूप से उसके निर्णय या विचार को प्रभावित भी करना चाहते हैं।

'प्रतिवेदन' पुं० [सं०] भी अ० Report का भाव सूचित करने के लिए नया बनाया हुआ शब्द है। जब किसी बडे अधिकारी के पूछने या माँगने पर किसी महत्त्वपूर्ण कार्य, घटना, तथ्य, योजना आदि के सम्बन्ध में छान-बीन, पूछ-ताछ आदि करने के उपरान्त कोई विवरण प्रस्तुत करके भेजा जाता है तब उसे प्रतिवेदन कहते हैं। कुछ अवस्थाओ मे किसी अधिकारी के बिना पूछे या माँगे हुए भी किसी महत्त्वपूर्ण कार्य या घटना के सम्बन्ध की सब बाते उसे बतलाई या लिख कर दी जाती हैं; तब उसे भी प्रतिवेदन कहते हैं। कही आग लग जाने, चोरी होने, डाका पडने या मार-काट होने पर अधीनस्थ कर्मचारियो का भी और कुछ अवस्थाओ मे जनता का भी यह कर्तव्य होता है कि वह इस प्रकार की सब बातें किसी बडे अधिकारी के पास लिख भेजे अथवा किसी चलते हुए काम की प्रगति अथवा उसमें होनेवाली बाधाओ आदि की सूचना बडे अधिकारियो को देना छोटे अधिकारियो का कर्तव्य होता है। ऐसी सभी सूचनाओ का अन्तर्भाव 'प्रतिवेदन' मे होता है।

× ×

विनय—स्त्री० [सं०] १=विनति; दे० 'विनति, प्रार्थना, याचना, निवेदन, आवेदन, अभिवेदन, और प्रनिवेदन'। और २=अनुशासन, दे० 'शासन प्रशासन और अनुशासन'।

विनियम—पु० [सं०] दे० 'विधा, विधान, विनियम, प्रविधान, संविधान और संहिता'।

विपत्ति और संकट

Distress Trouble

इस वर्ग के शब्द ऐसी प्रतिकूल अवस्थाओ, घटनाओ, परिस्थितियो आदि के वाचक हैं जो किसी व्यक्ति, समाज या समुदाय को कष्ट मे डाल कर चिन्तित और दुःखी करती या कर सकती हैं।

'विपत्ति' का मूल अर्थ है अनुचित, प्रतिकूल या विकट दिशा मे जाना, परन्तु साधारणतः लोक-व्यवहार मे इसका अर्थ होता है—ऐसी घटना या स्थिति जिसके फलस्वरूप कष्ट, चिन्ता या हानि अधिक मात्रा मे होती हो

या होने की सम्भावना हो। मृत्यु के कारण किसी परिवार पर, सक्रामक रोग के कारण किसी समाज पर अथवा अकाल या विदेशी आक्रमण के कारण किसी देश पर विपत्ति आ सकती या आती है। विपत्ति का अत आप से आप भी हो सकता है और दूसरो की सहायता से भी। यदि पूरी तरह से अत न हो तो भी दूसरो की सहायता से इसमे बहुत कुछ कमी हो सकती है। इसके साथ प्राय आना, झेलना, टलना टालना, पडना, भुगतना और भोगना क्रियाओ का प्रयोग होता है। सस्कृत मे इसका एक और रूप विपद्' भी होता है। हिन्दी मे मुसीबत (अ०) का प्रयोग भी इसके समार्थक के रूप मे होता है।*

'सकट' का मुख्य अर्थ है—सँकरा या सकीर्ण मार्ग अथवा स्थान। इसी आधार पर दो पहाडो के बीच मे जो बहुत ही तग और छोटा रास्ता होता है उसे भी सकट या गिरि सकट कहते हैं। परन्तु अपने परवर्ती और बहु प्रचलित अर्थ म यह शब्द ऐसी स्थिति का सूचक है जिसम दोनो अथवा सभी ओर कष्ट या विपत्तियाँ दिखाई देती हो और इसी लिए इसम सुख तथा स्वच्छन्दतापूवक निर्वाह करने या रहने के लिए या तो अवकाश बहुत कम रह गया हो या बराबर कम होता हुआ दिखाई देता हो। यह ऐसी कठिन और विकट परिस्थिति का सूचक है जिसमे मनुष्य, देश या समाज का बहुत कुछ अपकार या हानि की सम्भावना हो। इसमे कष्ट या विपत्ति सिर पर आकर पडती तो नही परन्तु इतने पास या सामने आ जाती है कि मनुष्य को अपनी रक्षा के लिए चिन्तित और विकल अवश्य कर देती है। कभी कभी लोग भ्रमवश इसका प्रयोग कष्ट, विपत्ति आदि के पर्याय के रूप म भी कर जाते हैं परन्तु ऐसा करना ठीक नही है। आजकल प्राय समाचार पत्रों आदि म आपात या आपातिक स्थिति की जगह 'सकट कालीन स्थिति पद का प्रयोग भी देखने म आता है। × ×

विपद – स्त्री० [स०] विपत्ति, दे० विपत्ति और सकट'।

विपरीत—वि० [स०] दे० प्रतिकूल विपरीत और विरुद्ध।

विभव—पु० [स०] दे० 'धन, वित्त वभव, सपत्ति और परिसपत्ति'।

विभ्रम—पु० [स०] दे० भ्रम भ्रान्ति मतिभ्रम, विभ्रम और घोर मरीचिका'।

* साधारण बोलचाल म किसी प्रकार की उलझन, झगडे, या बखेडे के काम या स्थिति को भी विपत्ति कहते हैं।

विमर्श—पु० [सं०] दे० 'विचार, परामर्श और विमर्श'।

विमोचन—पु० [सं०] दे० 'अनावरण,उद्घाटन या समारभ और विमोचन'।

विराम सधि—स्त्री० [स०] दे० 'युद्ध-विराम और विराम-सधि'।

विरुद्ध—वि० [स०] दे० 'प्रतिकूल, विपरीत और विरुद्ध'।

विरोध—पु० [स०] दे० 'रोध, अवरोध, गत्यवरोध, निरोध, प्रतिरोध और विरोध'।

विलक्षण—वि० [स०] दे० 'विचित्र. विलक्षण और अद्भुत'।

विलय—पु० [स०] दे० 'लय, प्रलय और विलय'।

विलोम—पु० [स०] दे० 'अनुलोम और विलोम'।

विवक्षा—स्त्री० [स०] दे० 'अर्थ, आशय, ध्वनि और विवक्षा'।

विवश—वि० [स०] दे० 'वध्य, वाध्य, और विवश'।

विवेक—पु० [स०] दे० 'अतर्विवेक और विवेक'।

विश्लेषण और संश्लेषण

Analysis Synthesis

ये दोनो शब्द एक दूसरे के विपर्याय कहे जा सकते हैं। मुख्य रूप से इनका प्रयोग रासायनिक, वैज्ञानिक आदि क्षेत्रो मे तो होता ही है पर कुछ अवस्थाओ मे लाक्षणिक रूप से लोक-व्यवहार के कार्यों और वातो मे भी होता है।

'विश्लेषण'पु० [स०] का पहला अर्थ है—आपस मे मिली वहुत सी चीजो मे से हर एक को अलग या पृथक् करना; परन्तु अपने विकसित अर्थ मे यह ऐसा क्रिया का वाचक हो गया है जो किसी वस्तु का वास्तविक स्वरूप जानने के लिए या उसके गुणो, तत्वो आदि का पता लगाने के लिये उनके अगो या सयोजक द्रव्यो को अलग करने के समय की जाती है। इसमे किसी वस्तु या विषय के सव अगो की इस दृष्टि से वहुत ही सूक्ष्म छान-वीन या जाँच-पडताल की जाती है कि उसके मूल स्वरूप या वास्तविकता का पूरा-पूरा ज्ञान हो जाय। वैज्ञानिक लोग 'किरणो, धातुओ, आदि का तो विश्लेषण करते ही हैं; परन्तु हम किसी के तर्क, मत या विचार का भी इस दृष्टि से विश्लेषण करते हैं कि उसकी उपयोगिता, यर्थाथता आदि का स्वरूप स्पष्ट हो जाय और उसके सम्वन्ध मे किसी को कुछ भ्रम न रह जाय।

साश्लेषण पु० [सं०] का प्राथमिक अर्थ है चीजों का आपस में जोडना या मिलाना अथवा उन्हें आपस में सम्मिलित करके उनका एक रूप बनाना। जो चीज अनेक अंगों उपांगों, या तत्वों के योग से बनती हो उसके सब अंग तत्व आदि एक में मिलाना ही संश्लेषण कहलाता है। इसके अतिरिक्त तार्किक तथा व्यावहारिक क्षेत्रों में नियमों सिद्धान्तों आदि की सहायता से किसी काम या बात के परिणाम या फल का स्वरूप जानना भी 'श्लेषण' कहलाता है। विश्लेषण में तो हम मूल की ओर जाते हैं परन्तु संश्लेषण में हम परिणाम, प्रभाव या विकास की ओर प्रवृत्त होते हैं। × ×

विश्वास	प्रतीति	प्रत्यय	भरोसा
1 Belief 2 Faith	Conviction	Confidence	Reliance
और		मान्यता	
		1 Presumption 2 Tenet	

इस वर्ग के शब्द ऐसी बौद्धिक या मानसिक स्थितियों के वाचक हैं जिनमें हम किसी कार्य वस्तु या व्यापार को बिलकुल ठीक और यथार्थ मान या समझ लेते हैं, और उसी के अनुसार आचरण या व्यवहार करते हैं।

'विश्वास पु० [सं०] का लोक में सबसे अधिक प्रसिद्ध अर्थ है—सामने आई हुई बात को बिलकुल ठीक मान लेना उसके ठीक या सत्य होने पर पूरा भरोसा रखना। परन्तु इसका आशय इसमें कुछ आगे बढ़ा हुआ है। हमारे सामने बहुत सी चीजें या बातें होती हैं। हम उनमें से किसी एक को पूर्णतया ठीक वास्तविक या सत्य मान लेते हैं और उसी के अनुरूप अपना आचरण और व्यवहार रखते हैं। यही उस चीज या बात पर हमारा विश्वास है। यह सकारण भी हो सकता है और अकारण भी साधार भी हो सकता है और निराधार भी। ईश्वर और उसके विधान या नियति पर हमारा अटल विश्वास हो सकता है आपकी विद्या दक्षता, पूजा-पाठ या तन्त्र मन्त्र पर। हम अदृष्ट पर विश्वास रखते हैं और अपने भाग्य पर विश्वास रखकर सब काम करते हैं। इस प्रकार दृढ़ आस्था निश्चय और श्रद्धापूर्वक कोई बात स्थायी रूप से मान लेना ही विश्वास है। यह प्रायः हमारी प्रकृति या स्वभाव का एक अंग हो जाता है। जब हम कहते हैं— ईश्वर पर विश्वास रखो, वह जो करेगा, वह अच्छा ही होगा तब हमारा आशय यही होता है कि हमें ईश्वर के अस्तित्व और उसके नीयत में किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए,

हर तरह से उस पर आश्रित रहना या भरोसा रखना चाहिए। अपने अर्थ के इसी अश मे यह 'भरोसा' का पर्याय है। विश्वास सदा हमारी मनोवृत्ति या मानसिक धारणा पर आश्रित होता है और इसी लिए तर्क-वितर्क आदि से सहसा बदला नही जा सकता। विश्वास मे विचार की दृढता का भाव प्रधान होता है चाहे वह दृढता किसी प्रकार के तर्क-वितर्क या प्रमाण के आधार पर हो और चाहे हमारी आतरिक अनुभूति, मानसिक स्थिति या श्रद्धा के फलस्वरूप हो। इसके स्थान पर अ० के 'एतबार' और 'यकीन' (दोनो पु ं०) का भी व्यवहार होता है।

'प्रतीति' स्त्री० [सं०] प्रतीत का भाव वाचक संज्ञ रूप है। प्रतीत का अर्थ है—अटकल, अनुमान, प्रत्यक्ष दर्शन आदि से ठीक और बुद्धि-ग्राह्य जान पडनेवाला या जान पडता हुआ। इसी आधार पर प्रतीति का मुख्य अर्थ है—किसी विषय का ठीक ज्ञान अथवा निश्चित और स्पष्ट धारणा। परन्तु प्रस्तुत प्रसग में प्रतीति का अर्थ कुछ और विकसित हो गया है। हमारे मन में पहले किसी बात के सम्बन्ध मे कुछ अनिश्चय या सन्देह होता है। पर जब हम अच्छी तरह से देख या समझकर अथवा उसके सम्बन्ध मे कुछ प्रमाण पाकर निश्चित रूप से उसे ठीक मान लेते हैं, तब हमारे मन मे उसके सम्बन्ध में प्रतीति उत्पन्न होती हैं। यह एक प्रकार के दृढ़ निश्चय का वाचक है, इसकी मुख्य विशेषता यह है कि यह प्रायः किसी आधार, कारण, तर्क या प्रमाण पर आश्रित होती है। यथा—(क) 'गुरु के वचन प्रतीति न जेही।' (ख) 'मोरे मन प्रतीति अतिति अति सोई।' तुलसी

'प्रत्यय' पु ं० [स०] को हम 'प्रतीति' और विश्वास का कुछ परिवर्तित और भिन्न रूप ही कह सकते हैं। प्रतीति से इसमे अन्तर यह है कि इसमे कोई आधार कारण, तर्क या प्रमाण अपेक्षित नही होता और विश्वास से इसमे अन्तर यह है कि यह विशुद्ध लौकिक तथा व्यावहारिक होता है, किसी प्रकार की धार्मिक भावना से युक्त नही होता।

यह हमारे मन के ऐसे दृढ-निश्चय या विश्वास का वाचक है जो आप-से-आप उत्पन्न होता है। यह हमारी इद्रिय-जन्य अनुभूति या बौद्धिक मान्यता का ही सूचक होता है। इसी लिए इसे साख्य मे बुद्धि का पर्याय माना है।

'भरोसा' पु० [स० भार=भार या बोझ] का मुख्य अथ है—किसी पर भार रखकर उसके सहारे रहना। इसी लिए यह कुछ अवस्थाओ मे

विश्वास का पर्याय भी होता है। भरोसा हमारी कोरी अनुभूति या मनोवृत्ति का ही सूचक नहीं है, बल्कि इस बात का भी सूचक है कि हम उस अनुभूति या मनोवृत्ति के अनुसार आचरण या कार्य भी करते हैं। जब हम कहते हैं—'हम अपने वैद्य जी पर पूरा भरोसा है वे हमें अच्छा कर ही देंगे,' तब हमारा आशय यही होता है कि हम अपने वैद्य जी को छोड़कर और किसी की चिकित्सा नहीं करेंगे।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कृत बाणभट्ट की कथा में एक जगह आया है—'भट्टिनी मेरे ऊपर विश्वास भले ही रखती हो परन्तु भरोसा नहीं रखती।' आशय यही है कि भले ही वह मुझे प्रामाणिक और सज्जन समझती हो पर उसे यह आशा या निश्चय नहीं है कि उसके आड़े समय में मैं काम आऊँगा या उसकी सहायता करूँगा।

'मान्यता स्त्री० [सं०] वि० मान्य का भाववाचक संज्ञा रूप है। इसका पहला अर्थ है—मान्य होने की अवस्था, गुण, रूप आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह शब्द इस बात का सूचक है कि हमने कोई बात ठीक मान ली है और जब तक यह प्रमाणित न हो कि यह बात ठीक नहीं है तब तक हम इसे प्रामाणिक और विश्वसनीय ही मानते रहेंगे जैसे—हमारी तो यही मान्यता है कि आज कल हिन्दी भाषा के क्षेत्र में बहुत आपा धापी हो रही है और लोग मनमाने ढंग से नए-नए प्रयोग करके उसका स्वरूप विकृत कर रहे हैं। यह तो हुआ इसका वैयक्तिक पक्ष, पर इसके सिवा इसका एक और लोक प्रचलित तथा सार्विक रूप भी है। देश या समाज में प्रथा सिद्धान्त आदि के रूप में कुछ ऐसे तत्व भी होते हैं जिन्हें साधारणतः मान्यता प्राप्त होती है, जैसे—रीति काल की कविता के सम्बन्ध में अलंकार, नायिका भेद रस आदि के सम्बन्ध में अनेक ऐसी मान्यताएँ हैं, जिन्हें आधुनिक प्रगतिशील कवि त्याज्य और निरर्थक समझते हैं। इसके सिवा विज्ञान के क्षेत्र में कुछ ऐसी मान्यताएं होती हैं जिनके सम्बन्ध में न तो किसी प्रकार के तर्क वितर्क या वाद विवाद के लिए कोई अवकाश होता है और न जिन्हें प्रमाणित करने की आवश्यकता होती है ऐसी मान्यताएँ स्वतः सिद्ध होती हैं, जैसे—ज्यामिति में यह मान्यता है कि दो बिन्दुओं के बीच में एक ही सीधी रेखा होती है, दो या अधिक रेखाएँ नहीं हो सकती। धार्मिक राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में पुराने नियमों सिद्धान्तों आदि के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की कुछ मान्यताएं होती हैं। मान्यता की मुख्य विशेषता यह है कि जो कुछ प्रतिपादित हो चुका

है, उसके स्वरूप का हम उतना विचार नही करते; और उसे ठीक मानकर और उस पर विश्वास रखकर उसका प्रयोग या व्यवहार करते हैं।*

इस कोटि के और शब्दों के लिए दे० 'आस्था, निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति'।

× ×

विषय प्रकरण प्रसंग और संदर्भ (अभिदेश)

Subject Topic Context Reference

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातो या विचारो के वाचक है जो हमारी बात-चीत, साहित्यिक-रचनाओ, लेखो आदि मे मूल आधार के रूप मे होती है अथवा जिनका हम किसी उद्देश्य या दृष्टि से उल्लेख अथवा चर्चा करते है।

'विपय' पुं० [स०] के अनेक अर्थ है; जैसे—क्षेत्र या प्रदेश, राज्य, भोग-विलास की सामग्री, सपत्ति आदि। इसका एक और मुख्य अर्थ है—कोई ऐसा तत्व या वस्तु जिसका अनुभव, ग्रहण या ज्ञान इन्द्रियो के द्वारा होता हो, जैसे—गध हमारी नासिका का और रस या स्वाद जिह्वा का विपय है। इससे और आगे वढने पर यह ऐसी चीज या वात का भी वाचक होता है जिसके सम्बन्ध मे कुछ कहा, किया या सोचा-समझा जाय। परन्तु यहाँ इसका मुख्य अर्थ है—कोई ऐसी आधारिक कल्पना या विचार जो किसी प्रकार की रचना के मूल मे होता है और जिसका परिचय प्राप्त करने के लिए हमे अध्ययन, मीमासा या विवेचन करना पड़ता है और जिसके गुण, दोप स्वरूप आदि जानने या समझने के लिए हमे कुछ चिन्तन करना या ध्यान देना पड़ता है। किसी कहानी का विषय सामाजिक आदर्श या कुरीतियाँ हो सकती हैं; काव्य का विपय किसी वीर का चरित्र-वर्णन हो सकता है और नाटक का किसी ऐतिहासिक घटना का निरूपण हो सकता है। इस दृष्टि से ग्रन्थ, लेख आदि मे आयी हुई सभी तरह की बातो का मूल आधार उसका

---

* इसके सिवा आज-कल अ० के Recognition का भाव सूचित करने के लिए भी मान्यता का प्रयोग होने लगा है। मुख्यत: शिक्षा के क्षेत्र मे जब किसी विद्यालय, महाविद्यालय अथवा परीक्षण-सस्थान के सम्बन्ध मे कोई विश्वविद्यालय या शासन यह मान लेता है कि हाँ इसके सब कार्य ठीक तरह से और प्रमाणिक रूप मे होते हैं और हम इसकी परीक्षाओ, उत्तीर्ण विद्या-र्थियो को मिले हुए प्रमाणपत्रो आदि को ठीक और विश्वासनीय मान लेते हैं, तब भी कहा जाता है कि अमुक विद्यालय या सस्थान को अमुक विश्वविद्यालय (या शासन) की मान्यता प्राप्त है।

विषय कहलाता है। इससे और आगे बढने पर इसका प्रयोग चित्र कला आदि म होता है, जसे—किसी चित्र का विषय आखेट या शिकार होता है किसी का ऋतु या प्राकृतिक शोभा और रूप प्रदशन हो सकता है। इसी प्रकार हमारी चर्चा का विषय धम, राजनीति या सामाजिक उत्थान और पतन भी हो सकता है, और खेल कूद, तमाशे सभा समितियो के निणय या निश्चय भी हो सकते हैं।

'प्रकरण' पु० [स०] का मूल अथ है—अस्तित्व मे लाना या उत्पन्न करना, बनाना, रचना आदि। पर इसका परवर्ती अथ होता है—किसी बात या विषय का अच्छी तरह विचार और विवेचन करना अथवा उसे समझना और समझाना। हिन्दी में इसका प्रयोग अध्याय, परिच्छेद आदि की तरह होता है, और ऐसी अवस्था मे यह उस शीषक या साकेतिक सज्ञा का वाचक होता है जो ग्रन्थों आदि म उनके अलग अलग छोटे अगों, खडो विभागो आदि के सूचक होते हैं। परन्तु यहाँ हम प्रकरण को किसी विषय का ऐसा विशिष्ट अग या अश कह सकते हैं जो हमारे वाद विवाद, विचार आदि के लिए हमारे सामने उपस्थित हो और जिसकी चर्चा चल रही हो। ऐसे विषय के सम्बन्ध म लोगो की अनुरक्ति या रुचि भी हो सकती है विभिन्न प्रकार के मत भी हो सकते हैं और उसके विभिन्न प्रकार के परिणाम या सम्भावनाएँ भी हो सकती हैं। किसी विशिष्ट घटना का उल्लेख या विवेचन भी इसके अतगत हो सकता है जसे—(क) अब वाद विवाद का यह प्रकरण समाप्त होना चाहिए। (ख) महाभारत (या रामायण) मे यह प्रकरण विस्तार पूवक आया है। और (ग) उस समय सभा म अकाल (राजनीतिक बन्दियो के साथ होनेवाले दुव्यवहार) का प्रकरण चल रहा था।

'प्रसग पु० [स०] का मूल अथ है—किसी के साथ अच्छी तरह लगा हुआ होना। इसी आधार पर इसके अनुराग लगाव, सम्बन्ध आदि अनेक अथ हैं। परन्तु साहित्यिक क्षेत्र मे यह शब्द किसी कथन, बात, वाक्य या विचार की उस स्थिति का वाचक है जिसमे वह और बातो विचारो आदि के साथ आया या कहा गया हो। इसका सम्बन्ध पहले आई हुई बातो और विचारो के साथ भी होता है और बाद मे आई हुई बातों विचारो आदि के साथ भी। प्रकरण मे तो मुख्य भाव तक वितक वाद विवाद विचार विमश आदि का होता है, परन्तु प्रसग म मुख्य भाव किसी बात का ठीक ठीक अथ या स्वरूप जानना होता है। बहुत से पदों या शब्दो के अनेक अथ होते हैं, परन्तु ऐसे किसी पद या शब्द का ठीक ठीक अथ या आशय तभी समझ म आता है जब यह पता चले कि उसका प्रयोग किस प्रसग म हुआ है।

'सदर्भ' पु० [स०] के आरम्भिक अर्थ हैं—किसी के साथ जोडना या बाँधना, इकट्ठा करना, क्रम से लगाना, व्यवस्थित रूप देना; जैसे—पिरोना, बुनना, सीना आदि। इसका एक और अर्थ बनावट या रचना भी होता है। साहित्यिक क्षेत्र मे इसका वह अर्थ भी होता है जो ऊपर 'प्रसंग' का बतलाया गया है; और इस सीमा तक प्रसग तथा सदर्भ प्रायः समार्थक ही हैं। इसी लिए कहा जाता है—संदर्भ से तो यही जान पडना है कि आपने जो अर्थ लगाया हैं वही ठीक है। इससे और आगे बढने पर इसका प्रयोग ऐसे ग्रन्थों के सम्बन्ध मे होने लगा है जिनका प्रयोग लोग किसी विषय में अपनी जानकारी बढाने या सदेह दूर करने के लिए करते हैं। ऐसे ग्रन्थों को 'सदर्भ-ग्रन्थ' कहते हैं। इस प्रकार के ग्रन्थ साधारणतः आदि से अंत तक पढे नही जाते; केवल अपनी जानकारी बढाने या सदेह दूर करने के लिए यथा-समय देख लिए जाते हैं। जीवनी-कोश, विश्व-कोश, शब्द-कोश, साहित्यिक कोश आदि की गिनती सदर्भ ग्रन्थो मे ही होती है। इसके सिवा इतिहास, दर्शन, विज्ञान आदि के भी अनेक ऐसे वडे-वडे विवेचनात्मक ग्रन्थ होते हैं जिन्हे साधारणतः सब न तो पढ़ते ही हैं और न पढ ही सकते है। हाँ, जब इन विषयो की कोई गूढ, जटिल, विवादास्पद या सदेहात्मक बात सामने आती है, तब ऐसे ग्रन्थो से काम लिया जाता है।* इस प्रकार की बातो की गिनती भी 'सदर्भ' मे ही होती है; और उनके उपयोग की क्रिया भी सदर्भ कहलाती है। अं० के Reference के अनुकरण पर हमारे यहाँ भी सदर्भ मे एक नई विवक्षा लग गई है। हम कहते हैं—(क) हम लोगो के आपसी सम्बन्ध के सदर्भ मे इस प्रकार के झगडे और विवाद बहुत ही अनुचित और अशोभन हैं। अथवा (ख) हमारे यहाँ के गाँवो के संदर्भ मे हमारी आर्थिक प्रगति का स्वरूप कुछ और ही प्रकार का है। ऐसे अवसरों पर 'सदर्भ मे' का अर्थ होता है—किसी चीज या बात की सारी परिस्थितियो और पृष्ठ-भूमि का ध्यान रखते हुए अथवा उनके विचार से।

'अभिदेश' पुं० [स०] का मूल अर्थ है—कोई दिशा (या मार्ग) दिखाना या बताना अथवा उसकी ओर सकेत करना। परन्तु आज-कल साहित्यिक

* सन्दर्भिका स० सन्दर्भ से बना हुआ शब्द है। यह मुख्यतः विशेष प्रकार या विषय के सन्दर्भ-ग्रन्थो की ऐसी सूची होती है, जिसमे उन ग्रन्थो के लेखको, सस्करणो आदि का भी उल्लेख रहना है। यह प्रायः महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के अन्त मे यह दिखलाने के लिए लगाई जाती है कि प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना मे किन-किन ग्रन्थो से सहायता ली गई है; अथवा जो लोग इस विवेच्य विषय की

क्षेत्र में संदर्भ का बहुत कुछ समावेश हो गया है, और संदर्भ ग्रन्थ को अभि-देश ग्रन्थ भी कहने लगे हैं। इससे और आगे बढ़ने पर अं० के Reference का भाव सूचित करने के लिए एक नई विवक्षा भी लग गई है। संदर्भ का क्षेत्र तो ग्रन्थों तक ही परिमित रहता है, परन्तु अभिदेश से ऐसे व्यक्तियों का भी अन्तर्भाव होता है जिनसे किसी विवादास्पद विषय के सम्बन्ध में कोई आदेश, निर्णय या स्पष्टीकरण माँगा जाता है। प्रायः छोटे अधिकारियों के सामने ऐसी बातें आती रहती हैं जिन्हें वे ठीक और पूरी तरह से समझ नहीं पाते अथवा उस सम्बन्ध में कुछ कर सकने में असमर्थ होते हैं। ऐसी बातें वे उच्च अधिकारियों अथवा विशेषज्ञों के पास यह जानने के लिए भेज देते हैं कि यह काम किस प्रकार या कैसा होना चाहिए। इस क्रिया को अभिदेश कहते हैं। *जिन लोगों के पास ऐसी बातें मार्गदर्शन के लिए भेजी जाती हैं,* उन्हें अभिदेशक कहते हैं। × ×

विषाद—पुं० [सं०] दे० 'दुःख, खेद, विषाद और शोक'।

विस्थिति—स्त्री० [सं०] दे० 'आघात, आपातिक स्थिति और अपस्थिति'।

विस्मय—पुं० [सं०] दे० 'आश्चर्य, अचंभा, विस्मय और कुतूहल'।

वीचि—स्त्री० [सं०] दे० 'तरंग, लहर और वीचि'।

वृत्ति — 1 Temperament 2 Disposition; **अभिवृत्ति** — Attitude; **प्रवृत्ति** — Mentality

और

रुचि — Taste

इस वर्ग के शब्द हमारे ऐसे मानसिक गुणों, स्थितियों आदि के वाचक हैं जो हमें औरों से अलग या पृथक् करती और हमारा कुछ स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध करती हैं।

'वृत्ति' स्त्री० [सं०] का मूल अर्थ है—घूमना, चक्कर खाना, घूम फिरकर अपने स्थान पर लौट आना आदि। इस क्षेत्र में आवर्तन, आवृत्ति आदि इसके सहवर्गी शब्द हैं। इसके परवर्ती अर्थों में मुख्य अर्थ हैं—आचरण या व्यवहार, कार्य या व्यापार, काम करने के ढंग या प्रकार, जीविका निर्वाह के उपाय या

विशेष जानकारी प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें और कौन कौन से ग्रन्थ देखने चाहिएँ। अंग्रेजी के Bibliography का अर्थ और आशय सूचित करने के लिए मैंने 'संदर्भिका' रूप रखना ही उचित और उपयुक्त समझा है।

साधन आदि आदि। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में और अपने प्रमुख अर्थ में वृत्ति हमारे चित्त या मन की वह मूल स्थिति है जिसके फलस्वरूप हम अपने सभी कार्य या व्यापार करते हैं। यह हमारे सभी प्रकार के आचरणो और व्यवहारो के अतिरिक्त हमारे गुणो, विशेषताओ और व्यक्तित्व के सामूहिक रूप का सूचक शब्द है। यह हमारे समस्त मानसिक और शारीरिक तत्रो का वह मूल आधार है जो जन्म-जात और सहज होता है। इस दृष्टि से हम इसे आचरण और व्यवहार का मूल मानसिक स्रोत और बहुत कुछ प्राकृतिक और स्वाभाविक ही कह सकते है। हम कहते हैं वह बहुत ही शात और साधु-वृत्ति का आदर्श व्यक्ति है अथवा उसकी वृत्ति ही कुटिल और दुष्टतापूर्ण है। फिर भी हमे मानना पडता है कि कुछ विशिष्ट अवस्थाओ मे इसमे कुछ परिवर्तन या विकार भी होता रहता है; और इसी लिए हम इसे एक दूसरे आशय या विवक्षा की सूचक भी मान सकते है। यह परिवर्तन या विकार चित्त या मन के सयोग से ही होता है। हम कहते है—मनुष्य की वृत्ति एक सी नही रहती। ऐसे अवसरो पर वृत्ति से हमारा आशय होता है चित्त-वृत्ति या मनोवृत्ति जो वास्तविक वृत्ति से बहुत कुछ भिन्न है।*

'अभिवृत्ति' स्त्री० [स०] उक्त वृत्ति मे अभि उपसर्ग लगाकर बनाया हुआ इधर हाल का और नया शब्द है। यह मुख्यत. हमारे कुछ करने-धरने, सोचने-समझने आदि के उस विशिष्ट ढंग का वाचक शब्द है, जिससे हमारी प्रवृत्ति, मत, विचार आदि का पता चलता है; जैसे—आज-कल हमारे प्रति उनकी अभिवृत्ति कुछ बदली हुई है। इसके अतिरिक्त यह उस मानसिक स्थिति का भी वाचक है जिसके आधार पर कोई व्यक्ति प्रस्तुत घटनाओ, वस्तुओ आदि का मूल्याकन करता है। पर यह अनुकूल भी हो सकती है, और प्रतिकूल भी, और परिस्थितियों के अनुसार इसमे परिवर्तन भी होता रहता है; जैसे—आज-

---

* इसके अतिरिक्त वृत्ति के कुछ और अर्थ भी है; जैसे—किसी कठिन और विशेषत: सूत्र-ग्रथ की टीका या व्याख्या, शब्दो की अभिधा, लक्षणा और व्यजना नामक तीनो शब्द शक्तियाँ, व्याकरण मे गूढ और जटिल वाक्य-रचना आदि आदि। इसके सिवा हमारे यहाँ के प्राचीन साहित्य शास्त्रीय हमारी मानसिक और शारीरिक चेष्टाओ को भी वृत्ति कहते थे। इसका कारण यही है कि ऐसी चेष्टाओ से हमारे मन के भाव और स्थितियाँ औरो पर प्रकट होती हैं। इसी लिए काव्य-शास्त्र और नाट्य-शास्त्र मे कई प्रकार की वृत्तियाँ मानी गई हैं, जिनके विवेचन, धारणा और सूक्ष्म भेद उक्त शास्त्रो के प्राचीन ग्रंथो मे देखे जा सकते हैं।

अन्त शिक्षित समाज मे साधारण कविताओ और कहानियो के प्रति उपेक्षा दिखाने की अभिवृत्ति कुछ बढ रही है। यह मुख्यत तात्कालिक होती है, और विशेष स्थायी नही होती।

'प्रवृत्ति' स्त्री० स० के मूल अर्थ हैं अग्रसर होना या आगे बढना उन्नति या प्रगट होना, क्रियाशीलता, परिश्रम आदि। इसका एक मुख्य अर्थ कोई काम पूरा करने के लिए उसमे अच्छी तरह मन लगाना भी है। हमारे यहाँ के दार्शनिक और धार्मिक क्षेत्रो म इसका प्रयोग वह अवस्था सूचित करने के लिए होता रहा है जिसम वह घर-गृहस्थी सासारिक कार्यों, सुख भोगो आदि म ही लगा रहता है। इसका विपर्याय निवृत्ति है जो सासारिक कार्यों को छोडकर अध्यात्म, ईश्वर चिंतन और परलोक साधन म लगने का वाचक है। परन्तु आज कल इसका प्रयोग मन की वह स्थिति सूचित करने के लिए होता है जिसम वह अपने किसी प्रिय और रुचिकर काम म अधिक मनोयोगपूर्वक लगता है। जिसका आशय है किसी काम की ओर झुकना अर्थात् उसे औरो स अधिक आवश्यक उपयोगी या मनोरजक मान कर अधिक ध्यानपूर्वक उसम लगना या प्रवृत्त होना। प्रवृत्ति प्राकृतिक या स्वाभाविक भी हो सकती है और अर्जित भी। इसका स्वरूप अभिवृत्ति का भा ा अधिक स्थायी भी होता है, और प्राय परिवतनशीलता से रहित भी। यह या तो हमारी रुचि के अग क रूप म होती है, और या उसकी परिचायक होती है, जसे—(क) कुछ बालको म चित्रकला की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, और (ख) उनम प्राय लडाई झगडे स अलग और दूर रहन की प्रवृत्ति प्राय देखन म आती है। कोइ अच्छा काम या नई बात सामने आने पर उसके प्रति भी हमारे मन म प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है। इसके स्थान पर हिंदी म झुकाव का भी प्रयाग होता है।

'मनोवृत्ति' का तात्पर्य है—मन की वृत्ति। परन्तु अपने प्रचलित अर्थ म यह हमारे मन की उस शक्ति की भी वाचक है जिसस हम सब बातें सोचते समझते हैं और उस स्थिति की भी वाचक है जो कोई बात सोचते समझते के समय हमारे मन म उत्पन्न होती है। इसम एक विशेषता यह भी है कि परिस्थितियो और समय के अनुसार यह बराबर बदलती भी रहती है। हम कहते है—इस समय हमारी मनोवृत्ति ऐसी नहीं है कि हम आपकी बातें अच्छी तरह समझ या सुन सकें। आशय यही होता है कि इस समय हमारा ध्यान या तो कुछ और बातों की तरफ है या हमारे मन म किसी और बात की चिन्ता है। यह तो है तात्कालिक परिस्थिति के कारण होनेवाली मनोवृत्ति

का स्वरूप । हम यह भी कहते है—उनकी मनोवृत्ति मे उदारता और दान-शीलता सदा से प्रधान रही है । ऐसे अवसरो पर मनोवृत्ति मन के स्वाभाविक गुण और शक्ति की परिचायक होती है ।

'रुचि' का पहला अर्थ है—आभा, चमक या प्रकाश, और दूसरा अर्थ है—छवि, शोभा या सुन्दरता । परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे यह मन की वह स्थिति सूचित करती है जिसमे हमे कोई काम, चीज या वात अच्छी, आकर्षक और प्रिय जान पड़ती है; और इसी लिए जो हमारा ध्यान या मन विशेष रूप से अपनी ओर आकृष्ट करती और हमे अपनी ओर प्रवृत्त करती है । प्रवृत्ति में तो मुख्य तत्त्व हमारी प्रकृति या स्वभाव का होता है, परन्तु रुचि मे मुख्यता उस चीज या विपय के गुण, विशेपता, सौन्दर्य आदि की होती है जो हमे अपनी ओर आकृष्ट करती है । फिर भी यह नही कहा जा सकता कि रुचि पूर्णतया और सर्वथा वस्तुनिष्ठ ही होती है । कुछ अवस्थाओ मे वह व्यक्ति-निष्ठ भी होती है; जैसे—कुछ लोगो मे वचपन से ही मधुर खाद्य पदार्थो की ओर और कुछ में कटु, तिक्त आदि पदार्थो की रुचि होती है । इस आधार पर कहा जा सकता है कि रुचि का मुख्य आधार मन को अच्छा लगना या भाना ही है । × ×

वेदना और व्यथा

Agony Anguish

इस वर्ग के शब्द हैं तो मुख्यत' वहुत अधिक मानसिक कष्ट या क्लेश के वाचक ही; परन्तु या तो अर्थ के विकास के कारण या भ्रमवश शारीरिक कष्टो या क्लेशो के भी वाचक हो गये हैं ।

'वेदना' स० के 'वेदन' का विकारी रूप है जिसका एक अर्थ है—घोपणा करना या जोर से कहकर सव लोगो को कोई बात सुनाना । इसका दूसरा अर्थ—ज्ञान या परिचय प्राप्त करना भी होता है । परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे यह कष्ट या पीड़ा के उस वहुत वढे हुए रूप का वाचक है जो हमारे सवेदन सूत्रों पर वहुत ही अप्रिय और तीक्ष्ण प्रभाव उत्पन्न करके हमे विचलित कर देता है । मानसिक पीड़ा जब वहुत उग्र रूप धारण करती है तव उसे वेदना कहते हैं । यह प्रायः अभाव, वियोग आदि से उत्पन्न होती और अपेक्षया स्थायी होती है । परन्तु कुछ अवस्थाओ मे इसका प्रयोग वहुत वढा हुआ शारीरिक कष्ट या पीडा सूचित करने के लिए भी होता है; जैसे—स्त्रियों को प्रसव के समय होनेवाली वेदना; रोगियो को मृत्यु के समय होनेवाली वेदना आदि ।

'व्यथा' को हम वेदना का कुछ हलका रूप कह सकते हैं। वेदना की तरह यह मानसिक और शारीरिक दोनो प्रकार की होती है, पर इसमे उग्रता या तीव्रता की मात्रा उतनी अधिक नही होती जितनी वेदना मे होती है। और इसी लिए इसका रूप विशेष स्थायी भी नही होता। साधारण लोक व्यवहार मे इसका प्रचलन शारीरिक कष्ट के प्रसग मे ही देखने म आता है। बहुत अधिक चलने फिरने या शारीरिक श्रम करने से अगो मे जो अधिक पीडा होती है प्राय वही व्यथा कहलाती है। साधारण दु खद प्रसगो म भी कहा जाता है—इस प्रकार के व्यवहारो से लोगो के मन में व्यथा होना स्वाभाविक है। उक्त दोनो उदाहरणो मे 'व्यथा' की जगह वेदना का प्रयोग प्राय नही होता। इसी प्रकार प्रसव या मृत्यु के समय होनेवाले कष्ट का भाव सूचित करने के लिए प्राय वेदना' का ही प्रयोग देखने मे आता है व्यथा का नही।

इस वर्ग के अन्यान्य शब्दो के लिए दे० 'पीडा, यत्रणा और यातना'। ⋋ ×

वेला—स्त्री० [स०] दे० काल, वेला, और समय।

वैकल्पिक—वि० [स०] दे० 'अनुकल्प और विकल्प'।

वैध—वि० [स०] दे० 'विधिक और वैध'।

वैभव—पु० [स०] दे० 'धन, वित्त, वैभव और संपत्ति'।

वैमनस्य द्वेष शत्रुता वैर और रिपुता

1 Animosity Antagonism Enmity Enmity Hostility
2 Spite

इस वर्ग के शब्द पारस्परिक सम्बन्धों का ऐसी बिगडी हुई स्थितियों के वाचक हैं जिनमे दूसरो के प्रति मन मे घृणा या दुर्भाव रहता है और उन्हे यथासाध्य कष्ट या हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति होती है और अवसर मिलने पर उनका अहित भी किया जाता है।

'वैमनस्य' पु० [स०] वस्तुत विमनस का भाववाचक रूप है जिसका अर्थ है—अनमना। इस प्रकार वैमनस्य मूलत अनमनेपन या उस स्थिति का वाचक है जिसमे चिंतित या दुःखी रहने के कारण मनुष्य का मन किसी काम मे नही लगता। इसलिए वैमनस्य का शाब्दिक अर्थ होता है—मानसिक अवसाद या ऐसा खेद जिससे मनुष्य का सारा उत्साह ठडा पड गया हो और वह सब बातों से विरक्त सा हो रहा हो। परन्तु विमनस् का एक और अर्थ

होता है—जिसके मन में विकार उत्पन्न हुआ हो। इसी आधार पर पारस्परिक व्यवहार की उस स्थिति को भी वैमनस्य कहते हैं जिसमे दोनो पक्षों के मन मे एक दूसरे के प्रति कुछ विकृत भाव उत्पन्न हो गये हो। अतः हिन्दी मे यह शब्द आपस मे होनेवाले बिगाड़ या मनमुटाव का वाचक हो गया है। जहाँ पहले आपस मे सद्भाव रहता आया हो वहाँ यदि किसी कारण से दुर्भाव या विरोध उत्पन्न हो गया हो तो वहाँ कहा जाता है कि अब उन लोगो में वैमनस्य हो गया है। इसमे शत्रुता अथवा दूसरे को हानि पहुँचाने का भाव प्रायः छिपा या दवा हुआ रहता है और कोई नई विशिष्ट विरोधी स्थिति उत्पन्न होने पर ही यह कार्य रूप मे परिणत या प्रत्यक्ष होता है। हम कहते हैं—दोनो परिवारो मे बहुत दिनो से वैमनस्य चला आ रहा है; अथवा—व्यर्थ आपस मे वैमनस्य बढाना ठीक नही। आशय यही होता है कि इस प्रकार का दुर्भाव आगे चलकर दोनों पक्षो के लिए हानिकर सिद्ध हो सकता है।

'द्वेष' पु० [स०] द्विष् से बना है। द्विष् का अर्थ है—किसी को अपना प्रतिद्वंद्वी और फलतः अपने से अलग या पराया समझकर उससे घृणा करना। यह मन की ऐसी स्थिति का सूचक है जिसमें अवसर मिलते ही दूसरे को नीचा दिखाने या हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति सहज मे बढ जाती या अपना कार्य करने लगती है। इसी मे वि उपसर्ग लगने से विद्वेष बनता है जो इसका कुछ और उग्र तथा तीव्र रूप होता है।

'शत्रुता' वस्तुतः विद्वेष और वैर का वह खुला हुआ और स्पष्ट विकास है जो प्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील होकर सामने आता है। जिसके प्रति हमारे मन मे शत्रुता का भाव होता है उसे हम सदा कष्ट पहुँचाने और पीड़ित करने की ताक मे लगे रहते हैं। आपस मे जो झगडे और लडाइयाँ होती हैं वे इसी के परिणाम हैं; और झगडे, लड़ाई आदि के परिणामस्वरूप शत्रुता और भी बढ़ सकती तथा स्थायी हो सकती है। इसके मूल मे सदा कुछ निजी कारण या वैयक्तिक स्वार्थ होते हैं। जातियों, देशो, राष्ट्रों आदि में जो पारस्परिक शत्रुता होती है, वह मूलतः इन्ही कारणो से होती है। कभी-कभी कुछ कारणों से दब भी सकती और फिर नये सिरे से उत्पन्न होकर बढ भी सकती है। पर कुछ अवस्थाओ मे (आपस मे मेल या सधि आदि होने पर) इसका तात्कालिक या स्थायी रूप से अन्त भी हो सकता है।

'वैर' शब्द स० वीर से बना हुआ उसका भाव वाचक रूप है। और इस दृष्टि से इसका अर्थ है—वीर का काम या वीरता। परन्तु अब इसका यह

'व्यथा' को हम वेदना का कुछ हलका रूप कह सकते हैं। वेदना की तरह यह मानसिक और शारीरिक दोनो प्रकार की होती है, पर इसमें उग्रता या तीव्रता की मात्रा उतनी अधिक नही होती जितनी वेदना म होती है, और इसी लिए इसका रूप विशेष स्थायी भी नही होता। साधारण लोक व्यवहार मे इसका प्रचलन शारीरिक कष्ट के प्रसग मे ही देखने मे आता है। बहुत अधिक चलने फिरने या शारीरिक श्रम करने से अगो मे जो अधिक पीडा होती है प्राय वही व्यथा कहलाती है। साधारण दु खद प्रसगो मे भी कहा जाता है—इस प्रकार के व्यवहारो से लोगो के मन मे व्यथा होना स्वाभाविक है। उक्त दोनो उदाहरणो मे 'व्यथा' की जगह वेदना का प्रयोग प्राय नही होता। इसी प्रकार प्रसव या मृत्यु के समय होनेवाले कष्ट का भाव सूचित करने के लिए प्राय 'वेदना' का ही प्रयोग देखने म आता है व्यथा का नही।

इस वग के अयाय शब्दो के लिए दे० 'पीडा, यत्रणा और यातना'। × ×

वेला—स्त्री० [स०] दे० काल, वेला, और समय।
वकल्पिक—वि० [स०] दे० 'अनुकल्प और विकल्प'।
वध—वि० [स०] दे० 'विधिक और वध।
वभव—पु० [स०] दे० 'धन, वित्त, वभव और सपत्ति'।

वैमनस्य द्वेष शत्रुता वैर और रिपुता

1 Animosity Antagonism Enmity Enmity Hostility
2 Spite

इस वग के शब्द पारस्परिक सम्बधो की ऐसी बिगडी हुई स्थितियो के वाचक हैं जिनमे दूसरो के प्रति मन मे घृणा या दुर्भाव रहता है और उन्हे यथासाध्य कष्ट या हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति होती है और अवसर मिलने पर उनका अहित भी किया जाता है।

'वमनस्य' पु० [स०] वस्तुत विमनस् का भाववाचक रूप है जिसका अर्थ है—अनमना। इस प्रकार वमनस्य मूलत अनमनेपन या उस स्थिति का वाचक है जिसमे चिंतित या दु खी रहने के कारण मनुष्य का मन किसी काम मे नही लगता। इसलिए वमनस्य का शाब्दिक अर्थ होता है—मानसिक अवसाद या ऐसा खेद जिससे मनुष्य का सारा उत्साह ठढा पड गया हो और वह सब बातो से विरक्त सा हो रहा हो। परन्तु विमनस् का एक और अर्थ

होता है—जिसके मन मे विकार उत्पन्न हुआ हो। इसी आधार पर पारस्परिक व्यवहार की उस स्थिति को भी वैमनस्य कहते हैं जिसमे दोनो पक्षो के मन मे एक दूसरे के प्रति कुछ विकृत भाव उत्पन्न हो गये हो। अतः हिन्दी में यह शब्द आपस मे होनेवाले बिगाड़ या मनमुटाव का वाचक हो गया है। जहाँ पहले आपस मे सद्भाव रहता आया हो वहाँ यदि किसी कारण से दुर्भाव या विरोध उत्पन्न हो गया हो तो वहाँ कहा जाता है कि अब उन लोगों मे वैमनस्य हो गया है। इसमे शत्रुता अथवा दूसरे को हानि पहुँचाने का भाव प्रायः छिपा या दबा हुआ रहता है और कोई नई विशिष्ट विरोधी स्थिति उत्पन्न होने पर ही यह कार्य रूप मे परिणत या प्रत्यक्ष होता है। हम कहते हैं—दोनो परिवारो मे बहुत दिनो से वैमनस्य चला आ रहा है; अथवा—व्यर्थ आपस मे वैमनस्य बढाना ठीक नही। आशय यही होता है कि इस प्रकार का दुर्भाव आगे चलकर दोनों पक्षो के लिए हानिकर सिद्ध हो सकता है।

'द्वेष' पुं० [सं०] द्विष् से बना है। द्विष् का अर्थ है—किसी को अपना प्रतिद्वंद्वी और फलतः अपने से अलग या पराया समझकर उससे घृणा करना। यह मन की ऐसी स्थिति का सूचक है जिसमे अवसर मिलते ही दूसरे को नीचा दिखाने या हानि पहुँचाने की प्रवृत्ति सहज में बढ जाती या अपना कार्य करने लगती है। इसी में वि उपसर्ग लगने से विद्वेष बनता है जो इसका कुछ और उग्र तथा तीव्र रूप होता है।

'शत्रुता' वस्तुतः विद्वेष और वैर का वह खुला हुआ और स्पष्ट विकास है जो प्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील होकर सामने आता है। जिसके प्रति हमारे मन मे शत्रुता का भाव होता है उसे हम सदा कष्ट पहुँचाने और पीड़ित करने की ताक मे लगे रहते हैं। आपस मे जो झगडे और लड़ाइयाँ होती हैं वे इसी के परिणाम हैं; और झगडे, लड़ाई आदि के परिणामस्वरूप शत्रुता और भी बढ सकती तथा स्थायी हो सकती है। इसके मूल मे सदा कुछ निजी कारण या वैयक्तिक स्वार्थ होते है। जातियों, देशो, राष्ट्रो आदि मे जो पारस्परिक शत्रुता होती है, वह मूलतः इन्ही कारणो से होती है। कभी-कभी कुछ कारणो से दब भी सकती और फिर नये सिरे से उत्पन्न होकर बढ भी सकती है। पर कुछ अवस्थाओ मे (आपस मे मेल या संधि आदि होने पर) इसका तात्कालिक या स्थायी रूप से अन्त भी हो सकता है।

'वैर' शब्द सं० वीर से बना हुआ उसका भाव वाचक रूप है। और इस दृष्टि से इसका अर्थ है—वीर का काम या वीरता। परन्तु अब इसका यह

व्युत्पत्तिक अर्थ इसमें से निकल गया है, और इसमें दुश्मनी या शत्रुता का सूचक एक नया अर्थ आ गया है। साधारणतः शत्रुता और वैर दोनों एक दूसरे के पर्याय माने जाते हैं, परन्तु कुछ प्रयोगों के आधार पर मुझे ऐसा जान पड़ता है कि वैर में शत्रुता के बहुत बढ़े हुए रूप का भाव सम्मिलित है। शत्रुता का तो अनुकूल स्थितियों में अन्त भी हो जाता है, परन्तु वैर अपेक्षया अधिक तीव्र और स्थायी अथवा दीर्घकाल-व्यापी होता है। मेरी इस धारणा के मुख्य आधार कई प्रकार के प्रयोग हैं। लोक में नेवले और साँप का 'वैर' ही प्रसिद्ध है, शत्रुता नहीं। इन दोनों का जब जहाँ सामना होता है तब दोनों में बहुत जबरदस्त लड़ाई होती है, और प्रायः साँप की जान जाती है। नेवले के बारे में यह प्रसिद्ध है कि लड़ाई में जब साँप उसे काटता है तब वह उसके विष के प्रभाव से बचने के लिए किसी जंगल या झाड़ी में जाकर कोई जड़ी खाता और इस प्रकार अपने प्राण बचाता है। तात्पर्य यह कि वैर का परिणाम प्रायः प्राणान्तक होता है। एक और कहावत है—पानी में रहकर मगर मच्छों से वैर। इसमें भी प्राणान्तक संकट की ओर ही संकेत है। इन बातों का समर्थन 'वीर' शब्द की एक विशिष्ट विवक्षा से भी होता है। प्राचीन भारतीय वीरों के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे विरोधी के सामने झुकना या दबना नहीं जानते थे और मान पर जान देते थे। 'न दैन्यं न पलायनम्' ही उनका सिद्धान्त होता था। कभी कभी तो पारस्परिक वैर पीढ़ियों तक चलता था। इसी आधार पर लोक में 'बप्पा वैर' पद बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध है, जिसका अर्थ है—बाप दादा के समय से चला आनेवाला वैर। एक और बात है। किसी अवसर पर पागलपन या मूर्खता के वश में होकर हम स्वयं अपने साथ शत्रुता तो कर सकते हैं अथवा अपने शत्रु आप बन सकते हैं, परन्तु हम कभी स्वयं अपने वैरी नहीं हो सकते।

ऊपर हमने नेवले और साँप की चर्चा की है। कहते हैं कि बन्दर जब साँप को पकड़ लेता है तब पत्थर पर उसका सिर रगड़कर उसे मार डालता है। इसी प्रकार मोर के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह साँप को पकड़कर निगल जाता है और फिर अपने चंगुल से उसकी दुम पकड़कर जब उसे खींचकर बाहर निकालता है तब उसकी ठठरी मात्र बाहर निकलती है। बन्दर अथवा मोर और साँप का 'वैर' कदाचित् इसी लिए शत्रुता नहीं कहा जाता कि साँप उनके साथ लड़ने अथवा उनका नाश करने में समर्थ होता है। वैर अनिवार्य रूप से दोनों पक्षों में प्रायः समान होता है, परन्तु बन्दर या मोर और साँप के सम्बन्ध में यह वैर भाव उस प्रकार समान नहीं होता जिस प्रकार नेवले और साँप में होता है।

'रिपुता' स्त्री० [सं०] रिपु का भाववाचक रूप है। लोक मे साधारणतः रिपुता, शत्रुता और वैर तीनो एक दूसरे के पर्याय माने और समझे जाते हैं परन्तु जिस प्रकार 'वैर' की तुलना मे 'शत्रुता' कुछ हल्का शब्द है, उसी प्रकार शत्रुता की तुलना मे रिपुता भी कुछ कम तीव्र और हल्के रूप का सूचक है। हमारे धर्मशास्त्रो के अनुसार काम, क्रोध, भय, मोह, लोभ और अहकार ये छः मनुष्य के छः रिपु ही कहे गए हैं। भले ही बोल-चाल में हम इन्हे मनुष्य का शत्रु कह ले, पर हैं ये वस्तुतः रिपु ही। ज्योतिष मे भी कष्ट देने या हानि पहुँचानेवाले ग्रह भी रिपु ही कहे जाते हैं, शत्रु या वैरी नही। जन्म-कुण्डली मे इनका घर रिपु-स्थान कहलाता है। कारण यही जान पड़ता है कि ये सब हमारा अनिष्ट तो करते ही हैं, पर उस रूप मे नही जिसमे शत्रु या वैरी करते हैं। ऐसी अवस्थाओ मे इनकी रिपुता एक-पक्षीय ही होती है। हमारे मन मे इनके प्रति द्वेष या विरोध का कोई भाव नही होता। परन्तु मानव व्यवहारो मे रिपुता एक-पक्षीय भी हो सकती है और उभयपक्षी थी। वास्तव मे यह हमारे मन मे दबा रहनेवाला ऐसा मनोविकार है, जो कुछ विशिष्ट अवसरो पर ही प्रकट होकर अपना कार्य करता है। आपसी लड़ाई-झगडे, युद्ध आदि के अवसरो पर ही रिपुता प्रकट होती और अपना कार्य करती है। × ×

बैर—पु० [सं०] दे० 'वैमनस्य, द्वेष, शत्रुता, वैर और रिपुता'।

व्यंग्य कटाक्ष (छींटा) चुटकी
Irony Sarcasm Twit
ताना और बोली
Taunt Rally

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातो के वाचक हैं जो मुख्यतः मन का भाव कुछ अतिरंजित और वक्र रूप मे तथा कुछ नए और रोचक ढंग से कही जाती हैं। ऐसी बाते सहज मे दूसरो का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट तो करती ही है, साथ ही लोगो के लिए मनोरंजक और विनोदकारक भी होती हैं। एक और विशेषता यह है कि जिस व्यक्ति के विषय मे ये बाते कही जाती हैं उसे बहुत कुछ चुभती और खटकती हैं; और उसे ऐसा जान पड़ता है कि मुझ पर कड़ी चोट या प्रहार किया गया है।

'व्यग्य पु० [स०] ऐसा व्यापक शब्द है जिसके अ तगत बहुत सी बातें होती हैं। शब्द की जिस व्यजना शक्ति से इसकी सृष्टि होती है, उसका हमारे साहित्य मे बहुत विस्तृत विवेचन हुआ है। इस प्रकार निकलनेवाले अर्थ को 'ध्वनि' कहा गया है। शब्द की व्यजना शक्ति की मुख्य बातें पहले 'शब्द और अर्थ' शीर्षक प्रकरण म शब्द शक्ति के विवेचन म बतलाई जा चुकी है। जिस 'ध्वनि' को व्यग्य का मूल कहा गया है, उसकी मुख्य बातें जानने के लिए 'अर्थ, आशय, ध्वनि और विवक्षा' शीर्षक माला के अतगत 'ध्वनि' का विवेचन देखना चाहिए जिसम व्यग्य के कुछ उदाहरण भी दिए गए हैं। यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं कि व्यग्य ऐसी बातो का वाचक है जिनम कुछ कटुता या तीक्ष्णता हो, और साथ ही कुछ कौशलपूर्ण आक्षेप और कुछ परिहास भी मिला हो। व्यग्य का यह तत्व उसके शब्दो पर नही बल्कि उसकी पद रचना या शब्द योजना पर आश्रित होता है। यदि हम किसी साधारण योग्य, परन्तु अभिमानी, घमडी या स्वार्थी व्यक्ति के सम्बन्ध म उसे नीचा दिखाते हुए लज्जित करने या उसकी हँसी उडाने के लिए कहें— आपकी क्या बात है। आप बहुत बडे स्वार्थ त्यागी, देश भक्त अथवा गणमान्य पडित हैं तो यह उस व्यक्ति पर व्यग्य होगा। इसका प्रयोग मुख्यत उस समय होता है जब किसी के सिद्धात और आचरण या कथनी और करनी म बहुत अन्तर दिखाई देता है। इसका उद्देश्य किसी प्रकार की असगति अथवा अवास्तविकता सिद्ध करना होता है।

'कटाक्ष पु० [स०] का शब्दार्थ है—तिरछी चितवन या नजर। तात्विक दृष्टि से तिरछी या टेढ़ी नजर क्रोध, रोष या उग्र विरोध सूचित करनेवाली तो होती है, परन्तु ऐसा भाव सूचित करनेवाले प्रयोग बहुत कम देखने म आते हैं। हाँ शृगारिक क्षेत्र म इसका प्रयोग प्रेमिकाओ और प्रेमियो की ऐसी रसात्मक दृष्टि सूचित करने के लिए होता है जो हाव भाव आदि से युक्त हो, परन्तु प्रस्तुत प्रसग म इसे हम व्यग्य का कुछ सूक्ष्म या हलका रूप ही कह सकते हैं और इसे व्यग्य का बहुत कुछ पर्याय मान सकते हैं। यदि कुछ अन्तर है तो यही कि व्यग्य बहुत कुछ चुभता हुआ होने पर भी प्राय हास्य प्रधान होता है, और कटाक्ष का मुख्य उद्देश्य किसी को कुछ नीचा दिखाना अथवा लज्जित करना होता है जैसा—'अपने भाषण में उन्होंने सभापति पर भी कई कटाक्ष किए थे।' साधारण बोल चाल म इसी का द्योतक भी कहते हैं पर वास्तव म कटाक्ष से द्योतक कुछ हलका तथा अपेक्षया कम स्पष्ट होता है और इसी लिए वह सम्यता भी कम ही है। द्योतक और कटाक्ष में एक और अन्तर यह भी

है कि कटाक्ष तो निरन्तर एक पर एक हो सकते है, पर छीटा प्रायः अकेला अथवा बीच-बीच मे कही एकाध ही होता है। इसके साथ प्रायः 'कसना' क्रिया का प्रयोग होता है।

'चुटकी' स्त्री० वस्तुतः अगूठे या तर्जनी की वह मुद्रा है जिससे किसी के शरीर के मास का कुछ अश पकड़कर इस प्रकार दवाया जाता है कि शरीर मे कुछ पीडा उत्पन्न हो। इसी को कही-कही चिकोटी भी कहते हैं। पर प्रस्तुत प्रसग मे चुटकी का लाक्षणिक अर्थ भी वही है जो कटाक्ष का है। फिर भी कटाक्ष से चुटकी कुछ हल्की होती है और इसी लिए कुछ अवसरो पर इसके साथ 'मीठी' विशेषण का भी प्रयोग होता है। इसके साथ केवल 'लेना' क्रिया का प्रयोग होता हैं। ऊपर कटाक्ष के सम्बन्ध मे उदाहरण स्वरूप जो वाक्य दिया गया है उसका कोमल तथा हल्का रूप यह भी हो सकता है—'उनके भाषण में सभापति पर भी एक मीठी चुटकी थी'।

'ताना' पुं० अ० तअनऽ से बना है जिसका अर्थ है—किसी पर बरछी या भाला चलाना और दूसरा लाक्षणिक अर्थ होता है—किसी की निंदा या बुराई करना। पर हिन्दी मे ताना का अर्थ इससे दूर जा पडता है। हिन्दी मे इसका अर्थ है—ऐसी कटु उक्ति जो किसी को उसके किसी हीन कार्य या स्थिति के लिए कुछ लज्जित करे। इसमे उपहास और परिहास का तत्व तो विलकुल नही होता; हाँ तीक्ष्णता या तीव्रता की मात्रा वहुत अधिक और उग्र होती है। जिसने हमारे उपकार करने पर भी हमारा अपकार किया हो अथवा ऐसा ही और कोई अनुचित या निंदनीय कार्य किया हो, उसे लज्जित करने के लिए जव तीखे शब्दो मे उस अनुचित या निंदनीय वात का उल्लेख किया जाय, तो उसे 'ताना' कहते हैं। यह किसी पुरानी घटना या वात से सवद्ध होता है, इसके साथ दो क्रियाओ का प्रयोग होता है—'देना' और 'मारना'। साधारणतः ताना देना ही वोला जाता है, पर स्त्रियाँ प्राय ताना मारना भी कहती हैं।

'वोली' (हिं० वोलना से व्युत्पन्न) भी है तो एक प्रकार का चुभता हुआ व्यंग्य ही, पर यह प्रायः अन्योक्तिवाले तत्त्व से युक्त होती है; और इसके साथ सदा वोलना क्रिया का प्रयोग होता है। जव किसी को सुनाने के लिए स्वय अपने आप पर या किसी दूसरे पर आरोपित करके कोई व्यंग्य किया जाता है, तव उसे वोली वोलना कहते है। मान लीजिए कि कोई देहाती आदमी शहर मे आकर वस जाता और शहराती वन जाता है। वह अपने आपको देहाती मानने मे लज्जा का अनुभव करता है। यदि उसके सामने कहा

जाय— भाई, हम (या हमारे सभी साथी) तो देहाती ठहरे हम (या ये) शहरातियों की बातें क्या समझें। तो यह उस देहाती पर बोली बोलना कहलावेगा, जो शहराती बन गया है। यहाँ वक्ता का उद्देश्य तो उस व्यक्ति के देहातीपन पर आक्षेप या कटाक्ष करना है पर यह आक्षेप या कटाक्ष उसने उस व्यक्ति को देहाती कहकर नहीं, बल्कि अपने आपको देहाती बनाकर किया है।

× ×

व्यथा—स्त्री० [स०] दे० वेदना और व्यथा।

व्यभिचार—पु० [स०] दे० 'अनाचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार'।

व्यवसाय—पु० [स०] दे० 'व्यापार वाणिज्य और व्यवसाय'।

व्यवहार—पु० [स०] दे० (१) 'आचरण, आचार और व्यवहार। (२) 'उपयोग प्रयोग और व्यवहार'।

व्यवहारवचन—पु० [स०] दे० नीति शास्त्र।

व्याख्यान—पु० [स०] दे० प्रवचन भाषण वक्तृता और व्याख्यान।

व्याज मिस बहाना और हीला

Excuse

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातों के वाचक हैं जो अपने किसी प्रकार के अनौचित्य त्रुटि दोष आदि को छिपाने और अपने आपको उत्तरदायित्व दण्ड, दोष आदि से बचाने के लिए कही जाती है।

व्याज पु० [स०] का शब्दार्थ है—ऊपर से कोई चीज या बात लगाना, अर्थात् नीचे की वास्तविक बात छिपाने के लिए उस पर कोई आवरण रखना या परदा डालना। इसमें मुख्य भाव किसी बात के वास्तविक रूप को कौशलपूर्वक बदलने का है।● परन्तु इसका साधारण अर्थ होता है—कपट छल या धोखा, अर्थात् अन्दर कुछ और बाहर कुछ और अथवा किसी को भ्रम में डालने के उद्देश्य से कही जानेवाली बात। इसी आधार पर हमारे यहाँ के

● हिन्दी में ब्याज शब्द जो मूल के अर्थ में प्रचलित है वह भी कल्पित इसी आधार पर है कि वह अपनी आय बढ़ाने का कौशलपूर्वक कल्पा हुआ रूप है। अपने रुपए से हम स्वयं तो कोई और उद्यम या व्यापार करते नहीं। हाँ वे रुपए दूसरों को व्यापार करने के लिए दे देते हैं और इसी ब्याज या बहाने से अपने लिए भी आय का एक साधन खड़ा कर लेते हैं।

साहित्य मे व्याजोक्ति नामक एक अलंकार भी माना गया है। जब हम कोई बात छिपाने के लिए उसे कुछ और ही रूप देते हैं, अर्थात् वास्तविकता की ओर से दूसरो का ध्यान हटाकर उन्हे कुछ का कुछ समझाना चाहते हैं, तब वहाँ व्याजोक्ति अलकार होता है, जैसे—'कारे वरन डरावने, कत आवत यहि गेह। कई वा लख्यो सखी लखैं, लगे थाहरी देह'। यहाँ साधारण आशय तो यही जान पड़ता है कि काले कृष्ण को अपने यहाँ आते देखकर नायिका अपने आपको डरी हुई सिद्ध करना चाहती है और अपने थर-थर काँपने का ही उल्लेख करती हैं। परन्तु वास्तविक वात यह है कि कृष्ण को देखकर उसके शरीर मे सात्विक कम्प हुआ है और इसी वास्तविकता को छिपाने के लिए वह कृष्ण को काला और डरावना कहती है।

परन्तु कुछ अवस्थाओ मे इसमे का कपट या छलवाला भाव तो गौण या नगण्य हो जाता है और कौशलवाला भाव प्रमुख हो जाता है। उदाहरणार्थ व्याज-निंदा और व्याज-स्तुति सरीखे यौगिक पद लिए जा सकते हैं। इनमे ऐसे कौशल से किसी की निंदा या स्तुति की जाती है जो ऊपर से देखने मे तो निंदा या स्तुति ही जान पड़े, परन्तु वास्तव मे वह निंदा के बदले स्तुति या स्तुति के बदने निंदा होती है; जैसे—यदि किसी कंजूस (या कायर) व्यक्ति के सम्बन्ध मे कहा जाय—'वाह उनका क्या कहना है! वे बहुत बडे दानी (या वीर) हैं।' तो यह देखने मे तो स्तुति ही जान पडेगी पर वास्तव में निंदा होगी; और इसी लिए ऐसे कथन की गिनती व्याज-निंदा मे होगी। इसके विपरीत 'राम न सकहि नाम-गुन गाई'। अर्थात् राम अपने नाम के गुणो का वर्णन करने मे समर्थ नही हैं; तो ऐसा कथन देखने मे निंदा का सा जान पड़ेगा, पर वस्तुत· इसमे राम और उनके नाम के गुणो की प्रशसा या स्तुति का भाव ही प्रधान है; इसलिए इसे व्याज-स्तुति कहेगे।

'मिस' पु० [स०] मिष् का ही हिन्दी रूप है। इसका मुख्य अर्थ है—ऊपर से दिखाई देनेवाला ऐसा रूप, जो वास्तविक न हो। इसमे या तो चालाकी और छल का अश होता ही नही और यदि हो भी तो बहुत ही कम या नाम मात्र का होता है। हाँ इसमें कौशल या निपुणता अवश्य होती है। पर इसका उद्देश्य न तो दूसरो को धोखा देना ही होता है और न अपने आपको अभियोग या आक्षेप से वचाना ही। कथा-वाचक या वक्ता उद्देश्य के मिस से लोगो को उनके दोष वतलाते हैं और उन्हे ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न करते हैं। 'भाँड पुकारे पीर बस मिस समझे सब कोय', मे भी मिस किसी चालाकी या बुरे उद्देश्य का सूचक नही है। उसका अधिक से अधिक

यही आशय हो सकता है कि भांड़ एसे साग की नकल उतार रहा है जो पेट मे दर्द होने पर चिल्लाता हैं, अर्थात् किसी किसी बात का भी सूचक होता है। या देखने पर किसी बात का जो रूप सामने हो, वास्तव में उससे भिन्न कोई और रूप भी हो सकता है। परन्तु अब यह शब्द बहुत कुछ पुराना पड गया है और इसके स्थान पर भी 'बहाना' का ही प्रयोग होने लगा है जिसका एक उदाहरण नीचे बहाना के विवरण में दिया गया है।

'बहाना' [फा०] बहान इस वर्ग का सबसे अधिक प्रचलित और प्रसिद्ध शब्द है, और इसका प्रयोग इस वर्ग के अन्य सभी शब्दों के पर्याय के रूप में देखने में आता है। इसका पहला और मूल अर्थ तो कारण या सबब है, पर अब इस अर्थ में से कारण की वास्तविकता का भाव तो निकल गया है और उसके स्थान पर मिथ्यात्व का भाव आ लगा है। हिन्दी शब्द-सागर में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है— किसी बात से बचने या कोई मतलब निकालने के लिए अपने सम्बन्ध मे कोई झूठ बात कहना।' पर यह व्याख्या इसलिए अधूरी है कि बहाना बहुधा अपने आपको अभियोग या आक्षेप से बचाने अथवा निरुपाय या निर्दोष सिद्ध करने के लिए ही किया जाता है। जब हम अपने कर्त्तव्य का पालन करने से बचना चाहते हैं, तब हमे कोई बहाना करना पडता है, इससे प्राय किसी बात को ठीक या न्याय सगत सिद्ध करने मे सहायता मिलती है अथवा अनौचित्य का भी औचित्य का कुछ रूप देने का प्रयत्न किया जाता है। लडके अपने अध्यापक के घर पढने के लिए जाने का बहाना करके इधर उधर खेलने चले जाते हैं, और कर्मचारी पेट मे दर्द होने का बहाना करके छुट्टी लेते और सिनेमा देखने चले जाते हैं। कुछ अवस्थाओ मे वास्तविक उद्देश्य छिपाने के लिए खडी की जानेवाली आड भी बहाना कहलाती है, जसे—'चलो इसी बहाने उनसे तुम्हारा मेल हो जाएगा। यहाँ मेल अभीष्ट या उद्दिष्ट तो है, पर बीच का निमित्त या साधन ही बहाना होगा और स्वय मेल उसके आगे गौण हो जाएगा। इस अर्थ में यह मिस का समानक ही है।

हीला' पु० [अ० हील] भी है तो बहुत कुछ वही जो बहाना है, पर दोनो मे एक मुख्य अन्तर है। बहाने में जो कारण बतलाया जाता है, वह साधार भी हो सकता और निराधार भी। पर हीला प्राय किसी न किसी वास्तविक आधार या कारण पर आश्रित होता है*। यो भी कहावत है—

* उर्दू का एक प्रसिद्ध शेर है—

हकीकत मे उन्हे मजूरे खातिर यों न आना था।
फकत महदी का हीला, दर्द सर का इक बहाना था॥

'हीले रोजी, बहाने मौत।' आशय यही है कि रोजी लगने के मूल मे जो आधार होता है, वह अशतः या पूर्णतः वास्तविक होता है, पर जब मौत आने को होती है, तब वह अपने लिए कोई ऐसा आधार बना लेती है जो उतना अधिक यथार्थ या वास्तविक नही होता, बल्कि बहुत-कुछ कहने भर को या गढ़ा हुआ होता है अर्थात् मरना तो अवश्यभावी और निश्चित है, पर कहने-सुनने को उसका एक कारण बन जाता है। हीला करनेवाले को हम उतना अधिक दोषी नही कह सकते, जितना बहाना करनेवाले को कह सकते हैं। इसी हीला में 'हवाला' मिलाकर 'हीला-हवाला' पद बना लिया गया है, जिसका विकृत रूप हीला-हवाली भी लोक मे प्रचलित है। हीला-हवाला का अर्थ होता है—हीला करते हुए (कोई बात) किसी दूसरे पर (या दूसरी बात पर) थोपना या मढना। आशय यही होता है कि उत्तरदायित्व हम पर नही है किसी और बात या व्यक्ति पर है अथवा हम अपने ऊपर उसका उत्तरदायित्व नही लेना चाहते। × ×

व्याज-निंदा—स्त्री० [स०] दे० 'व्याज, मिस, बहाना और हीला'।
व्याज स्तुति—स्त्री० [स०] दे० 'व्याज, मिस, बहाना और हीला'।
व्याजोक्ति—स्त्री० [सं०] दे० 'व्याज, मिस, बहाना और हीला'।

व्यापार, वाणिज्य और व्यवसाय

Trade Commerce 1. Occupation, 2. Vocation, 3. Proffesion

इस वर्ग के शब्द ऐसे कामो के वाचक हैं जिनमे लोग आर्थिक लाभ या जीविकानिर्वाह के लिए जन-साधारण के व्यवहार की चीजे खरीदते और बेचते हैं।

'व्यापार' शब्द स० व्यापृ से बना है जिसका अर्थ है—किसी काम मे लगे रहना अथवा कोई काम करते रहना। इसी आधार पर जीवन-व्यापार

यहाँ मेहदी का हीला तो इसलिए कहा गया है कि मेहदी उन्होने सचमुच और सम्भवतः जान-बूझकर और अपने बचाव का कारण प्रस्तुत करने के लिए लगा रखी थी, पर सिर का दर्द वास्तविक नही था, वल्कि उन्होने झूठ-मूठ कहला दिया था कि हमारे सिर मे दर्द है और इसी लिए सिर का दर्द एक बहाना था, हीला नही था।

का अर्थ होता है—दैनिक जीवन मे किये जानेवाले सभी प्रकार के काम, जिनमे उठना बैठना, खाना पीना, घूमना फिरना आदि सभी बातें सम्मिलित होती हैं। व्यापार मुख्यत वह काम है जिसमे लोग एक ही तरह का अथवा कई तरह के माल खरीद कर अपने पास रख लेते हैं, और प्राय खरीद से कुछ अधिक मूल्य लेकर दूसरो के हाथ बेचते हैं। लोक मे इसका प्रयोग मुख्यत थोक माल खरीदने और बेचने के सम्बन्ध मे होता है। जब हम कपडे, रेशम या सोने के व्यापारियो की चर्चा करते हैं तब हमारा आशय यही होता है कि ये लोग अधिक मात्रा या मान मे चीजें खरीदते और बेचते हैं। इसके लिए हमारे यहाँ फारसी का 'रोजगार' शब्द भी प्रचलित है।

'वाणिज्य' का प्रयोग बहुत दिनो से हमारे यहाँ प्राय उसी अर्थ मे होता आया है जो ऊपर व्यापार का बतलाया गया है। प्राचीन भारत मे चीजें खरीदने और बेचनेवाले को वणिक् कहते थे, और उसका काम वाणिज्य कहलाता था। परन्तु आज कल अँगरेजी कामर्स (Commerce) के अनुकरण पर इसमे एक नया अर्थ लग गया है जो साधारण व्यापार के अर्थ से कुछ भिन्न भी है और विस्तृत भी। आज कल व्यापार तो मुख्यत वह कहलाता है जो अपने ही नगर देश अथवा प्रान्त म होता हो, और वाणिज्य मे उस व्यापार का अन्तर्भाव होता है जो दूसरे अथवा समुद्र पार के देशो आदि से होता हो। प्राय ऐसा होता है कि हम अपने यहाँ कुछ विशिष्ट प्रकार की वस्तुएँ दूसरे देशो को भेजते हैं और वहाँ से अपनी आवश्यकता के अनुसार कुछ और प्रकार की वस्तुएँ मँगाते हैं। इसी प्रकार का क्रय विक्रय और लेन देन वाणिज्य कहलाता है। इसी आधार पर बडे बडे राज्यो मे केन्द्रीय वाणिज्य मत्री नियुक्त होते हैं और वाणिज्य विभाग भी बनते हैं।

'व्यवसाय स० व्यवसो' से बना है जिसका मूल अर्थ होता है—अलग या पृथक् होकर कही रहना या बसना। इसके सिवा इसके और भी अनेक अर्थ हैं जिनम से अधिक प्रचलित और मुख्य अयय है—परिश्रमपूर्वक प्रयत्न करना। साधारण व्यवसाय दो अर्थों म प्रचलित हैं—पहला अर्थ तो वही है जो ऊपर व्यापार का बतलाया गया है। यदि कोई सूक्ष्म अन्तर ढूँढा जाय तो अधिक स अधिक यही कहा जा सकता है कि कम या थोडी मात्रा में चीजें खरीदने और बेचने का व्यवसाय कहलाता है। लोक म 'व्यापारी' और 'व्यवसायी' शब्दो के प्रयोग के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है। व्यवसाय का दूसरा प्रचलित और मुख्य अर्थ है—कोई ऐसा काम (व्यापार से भिन्न) जो मनुष्य को अपनी जीविका निर्वाह के लिए करना पडता है। कुछ

व्यवसाय तो ऐसे होते है जिनके लिए विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, और कुछ ऐसे भी होते हैं जिनके लिए किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नही होती। वकालत, वैद्यक आदि ऐसे व्यवसाय हैं जो प्रशिक्षित लोग ही करते या कर सकते हैं। और ठेकेदारी, नौकरी आदि ऐसे व्यवसाय हैं जिनके लिए किसी प्रकार के प्रशिक्षण की कोई आवश्यकता नही। हिन्दी मे इसके स्थान पर पेशा (फा० पेश:) शब्द भी प्रचलित है।××

व्यावहारिक—पु० [सं०] दे० 'उपयोग, प्रयोग और व्यवहार'।
व्योम—पुं० [स०] दे० 'अतरिक्ष, आकाश, व्योम और महाव्योम'।
व्रत—पुं० [सं०] दे० 'अनशन उपवास, प्रायोपवेशन, लाछन और व्रत'।

शंका आशंका सन्देह और संशय
Doubt Apprehension Suspicion Doubt

इस वर्ग के शब्द के एसी मानसिक स्थितियो के वाचक हैं जिनमे कोई चीज या बात सामने आने पर मन मे यह विचार उत्पन्न होता है कि क्या यह ठीक है; अथवा यदि ठीक नही है तो इसका ठीक रूप क्या है या क्या होना चाहिए या क्या नही होना चाहिए।

'शका' स० शक् से बना है जिसका अर्थ है—चिंतित या भयभीत होना। इसका एक और अर्थ है—कुछ निश्चय या स्थिर न कर पाना। हिन्दी मे यह मुख्यत. दो अर्थो मे प्रयुक्त होता है। जब किसी भावी बात के सम्बन्ध मे किसी प्रकार के अनिष्ट, आघात या हानि की सम्भावना पडती है, अर्थात् जब हम यह समझते हैं कि अमुक काम या बात सम्भवत: अभीष्ट, उचित अथवा वाछित रूप मे नही होगी तब हमारे मन की वह स्थिति 'शंका' कहलाती है। परन्तु हिन्दी मे यह अर्थ बहुत कुछ छूट-सा गया है और इसके लिए उपयुक्त शब्द 'आशंका' ही है, जिसका विवेचन आगे चलकर किया है। परन्तु इसका दूसरा अर्थ कुछ भिन्न है। जब कोई बात किसी निर्णीत या मान्य रूप मे हमारे सामने आती है, तब वह हमे उस रूप मे ठीक नही जान पडती। ऐसी अवस्था मे हमारे मन मे जो आपत्ति, जिज्ञासा अथवा प्रश्न उत्पन्न होता है वही हमारी शंका है। अर्थात् कोई बात ठीक न जान पड़ने पर मन मे जो तर्क-वितर्क उत्पन्न होता है वही शका का सूचक लक्षण है। साधारणत: पडित लोग आपस मे शास्त्रार्थ करने के समय एक दूसरे के तर्क या मत पर अनक प्रकार की शकाएँ करते हैं। आशय यही होता है कि

प्रतिपक्षी ने जो तर्क या मत उपस्थित किया है वह आपत्तिजनक है और उसका ठीक या वास्तविक रूप कुछ और ही है या होना चाहिए। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह कोई मनोवेग नहीं है बल्कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियो मे होनेवाला बौद्धिक या मानसिक व्यापार मात्र है। इसमे दो तत्व प्रधान है। एक तो सामने आई हुई बात का आपत्तिजनक जान पड़ना, और दूसरे उसका ठीक रूप जानने की उत्सुकता या कुतूहल होना। यह सदा किसी प्रस्तुत विषय के सम्बन्ध मे ही होती है और मुख्यत इसी अर्थ मे यह हिंदी मे प्रचलित तथा प्रसिद्ध भी है।

'आशका' स्त्री० [स०] को भी हम 'शका' का एक दूसरा प्रकार या रूप ही कह सकते है। फिर भी आशका मे कुछ विशिष्ट विवक्षाए लगी है शका तो सदा प्रस्तुत घटना, बात या विषय के सम्बन्ध मे होती है परन्तु आशका सदा भविष्य के सम्बन्ध मे होती है। जब कोई काम या बात होने को होती है, तब कभी कभी हमारे मन मे यह विचार उठता है कि इससे अमुक प्रकार का उपकार बाधा या विरोध हो सकता है। तात्पर्य यह कि किसी भावी अनिष्ट की कल्पना या सम्भावना के फलस्वरूप हमारे मन मे चिन्ता उत्पन्न करनेवाली जो शका उत्पन्न होती है, वही आशका है। ध्यान रहे कि इनका प्रयोग कभी अच्छी और इष्ट बातो के सम्बन्ध मे नही होता। कोई नया नौकर रखने पर उसके अनुचित आचरण या ओछे व्यवहार के कारण हमे यह आशका हो सकती है कि कही यह आगे चलकर चोर या बेइमान न निकले। कोई नया काय आरम्भ करने पर किसी विशिष्ट कारण से हमे आशका हो सकती है कि कही हम विफल न होना पडे अथवा कोई हानि न उठानी पडे। कुछ लोग उसके स्थान पर 'डर' या भय का भी प्रयोग करते है क्योकि इन शब्दो के अर्थों मे भी आशका का अन्तर्भाव रहता है।

'सदेह' स० सदिह से बना है जिसका अर्थ है—ठीक तरह से कुछ निश्चय न कर पाना। शका मे तो हम सामने आई हुई बात के सम्बन्ध मे यह मान लेते है कि वह ठीक नही है या नहीं हो सकती। परन्तु सन्देह मुख्यत वहाँ होता है जहाँ सामने आई हुई बात हम कुछ ठीक नही जान पडती और हम सोचते है कि कही इससे भिन्न कोई और बात तो नहीं है। सन्देह मुख्यत वहाँ होता है जहाँ सामने आई हुई बात का स्वरूप स्पष्ट नही होता, और मन मे यह भाव उत्पन्न होता है कि वस्तु स्थिति कही इससे कुछ भिन्न तो नहीं है। सामने आई हुई बात के सम्बन्ध मे जब हम यह सोचते है कि कहीं यह अग्राह्य कल्पित या सन्दिग्ध तो नहीं है अथवा क्या इसकी वास्तविकता या सत्यता सचमुच ठीक मानी जाने योग्य है। तब हमारे मन की यह स्थिति

संदेह कहलाती है। मन मे इस प्रकार का भाव प्राय: यथेष्ट प्रमाण के अभाव मे ही उत्पन्न होता है; और ऊपर से दिखाई देनेवाले तथ्य या रूप पर सहसा विश्वास नही होता। जब हम कहते हैं—'हमे उसके इस कथन की सत्यता में कुछ सन्देह है' तो हमारा आशय यही होता है कि हमें उसका यह कथन ठीक नही जान पडता; और वास्तव मे बात कुछ दूसरी ही है।

इसके सिवा ऐसी अवस्था मे भी सदेह का तत्व आ जाता है, जब हम समझते हैं कि अमुक बात या व्यक्ति ने सम्भवत: कोई अनिष्ट या अपकार किया है अथवा उसके द्वारा कोई अनुचित या हानिकार बात हो सकती है। पुलिस को किसी व्यक्ति पर सन्देह हो सकता है कि यह कही चोरी करके या डाका डालकर भाग आया है। चिकित्सक को यह सन्देह हो सकता है कि हमारी कलवाली दवा ने या रोगी के किसी कुपथ्य ने आज रोग बढ़ा दिया है। यदि वैद्य को अपनी दवा पर तो विश्वास हो, परन्तु रोगी के संयम तथा पथ्यपूर्वक रहने का उसे निश्चय न हो, तो वह कहेगा कि मुझे सन्देह है कि रोगी ने कल कोई ऐसी-वैसी चीज खाई होगी। अर्थात् जहाँ कोई ठीक आधार या कारण नही मिलता पर कुछ सम्भावना सी जान पड़ती है, वही सन्देह के लिए अवकाश होता है।

'संशय' स० सशि से बना है जिसका पहला अर्थ है—दुर्बल या बलहीन होना, और दूसरा अर्थ है—इधर-उधर हटना-बढना या विचलित होना। सशय हमारे मन की वह स्थिति है जिसमे हम ठीक तरह से यह नही समझ पाते कि अमुक बात या वस्तु क्या है और क्या नही है; हमे क्या करना चाहिए और क्या नही करना चाहिए अथवा आगे चलकर क्या होगा और क्या नही होगा। इसे हम अनिश्चय और दुविधा का सम्मिलित रूप कह सकते हैं। इसमे उपयुक्तता, वास्तविकता, सत्यता, स्थिति आदि के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की धारणा, निश्चय या विश्वास न होने का भाव प्रधान है। इसमे अनुमान, कल्पना, निर्णय आदि के लिए स्थान तो हो सकता है, पर इन बातो के लिए हम मे कोई उत्कंठा या जिज्ञासा नही होती, हमारा भाव उदासीन-सा रहता है। हम किसी विषय मे अध्ययन, खोज, छान-बीन आदि करते रहते हैं, फिर भी तथ्य या वास्तविकता तक नही पहुँच पाते। ऐसे समय तक हमारे मन की जो स्थिति होती है वही 'सशय' हैं। सशय प्राय: ऐसी बातो के सबध मे ही होता है जिनके सबध मे पहले से कुछ निश्चय या विचार तो हो चुका हो परन्तु जिनसे हम सहमत न हो अथवा जिनकी संभावना की हम सहज मे कल्पना न कर सकते हो। 'संशयात्मा विनश्यति' मे सशय का भाव यही है कि मनुष्य प्रयत्न करने पर भी अथवा अधूरे ज्ञान के कारण ठीक निश्चय तक

पहुँचना चाहिए। कुछ अवस्थाओं में हम यह भी समझते हैं कि ऐसा हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। ऐसी स्थिति भी संशय के अंतर्गत होती है। यथा—कछु संशय तो फिरती बारा।—तुलसी, अर्थात् जाने को मैं उस पार चला ही जाऊँगा, निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि मैं वहाँ से लौटकर आ भी सकूँगा या नहीं।

उक्त तीनों शब्दों के स्थान पर हिन्दी में फारसी का 'शक' शब्द भी प्रायः प्रयुक्त होता है जो वस्तुतः संस्कृत शंका का ही विकृत रूप है। × ×

शक—पु० [फा०] दे० 'शंका' सन्देह और संशय।

शक्ति बल सामर्थ्य और उर्जा

Power Strength 1 Strength 2 capacity Energy

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्षमता या योग्यता के वाचक हैं जिनसे कोई जीव या पदार्थ अपने सब कार्य करने में समर्थ होता है। साधारणतः शक्ति और बल में कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता, फिर भी भिन्न प्रकार की क्रियाओं और भाषा संबंधी प्रयोगों के आधार पर इनके अर्थों में कुछ विशिष्ट अंतर या भेद हैं। दृष्टि शक्ति, पाचन शक्ति, सहन शक्ति आदि प्रयोग, और धन बल, बाहु-बल, भुज-बल आदि प्रयोग हमारे यहाँ बहुत प्रचलित हैं। इसी प्रकार के कुछ प्रयोगों और व्यवहारों के आधार पर ही इनके सूक्ष्म अंतर या भेद स्थिर किये जा सकते हैं।

'शक्ति' सं० शक् से व्युत्पन्न है जिसका मुख्य अर्थ है—कुछ कर सकने के योग्य होना। यों तो अर्थ के विचार से इसकी व्यापकता बहुत अधिक है, परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में शक्ति किसी पदार्थ या प्राणी में होनेवाला वह भौतिक गुण या धर्म है जिसके फलस्वरूप वह अपने सब काम करता रहता है और विशिष्ट अवसरों पर कुछ अधिक कठिन या नये काम भी कर दिखलाता है। दुर्बलता, रोग आदि के कारण हमारी शारीरिक शक्ति बहुत घट जाती है और चिकित्सा, पौष्टिक भोजन, व्यायाम आदि के द्वारा बढ़ाई भी जा सकती है। इस सीमा तक 'बल' इसका पर्याय भी है और इसके स्थान पर अरबी का ताकत शब्द भी प्रयुक्त होता है।

प्राणियों में तो मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ होती ही हैं, निर्जीव उपकरणों, यंत्रों आदि में भी काम करने की कई प्रकार की शक्तियाँ होती हैं। इससे आगे और बढ़ने पर हम देखते हैं कि तंत्र मंत्र और शब्दों तक

मे शक्ति का अधिष्ठान माना जाता है। इनके सिवा आर्थिक, दैवी, प्राकृतिक आदि शक्तियाँ भी होती हैं। साराश यह कि हमे जो कुछ होता हुआ दिखाई देता है उसके मूल मे किसी न किसी प्रकार की शक्ति अवश्य कार्य करती है। ओषधियों में रोग दूर करने की, नदियो के प्रवाह मे चट्टाने और पहाड़ तोडने की, और विद्युत् मे अनेक प्रकार के कार्य करने की शक्ति होती है। आज-कल बलवान् और सशक्त देश या राष्ट्र भी अपने बल, वैभव आदि के कारण 'शक्ति' कहलाने लगे हैं; जैसे—इस समय ससार मे अमेरिका और रूस दो बहुत बडी शक्तियाँ हैं। आशय यही होता है कि ये सब प्रकार की शक्तियो के अधिष्ठान हैं, और इसी लिए किसी न किसी रूप मे अनेक छोटे-छोटे देशो और राष्ट्रो को अपने दबाव या प्रभाव में रख सकते हैं।

'बल' को हम शक्ति का कुछ परिमित या सीमित रूप ही कह सकते हैं। यह स० बल् से बना है, जिसका अर्थ है—साँस लेना, जीवित रहना आदि। बल मुख्यत: जीवधारियो या प्राणियो मे ही रहनेवाला गुण या धर्म है। परन्तु आगे चलकर इसमे कुछ और ऐसे अर्थ भी विकसित हो गये हैं जो मुख्यत: शक्ति से सबद्ध हैं। उदाहरणार्थ यन्त्रो आदि की क्षमता नापने वाली इकाई को हम अश्व-बल भी कहते हैं और अश्व-शक्ति भी। राष्ट्रो के संबध मे उनके सैन्य-बल का भी प्रयोग होता है, और सैन्य-शक्ति का भी। परन्तु मौलिक अर्थ के विचार से बल मुख्यत: शक्ति का वह क्रियात्मक और दृश्य अग या रूप है जिसके सहारे जीवित रहकर चलते-फिरते और सब काम करते हैं। प्राणी जब कोई चीज खीचते या ढोते है तब उसमें उन्हे अपना बल ही लगाना पड़ता है। शक्ति तो प्राणियो में निहित या वर्तमान रहती ही है; परन्तु कोई कार्य करने के समय वह जिस रूप में क्रिया-शील होती है वही बल है। राज्य के पास सैन्य-शक्ति तो होती ही है परन्तु युद्धो आदि मे अथवा विद्रोहों आदि का दमन करने के समय जब उसका उपयोग होता है तब हम कहते है कि उसने बल का प्रयोग किया। भाषा मे विचार प्रकट करने की शक्ति तो रहती ही है, पर जब हम ओजपूर्ण भाषा में अपने विचार प्रकट करते हैं तब मानो उसका बल कार्य करता हुआ दिखाई देता है। प्रत्येक वस्तु की आंतरिक शक्ति ही उसे बल के प्रयोग मे समर्थ करती है। यदि किसी पहलवान को रस्सो से बाँध दिया जाए तो उसकी शारीरिक शक्ति तो उसमे वर्तमान रहेगी ही, पर यदि उसमे उन रस्सो को तोड़ने का बल न होगा, तो वह जहाँ का तहाँ पड़ा रह जायगा और बन्धन से मुक्त न हो सकेगा। हिन्दी मे इसके स्थान पर फा० 'जोर' का भी व्यवहार होता है।

'सामर्थ्य' पु० [स०] समर्थ का भाववाचक रूप है। इसका शब्दार्थ है—सम (समान) अर्थ होने की अवस्था या भाव। पर हिन्दी में यह ऐसी शक्ति का वाचक होता है जो सामने आया हुआ काम पूरा कर सकने के योग्य होती है। इसका प्रयोग सदा मनुष्यों या अधिक से अधिक जीव जंतुओं तक के सम्बन्ध में होता है, वस्तुओं आदि के सम्बन्ध में नहीं। क्योंकि यह मुख्यतः आर्थिक मानसिक शारीरिक आदि शक्तियों पर आश्रित होता और परिस्थितियों के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। किसी विशिष्ट प्रकार का काम कर सकने का जो गुण या बल हम में होता है, उसी का सूचक सामर्थ्य है, जैसे—ताप सहने का सामर्थ्य, पर्वत पर चढ़ने का सामर्थ्य, शत्रु से लड़ने का सामर्थ्य। हम कहते हैं—(क) 'यह काम हमारे सामर्थ्य के बाहर है, अथवा (ख) हमारे कानों में सुनने (या आँखों में देखने) का सामर्थ्य नहीं रह गया'। ऐसे प्रसंगों में शक्ति का (कुछ परिमित रूप में) वाचक होता है, और इसके स्थान पर पर्याय रूप में 'क्षमता' का भी प्रयोग हो सकता है। प्रायः लोग भूल से स्त्री० रूप में इसका प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं, जो ठीक नहीं है। स्वास्थ्य आदि शब्दों की तरह यह भी सर्वथा पु० ही है। सामर्थ्य के और अर्थ जानने के लिए दे० 'सामर्थ्य, समाई और बिसात'।

'ऊर्जा' स० ऊर्जस से बना है जिसका अर्थ है—बल या शक्ति प्रदान करना। यह पदार्थों में वर्तमान रहनेवाली वह विशिष्ट शक्ति (गुण या धर्म) है जो कोई काम करने में लगती या व्यय होती है। आधुनिक भौतिक विज्ञान के अनुसार ऊर्जा काम करनेवाली शक्ति या क्षमता है। बहते हुए पानी में रहनेवाली ऊर्जा से ही पनचक्की भी चलती है, और बिजली भी उत्पन्न होती है। विद्युत् के प्रवाह में जो ऊर्जा होती है वह यंत्र भी चलाती है, प्रकाश भी करती है और इसी प्रकार के और भी काम करती है। तोपों और बन्दूकों से गोले गोलियाँ चलाने में बारूद की ऊर्जा ही समर्थ होती है। यह दो प्रकार की मानी गई है—गतिज और स्थितिज। जो ऊर्जा किसी प्रकार की गति के फलस्वरूप उत्पन्न होती है उसे गतिज ऊर्जा कहते हैं, जैसे—जल या विद्युत् के प्रवाह में होनेवाली ऊर्जा। परंतु जो ऊर्जा पदार्थों में सदा वर्तमान और स्थित रहती है, उसे स्थितिज ऊर्जा कहते हैं, जैसे—बारूद आदि में रहनेवाली ऊर्जा। इस ऊर्जा में एक बात यह भी है कि यह जितना काम करती है उतनी ही घटती भी चलती है। इसी लिए व्यय होनेवाली ऊर्जा नापने के लिए अनेक प्रकार के मापक यंत्र भी बना लिये जाते हैं। × ×

शत्रुता—स्त्री० [स०] दे० 'वैमनस्य द्वेष, शत्रुता वैर, रिपुता'।
शपथ—स्त्री० [स०] दे० 'संकल्प, निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ'।

शम—पु० [सं०] दे० 'शान्ति और शम'।

शर्त—स्त्री० [अ०]=प्रविधान; दे० 'विधा, विधान, प्रविधान और संविधान'।

शस्त्र—पुं० [सं०] दे० 'अस्त्र, आयुध और शस्त्र'।

शांति और शम

1. Peace, 2. Calm — Tranquility

ये दोनों शब्द ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमे मनुष्य, समाज आदि मे किसी प्रकार का विक्षोभ या विकलता न हो अथवा उद्वेगों, कष्टो, चिंताओं आदि का बिलकुल अभाव हो।

'शान्ति' स्त्री० [स०] हमारे यहाँ का बहुत पुराना और प्रसिद्ध शब्द है। इसका प्रयोग कई क्षेत्रो मे अलग-अलग विवक्षाएँ सूचित करने के लिए होता है; जैसे—चित्त का ठिकाने रहना; जीवन मे सब प्रकार से निश्चिन्त और सुखी रहना। पर इसके कुछ मुख्य अर्थ इस प्रकार हैं—

(१) घर-गृहस्थी, जन-समूह या समाज की वह अवस्था जिसमे उत्पात, उपद्रव, मार-पीट, लडाई-झगडे, विद्वेष आदि का अभाव हो और फलतः सब लोग निश्चिन्त भाव से सुखपूर्वक जीवन विताते हो।

(२) राजनीतिक क्षेत्र मे वह स्थिति जिसमे राज्य, राष्ट्र आपस मे लड़ते-झगड़ते या युद्ध आदि न करते हो।

(३) मन की वह स्थिति जिसमे किसी प्रकार की उद्विग्नता, चिंता या विकलता न हो—वह इधर-उधर भटकता न हो, सब प्रकार से निश्चिन्त और स्थिर हो।

इसके अतिरिक्त एक दूसरे क्षेत्र मे उसके ये दो प्रमुख अर्थ हैं—

(१) वातावरण की वह स्थिति जिसमे नैसर्गिक तत्वो मे कोई उग्रता या प्रचण्डता न रहती हो; अथवा जिसमे किसी प्रकार की अप्रिय या कर्ण कटु ध्वनि अथवा ऐसा ही और कोई शब्द न होता हो। इसे नीरवता या सन्नाटा भी कहते हैं और जन-समूह की वह स्थिति जिसमे सब लोग ढीले और मौन भाव से खडे अथवा वैठे हो—कोई जोर का शब्द या हो-हल्ला न करते हों।

(२) इसके अतिरिक्त कुछ और परिवर्द्धित तथा विकसित अर्थ मे इसका प्रयोग शरीर की वह स्थिति सूचित करने के लिए भी होता है जिसमे किसी तीव्र कष्ट, पीडा, व्यथा आदि का बहुत कुछ अन्त हो जाता है और वेचनी बहुत कम या दूर हो जाती है। इसी वग के अन्तगत ग्रहो देवी देवताओ या दवी प्रकोपा का अन्त या समाप्ति हो जाने पर मन म होनेवाली निश्चितता और स्वस्थता भी आती है।

'शम' पु० [स०] के यो तो कई अर्थ हैं, जसे—मन का सतुलन और सयम आराम या विश्राम आदि। शमन शमित, शामक आदि इसी के विकसित और विकारी रूप हैं क्रमात् जिनके अर्थ होते हैं दबना या दबाना, दबा या दबाया हुआ और दबानेवाला। साधारणत इन शब्दो का प्रयोग अग्निकाड उपद्रव विद्रोह आदि के प्रसगो म होता है, पर तु इन सबका परिणाम वही होता है जिसे सब लाग साधारणत शाति कहते हैं। इसी आधार पर शम भी है तो बहुत कुछ शाति का ही समानक या समार्थक फिर भी शम मे एक विशिष्ट विवक्षा लगी हुई है। यह अपेक्षया अधिक नीरवता, शाति और स्थिरता का सूचक शब्द है। शाति के साथ तो उस अशाति का भी सकेत रहता है जो पहले से व्याप्त रही हो और अब जिसका अन्त या समाप्ति हो चुकी हो। परन्तु शम के प्रसग म ऐसी किसी पुरानी दु खद घटना या बात का सपर्क या सम्बन्ध नही होता। इसमे मुख्य रूप से पूरी शाति, स्थिरता, स्वस्थता आदि के भाव प्रधान हैं। हम कहते हैं—देश म शाति और शम बना रहे। ऐसे प्रसगो म 'शाति' से हमारा अभिप्राय यह होता है कि कोई उपद्रव या झगडा बखेडा न हो और शम से अभिप्राय यह होता है कि पहले से जो शातिपूर्ण और सुखद स्थिति चली आ रही है, वह इसी रूप मे बनी रहे। अभी तक हिन्दी मे Tranquility के लिए कोई अच्छा और उपयुक्त शब्द नही चला है, अत मैं समझता हू कि इसके लिए 'शम' ही सबसे अधिक उपयुक्त और ठीक होगा। × ×

शासन	प्रशासन	अनुशासन
1 Government	Administration	Disiplinec
2 Governance		

इस वग के शब्द मुख्यत ऐसे कार्यों या बातो के वाचक हैं जो नियमो आदि का पालन करने कराने और प्रबन्ध या व्यवस्था ठीक और सुचारु रूप मे चलानेवाली होती हैं। 'शासन' के अनेक अर्थों म से पहला मुख्य अर्थ है—

सी को इस प्रकार अपने अधिकार, नियंत्रण या वश मे रखना कि वह
ज्ञा, नियम आदि के विरुद्ध आचरण या व्यवहार न कर सके । इससे और
गे बढने पर इसका दूसरा और बहु-प्रचलित अर्थ होता है—किसी देश, प्रात
स्थान पर नियत्रण रखते हुए उसकी ऐसी व्यवस्था करना कि किसी प्रकार
गड़बड़ी या अराजकता न होने पाए। इनके सिवा यह उस व्यक्ति अथवा
सके सहायको के दल या वर्ग का भी सामूहिक रूप से वाचक होता है जो
किसी देश, प्रदेश या राज्य मे उक्त प्रकार की सब व्यवस्थाएँ करते हो और
जनके हाथो मे अधिकारिक रूप से राज्य-सचालन के सब सूत्र रहते हो, जैसे—
ाव हमारे यहाँ बडे-बडे उद्योग-धधों की सारी व्यवस्था शासन अपने हाथ मे
रहा है। अतिम दोनो अर्थों के लिए हिन्दी मे फा० का 'सरकार' और अ०
ा हकूमत (शुद्ध रूप–हुकूमत) शब्द भी प्रचलित है।

'प्रशासन' का साधारण अर्थ होता है—अच्छी तरह होनेवाला शासन।
रन्तु आज-कल इसका प्रयोग अगरेजी के एडमिनिस्ट्रेशन (Adminis ra-
ion)* का भाव सूचित करने के लिए होने लगा है, और इस दृष्टि से यह
ासन के किसी आगिक या क्षेत्रीय अंश के सम्बन्ध मे, अर्थात् शासन की तुलना
कुछ निश्चित और सीमित अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है। शासन की तुलना
े इसकी व्याप्ति कुछ परिमित भी हो गई है, और कुछ विशिष्टता-सूचक भी।
शासन के तो अनेक अश और विभाग होते है, परन्तु उनमे से किसी एक अग
या विभाग का क्रियात्मक रूप मे और ठीक तरह से होनेवाला शासन ही
प्रशासन कहलाता है। प्रशासन मे मुख्य भाव कार्यो आदि की व्यवस्था और
नियमो आदि के पालन का है। इसका प्रयोग राजकीय विभागो आदि के
अतिरिक्त लोकोपयोगी तथा सार्वजनिक सस्थाओ के क्षेत्र मे भी होता है। इसी
आधार पर उक्त प्रकार के कामो का निरीक्षण, व्यवस्था आदि करनेवाला
अधिकारी प्रशासक या प्रशासनिक अधिकारी कहलाता है।

'अनुशासन' का मूल अर्थ—दूसरे को यह बतलाना कि अमुक कार्य इस
प्रकार होना चाहिए, अथवा यह आज्ञा देना कि अमुक कार्य इस प्रकार करो।
प्राचीन काल मे इसका प्रयोग शासन और प्रशासन के पर्याय के रूप मे भी
होता था, परन्तु आज-कल इसका प्रयोग अग्रेजी के डिसिप्लिन (D scipline)

* अमेरिका मे Administration का प्रयोग Government (शासन
या सरकार) के पर्याय के रूप मे ही होता है, परन्तु इगलैड मे दोनो के
प्रयोगो मे कुछ अन्तर है, और ऊपर का विवेचन इसी अन्तर के आधार पर
किया गया है।

का भाव सूचित करने के लिए होने लगा है।* इसका मुख्य आशय है—अपने आपको भी नियन्त्रण मे रखना, और अधिकारी नियम, व्यवस्था आदि का नियन्त्रण मानकर ठीक तरह से आचरण और काय करना। कार्यालयो, विभागो, सस्थाओ आदि के काम ठीक तरह से तभी चल सकते हैं जब उनमे काम करनेवाले सब लोग आज्ञाओ, नियमो आदि का उचित रूप मे पालन करें, और किसी प्रकार की अव्यवस्था, गडबडी या विशृखलता न उत्पन्न होने दें। इन सब बातो का सामूहिक रूप ही 'अनुशासन' कहलाता है। अधिकारियो का कर्तव्य होता है कि वे अपने अधीनस्थो से अनुशासन का पालन करावें और अधीनस्थो का कर्तव्य होता है कि वे अनुशासन का पालन करें। इसी लिए अनुशासनहीनता की गिनती कही तो अपराध म, और कही बहुत बडे दोष म होती है। × ×

शास्त्र—पु० [स०] दे० 'दर्शन विज्ञान और शास्त्र'।

शिक्षण शिक्षा और प्रशिक्षण

Instruction Education Training

इस वर्ग के शब्द किसी को कोई काय, विद्या, शिल्प आदि का ज्ञान या परिचय कराने की क्रिया या ढग के वाचक हैं।

'शिक्षण' पु० [स०] शिक्ष धातु से बना है जिसका अर्थ है—कोई काम, कौशल या विद्या जानने की इच्छा करना, और शिक्षण का अर्थ होता है—दूसरे को इस तरह का ज्ञान प्राप्त कराना या बतलाना। हिन्दी की 'सिखाना' क्रिया इसी से बनी है और शिक्षण के प्राय सभी आशय या भाव सूचित करती है। किसी को कोई काम करने का ढग या रास्ता बतलाना ही शिक्षण या सिखाना है। किसी को किसी कला या कौशल से सम्बन्ध रखनेवाली सभी आवश्यक और उपयोगी बातें अच्छी तरह बतला और समझाकर उसे ठीक तरह स काम करने के योग्य बनाना ही उसे शिक्षण दना है, जसे—(क) चित्र

* हमारे यहाँ प्राचीन काल मे Discipline का भाव सूचित करने के लिए 'विनय' शब्द का प्रयोग होता था, परन्तु आज-कल 'विनय' का वह अर्थ छूट गया है और इसी लिए इसके स्थान पर 'अनुशासन' का प्रयोग होने लगा है। आज-कल विनय का प्रचलित अर्थ जानने के लिए दे० 'विनति, प्रार्थना निवेदन, आवेदन, अभिवदन और प्रतिवेदन'।

या मूर्तियाँ बनाने का शिक्षण देनेवाला विद्यालय (ख) प्रशासन या राजनय के शिक्षण की व्यवस्था आदि।

'शिक्षा' स्त्री० [सं०] भी मूलत: है तो वही जो शिक्षण है; फिर भी प्रयोग के विचार से दोनों मे कुछ सूक्ष्म अन्तर है। पहली बात तो यह है कि शिक्षा का प्रयोग आज-कल मुख्यत: कोई भाषा, विज्ञान, विधा, शास्त्र आदि के क्षेत्रों में होता हैं; और दूसरे यह कि इसमे किसी को अच्छी तरह जीवन बिताने के लिए योग्य और समर्थ बनाने का भाव भी सम्मिलित है। इसका मुख्य उद्देश्य व्यक्तियो की कार्य-शक्ति और गुणो का विकास करना होता है। इसका उद्देश्य किसी को ज्ञान प्राप्त कराने के अतिरिक्त यह भी होता है कि वह चरित्रवान् बने और देश तथा समाज की उन्नति और कल्याण-साधन मे सहायक हो। इसके सिवा शिक्षा अनेक प्रकार के व्यवसायों आदि के सम्बन्ध मे भी होती है; जैसे—चिकित्सा, वास्तु कला, सगीत आदि की शिक्षा। शिक्षा लौकिक बातों की तो होती ही है, आध्यात्मिक, सास्कृतिक आदि बातो की भी होती हैं।

'प्रशिक्षण' पुं० [स०] को हम शिक्षण का एक विशिष्ट प्रकार या रूप ही कह सकते है। प्रशिक्षण किसी कला या कौशल अथवा उसकी किसी शाखा से ही सम्बद्ध होता है; और इसका उद्देश्य व्यक्ति को कला या कौशल की पूरी जानकारी करा के उसे दक्ष या प्रवीण बनाना होता है। इसमे मुख्यत: इस बात का ध्यान रखा जाता है कि व्यक्ति कोई विशिष्ट कार्य करने के लिए पूरी तरह से उपयुक्त और समर्थ हो जाय; जैसे—अध्यापन कला का प्रशिक्षण, यान्त्रिक कार्यों का प्रशिक्षण आदि। पाश्चात्य देशो मे अनेक प्रकार की क्रियाओ से यह पता लगाया जाता है कि कोई बालक या व्यक्ति प्राकृतिक रूप से कौन सा काम अच्छी तरह से कर सकता है; और तब उसे उसी का प्रशिक्षण देकर उसे विशेष योग्य बनाया जाता है। इसके सिवा इस शब्द का प्रयोग पशुओं आदि के सम्बन्ध में भी होता है। घोड़ो को गाडियाँ खीचने और सवारी के काम में आने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है; और भालुओं, शेरो हाथियो आदि को सर्कसो मे तरह-तरह के काम करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है।*

---

* अग्रेजी मे Training का प्रयोग लाक्षणिक रूप मे नदियो आदि का बहाव या रुख मोड़ने के प्रयत्नों के लिए भी होता है। परन्तु हमारे यहाँ शिक्षण का प्रयोग मुख्यत: व्यक्तियो या जीव-जन्तुओ के सम्बन्ध में ही होता है; जड़ या निर्जीव पदार्थों के सम्बन्ध मे नही होता। अत: नदियों

हि ी मे उक्त तीनो शब्दो के स्थान पर प्राय तालीम (अ० तअलीम) का भी प्रयोग होता है। × ×

शिक्षा—स्त्री० [स०] दे० 'शिक्षण, शिक्षा और प्रशिक्षण ।
शिरा—स्त्री० [स०] दे० 'धमनी, नाडी शिरा और स्नायु ।

शीत युद्ध
Cold war

शीत युद्ध' पु० [स०] उस विरोधात्मक और शत्रुतापूर्ण लाग डाँट का वाचक है जो आधुनिक राजनीति म प्राय बड बड राष्ट्रो म निर तर चलती रहती है। इसमे खुलकर या प्रत्यक्ष रूप से सनिक आक्रमण और प्रत्याक्रमण तो नही होते, पर तु इसमे राष्ट्र अपना प्रभाव और शक्ति प्रदर्शित करने तथा बढाने के लिए गूढ राजनयिक चालें चलते रहते हैं और एक दूसरे को नीचा दिखाने और उनका प्रभाव कम करने का प्रयत्न करते रहत हैं। इसका फल यह होता है कि उनके तथा दूसरे राष्ट्रो के लिए बडी बडी उलझनें और कठिनाइयाँ खडी हो जाती हैं, और उन्हें निर तर जटिल समस्याओ का सामना करना पडता है। × ×

शील—पु० [स०] दे० प्रकृति, शील स्वभाव और मिजाज'।
शुरू—पु० [अ० शुरू] दे० अथ, आदि, आरभ और प्रारम्भ'।
शेखी—स्त्री० [अ० शेख से] दे० अभिमान, गर्व, घमण्ड और शेखी ।
शोक—पु० [स०] दे० 'दु ख, खेद, विषाद और शोक ।

शोथ और शोफ
Inflammation Oedema

ये दोनो श द शरीर के अगो म एक विशेष प्रकार के रोग या विकार के वाचक हैं। यद्यपि दोनो के बाह्य लक्षण एक से होते हैं, फिर भी दोनों म कुछ सूक्ष्म अन्तर है और इस अन्तर का ज्ञान न होने के कारण लोग शोफ का

आदि के बढाव दमन के उपायों और प्रयत्नों के लिए हम कोई और शब्द ढूँढना या बनाना पडेगा। हमारे यहाँ भी बहुत दिनों स प्राय मल्लाह लोग इस प्रकार क उपाय करते आए हैं। सम्भव है उनस पूछने पर इसके लिए हमें अपने यहाँ का उपयुक्त और पुराना शब्द मिल जाय।

अन्तर्भाव भी शोथ मे ही करते है। प्राय: शरीर का कोई अग फूल जाता है, परन्तु उसका यह फूलना दो प्रकार का होता है। जिस फूलने में कुछ जलन या पीड़ा भी हो वस्तुतः वही शोथ है। इसके लिए हिन्दी मे 'सूजन' भी प्रचलित है जो फा० सोजन से बना है। सोजन का अर्थ है—जलन। प्राय: चोट लगने या फोडे आदि का आरम्भ होने पर शरीर का कोई अंग जब फूल जाता है तब उसे शोथ या सूजन कहते हैं। चोट का प्रभाव कम होने या फोड़े आदि का मवाद निकल जाने पर सूजन कम हो जाती है।

'शोफ' भी हमारे यहाँ का है तो बहुत प्राचीन शब्द। इसका प्रयोग आज-कल कुछ कम देखने में आता है। इसमें भी शरीर का कोई अंग फूल तो जाता है परन्तु इसमे किसी प्रकार की जलन या पीडा नही होती। इसके लिए हिन्दी मे नया शब्द 'फूलन' चलने लगा है, जो हिन्दी फूलना का भाववाचक रूप है। प्राय. पुराने रोगियो के हाथो-पैरो मे यह रोग हो जाता है और हमारे यहाँ वैद्यक के अनुसार इसका कारण कफ और वात का प्रकोप माना जाता है। इसमे यदि पीड़ित अग को उँगली से दबाया जाय तो उसमे गड्ढा सा पड़ जाता है। पर उँगली हटाने के कुछ देर बाद वह गड्ढा फिर फूलकर भर जाता है और ज्यो का त्यों हो जाता है। × ×

शोध—पु० [स०] दे० 'खोज, अनुसंधान, अन्वेषण और शोध'।

शोफ—पुं० [सं०] दे० 'शोथ और शोफ'।

शोर—पु० [फा०] दे० 'नाद, घोष, ध्वनि और लय'।

श्रद्धा—स्त्री० [स०] दे० 'आस्था, निष्ठा, श्रद्धा और भक्ति'।

श्रेणी—स्त्री० [सं०] दे० 'कोटि, वर्ग और श्रेणी'।

श्रेय—पुं० [स०] दे० 'कीर्ति, यश और श्रेय'।

श्वेतपत्र—पु० [स०] दे० 'विज्ञप्ति, अधिसूचना, ज्ञापन, ध्येयपत्र और श्वेतपत्र'।

संकल्प निश्चय प्रतिज्ञा (प्रण) और शपथ (दिव्य)

Determination Revoputior Pledge, Vow

1. Oath (ordeal) 2. Oath of alligiance
3. Solemon affirmation

इस वर्ग के शब्द इस बात के सूचक हैं कि मनुष्य अपने मन में जो मत या विचार स्थिर कर लेता है, उसे वह पूरी तरह से पालन करना चाहता है।

'सकल्प' पु० [स०] का मूल अर्थ है—मन में आनेवाली कोई बात या विचार। इसका दूसरा अर्थ है—अच्छी तरह सोच समझकर स्थिर की हुई ऐसी बात या विचार जिसे मनुष्य कार्य का रूप देना या पूरा करना चाहता है। इसी आधार पर आगे चलकर इसमें दृढ़ निश्चय या पुष्टता का भाव भी सम्मिलित हो जाता है। मध्य युग में इसका प्रयोग धार्मिक क्षेत्र में एक विशिष्ट आशय या भाव सूचित करने के लिए होने लगा था, और अब तक लोक में यह इसी अर्थ में बहुत कुछ प्रचलित हुआ है। हम कुछ दान करना चाहते हैं अथवा किसी पुण्य कार्य में प्रवृत्त होना चाहते हैं परन्तु इससे पहले इस सकल्प का एक विशिष्ट रूप में परिज्ञापन करते हैं। इसके लिए एक विशिष्ट मन्त्र बन गया है, और उसी मन्त्र का उच्चारण करते हुए हम यह बतलाते हैं कि हम दान अथवा पुण्य का अमुक कार्य करना चाहते हैं या करने लगे हैं। इस प्रकार का सकल्प कर चुकने पर हमारे लिए वह कार्य करना परम आवश्यक हो जाता है और हम उससे कभी पीछे नहीं हटते। आज कल साधारणत लोक-व्यवहार में इसकी धार्मिक भावना तो बहुत कुछ छूट गयी है, फिर भी अपना विचार पूरा करने की दृढ़ता बहुत कुछ लगी हुई है। यह हमारी इच्छा शक्ति और कार्य निष्ठा की दृढ़ता का परिचायक अवश्य है। हम कहते हैं—हमने यह सकल्प कर लिया है कि यह काम पूरा करके ही दम लेंगे। अब इसका प्रयोग वैयक्तिक क्षेत्र से आगे बढ़कर सामूहिक क्षेत्र में भी होने लगा है, जैसे—उस देश के निवासियों ने सकल्प कर लिया है कि वे स्वतन्त्रता प्राप्त करके ही दम लेंगे।

'निश्चय' पु० [स०] का मूल अर्थ है—दृढ़तापूर्वक स्थिर किया हुआ मत या विचार। इस दृष्टि से यह भी है तो एक प्रकार का सकल्प ही पर इसमें कुछ और विवक्षाएँ भी लगी हुई हैं। यह विशुद्ध लौकिक या सामाजिक क्षेत्र का शब्द है। निश्चय प्राय सभी बातों का आगा-पीछा देखकर, तर्क-वितर्क करके और अधिक सोच समझकर किया जाता है। इसके मूल में क्रियात्मक भावना बौद्धिक तत्व और विचार-शीलता की प्रधानता होती है। हम अपने किसी भावी कार्य के सम्बन्ध में तो निश्चय करते ही हैं, सार्वजनिक सभाओं समितियों आदि में भी प्राय इस प्रकार से अनेक निश्चय होते रहते हैं। इसमें भावी कार्यों के रूप और विधियाँ आदि का भी अन्तर्भाव होता है। प्रशासन और शासन के क्षेत्र में भी होनेवाले ऐसे निश्चय प्राय जन साधारण के सामने आते रहते हैं। आवश्यकतानुसार ऐसे निश्चयों में कुछ परिवर्तन, सशोधन आदि भी होते रहते हैं।

प्रतिज्ञा' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—किसी की कोई बात मान लेना, या यह कहना कि हमने यह बात सुन या समझ ली है। परन्तु आगे चलकर

इसमे एक नई विवक्षा लगी है, जिससे यह शब्द निश्चय और संकल्प के वर्ग मे मिलकर अपेक्षया और भी अधिक दृढ़ता का सूचक हो गया है। साधारणतः हम अपना निश्चय या संकल्प तो कुछ अवस्थाओ मे बदल भी सकते हैं; परन्तु जिस बात की प्रतिज्ञा करते है उससे हम अपने आपको मानो पूरी तरह से और सदा के लिए बाँध लेते हैं। हम उससे कभी मुड़ या हट नही सकते। प्रतिज्ञा साधारणतः अपने भावी आचरण, व्यवहार आदि के सम्बन्ध मे होती है। हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम भविष्य मे कभी किसी से धोखेबाजी या बेइमानी नही करेंगे; अथवा सारा जीवन देश और समाज की सेवा मे बितावेगे। कुछ अवसरों पर हम अपने किसी अभिन्न या सगे-सम्बन्धी से प्रतिज्ञा करते हैं कि हम अमुक कार्य में सदा तुम्हारी सहायता करते रहेगे। आशय यही होता है कि हम कभी या किसी दशा मे अपने इस निश्चय या वचन के विपरीत कार्य नही करेंगे।

'प्रण' पुं० [स० ?] की व्युत्पत्ति अनिश्चित भी है और संदिग्ध भी। यह शब्द सं० का नही है; और इसका रूप सं० पण से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। परन्तु पण के जो अर्थ हैं; उनमे से किसी का इसके अर्थ से कोई मेल नही है फिर भी न जाने कैसे हिन्दी मे यह प्रतिज्ञा के पर्याय के रूप मे चल पड़ा है। इसी दृष्टि से हमारी समझ मे इसका प्रचलन नही होना चाहिए।

'शपथ' स्त्री० [स०] निश्चय की दृढ़ता सूचित करनेवाला इस वर्ग का सबसे उत्कट शब्द है। इसके मूल अर्थों में अभिशाप, घुड़की, झिड़की, दुर्वचन आदि हैं। इसका एक और अर्थ 'दिव्य' भी है जिसका विवेचन नीचे किया गया है। परन्तु अपने परम प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ में इसका प्रयोग ऐसे प्रसगों मे होता है जब कोई अपने कथन, वचन आदि की सत्यता ईश्वर, धर्म-ग्रन्थ या देवी-देवता को साक्षी रखकर प्रदर्शित करना चाहता है। आशय यह होता है कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ, वह यदि कही या किसी रूप मे असत्य निकले तो मैं उस ईश्वर, धर्म-ग्रन्थ, या देवी-देवता के अभिशाप का साक्षी हूँ; जैसे—गंगाजी की शपथ। कभी-कभी कुछ परम-प्रिय व्यक्तियों की भी शपथ ली जाती है; जैसे—तुम्हारी शपथ, पुत्र की शपथ आदि। इसके स्थान पर हिं० मे 'सौगन्ध' का भी प्रयोग होता है जिसे हिन्दी शब्दसागर मे सं० सौगन्ध से व्युत्पन्न माना है जो ठीक नही है। मेरी समझ मे यह स० शपथ (पुरानी हिन्दी सोहे का आधुनिक परिष्कृत रूप) से व्युत्पन्न है। इसके सिवा

इसके स्थान पर कसम (स्त्री० अ०) का भी प्रयोग होता है।* पर अब इसका प्रयोग दो नए प्रसंगो मे भी होने लगा है। आज कल बडे बडे न्यायाधीशो राज्यपालो, विधायिका के सदस्यो आदि को अपना पद ग्रहण करने से पहले यह दृढ प्रतिज्ञा करनी पडती है कि हम अपने कर्तव्यो का पालन परम निष्ठा पूर्वक करेंगे, भेद या रहस्य की बातें किसी पर न प्रकट होने देंगे आदि। इसे पद ग्रहण की शपथ कहते हैं। इसके सिवा जब लोगो को किसी वरिष्ठ अधिकारी या न्यायालय के सामने कोई परिज्ञापन उपस्थित करना पडता है, तब मौखिक या लिखित रूप मे शपथपूर्वक यह बतलाना पडता है कि जहाँ तक मैं जानता हूँ, मेरा सारा कथन अक्षरश सत्य है। इन दोनो प्रकार की शपथो के स्थान पर हलफ (पु० अ०) का भी प्रयोग होता है।

दिव्य पु० [स०] के विशेषण रूप मे आकाश या देवताओ से सम्बन्ध रखनेवाला, परम सुन्दर आदि कई अर्थ हैं, पर तु सज्ञा रूप मे एक साधारण अर्थ म शपथ का पर्याय ही है।‡ परन्तु इसका मूलरूप और वास्तविक अर्थ कुछ और ही है। प्राचीन भारत म किसी अभियुक्त के अपराधी या निरपराध होने की दस विशिष्ट प्रकारो से परीक्षाए ली जाती थी, जसे—अग्नि परीक्षा उदक परीक्षा तडुल तप्त मास आदि। परीक्षा के यही सब प्रकार दिव्य कहलाते थे। यह अग्रेजी के Ordeal का ठीक समार्थक है। परन्तु आज कल हिं० म Ordeal के स्थान पर अग्नि परीक्षा का ही प्रयोग देखने म आता है जो दस प्रकार के दिव्यो म से एक है। × ×

---

* साधारणत जनता म अधिक और प्राय कसम खानेवाले लोग झूठे समझे जाते हैं। फारसी की एक कहावत भी है—

यक बार गुफ्ती, बावर करदम
दोबार गुफ्ती, शक बरातुदम
कसम खुर्दी, दरोग दानिस्तम

अर्थात् तुमने एक बार जो बात कही उस पर मैंने विश्वास कर लिया पर जब तुमने वही बात दोहरायी तब मुझे उसकी सत्यता म सन्देह हुआ और जब तुमने उसी बात पर कसम खाई तब मैंने समझ लिया यह बिल्कुल झूठ है।

‡ बँगला मे अभी तक शपथ या कसम के अर्थ म इसी दिव्य का प्रयोग होता है, परन्तु उसका उच्चारण दिब्बि होता है जसे—तोमार दिब्बि=तुम्हारी शपथ।

संक्रामक (या संचारी) संसर्गशील (या सर्गशील)

Infectious Communicable

और संसर्गज

Contagious

इस वर्ग के विशेषण ऐसे रोगो के सूचक है जो एक ही समय मे दूर-दूर तक फैलते और बहुत से लोगो को प्राय: एक साथ ही पीड़ित करते हैं।

'सक्रामक' वि० [स०] का मूल अर्थ है क्रम-क्रम से आगे बढनेवाला। चिकित्सा शास्त्र के अनुसार सक्रामक ऐसे रोगो को कहते हैं जो किसी शरीर मे विषाक्त कीटाणुओ के पहुचने और बहुत जल्दी-जल्दी बढते रहने से उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसे रोगो के कीटाणु किसी रोगी प्राणी के शरीर से निकलकर भी दूर-दूर तक फैलते हैं; जैसे चूहो के शरीर से निकलनेवाले कीटाणुओ से प्लेग फैलता है और मच्छरो के शरीर से निकलनेवाले कीटाणुओ के द्वारा शीत-ज्वर (मलेरिया) फैलता है। इसके सिवा रोगी के शरीर से निकलनेवाले कफ़, मल और मूत्र मे भी ऐसे कीटाणु रहते हैं जो पानी और हवा में मिलकर दूर-दूर तक फैलते और बढते रहते हैं। चेचक, हैजा आदि इसी प्रकार के रोग हैं।

'ससर्गज' वि० [स०] का अर्थ है। ससर्ग के कारण उत्पन्न होनेवाला। यह भी है तो संक्रामक रोगो का एक प्रकार ही; परन्तु इसकी एक विशेषता यह है कि जो लोग रोगी के सम्पर्क मे आते अर्थात् उनके पास उठते-बैठते या उनकी सुश्रूषा करते है उन्हे भी रोगी के ससर्ग मात्र से ऐसे रोग हो जाते हैं।

'ससर्गशील' वि० [स०] ऐसे सक्रामक और ससर्गज रोगो को कहते हैं जो निश्चित रूप से उक्त दोनो प्रकारो से फैलते या बढते तो नही है फिर भी जिनमे फैलने या बढने की कुछ प्रवृत्ति या संभावना होती है। यह रोगो के फैलने का कोई प्रकार नही है, पर रोगो के फैलने की सभावना का सूचक मात्र है। लाघव और सुगमता की दृष्टि से हम इसे सर्गशील भी कह सकते हैं। 'आकाश-वाणी' से मैंने इसके स्थान पर 'संचारी' का प्रयोग होते हुए सुना है, जो अर्थ या आशय की दृष्टि से मुझे ठीक नही जान पड़ता। इसीलिए इसे मैंने ससर्गशील या सर्गशील रखना उचित समझा है। × ×

संख्यांकन—पुं० [स०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और सख्यापन'।

स्या—सत्री० [स०] दे० 'भव, भोंकडे भौर सख्या'।

सख्यापन—पु० [स०] दे० 'गणन, मनुगणन, म्रभिकलन, भकालन, परिक्लन, परिगणन भौर सख्यापन'।

गणकस—पु० [स०] दे० गणन, भनुगणन म्रभिकलन, भाकलन, परिक्लन, परिगणन भौर सख्यापन।

सगणन—पु० [स०]=मभिकलन, दे० गणन, मनुगणन, मभिकलन, भाकलन, परिक्लन, परिगणन भौर सख्यापन।

सगोष्ठी—स्त्री० [स०]=विचार गोष्ठी, दे० 'परिचर्या परिसवाद, भौर विचार गोष्ठी'।

सघ परिसघ भ्रौर राष्ट्र-मडल (राष्ट्र कुल)

Federation Confederation Commonwealth

इस वग के शब्द मनुष्यों के ऐसे बहुत बडे सघटित समुदायों के वाचक हैं जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए मिलकर भपनी नीति निर्धारित करते भौर उसके भनुसार काय तथा प्रयत्न करते हैं।

सघ' पु० [स०] हमारे यहाँ का बहुत पुराना भौर प्रसिद्ध श ब्द है, भौर यह भौद्योगिक धार्मिक, राजनीतिक, व्यावसायिक भ्रादि क्षेत्रों मे कुछ विशिष्ट प्रकार के सघठनों का वाचक था। इसका पहला भय है। बहुत से लोगो का सघठित समुदाय या समूह। प्राचीन भारत में भनेक प्रकार के व्यवसायी भौर श्रमिक भ्रपनी जो बहुत बडी सस्था बनाते थे उसी को सघ कहते थे। उसी के भ्रनुकरण पर भ्राज कल भी कारीगरो पेशेवरा मजदूरो भ्रादि के सघ बनते हैं। प्राचीन भारत मे एक प्रकार का लोकतात्रिक राज्य या शासन भी सघ कहलाता था। भ्रागे चलकर जब महात्मा गौतम बुद्ध ने भपने धर्म का प्रचार भ्रारभ किया, तब उनके समस्त भ्रनुयायियो भ्रौर विशेषत ससार त्यागी भिक्षुभ्रो का सारा समुदाय सघ कहलाने लगा। इस सघ का महत्व इतना भ्रधिक बढा कि इसकी गिनती भ्रिरत्नो मे होने लगी। इनम पहले रत्न का स्थान स्वय गौतम बुद्ध को दूसरे का स्थान उनके चलाए हुए धम को भ्रौर तीसरा उनके भ्रनुयायियों के इस सघ को प्राप्त हुभा।

परन्तु भ्राज कल सघ मुख्यत प्रशासनिक भ्रौर राजनीतिक क्षेत्रो का श ब्द बन गया है। जब एक ही प्रकार की भनेक बडी बडी सस्थाएँ भ्रापस में मिलकर कुछ निश्चित नियमो भ्रौर सिद्धातो के भ्राधार पर भ्रपना कोई बडा

संघठन बनाती है, तब उसे सघ कहते हैं; जैसे—खान मे काम करनेवाले मजदूरों का सघ, रेल-कर्मचारियो का सघ आदि। सघ बनाने वाली छोटी-छोटी संस्थाएँ अपने क्षेत्र मे काम करने के लिए तो बहुत कुछ स्वतंत्र होती हैं; परन्तु सबके आधार-भूत नियम और सिद्धात उनका सघ ही बनाता है। राजनीतिक क्षेत्र मे बहुत से छोटे-मोटे राज्य आपस मे मिलकर उक्त प्रकार का अपना सघ बना लेते हैं। जैसे अरब राज्यों का सघ; एशिया के दक्षिण पूर्वी राज्यो का संघ आदि। ऐसे सघो मे सारे ससार के प्रायः सभी स्वतन्त्र राज्यो का बनाया हुआ राष्ट्र-सघ सबसे बड़ा और बहुत प्रसिद्ध है। उत्तरी अमेरिका और भारत सरकार का स्वरूप भी मूलतः इसी संघ की कोटि का है।

'परिसघ' पुं० [स०] उक्त सघ मे परि उपसर्ग लगाकर बनाया हुआ इधर हाल का शब्द है। जब कई प्रभुसत्ताक राज्य या सघ आपस मे मिलकर उक्त प्रकार का अपना कोई बड़ा सघ बनाते हैं, तब उसे परिसघ कहते है। सघ की विशेषता तो यह है कि उसकी कार्य-प्रणालियाँ नियम, विधान आदि पहले से ही किसी सार्विक सम्मेलन मे स्थिर कर लिया जाता है। परन्तु परिसघ बनाने के समय उसके सदस्य राज्य अथवा सघ अपने कुछ विशिष्ट अधिकार अपने नये परिसघ का हस्तातरित कर देते है हस्तातरित किये जाने वाले ऐसे अधिकारो मे प्राय तट-कर पर-राष्ट्र-नीति, बाहरी आक्रमण से सुरक्षा अथवा ऐसे ही कुछ और विषय होते हैं।

'राष्ट्रमडल' पुं० [स०] भी उक्त प्रकार का इधर हाल का बना हुआ शब्द है। इसका शब्दार्थ है—अनेक राष्ट्रो का सघठित समुदाय। यह भी है तो उक्त प्रकार का एक सघ ही; परन्तु अधिकार, कार्य-प्रणाली, नीति निर्धारण आदि के सम्बन्ध मे इसका प्रकार या स्वरूप बहुत कुछ भिन्न है। ऐसे मडल के सदस्य सभी राष्ट्र अपने-अपने कामो और व्यवहारो मे बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं, फिर भी इनके प्रतिनिधि समय-समय पर आपस मे मिलते रहते है और पारस्परिक हितों के सम्बन्ध मे अपने सिद्धात बनाते रहते हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि सदस्य राष्ट्र यथासाध्य मिलकर रहे, एक दूसरे का विरोध न करें अथवा उन्हे हानि न पहुंचावें। उस क्षेत्र में आज-कल ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल विशेष प्रसिद्ध है। इधर जब से ब्रिटिश साम्राज्य भंग और विछिन्न होने लगा है, तब से उसके पुराने अधीनस्थ देश स्वतत्र हो जाने पर ब्रिटिश राष्ट्र-मडल के सदस्य बन जाते हैं। अब तक इस मंडल मे १२० से अधिक सदस्य राष्ट्र सम्मिलित हो चुके हैं।

ख्या—स्त्री० [सं०] दे० 'अंक, आँकड़े और संख्या'।

संख्यापन—पु० [सं०] दे० 'गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और संख्यापन'।

गणक्स—पु० [सं०] दे० गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और संख्यापन'।

संगणन—पु० [सं०]=अभिकलन, दे० गणन, अनुगणन, अभिकलन, आकलन, परिकलन, परिगणन और संख्यापन।

संगोष्ठी—स्त्री० [सं०]=विचार गोष्ठी, दे० 'परिचर्या, परिसंवाद, और विचार गोष्ठी।

संघ परिसंघ और राष्ट्र-मंडल (राष्ट्र कुल)

Federation Confederation Commonwealth

इस वर्ग के शब्द मनुष्यों के ऐसे बहुत बड़े संघटित समुदायों के वाचक हैं जो किसी विशिष्ट उद्देश्य की सिद्धि के लिए मिलकर अपनी नीति निर्धारित करते और उसके अनुसार कार्य तथा प्रयत्न करते हैं।

'संघ पु० [सं०] हमारे यहाँ का बहुत पुराना और प्रसिद्ध शब्द है और यह औद्योगिक धार्मिक, राजनीतिक, व्यावसायिक आदि क्षेत्रों में कुछ विशिष्ट प्रकार के संघटनों का वाचक था। इसका पहला अर्थ है। बहुत से लोगों का संघटित समुदाय या समूह। प्राचीन भारत में अनेक प्रकार के व्यवसायी और श्रमिक अपनी जो बड़ी बड़ी संस्था बनाते थे उसी को संघ कहते थे। उसी के अनुकरण पर आज कल भी कारीगरों पेशेवरों, मजदूरों आदि के संघ बनते हैं। प्राचीन भारत में एक प्रकार का लोकतान्त्रिक राज्य या शासन भी संघ कहलाता था। आगे चलकर जब महात्मा गौतम बुद्ध ने अपने धर्म का प्रचार आरंभ किया, तब उनके समस्त अनुयायियों और विशेषतः संसार-त्यागी भिक्षुओं का सारा समुदाय संघ कहलाने लगा। इस संघ का महत्व इतना अधिक बढ़ा कि इसकी गिनती त्रिरत्नों में होने लगी। इनमें पहले रत्न का स्थान स्वयं गौतम बुद्ध को दूसरे का स्थान उनके चलाए हुए धर्म का और *तीसरा उनके अनुयायियों के इस संघ का प्राप्त हुआ।*

परन्तु आज-कल संघ मुख्यतः प्रशासनिक और राजनीतिक क्षेत्रों का शब्द बन गया है। जब एक ही प्रकार की अनेक बड़ी-बड़ी संस्थाएँ आपस में मिलकर कुछ निश्चित नियमों और सिद्धांतों के आधार पर अपना कोई बड़ा

संघठन बनाती हैं, तब उसे संघ कहते हैं; जैसे—खान में काम करनेवाले मजदूरो का सघ, रेल-कर्मचारियो का संघ आदि। सघ बनाने वाली छोटी-छोटी सस्थाएँ अपने क्षेत्र मे काम करने के लिए तो बहुत कुछ स्वतंत्र होती हैं; परन्तु सबके आधार-भूत नियम और सिद्धात उनका संघ ही बनाता है। राजनीतिक क्षेत्र मे बहुत से छोटे-मोटे राज्य आपस में मिलकर उक्त प्रकार का अपना सघ बना लेते हैं। जैसे अरब राज्यो का संघ; एशिया के दक्षिण पूर्वी राज्यो का सघ आदि। ऐसे सघों मे सारे संसार के प्राय: सभी स्वतन्त्र राज्यों का बनाया हुआ राष्ट्र-संघ सबसे बडा और बहुत प्रसिद्ध है। उत्तरी अमेरिका और भारत सरकार का स्वरूप भी मूलत: इसी सघ की कोटि का है।

'परिसंग' पुं० [सं०] उक्त सघ मे परि उपसर्ग लगाकर बनाया हुआ इधर हाल का शब्द है। जब कई प्रभुसत्ताक राज्य या सघ आपस में मिलकर उक्त प्रकार का अपना कोई बडा सघ बनाते हैं, तब उसे परिसघ कहते है। सघ की विशेषता तो यह है कि उसकी कार्य-प्रणालियाँ नियम, विधान आदि पहले से ही किसी सार्विक सम्मेलन मे स्थिर कर लिया जाता है। परन्तु परिसघ बनाने के समय उसके सदस्य राज्य अथवा सघ अपने कुछ विशिष्ट अधिकार अपने नये परिसघ का हस्तातरित कर देते है हस्तातरित किये जाने वाले ऐसे अधिकारों मे प्राय. तट-कर पर-राष्ट्र-नीति, बाहरी आक्रमण से सुरक्षा अथवा ऐसे ही कुछ और विषय होते हैं।

'राष्ट्रमंडल' पुं० [सं०] भी उक्त प्रकार का इधर हाल का बना हुआ शब्द है। इसका शब्दार्थ है—अनेक राष्ट्रो का संघठित समुदाय। यह भी है तो उक्त प्रकार का एक सघ ही; परन्तु अधिकार, कार्य-प्रणाली, नीति निर्धारण आदि के सम्बन्ध मे इसका प्रकार या स्वरूप बहुत कुछ भिन्न है। ऐसे मंडल के सदस्य सभी राष्ट्र अपने-अपने कामो और व्यवहारो मे बिलकुल स्वतन्त्र होते हैं, फिर भी इनके प्रतिनिधि समय-समय पर आपस मे मिलते रहते है और पारस्परिक हितो के सम्बन्ध मे अपने सिद्धात बनाते रहते हैं। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि सदस्य राष्ट्र यथासाध्य मिलकर रहे, एक दूसरे का विरोध न करे अथवा उन्हे हानि न पहुँचावें। उस क्षेत्र मे आज-कल ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल विशेष प्रसिद्ध है। इधर जब से ब्रिटिश साम्राज्य भंग और विछिन्न होने लगा है, तब से उसके पुराने अधीनस्थ देश स्वतत्र हो जाने पर ब्रिटिश राष्ट्र-मडल के सदस्य बन जाते हैं। अब तक इस मडल मे १२० से अधिक सदस्य राष्ट्र सम्मिलित हो चुके हैं।

× ×

संज्ञा—स्त्री० [सं०] दे० 'नाम, उपनाम, पदनाम, संज्ञा और सुनाम'।

संचार—पु० [सं०] दे० 'परिवहन, यातायात, संचार, दूर-संचार और भू-संचार'।

संताप—पु० [सं०] दे० 'ताप, परिताप, पश्चाताप, मनस्ताप और संताप'।

संतुलन समन्वय और सामञ्जस्य
Balancing Co ordination Adjustment

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओं के वाचक हैं जो भिन्न भिन्न अंगों, दलों, पक्षों, स्थितियों आदि को मिल जुल कर और समान रूप से काम करने के लिये एक समान धरातल पर लाने के उद्देश्य से की जाती हैं।

संतुलन' पु० (सं०) का मूल अर्थ है, अच्छी तरह ठीक पूरा तोलना। इसका परवर्ती अर्थ होता है तोलने के समय तराजू के दोनों पलड़ों को बराबर या समान रखना परन्तु लाक्षणिक रूप में यह एसी स्थिति का वाचक है जिसमें दो या अधिक अंग अथवा पक्ष आपेक्षिक दृष्टि से अपने उचित रूप में और नियत स्थान पर इस प्रकार बने या स्थिर रहें कि कोई एक अंग या पक्ष इतना अधिक बलशाली या भारी न होने पावे कि दूसरे अंगों या पक्षों को दबाकर उनपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके अथवा उनसे किसी प्रकार स्वार्थ सिद्ध कर सके। इसका मुख्य उद्देश्य होता है कोई विकृत परिस्थिति या संकट को आने से रोकना, जैसे—रूस यह चाहता है कि दक्षिण पूर्वी एशिया के राष्ट्रों में संतुलन बना रहे, अर्थात् एक राष्ट्र दूसरे को दबा या हड़प न सके। इसके सिवा इसका प्रयोग मन या उसमें उत्पन्न होनेवाले विचारों के सम्बन्ध में भी होता है। जब हम कहते हैं, हमें अपना संतुलन खोना नहीं चाहिए तो आशय यही होता है कि हमें अपने मन या विचारों को ऐसी सम स्थिति में रखना चाहिए कि न तो हमारा ही कोई अनिष्ट हो न औरों का।*

---

*इसी प्रकार पर अंग्रेजी के (Counter balance) के लिए हिंदी में प्रति संतुलन का प्रचलन हुआ है। यदि कोई पक्ष या पलड़ा किसी कारण से भारी या हलका पड़ गया हो तो उसके साथ समानता स्थापित करने के लिए दूसरे पक्ष या पलड़े को हल्का या भारी करने के लिए जो क्रिया की जाती है उसी को प्रति संतुलन कहते हैं।

'समन्वय' पु० [सं०] का प्राथमिक अर्थ है, कइयो या बहुतो का इस प्रकार आपस मे मिलना कि उनकी एक इकाई बन जाय, अर्थात् वे पारस्परिक भेद-भाव या विरोध भूलकर एक हो जायँ और मिलकर कोई काम करने लगे। इसका उद्देश्य होता है सबको साथ मिला या रखकर ठीक से काम चलाना। जैसे हमारे राज्य मे इस समय आठ-दस राजनीतिक दल मिलकर शासन चला रहे है; और उन सबको एक साथ मिलाये रखने के लिए सभी दलो के प्रतिनिधियो की एक समन्वय समिति है। इसके सिवा यह ऐसी स्थिति का भी वाचक है जिसमे कथनो, विचारो आदि का पारस्परिक अन्तर या भेद दूर करके ऐसी एक-रूपता लाई जाती है कि किसी को कोई आपत्ति करने का अवसर न मिले।

'सामञ्जस्य' पु० [स०] समजन का भाव-वाचक या स्थिति-सूचक रूप है। 'समजन' का अर्थ है, भिन्न-भिन्न अगो या वस्तुओ को इस प्रकार ठीक तरह से और यथा-स्थान बैठाना कि सब मिलकर अपना-अपना काम ठीक तरह से कर सके। इसके सिवाय समजन के कुछ और अर्थ भी हैं, जैसे— (क) किसी बडे यन्त्र के कल-पूर्जे यथा-स्थान बैठाना, (ख) बही-खाते में आय व्यय, लेन-देन आदि का हिसाब इस प्रकार ठीक तरह से रखना या लिखना कि कही कोई त्रुटि या भूल न होने पावे आदि। सामञ्जस्य इन सबके भावो का सूचक तो है ही, पर मुख्य रूप से यह ऐसी स्थिति का वाचक है जिसमे किसी प्रकार की विपरीतता या विषमता न रह जाय अर्थात् अनौचित्य खटक, दोष आदि दूर करके ठीक तरह के काम करने की स्थिति मे लाना ही सामञ्जस्य है। दोनो के लिए कुछ अवस्थाओ मे 'ताल-मेल' शब्द का भी प्रयोग होता है। × ×

सदर्भ—पु० [सं०] दे० 'विषय, प्रकरण, प्रसग और संदर्भ'।
सर्दाभका—स्त्री० [सं० सदर्भ से] दे० 'विषय, प्रकरण, प्रसग और सदर्भ'।

संदेश संवाद और समाचार

संदेश	संवाद	समाचार
Message	1. Information 2. Dialogue	News

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातो के वाचक हैं जो दूसरों के साथ सम्पर्क स्थापित करके उन्हे कोई मत विचार, विवरण, स्थिति आदि सूचित करने के लिए कही या बतलाई जाती हैं।

'सदेश' पु० [स०] का मूल अथ है—किसी को कोई बात बतलाना, समझाना या सुनाना ? परन्तु आगे चलकर यह ऐसी बातो का वाचक हो गया, जिनमे मुख्य रूप से यह कहा या बतलाया जाता है कि अमुक काम इस प्रकार करना चाहिए या किया करो। इस प्रकार इसमे आज्ञा, आदेश, निदेश आदि के तत्व भी सम्मिलित हो गए। मध्य युग मे ऐसा सदेश प्राय किसी आपसी आदमी, पत्रवाहक या हरकारे के द्वारा पहुँचाया या भेजा जाता था।* कुछ अवस्थाओ मे जन समाज के सामने भी इस प्रकार की बातें इस उद्देश्य से कही जाती थी कि वे इनके अनुसार स्वय ही आचरण और व्यवहार करें, तथा दूसरे लोगो तक ये बातें पहुँचाकर उन्हे भी इनका पालन करने के लिए प्रेरित करें, जसे—गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी शकराचाय अथवा स्वामी दयानन्द और परमहस रामकृष्ण के सन्देश। आज कल डाक तार आदि का सुभीता हो जाने के कारण उनके द्वारा किसी जाति देश अथवा सारे ससार के लोगा के पास ऐसे सन्देश भेजे जाते हैं। हिन्दी म यह शब्द 'सन्देशा' रूप मे भी प्रचलित है।

'सवाद पु० [स०] का मूल अथ है—किसी से कुछ कहना, बात चीत या वार्तालाप करना। इसमे मुख्यत या तो अपना मत या विचार प्रकट किया जाता है, या किसी घटना, स्थिति आदि का विवरण या वृत्तान्त होता है। परन्तु आगे चलकर यह शब्द किसी ऐसी गम्भीर और महत्वपूण चर्चा का वाचक हो गया जो पहले किसी विशिष्ट अवस्था मे हुई हो अथवा होती हो। यह भी आपस म होनेवाली बात चीत या वार्त्तालाप का विशिष्ट रूप ही है। आज कल यह शब्द उक्त प्रकार की बातो का साराश या स्वरूप बतलाने की ऐसी पुनरावृत्ति का भी वाचक हो गया है जो प्राय अभिनयो, नाटको, लीलाओ आदि मे होती है, जसे—कृष्ण और दुर्योधन का लक्ष्मण और परशुराम का अथवा मदोदरी और रावण का सम्वाद।

'समाचार' पु० स० सम+आचार के योग से बना हुआ यौगिक शब्द है जिसका अभिधाय है—ऐसा आचरण या व्यवहार जो सम हो, अर्थात् जिसमे कोई असाधारण नई या परम्परा विरुद्ध बात न हो। प्राचीन काल मे

---

* बगाल म ऐसे सदेश के साथ अपने मित्रो सगे, सम्बन्धियो को छेने की एक प्रकार की मिठाई भी भेजी जाती थी। ऐसी मिठाई को भी स देश कहने लगे थे। अब भी यह मिठाई इसी नाम से और बहुत कुछ इसी रूप म प्रचलित तथा प्रसिद्ध है।

प्राय: अपने सम्बन्धियो आदि के यहाँ जो समाचार भेजे जाते थे, उनमे मुख्य उद्देश्य और तत्व यही होता था कि यहाँ सब काम और सब बातें ठीक तरह से चल रही हैं और कोई ऐसी नई या विशेष बात नही है जो हमारे लिए कष्ट कर अथवा आपके लिए चिन्ताजनक हो। आगे चलकर यह शब्द किसी विशिष्ट कार्य या व्यापार की भेजी जानेवाली सूचना का भी वाचक हो गया था; यथा—समाचार मिथिलापति पाए।—तुलसी। परन्तु अब इसका प्रयोग बहुत अधिक विस्तृत तथा व्यापक अर्थ मे किसी असम या विषम कार्य, घटना, व्यापार, स्थिति आदि के भेजे जानेवाले विवरण या सूचना को भी 'समाचार' कहने लगे हैं; जैसे—ज्वालामुखी के विस्फोट, बाढ, भूकम्प या युद्ध का समाचार। ऐसे समाचार डाक-तार आदि के द्वारा भी दूर-दूर के लोगो तक पहुँचाए जाते हैं और मौखिक रूप से भी आपस मे एक दूसरे को बतलाये-सुनाए जाते हैं। समाचार मुख्यत: ऐसी घटनाओ, स्थितियो आदि के विवरण का वाचक हो गया है जिनमे कोई असाधारणता, नवीनता, विलक्षणता या विशिष्टता होती है और जिसे जानने के लिए अपने कुतूहल या रुचि के कारण लोग प्राय: उत्सुक रहते हो। आज-कल रेडियो, समाचार-पत्रो आदि क द्वारा इसी प्रकार के समाचार जन-साधारण और दूर-दूर तक पहुँचाए जाते है। इसके स्थान पर अ० खबर का भी हिन्दी मे बहुत दिनों से प्रयोग होता आ रहा है। × ×

सँदेशा—पु० दे० 'सदेश, सवाद और समाचार'।

सदेह—पुं० [स०] दे० 'शका, आशका, सदेह और सशय'।

संधि संविदा और समझौता

संधि	संविदा	समझौता
1. Joint	1. Agreement	1. Understanding
2. Treaty	2. Contract	2. Compromise
		3 Pact

इस माला के सभी शब्द ऐसे पारस्परिक निश्चयो के वाचक हैं जो दो या अधिक दलो, वर्गों, व्यक्तियो आदि मे (क) आपसी झगडे या मतभेद दूर करने, अथवा (ख) भावी कार्यो, व्यापारो आदि के सचालन का स्वरूप स्थिर करने के लिए होते है।

'संधि' स्त्री० [स०] के दो मुख्य अर्थ है—(क) दो या अधिक चीजो का एक मे मिलना या जुडना; और (ख) वह बिन्दु, रेखा या स्थान जहाँ दो

या अधिक चीजें आकर मिलती या साथ होती हैं। शरीर में जहाँ दो या अधिक हड्डियाँ कई ओर से आकर मिलती हैं उसे संधि कहते हैं, जैसे—कोहनी या घुटने की संधि। भाषा में जब दो शब्द कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार आपस में मिलकर एक होते हैं तो उसे व्याकरण में शब्दों की संधि कहते हैं। एक अवस्था या समय की समाप्ति और उसी के साथ-साथ होनेवाली दूसरी अवस्था या समय का आरम्भ भी संधि ही है, जैसे—युग संधि, वय संधि। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में संधि वह है जो दो या अधिक राज्यों अथवा राष्ट्रों में विचार विमर्श के उपरांत पारस्परिक हित की दृष्टि से भावी आचरण से संबद्ध, स्पष्ट निश्चयों के रूप में हो। यों तो संधि मुख्यतः युद्ध की समाप्ति पर होती है, पर शांतिकाल में भी संधियाँ होती ही हैं। पहले इसकी शर्तें राज्यों या राष्ट्रों के प्रतिनिधि मिलकर स्थिर करते हैं और तब स्वयं राज्य या राष्ट्र इसकी अभिपुष्टि (अं० 'रैटिफिकेशन') करके इसे व्यावहारिक रूप में प्रचलित करते हैं। राष्ट्रों में पहले जो समझौते होते हैं, वे भी आगे चलकर औपचारिक और लिखित संधि का रूप धारण करके विधिक तथा वैधानिक मान्यता प्राप्त कर सकते हैं।

संविदा' स्त्री० [सं०] का मूल अर्थ है—चेतना से युक्त या चैतन्य। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में यह कुछ दलों, पक्षों व्यक्तियों, संस्थाओं आदि में होनेवाला कुछ विशिष्ट प्रकार के ठहराव या निश्चय का वाचक शब्द है। ब्योरे की सब बातों से युक्त और लक्ष्य के रूप में लिखित निश्चय ही विधिक क्षेत्र में 'संविदा' कहलाता है। व्यापारिक और व्यावहारिक क्षेत्रों में इसका विशेष प्रचलन है। इसमें आपसी झगड़े निपटाने के लिए और किसी कार्य के सम्बन्ध में भावी कार्य प्रणाली, नियम आदि स्थिर करने के लिए भी प्रायः सभी प्रकार की सम्भावनाओं का ध्यान रखते हुए, जो शर्तें पक्की की जाती हैं उन सबका पूरा और ब्योरेवार उल्लेख होता है।

'समझौता' पु० [हिं०] समझना का भाववाचक रूप है। अपने प्राथमिक अर्थ में आपस में समझ बूझकर जो बात स्थिर कर ली जाए, वही समझौता है, जैसे—हम और आप मिलकर यह समझौता कर सकते हैं कि हम लोग अमुक व्यक्ति की किस प्रकार सहायता करेंगे अथवा उसे किस प्रकार हानि पहुँचावेंगे। यह तो हुआ निजी समझौता। परन्तु विधिक दृष्टि से इसके लिए दो बातें आवश्यक हैं, एक पक्ष से कोई प्रस्ताव हो (कोई बात किसी के ग्रहण करने के लिए उसके सामने रखी जाए) और दूसरा पक्ष उसे मान ले। इसमें सम्बद्ध पक्षों की आपसी सहमति का भाव मुख्य है। परवर्ती अर्थ में

लोग यह भी समझौता कर सकते है कि हम आपस के पुराने लड़ाई-झगड़े भूल जाएँगे और मिलकर शातिपूर्वक रहेगे। ऐसा समझौता किसी विवाद का अन्त करने के लिए होता है और इसमे दोनो पक्षो को कुछ दवकर या अपनी माँगे घटाकर एक दूसरे के साथ रियायत भी करनी पडती है। समझौता अलिखित या मौखिक भी हो सकता है और लिखित भी। लिखित समझौते को इकरारनामा या करारनामा (फा०) भी कहते हैं।

इससे और आगे वढने पर आज-कल इसमे एक नई विवक्षा भी सम्मिलित हो गई है। एक ओर तो कई दलो या पक्षो मे होनेवाला ठहराव या निश्चय भी समझौता कहलाता है; जैसे—काग्रेस, जनसघ और स्वतत्र दल ने मिलकर यह समझौता कर लिया है कि हम सब मिलकर चुनाव लडेगे, अथवा जहाँ हम मे से किसी एक दल का उम्मीदवार खडा होगा, वहाँ वाकी दोनो दल अपना उम्मीदवार नही खड़ा करेगे। दूसरी ओर राजनीतिक क्षेत्र मे कुछ विशिष्ट राज्य या राष्ट्र आपस मे मिलकर परिवहन, यातायात, व्यापार आदि के सम्वन्ध मे इस प्रकार का समझौता करते हैं। ऐसी अवस्था मे हम इसे राजनीतिक सन्धि का एक गौण प्रकार या रूप ही कह सकते हैं; जैसे—ताशकन्द मे भारत और पाकिस्तान मे यह समझौता हो चुका है कि दोनो पक्ष सव प्रकार के आपसी झगड़ो का शान्तिपूर्ण उपायो से ही निपटारा करेगे, बल-प्रयोग द्वारा नही। × ×

संपत्ति—स्त्री० [सं०] दे० 'धन, वित्त, वैभव, संपत्ति और परिसपत्ति'।

संपर्क और संबंध

Contact — 1. Connection 2. Relation

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमे दो अलग-अलग वस्तुओ, व्यक्तियो आदि मे एक दूसरे को किसी रूप मे जोड़ने या मिलानेवाला कोई साधन या सूत्र उत्पन्न या स्थापित होता है।

'सपर्क' का पहला अर्थ है—आपस मे जोडना या मिलाना। इसी आधार पर इसका दूसरा और प्रचलित अर्थ होता है—लगाव या सवध। परन्तु आज-कल इसका प्रयोग अगरेजी के कन्टैक्ट (Contact) का भाव सूचित करने के लिए होने लगा है, और इसी लिए इसमे साधारण लगाव या सवध से कुछ भिन्न तथा विशेष प्रकार का भाव सम्मिलित हो गया है। लगाव या सवध मे दृढता, पुष्टता, स्थायित्व आदि के जो भाव हैं वे सपर्क मे प्राय. नही

के समान हैं। यह मुख्यत ऐसे लगाव या सम्ब ध का सूचक है जो किसी विशेष अवस्था म, आवश्यकतावश और थोडे समय के लिए अर्थात् कोई काम चलाने या निकालने के लिए स्थापित किया जाता है, जसे—भारत सरकार इस विषय पर विचार विमर्श करने के लिए अ या य राष्ट्रो से सपक स्थापित कर रही है। आशय यही होता है कि इस सम्ब ध मे बातचीत या व्यवहार आरम्भ हुआ है।

'सबध अपेक्षया अधिक यापक अर्थों वाला शब्द है। इसका पहला और व्युत्पत्तिक अथ है—आपस मे अच्छी तरह जुडा या बँधा हुआ होना। यह मुख्यत ऐसी स्थिति का वाचक है जिसमे दो या अधिक चीजें यक्ति आदि आपस मे इस प्रकार जुडे या लगे हुए होते हैं कि सहसा और साधारणत अलग नही होते या नही हा सकते। इसमे एक दूसरे पर आश्रित रहने, एक दूसरे के साथ गुथे हुए हाने अथवा आवश्यक और स्थायी अग के रूप मे बने रहने या वतमान होने का भाव प्रधान है, जसे—(क) शब्द और अथ का सम्ब ध (ख) मित्रता का सम्ब ध (ग) कर्त्ता का काय के साथ होनेवाला सम्ब ध और (घ) जल वायु का स्वास्थ्य के साथ होनेवाला सम्ब ध आदि आदि। हिदी म यह अथ या आशय प्राय 'लगाव' से भी सूचित हाता है। (दे० 'लगाव और लगावट')।

सामाजिक क्षेत्र म यह शब्द कुछ और भी विस्तृत अथ मे प्रयुक्त होता है। एक कुल या गोत्र म उत्पन्न हाने क कारण, अथवा विवाह आदि के कारण यक्तियों मे जो पारस्परिक स्थिति होती है, उसे सम्ब ध कहते हैं, जसे—(क) पिता और पुत्र का सम्ब ध, (ख) पति और पत्नी का सम्ब ध, और (ग) भाई भतीजा, नाती-पोतो आदि मे होनेवाला सम्ब ध। इससे और आग बढने पर यह शब्द उस स्थिति का भी सूचक होता है जिसम वर और क या के विवाह की बातचीत पक्की होती है, जसे—आज कल वे अपनी क या (या पुत्र) के सम्ब ध की बात चीन कई जगह चला रहे हैं। इस अथ मे हिदी म उदू का रिश्ता (फा० रिश्त) भी प्रयुक्त होता है। 'सम्ब ध' उक्त प्रकार क लगाव का तो सूचक है ही उस लगाव से उत्पन्न होनेवाली स्थिति का भी सूचक है, जसे—उनके साथ हमारे दोहरे सम्ब ध हैं। इस स्थिति का सूचक 'रिश्तेदारी' शब्द भी हिदी म प्रचलित है।

जातियों दला राष्ट्रो आदि मे जो अनेक प्रकार के पारस्परिक लगाव हाते हैं उ हे भी सम्ब ध ही कहते हैं, जसे—(क) मालिका और मजदूरो

का सम्वन्ध; (ख) उत्पादकों और व्यापारियों का सम्वन्ध; और (ग) राष्ट्रो आदि मे होनेवाला राजनयिक या राजनीतिक सम्वन्ध।

कुछ समस्याओ मे इसके साथ 'मे' विभक्ति भी लगती है; जैसे—इस सम्वन्ध मे मैं आपका विचार जानना चाहता हूँ। आशय यही होता है कि इस प्रसंग या विपय मे आपके विचार जानना चाहता हूँ। × ×

संप्रेक्षण—पु० [स०] दे० 'निरीक्षण, अधीक्षण, पर्यवेक्षण, पुनरीक्षण, सप्रेक्षण और सर्वेक्षण'।

सबंध—पुं० [स०] दे० 'सपर्क और सबध'।

समरण—पुं० [सं०]=आपूर्ति; दे० 'पूर्ति, अनुपूर्ति, आपूर्ति और प्रतिपूर्ति'।

संभवता संभावना और संभाव्यता

Possibility Possibility Probability

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियो के सूचक हैं जिनमे यह माना या समझा जाता है कि अमुक काम या बात हो तो सकती है, परन्तु यह निश्चय नहीं होता कि वह होगी भी या नही। इनमे से 'संभावना'* तो हिन्दी मे बहुत दिनों से प्रचलित है; परन्तु कई कारणो से अधिकारी लोग उसे ठीक नही समझते। पहली बात तो यह है कि सस्कृत मे सभावना के जो अनेक अर्थ हैं* वे उस भाव के सूचक नही हैं जिसके लिए इसका प्रयोग होता है। दूसरी बात यह है कि अगरेजी मे इस वर्ग के दो शब्द हैं—पॉसिबिलिटी (Possibility) और प्रॉबिबिलिटी (Probability) हिन्दी मे अब तक सभावना का प्रयोग प्रायः उक्त दोनो के भाव सूचित करने के लिए होता आया है। इसी लिए दोनो का पार्थक्य सूचित करने के उद्देश्य से अब पॉसिबिलिटी के स्थान पर 'सभवता' और प्रॉबिबिलिटी के स्थान पर 'सभाव्यता' रखना निश्चित हुआ है।

हिन्दी मे 'संभव' का प्रयोग मुख्यतः 'हो सकना' के अर्थ मे ही होता आया है। हम ऐसे काम या बात को 'सभव' कहते और समझते हैं जो हमसे अथवा और किसी के द्वारा या किसी प्रकार से पूरा या सिद्ध हो सकती हो। इसके विपरीत 'असंभव' उसे कहते हैं जो कभी किसी के द्वारा अथवा किसी प्रकार से हो ही न सकता हो; अर्थात् सभव तो साध्य है, और असंभव असाध्य है। इसी 'सभव' मे संस्कृत का 'ता' प्रत्यय लगाकर सभवता शब्द

* संस्कृत मे सम्भावना के अर्थ हैं :—इकट्ठा करना, पास लाना, आदर, सम्मान, कल्पना, पूजन आदि आदि।

बनाया जाता है। 'सभवता वह स्थिति है जा सूचित करती है कि कोई काम या बात साधारण परिस्थितियो मे हो तो अवश्य सक्ती है, पर नु यह नि.श्च नही है कि वह कब होगी अथवा होगी भी या नही। ऐसे काम या बातें नियम विरुद्ध तो नही होती, परन्तु उनके घटित होने के लिए कुछ विशिष्ट और अनुकूल अवस्थाओ या परिस्थितियो की आवश्यकता होती है, जसे—(क) आज वर्षा होने की बहुत कुछ सभवता है, क्योकि सबेरे से ही आकाश म बादल छाये हुए हैं, अथवा (ख) अब तो उनके जल्दी आने की सभवता है क्योकि उनका वहा का काम पूरा हो चुका है। जिस काम या बात की सभवता होती है उसकी आशा भी की जा सकती है और प्रतीक्षा भी, परन्तु उसके सम्ब ध मे निश्चित रूप से कभी यह नही कहा जा सकता कि ऐसा होगा ही। इसम आशा की मात्रा बहुत अल्प या नही के समान होती है।*

सभव से ही उसका एक विकारी रूप 'सभाव्य म 'ता' प्रत्यय लगाकर 'सभा यता रूप बनाया गया है। 'सभवता' से सूचित हानेवाली स्थिति की तुलना मे कुछ और आगे बढी हुई उस स्थिति की सूचक है जिसम परिस्थितियो को देखते हुए इस बात की कुछ विशेष आशा की जा सक्ती है कि अमुक घटना या बात कुछ विशिष्ट परिस्थितियो मे हो भी सक्ती है। जहाँ तक या बुद्धि के आधार पर यह समझा जा सकता हो कि ऐसा हो सकना कोई विशेष आश्चर्य की या विलक्षण बात नहीं है वहा सभाव्यता का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा मान लेने के लिए कोई पुष्ट और युक्ति सगत आधार अवश्य होना चाहिए, जसे—उसके दोषी सिद्ध होने की बहुत कुछ सभा वता है, क्योकि वह पहले से इस प्रकार के अपराधो के लिए कइ बार जेल हो आया है।

इस सम्बन्ध मे यह बात अवश्य विचारणीय है कि हिन्दी मे 'सम्भावना' का जितना अधिक प्रचलन हो चुका है उसे देखते हुए क्या सम्भवता का उसके बदले प्रचलन किया जा सकता है? प्रयोग की सूक्ष्मता के विचार से सम्भवता का प्रचलन आवश्यक तो है ही, हा, सम्भाव्यता का प्रचलन सहज मे हो सकता है। जिस प्रकार सम्भावना' से सम्बद्ध क्रिया विशेषण रूप 'सम्भावत ' बनता है उसी प्रकार सम्भवता से भी 'सम्भवत बनेगा। हाँ, सम्भाव्यता' से सम्बद्ध क्रिया विशेषण रूप 'सम्भाव्यत ' होगा। × ×

* कुछ लोगो ने पासिबिलिटी के लिए 'सभवता के सिवा 'शक्यता' का भी सुझाव दिया है परन्तु हमारी समझ मे 'शक्यता तो प्रक्टिबिलिटी (Practi bili y) की ही समायक मानी जानी चाहिए।

सभावना—स्त्री० [स०] दे० 'सभवता, संभावना और संभाव्यता'।

सभाव्यता—स्त्री० [मं०] दे० 'सभवता, संभावना और संभाव्यता'।

सयत्र—पु० [सं०] दे० 'यत्र, उपकरण, औजार और सयत्र'।

संयोजन—स्त्री० [स०] दे० 'योजना, परियोजना, प्रायोजना और संयोजना'।

सरक्षक—पुं० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, संरक्षा और सुरक्षा'।

सरक्षण—पुं० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, संरक्षा और सुरक्षा'।

संरक्षा—स्त्री० [स०] दे० 'रक्षा, आरक्षा, परिरक्षा, प्रतिरक्षा, सरक्षा और सुरक्षा'।

संरचना—स्त्री० [स०] दे० 'उत्पादन, निर्माण, रचना और संरचना'।

सराधन—पु० [स०] दे० 'पचायत, मध्यस्थता और साराधन'।

संवर्धन

Cultivation

साधारणतः इसका अर्थ होता है—अच्छी और ठीक तरह से बढना या बढाना। दूसरा अर्थ होता है प्रस्तुत या वर्तमान मे वृद्धि करना या होना। पर आज-कल वैज्ञानिक प्रसगों मे इसका प्रयोग मुख्यत. दो क्षेत्रों मे होने लगा है। पहला क्षेत्र तो वह है जिसमे जीव-जतुओ, पशु-पक्षियो आदि की नस्लें सुधार कर उनके गुणों, शक्तियो, सख्या आदि की वृद्धि की जाती है और अनेक दृष्टियो से उन्हें विकसित करने की क्रियाएँ की जाती हैं। (कल्चर) दूसरा क्षेत्र उन अमूर्त्त तत्त्वो, भावो आदि का है जिनमें विशिष्ट गुणो, शक्तियो आदि की उन्नति या विकास किया जाता है। (कल्टिवेशन) × ×

सविदा—स्त्री० [स०] दे० 'सधि, सविदा और समझौता'।

संविधान—पुं० [स०] दे० 'विधा, विधान, विनियम, प्रविधान, संविधान और सहिता'।

संविधि—स्त्री० [सं०] दे० 'विधि और सविधि'।

सवेदना और सहानुभूति

Sympathy — Sympathy

इस वग के शब्दा का प्रयोग ऐसे अवसरो पर होता है जब हम अपने किसी आत्मीय या परिचित को विशेष कष्ट या विपत्ति म पडा हुआ देखकर यह कहते हुए उसे धय दिलाने या शान्त करने का प्रयत्न करते हैं कि तुम्हारे इस दु ख से हम भी बहुत दुखी हैं और यदि यह दु ख कम करने मे हम कुछ सहायक हो सकते हैं तो उसके लिए प्रस्तुत हैं।

'सवेदना' का मुख्य अथ है अनुभूत ज्ञात या विदित होना अर्थात् शरीर मे किसी प्रकार का वेदन होना। वस्तुत गरमी सरदी, दु ख सुख आदि का अनुभव या ज्ञान होना ही सवेदन या सवेदना है। पर‍न्तु हिन्दी म यह प्राय सहानुभूति (सह+अनुभूति) के पर्याय के रूप म ही प्रचलित है। ऐसा जान पडता है कि मूलत इसका शुद्ध रूप सम वेदना र,ा होगा जो अब किसी कारणवश 'सवेदना' बन गया है। मूलत उक्त दोना शब्दो का अथ है किसी के वेदन या दु ख को देखकर स्वयम भी वसा ही अनुभव करना। ऐसी अनुभूति दूसरो को दु खी देखकर भी हो सकती है और सुखी देखकर भी। गुण, प्रवृत्ति स्वभाव आदि की पारस्परिक समानता के अवसर पर सहृदय मनुष्य के मनमे वसा ही वेदन या अनुभूति होती है जसा वेदन या अनुभूति अपने किसी आत्मीय अथवा समीपस्थ व्यक्ति को होती है। आपको उदास देखकर हम भी उदास हो जाते हैं और आपकी प्रसन्नता से हम भी प्रसन्नता होती है। वस्तुत यही सहानुभूति है। पर आज कल प्रयोग के विचार से इसका मौलिक अर्थ कुछ सकुचित हो गया है, और इसका प्रचलन केवल कष्ट विपत्ति शोक आदि के प्रसगा मे रह गया है। कोई दुघटना (जसे मृत्यु) आदि हो जाने पर किसी के यहाँ पहुँचकर सवेदना या सहानुभूति प्रकट की जाती है, अथवा यदि वह कही दूर रहता हो तो पत्र आदि के द्वारा प्रकट की जाती है। आशय यही होता है कि आपके दु ख स हम भी दु खी हैं। कुछ अवस्थाओ म सहानुभूति का प्रयोग और विस्तृत रूप मे भी होने लगा है जसे दूसरो के मतो और सम्मतियो पर हमे सहानुभूति पूवक विचार करना चाहिए। ऐसे अवसरों पर आशय यह होता है कि हम केवल विरोधी भाव से विचार नही करना चाहिए बल्कि उसी के समान अनुरक्ति प्राप्त करके उसका दृष्टिकोण समझने का भी प्रयत्न करना चाहिए। पर‍न्तु सवेदना का प्रयोग उक्त विकसित अथ म नही होता बल्कि केवल दूसरो के कष्ट दु ख आदि के

प्रसंगों मे ही होता है। हिन्दी मे इसके स्थान पर फारसी के 'हम-दर्दी' शब्द का भी प्रयोग होता है। × ×

संशय—पुं० [स०] दे० 'शका, आशका, संदेह, और संशय'।
संश्लेषण—पुं० [स०] दे० 'विश्लेषण और संश्लेषण'।
संसद—स्त्री० [स०] दे० 'विधायिका और सदन'।
ससर्गज—वि० [स०] दे० 'सक्रमक, ससर्गज और ससर्ग शील।'
ससर्ग-शील—वि० [स०] दे० संक्रामक, संसर्गज और सासर्ग-शील'।
संस्कृति—स्त्री० [स०] दे० 'सभ्यता और सस्कृति'।
संस्तुति—स्त्री० [सं०] दे० 'आशंसा, अनुशसा, अभिशंसा और प्रशंसा'।

संस्था संस्थान प्रतिष्ठान और निगम

संस्था	संस्थान	प्रतिष्ठान	निगम
Institution	1. Institute 2. System	1. Stablishment 2. Installation	Corporation

ये सब शब्द हैं तो हमारे यहाँ के बहुत पुराने और प्रसिद्ध; परन्तु आज-कल इनमे कुछ नये अर्थ और विवक्षाएँ लग गई हैं, जिनका विवेचन आवश्यक जान पडता है।

'सस्था' स्त्री० [स०] का मूल अर्थ है—ठहरने या स्थित होने की अवस्था, क्रिया, गुण या भाव। इसके परवर्ती और विकसित अर्थों मे मुख्य ये हैं—अभिव्यक्ति या आविर्भाव, आकृति या रूप, अत या समाप्ति, पेशा या व्यवसाय, गरोह या दल आदि-आदि। परन्तु आज-कल सस्था मुख्य रूप से कुछ लोगों के ऐसे सघठन को कहते है जो किसी लोक-कल्याण या समाज-सेवा के लिए हुआ हो। इसके कार्य-क्षेत्र मे अर्थ, दान, धर्म, शिक्षा आदि की सभी बातें आ जाती हैं। अनाथालय, पुस्तकालय, विद्यालय आदि और उनकी व्यवस्था तथा सचालन करने वाले सभी सघठन 'सस्था' कहलाते हैं। सस्थाओ का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक कल्याण या सेवा ही होता है, वैयक्तिक-लाभ या स्वार्थ नही।

'सस्था' का हमारे यहाँ एक और पुराना अर्थ है—कोई परम्परागत और बँधा हुआ नियम, प्रथा, विधान आदि। इसी प्रकार इसके अग्रेजी समानार्थक 'इन्स्टिट्यूशन' (Institution) का अर्थ होता है—बहुत दिनों से चला आया हुआ नियम या प्रथा। इसी आधार पर कहा जाता है—विवाह भी एक ऐसी संस्था है जो प्राय: सभी जातियो और देशो मे किसी न किसी रूप मे देखने

मे आती है। इससे भी और आग बढ़ने पर हम किसी ऐसे महापुरुष को संस्था' कहने लग हैं जिसने बहुत बड़े क्षेत्र म कोई बहुत ही महत्वपूर्ण काम साघठनात्मक रूप मे किया हो, जसे—महात्मा गाधी (या लोक मा य तिलक) स्वय एक संस्था थे।

'संस्थान पु० [स०] का भी पहला और मुख्य अथ भी वही ठहराव या स्थिति है जो 'संस्था' का है। परन्तु अपने परवर्ती और विकसित अथ मे यह भी है तो एक प्रकार की संस्था ही, पर तु इसका काय क्षेत्र अपेक्षया कुछ परिमित या सीमित है। आज कल संस्थान ऐसी संस्था को कहते हैं जो कला, विज्ञान साहित्य आदि के उच्चकोटि के अध्ययन, अनुसंधान आदि के काय करती हो, जसे भौतिक विज्ञान अथवा रासायनिक शोध सम्बन्धी संस्थान।

चिकि सा आदि के क्षेत्रो म 'संस्थान' का प्रयोग एक और बहुत प्रच लित तथा प्रसिद्ध अथ म होता है। हमारे शरीर मे कुछ ऐसे मुख्य अग होते हैं। जिनके कइ उपाग होते हैं और जिनके योग से हमारे शरीर की कोई निश्चित और विशिष्ट प्रकार की क्रिया निर तर होती रहती है। एस प्रत्येक अग और उसके समस्त उपागो का सामूहिक नाम भी संस्थान ही है, जसे— पाचन संस्थान, रक्त वाही संस्थान आदि। एसी अवस्था मे यह अगरेजी के System का समाथक होता है। यो सूय और उसके सब ग्रहो तथा उप ग्रहो को सामूहिक रूप से भले ही हम 'सौर मडल कहें, पर तु है वह वास्तव मे सौर संस्थान ही।

'प्रतिष्ठान' पु० [स०] का पहला अथ रखना या स्थापित करना है। इसी आधार पर मन्दिरों आदि म देव मूर्तिया की स्थापना को भी प्रतिष्ठान कहते हैं। परन्तु आज कल यह मुख्यत ऐसी संस्थाओ का वाचक हो गया है जो बडे बडे व्यवसाय या व्यापार करती हैं। सभी प्रकार की महा जनी कोठियो आदि का इसमे अ तर भाव होता है। इससे भी आग बढने पर यह उन सभी काय कर्ताओ, व्यवस्थाओ आदि के सामूहिक रूप का वाचक हो गया है जो किसी एक प्रतिष्ठान या व्यापारिक काम को चलानेवाले किसी कार्यालय मे वेतन लेकर काम करते और रहते हैं, जैसे—यदि लाभ अधिक न हो तो हम अपने प्रतिष्ठान का व्यय कम करना पडेगा। इसके सिवा अब प्रतिष्ठान वह स्थान भी कहा जाने लगा है जहाँ कोई बडा महत्वपूण और लोकोपयोगी य त्र लगा हो, जसे—(क) उप ग्रह छोडने का प्रतिष्ठान, (ख) कोयला या तेल साफ करने का प्रतिष्ठान, और (ग) ताप बिजली तथा पन-

बिजली उत्पन्न करने का प्रतिष्ठान। 'सयत्र' और 'प्रतिष्ठान' मे मुख्य अन्तर यह है कि सयत्र मे वे सब यन्त्र उद्दिष्ट होते हैं जो सब एक साथ लगे हों; परन्तु प्रतिष्ठान मे यन्त्रो के सिवा सारे कार्य-विभाग या कार्यालय का भी अन्तर्भाव होता है; जैसे—सिंगापुर से हटने पर ब्रिटिश सेना अपने सब प्रतिष्ठान वही रहने देगी।

'निगम' हमारे यहाँ का वैदिक-कालीन शब्द है, जिसका पुराना अर्थ था—शब्द, पद, शब्दो का मूल या निरुक्ति आदि। आगे चलकर वे ग्रन्थ निगम कहलाने लगे थे जिनमे वैदिक मतो का निरूपण प्रतिपादन और स्पष्टीकरण होता था। बौद्ध-काल मे निगम प्राय: नगर का समार्थक बन गया था, और मुख्य रूप से उस सस्था या समिति का वाचक हो गया था, जो नगर की व्यवस्था और हितो की रक्षा करता था। आज-कल विधिक क्षेत्र मे निगम राजकीय आज्ञा या विधान से बनी हुई वह सस्था कहलाती है जो स्थायित्व के उद्देश्य और विचार से स्वतन्त्र शरीर या शरीर-धारी के रूप मे मानी जाती हो और जो एक व्यक्ति या व्यष्टि के रूप मे सब काम कर सकने के अधिकार रखती हो। आज-कल कुछ विशिष्ट बडे-बडे नगरो मे नगर-पालिका की तरह की जो बडी प्रतिनिधिक सस्था होती है, वह भी निगम कहलाती हैं। परन्तु इसके अधिकार और कार्य नगर पालिकाओ की तुलना मे बहुत अधिक होते हैं। प्रतिष्ठान की तुलना मे निगम प्राय: बहुत बडा होता है और उसका कार्य क्षेत्र भी विस्तृत और व्यापक होता है। इसके सिवाय राज्य की ओर से कुछ विशिष्ट पदार्थों के क्रय-विक्रय अथवा महत्वपूर्ण उद्योगो को व्यवस्थित और व्यापारिक रूप मे चलाने के लिए भी निगम बनाये जाते है; जैसे—खाद्य निगम, राजकीय व्यापार निगम। × ×

संस्थान—पुं० [स०] दे० 'सस्था, सस्थान, प्रतिष्ठान और निगम'।

सहार—पु० [सं०] दे० 'हत्या, हनन, मारण, वध और संहार'।

संहिता—स्त्री० [सं०] दे० 'विधा, विधान, विनियम, संविधान और सहिता'।

सक्षमता—स्त्री०[सं०]=सामर्थ्य; दे० 'शक्ति, बल, सामर्थ्य और उर्जा'।

सज्जनता और सौजन्य

Gentlemanliness 1. Gentlemanliness 2 Courtesy

यद्यपि व्युत्पत्तिक दृष्टि से ये दोनो शब्द बहुत कुछ समार्थक हैं और इसी लिए प्राय: पर्याय के रूप मे प्रयुक्त होते हैं, फिर भी दोनो मे आशय की दृष्टि से कुछ सूक्ष्म अन्तर है।

'सज्जनता' स० सज्जन (सत्+जन) का भाववाचक रूप है, और सत् का अर्थ है—बहुत अच्छा। इस दृष्टि से सज्जन का अर्थ होता है—बहुत अच्छा आदमी। व्यावहारिक दृष्टि से सज्जन ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो सदा सत्य का आचरण करता हो, उदार और परोपकारी हो, किसी के साथ द्वेष या वैर भाव न रखता हो और सार्वजनिक क्षेत्र में सदा नैतिक सिद्धान्तों का पालन करता और सबके साथ अच्छा व्यवहार करता हो। इसी लिए सज्जन को भला आदमी और सज्जनता को भलमनसत कहते हैं।

'सौजन्य' स० सुजन का भाववाचक रूप है। सु का अर्थ है—अच्छा; और सुजन का अर्थ होता है—अच्छा आदमी। सज्जन में तो सत् की प्रधानता है परन्तु सुजन में उस 'सु' की प्रधानता है जिसे तात्त्विक दृष्टि से हम 'सत्' की तुलना में कुछ हल्का कह सकते हैं फिर भी लोक-व्यवहार में सज्जन और सुजन के व्यावहारिक रूपों में कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता और ये दोनों शब्द प्रायः पर्याय रूप में ही प्रचलित हैं। इसी आधार पर सौजन्य का प्राथमिक अर्थ बहुत कुछ वही है जो ऊपर सज्जनता का बतलाया गया है। परन्तु आज-कल अँगरेजी की कर्टसी (Courtesy) का भाव सूचित करने के लिए इसमें एक नया अर्थ लग गया है। यह ऐसे पारस्परिक व्यवहार का सूचक हो गया है, जिसमें किसी के साथ किए जानेवाले अनुग्रह, उदारता, मधुरता और विनम्रता आदि के आचरण का भाव प्रधान हो। प्रायः समाचार पत्रों आदि में चित्रों, विवरणों आदि के सम्बन्ध में लिखा रहता है—अमुक (व्यक्ति या संस्था) के सौजन्य से प्राप्त। आशय यही होता है कि अमुक व्यक्ति या संस्था ने अपनी सज्जनता का परिचय देते हुए अथवा उदारता पूर्वक हमें यह चित्र या विवरण प्रदान किया है। इसी दृष्टि से हम कह सकते हैं कि साधारण सामाजिक दृष्टि से सज्जनता की तुलना में सौजन्य कुछ अधिक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण आशय या भाव का सूचक है। × ×

सटना—अ० [?] दे० जुड़ना, चिपकना, मिलना, लगना और सटना।

सत्य युग—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

सदन—पु० [स०] दे० 'विधायिका और सदन'।

सदभाव—पु० [स०] दे० नाम, उपनाम, उपनाम, संज्ञा और [मनाम]

सनसनी—स्त्री० [अनु०] दे० 'हलचल, सनसनी, सनसनी और हड़कंप'।

सफेद झूठ

White lie

हिन्दी मे यह पद इधर हाल मे अंग्रेजी के ह्वाइट लाई (White lie) के अनुकरण पर वना और प्रचलित हुआ है। परन्तु अर्थ और आशय के विचार से यह हिन्दी पद अपने मूल अंग्रेजी पद से वहुत अलग हो गया और दूर जा पड़ा है। मूल अंग्रेजी पद ऐसे झूठ का वोधक है जिससे किसी का कोई अपकार या अहित न होता हो। लोक-व्यवहार मे प्राय: लोगो को औपचारिक रूप से कुछ ऐसी वातें कहनी पड़ती हैं जो वस्तुत: सच तो नही होती, फिर भी न तो जिनमे किसी प्रकार के कपट या छल का भाव होता है, और न जिनके फलस्वरूप किसी के अनिष्ट की ही कोई सम्भावना होती है; जैसे—किसी प्रिय मित्र के आने पर लोग यो ही कह दिया करते हैं कि मैं तो कई दिन से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था, अथवा कई वार मुझे आपका ध्यान आया। अंग्रेजी मे इसी प्रकार की औपचारिक वातों की गणना ह्वाइट लाई में होती है। परन्तु हमारे यहाँ इसके शब्दार्थ के आधार पर जो 'सफेद झूठ' पद वना है, वह ऐसे प्रत्यक्ष और स्पष्ट झूठ का वोधक है जिसमे सत्यता का लेश भी न हो और जिसे सुनते ही साधारण लोग समझ लें कि यह निरा और सरासर झूठ है। × ×

सवव—पुं० [अ०]=हेतु; दे० 'कारण और हेतु'।

सभ्यता और संस्कृति

Civilization Culture

'सभ्यता' व्याकरण की दृष्टि से सभ्य होने की अवस्था, गुण और भाव की सूचक है। परन्तु 'सभ्य' का मौलिक सम्वन्ध हमारे यहाँ के वैदिक युग की 'सभा' से है। प्राचीन आर्यो मे राज-काज की व्यवस्था करने के लिए जो वुद्धिमान् और विद्वान् एक स्थान पर एकत्र होते थे उनकी मंडली या समूह को 'सभा' कहते थे; और जिस स्थान पर एकत्र होते थे उसे भी 'सभा' या 'सभा-स्थल' कहते थे। स्वभावत: ऐसे लोग सज्जन, समझदार और सुशील होते थे। इसलिए 'सभ्य' शब्द ऐसे लोगो का वाचक हो गया जिनमे गँवारपन या जगलीपन विलकुल न हो। आज-कल साधारण लोक-व्यवहार मे 'सभ्यता' का आशय होता है ऐसा आचार-व्यवहार और रहन-सहन जिसमे उजड्डपन और

'सज्जनता' स० सज्जन (सत्+जन) का भाववाचक रूप है, और सत् का अर्थ है—बहुत अच्छा। इस दृष्टि से सज्जन का अर्थ होता है—बहुत अच्छा आदमी। व्यावहारिक दृष्टि से सज्जन ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो सदा सत्य का आचरण करता हो, उदार और परोपकारी हो, किसी के साथ द्वेष या वैर भाव न रखता हो और सार्वजनिक क्षेत्र में सदा नैतिक सिद्धान्तों का पालन करता और सबके साथ अच्छा व्यवहार करता हो। इसी लिए सज्जन को भला आदमी और सज्जनता को भलमनसत कहते हैं।

'सौजन्य' स० सुजन का भाववाचक रूप है। सु का अर्थ है—अच्छा; और सुजन का अर्थ होता है—अच्छा आदमी। सज्जन में तो सत् की प्रधानता है परन्तु सुजन में उस 'सु' की प्रधानता है जिसे तात्त्विक दृष्टि से हम 'सत्' की तुलना में कुछ हल्का कह सकते हैं फिर भी लोक व्यवहार में सज्जन और सुजन के व्यावहारिक रूपों में कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता और ये दोनों शब्द प्रायः पर्याय रूप में ही प्रचलित हैं। इसी आधार पर सौजन्य का प्राथमिक अर्थ बहुत कुछ वही है जो ऊपर सज्जनता का बतलाया गया है। परन्तु आज कल अंग्रेजी की कर्टसी (Courtesy) का भाव सूचित करने के लिए इसमें एक नया अर्थ लग गया है। यह ऐसे पारस्परिक व्यवहार का सूचक हो गया है, जिसमें किसी के साथ किए जानेवाले अनुग्रह, उदारता, मधुरता और विनम्रता आदि के आचरण का भाव प्रधान हो। प्रायः समाचार पत्रों आदि में चित्रों, विवरणों आदि के सम्बन्ध में लिखा रहता है—अमुक (व्यक्ति या संस्था) के सौजन्य से प्राप्त। आशय यही होता है कि अमुक व्यक्ति या संस्था ने अपनी सज्जनता का परिचय देते हुए अथवा उदारता पूर्वक हमें यह चित्र या विवरण प्रदान किया है। इसी दृष्टि से हम कह सकते हैं कि साधारण सामाजिक दृष्टि से सज्जनता की तुलना में सौजन्य कुछ अधिक गम्भीर और महत्त्वपूर्ण आशय या भाव का सूचक है। × ×

सटना—अ० [?] दे० 'जुड़ना चिपकना, मिलना, लगना और सटना'।

सत्य युग—पु० [स०] दे० 'कल्प और युग'।

सदन—पु० [स०] दे० 'विधायिका और सदन'।

सदनाम—पु० [स०] दे० नाम उपनाम, पदनाम, संज्ञा और 'अभिनाम'

सनसनी—स्त्री० [अनु०] दे० हलचल, खलबली, सनसनी और हड़कंप'।

सफेद झूठ

White lie

हिन्दी मे यह पद इधर हाल मे अंग्रेजी के ह्वाइट लाई (White lie) के अनुकरण पर बना और प्रचलित हुआ है। परन्तु अर्थ और आशय के विचार से यह हिन्दी पद अपने मूल अंग्रेजी पद से बहुत अलग हो गया और दूर जा पड़ा है। मूल अंग्रेजी पद ऐसे झूठ का बोधक है जिससे किसी का कोई अपकार या अहित न होता हो। लोक-व्यवहार में प्रायः लोगों को औपचारिक रूप से कुछ ऐसी बातें कहनी पडती हैं जो वस्तुतः सच तो नही होती, फिर भी न तो जिनमे किसी प्रकार के कपट या छल का भाव होता है, और न जिनके फलस्वरूप किसी के अनिष्ट की ही कोई सम्भावना होती है; जैसे—किसी प्रिय मित्र के आने पर लोग यों ही कह दिया करते हैं कि मैं तो कई दिन से आपकी प्रतीक्षा कर रहा था, अथवा कई बार मुझे आपका ध्यान आया। अंग्रेजी मे इसी प्रकार की औपचारिक बातो की गणना ह्वाइट लाई मे होती है। परन्तु हमारे यहाँ इसके शब्दार्थ के आधार पर जो 'सफेद झूठ' पद बना है, वह ऐसे प्रत्यक्ष और स्पष्ट झूठ का बोधक है जिसमे सत्यता का लेश भी न हो और जिसे सुनते ही साधारण लोग समझ ले कि यह निरा और सरासर झूठ है। × ×

सबब—पुं० [अ०]=हेतु; दे० 'कारण और हेतु'।

सभ्यता और संस्कृति

Civilization Culture

'सभ्यता' व्याकरण की दृष्टि से सभ्य होने की अवस्था, गुण और भाव की सूचक है। परन्तु 'सभ्य' का मौलिक सम्बन्ध हमारे यहाँ के वैदिक युग की 'सभा' से है। प्राचीन आर्यों मे राज-काज की व्यवस्था करने के लिए जो बुद्धिमान् और विद्वान् एक स्थान पर एकत्र होते थे उनकी मंडली या समूह को 'सभा' कहते थे; और जिस स्थान पर एकत्र होते थे उसे भी 'सभा' या 'सभा-स्थल' कहते थे। स्वभावतः ऐसे लोग सज्जन, समझदार और सुशील होते थे। इसलिए 'सभ्य' शब्द ऐसे लोगो का वाचक हो गया जिनमे गँवारपन या जंगलीपन बिलकुल न हो। आज-कल साधारण लोक-व्यवहार मे 'सभ्यता' का आशय होता है ऐसा आचार-व्यवहार और रहन-सहन जिसमे उजड्डपन और

बबरता बिलकुल न हो और शिष्टता अधिक से अधिक और यथा साध्य अपनी पूरी मात्रा मे हो। परन्तु आज कल पाश्चात्य विचार धारा के अनुकरण पर यह शब्द कुछ विशिष्ट प्रकार की लौकिक और सामाजिक स्थितियो का वाचक हो गया है। आदिम काल म मनुष्य जिस प्रकार रहा करते थे उससे निर तर आगे बढते बढते वे आज कल सामाजिक दृष्टि स बहुत कुछ भिन्न और साथ ही उन्नत तथा विकसित प्रकार से रहते हैं। उस आदिम युग से आज तक मानव समाज ने लौकिक व्यावहारिक और सामाजिक क्षेत्रो म जो उन्नतियाँ की हैं उ ही को विशिष्ट रूप सूचित करने क लिए सभ्यता' का प्रयोग होता है। काल और देश के भेद से अथवा जाति और वग के भेद से इन रूपो म जो अन्तर होते हैं वे विशिष्ट नामो से अभिहित होते हैं, जसे—भारतीय आर्यों की सभ्यता, महाभारत काल की सभ्यता यूरोपीय सभ्यता, रोमन सभ्यता आदि। साराश यह कि प्रकृति पर विजय पाने और जीवन निर्वाह मे सुगमता तथा सौष्ठव उत्पन्न करने के लिए भिन्न भिन्न जातियो और देशो के लोगो ने ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र म जो उपलब्धियाँ की हैं उन सब का इसमे अन्तर्भाव होता है। यह मानव-समाज की बाह्य और भौतिक उन्नतियो का सामूहिक रूप है।

सस्कृति शब्द का मुख्य सम्ब ध सस्करण या सस्कार से है। किसी प्रकृत वस्तु की त्रुटियाँ दोष और विकार दूर करके उसे उपयोगी अथवा उसकी असगति, भद्दापन आदि दूर करके उसे सुन्दर बनाना ही उसका सस्करण या सस्कार कहलाता है।* एक बात म सभ्यता और सस्कृति दोनो बहुत कुछ एक ही तत्त्व या भाव से युक्त हैं। दोनो ही मानव समाज की उन्नति और विकास की सूचक अवस्थाएँ या दशाएँ हैं। अनेक विद्वान तो सस्कृति को सभ्यता का ही एक दूसरा अग या पक्ष मानते हैं। सभ्यता का मुख्य सम्बन्ध मनुष्य की आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक उपलब्धियो से है और सस्कृति उनकी आध्यात्मिक नतिक बौद्धिक तथा मानसिक उपलब्धियो की सूचक है। सस्कृति के अन्तगत किसी जाति या देश की सभी प्रकार की परम्परागत बातें मान्यताएँ, रीति नीति और विश्वास आ जाते हैं। यह सस्कृति कला कौशल के क्षेत्र की उन्नति सास्कृतिक रहन सहन और परम्परागत योग्यताओ तथा

---

* प्राचीन काल म हमारे यहाँ जन साधारण की बोल चाल की भाषा इसी लिए 'प्राकृत कहलाती थी कि वह प्रकृति न्य या स्वाभाविक होती थी परन्तु शिक्षित और सभ्य समाज ने उसका सस्कार करके उसका जो अच्छा, और सुधरा हुआ रूप प्रस्तुत किया उसे सस्कृत कहते थे।

सरकार—स्त्री० [फा०]=शासन, दे० 'शासन, प्रशासन और अनुशासन'।
सगशील—वि० [स०] दे० 'सग्रामक, ससगज और स सगशील'।
सर्वेक्षण—पु ० [स ०] दे० 'निरीक्षण, अधीक्षण, पयवेक्षण, पुनरीक्षण, सम्प्रेक्षण और सर्वेक्षण'।

सर्वोदय

'सर्वोदय' [स ० सव+उदय] का शब्दाथ है—सबका उदय अर्थात् उन्नति, बढती और विकास। परन्तु आज-कल इसका प्रयोग उस विशिष्ट सामूहिक आन्दोलन के लिए होता है जो महात्मा गाँधी ने सब लोगो की आर्थिक, नतिक और सामाजिक स्थित सुधारने के लिए आरम्भ किया था। यह मुख्यत भारतीय आध्यात्मिक और दाशनिक आधार पर स्थित है। आज कल भारत मे भी और बहुत से दूसरे पिछड़े हुए तथा विकासशील देशो म जो कष्ट, दुराचार, भुखमरी आदि अनेक बातें भरी पडी हैं उन सबको दूर करके समस्त मानव जाति को कल्याण और मगल के सात्विक माग पर चलाना और दिन पर दिन बढते हुए आर्थिक शोषण ईर्ष्या द्वेष, वर विरोध आदि को कम करके ऐसा सामाजिक आदश उपस्थित करने का प्रयत्न किया जाता है जिसम सब लोग समान रूप से शान्ति और सुखपूवक जीवन व्यतीत कर सकें। साथ ही सब लोगो को अपनी उन्नति करने के लिए समान रूप से अवकाश और साधन प्राप्त हो सकें। और ये सब बातें तभी हो सकती हैं जब सब लोगा का जीवन साधारण, लौकिक स्तर से ऊपर उठाकर आध्यात्मिक और दाशनिक स्तरो पर ले जाया जाय। इसे हम महात्मा गाँधी की राम राज्यवाली कल्पना की भूमिका ही कह सकते हैं। × ×

सलाह—स्त्री० [अ०]=परामश, दे० विचार, विमश और परामश।
सस्ता—वि० [स ० स्वस्थ] दे० महँगा और सस्ता।
सहकार—पु ० [स ०]=सहकारिता, दे० 'सहायता, सहयोग और सहकारिता'।
सहकारिता—स्त्री० [स ०] दे० सहायता, सहयोग और सहकारिता'।
सह जज्ञान—पु ० [स ०]=अन्तर्ज्ञान, दे० अन्तर्ज्ञान और सहजवृत्ति'।
सहज वत्ति—स्त्री० [स ०] दे० 'अन्तर्ज्ञान और सहजवृत्ति'।
सहना—स ० [हि०] दे० झेलना, भोगना और सहना।
सहयोग—पु ० [स ०] दे० 'सहायता, सहयोग और सहकारिता'।
सहानुभूति—स्त्री० [स ०] दे० सम्वेदना और सहानुभूति'।

सहायता	सहयोग	और	सहकारिता
1. Aid 2. Assistance 3. Help 4. Relief	Collaboratoin		Co-operation

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियो के वाचक है जिनमे कोई आवश्यक, बड़ा इा महत्वपूर्ण कार्य आगे बढाने मे किसी के साथ मिलकर उसका हाथ बटाया जाता है या ऐसा काम किया जाता है जिससे मुख्य कार्य अग्रसर हो और उससे काय करनेवाले की कठिनता, कष्ट या चिंता कुछ दूर हो अथवा कार्य जल्दी हो और समय की वचत हो।

'सहायता' का व्युत्पत्तिक अर्थ है—किसी के साथ मिलना, रहना या होना। प्रस्तुत प्रसंग मे सहायता मुख्यत: ऐसे उद्योग या प्रयत्न का वाचक है जो किसी दूसरे व्यक्ति के वडे या महत्त्वपूर्ण कार्य को अग्रसर करने के लिए अथवा कुछ अवस्थाओ मे पूरक रूप मे किया जाता है। साधारणत: सहायता का कार्य मुख्य कार्य की तुलना मे कुछ कम महत्त्व का या गौण माना जाता है। किसी पुस्तक का मूल लेखक या समाचार-पत्र का प्रधान सम्पादक तो प्राय: एक ही व्यक्ति होता है परन्तु उसकी सहायता करनेवाले कई लोग होते या हो सकते है। इसके सिवा किसी दीन, दु:खी या पीडित का कष्ट अथवा संकट दूर करने के लिए जो काम किए जाते हैं उनकी गिनती भी सहायता मे ही होती है; जैसे—अकाल-पीड़ितो अथवा रोगियो की सेवा और सहायता करना। इसके सिवा रोगों के उपचार या चिकित्सा के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग होता है; जैसे—इस औषधि से ज्वर उतारने मे भी सहायता मिलेगी। ये तो सहायता के रूप मे किये जानेवाले शारीरिक उद्योग या प्रयत्न हुए; परन्तु ऐसे कार्यो के लिए धन, वस्त्र आदि जो पदार्थ दिए जाते हैं उनकी गिनती भी सहायता मे ही होती है; जैसे—यह अनाथालय वनाने मे नगर के सभी प्रमुख व्यक्तियों ने यथेष्ट आर्थिक सहायता की थी। हिन्दी मे इसके स्थान पर फारसी का 'मदद' शब्द भी चलता है।

'सहयोग' का शब्दार्थ है—किसी के साथ मिलना। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे इसका अर्थ होता है—किसी काम करनेवाले के साथ मिलकर उसका हाथ वटाना अथवा ऐसा कार्य करना जिससे वह कार्य व्यापक अर्थ और क्षेत्र मे ठीक तरह से अग्रसर हो अथवा किसी वडे उद्देश्य की पूर्ति या सिद्धि मे उचित और यथेष्ट सहायता मिले। इसका प्रयोग मुख्यत: औद्योगिक, वैज्ञनिक, साहित्यिक आदि क्षेत्रो मे वह स्थिति सूचित करने के लिए होता **है, जिसमें**

कुछ लोग एक साथ मिलकर एक ही स्थान पर अथवा अलग अलग स्थानो पर कोई बड़ा काम पूरा करने के लिए निरंतर लगे रहते हैं, जैसे—नई खोज करने म उन्ह कई बड बडे वैज्ञानिको का सहयोग प्राप्त हुआ था। व्यावहारिक क्षेत्र म सहायता करनेवालो की तुलना म सहयोग करनेवालो का पद या मर्यादा अधिक महत्त्वपूर्ण होती है।

'सहकारिता' का मूल अर्थ है—सहकारी होने की अवस्था, गुण या भाव। अर्थात् यह ऐसी स्थिति का वाचक है जिसम कुछ या बहुत से लोग साथ मिलकर कोई बडा काम करते हैं। परन्तु आज-कल इस शब्द का औद्योगिक और व्यापारिक क्षेत्रो मे एक विशिष्ट अर्थ म प्रयोग होने लगा है। आज कल आर्थिक क्षेत्र मे नई पाश्चात्य प्रणाली प्रचलित हुई है जिसमे कुछ लोग सघटित होकर कोई ऐसा औद्योगिक या व्यापारिक काय करते हैं जो उन सभी लोगो के लिए समान रूप से लाभदायक या हितकर सिद्ध होता है। यदि बहुत से खेतिहर, ग्वाले, प्रकाशक अथवा व्यापारी मिलकर अपने क्षेत्र मे कोई ऐसा बडा उद्योग धधा अथवा व्यापार आरम्भ करें जो उन सभी लोगो के लिए समान रूप से लाभदायक सिद्ध होता हो तो ऐसी स्थिति 'सहकारिता' कही जायगी। अलग अलग उद्योग धधा या व्यापार चलाने में तो यह होता है कि कुछ बहुत चतुर अथवा धनी व्यक्ति अपने वग के और लोगो को या तो दबा लेते हैं या उन्हें तरह-तरह से हानियाँ पहुँचाते हैं। परन्तु सहकारिता के सिद्धान्त पर चलाए जानेवाले कामो मे इस प्रकार के दोषो के लिए कोई अवकाश नही रह जाता। × ×

सहिक—वि०, पु० [स० सह से]=धनक, दे० 'धनक और ऋणक'।

सही

हिन्दी म यह शब्द विशेषण रूप में भी स्त्री० सज्ञा रूप में भी और अव्यय रूप में भी प्रचलित है। विशेषण रूप म यह अरबी के सहीह शब्द से बना है, और हिन्दी म नीचे लिखे अर्थों मे प्रचलित है—

(१) सच या सत्य, जैसे—सही-सही बतलाओ कि तुम वहाँ गये थे या नहीं।

(२) ठीक या यथार्थ, जैसे—तुम्हारा कहना बिलकुल सही निकला।

(३) जिसम गणना के विचार से कोई त्रुटि, दोष या भूल न हो, शुद्ध, जैसे—(क) तुम्हारा यह हिसाब बिलकुल सही है, (ख) तुमने जो जोड़ लगाया है वह गलत है, सही जोड़ लगाओ।

(४) स्वास्थ्य आदि के विचार से चंगा या नीरोग; जैसे—उनकी मृत्यु का समाचार बिलकुल निराधार है, वे सही-सलामत अपने घर पर मौजूद हैं।

इन सभी अर्थों मे प्रामाणिकता, वास्तविकता आदि के तत्त्व स्पष्ट रूप से वर्त्तमान हैं।

संज्ञा रूप मे अरबी मे यह व्यंजन वर्णों का वाचक शब्द है। परन्तु हिन्दी से इस अर्थ का कोई सम्बन्ध नही है। हमारे यहाँ यह स्त्री० संज्ञा के रूप मे अवश्य प्रचलित है और इसके अर्थ उक्त विशेषणवाले अर्थों से ही सम्बद्ध हैं। हिन्दी मे यह मुख्यतः दस्तखत या हस्ताक्षर के अर्थ मे प्रचलित है। हम कहते हैं—इस कागज पर दोनो भाइयो की सही होनी चाहिए। अर्थात् दस्तखत या हस्ताक्षर होने चाहिए। ऐसे अवसरो पर इसका मूल आशय यही होता है कि इसकी प्रामाणिकना या यथार्थता मान्य और स्वीकृत होनी चाहिए। किसी कागज पर सही करके हम यह मान लेते हैं कि यह बात बिलकुल ठीक है। इसी आधार पर पुरानी हिन्दी मे भी और आज-कल महाजनी बोल-चाल मे भी 'सही भरना' मुहावरा प्रचलित है, जिसका अर्थ होता है—सत्यता की गवाही या साक्षी अंकित करना। इसके सिवा मौखिक रूप से भी किसी कथन या बात की पुष्टि या समर्थन करना 'सही भरना' कहलाता है। यथा—बानी बिधि गौरि हर सेसहूँ गनेस कही सही भरी लोमस भुसु डिबहु बारियो।—तुलसी।

इसके सिवा एक और क्षेत्र मे भी स्त्री० संज्ञा के रूप मे इसका प्रयोग देखने मे आता है; जैसे—(क) साधारण चाल से चलो, दौड़ने की सही नही। (ख) साफ अक्षरो मे लिखो; घसीट लिखने की सही नही। ऐसे अवसरो पर 'सही नहीं' का आशय यही होता है कि यह काम या बात प्रामाणिकता और मान्यतावाले तत्त्व से रहित है। यहाँ तक तो अर्थ के विचार से इसका सम्बन्ध अरबीवाले उक्त विशेषण रूप से माना जा सकता है। परन्तु ऐसा मानने मे एक बहुत बड़ी कठिनता या बाधा उपस्थित होती है। उर्दू वाले यह शब्द उक्त स्त्री० संज्ञा के अर्थ मे उस रूप मे नही लिखते जिस रूप मे वे इसका विशेषणवाला मूल रूप लिखते हैं। बल्कि वे भी उसी रूप मे लिखते है जिस प्रकार अव्ययवाले अर्थों मे 'सही' लिखते हैं। और यह रूप हिन्दी की 'सहना' क्रिया का भूतकालिक स्त्री० रूप है। यहाँ ध्यान रखने की एक और बात यह भी है कि इसके अव्ययवाले अर्थों के जो प्रयोग उर्दू और हिन्दी मे मिलते हैं उनका बहुत कुछ सम्बन्ध हिन्दी की 'सहना' क्रिया से सूचित होता है।

अब उक्त बातो के प्रकाश मे इस शब्द के अव्ययवाले प्रयोगो पर विचार कीजिए। हिन्दी का एक प्रसिद्ध पारम्परिक गीत है—लाख सही मैं पिय की बतियाँ, एक सही ना जाय। इसमे का 'सही' स्पष्टत 'सहना' क्रिया का भूतकालिक स्त्री० रूप है। उर्दू का एक प्रसिद्ध शेर है—

झिड़की सही, अदा सही चीने जबी सही।
सब कुछ सही, पर एक नहीं की नही सही॥

इसके प्रथम चरण मे भी 'सही' उसी प्रकार 'सहना' क्रिया का भूत कालिक स्त्री० रूप है जिस प्रकार वह उक्त पारम्परिक गीत मे है। दूसरे चरण में के पहले 'सही' के सम्बन्ध मे व्याकरण की दृष्टि से यह आपत्ति की जा सकती है कि 'सब कुछ' के विचार से इस क्रिया का रूप 'सही' नही, बल्कि 'सहा' होना चाहिए क्योकि साधारणत 'सब कुछ' के साथ क्रिया का भूत कालिक रूप पुलिंग ही रहता है, स्त्रीलिंग नही होता, जैसे—मैंने उसे सब कुछ दिया या सब कुछ बतलाया। फिर भी कई कारणो से यह आपत्ति बहुत अधिक महत्त्व की नहीं ठहरती। कहा जा सकता है कि पहले चरण की *स्त्रीलिंगवाली शृखला ठीक तरह स चलाये चलने के लिए ही* दूसरे चरण के आरम्भ म भी क्रिया स्त्रीलिंग ही रखी गई है। परन्तु दूसरे चरण के अन्त मे जो 'सही' है वह व्याकरण की दृष्टि से अव्यय ही माना जायगा और तब प्रश्न यह होगा कि इसकी व्युत्पत्ति क्या है और अर्थ क्या?

बहुत कुछ विचार करने पर मेरी समझ में यही आया है कि 'सही' का अव्ययवाला रूप भी हिन्दी की 'सहना' क्रिया से सम्बद्ध है। हम कहते हैं—अच्छा यह भी सही। आशय यही है कि हमने तुम्हारी यह बात भी सह अर्थात् मान ली। यही बात 'चलो यही सही' सरीखे प्रयोगो के सम्बन्ध मे भी है। और जब हम कहते हैं 'न सही' तब ऐसा प्रयोग हमारी अवज्ञा या उपेक्षा का सूचक होता है। उदाहरण के रूप में गालिब का यह मिसरा है—

गर नहीं हैं मेरे अशआर में मानी न सही।

फिर भी 'सही' के कुछ प्रयोगों के सम्बन्ध म एक विकट प्रश्न रह ही जाता है। हम कहते हैं—आप तो बराबर वहाँ जाने से इनकार ही करते थे, फिर भी आप वहाँ गए सही। 'सही' के कुछ इसी प्रकार के प्रयोग हमारे यहाँ के मध्य-युगीन साहित्य में मिलते हैं, यथा—

(क) प्रभु आसुतोष कृपालु सिव
अबसा निरखि बोले सही।—तुलसी। और

(ख) परसत पद-पावन, सोक-नसावन,
प्रकट भई तप-पुंज सही ।—तुलसी ।

ऐसे अवसरों पर 'सही' का प्रयोग हिन्दी के 'ही' अव्यय की तरह किसी बात पर जोर देने के लिए ही होता है। आशय यही होता है कि कही हुई बात अवश्य और निश्चित रूप से घटित हुई। ऐसी अवस्था मे इसका सम्बन्ध अरबीवाले विशेषण 'सही' से स्थापित करना कुछ अधिक तर्क-सगत नही जान पडता। मेरा ऐसा विश्वास है कि 'सही' के इस प्रकार के प्रयोग हमारे यहाँ बहुत पहले से चले आ रहे हैं और उनकी व्युत्पत्ति भी कुछ स्वतंत्र ही होनी चाहिए। जो हो, यह विषय विद्वानो के लिए विचारणीय है।

हम ऊपर कह आए हैं कि उक्त उदाहरणो में 'सही' का प्रयोग भी बहुत कुछ उसी प्रकार जोर देने के लिए हुआ है जिस प्रकार 'ही' का प्रयोग होता है। फिर भी इन दोनो के प्रयोगों मे एक सूक्ष्म अतर अवश्य है। हम कहते हैं—(क) आखिर आप वहाँ गए ही। और (ख) आखिर आप वहाँ गए सही। पहले वाक्य मे 'ही' का प्रयोग मुख्यतः वक्ता का आश्चर्य मात्र सूचित करता है, परन्तु दूसरे वाक्य मे 'सही' का प्रयोग यह सूचित करता है कि वक्ता को यह आशा नही थी कि सम्बोधित व्यक्ति वहाँ जायगा। अर्थात् सम्बोधित व्यक्ति का वहाँ जाना वक्ता की आशा के प्रतिकूल अथवा सम्भावना के विपरीत हुआ है। परन्तु पहले वाक्य के 'ही' से इस प्रकार की ध्वनि का कोई सकेत नही मिलता।

अब 'सही' का एक और प्रकार का प्रयोग लीजिए। हम कहते हैं—अच्छा बैठो तो सही। 'सही' का इसी प्रकार का प्रयोग उर्दू के इस शेर मे हुआ है—

संभालो तेगे अदा को, जरा सुनो तो सही।
जरा सी बात के बिगड़े, भला सुनो तो सही।

ऐसे अवसरो पर 'सही' का प्रयोग जोर देने के लिए तो होता ही है, पर इसमे यह भाव भी विवक्षित होता है कि चाहे और कुछ करो या न करो पर इतना तो करो, अर्थात् इसका आशय होता है—अधिक नही तो इतना अवश्य हो जाय। × ×

सांत्वना—स्त्री० [स०] दे० 'आश्वासन, ढारस, तसल्ली, दिलासा और

अब उक्त बातो के प्रकाश मे इस शब्द के अव्ययवाले प्रयोगो पर विचार कीजिए। हिन्दी का एक प्रसिद्ध पारम्परिक गीत है—लाख सही मैं विष की बतियाँ, एक सही ना जाय। इसमे का 'सही' स्पष्टत 'सहना' क्रिया का भूतकालिक स्त्री० रूप है। उर्दू का एक प्रसिद्ध शेर है—

झिड़की सही, अदा सही, चीने जबीं सही।
सब कुछ सही, पर एक नहीं की नहीं सही॥

इसके प्रथम चरण मे भी 'सही' उसी प्रकार 'सहना' क्रिया का भूत कालिक स्त्री० रूप है जिस प्रकार वह उक्त पारम्परिक गीत में है। दूसरे चरण मे के पहले सही के सम्बन्ध म व्याकरण की दृष्टि से यह आपत्ति की जा सकती है कि 'सब कुछ' के विचार से इस क्रिया का रूप 'सही' नही बल्कि 'सहा' होना चाहिए क्योकि साधारणत 'सब कुछ' के साथ क्रिया का भूत कालिक रूप पुंलिंग ही रहता है, स्त्रीलिंग नही होता, जसे—मैंने उसे सब कुछ दिया था सब कुछ बतलाया। फिर भी कई कारणो से यह आपत्ति बहुत अधिक महत्व की नही ठहरती। कहा जा सकता है कि पहले चरण की स्त्रीलिंगवाली शृंखला ठीक तरह से चलाये चलने के लिए ही दूसरे चरण के आरम्भ म भी क्रिया स्त्रीलिंग ही रखी गई है। परन्तु दूसरे चरण के अन्त मे जो 'सही' है वह व्याकरण की दृष्टि से अव्यय ही माना जायगा और तब प्रश्न यह होगा कि इसकी व्युत्पत्ति क्या हो और अर्थ क्या?

बहुत कुछ विचार करने पर मेरी समझ मे यही आया है कि 'सही' का अव्ययवाला रूप भी हिन्दी की 'सहना क्रिया से सम्बद्ध है। हम कहते हैं—अच्छा यह भी सही। आशय यही है कि हमने तुम्हारी यह बात भी सह अर्थात् मान ली। यही बात 'चलो यही सही' सरीखे प्रयोगो के सम्बन्ध मे भी है। और जब हम कहते हैं 'न सही' तब ऐसा प्रयोग हमारी अवज्ञा या उपेक्षा का सूचक होता है। उदाहरण के रूप मे गालिब का यह मिसरा है—

गर नहीं हैं मेरे अशआर में मानी, न सही।

फिर भी 'सही' के कुछ प्रयोगो के सम्बन्ध मे एक विकट प्रश्न रह ही जाता है। हम कहते हैं—आप तो बराबर वहाँ जाने से इनकार ही करते थे, फिर भी आप वहाँ गए सही। 'सही' के कुछ इसी प्रकार के प्रयोग हमारे यहाँ के मध्य-युगीन साहित्य म मिलते हैं, यथा—

(क) प्रभु आसुतोष कृपालु शिव
अबला निरखि बोले सही।—तुलसी। और

(ख) परसत पद-पावन, सोक-नसावन,
प्रकट भई तप-पुंज सही ।—तुलसी ।

ऐसे अवसरो पर 'सही' का प्रयोग हिन्दी के 'ही' अव्यय की तरह किसी बात पर जोर देने के लिए ही होता है। आशय यही होता है कि कही हुई बात अवश्य और निश्चित रूप से घटित हुई। ऐसी अवस्था मे इसका सम्बन्ध अरबीवाले विशेषण 'सही' से स्थापित करना कुछ अधिक तर्क-संगत नही जान पड़ता। मेरा ऐसा विश्वास है कि 'सही' के इस प्रकार के प्रयोग हमारे यहाँ बहुत पहले से चले आ रहे हैं और उनकी व्युत्पत्ति भी कुछ स्वतत्र ही होनी चाहिए। जो हो, यह विषय विद्वानों के लिए विचारणीय है।

हम ऊपर कह आए हैं कि उक्त उदाहरणो में 'सही' का प्रयोग भी बहुत कुछ उसी प्रकार जोर देने के लिए हुआ है जिस प्रकार 'ही' का प्रयोग होता है। फिर भी इन दोनो के प्रयोगों मे एक सूक्ष्म अंतर अवश्य है। हम कहते हैं—(क) आखिर आप वहाँ गए ही। और (ख) आखिर आप वहाँ गए सही। पहले वाक्य मे 'ही' का प्रयोग मुख्यतः वक्ता का आश्चर्य मात्र सूचित करता है, परन्तु दूसरे वाक्य में 'सही' का प्रयोग यह सूचित करता है कि वक्ता को यह आशा नही थी कि सम्बोधित व्यक्ति वहाँ जायगा। अर्थात् सम्बोधित व्यक्ति का वहाँ जाना वक्ता की आशा के प्रतिकूल अथवा सम्भावना के विपरीत हुआ है। परन्तु पहले वाक्य के 'ही' से इस प्रकार की ध्वनि का कोई सकेत नही मिलता।

अब 'सही' का एक और प्रकार का प्रयोग लीजिए। हम कहते हैं—अच्छा बैठो तो सही। 'सही' का इसी प्रकार का प्रयोग उर्दू के इस शेर मे हुआ है—

सभालो तेगे अदा को, जरा सुनो तो सही।
जरा सी बात के बिगड़े, भला सुनो तो सही।

ऐसे अवसरो पर 'सही' का प्रयोग जोर देने के लिए तो होता ही है, पर इसमे यह भाव भी विवक्षित होता है कि चाहे और कुछ करो या न करो पर इतना तो करो, अर्थात् इसका आशय होता है—अधिक नही तो इतना अवश्य हो जाय।

× ×

सांत्वना—स्त्री० [स०] दे० 'आश्वासन, ढारस, तसल्ली, दिलासा और सात्वना'।

सासारिक—वि० [स०] दे० 'भौतिक, पार्थिव लौकिक और सासारिक।

सा-सी-से

हिंदी मे समानता या सादृश्य का भाव सूचित करने के लिए जो 'सा' प्रचलित है, वह जितना ही छोटा है, उतना ही भाव-गर्भित भी है और उतना ही विलक्षण भी। यद्यपि बहुत दिन पहले अपनी पुस्तक 'अच्छी हिंदी' मे मैंने इसके कुछ सूक्ष्म भावो के निरूपण का प्रयत्न किया था पर इधर जब 'मानक हिंदी कोश का सम्पादन करते समय यह शब्द मेरे सामने आया और मैंने इस पर विशेष अनुशीलन और विचार किया, तब मुझे इसम और भी कई प्रकार की नई अर्थ छटाएँ दिखाई दी। यहाँ उ ही सूक्ष्म अर्थ छटाओं का दिग्दर्शन कराया जाता है।

'हिंदी शब्द सागर' ने इस अव्यय को स० सादृश्य अथवा सदृ्‌ से व्युत्पन्न *माना है परन्तु मेरी समझ म यह सीधे सम या सम से व्युत्पन्न है।* शब्द-सागर' मे इसके दो ही अर्थ है—(१) समान, तुल्य, सदृश बराबर, जसे—उसका रग तुम्ही सा है। और (२) एक प्रकार का मान सूचक शब्द, जसे—बहुत सा थोडा सा, जरा-सा। परन्तु 'सा का ठीक ठीक मूल्याकन इन दो अर्थों से नही होने पाता और इसकी आत्मा के अनेक अश या स्तर छिपे और दबे रह जाते हैं। यह ठीक है कि सा' मूलत अ यय ही है और मुख्यत समानता या सादृश्य का ही बोधक है पर पहली *बात यह है कि इसका प्रयोग* कही तो क्रिया विशेषण की तरह और कही विशेषण की तरह भी होना है। दूसरे यह कि 'सा' निरा समानता या सादृश्य का ही बोधक नहीं है। जब हम कहते हैं—(क) कमल-सी आँखें, या (ख) फूल सा शरीर, तब तो उसमें समानता या सादृश्यतावाला भाव ही रहता है। पर जब हम कहते हैं—(क) *'धूर्तों के से काम' या 'बच्चो की सी बातें' तब यह ढग, तरह या प्रकार* के क्षेत्र का परिचायक होता है। फिर जब हम कहत हैं—(ख) वहाँ बठ बठे मुझे *नींद सी आने लगी' या (ग) 'वह एक मरियल सा टट्टू ले आया',* तब यह पूरे सादृश्य का वाचक नहीं रह जाता बल्कि सादृश्य होने पर भी आशिक अल्पता न्यूनता या हीनतावाले भाव का सूचक हो जाता है। जब हम कहते *हैं—'तुम्हें इनम से कौन-सी पुस्तक चाहिए?' तब यह समानता या सादृश्य* के क्षेत्र से निकलकर अवधारण या निश्चयवाले क्षेत्र में चला जाता है, क्योंकि हम निश्चित रूप से यह जानना चाहते हैं कि बहुत सी पुस्तकों म से कौन

पुस्तक अपेक्षित है। और जब हम कहते हैं—'जरा-सा नमक', 'थोड़े-से आदमी' या 'बहुत-सी बातें' तब यह किसी अनिश्चित मात्रा या मान पर जोर देने के लिए प्रयुक्त होता है। कुछ अवस्थाओ मे इसका प्रयोग यह सूचित करने के लिए भी होता है कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह पूरा-पूरा सदृश न होने पर भी चाहे थोडा हो या बहुत, पर है किसी न किसी रूप मे मिलता-जुलता ही; जैसे—आमवात के रोगियो के शरीर पर उँगुली रखकर दबाने से गड्ढा-सा पड़ जाता है।

इस अव्यय की एक और विशेषता यह है कि इसके रूप मे विकार भी होते हैं, अर्थात् इसके रूप 'सी' और 'से' भी होते हैं। कारण यही है कि इसका प्रयोग सज्ञाओं के साथ भी होता है और विशेषणों के साथ भी और इसी लिए संज्ञाओं और विशेषणों के लिंग तथा वचन के अनुसार भी इसके रूप 'सी' और 'से' हो जाते है। इसके सिवा कुछ अवसरों पर विभक्तियों के साथ भी यह अव्यय लगता है; जैसे—(क) घर का-सा व्यवहार, (ख) मूर्खों का-सा आचरण। विभक्तियाँ विकारी होती हैं और उनके सम्पर्क से यह अव्यय भी विकारी हो जाता है।

अव्यय के अतिरिक्त 'सा' का प्रयोग प्रत्यय के रूप में भी होता है जिसका उल्लेख 'शब्द-सागर' मे नही है; यथा—ऐसा, कैसा, जैसा और वैसा मे 'सा' प्रत्यय ही है और यह भी अव्यय 'सा' की तरह सम् या सम से व्युत्पन्न है, बल्कि यो कहना चाहिए कि वह अव्यय ही विकसित होकर प्रत्यय बन गया है, क्योकि वह उसी अर्थ का बोधक है जो 'सा' अव्यय का मूल अर्थ है। यथा—ऐसा का अर्थ होगा—इस-सा; कैसा का अर्थ होगा—किस-सा; और वैसा का अर्थ होगा—उस-सा।

अव्यय और प्रत्यय के सिवा 'सा' का एक और रूप सज्ञावाला भी है, जो संगीत के क्षेत्र में प्रचलित है और जो षडज स्वर का वाचक तथा संक्षिप्तक है। यद्यपि प्रस्तुत प्रसंग में 'सा' के इस सज्ञावाले रूप की चर्चा अनावश्यक है, फिर भी इसका उल्लेख केवल इस दृष्टि से किया गया है कि 'शब्द-सागर' मे इसके इस रूप का विवेचन भी दृष्टि-दोष से छूट गया है। × ×

साट-गाँठ—स्त्री० [हिं०] दे० 'मिली-भगत और साट-गाँठ'।

साध—स्त्री० [हिं० साधना] दे० 'चाह, चाहत, चाव और साध'।

साधन और सामग्री
Resources Material

इस वर्ग के शब्द ऐसी बातों और वस्तुओं के वाचक हैं, जिनका उपयोग कोई काम पूरा करने के लिए किया जाता है।

'साधन' पु० [स०] का पहला अर्थ है—कोई उद्देश्य या काम पूरा या सिद्ध करना। इसके सिवा किसी काम या बात को ठीक और पूरा रूप देना भी उसका साधन कहलाता है। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे साधन उन सभी चीजो और बातो का वाचक है जो किसी उद्देश्य या काय की सिद्धि के लिए अनिवाय अथवा परम आवश्यक होते हैं। इसके अतगत उपकरण या औजार भी आ जाते हैं, और धन, शक्ति, सहायको आदि का भी इसमे अतर्भाव होता है। अनुसधान या शोध सम्ब धी पुस्तक लिखने के लिए अच्छे और प्रामाणिक ग्र थ हमारे साधन होते हैं। किसी दूर स्थान तक पहुँचने के लिए मोटरें रेलें और हवाई जहाज साधन होते हैं, और प्रबल शत्रु से युद्ध करने के लिए गोला बारूद तोपें और साहसी तथा सुशिक्षित सनिक साधन होते हैं। आज कल अच्छी नौकरी या ऊँचा पद पाने के लिए बडे-बडे अधिकारियो का अनुग्रह परिचय अथवा सबध भी लोगो की दृष्टि में साधन ही होता है। साराश यह कि सभी कामो म छोटे मोटे या थोडे बहुत साधनो की आवश्यकता होती है।

'सामग्री' स्त्री० [स०] मूलत समग्र का विकारी रूप है। समग्र होने की अवस्था, गुण या भाव ही मुख्यत सामग्री है। इसे हम पूरापन या समूचापन भी कह सकते हैं। पर तु प्रस्तुत प्रसग मे यह उन पदार्थों या वस्तुओं का ही वाचक है जो कोई काम पूरा करने या कोई चीज बनाकर तयार करने के परम आवश्यक होती हैं। 'साधन' म तो पदार्थों या वस्तुओं के अतिरिक्त और प्रकार के तत्व भी आ जाते हैं पर तु सामग्री म केवल भौतिक पदाथ या वस्तुएँ ही आती हैं। पूजन की सामग्री मे अक्षत, जल फूल माला, सुगधित पदाथ, नवेद्य आदि होते हैं, कागज, कलम, दवात, स्याही आदि लिखने की सामग्री है, चर्खा, चर्खा रूई आदि कपडे बनाने की सामग्री है और ई ट, पत्थर, लकडी आदि घर या मकान बनाने की सामग्री है। इसके पर्याय के रूप मे प्राय सामान' (पु० फा०) का भी प्रयोग होता है।

यह समूहवाचक सज्ञा है और इसका प्रयोग सदा एक वचन म ही होता है। यह कहना ठीक नहीं है—सब सामग्रियाँ आ चुकी हैं। इस की जगह होना चाहिए सब या (या सारी) सामग्री आ चुकी है।

साधारण सामान्य प्रसम
Ordinary Common Normal
प्रायिक और सार्विक
F.equent General

इस वर्ग के शब्द ऐसे कामो, चीजों, बातो, व्यक्तियो आदि की उस कोटि या वर्ग के विशेषण हैं जो लोक मे अधिकतर अवसरो पर देखने-सुनने मे आते हैं।

'साधारण' सं० साधार का विकारी रूप है; और साधार सं० स+आधार के योग से बना है। साधार का अर्थ है—जिसका कोई आधार हो; या जो किसी के आश्रय या सहारे पर हो। इसी दृष्टि से जो चीजें या बातें एक ही आधार पर या एक ही तरह के आधारो पर आश्रित या स्थित होती हैं वे साधारण कहलाती हैं। जब एक ही तरह की ऐसी बहुत-सी चीजें या बातें हमारे सामने आती हैं, जिनमे एक दूसरी की अपेक्षा कोई महत्व, पार्थक्य या विशेषता नही होती, तब वे सभी चीजे या बाते हमारे लिए साधारण होती हैं। जिस घटना या व्यक्ति मे हमे कोई विशिष्ट गुण या चमत्कार नही दिखाई देता, उसे हम साधारण मनुष्य कहते हैं। इसके विपरीत, जिन बातों या वस्तुओ मे हमे कोई नवीनता या विलक्षणता दिखाई देती है, वही हमारे लिए असाधारण होती हैं। पर यदि वही बातें या वस्तुएँ हमारे सामने प्रायः और अधिकता से आने लगें, तो वे साधारण बन जाती हैं। बिजली की की रोशनी, मोटर, रेडियो या हवाई जहाज पहले विरल होने के कारण असाधारण थे, पर अब बहुत प्रचलित हो जाने के कारण सभ्य जगत् के लिए साधारण हो गये हैं। पहले चोरियाँ, डाके और हत्याएँ बहुत कम होने के कारण असाधारण घटनाएँ मानी जाती थी; पर यही आज-कल साधारण बातें हो गई हैं। साधारण प्रायः प्रसम (देखें नीचे) से कुछ निम्न कोटि का ही होता है, उच्च कोटि का नही होता। हम कहते हैं—यह बात साधारण आदमियो की समझ के बाहर है। आशय यही होता है कि यह बात वही समझ सकते हैं जो या तो प्रसम कोटि के हो या उससे कुछ उच्च कोटि के।

'सामान्य' [सं०] समान से बना है; और मूलतः इसका वही अर्थ* तुल्य या बराबर है जो समान का है। पर बाद मे इसका अर्थ भी बढ और बदलकर

* अँगरेजी मे Common की अपेक्षा Ordinary कुछ ऊँचे भाव का सूचक है—उसमे तुच्छता या निम्नता की भावना अपेक्षया कम है। पर हिन्दी

बहुत कुछ वही हो गया है जो साधारण का है। जो सब जगह समान रूप से लोगों के देखने सुनने में आता हो जो सब में नहीं तो कम से कम बहुतों में अवश्य पाया जाता हो, अथवा जिसे देखने पर कुछ भी आश्चर्य या कुतूहल न हो वही सामान्य है। साधारण तो प्रसम से प्रायः कुछ नीचा होता है पर सामान्य बहुधा प्रसम के समान ही होता है। जो बात दो अथवा कई वस्तुओं, व्यक्तियों आदि में समान रूप से पाई जाती हो, वह भी सामान्य कहलाती है, जैसे—भूख, प्यास आदि प्राणियों का सामान्य धर्म है। यदि ऐसे प्रसंगों में सामान्य की जगह साधारण का प्रयोग किया जायगा तो वाक्य का आशय कुछ तुच्छता या हीनता का सूचक हो जायगा।

'प्रसम' शब्द मैंने अंग्रेजी के (Normal) नामल* का भाव सूचित करने के लिए सं० सम के पहले प्र उपसर्ग लगाकर बनाया है। कारण यह है कि अंग्रेजी के (Normal) का ठीक ठीक भाव सूचित करनेवाला हिन्दी में न तो पहले से कोई शब्द था और न अब तक बना है। इसलिए लोग इसके स्थान पर 'सामान्य' का ही प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं। परन्तु सामान्य तो (Common) के भाव का सूचक है इसलिए मुझे प्रसम की कल्पना करनी पड़ी है।

प्रसम उसे कहते हैं जो अपनी सगत और साधारण अवस्था, स्थिति आदि में ही हो—विशेष घटा बढ़ा या इधर उधर हटा हुआ न हो। प्रकृत और प्रसम में अन्तर यह है कि प्रकृत तो सदा एक रस रहता है, और उसमें अन्तर

में इसके विपरीत सामान्य ही कुछ अच्छा और साधारण कुछ हलका होता है। सामान्य बुद्धिवाला आदमी प्रयोग के विचार से, साधारण बुद्धिवाले आदमी की अपेक्षा कुछ अधिक बुद्धिमान् समझा जाता है।

* अंग्रेजी का नामल शब्द वस्तुतः Norm का विशेषण रूप है। (Norm) है तो बहुत कुछ औसत या माध्य (दे० मध्यक, माध्य, माध्यम और माध्यिका) के वर्ग का नहीं, परन्तु अन्तर इतना ही है कि औसत या माध्य तो प्रायः ठीक और पूरी गणना करके निकाला जाता है परन्तु Norm समुच्चय के किसी अंश या भाग के निकाले हुए औसत या माध्य के आधार पर केवल अनुमान या कल्पना से समुच्चय वर्ग के लिए स्थिर कर लिया जाता है। इसीलिए Norm का समानार्थक मैंने 'प्रसमा' स्थिर किया है। इससे प्रसमन (नामली), प्रासमिक (नार्मेटिव), अप्रसम (एबनामल), अप्रसमता (एबनामली), अनुप्रसम (सब-नार्मल) अनुप्रसमता (सबनामली), प्रसमीकरण (Normalization) सभी रूप सहज में बन जाते हैं।

या भेद के लिए कदाचित् ही कोई अवकाश रहता हो। पर प्रसम का क्षेत्र अपेक्षया परिमित होता है, और उसमे कुछ अन्तर या भेद भी देखने मे आते हैं। पूस-माघ मे जाड़ा प्रकृत रूप से पडता है। यह हो ही नही सकता कि पूस-माघ मे जाड़ा न पड़े। पर साधारणत: हर साल पूस-माघ मे जितना जाड़ा पडता हुआ हम देखते हैं, वही हमारे लिए प्रसम होता है। हो सकता है कि किसी साल जाडा कुछ अधिक हो या कम। उस दशा मे हम कहेगे—इस साल सरदी अप्रसम है, अर्थात् साधारणत: हर साल जितनी या जैसी सरदी पडती थी, उससे इस साल कुछ अधिक (या कम) है। मान लीजिए कि किसी स्थान पर १०० लडको की, किसी स्थान पर २०० लड़को की और किसी स्थान पर ५०० लडको की धारणा-शक्ति की जाँच हुई। सब जगह की जांच करके यह स्थिर किया गया कि १० वर्ष की अवस्था के लड़के इतनी बातें, १२ वर्ष की अवस्था के लडके इतनी बातें और १६ वर्ष की अवस्था के लडके इतनी बाते जान या सीख सकते हैं। इस प्रकार की जाँच के आधार पर जो मत या सिद्धान्त स्थिर किया जाता है वही मत या सिद्धान्त जब साधारणत: बाकी सब लडको के लिए भी ठीक मान लिया जाता है, तब वही उस मत या सिद्धान्त का प्रसम रूप होता है। जब किसी बहुत बडी और समूची इकाई का औसत या माध्य नही निकाला जा सकता और उस इकाई के किसी छोटे से अश का औसत या माध्य निकालकर शेष समूची इकाई पर उसका आरोप कर लिया जाता है और इसी आधार पर कोई निष्कर्ष निकाला जाता है, तब वही निष्कर्ष 'प्रसम' कहा जाता है।

'प्रायिक' रूप सं० प्राय: से मैंने सन् १९५५ मे 'शब्द-साधना' प्रस्तुत करते समय स्थिर किया था।* प्राय: अव्यय है; और इसका अर्थ है—जो बीच-बीच मे परन्तु अनिश्चित रूप से परन्तु अधिकतर अवसरो पर होता रहता हो। इसी आधार पर मैंने प्राय: से उसका विशेषण रूप 'प्रायिक' रखना उचित समझा था। प्रायिक वह है जो सदा और नियमित रूप से या बराबर

* जहाँ तक मैं जानता हूँ, भारत सरकार ने भी पहले Frequent के लिए प्रायिक मान लिया था परन्तु बाद मे उसने Frequency के लिए बार-बारिता और Frequently के लिए बारम्बार स्थिर किया, परन्तु मेरी समझ मे बारम्बार तो again and again है जो Often और Frequent दोनो से बिलकुल भिन्न है। Often के लिए तो 'प्राय:' ठीक है ही। पर Frequently के लिए 'प्रायिक' रखना ही ठीक होगा। क्योकि और कोई उपयुक्त शब्द नही मिलता। विशेष दे० 'प्राय: और बहुधा'

तो न होता हो, फिर भी बीच-बीच मे प्राय या बहुधा होता रहता हो। जो क्रिया आपसे आप या लोगो के द्वारा अथवा किसी एक व्यक्ति के द्वारा बीच-बीच मे और बार-बार होती रहती हो, उसे भी प्रायिक कहते हैं; जसे—सावन भादो मे वर्षा प्रायिक होती है, परन्तु और महीनों मे वह प्रायिक नही, बल्कि क्वचित् ही होती है।

'सार्विक' स० सर्व का विकारी रूप है। यह रूप भी मैंने 'शब्द साधना' में 'प्रायिक' के साथ ही स्थिर किया था। सार्विक उसे कहते हैं जो साधारण अवस्थाओ मे प्राय सभी जगह बहुत कुछ समान रूप म देखा या पाया जाता हो, फिर भी इसमे अपवादो, त्रुटियो आदि के लिए कुछ अवकाश रहता ही हो। सार्विक नियम, परिपाटियाँ, प्रथाएँ आदि साधारणत मानव समाज अथवा शासन के द्वारा निरूपित या स्थापित होती हैं। सार्विक बातें सदा जन साधारण के हित के अनुकूल और उपयुक्त ही होती हैं और उनसे समाज के सभी लोगो का या तो उपकार या हित होता है या उन्हे सुख और सुभीता प्राप्त होता है। सार्विक बातें प्राय देश काल के अनुसार बदलती भी रहती हैं अथवा उनम अनेक भेद प्रभेद भी देखने मे आते हैं, जसे—भारत मे तो बहुत दिनो से सार्विक मान्यता यही रही है कि स्त्रियो को घर गृहस्थी के कामो मे ही अपना सारा समय लगाना चाहिए—परन्तु आज कल स्त्री शिक्षा का प्रचार हो जाने के कारण बहुत सी स्त्रियाँ घर गृहस्थी के काम छोडकर नौकरी चाकरी म भी लग जाती है, अथवा अपना सारा समय देश सेवा, समाज हित के कामो म लगाने लगी हैं। × ×

सामजस्य—पु० [स०] दे० सतुलन, समन्वय और सामजस्य।
सामग्री—स्त्री० [स०] दे० 'साधन और सामग्री।
सामर्थ्य—पु० [स०] दे० 'शक्ति बल, सामर्थ्य और उर्जा।

सामर्थ्य	समाई और बिसात
1 Strength 2 Capability	Capacity

इस वग के शब्द हैं तो बल या शक्ति के वग के ही (दे० शक्ति, बल, सामर्थ्य और ऊर्जा) परन्तु इनके मुख्य अर्थ या आशय कुछ भिन्न प्रकार के हैं। फिर भी कभी-कभी कुछ लोग भ्रमवश इनमे से एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।

'सामर्थ्य' स० समर्थ का भाववाचक संज्ञा रूप है* इसका प्रयोग मुख्यतः व्यक्तियो या अधिक से अधिक जीव-जन्तुओ की ऐसी शक्ति या बल सूचित करने के लिए होता है जिसके फलस्वरूप वे कोई काम कर सकने के योग्य, सक्षम अथवा समर्थ होते हैं। यह हमारी आर्थिक, शारीरिक, सामाजिक आदि ऐसी स्थितियो का सूचक है जो हमारे कार्य-क्षेत्र की अन्तिम या अधिक से अधिक सीमा अभिव्यक्त करती हैं। कोई विशिष्ट कार्य कर सकने का जितना गुण या बल हममे होता है, वही हमारा सामर्थ्य कहलाता है; जैसे—चलने-फिरने, ताप-शीत आदि सहने का सामर्थ्य; धन आदि व्यय करने का सामर्थ्य; अथवा कार्य-क्षेत्र बढाने का सामर्थ्य। हम कहते हैं—(क) यह काम हमारे सामर्थ्य के वाहर है। (ख) हमारे कानो मे सुनने (या आँखो मे देखने) का सामर्थ्य नही रह गया। ऐसी अवस्था मे यह हमारी शक्ति का कुछ परिमित और विशिष्ट आशय का सूचक होता है।

'समाई' हि० समाना का भाववाचक स्त्री० रूप है। यों साधारणतः समाई का अर्थ होता है समाने की क्रिया या भाव। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे यह हमारी क्षमता या योग्यता की परिधि या सीमा सूचित करता है। हम कहते है—इस समय सौ रुपए से अधिक व्यय करने की हमारी समाई नहीं है। आशय यही होता है कि इस समय सौ रुपए से अधिक व्यय करना हमारी शक्ति के वाहर है। यह भी कहा जाता है—हमें हर काम अपनी समाई देखकर करना चाहिए; अर्थात् अपनी योग्यता या शक्ति के अनुरूप ही करना चाहिए, उससे वढकर नही। इसका प्रयोग कभी-कभी लाक्षणिक अर्थ मे भी होता है; जैसे—इस नौकर की समाई हमारे घर मे नही हो सकती। आशय यही होता है कि यह नौकर इस योग्य नही है कि हमारे यहाँ इसका निर्वाह हो सके।

'विसात' मूलतः अरवी भाषा का शब्द है; जिसका अर्थ है—विछाने का कपड़ा या चादर। प्राचीन काल मे प्रायः छोटे-मोटे व्यापारी जमीन पर कोई कपड़ा विछाकर उस पर विक्री के लिए तरह-तरह की चीजें रखते थे। उनका वही कपड़ा विसात कहलाता था और ऐसे व्यापारी विसाती कहलाते थे।† आगे चलकर 'विसात' उस कपडे को भी कहने लगे जिस पर वहुत से खाने या घर वने होते हैं और जिन पर चौपड़, शतरंज आदि खेल खेले जाते हैं।

---

* कुछ लोग भूल से इसे स्त्रीलिंग समझ लेते हैं। परन्तु यह वस्तुतः सौमनस्य, स्वास्थ्य आदि की तरह पुलिंग ही है, स्त्रीलिंग नही।

† आज-कल 'विसाती' कुछ विशिष्ट प्रकार की छोटी-मोटी वस्तुएँ वेचने-वाले व्यापारी को कहते हैं।

इससे और आगे बढ़ने पर बिछाये जानेवाले कपड़े के विस्तार और फलत उसकी समाई के आधार पर यह शब्द कई वार्य विशेषत व्यय करने की शक्ति या सामर्थ्य का भी वाचक हो गया है। हम कहते हैं—(क) हम तो अपनी बिसात देखकर ही ब्याह के सब काम करेंगे। अथवा (ख) उसकी क्या बिसात है जो हमारे सामने इस तरह बढ़ बढ़कर बोले। ऐसे प्रसगो मे बिसात उसी आशय या भाव का सूचक होता है जो तेतो पाय पसारिए जेती लाँबी सौर' मे है और इसी दृष्टि से यह आलिक रूप मे समाई या सामर्थ्य का पर्याय होता है। 'समाई' और 'बिसात' मे ध्यान रखने योग्य एक मुख्य अन्तर यह है कि समाई तो किसी क्षेत्र के भीतरी अवकाश की सूचक होती है और 'बिसात' विस्तार की सीमा सूचित करती है। × ×

सारणी—स्त्री० [स०] दे० 'तालिका, सारणी, सूची और सूचीपत्र'।

सामर्थ्य—पु० स० दे० 'शक्ति, बल सामर्थ्य और ऊर्जा'।

सामान—पु० [फा०] दे० 'साधन और सामग्री'।

सामान्य—वि० [स०] दे० 'साधारण, सामान्य, प्रसम, प्रायिक और सार्विक'।

सार्विक—वि० [स०] दे० 'साधारण, सामान्य, प्रसम, प्रायिक और सार्विक'।

साहित्य और वाङ्मय

Literature

साहित्य मूलत 'सहित' का भाववाचक सज्ञा रूप है। किसी के सहित अथवा किसी से युक्त होने की अवस्था, गुण या भाव ही साहित्य है। सरल हिंदी मे इसका अर्थ होगा—सग या साथ। आपस मे सग या साथ तो बहुत सी चीजो या बातों का होता रहता है पर वह नित्य या स्थायी नही होता। जान पड़ता है कि नित्य और स्थायी सग या साथ की खोज में विचारवानो का ध्यान शब्दों और उनके अर्थों की ओर गया होगा और उन्होंने सोचा होगा कि शब्दों और अर्थों का पारस्परिक सम्बन्ध ही नित्य और स्थाई होता है। यो साधारणत शब्दो के अर्थ बदलते तो रहते हैं परन्तु शब्द और अर्थ मे जो सम्बन्ध होता है वह कभी छूटता या टूटता नही। कोई अर्थ, आशय या भाव व्यक्त करने के लिए ही तो शब्दों का एक विशिष्ट व्यवस्थित रूप मे प्रयोग होता है। कदाचित् इसी लिए शब्द और अर्थ के इस पारस्परिक सम्बन्ध को

ही साहित्य की संज्ञा मिली होगी। इसी दृष्टि से मानव समाज की समस्त अनुभूतियो और विचारों का लिखित रूप साहित्य कहलाने लगा था। हमारे यहाँ प्राचीन काल में सभी रचनाएँ प्रायः कविता के रूप मे होती थी और कविता मे अपने भाव तथा विचार यथेष्ट उत्कृष्ट रूप मे व्यक्त किए जाते थे। इसलिए आगे चलकर 'साहित्य' शब्द काव्यशास्त्र का वाचक हो गया और छंदशास्त्र, अलंकार, रस आदि का विवेचन करनेवाले सभी ग्रन्थो का इसमे अन्तर्भाव होने लगा। सस्कृत के रीति काल मे भी 'साहित्य' का प्रयोग इसी परिमित क्षेत्र मे होता था। परन्तु आधुनिक हिन्दी मे, बल्कि यो कहना चाहिए कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ मे अंग्रेजी के literature के अनुकरण पर साहित्य के अर्थ की व्यापकता बहुत कुछ बढ गई है। अब तो किसी भाषा मे गद्य और पद्य मे मिलनेवाली सभी प्रकार की लिखित और प्रकाशित रचनाओ अथवा समस्त ज्ञान भडार का इससे बोध होता है; जैसे—बगला साहित्य, मराठी साहित्य, हिन्दी साहित्य आदि। इससे और आगे चलने पर हम देखते है कि किसी विशिष्ट कवि या विषय के सभी ग्रन्थ उसके साहित्य कहलाते हैं; जैसे—कबीर या सूर का साहित्य, गणित या विज्ञान का साहित्य। इसके सिवा किसी वस्तु या विषय से सम्बन्ध रखनेवाली सभी लिखित और प्रकाशित सामग्री को भी साहित्य कहते हैं; जैसे—विद्युत् यत्रो का साहित्य।

'वाङ्मय' हमारे यहाँ का ऐसा पुराना शब्द है जिसका प्रचलन अब बहुत कम हो गया है। विशेषण रूप मे उसका अर्थ होता है—वाक् या वाचा से सम्बन्ध रखनेवाला। सज्ञा रूप मे उसका पहला अर्थ होता है वाणी और दूसरा बातचीत या भाषण। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग मे यह उच्च कोटि के आध्यात्मिक, दार्शनिक आदि ग्रन्थ-भडार का वाचक है। हमारे यहाँ वेदो, वेदागों, दर्शनशास्त्रो पुराणो आदि की गणना वाङ्मय मे ही की गई है। प्राचीन काल मे वाङ्मय के अन्तर्गत काव्य और शास्त्र दोनो लिए जाते थे। परवर्ती काल मे यह विशेष रूप से शास्त्रो का ही वाचक माना जाने लगा था।

× ×

साहित्यिक चोरी—स्त्री० दे० 'हरण, अपहरण, आहरण, परिहरण और परिहार'।

सिफारिश—स्त्री० [फा०] दे० 'आशसा, अनुशंसा, अभिशसा और प्रशंसा'।

सुखवाद—पु० [सं०] दे० 'दुःखवाद और सुखवाद'।

सुगंध— स्त्री० [सं०] 'गंध, बू, महक और बास'।

सुनाम—पु० [सं०] दे० 'नाम उपनाम, पदनाम, संज्ञा और सुनाम'।

सुरक्षा—स्त्री० [सं०] 'रक्षा, आरक्षा परिरक्षा प्रतिरक्षा संरक्षा और सुरक्षा'।

सुरभि—स्त्री० [सं०] दे० 'परिमल, सुरभि और सौरभ'।

सुस्त—वि० [फा०] दे० 'अहदी आलसी, आसक्ती, दीर्घसूत्री और सुस्त'।

सूक्ष्म-तरंग—स्त्री० [सं०] दे० 'परिवहन यातायात, संचार, दूर संचार और भू संचार'।

सूची—स्त्री० [सं०] दे० 'तालिका सारणी, सूची और सूचीपत्र'।

सूचीपत्र—स्त्री० [सं०] दे० 'तालिक सारणी सूची और सूचीपत्र'।

सूजन—स्त्री० [फा० सोजन]=शोथ, दे० शोथ और शाफ।

सूझ—स्त्री० [हिं० सूझना] दे० कल्पना उद्भावना उपज और सूझ।

सौगंद—स्त्री० [सं०] दे० संकल्प निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ।

सौजन्य—पु० [सं०] दे० 'सज्जनता और सौजन्य'।

सौरभ—पु० [सं०] दे० परिमिल सुरभि, सौरभ।

स्थिति—स्त्री० [सं०] दे० 'अवस्था, दशा और स्थिति'।

स्नायु—स्त्री० [सं०] दे० धमनी, नाड़ी, शिरा और स्नायु।

स्नेह—पु० [सं०] दे० 'अनुराग प्रीति प्रेम और स्नेह'।

स्पृहा—स्त्री० [सं०] दे० 'इच्छा, कामना, अभिलाषा, आकांक्षा और स्पृहा'।

स्वच्छंदता—स्त्री० [सं०] दे० स्वतन्त्रता स्वाधीनता स्वायत्तता और स्वच्छंदता।

स्मारिका—स्त्री० [सं०] दे० विज्ञप्ति, अधिसूचना, ज्ञापन, ध्येय पत्र और श्वेत पत्र'।

स्वतन्त्रता स्वाधीनता स्वायत्तता और स्वच्छंदता

Freedom Independence Autonomy Liberty

इस वर्ग के शब्द ऐसी स्थितियों के वाचक हैं जिनमें देश राज्य या लोग औरों का कोई अधिकार या प्रभुत्व नहीं मानते और अपनी आवश्यकताओं,

इच्छाओं आदि के विचार से अपने सब काम स्वय करते हैं। यद्यपि अर्थ के विचार से लोग इन्हे वहुत कुछ समानक समझते है, फिर भी इनके अर्थों और विवक्षाओ मे कुछ मूल-भूत आधारों पर (उन सज्ञाओ के आधार पर जिनसे विकसित होकर ये रूप वने हैं) कुछ सूक्ष्म अन्तर हैं जिनका ध्यान रखना आवश्यक है।

'स्वतत्रता' स्त्री० [सं०] में मुख्य शब्द तत्र है; जिसके अर्थ हैं—नियम, प्रणाली, व्यवस्था आदि। अतः स्वतंत्रता का प्रचलित अर्थ है—ऐसी स्थिति जिसमे मनुष्य अपने ही नियमो, प्रणालियो आदि के अनुसार अपने सव कामो का प्रवन्ध या व्यवस्था स्वय करता है। इसी आधार पर इसमे एक विवक्षा यह भी लगी हुई है कि वह दूसरो के अधिकार, आज्ञा, नियत्रण, वन्धन आदि नही मानता। हमे अपने घर के सव काम-धन्धे या व्यापार करने की भी स्वतंत्रता होती है; सत्र जगह आने-जाने, घूमने-फिरने आदि की भी स्वतत्रता होती है और किसी प्रकार के अवरोध, नियंत्रण या वन्धन से मुक्त हो जाने पर अपने आचरण और व्यवहार के सम्वन्ध मे स्वतत्रता प्राप्त होती है। पराधीन देशो आदि का परकीय शासन हट जाने पर भी स्वतत्रता प्राप्त होती है। परन्तु आज-कल इसका प्रयोग राजनीतिक क्षेत्रो मे ही ऐसे देशों के सम्वन्ध मे होता है जो विदेशी शासको के अधिकार और शासन से मुक्त हो चुके हो और जो अपनी इच्छा के अनुसार अपना सारा शासन कार्य स्वय करते हो।

'स्वाधीनता' स्त्री० [स०] मे मुख्य शब्द 'अधीन' है; स्वाधीनता का अर्थ होता है—ऐसी स्थिति जिससे कोई अपने ही अधीन रहता हो पराधीन न हो। यह मुख्य रूप से राजनीतिक क्षेत्र का ही शब्द है; लौकिक या सामाजिक क्षेत्र में इसका प्रयोग प्रायः उन और अर्थो मे नही होता जो ऊपर स्वतंत्रता के प्रसंग मे वताए गए हैं। साधारणतः हम कह सकते है कि स्वतत्रता का प्रयोग व्यक्तियों के सम्वन्ध मे और स्वाधीनता का प्रयोग देशो, राष्ट्रो आदि के सम्वन्ध मे होता है। 'भारत स्वाधीन हुआ है' का आशय है कि अव उस पर विदेशियो का शासन नही रह गया और 'भारत स्वतंत्र हुआ है' का आशय है कि अव वह अपनी सारी व्यवस्था आप करने की स्थिति मे आ गया है। हम यह तो कहते हैं—(क) हमे अपनी इच्छा के अनुसार काम करने की स्वतत्रता है, अथवा (ख) समाचार-पत्रो को पहले से वहुत अधिक स्वतत्रता मिल गई है। पर ऐसे प्रसगो मे स्वाधीनता का प्रयोग इसलिए ठीक नही होता कि हम अथवा समाचार-पत्र फिर भी किसी न किसी

व्यवस्था या शासन के अधीन रहकर ही अपने काम करते हैं पूरी तरह से स्वाधीन नहीं होते।

'स्वायत्तता स्त्री० [स०] स्वायत्त का भाव वाचक सज्ञा रूप है। स्वायत्त का अर्थ है—जो किसी दूसरे पर आश्रित न हो अथवा जिस पर किसी दूसरे का नियत्रण न हो, अर्थात् जो अपना मालिक या स्वामी आप ही हो। इस प्रकार मौलिक अर्थ के विचार से यह स्वतन्त्रता या स्वाधीनता का ही समानक है पर आज-कल इसका प्रयोग अग्रजी (Autonomy) का भाव सूचित करने के लिए होने लगा है, अत इसका अर्थ भी कुछ सकुचित और सीमित हो गया है। स्वायत्तता ऐसी राजनीतिक इकाइयो को प्राप्त होती है जो या तो किसी एक प्रभु सत्ता (Sovereignty) के अधीन हो अथवा किसी मडल या सघ के सदय के रूप म सम्मिलित हो और कुछ बातो म उसके प्रकार, नियम आदि मानती हो। उदाहरणार्थ—हमारे यहाँ की नगरपालिकाओ को जो स्वायत्तता प्राप्त है, उसके अनुसार अपने अधिकार-क्षेत्र मे तो उन्हे सब काय करने की पूरी स्वतन्त्रता होती है फिर भी जिस राज्य म वे होती हैं उसकी आज्ञाओ, नियमो और विधानो का पालन उनके लिए अनिवायय होता है। इसी प्रकार राष्ट्र मडल या राष्ट्र-सघ के सभी सदस्या को स्वायत्तता प्राप्त होती है। फिर भी कुछ विशिष्ट क्षेत्रो मे उन्हे राष्ट्र मडल या राष्ट्र सघ के नियमो निर्णयो निश्चयो आदि का पालन करना ही पडता है।

स्वच्छन्दता स्त्री० [स०] मे मुख्य शब्द छन्द (स० छदस) है जिसके अर्थ हैं—इच्छा कामना, उद्देश्य हेतु आदि। इसी आधार पर स्वच्छन्दता वह स्थिति है जिसम सब काम अपनी इच्छा के अनुसार और मन माने ढग या प्रकार से किये जाते हैं। हम कहते हैं—पक्षी आकाश म और पशु वन म स्वच्छदनापूवक विचरण करते हैं। यहा तक तो स्वच्छदता भी बहुत कुछ वही है जो स्वतन्त्रता या स्वाधीनता है पर आगे चल कर स्वच्छदता मे एक और विवक्षा लगी हुई मिलती है। लोक व्यवहार म स्वच्छदता का जो अर्थ लिया जाता है, उसम निरकुशता का भाव प्रधान है। इसमे ऐसे मनमाने आचरण की रगत है जो अकुश या बन्धन को व्यथ समझकर उसकी उपेक्षा करता है, और इसी लिए जिससे दूसरो का कुछ अहित हो सकता हो या दूसरो को खटक सकता हो। स्त्रियाँ घर म स्वतन्त्रतापूवक सब काम कर सकती हैं, पर उनका स्वच्छन्दतापूवक बाहर घूमना फिरना दुष्परिणाम उत्पन्न कर सकता है। स्वतन्त्रता और स्वाधीनता अपेक्षया निरीह और अभीष्ट होती है। स्वतन्त्रता मे बधन और विवशता वाले तत्त्व का अभाव मुख्य है, पर स्वच्छदता

मे मनमाने आचरण का भाव प्रधान है। इसी लिए स्वच्छन्दनापूर्वक किये जानेवाले आचार को 'स्वेच्छाचार' भी कहते हैं, जो लोक मे साधारणतः आपत्तिजनक अथवा निन्दनीय माना जाता है। × ×

स्वत्व—पुं० [स०] दे० 'अधिकार और स्वत्व'।

स्वभाव—पु० [स०] दे० 'प्रकृति, शील, स्वभाव और मिजाज'।

स्वाधीनता—स्त्री० [स०] दे० 'स्वतंत्रता, स्वाधीनता, स्वायत्तता और स्वच्छन्दता'।

स्वामित्व—पुं० [स०] दे० 'अधिकार और स्वत्व'।

स्वायत्तता—स्त्री० [स०] दे० 'स्वतन्त्रता, स्वाधीनता स्वायत्तता और स्वच्छन्दता'

स्वेच्छाचार—पु० [सं०] दे० 'स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, स्वायत्तता और स्वच्छदता।

हगामी—वि० [फा०]=आपातिक; दे० 'आपात, आपातिक-स्थिति और अपस्थिति (या विस्थति)'।

हँसी — दिल्लगी — परिहास
Laughte. — Joke — Joke
चुहल (या चुहुल) और फबती
Raillery

इस वर्ग के शब्द आयस मे होनेवाली ऐसी बातो के वाचक हैं जो मुख्य रूप से विशुद्ध मनोरंजन, विनोद या हँसने-हँसाने के लिए होही है।

'हँसी' स्त्री० हिं० हँसना [स० हसन्] क्रिया का भाववाचक संज्ञा रूप है। प्राय. वार्तालाप मे किसी के मुँह से कोई ऐसी बात निकल पडती है जिसे सुनते ही सब लोग अनायास हँस पडते हैं। अपने मौलिक रूप मे यही हँसी है। इसे और आगे बढने पर इसका प्रयोग हँसने-हँसानेवाली ऐसी बातो के सम्बन्ध मे भी होता है जो कुछ लोग मन बहलाने और समय बिताने के लिए आपस मे करते है। इस अर्थ के विचार से 'हँसी-खुशी' पद बनता है, जिसका अर्थ होता है—आनन्द, प्रसन्नता या सुख से युक्त; जैसे—यहाँ चार दिन तक वे बहुत हँसी-खुशी से रहकर घर चले गये। इसके योग से हँसी, ठट्ठा, हँसी-दिल्लगी और 'हँसी-मजाक पद भी बनते हैं जो मनोरजन या मनो-विनोदवाली बातो के वाचक होते है। इससे कुछ और आगे बढने पर इसमें

दो ऐसे अर्थ लग जाते हैं जो उपहास अथवा लोक-निन्दा वाले भावों से युक्त होते हैं। किसी की 'हँसी उड़ाना' का अर्थ होता है—किसी को तुच्छ या हीन सिद्ध करने के लिए ऐसी बात कहना जिसे सुनकर लोग उपेक्षापूर्ण भाव से हँस पड़ें। परन्तु जब कहा जाय—'इस तरह के काम करोगे तो लोक (या समाज) में तुम्हारी हँसी होगी' तो आशय यह होगा कि लोग तुम्हें निन्दनीय और बुरा समझकर तुम पर हँसने लगेंगे या तुम्हारी हँसी उड़ाने लगेंगे।

'दिल्लगी' स्त्री० फा० दिल और हि० लगना (या लगाना) के योग से बना हुआ शब्द है। इसका आरम्भिक अर्थ होता है—दिल लगने या लगाने की क्रिया या भाव। परन्तु इस अर्थ में इसका प्रयोग बहुत ही कम देखने में आता है। इसका प्रचलित और प्रसिद्ध अर्थ है मन बहलाने और हँसने हँसाने के लिए कही या की जानेवाली बात (या बातें)। इस दृष्टि से 'हँसी दिल्लगी' का भी वही अर्थ होता है जो ऊपर हँसी मजाक का बतलाया गया है। ऐसी बातों का प्रायः किसी गम्भीर विषय से कोई सम्बन्ध नहीं होता। 'हँसी और दिल्लगी' में कुछ मुख्य अन्तर हैं। पहली बात तो यह है कि हँसी मुख्यतः शिष्ट सम्मत और सार्विक शब्द है परन्तु दिल्लगी में कुछ ओछापन, कुछ बाजारूपन और कुछ शृंगारिकता की भी छाया होती है। इसके सिवा हँसी अपने विशुद्ध रूप में छोटों या बड़ों के सामने भी की जा सकती है और प्रायः की भी जाती है, परन्तु दिल्लगी का क्षेत्र प्रायः आपसदारी या बराबरीवालों तक ही परिमित रहता है। मुहावरे की दृष्टि से किसी की दिल्लगी उड़ाने का भी वही अर्थ होता है जो ऊपर किसी की हँसी उड़ाने का बतलाया गया है। दिल्लगी या हँसी में कही या की हुई कोई बात कुछ अवस्थाओं में उस व्यक्ति के लिए खेदजनक या हानिकारक भी हो सकती है जो उसका लक्ष्य बनाया गया हो। फिर भी दिल्लगी या हँसी करनेवाले अथवा उसके पक्ष (या लोगों) के लिए वह प्रायः हँसने हँसाने वाली ही होती है। उदाहरणार्थ यदि हम दिल्लगी या हँसी में किसी व्यक्ति के खड़े होने पर उसके पीछे रखी हुई बैठने की कुर्सी चुपचाप धीरे से खींचकर इधर उधर हटा दें तो जब वह बिना पीछे देखे बैठने लगेगा तो धड़ाम से गिर पड़ेगा। उस समय पहले तो सब लोग ठठाकर हँस ही पड़ेंगे, भले ही उसे गहरी चोट आने पर बाद में, लोगों को कुछ दुःख और पछतावा ही क्यों न हो।

'परिहास' पु० [सं०] इस वर्ग का सब से अधिक निरीह और शिष्ट सम्मत शब्द है और इसीलिए यह अपने वर्ग के अन्य सभी शब्दों के स्थान

पर प्रयुक्त हो सकता है। स्वय इस पर कोई खास रगत नही है, और इसी पर थोडी वहुत रगते चढने से इस वर्ग के अन्यान्य शव्दो के अर्थो मे थोडा वहुत अन्तर उत्पन्न होता है। आज-कल अनेक अवसरो पर जो परिहास सम्मेलन होते हैं उनमे कविताएँ और कहानियाँ होती तो कई तरह की है; परन्तु उन सब की गिनती 'परिहास' मे ही होती है। यही इस शब्द की विशुद्धता का भी और व्यापकता का भी सब से अच्छा प्रमाण है।

'चुहल' या 'चुहुल' [स्त्री०] की व्युत्पत्ति अभी स्पष्ट नही है। 'हि० शब्द सागर' मे इसे चिडियो के शब्द चुह-चुह से व्युत्पन्न बतलाया गया है। हो सकता है कि यह व्युत्पत्ति कुछ अशो मे ठीक हो, क्योकि इसका प्रयोग हँसी-दिल्लगी की ऐसी बातो के सम्बन्ध मे होता हे जो बहुत आपसदारी के थोडे से व्यक्तियो मे खूब खुले दिल से होती है। इस तरह की बातो मे दो तरह की रंगते विशेप रूप से देखने मे आती हैं। पहली रगत तो कुछ शृगारिकता की होती है; और दूसरी सभ्य समाजवाली मर्यादा और शिष्टता की सीमा के कुछ उल्लघन की। इससे जो 'चुहुलबाजी' रूप बनता है, उसमे उक्त दोनो प्रकार की रंगतो के भाव स्पष्ट रूप व्यक्त होते हैं।

'फबती' हि० फबना से बना है, जिसका अर्थ है—भला लगना, शोभन जान पडना आदि। प्रस्तुत प्रसग मे यह ऐसी व्यग्यपूर्ण उक्ति या कटाक्ष का वाचक है जो किसी विशिष्ट अवसर पर बिलकुल उपयुक्त और ठीक बैठे—अच्छी तरह फबे। इसमे कोमल, मधुर और शिष्टतापूर्ण हास्य या परिहास की इतनी अधिकता होती है कि उसके सामने व्यग्य या कटाक्षवाला तत्त्व बिल्कुल दब जाता है। इसी आधार पर हमने इसे व्यंग्य और कटाक्षवाली माला मे न रखकर हँसी और परिहास की माला मे स्थान दिया है। इसकी दूसरी विशेषता यह है कि इसमे प्राय: उपमावाला तत्व भी वर्तमान रहता है जो इसमे नई जान डाल देता है। * इस कोटि के अन्यान्य शब्दो के लिए दे० (१) उपहास, खिल्ली, ठट्ठा और ठठोली और (२) 'व्यग्य, कटाक्ष, चुटकी, ताना और बोली'। × ×

हकूमत—स्त्री० [अ० हुकूमत]=शासन; दे० 'शासन, प्रशासन और अनुशासन'।

* बस्ती जिले मे एक बहुत बडे जमीदार और रईस थे जो कि बहुत अधिक मोटे भी थे और कुरूप तथा साँवले भी। उनके दरबार मे अब्दुल नाम का एक मसखरा रहता था जो फबती कसने मे कमाल करता था। एक

हठ टेक और जिद

हठ
1 Obstinacy
2 Stubbornness

टेक
Sticking

और

जिद
1 Obstinacy
2 Doggedness

इस वग के श द ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनम काई बात इस प्रकार
बहुत ही आग्रह और दृढतापूर्वक कही जाती है कि यह मान ही ली जानी
चाहिए।

हठ पु० [स०] के आरम्भिक अथ हैं—बल का प्रयोग, हिसा आदि।*
परन्तु प्रस्तुत प्रसग म और अपने बहु प्रचलित अथ म यह ऐसे आग्रह का सूचक
होता है जिसमे दृढ़ता प्राय अनुचित सीमा तक पहुँची हुई होती है। भाव
यह होता है कि हम जो कुछ कहते हैं वह अवश्य होना चाहिए। हम इसम न
तो किसी प्रकार दबेंगे और न पीछे हटेंगे। चाहे जो कुछ हो हमारी बात
अवश्य मानी जानी और पूरी होनी चाहिए। यह मुख्यत दृढ निश्चय के भाव
से युक्त है जसे—(क) मन हठ परा न मान सिखावा। (ख) हठ की हो
पिया सो करि के पछतानी। (ग) तिरिया तेल हमीर हठ चढ न दूजी
बार।

टेक स्त्री० [हिं० टिकना और टेकना] का भाव वाचक सज्ञा रूप है।
टिकना का मुख्य अथ है—किसी आधार या स्थान पर दृढतापूर्वक अड ठहर
या रुककर इस प्रकार स्थिर होना कि जल्दी आग बढना इधर उधर होना या

बार रईस साहब अपने दरबार म मसनद तकिया लगाये खूब शान स बठ गप्पें
लडा रहे थे, और जी हुजूर दरबारियो से खूब चुहलें हो रही थी। रईस
साहब का बहुत बडा पेचवान उनके पीछे रखा था जिसकी काली लम्बी सटक
उनके हाथ म थी और जिससे वे बीच बीच मे तम्बाकू के एक दो कश लते
चलते थे। कही उ हें कमबख्ती ने जो आ घेरा तो कह बठ—अब्दुल मियाँ,
आज हम पर भी कोई फबती हो। अब्दुल मियाँ ने बहुत अदब से सिर झुका
कर कहा—हुजूर, गुस्ताखी माफ हो हू बहू यही मालूम होता है कि लगूर
अपनी दुम चाट रहा है। दरबार म जोरो का ठहाका लगा और उसी दिन
से रईस साहब ने अपने ऊपर फबती न कमवाने की कसम सी खा ली। शहर
भर म जो लगूर मशहूर हो गये वह अलग।

* इसी आधार पर हठात् का पहला अथ होता है—जबरदस्ती या बल
पूवक। आग चलकर इसका दूसरा अथ अचानक या सहसा और
तीसरा अथ हठपूवक अर्थात् बहुत अधिक आग्रह तथा दृढ़तापूर्वक भी
होता है।

हटना सहसा सम्भव न हो। यह भी है तो हठ का एक प्रकार या रूप ही; पर टेक बहुधा किसी अच्छी अथवा एक ही बात के लिए होती है; हठ की तरह प्रकृति या स्वभाव के अग के रूप मे नही होती; जैसे—(क) अबकी टेक हमारी, लाज रखो गिरिधारी। और (ख) माँगिवो भरो न बाप सों, जो सत-गुरु राखे टेक। इन उदाहरणो में किसी एक ही और अच्छी बात के लिए दृढतापूर्ण आग्रह है।

'जिद' स्त्री० [अ० जिद्] के वि० रूप मे अर्थ होते हैं—उल्टा, विपरीत, विरुद्ध आदि। संज्ञा रूप मे इसका एक और अर्थ होता है—मन मे होनेवाला दुर्भाव या द्वेष। परन्तु प्रस्तुत प्रसग मे और अपने बहु-प्रचलित अर्थ में यह हठ का पर्याय ही माना जाता है। दोनो मे प्रयोग की दृष्टि से कुछ सूक्ष्म अन्तर है। जिद मे कुछ अनौचित्य की भी रगत होती है और यह बहुधा दूषित और विकृत प्रवृत्ति या रुचि के भाव से युक्त होती है; जैसे—(क) अब यह लड़का बात-बात मे जिद करने लगा है। और (ख) तुम्हारी यह जिद लोगों को अच्छी नही मालूम होती। इसके सिवा जिद मे न तो विशेष तर्क-संगति ही होती है और न समझदारी ही। हमारे यहाँ कहा गया है—जो हठ राखै धरम की, ताहि रखै करतार। यहाँ हठ के स्थान पर जिद का प्रयोग नही हो सकता। इस कोटि के और शब्दो के लिए दे०—'अनुरोध और आग्रह'। × ×

हड़कप—पु० [हिं० होड़+काँपना] दे० 'हलचल, खलबली, सनसनी और हडकप'।

हत्या	हनन	मारण
1. Killing, 2 Murder	1. Slaying, 2. Massacre	Killing

वध	और	संहार
1. Slaying, 2. Slaughter, 3. Butchery		1. Destruction, 2. Carnage, 3. Massacre

इस वर्ग के शब्द ऐसी क्रियाओ के वाचक हैं जिनके फल-स्वरूप प्राणियो अथवा मनुष्यो के जीवन का अन्त हो जाता और उन्हे मृत्यु के मुँह मे जाना या पहुँचना पडता है।

'हत्या' स्त्री० [स० हन्] धातु से व्युत्पन्न है जिसका मुख्य अर्थ है—आघात या प्रहार करना अर्थात् चोट पहुँचाना या मारना। परन्तु हत्या

मुख्यत ऐसे आघात या प्रहार की सूचक है जिससे किसी के प्राण निकल जाएँ और वह मर जाए। हमारे यहाँ हत्या के दो मुख्य प्रकार माने गए हैं—एक तो वह जो हमारे अनजान मे और हमारे किसी काय या व्यवहार से इस रूप म हो जाती है कि या तो वह हमे दिखाई ही नही देती या हम उसका पता ही नही चलने पाता। हमारे यहा शास्त्रो मे अनेक ऐसी जीव हत्याओ के उल्लेख हैं जो लोगो से अनजान म भी हो जाती हैं। हमारे चलने फिरने से जमीन पर दबकर जो छोटे मोटे जीव मर जाते हैं या आग सुलगाने पर लकडियो के अदर रहनेवाले जो कीडे मकोडे मर जाते हैं उनकी गणना भी जीव-हत्या म होती है। अचानक और केवल सयोगवश हाथ से बच्चे के गिर जाने पर उसकी जो मृत्यु हो जाती है वह भी बाल हत्या कहलाती है। हत्या का दूसरा प्रकार वह है जो इच्छापूर्वक और जान बूझकर किया जाता है, और जिसमे अस्त्र शस्त्र चलाकर, विष पान आदि कराकर अथवा शारीरिक बल का प्रयोग करके किसी के प्राण लिए जाते हैं कुछ अवस्थाओ मे ऐसी हत्या कायरतापूर्ण भी होती है, क्योकि हत्याकारी प्राय गुप्त रूप से या लुक छिपकर हत्या करते और फिर कही दूर निकल या भाग जाते हैं। ऐसी हत्या को खून (फा०) भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त विधिक तथा सामाजिक क्षेत्रो मे और भी कई प्रकार की हत्याएँ प्रसिद्ध हैं जसे—

(१) जन हत्या (Genocide) अर्थात् किसी जाति या देश के सभी लोगो की वह हत्या जो उनका अत या समाप्ति करने के लिए की जाती है।

(२) नर हत्या (Homicide) अर्थात् किसी पुरुष या स्त्री की हत्या।

(३) पितृ हत्या (Patricide) अर्थात् पिता की हत्या।

(४) भ्रातृ हत्या (Fratricid) अर्थात् अपने भाई या भाइयो की हत्या।

(५) मातृ हत्या (Matricide) अर्थात् अपनी जननी या माता की हत्या।

(६) राज हत्या (Regicide) अर्थात् राजा की हत्या।

इसके सिवा कुछ लोग सासारिक कष्टो या झझटो से ऊबकर अथवा ससार से विरक्त होकर अस्त्र शस्त्र से अपने किसी मम स्थान पर भीषण आघात करके किसी बहुत ऊँचे स्थान से कूदकर जलाशय आदि म डूबकर अथवा विष पान करके अपने प्राण स्वय दे देते या अपनी हत्या आप ही कर डालते हैं। इसे

आत्म-हत्या (Suicide) कहते हैं। इसके सिवा कुछ लोग चमडे, मास, सीग आदि के लोभ से गौएँ, बैल, बकरियाँ आदि मार डालते हैं, उसकी गिनती भी हत्या मे ही होती है।

नैतिक और सामाजिक दृष्टियो से हत्या बहुत ही गर्हित और निंदनीय समझी जाती है। विधिक क्षेत्र मे इसकी गिनती दडनीय अपराधो मे होती है; और धार्मिक दृष्टि से हमारे धर्मशास्त्रों मे इसे पातक या ऐसा बहुत बड़ा पाप माना गया है जो हत्यारे को नरक मे गिराता या डालता है। धर्म-शास्त्रो मे इसके फल-भोग से छुटकारा पाने के लिए अनेक प्रकार के प्रायश्चितो का भी विधान है। कुछ स्थानो मे अध-विश्वासी और मूढ लोग हत्या-हरण देवताओ आदि की भी कल्पना कर लेते है; और यह मानते हैं कि उनके दर्शन, पूजन आदि से हत्या के पाप धुल जाते हैं। परन्तु अफ्रीका आदि देशो के कुछ भागों मे ऐसे असभ्य और आदिम जातियो के लोग भी है जो नर-हत्या को बहुत अच्छा और वीरतापूर्ण कार्य समझते हैं। युद्ध-क्षेत्र मे शत्रुओं की हत्या करना भी कुछ धर्मो मे बहुत ही पुण्य का और प्रशसनीय कार्य समझा जाता है।

कुछ अवस्थाओ में हत्या का प्रयोग लाक्षणिक रूप मे अमूर्त तत्वो अर्थात् बातो या विचारो के सम्बन्ध मे भी होता है; जैसे—आकांक्षाओ या आशाओं की हत्या; न्याय, सत्य या सिद्धात की हत्या। ऐसे अवसरों पर इसका अर्थ होता है—कोई स्वार्थ सिद्ध करने के लिए ऐसी बातो की बहुत ही बुरी तरह से उपेक्षा करना और उन्हे पैरों तले कुचलकर या रौदकर उनका अस्तित्व ही न रहने देना। कुछ अवसरो पर यह भी कहा जाता है—इस दुर्घटना ने उनके राजनीतिक (या साहित्यिक) जीवन की मानो हत्या ही कर डाली थी। आशय यही होता है कि इससे उनके राजनीतिक (या साहित्यिक) जीवन का बहुत ही बुरी तरह से और सदा के लिए अन्त हो गया, इसके बाद वे राजनीतिक या साहित्यिक क्षेत्र मे या तो कभी आए ही नही या आने के योग्य ही नही रह गए। कुछ अवस्थाओ मे इसके स्थान पर लोग 'हनन' का भी प्रयोग करते या कर सकते हैं; परन्तु ऐसा प्रयोग देखने मे बहुत कम आता है।

'हनन' पुं० [सं०] भी उसी हन् धातु से व्युत्पन्न है जिससे 'हत्या' शब्द बना है। परन्तु हत्या और हनन मे कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर हैं। पहली बात तो यह है कि हनन सदा इच्छापूर्वक, जान-बूझकर, और किसी के प्राण लेने के अभिप्राय से ही किया जाता है। इसके सिवा हनन का प्रयोग उसी दशा में होता है जब वह अस्त्र-शस्त्र आदि की सहायता से और बल-पूर्वक किया

जाता है। यह किसी एक व्यक्ति का भी हो सकता है और बहुत से लोगों या समूह का भी, यथा—वाणासुर की सेना को हनन लगे भगवान। हमारे यहाँ कुछ स्थानो म कहावत भी प्रचलित है—हनते के हनिए, दोष पाप नहीं गनिए।

'मारण' पु० [स०] का साधारण अर्थ है किसी को मार डालना अथवा किसी प्रकार उसके प्राण ले लेना। यह भी हनन की तरह सदा जान बूझकर और किसी विशिष्ट उद्देश्य से किया जाता है। हनन म प्रत्यक्ष रूप से बल प्रयोग करने का जो भाव है वह तो मारण म है ही पर इसके सिवा एक और भाव भी इसम है। हमारे यहाँ अनेक ऐसे तान्त्रिक उपचारो, मारण, मोहन उच्चाटन, वशीकरण आदि का विधान है जिनम प्रत्यक्ष रूप से उस व्यक्ति के साथ कोई बल प्रयोग नही किया जाता जिसपर ऐसे प्रयोग किए जाते हैं। मारण के तान्त्रिक प्रयोग लोग सदा अपने घर बठकर, गुप्त रूप से और चुपचाप पूजा पाठ और मन्त्र बल के द्वारा ही करते है। मारण का प्रयोग प्राय परम शत्रुओ के लिए और प्रतिशोध की भावना से किया जाता है। इसके सिवा हम गुप्त रूप से किसी को कुछ दिनों तक निरन्तर कोई मन्द विष देकर भी उसके प्राण ले सकते हैं। इसकी गिनती भी मारण म होती है।

वध' पु० [स०] के आरम्भिक अथ भी आघात या प्रहार करना मार डालना आदि हैं। पर तु प्रयोग की दृष्टि से इसम हत्या आदि की अपेक्षा कुछ विशिष्ट बातें है। वध कुछ तो आधिकारिक रूप से किया जाता है और कुछ बल या शौय के प्रदशन का भी सूचक होता है। प्राचीन काल म यायाधीशो या राजाओ की आज्ञा से बहुत बडे अपराधियों को वध का ही दण्ड दिया जाता था (हत्या मारण आदि का नही)। श्री कृष्ण न भी कस पूतना और शिशुपाल का वध ही किया था हत्या नही। युद्धक्षेत्र म बहुत बडे वीर और योद्धा शत्रुओ के साधारण सनिको आदि का वध ही करते थे। कुछ अवस्थाओ म इसम क्रूरता और निदयता की भावना भी सम्मिलित रहती है। कसाई या बूचड गौओ बकरियो आदि का वध ही करते हैं। हमारे यहाँ कौंच वध की कथा प्रसिद्ध ही है। क्योंकि बिना क्रूर या निदय हुए कोई नित्य ऐसा ही काय नही कर सकता। गो वध हमारे यहाँ बहुत बडा पाप समझा जाता है और आज कल भी कुछ लोग कानून या विधान बनवा कर इसे दण्डनीय अपराध का रूप देना चाहते हैं। कुछ लोग इस गो वध की जगह गो हत्या का भी प्रयोग करते हैं जो वस्तुत ठीक नही है। बहुत दिनो से हमारे यहाँ गो हत्या का प्रयोग ऐसे ही अवसरो पर होता आया है जिनमे किसी प्रकार की असावधानी या प्रमाद के कारण किसी के हाथों गौ के प्राण चले जाते हैं। हमारे यहाँ देहातो म जब किसी के द्वारा बिलकुल अनजान

मे ऐसी दुर्घटना हो जाती है तब कहा जाता है—इसे गो-हत्या लगी है जिसके लिए अमुक प्रायश्चित करना चाहिए। ऐसे अवसरो पर गो-हत्या की जगह गो-वध का प्रयोग न तो होता ही है न हो ही सकता है।

'वध' का प्रयोग मुख्यत: ऐसे प्रसगों मे होता है, जिनमे अस्त्र-शस्त्र आदि का उपयोग होता है और मारा जानेवाला व्यक्ति अथवा जीव निर्बल और निरीह होने के कारण अपनी रक्षा करने मे असमर्थ होता है।

'सहार' पुं० [सं०] का मूल अर्थ है—कई तरह की या बहुत सी चीजें एक साथ मिलाकर रखना; विशेषत: ठीक क्रम या ढग से अथवा सजा-सँवारकर रखना; जैसे—वेणी-सहार। इसके अतिरिक्त इसके और भी अनेक अर्थ हैं, जिनमे से एक अर्थ बहुत बडा या भीषण विनाश भी है; जैसे—शिव इस सृष्टि का संहार करनेवाले देवता माने गये हैं। इसी आधार पर प्रस्तुत प्रसंग मे सहार का अर्थ होता है—बहुत से लोगो का एक साथ होने-वाला विनाश। बहुत दिनो से इसका प्रयोग ऐसे वध या हत्या के सम्बन्ध में होता आया है, जिसमे बहुत-से लोग मारनेवाले भी हो और बहुत-से लोग मारे जानेवाले भी; जैसे—(क) कलिग युद्ध के बाद सम्राट् अशोक ने सहार का जो भीषण रूप देखा था उससे उनके मन में हिंसा के प्रति घोर ग्लानि उत्पन्न हुई थी। और (ख) 'रण-क्षेत्र में पृथ्वीराज के सैनिको ने शत्रु-सेना का सहार किया था।' सहार का प्रयोग मुख्यत. ऐसे ही प्रसगों मे होता है। जिनमे जगह-जगह सैकडो और हजारो घायलो और लाशो के ढेर लगे हुए दिखाई देते हो और जिनसे बहुत अधिक और भीषण जन-नाश का पता चलता हो। × ×

हथियार—पुं० [हिं० हाथ] दे० 'अस्त्र, आयुध और शस्त्र'।

हनन—पुं० [सं०] दे० 'हत्या, हनन, मारण, वध और सहार'।

हमदर्दी—स्त्री० [फा०] दे० 'सवेदना और सहानुभूति'।

हमला—पु० [अ० हम्ल:] दे० 'अभियान, आक्रमण, धावा, लाम और लामबन्दी'।

हमी और हमेव

इस वर्ग के शब्द हैं तो वस्तुत: अहंभाव या अहंमन्यता के ही वाचक फिर भी दोनो में कुछ सूक्ष्म अन्तर है। संस्कृत के उक्त दोनो शब्दो का प्रयोग

तो मुख्यत शिक्षित समाज और साहित्यिक क्षेत्र म होता है, परन्तु 'हमी' और 'हमेव' साधारण बोलचाल के और प्राय स्थानिक शब्द हैं।

हमी हिन्दी 'हम' का भाववाचक सज्ञा रूप है और इसका शब्दार्थ है। 'हम पन' पर तु इसका प्रयोग ऐसे अवसरो पर होता है जब कोई व्यक्ति अपने सम्ब ध मे यह समझना और सोचता है कि जो कुछ है वह हम ही हैं, अथवा हम ही सबसे बडे हैं।

'हमेव संस्कृत 'अहमेव (अह+एव) का ही हि दी रूप है। यह भी अर्थ की दृष्टि से बहुत कुछ वही है जो अहम यता है पर तु बोल चाल मे यह 'हमी' का पर्याय ही माना जाता है। अर्थ के विचार से यह अहम्मन्यता और घमड से कुछ हल्का पडता है अथवा हल्का समझ करके ही बोल चाल मे प्रयुक्त होता है।

इस वग के अन्याय शब्दो के लिए देखें—(१) 'अह अहकार अहन्ता अहभाव और अहम यता, और (२) 'अभिमान गव, घमड और शेखी।

हमेव—पु० [स०] अहमेव दे० हमी और हमेव।
हरजाना—पु० [फा०] पूर्ति अनुपूर्ति आपूर्ति और प्रतिपूर्ति।

× ×

हरण अपहरण आहरण परिहरण और परिहार

हरण	अपहरण	आहरण	परिहरण	परिहार
Taking away	1 Stealing, Robbry 2 Abduction	Kidnaping	Relieving	1 Refutation 2 Shunning

इस वग के शब्द किसी की कोई चीज या बात उससे अलग या दूर करने अथवा हटाने के वाचक हैं।

'हरण पु० [स०] का आरभिक और मूल अथ है—दूर करना या हटाना। इस अथ म कोई खास रगत नही है और यह किसी प्रकार के विशिष्ट उद्देश्य, भाव या विचार से युक्त नही है। इसका प्रयोग अच्छे कामो या बातो क प्रसग म भी हो सकता है और दूषित अथवा बुरे कामों और बातो के सम्बन्ध म भी। यही कारण है कि इसका प्रयोग अनेक अवसरो पर इस वग के कुछ और शब्दो के स्थान पर भी हो सकता है और प्राय

होता ही है। हम किसी का कष्ट, चिन्ता या दुःख का भी हरण कर सकते हैं; और किसी की धन-सम्पत्ति आदि का भी। आशय यह कि हरण अच्छे उद्देश्य से भी हो सकता है और बुरे उद्देश्य से भी। ईश्वर या देवी-देवताओं के विशेषण विपत्ति-हरण, सकट-हरण आदि प्रसिद्ध ही हैं। इसी प्रकार के दुष्ट उद्देश्य अथवा स्वार्थ सिद्ध करने के प्रसगो मे भी इसके अनेक प्रयोग प्रसिद्ध हैं; जैसे—चीर-हरण, रुक्मिणी-हरण, सीता-हरण आदि। कुछ अवस्थाओ में लाक्षणिक रूप मे भी इसका प्रयोग होता है; जैसे—मद-हरण, मन-हरण आदि। कभी-कभी कुछ साधारण कवि और लेखक किसी प्रसिद्ध और बडे कवि या लेखक के सुन्दर भाव चुराकर उन्हे अपनी कृति के रूप मे उपस्थित करते और उसका श्रेय स्वयं लेने का प्रयत्न करते है। ऐसे कामो या बातों की गिनती भी 'हरण' के अन्तर्गत ही होती है। साहित्यिक क्षेत्र मे ऐसी साहित्यिक चोरी को 'भाव-हरण' (Plagrarism) कहते हैं; जैसे—इनकी कविताओ में आपको कालिदास के भाव-हरण के अनेक उदाहरण मिलेंगे। हिन्दी मे इससे हरना क्रिया बनती है।

यथा— मिलत एक दारुन दुख देहीं।
बिछुरत एक प्रान हर लेही। —तुलसी।

'अपहरण' पु० [सं०] हरण के पहले 'अप' उपसर्ग लगने से बना है; जिसका अर्थ है—दूषित, निन्दनीय या बुरा। किसी दूषित, निन्दनीय अथवा गर्हित उद्देश्य से किया जानेवाला हरण ही अपहरण है। इसमे किसी की आँख बचाकर या चोरी से कुछ करने का भाव भी सम्मिलित है; क्योंकि दूषित और निन्दनीय कार्य प्राय. इसी रूप मे होते हैं। इसमे चुराना, छीनना, डाका डालना, लूटना आदि के भाव भी सम्मिलित हैं; यथा—

जो ज्ञानिन कर चित अपहरई।
बरियाई विमोह वस करई। —तुलसी

परन्तु आज-कल विधिक क्षेत्र मे इसका प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ मे होने लगा है। कभी-कभी कुछ लोग छोटे बच्चो को धोखा देकर या बहकाकर कही इधर-उधर ले जाते हैं और उन्हे या तो बेच देते हैं या उनसे भीख आदि मँगवाते हैं। इसके सिवा लड़कियो को या तो दुराचार करने मे प्रवृत्त करने हैं अथवा अपने साथ या किसी और के साथ उसका विवाह कर देते हैं। ऐसे कार्यो का उद्देश्य धन कमाना भी हो सकता है और दूषित स्वार्थ सिद्ध करना भी। इसी प्रकार का हरण विधिक क्षेत्र मे अपहरण कहलाता है।

'आहरण' पु० [सं०] भी है तो बहुत कुछ वही, जो अपहरण है, फिर भी दोनों में कुछ सूक्ष्म अन्तर है। आहरण का आरम्भिक अर्थ है—किसी को पकड़ रखना या पकड़ लेना। इसी लिए यह छल या धोखे के भाव से तो रहित है, और इसमें डराने, धमकाने और बल या हिंसा के प्रयोग का भाव प्रधान है। अपहरण तो उस व्यक्ति की अनिच्छा से भी और सहमति से भी हो सकता है जिसे भगाया या ले जाया जाता है पर आहरण बहुधा उस व्यक्ति की अनिच्छा और असहमति से ही होता है। प्राय लोग लड़कों, बच्चों या वयस्क व्यक्तियों को जबरदस्ती पकड़कर ले जाते और कहीं छिपाकर रख छोड़ते हैं और तब उनके अभिभावकों, सम्बन्धियों, सरकारों आदि से कुछ रुपए वसूल करके अथवा अपनी कोई शर्त पूरी करा के तब उन्हें छोड़ते हैं। इसी प्रकार का हरण विधिक क्षेत्र में आहरण होता है। इसे हम ओल (Hostage) का एक प्रकार भी कह सकते हैं।० यह ओल सं० आढ [=पास लाया हुआ] से व्युत्पन्न जान पड़ता है। परन्तु ओल और अपहरण में एक सूक्ष्म अन्तर है। अपहरण का प्रयोग तो तब होता है जब कुछ बलवान् लोग किसी व्यक्ति को उठा या पकड़कर ले जाते हैं। परन्तु ओल में इससे भिन्न एक और स्थिति भी होती है। मध्य युग में जब शत्रु विजयी होकर कोई बहुत बड़ी रकम माँगता या ऐसी ही और कोई शर्त सामने रखता था जिसका पालन विजित पक्ष तत्काल नहीं कर सकता था, तब वह अपने किसी सगे सम्बन्धी या बड़े अधिकारी को स्वयं विवश होकर विजेता के सुपुर्द कर देता था और कहता था जब अपनी माँग या शर्त पूरी कर दी जाएगी तब हम ओल में रखे हुए आदमी को छुड़ा लेंगे। ओल के इस पक्ष की गिनती आहरण में नहीं हो सकती क्योंकि ऐसा काम स्वयं अपनी इच्छा से और विवश होकर किया जाता था।

'परिहरण' पु० [सं०] का मूल अर्थ है—कोई चीज लेकर या यों ही इधर उधर अथवा चारों ओर घूमना। परन्तु इसका यह अर्थ तो प्राय छूट सा गया है, और इसके स्थान पर एक ऐसा नया अर्थ लग गया है जिसमें किसी को कष्ट, चिंता आदि से मुक्त करने अथवा उसके मन पर से किसी प्रकार का भार कम करने या हटाने का भाव मुख्य ही है जैसे—

---

० साधारणत Abduction और Kidnaping दोनों के लिए हिंदी में प्राय अपहरण का प्रयोग होता आया है। परन्तु इन दोनों के अर्थों के सूक्ष्म भेद का ध्यान रखते हुए मैंने Abduction के लिए अपहरण और Kidnaping के लिए आहरण रखना ही उचित समझा है। ऐसा करने का मुख्य

किसी का कष्ट, रोग या सकट परिहरना; अर्थात् ऐसी बातो से उसे छुड़ाना या मुक्त करना । इसके सिवा इस शब्द का प्रयोग हमारे यहाँ कोई चीज या बात छोड़ने अथवा उसका परित्याग करने के अर्थ मे भी होता आया है । यथा—

परिहरि सोच रहो तुम सोई।
बिनु औषधिहि व्याधि विधि खोई ॥

—तुलसी ।

'परिहार' पुं० [सं०] को हम परिहरण का एक दूसरा रूप ही कह सकते हैं; परन्तु इसका अर्थ और आशय परिहरण के अर्थ और आशय से बहुत दूर जा पड़े हैं । परिहार मे पहला मुख्य आशय है—ध्यानपूर्वक और निरन्तर किसी बात से दूर रहना या बचना अथवा किसी को दूर रखना या बचाना । इसी से मिलता-जुलता एक और भाव भी इसमे सम्मिलित है और वह है—खडन, विरोध, सुधार आदि के द्वारा किसी त्रुटि, दोष या विकार का अन्त अथवा निराकरण करना; जैसे—किसी कु-प्रभाव का परिहार, पाप का परिहार आदि । इसी से मिलता-जुलता एक और आशय या भाव भी इसमे आ लगा है । तर्क आदि के द्वारा किसी के मत या विचार का खंडन करते हुए उसे भ्रामक या स-दोष सिद्ध करना भी परिहार कहलाता है; जैसे—उनकी सार-गर्भित आलोचना ने बहुतेरे इतिहासकारो (या वैज्ञानिको) की भूलो का परिहार कर दिया है ।

× ×

हलचल — Commotion; खलबली — Turmoil; सनसनी — 1. Sensation 2. Consternation

और हड़कम्प (तहलका) — Panic

इस वर्ग के शब्द जन-समूह की ऐसी स्थितियो के वाचक हैं जिनमे या तो किसी भावी कार्य या घटना के विचार से किसी प्रकार का आदोलन आरम्भ होता और गतिविधियाँ बढ़ जाती है अथवा किसी भय या सकट की आशका से मन बहुत ही चिंतित, विकल हो जाता है ।

कारण 'अप' और 'आ' उपसर्गो की विवक्षाओ का मूल भाव ही है । ऊपर अपहरण और आहरण की जो व्याख्या की गई है उसी से मेरे आधार की पुष्टि हो जाती है ।

'हलचल' स्त्री० [हिं० हिलना+चलना] जन समूह की वह स्थिति है जिसमें किसी आपातिक, आवश्यक अथवा आसन्न कार्य या घटना के सम्बन्ध में लोग असाधारण रूप से और बहुत कुछ तत्परतापूर्वक इधर उधर आने जाने लगते अथवा कार्य में आवश्यकता से अधिक व्यस्त दिखाई देते हैं। अपने आरम्भिक अर्थ में यह ऐसी चहल पहल की सूचक है जिसके साथ कोई विशिष्ट उद्देश्य या लक्ष्य भी लगा हो जैसे—जब बरात दरवाजे के पास आ पहुँचती है अथवा किसी सम्मेलन का आरंभ होने से पहले विशिष्ट अतिथियों के आने का समय होता है तब घरवालों अथवा प्रबन्धकों में हलचल मच जाती है। अपने परवर्ती और विस्तृत अर्थ में कभी कभी इसका प्रयोग किसी साधारण आपत्ति, भय या संकट सामने दिखाई देने पर भी होनेवाली आवा-जाही या गति विधि बहुत बढ़ जाने के अवसरों पर भी होता है, जैसे—गाँव के आस पास बाघ दिखाई देने पर लोगों में हलचल मच जाती है।

खलबली' स्त्री० [अनुकरणवाची] को हम हलचल का कुछ आगे बढ़ा हुआ रूप कह सकते हैं। अंतर इतना ही है कि हलचल में कार्य व्यस्त होने का भाव प्रधान है और खलबली में मानसिक क्षोभ या चिंता का भाव विशेष रूप से युक्त है। इसमें मुख्य भाव अस्त व्यस्त होने का है। खलबली प्रायः किसी प्रकार का छोटा मोटा आतंक फलतः या भय की स्थिति उत्पन्न होने पर ही मचती है। नदी में कहीं से मगर आ जाने पर मछलियों में जंगल में कहीं से शेर आ जाने पर गौओं बकरियों और भैंसों में, गुण्डों या साँडों के लड़ने पर गली या मुहल्ले के लोगों में तथा घर में साँप दिखाई पड़ने पर घर के लोगों में खलबली मच जाती है और वे डरकर इधर उधर भागने दौड़ने लगते हैं। आशय यही होता है कि हमारी व्यवस्था तथा शांति में विचलित करनेवाली कोई बात आकर विघ्न डालती है और हम अपनी रक्षा का प्रयत्न करने लगते हैं। कभी कभी खलबली का प्रयोग मन की उत्सुकतापूर्ण विकलता सूचित करने के लिए भी होता है, जैसे—इसका रहस्य जानने के लिए हमारे मन में खलबली हो रही है।'

'सनसनी' स्त्री० [अनु०] मूलतः हमारी वह शारीरिक स्थिति है जिसमें आश्चर्य, भय आदि के कारण हम ऐसा जान पड़ता है कि हमारे संवेदन सूत्रों में रक्त का संचार कुछ तीव्रतापूर्वक और सन-सन करता हुआ होने लगा है। पर तु अपने परवर्ती और बहु प्रचलित अर्थ में इससे हमारी वह उत्तेजित मानसिक स्थिति सूचित होती है जो किसी आकस्मिक और अद्भुत हो विलक्षण घटना [illegible] उत्पन्न होती और हमारे मनोवेगों को क्षुब्ध करती है। ऐसी घटना दूर की भी हो सकती है और पास की भी, मन ही प्रत्यक्ष रूप से

हमारा उससे कोई विशेष सम्बन्ध न हो; जैसे—किसी बहुत बड़े राजनीतिक नेता की हत्या के कारण आस-पास के प्रदेशों मे और कभी-कभी दूरस्थ देशों मे भी सनसनी फैल जाती है। कभी-कभी बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ अथवा व्यापारी भी अपना कोई गूढ उद्देश्य सिद्ध करने के लिए कोई ऐसा विलक्षण कार्य कर डालते हैं, जिससे दूर-दूर तक के देशों मे सनसनी फैल जाती है। उदाहरणार्थ, जब दूसरे महायुद्ध की समाप्ति से कुछ पहले अमेरिका ने जापान के दो नगरों पर अणु बम गिराए थे अथवा इधर हाल मे (सन् १९३८) योरप के सराफे मे सोने की खरीद-बिक्री असाधारण रूप से वढ गई थी तब सारे संसार मे सन-सनी फैल गई थी।

'हड़कंप' पुं० [हिं० हाड़=हड्डी+कंप, हिं० काँपना] का शब्दार्थ है ऐसी स्थिति जिसमे आदमी की कौन कहे, उसकी हड्डियाँ तक काँपने लगें। परन्तु व्यावहारिक रूप मे यह ऐसी भयावह और भीषण स्थिति का सूचक है जो मनुष्य की मानसिक और शारीरिक शक्तियो को निष्क्रिय और स्तब्ध कर देती है। इसे हम 'खलबली' और 'सनसनी' का बहुत ही आगे बढ़ा हुआ उग्र या तीव्र रूप कह सकते हैं। हड़कंप मे भय और विचलता का भाव मानों पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है। यदि अचानक नगर मे बहुत बड़ा दंगा हो जाय, जगह-जगह छुरेबाजी होने लगे दुकानें और मकान जलाए जाएँ और लूटे जाएँ और उपद्रवियो को तितर-बितर करने के लिए गोलियाँ चलाई जाएँ या सैनिकों का पहरा हो जाय तो सारे नगर मे हड़कंप मच जायगा।

'तहलका' पुं० [अ० तहल्कः=मृत्यु, हत्या] भी है तो बहुत कुछ वही जो 'हड़कंप' है फिर भी प्रयोग के विचार से मुझे इन दोनो मे कुछ सूक्ष्म अन्तर दिखाई देता है। एक तो यह हड़कप से कुछ हल्का प्रतीत होता है और दूसरे इसमे सनसनी कुछ अधिक होती है। यदि घर मे किसी कमाऊ या होन-हार नव-युवक की अचानक मृत्यु हो जाए तो सारे घर और मुहल्ले मे तहलका मच जाता है और यदि किसी बड़े आदमी की हत्या के अभियोग में मुहल्ले या शहर के बहुत से लोग पकड़े जाने लगे या गाँव में कही से शेर आ जाए तो सब लोगो मे तहलका मच जाता है। इसमे लोगो पर आतंक भी छा जाता है और उनमे इसकी चर्चा भी कुछ दिनो तक बराबर होती रहती है। × ×

हलफ—पुं० [अ०] दे० 'संकल्प, निश्चय, प्रतिज्ञा और शपथ'।

हस्तलेख—पुं० [सं०] दे० 'पाडुलेख और हस्तलेख'।

हाथ

यों तो बहुत से शब्दों के साथ थोड़े बहुत मुहावरे होते ही हैं, पर सबसे अधिक मुहावरे शरीर के मुख्य अंगों से सम्बद्ध हैं। 'आँख' के साथ जितने मुहावरे लगे हैं, उतने शायद और किसी अंग के वाचक शब्द के साथ न होंगे। कारण भी स्पष्ट है। ज्ञानेन्द्रियों में आँखें और कर्मेन्द्रियों में हाथ ही प्रधान या मुख्य हैं। संसार के सब काम आँखों के सहारे चलते और होते हैं। इसी से कहते हैं—बाबा आँखें बड़ी न्यामत हैं। दूसरा स्थान कदाचित् 'हाथ' के मुहावरों का है और यह भी इसी लिए कि 'आँख' के बाद सबसे अधिक काम का अंग हाथ ही है। पेट, पैर, मुँह, सिर आदि का स्थान इनके बाद आता है।

हिंदी शब्द-सागर' के सम्पादन के समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि शब्दों के अर्थ तो स्पष्टता के लिए अलग अलग रहें ही मुहावरों का भी अर्थों के अनुसार ही वर्गीकरण हो—किसी शब्द का जो मुहावरा जिस अर्थ के साथ सम्बद्ध हो वह उसी अर्थ के अन्तर्गत दिया जाय। ठीक ठीक और स्पष्ट रूप से अर्थ का ज्ञान या बोध कराने का यही वैज्ञानिक ढंग है। परन्तु उस समय कई कारणों से कुछ शब्दों में इस नियम का ठीक तरह से निर्वाह नहीं हो सका था। इस बात की ओर मेरा ध्यान उस समय विशेष रूप से गया जब मैं प्रामाणिक हिंदी कोश के लिए फिर से शब्द दोहराने लगा था। उस समय मैंने देखा कि 'पाँव' में ही सब मुहावरे आ गए हैं और 'पर' में केवल एक मुहावरा है। बाकी मुहावरों के लिए उसमें 'पाँव' शब्द की ओर संकेत कर दिया गया था। मैंने विचार करके देखा तो पता चला कि कुछ मुहावरे केवल 'पाँव' से सम्बद्ध हैं, कुछ केवल 'पर' से और कुछ ऐसे भी हैं जो दोनों के साथ चलते हैं। इसलिए मैंने इस प्रकार के थोड़े से मुहावरों का कुछ वर्गीकरण किया था और इस बात की ओर प्रामाणिक हिंदी कोश की भूमिका में लोगों का ध्यान भी आकृष्ट किया था। इधर हाल में मेरा ध्यान हाथ शब्द की ओर गया और मुझे उसमें अर्थों के विचार से भी और मुहावरों के विचार से भी कई प्रकार की अपूर्णताएँ और त्रुटियाँ दिखाई दीं। मुझे यह भी ध्यान आया कि इस प्रकार की अपूर्णताएँ और त्रुटियाँ इसी लिए रह गयी कि यह विषय बहुत जटिल था और इसके निराकरण के लिए बहुत कुछ परिश्रम, विचारशीलता तथा समय की आवश्यकता थी। इसके सिवा उस समय के लिए उतना ही यथेष्ट समझा गया था जितना हुआ था या जितना हो सकता था। पर हिंदी के वर्तमान गौरव और मर्यादा के विचार से

ऐसी त्रुटियाँ दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। यही सोचकर मैंने केवल 'हाथ' शब्द के विवेचन में पूरा एक सप्ताह लगाया और अन्त मे उसे एक नया रूप दिया। मैं यह तो नही कह सकता कि मेरा यह विवेचन सर्वथैव त्रुटि-रहित और पूर्ण है, पर पहले से बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ अवश्य है। वह सारा विवेचन यहाँ दिया नही जा सकता पर इस सम्बन्ध मे मुझे जो कई मनोरञ्जक और महत्त्व की बातें मिली उनकी कुछ चर्चा भाषा-प्रेमियों और शब्द-ब्रह्म के उपासको के लिए कई दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

पहले अर्थों की बात लीजिए। शब्द-सागर मे 'हाथ' के कुल पाँच अर्थ हैं और हिंदी के सभी कोशो मे इसी परम्परा का अनुकरण और पालन हुआ है। पर मेरे विवेचन में यह सख्या पन्द्रह तक जा पहुँची है। कुछ तो यह अर्थ-विस्तार मुहावरो के विचार से हुआ है और कुछ लोक मे प्रचलित प्रयोगों के विचार से। वर को कन्या का हाथ पकड़ाना या बल-बच्चो का हाथ अपने भाई या मित्र को पकड़ाना आदि अनेक ऐसे मुहावरे हैं जिनके विचार से 'हाथ' शब्द मे कुछ नए अर्थ जोडे जाने चाहिएँ। इसके सिवा हम कहते हैं—(क) ज्योतिषी ने हाथ देखकर बहुत-सी विलक्षण बातें बतलायी। (ख) वैद्य जी ने हाथ देखकर वास्तविक रोग बतला दिया। इन दोनो प्रसंगो मे 'हाथ' के दो अलग-अलग अर्थ हैं। फिर स्टेशन पर हम सिकन्दरे का भी हाथ देखते हैं और चौरस्ते पर मार्ग या दिशा का सूचक अकित हाथ भी। फिर हाथ के कुछ मुहावरे केवल कलाई के आगेवाले भाग (हथेली और उँगलियो से सम्बद्ध हैं) और कुछ कन्धे से उँगलियो तक समूचे अग से। और इस दृष्टि से भी 'हाथ' का एक नया अर्थ निकल आता है। 'हाथ' के ये सभी अर्थ ऐसे हैं जिनका समावेश हमारे कोशो मे विस्तृत, स्पष्ट तथा स्वतन्त्र रूप से होना

'हिंदी शब्द-सागर' मे और फलतः अधिकतर दूसरे कोशो मे भी 'हाथ' के पहले अर्थ के बाद ही सब मुहावरे एक साथ आए हैं। परन्तु कोशो मे अर्थों का जिस प्रकार का वर्ग-विभाग होता है उसी प्रकार का मुहावरो का भी वर्ग-विभाग होना चाहिए। साधारण अवस्था मे इस प्रकार का वर्ग-विभाग करना उतना कठिन नही होता। परन्तु आँख, मुँह, हाथ सरीखे शब्दो मे मुहावरो का ऐसा वर्ग-विभाग दो कारणो से बहुत ही कठिन होता है। पहली बात तो यह है कि इन शब्दो से सम्बद्ध सैकड़ो मुहावरो को अलग-अलग छाँटकर यह निश्चित करना बहुत कठिन होता है कि कौन-सा मुहावरा किस अर्थ के अन्तर्गत या साथ रखा जाय। दूसरे, कुछ मुहावरे ऐसे भी होते हैं, जिनके

अलग-अलग प्रसङ्गों में और अलग अलग अर्थों के विचार से अलग-अलग आशय होते हैं, और इसी लिए ऐसे मुहावरों का वर्ग विभाग करना कोशकार के लिए बहुत ही कठिन होता है। वस्तुत इसी प्रकार की कई बड़ी-बड़ी कठिनाइयों ने 'शब्द सागर' के सम्पादकों को ऐसे शब्दों के अर्थ निरूपण और मुहावरों के वर्गीकरण के सम्बन्ध मे बहुत कुछ विवश कर दिया था जिनके साथ दर्जनों अर्थ और सैकड़ों मुहावरे लगे थे। उस समय यह भी सोचा गया था कि एक साथ सब मुहावरे एक ही जगह दे देने से जिज्ञासुओं को उन्हें ढूँढ़ने मे सुभीता होगा। पर जिज्ञासुओं का सुभीता ही तो सब कुछ नहीं है। शब्दों के विवेचन का ढंग भी वैज्ञानिक होना चाहिए और इस विवेचन में कला की भी पूर्णता होनी चाहिए। फिर जिज्ञासुओं का बौद्धिक तथा साहित्यिक स्तर ऊँचा करना और उन्हें शब्दों के सूक्ष्म अर्थ भेद, आशय भेद, प्रयोग भेद आदि बतलाना भी तो अच्छे कोशकार का ही मुख्य कर्तव्य होता है। अच्छे कोशकारों के सामने अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ और जटिलताएँ आती ही रहती हैं। कौशल, मौलिकता और विचारशीलता तो उन्हें दूर करके रास्ता साफ करने मे ही दिखाई पड़ती है। इसलिए हमारे भावी कोशकारों को ऐसी कठिनाइयों से घबराना नहीं चाहिए और जो कुछ हो चुका हो उससे भी आगे बढ़कर नया रास्ता निकालने के लिए तैयार रहना चाहिए।

अब पहले कुछ उदाहरण लीजिए। 'हाथ के सम्बन्ध का एक बहुत प्रसिद्ध मुहावरा है— हाथ उठाना। हम किसी को नमस्कार या सलाम करने के लिए भी हाथ उठाते हैं और किसी को मारने के लिए भी हाथ उठाया जाता है और कोसने के लिए भी। 'हाथ दिखाना' का उल्लेख ऊपर ज्योतिषी और वैद्य के प्रसंग में हो ही चुका है। एक और प्रसंग है जिसमें हाथ दिखाना का कुछ विलक्षण प्रयोग होता है। हम कहते हैं—'उस लड़ाई में उन्होंने खूब हाथ दिखलाये' और यह भी कहते हैं—'उसने तलवार (या पटा बनेठी) के खूब हाथ दिखलाये। यहाँ हाथ का अर्थ है—अभ्यास, कौशल दक्षता आदि के विचार से हाथों द्वारा होनेवाला कोई अनोखा या बड़ा काम। ऐसा ही एक और मुहावरा है—हाथ मारना। अलग-अलग प्रसगों मे इसके भी कई अर्थ होते हैं। किसी से प्रतिज्ञा करने या वचनबद्ध होने के समय (हाथ पर) हाथ मारा जाता है। दुकान पर रखी हुई किसी चीज पर उचक्का हाथ मारता है। आज-कल और भी न जाने कितने प्रकार के लोग कहाँ कहाँ हाथ मारकर माला माल होते हैं। कहा सुनी या तकरार होने पर आगे बढ़कर विपक्षी को भी दो चार हाथ मारे जाते हैं। साधारण जिज्ञासुओं के सुभीते के विचार से ऐसे मुहावरों के सब अर्थ एक साथ दे देना भले ही ठीक मान लिया जाय पर अर्थ विचार के उच्चतर सिद्धान्तों तथा कोश-कला की

दृष्टि से ऐसा विवेचन कभी तर्क-संगत, वैज्ञानिक और व्यवस्थित नही माना जा सकता। यही कारण है कि आज-कल उन्नत तथा सम्पन्न भाषाओं के ऊँचे दरजे के शब्द कोशों मे पहली परिपाटी का त्याग और दूसरी परिपाटी का आदर देखने मे आता है। और मेरी तुच्छ बुद्धि में हिन्दी के अच्छे कोशों मे भी यही परिपाटी अपनायी जानी चाहिए।

'हाथ' के अर्थों का विवेचन करते हुए ऊपर कहा जा चुका है कि हाथ के कुछ मुहावरे हथेली और उँगलियोवाले अंश से संबद्ध हैं और कुछ मुहावरे सारी बाँह अर्थात् कन्धे से उँगलियो तक के समूचे अंग से। उनमे से पहले वर्ग के मुहावरे ही बहुत अधिक हैं और दूसरे वर्ग के अपेक्षाकृत कम हैं। पहले वर्ग के मुहावरो के भी कई भेद, उप-भेद अथवा उपसर्ग हैं। बहुत से मुहावरे बहुत साधारण कार्य या व्यापार के सूचक हैं; जैसे—हाथ जोड़ना, हाथ मलना, हाथ मिलाना, (किसी के मुँह पर) हाथ रखना, हाथ-पर हाथ रखकर बैठना, (किसी को) हाथों हाथ लेना आदि। इसके बाद कुछ ऐसे मुहावरे आते हैं जो कर्ता की विशिष्ट क्रियाशीलता या कर्तृत्व के सूचक होते हैं; जैसे—(कसी काम में) हाथ डालना, हाथ धोकर (किसी व्यक्ति के) पीछे पड़ना, (किसी का) हाथ पकड़ना, हाथ पैर मारना, हाथ पैर हिलाना, हाथ बटाना, (किसी काम मे दूसरे का) हाथ रोकना, (कोई काम करने मे दूसरे का) हाथ रोकना, (किसी को बहुत कुछ दे चुकने पर अपना) हाथ रोकना आदि। एक तीसरा विभाग मनुष्य की आर्थिक स्थिति, प्राप्ति, हानि, लाभ आदि से सम्बद्ध है; जैसे—हाथ खाली होना, हाथ गरम होना, हाथ तंग होना, हाथ दबना, हाथ दबाकर खर्च करना, (किसी के आगे) हाथ फैलाना या पसारना, हाथ रँगना, हाथ लगाना, आदि। एक और चौथा विभाग भी है जो अधिकार, प्रभाव, स्वत्व आदि से संबद्ध है; जैसे—(लिखा-पढी आदि के सम्बन्ध मे) हाथ कटना, (किसी के नीचे) हाथ दबना, (किसी चीज से) हाथ धोना, (किसी का) हाथ पकड़ना (आश्रय या रक्षा मे लेने के विचार से), (किसी के) हाथ पड़ना (नाहिं त परिहौ जम के हाथ।—कबीर), (किसी के) हाथ बिकना (एक धनी के हाथ बिकानी।—मीरा), हाथ से बे-हाथ होना आदि।

और मेरी समझ में हाथ के मुहावरो का ऐसा वर्गीकरण ही अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। मानक हिन्दी कोश मे मैंने यथासाध्य इसी प्रकार का वर्गीकरण किया है।

इस प्रकार यदि अन्य शब्दो के सम्बन्ध मे अर्थ और मुहावरो की दृष्टि से विचार किया जाय तो उनका क्षेत्र बहुत ही विस्तृत हो सकता है और अनेक उपयोगी मूल तथ्य सामने आ सकते हैं। × ×

हाल—पु० [अ०] दे० 'अवस्था, दशा और स्थिति'।
हालत—स्त्री० [अ०] दे० 'अवस्था दशा और स्थिति'।
हिचक—स्त्री० [स०] दे० 'असमजस, उभय-सकट दुविधा और हिचक।
हिफाजत—स्त्री० [अ०]=रक्षा दे० रक्षा, परिरक्षा प्रतिरक्षा, सरक्षा और सुरक्षा।
हीला—पु० [अ० हीलऽ] दे० 'व्याज मिस बहाना और हीला'।
हीला हवाला—पु० दे० व्याज, मिस, बहाना और हीला'।
हुक्म—पु० [अ०] दे० 'आज्ञा, आदेश निदेश और निर्देश'।
हेतु—पु० [स०] दे० 'कारण और हेतु'।
हैरत—स्त्री० [अ०]=विस्मय, दे० 'आश्चर्य अचभा, विस्मय और कुतूहल।

• • •

परिशिष्ट (क)

[बाद मे बढाए हुए प्रति-अभिदेशक शब्द कृपया यथास्थान लगा लें।]

● ●

परिशिष्ट (ख)

[छापे की कुछ भद्दी भूले; कृपया इन्हे भी सुधार कर पढ़ें]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	२३	आध्यादेश	अध्यादेश
१४६	२०	प्रायोपवेषन	प्रायोपवेशन
१५५	६	विभोजन	विमोचन
१७४	२७	आशषा	आशंसा
४४८	१२	Adiemut	Achievement
४६६	२६	उन्माद	कुमार्ग
५८८	१	ख्या--संस्त्री०	संख्या--स्त्री०
५८८	४	गणकसं	संगणक

● ●

परिशिष्ट (ख)

[छापे की कुछ भद्दी भूले; कृपया इन्हे भी सुधार कर पढ़ें]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४७	२३	आध्यादेश	अध्यादेश
१४६	२०	प्रायोपवेषन	प्रायोपवेशन
१५५	६	विभोजन	विमोचन
१७४	२७	आशंषा	आशसा
४४८	१२	Adiemut	Achievement
४६६	२६	उन्माद	कुमार्ग
५८८	१	ख्या--संस्त्री०	सख्या--स्त्री०
५८८	४	गणकसं	संगणक

परिशिष्ट (ग)

Abduction—अपहरण
Abortion—१ गर्भपात
२ भ्रूण हत्या
About—प्राय
Above—ऊपर
Abstract—भाव
Accordingly—अनुसार, अनुसारत
According to—अनुसार
Accusation—अभिशंसा
Achievement—परिलब्धि
Act—विधान, अधिनियम, कानून
Actual—यथार्थ
Address—अभिभाषण
Adjustment—१ सामञ्जस्य
२ ताल मेल
Administration—प्रशासन
Admiration—अभिशंसा
Adultery—व्यभिचार
Advancement—उन्नति
Adverse—प्रतिकूल
Advice—परामर्श
Affectation—बनावट
Affection—स्नेह
Against—विरुद्ध खिलाफ
Age—१ आयु, २ अवस्था, वय उम्र ३ युग
Aggression—अग्र धर्षण, चढ़-जोरी
Agility—लाघव
Agony—वेदना
Agreeable—अनुकूल
Agreement—संविदा
Aid—सहायता
Aim—उद्देश्य
Alias—उपनाम
Allophone—सह ध्वनि, सह स्वन
Allround knowledge—परिज्ञान
Almost—लगभग
Alphabet—अक्षर
Alternative—अनुकल्प
Amazement—१ अचभा
२ विस्मय
Ambition—उच्चाकांक्षा
Ammunition—आयुध
Analysis—विश्लेषण
Anguish—संताप
Animosity—वैमनस्य
Announcement—प्रख्यापन
Antagonism—द्वेष, विद्वेष
Antonym—विपर्याय
Apparatus—उपकरण
Appellation—संज्ञा
Application—१ आवेदन २ आवेदन-पत्र, ३ प्रार्थना-पत्र अर्जी, दरखास्त, ४ प्रयोग

Apprehension—आशंका
Appriciation—अभिशंसा
Approximately—लगभग
Arbitration—पंचायत
Archeozoic Era—आदि कल्प
Armistice—अवहार, युद्ध-विराम
Arms—अस्त्र-शस्त्र, हथियार
Aroma—खुशबू, सुगन्ध
Artery—१. धमनी, रग; २. नाड़ी
Aspersion—आक्षेप, बौछार
Aspiration—स्पृहा
Assault—आक्रमण
Assets—परिसंपत्ति
Assistance—सहायता, मदद
Assurance—आश्वासन
Astonishment—आश्चर्य, ताज्जुब
Atmosphere—वातावरण, वायु-मंडल, पर्यावरण
Attachment—१. अनुराग; २. लगाव
Attack—आक्रमण, हमला
Attainment—उपलब्धि
Attempt—चेष्टा
Attitude—अभिवृत्ति
Authority—अधिकार
Autonomy—स्वायत्तता
Average—१. माध्य, औसत; २. पड़ता
Avidity—लिप्सा
Awaiting—प्रतीक्षा
Background—पृष्ठभूमि, पृष्ठिका, भूमिका

Bad conduct—दुराचार
Balancing—संतुलन
Bank—१. तीर; २. बंक
Banning—वर्जन
Banter—ठट्ठा, ठठोली
Bar—१. बाध; २. रोध
Begging—याचना
Beginning—अथ, आदि
Behaviour—व्यवहार, बर्ताव
Belief—विश्वास, एतबार
Benifit—लाभ
Bestowing—प्रदान
Bibliography—संदर्भिका
Bill—विधेयक
Billow—लहर
Birthcontrol—गर्भ-निरोध
Board—मंडल
Board Revenue—राजस्व-मंडल
Board Wage—वेतन-मंडल
Bonus—लाभ-तोषिक
Bound—बद्ध
Bounty—अधिदान
Brevity—लाघव
Building—१. निर्माण; २. भवन, इमारत
Butchery—वध
Cabinet—मंत्रि-परिषद्
Cabinet Minister—परिषद्-मंत्री
Calculation—परिकलन
Calm—शान्ति
Capability—१. सक्षमता; २. सामर्थ्य
Capacity—१. समाई; २. विसात

Capital–पूंजी
Cardinal number–गण संख्या
Careless–लापरवाह
Carnage–संहार
Castration–अंडोच्छेदन, बधिया करना
Catagory–कोटि
Catalogue–सूची पत्र
Cause–कारण, वजह
Ceasefire–अवहार, युद्ध विराम
Cenozoic Era–नव कल्प
Centre–केन्द्र
Channel–प्रणाली
Charity–दान खैरात
Cheap–सस्ता
Chief Minister–मुख्य मंत्री
Circumstance–परिस्थिति
Civilisation–सभ्यता
Class–वर्ग
Code–संहिता
Code of conduct–आचरण संहिता
Cognizable–प्रज्ञेय
Cold–ठंड
Cold war–शीत युद्ध
Collaboration–सहयोग
Collusion–१ मिली भगत, २ सांट-गांठ
Comfort–आराम
Command–आज्ञा, आदेश, हुक्म
Commencement–आरम्भ, प्रारंभ
Commerce–वाणिज्य
Commission–आयोग
Common–सामान्य
Commonwealth–राष्ट्र मंडल
Commotion–हलचल
Communicable–संसर्गशील, संगशील
Communication–संचार
Communique–विज्ञप्ति
Compelled–बाध्य, मजबूर
Compensation–१ प्रतिपूर्ति, २ मुआवजा, ३ हरजाना
Completion १ पूर्ति, २ समाप्ति
Component–अंग
Composition–रचना
Compromise–समझौता
Computation–अभिकलन, संगणन
Computer–संगणक (कार्यकर्ता और यंत्र दोनों)
Conceit–अहम्मन्यता
Conciliation–संराधन
Conciliation Board–संराधन मंडल
Conciliation officer–संराधन अधिकारी
Concluding—समापक समाप्तिक
Conclusive—समापनिक
Condition—अवस्था, दशा
Conduct—आचरण, चाल-चलन
Confederation—परिसंघ
Confidence—प्रत्यय
Connection—लगाव, सम्बन्ध
Connotation—संपर्याय
Conscience—अंतर्विवेक विवेक

Consequence—परिणाम
Conservation—आरक्षा
Conservator—आरक्षक
Consideration—१ विचार; २. आस्था
Consolation—सांत्वना
Consolation prize—सात्वना-पुरस्कार
Consternation—सनसनी
Constituent—घटक
Constitution—सविधान
Construction—१. रचना; २. बनावट
Consultation—परामर्श
Contact—संपर्क
Contagious—संसर्गज
Contemplation—मनन
Context—प्रसंग
Contract—संविदा
Contrary—विपरीत
Contribution—अश-दान
Control—१. नियंत्रण; २. रोध
Conviction—प्रतीति
Cool—ठढक
Co-operation—सहकारिता
Co-ordination—समन्वय, ताल-मेल
Corporation—निगम
Corruption—भ्रष्टाचार
Cost—लागत
Costly—महँगा
Council—परिषद्
Counter-balance—प्रति-संतुलन
Counting—गणन
Courtesy—सौजन्य
Coward—कायर
Credit—१. यश; २. श्रेय; ३. उधार
Crisis—अपस्थिति, विस्थिति
Criticism—आलोचना
Cultivation—सवर्धन
Culture—सस्कृति
Curiosity—कुतूहल, कौतूहल
Custom—प्रथा
Deadlock—गत्यवरोध, गति-रोध, जिच।
Dearness—महँगी
Dearness allowance—महँगाई
Declaration—परिज्ञापन
Defence—१ प्रतिरक्षा; २. रक्षा
Dejection—विषाद
Delegate—प्रतिनिधि
Deliberation—विमर्श
Deluge—प्रलय
Delusion—विभ्रम
Democracy—जन-तत्र, लोक-तंत्र
Denotation—अभिधार्थ
Derision—खिल्ली
Desertion—पलायन
Designation—पद-नाम
Desire—१. कामना; २. अभिलाषा; ३. आशसा
Destiny—नियति
Destruction—१. विनाश; २. सहार
Determination—संकल्प
Development—विकास
Devotion—भक्ति
Dexterity—लाघव

Capital–पूंजी
Cardinal number–गण सख्या
Careless–लापरवाह
Carnage–सहार
Castration–अडोच्छेदन, बधिया करना
Catagory–कोटि
Catalogue–सूची-पत्र
Cause–कारण, वजह
Ceasefire–अवहार, युद्ध विराम
Cenozoic Era–नव कल्प
Centre–केन्द्र
Channel–प्रणाली
Charity–दान खरात
Cheap–सस्ता
Chief Minister–मुख्य मत्री
Circumstance–परिस्थिति
Civilisation–सभ्यता
Class–वग
Code–सहिता
Code of conduct–आचरण सहिता
Cognizable–प्रज्ञेय
Cold–ठढ
Cold war–शीत युद्ध
Collaboration–सहयोग
Collusion–१ मिली भगत, २ साट-गांठ
Comfort–आरस
Command–आज्ञा, आदेश, हुक्म
Commencement–आरभ, प्रारभ
Commerce–वाणिज्य
Commission–आयोग
Common–सामा य
Commonwealth–राष्ट्र मडल
Commotion–हलचल
Communicable–ससगशील, सगशील
Communication–सचार
Communique–विज्ञप्ति
Compelled–बाध्य, मजबूर
Compensation–१ प्रतिपूर्ति, २ मुआवजा, ३ हरजाना
Completion १ पूर्ति, २ समाप्ति
Component–अग
Composition–रचना
Compromise–समझौता
Computation–अभिकलन, सगणन
Computer–सगणक (कायकर्ता और यत्र दोनों)
Conceit–अहम यता
Conciliation–सराधन
Conciliation Board–सराधन मडल
Conciliation officer–सराधन अधिकारी
Concluding—समापक समाप्तिक
Conclusive—समापनिक
Condition—अवस्था, दशा
Conduct—आचरण, चाल-चलन
Confederation—परिसघ
Confidence—प्रत्यय
Connection—लगाव, सम्बन्ध
Connotation—लक्ष्याथ
Conscience—अतर्विवेक, विवेक

Consequence—परिणाम
Conservation—आरक्षा
Conservator—आरक्षक
Consideration—१ विचार;
२. आस्था
Consolation—सांत्वना
Consolation prize—सात्वना-पुरस्कार
Consternation—सनसनी
Constituent—घटक
Constitution—सविधान
Construction—१. रचना;
२. बनावट
Consultation—परामर्श
Contact—सपर्क
Contagious—ससर्गज
Contemplation—मनन
Context—प्रसंग
Contract—सविदा
Contrary—विपरीत
Contribution—अश-दान
Control—१. नियंत्रण; २. रोध
Conviction—प्रतीति
Cool—ठढक
Co-operation—सहकारिता
Co-ordination—समन्वय, ताल-मेल
Corporation—निगम
Corruption—भ्रष्टाचार
Cost—लागत
Costly—महँगा
Council—परिषद्
Counter-balance—प्रति-संतुलन
Counting—गणन
Courtesy—सौजन्य
Coward—कायर
Credit—१. यश; २. श्रेय; ३. उधार
Crisis—अपस्थिति, विस्थिति
Criticism—आलोचना
Cultivation—सवर्धन
Culture—सस्कृति
Curiosity—कुतूहल, कौतूहल
Custom—प्रथा
Deadlock—गत्यवरोध, गति-रोध, जिच।
Dearness—महँगी
Dearness allowance—महँगाई
Declaration—परिज्ञापन
Defence—१ प्रतिरक्षा; २. रक्षा
Dejection—विषाद
Delegate—प्रतिनिधि
Deliberation—विमर्श
Deluge—प्रलय
Delusion—विभ्रम
Democracy—जन-तत्र, लोक-तंत्र
Denotation—अभिधार्थ
Derision—खिल्ली
Desertion—पलायन
Designation—पद-नाम
Desire—१. कामना; २. अभिलाषा;
३. आशंसा
Destiny—नियति
Destruction—१. विनाश; २. संहार
Determination—संकल्प
Development—विकास
Devotion—भक्ति
Dexterity—लाघव

Capital–पूँजी
Cardinal number–गण-सख्या
Careless–लापरवाह
Carnage–सहार
Castration–अडोच्छेदन, बधिया करना
Catagory–कोटि
Catalogue–सूची-पत्र
Cause–कारण, वजह
Ceasefire–अवहार, युद्ध विराम
Cenozoic Era–नव कल्प
Centre–केन्द्र
Channel–प्रणाली
Charity–दान खरात
Cheap–सस्ता
Chief Minister–मुख्य मत्री
Circumstance–परिस्थिति
Civilisation–सभ्यता
Class–वग
Code–सहिता
Code of conduct–आचरण सहिता
Cognizable–प्रज्ञेय
Cold–ठढ
Cold war–शीत युद्ध
Collaboration–सहयोग
Collusion–१ मिली भगत, २ साट-गाँठ
Comfort–ढारस
Command–आज्ञा, आदेश हुक्म
Commencement–प्रारभ, प्रारभ
Commerce–वाणिज्य
Commission–आयोग
Common–सामान्य
Commonwealth–राष्ट्र मडल
Commotion–हलचल
Communicable–ससगशील, सगशील
Communication–सचार
Communique–विज्ञप्ति
Compelled–बाध्य, मजबूर
Compensation–१ प्रतिपूर्ति, २ मुआवजा, ३ हरजाना
Completion १ पूर्ति, २ समाप्ति
Component–अग
Composition–रचना
Compromise–समझौता
Computation–अभिकलन, सगणन
Computer–सगणक (कायकर्ता और यत्र दोनो)
Conceit–अहमन्यता
Conciliation–सराधन
Conciliation Board–सराधन मडल
Conciliation officer–सराधन अधिकारी
Concluding–समापक, समाप्तिक
Conclusive–समापनिक
Condition–अवस्था, दशा
Conduct–आचरण, चाल-चलन
Confederation–परिसघ
Confidence–प्रत्यय
Connection–लगाव, सम्बन्ध
Connotation–लक्ष्याथ
Conscience–अतर्विवेक, विवेक

Consequence—परिणाम
Conservation—आरक्षा
Conservator—आरक्षक
Consideration—१ विचार; २. आस्था
Consolation—सात्वना
Consolation prize—सात्वना-पुरस्कार
Consternation—सनसनी
Constituent—घटक
Constitution—सविधान
Construction—१. रचना; २. बनावट
Consultation—परामर्श
Contact—संपर्क
Contagious—संसर्गज
Contemplation—मनन
Context—प्रसंग
Contract—सविदा
Contrary—विपरीत
Contribution—अश-दान
Control—१. नियंत्रण; २. रोध
Conviction—प्रतीति
Cool—ठढक
Co-operation—सहकारिता
Co-ordination—समन्वय, ताल-मेल
Corporation—निगम
Corruption—भ्रष्टाचार
Cost—लागत
Costly—महँगा
Council—परिषद्
Counter-balance—प्रति-संतुलन
Counting—गणन
Courtesy—सौजन्य
Coward—कायर
Credit—१. यश; २. श्रेय; ३. उधार
Crisis—अपस्थिति, विस्थिति
Criticism—आलोचना
Cultivation—संवर्धन
Culture—संस्कृति
Curiosity—कुतूहल, कौतूहल
Custom—प्रथा
Deadlock—गत्यवरोध, गति-रोध, जिच।
Dearness—महँगी
Dearness allowance—महँगाई
Declaration—परिज्ञापन
Defence—१. प्रतिरक्षा; २. रक्षा
Dejection—विषाद
Delegate—प्रतिनिधि
Deliberation—विमर्श
Deluge—प्रलय
Delusion—विभ्रम
Democracy—जन-तंत्र, लोक-तंत्र
Denotation—अभिधार्थ
Derision—खिल्ली
Desertion—पलायन
Designation—पद-नाम
Desire—१. कामना; २. अभिलाषा; ३. आशंसा
Destiny—नियति
Destruction—१. विनाश; २. संहार.
Determination—सकल्प
Development—विकास
Devotion—भक्ति
Dexterity—लाघव

Capital–पूंजी
Cardinal number–गण संख्या
Careless–लापरवाह
Carnage–संहार
Castration–अंडोच्छेदन, वधिया करना
Catagory–कोटि
Catalogue–सूची पत्र
Cause–कारण, वजह
Ceasefire–अवहार, युद्ध विराम
Cenozoic Era–नव कल्प
Centre–केन्द्र
Channel–प्रणाली
Charity–दान, खैरात
Cheap–सस्ता
Chief Minister–मुख्य मंत्री
Circumstance–परिस्थिति
Civilisation–सभ्यता
Class–वर्ग
Code–संहिता
Code of conduct–आचरण संहिता
Cognizable–प्रज्ञेय
Cold–ठंड
Cold war–शीत युद्ध
Collaboration–सहयोग
Collusion–१ मिली भगत, २ साट-गांठ
Comfort–दिलासा
Command–आज्ञा आदेश, हुक्म
Commencement–प्रारम्भ, प्रारंभ
Commerce–वाणिज्य
Commission–आयोग
Common–सामान्य
Commonwealth–राष्ट्र मंडल
Commotion–हलचल
Communicable–संसर्गशील, संगशील
Communication–संचार
Communique–विज्ञप्ति
Compelled–बाध्य, मजबूर
Compensation–१ प्रतिपूर्ति, २ मुआवजा, ३ हरजाना
Completion -१ पूर्ति, २ समाप्ति
Component–अंग
Composition–रचना
Compromise–समझौता
Computation–अभिकलन, संगणन
Computer–संगणक (कार्यकर्ता और यंत्र दोनों)
Conceit–अहम्मन्यता
Conciliation–संराधन
Conciliation Board–संराधन मंडल
Conciliation officer–संराधन अधिकारी
Concluding—समापक समाप्तिक
Conclusive—समापनिक
Condition—अवस्था, दशा
Conduct—आचरण, चाल-चलन
Confederation–परिसंघ
Confidence–प्रत्यय
Connection—लगाव, सम्बन्ध
Connotation—लक्ष्यार्थ
Conscience—अंतर्विवेक, विवेक

Consequence—परिणाम
Conservation—आरक्षा
Conservator—आरक्षक
Consideration—१. विचार; २. आस्था
Consolation—सांत्वना
Consolation prize—सांत्वना-पुरस्कार
Consternation—सनसनी
Constituent—घटक
Constitution—संविधान
Construction—१. रचना; २. बनावट
Consultation—परामर्श
Contact—संपर्क
Contagious—संसर्गज
Contemplation—मनन
Context—प्रसंग
Contract—संविदा
Contrary—विपरीत
Contribution—अंश-दान
Control—१. नियंत्रण; २. रोध
Conviction—प्रतीति
Cool—ठंढक
Co-operation—सहकारिता
Co-ordination—समन्वय, ताल-मेल
Corporation—निगम
Corruption—भ्रष्टाचार
Cost—लागत
Costly—महँगा
Council—परिषद्
Counter-balance—प्रति-संतुलन
Counting—गणन
Courtesy—सौजन्य
Coward—कायर
Credit—१. यश; २. श्रेय; ३. उधार
Crisis—अपस्थिति, विस्थिति
Criticism—आलोचना
Cultivation—संवर्धन
Culture—संस्कृति
Curiosity—कुतूहल, कौतूहल
Custom—प्रथा
Deadlock—गत्यवरोध, गति-रोध, जिच।
Dearness—महँगी
Dearness allowance—महँगाई
Declaration—परिज्ञापन
Defence—१. प्रतिरक्षा; २. रक्षा
Dejection—विषाद
Delegate—प्रतिनिधि
Deliberation—विमर्श
Deluge—प्रलय
Delusion—विभ्रम
Democracy—जन-तंत्र, लोक-तंत्र
Denotation—अभिधार्थ
Derision—खिल्ली
Desertion—पलायन
Designation—पद-नाम
Desire—१. कामना; २. अभिलाषा; ३. आशंसा
Destiny—नियति
Destruction—१. विनाश; २. संह
Determination—संकल्प
Development—विकास
Devotion—भक्ति
Dexterity—लाघव

Dialogue—संवाद
Digit—अंक
Dilemma—उभय-संकट
Diplomacy—राजनय
Direction—निदेश
Disappearance—लय
Discipline—अनुशासन
Discourse—प्रवचन
Discovery—उपज्ञा, खोज
Disposition—१ प्रकृति, मिजाज, २ वृत्ति
Dissolove—घुलना
Dissolution—लय
Distress—कष्ट, विपत्ति
Divident—लाभांश
Doggedness—जिद
Doubt—१ शंका, २ संशय
Draft—पाडु-लेख, प्रालेख, मसौदा
Earthly—पार्थिव
Education—शिक्षा
Effort—प्रयत्न
Ego—अहं
Egoism—अहंकार, अहंता, अहंभाव
Election petition–चुनाव याचिका
Emblem—प्रतीक
Emergency—आपात आपातिक स्थिति आपत्कालीन स्थिति, संकटकालीन स्थिति
Emergent—आपातिक, हुगामी
Eminence—गौरव
Enactment—विधायन
Enclave—अंतरावर्त
Enclosure—घेरा
End—अन्त
Endeavour—प्रयास
Endure—झेलना
Energy—ऊर्जा
Enmity—१ वैर, २ शत्रुता
Enough—यथेष्ट
Enumeration—परिगणन
Enumerator—परिगणक
Environment—परिवेश
Equivalent—१ समानक, २ समानायक, समायक
Era—कल्प
Erection—निर्माण
Error—भूल
Escaping—पलायन
Escapism—१ पलायन, २ पलायनवाद
Establishment—प्रतिष्ठान
Estimate—१ अंदाजा, अटकल, २ आकलन, कूत, तखमीना
Estimation—आकलन, अंदाजा, तखमीना
Evolution—विकास
Etc , Etcetra—आदि, इत्यादि
Ethics—नीतिशास्त्र आचार शास्त्र, व्यवहार-दर्शन
Exaggeration—अत्युक्ति
Examining—परख
Example—उदाहरण
Exclave—बहिरावत
Excuse—बहाना

Executive—कार्य-पालिका
Exemption—छूट
Existence—भाव
Existing—१. वर्तमान
२. विद्यमान (मौजूद उक्त दोनों अर्थों मे)
Expectation—प्रत्याशा
Expedition—अभियान
Expensive—महँगा
Experiment—प्रयोग
Experimental—प्रायोगिक
Experimentalism—प्रयोगवाद
Exploration—अन्वेषण
Factor—घटक
Faith—विश्वास, यकीन
Family planning—परिवार-नियोजन
Fancy—उद्‌भावना
Fast—१. उपवास; २ लंघन; ३. व्रत
Favourable—अनुकूल
Fear—भय, भीति, डर
Fearful—भीरु
Federation—संघ
Fidelity—निष्ठा
Figure—अंक
Filling—पूर्ति
Final—आंतिक
Finance—वित्त
Firm—१. प्रतिष्ठान;
२. महाजनी कोठी
Firmament—महाव्योम
Follower—अनुगामी
Following—१. अनुकरण; २. अनुगमन; ३. अनुवर्तन; ४. अनुसरण
Foot—पैर
Forbear—सहना
Forbidding—वारण
Force—बल
Forum—वाग्पीठ, वाक्पीठ
Fragrance—१. परिमल; २. सौरभ
Fratricide—भ्रातृ-हत्या
Freedom—स्वतन्त्रता
Frequent—प्रायिक
Frequently—प्राय:, अक्सर
Fund—निधि
Gain—प्राप्ति
General—सार्विक
Genius—प्रतिभा
Genocide—जन-हत्या
Gentlemanliness—सज्जनता, सौजन्य
Giving—दान
Glory—१. कीर्ति; २. महिमा
Goodwill—१. सद्‌भाव; २. सुनाम
Governance—शासन, हकूमत
Government—शासन, सरकार
Grade—श्रेणी
Grandeur—वैभव
Grant—अनुदान
Gratuity—आनुतोषिक
Gravity—गुरुत्व
Greatness—महत्ता
Grief—दुःख
Ground—भूमिका
Guarding—रक्षा, हिफाजत

Guerrilla—छापामार
Hallucination—मतिभ्रम
Hang—टाँगना
Heaviness—गुरुता, भारीपन
Heedless—बे परवाह
Help—सहायता, मदद
Helpless—विवश, लाचार
Hesitation—हिचक
Homicide—नर हत्या
Hope—१ आशंसा, २ आशा
Hostage—ओल
Hostility—रिपुता
House—सदन
Hyperbole—अतिशयोक्ति (अलंकार)
Ideal—आदर्श
Idealism—आदर्शवाद
Illusion—भ्रांति
Illustration—दृष्टान्त
Imagination—कल्पना
Impartial—निष्पक्ष
Impediment—अड़चन
Imperative mood—विधि
Implication—विवक्षा
Importance—महत्व
Impression—दाब
Inauguration—उद्घाटन समारंभ
Independence—स्वाधीनता
Indifferent—उदासीन
Indolent—आलसी
Infectious—संक्रामक
Inflammation—शोथ, सूजन
Information—१ सूचना, २ संवाद
Initiative—पहल
Inquiry—अनुसंधान, जाँच
Installation—प्रतिष्ठान
Instance—दृष्टांत
Instinct—सहज-वृत्ति
Inspection—निरीक्षण
Inspector—निरीक्षक
Institute—संस्थान
Institution—संस्था
Instruction—१ निर्देश, २ शिक्षण
Intellect—बुद्धि
Intelligence—समझ
International Communication —भू संचार
Intuition—अंतर्ज्ञान, अंतर्बोध, सहज ज्ञान
Invention—आविष्कार, ईजाद
Inventory—सूची तालिका
Investigation—अनुसंधान
Investment—लागत
Irony—व्यंग्य
Joint—संधि
Joke—दिल्लगी
Judicial tribunal—न्यायाधिकरण
Judiciary—न्यायपालिका
Kidnapping—अपहरण
Killing—१ मारण, २ हत्या
Know how—परिज्ञान, क्रियाज्ञान, क्रियापद्धति
Knowledge—ज्ञान
knowledge, allround—परिज्ञान
knowledge, versatile—परिज्ञान

Laboratory—प्रयोगशाला
Last—अन्तिम
Laughter—हँसी
Law—१. विधि, आईन;
    २. विधान, कानून
Lazy—१. आस्कती; २. सुस्त
Lecture—भाषण
Left—बायाँ
Leg—टाँग, पाँव
Legislation—विधायन
Legislative assembly—विधान-सभा
Legislative council—विधान-परिषद्
Legislator—विधायक
Legislature—विधान-मंडल;
    विधायिका
Letter—वर्ण
Levy—उगाही, वसूली
Liberty—स्वच्छन्दता
Life—१. प्राण; २ जीवन, जिंदगी
Like—अनुरूप
Limb—अवयव
List—तालिका, सूची
Literature—साहित्य
Littlemindedness—लघुता
Littleness—लघुता
Loan—१. उधार; २. ऋण
Longing—साघ
Loop—छल्ला
Love—प्रीति, प्रेम
Machine—यंत्र
Making—निर्माण
Mandate—परादेश
Manhood—पौरुष

Manifesto—ध्येय-पत्र
Manliness—पुरुषत्व
Manner—१. रीति; २. विधा
Manuscript—हस्तलेख, आलेख
Market rate—भाव
Massacre—१. हनन; २. संहार
Material—सामग्री
Matricide—मातृ-हत्या
Mature—प्रौढ़
Mean—मध्यम
Meaning—अर्थ
Measure—संयोजना, कार्रवाई
Median—माध्यिका
Mediation—मध्यस्थता
Medium—माध्यम
Melt—१. गलना, २. पिघलना
Memento—कीर्ति
Memorandum—ज्ञापन, स्मारिका
Mentality—मनोवृत्ति
Merger—विलय
Merging—विलयन
Mesozoic Era—मध्य कल्प
Message—सदेश
Method—१. विधि; २. पद्धति
Micro-wave—सूक्ष्म-तरंग
Minister—मंत्री
Minister for state—राज्य-मंत्री
Ministery—मंत्रि-मडल
Mirage—मरीचिका, मृग-तृष्णा,
    मृग-मरीचिका
Miscarriage—गर्भ-स्राव
Misconduct—कदाचार

Guerrilla—छापामार
Hallucination—मतिभ्रम
Hang—टाँगना
Heaviness—गुरुता, भारीपन
Heedless—बे परवाह
Help—सहायता, मदद
Helpless—विवश, लाचार
Hesitation—हिचक
Homicide—नर-हत्या
Hope—१ आशसा, २ आशा
Hostage—ओल
Hostility—रिपुता
House—सदन
Hyperbole—अतिशयोक्ति (अलकार)

Ideal—आदर्श
Idealism—आदर्शवाद
Illusion—भ्राति
Illustration—दृष्टान्त
Imagination—कल्पना
Impartial—निष्पक्ष
Impediment—अड़चन
Imperative mood—विधि
Implication—विवक्षा
Importance—महत्व
Impression—दाब
Inauguration—उद्घाटन, समारभ
Independence—स्वाधीनता
Indifferent—उदासीन
Indolent—आलसी
Infectious—सक्रामक
Inflammation—दाघ, सूजन
Information—१ सूचना, २ सवाद
Initiative—पहल
Inquiry—अनुसधान, जाँच
Installation—प्रतिष्ठान
Instance—दृष्टात
Instinct—सहज-वृत्ति
Inspection—निरीक्षण
Inspector—निरीक्षक
Institute—सस्थान
Institution—सस्था
Instruction—१ निर्देश, २ शिक्षण
Intellect—बुद्धि
Intelligence—समझ
International Communication —भू सचार
Intuition—अन्तर्ज्ञान, अन्तर्बोध, सहज ज्ञान
Invention—आविष्कार, ईजाद
Inventory—सूची, तालिका
Investigation—अनुसधान
Investment—लागत
Irony—व्यग्य
Joint—सधि
Joke—दिल्लगी
Judicial tribunal—न्यायाधिकरण
Judiciary—न्यायपालिका
Kidnapping—अपहरण
Killing—१ मारण, २ हत्या
Know how—परिज्ञान, क्रियाज्ञान, क्रियापद्धति
Knowledge—ज्ञान
knowledge, allround—परिज्ञान
knowledge, versatile—परिज्ञान

Laboratory—प्रयोगशाला
Last—अन्तिम
Laughter—हँसी
Law—१. विधि, आईन;
२. विधान, कानून
Lazy—१. आस्कती; २. सुस्त
Lecture—भाषण
Left—बायाँ
Leg—टाँग, पाँव
Legislation—विधायन
Legislative assembly—विधान-सभा
Legislative council—विधान-परिषद्
Legislator—विधायक
Legislature—विधान-मंडल;
विधायिका
Letter—वर्ण
Levy—उगाही, वसूली
Liberty—स्वच्छन्दता
Life—१. प्राण; २. जीवन, जिंदगी
Like—अनुरूप
Limb—अवयव
List—तालिका, सूची
Literature—साहित्य
Littlemindedness—लघुता
Littleness—लघुता
Loan—१. उधार, २. ऋण
Longing—साध
Loop—छल्ला
Love—प्रीति, प्रेम
Machine—यन्त्र
Making—निर्माण
Mandate—परादेश
Manhood—पौरुष

Manifesto—ध्येय-पत्र
Manliness—पुरुषत्व
Manner—१. रीति; २. विधा
Manuscript—हस्तलेख, आलेख
Market rate—भाव
Massacre—१. हनन; २. संहार
Material—सामग्री
Matricide—मातृ-हत्या
Mature—प्रौढ़
Mean—मध्यम
Meaning—अर्थ
Measure—सयोजना, कार्रवाई
Median—माध्यिका
Mediation—मध्यस्थता
Medium—माध्यम
Melt—१. गलना, २. पिघलना
Memento—कीर्ति
Memorandum—ज्ञापन, स्मारिका
Mentality—मनोवृत्ति
Merger—विलय
Merging—विलयन
Mesozoic Era—मध्य कल्प
Message—सदेश
Method—१. विधि; २. पद्धति
Micro-wave—सूक्ष्म-तरंग
Minister—मंत्री
Minister for state—राज्य-मंत्री
Ministery—मत्रि-मडल
Mirage—मरीचिका, मृग-तृष्णा,
मृग-मरीचिका
Miscarriage—गर्भ-स्राव
Misconduct—कदाचार

Missile—क्षेप्यास्त्र
Mistake—१ भूल, २ भ्रम
Mobilisation—लामबन्दी
Mode—१ विधि, २ परिपाटी, रीति
Model—प्रतिमान, प्रतिरूप
Modesty—शील
Motive—हेतु, सबब
Mourning—शोक
Multifariously—बहुधा
Murder—हत्या
Mystery—रहस्य
Mysticism—रहस्यवाद
Name—नाम
Nature—१ निसर्ग, २ प्रकृति
Navel—नाभि
Near about—आस-पास
Nearly—प्राय
Necessity—आवश्यकता
Need—आवश्यकता
Negative—ऋणक, ऋणात्मक, नकारात्मक
Neozoic Era—नव कल्प
Nerve—तन्त्रिका स्नायु
Neutral—तटस्थ
News—समाचार
Noise—घोष, शोर
Non cognizable—अप्रज्ञेय
Normal—प्रसम
Notification—अधिसूचना
Noun—सज्ञा
Nuclear—नाभिक
Nuclear arms—नाभिक अस्त्र
Nucleus—नाभि
Number—सख्या
Numbering-सख्यापन, सख्यांकन
Numeral—आंकड़ा
Numerals—आंकडे
Oath—१ शपथ, कसम, २ दिव्य
Oath of allegiance—निष्ठा की शपथ
Object—१ उद्देश्य, २ ध्येय, ३ लक्ष्य
Obliged—बाध्य, मजबूर
Observation—सप्रेक्षण
Obstacle—१ अवरोध, २ बाधा
Obstinacy—१ हठ, २ जिद
Obstruction—१ अवरोध, २ विघ्न
Occupation—व्यवसाय, पेशा
Odour—गध
Oedmia—शोथ, फूलन
Offering—निवेदन
Often—बहुधा
Omission—छूट
Onset—धावा
Opportunism—अवसरवाद
Opportunist—अवसरवादी
Opposite—१ प्रतिकूल, २ विरुद्ध
Opposition—१ प्रतिकूलता, २ विरोध
Optimism—१ आशावाद, २ सुखवाद
Option—विकल्प
Optional—ऐच्छिक, वैकल्पिक
Oration—वक्तृता

Ordeal—१ दिव्य; २. अग्नि-परीक्षा
Order—आज्ञा, हुक्म
Ordinal number—क्रमसंख्या
Ordinance—अध्यादेश
Ordinary—साधारण
Ownership—१. स्वामित्व; २. स्वत्व
Pact—समझौता
Pain—पीड़ा, दर्द
Panic—हड़कंप, तहलका
Paleozoic Era—पुरा-कल्प
Paratrooper—छतरी-सैनिक
Parliament—संसद
Patricide—पितृ-हत्या
Patron—सरक्षक
Patronage—संरक्षा
Peace—शान्ति
Peculiar—अनोखा, विचित्र
Pen-name—उपनाम
Pension—अनुवृत्ति
Perfume—१. सुगंध; २. परिमल, सुरभि
Period—युग
Pessimism—१. निराशावाद; २. दुःखवाद
Petition—याचिका
Philosophy—दर्शन
Phoneme—ध्वनिग्राम
Phonetics—ध्वनि-विज्ञान
Physical—भौतिक
Physics—भौतिक विज्ञान
Plagiarism—भाव-हरण, साहित्यिक चोरी
Plan—योजना
Plant—संयंत्र
Platform—मंच
Plebiscite—जन-मतगणना (या संग्रह)
Pledge—प्रतिज्ञा
Poletics—राजनीति
Polity—राजतंत्र
Pool—गोलक
Position—स्थिति
Positive—धनक, धनात्मक, सकारात्मक
Possibility—सम्भावना
Power—शक्ति, सामर्थ्य
Practical—व्यावहारिक
Practice—व्यवहार
Prayer—१. प्रार्थना; २. विनति
Predicament—असमजस
Present—१. उपस्थित; २. प्रस्तुत; ३. वर्तमान; ४. विद्यमान (मौजूद, उक्त चारो अर्थों मे)
Preservation—आरक्षा
Presidium—प्रधान मडल
Pressure—दवाव
Presumption—मान्यता
Price—मूल्य, दाम, कीमत
Pride—अभिमान, गर्व
Prime Minister—प्रधानमंत्री
Prize—पारितोषिक, इनाम
Probability—सम्भाव्यता
Problem—समस्या
Procedure—कार्य-विधि, क्रिया-विधि

Missile—क्षेप्यास्त्र
Mistake—१ भूल, २ भ्रम
Mobilisation—लामबन्दी
Mode—१ विधि, २ परिपाटी, रीति
Model—प्रतिमान, प्रतिरूप
Modesty—शील
Motive—हेतु, सबब
Mourning—शोक
Multifariously—बहुधा
Murder—हत्या
Mystery—रहस्य
Mysticism—रहस्यवाद
Name—नाम
Nature—१ निसर्ग, २ प्रकृति
Navel—नाभि
Near about—आस-पास
Nearly—प्राय
Necessity—आवश्यकता
Need—आवश्यकता
Negative—ऋणक, ऋणात्मक, नकारात्मक
Neozoic Era—नव कल्प
Nerve—तन्त्रिका, स्नायु
Neutral—तटस्थ
News—समाचार
Noise—घोष, शोर
Non cognizable—अप्रज्ञेय
Normal—प्रसम
Notification—अधिसूचना
Noun—संज्ञा
Nuclear—नाभिक
Nuclear arms—नाभिक अस्त्र
Nucleus—नाभि
Number—संख्या
Numbering—संख्यापन, संख्याकन
Numeral—आंकड़ा
Numerals—आंकड़े
Oath—१ शपथ, कसम, २ दिव्य
Oath of allegiance—निष्ठा की शपथ
Object—१ उद्देश्य, २ ध्येय, ३ लक्ष्य
Obliged—बाध्य, मजबूर
Observation—सम्प्रेक्षण
Obstacle—१ अवरोध, २ बाधा
Obstinacy—१ हठ, २ जिद
Obstruction—१ अवरोध, २ विघ्न
Occupation—व्यवसाय, पेशा
Odour—गंध
Oedmia—शोफ, फूलन
Offering—निवेदन
Often—बहुधा
Omission—छूट
Onset—धावा
Opportunism—अवसरवाद
Opportunist—अवसरवादी
Opposite—१ प्रतिकूल, २ विरुद्ध
Opposition—१ प्रतिकूलता, २ विरोध
Optimism—१ आशावाद, २ शुभवाद
Option—विकल्प
Optional—ऐच्छिक, वैकल्पिक
Oration—वक्तृता

Ordeal—१ दिव्य; २. अग्नि-परीक्षा
Order—आज्ञा, हुक्म
Ordinal number—क्रमसंख्या
Ordinance—अध्यादेश
Ordinary—साधारण
Ownership—१. स्वामित्व; २. स्वत्व
Pact—समझौता
Pain—पीड़ा, दर्द
Panic—हड़कंप, तहलका
Paleozoic Era—पुरा-कल्प
Paratrooper—छतरी-सैनिक
Parliament—संसद
Patricide—पितृ-हत्या
Patron—संरक्षक
Patronage—संरक्षा
Peace—शान्ति
Peculiar—अनोखा, विचित्र
Pen-name—उपनाम
Pension—अनुवृत्ति
Perfume—१. सुगंध; २. परिमल, सुरभि
Period—युग
Pessimism—१. निराशावाद; २. दुःखवाद
Petition—याचिका
Philosophy—दर्शन
Phoneme—ध्वनिग्राम
Phonetics—ध्वनि-विज्ञान
Physical—भौतिक
Physics—भौतिक विज्ञान
Plagiarism—भाव-हरण, साहित्यिक चोरी
Plan—योजना
Plant—संयंत्र
Platform—मंच
Plebiscite—जन-मतगणना (या संग्रह)
Pledge—प्रतिज्ञा
Poletics—राजनीति
Polity—राजतंत्र
Pool—गोलक
Position—स्थिति
Positive—धनक, धनात्मक, सकारात्मक
Possibility—सम्भावना
Power—शक्ति, सामर्थ्य
Practical—व्यावहारिक
Practice—व्यवहार
Prayer—१. प्रार्थना; २. विनति
Predicament—असमंजस
Present—१. उपस्थित; २. प्रस्तुत; ३. वर्तमान; ४. विद्यमान (मौजूद, उक्त चारो अर्थों मे)
Preservation—आरक्षा
Presidium—प्रधान मंडल
Pressure—दवाव
Presumption—मान्यता
Price—मूल्य, दाम, कीमत
Pride—अभिमान, गर्व
Prime Minister—प्रधानमंत्री
Prize—पारितोषिक, इनाम
Probability—सम्भाव्यता
Problem—समस्या
Procedure—कार्य-विधि, क्रिया-विधि

Process—प्रक्रम
Proclamation—घोषणा
Production—उत्पादन
Profession—व्यवसाय, पेशा
Profit—लाभ, मुनाफा
Progress—प्रगति
Progressivism—प्रगतिवाद
Prohibition—निषेध, प्रतिषेध
Project—प्रायोजना
Promulgation—प्रवतन
Property—सम्पत्ति, जायदाद
Proportion—समानुपात
Prostitution—१ वेश्या वृत्ति,
२ व्यभिचार
Protection—परिरक्षा
Protectorate—परिरक्षित राज्य
Proterozoic Era—उत्तर-कल्प
Provident fund—निर्वाह निधि
Provision—विधान, उपबन्ध,
अनुविधान
Quandry—दुविधा द्विविधा
Queer—१ विचित्र, २ विलक्षण
Radar—रैडार
Raillery—फबती
Rally—बोली
Rate—दर
Ratio—अनुपात
Rational—तर्क-संगत
Rationalism—तर्क संगतिवाद
Ravage—प्रलय
Reading—वाचन
Ready Reckoner—अनुगणक
Real—वास्तविक
Realisation—उगाही, वसूली
Realism—यथार्थवाद
Reasonable—युक्तिसंगत
Reckoning—अनुगणन
Recognition—मान्यता
Recollection—विचार
Recommendation—अनुशंसा,
संस्तुति, सिफारिश
Record—उच्चमान उच्चांक
Reference—१ संदर्भ, २ अभिदेश
Referendum—जन निर्देश
Refutation—परिहार
Regard—आस्था
Regicide—राज-हत्या
Regret—खेद
Regulation—विनियम
Relation—सम्बन्ध रिश्ता
Relationship—रिश्तेदारी, सम्बन्ध
Release—विमोचन
Reliance—भरोसा
Relief—सहायता मदद
Religious vow—व्रत
Remorse—पाश्चात्ताप, अनुताप,
पछतावा
Remuneration—पारिश्रमिक
Renown—यश
Repentence—मनस्ताप
Report—प्रतिवेदन
Representation—अभिवेदन
Representative—प्रतिनिधि
Republic—गण तंत्र
Repute—यश
Request—प्रार्थना

Requirement–अपेक्षा
Research–शोध
Resistance–प्रतिरोध
Resource–साधन
Restraint–रोध
Result–फल
Revenue Board–राजस्व-मंडल
Reverence–श्रद्धा
Review–१. पुनरीक्षण, २. समालोचना, समीक्षा
Revolution–निश्चय
Reward–पुरस्कार
Rhythm–लय
Ridicule–उपहास
Right–वि०-दाहिना, दाँया; संज्ञा—अधिकार
Ripened–परिपक्व
Ripple–वीचि
Robbery–अपहरण
Role–भूमिका
Romanticism–छायावाद
Rostrum–मंचशीर्ष
Run–दौडना
Run away–भागना
Safe-guarding—रक्षा, हिफाजत
Safety–सुरक्षा
Sample—बानगी
Sarcasm—कटाक्ष, छींटा
Scent—खुशबू, सुगन्ध, सुवास
Scheme—परियोजना
Science—१. विज्ञान; २. शास्त्र
Scrutiny—पड़ताल
Search—१. खोज, तलाश; २. तलाशी
Secret—भेद
Secular–लौकिक
Security–सुरक्षा
Seminar–परिचर्चा
Sensation–सनसनी
Sense–आशय
Similar–अनुरूप
Singular–अनूठा
Shore—तट
Shunning–परिहार
Siege–घेरा
Situation–१. परिस्थिति; २. स्थिति
Sky–आकाश
Slaughter–वध
Slaying–१. वध; २. हनन
Slip–चूक
Slogan–घोष, नारा
Slothful–दीर्घसूत्री
Smallness–लघुता
Smell–गन्ध, बू
Solace–सांत्वना
Solemn affirmation–शपथ, हलफ
Soliciting—याचना
Sorrow—१. परिताप; २. दुःख
Sort—विधा
Space—अन्तरिक्ष
Sound—नाद
Specimen–नमूना
Speech–व्याख्यान

Spite—१ विद्वेष, २ वमनस्य
Spokesman—प्रवक्ता
Splendour—वैभव
Stage—रग मच
Stalemate—जिच्च
Standard—मानक
Standardization—मानकीकरण
State—दशा
Statistics—आँकड़े
Statute—सविधि
Stay—ठहरना
Stealing—अपहरण
Sticking—टेक
Stoic—उदासीन
S op—रुकना
Strange—विलक्षण
Strength—१ सामर्थ्य, २ सक्षमता
Stricture—भत्सना, फटकार
Structure—१ बनावट, २ सरचना
Stubbornness—हठ
Study—१ अध्ययन, २ अनुशीलन, परिशीलन
Subject—विषय
Submission—निवेदन
Subscription १ चदा, २ बेहरी (आशिक रूप मे)
Subsidy -परिदान
Suffer—भोगना
Sufficient—पर्याप्त
Superintendence -अधीक्षण
Superintendent—अधीक्षक
Supplementing—अनुपूर्ति
Supplication—विनति
Supply—आपूर्ति, समरण
Surprise—आश्चय, ताज्जुब
Surroundings—परिवेश
Survey—सर्वेक्षण
Suspend—लटकाना
Suspicion—सन्देह
Symbol—प्रतीक
Symbolism प्रतीकवाद
Sympathy—सवेदना, सहानुभूति हमदर्दी
Symposium—विचारगोष्ठी
Synonym—पर्याय, समानार्थक, समार्थक
Synonymy—पर्याय विज्ञान, पर्यायकी
Synthesis—सश्लेषण
System—१ पद्धति, २ सस्थान
Table—सारणी
Taking away—हरण
Target—लक्ष्य, निशाना
Taste—रुचि
Taunt—ताना
Technical—प्राविधिक, तकनीकी
Technician—प्रविधिन
Technique—प्रविधि तकनीक
Tele communication—दूर सचार
Temperament—१ प्रकृति स्वभाव, २ वृत्ति
Temporal—लौकिक
Tendency—प्रवृत्ति, झुकाव

Terminal—आवसानिक
Termination—अवसान
Test—जाँच
The Time—महाकाल
Time—१. काल; २. समय; ३. वेला
Time-server—समय-सेवी
Timid—डरपोक
Tolerate—सहना
Tool—औजार
Topic—प्रकरण
Torment—१. क्लेश; २. यातना
Torture—यत्रणा
To run—दौड़ना
To run away—भागना
Trade—व्यापार, रोजगार
Traditional usage—रूढ़ि
Traffic—१. परिवहन; २. यातायात
Training—प्रशिक्षण
Tranquillity—शम
Transport—परिवहन
Treaty—सधि
Tribe—कबीला, जन, जन-जाति
Tribunal—अधिकरण,
Tribunal, Judicial—न्यायाधिकरण
Trouble—१. कष्ट २. संकट
Truce—विराम-संधि
Trust—न्यास
Try—चेष्टा
Turmoil—खलबली
Twit—चुटकी
Understanding—समझौता
Unique—निराला
Unveiling—अनावरण
Upon—ऊपर
Ups and downs—उतार-चढ़ाव, चढ़ाव-उतार
Use—१. उपयोग; २. प्रयोग; ३. व्यवहार
Usefulness—उपादेयता
Utilitarianism—उपयोगितावाद
Utility—उपयोगिता
Utilization—उपयोग
Value—मूल्य, कीमत
Vanity—१. अहं; २. शेखी
Vasectomy—नस-बन्दी
Vein—१. शिरा, रुधिरवाहिका; २. नस
Versatile Knowledge—परिज्ञान
Visitor—१. दर्शक; २. दर्शपति; ३. दर्शाधिकारी
Visitor's Book—दर्शक-पंजी
Vocation—व्यवसाय, पेशा
Voice—नाद
Vow—प्रतिज्ञा
Wage Board—वेतन मडल
Waiting—प्रतीक्षा
Wave—तरंग
Way—परिपाटी
Wealth—धन, दौलत
Weight—गुरुता
White lie—सफेद झूठ
White-paper—श्वेत-पत्र
Will—इच्छा
Will-power—इच्छा-शक्ति

Wisdom—ज्ञान
Wish—१ आकांक्षा, इच्छा; २ चाह
Wonder—विस्मय, हैरत
Wonderful—अद्भुत
Worldly—सांसारिक
Worth—मूल्य
Writ—समादेश
Writ of mandamus—समादेश याचिका
Yearning—लालसा

• •